ISSN 2454-972X

हिमप्रस्थ

अप्रैल, 2018









मुख्य मन्त्री श्री जय राम ठाकुर राज्य स्तरीय हिमाचल दिवस के अवसर पर शिमला के ऐतिहासिक रिज़ मैदान पर परेड के निरीक्षण उपरांत प्रदेशवासियों को संदेश देते हुए



ISSN : 2454-972X

हिमप्रस्थ

वर्ष : 63 अप्रैल 2018 अंक : 1

सम्पादकीय कार्यालय : हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्क : 150 रुपये, एक प्रति : 15 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374
Website: himachalpr.gov.in/himprastha.asp

ज्ञान सागर

अगर गलती करने वाला मुस्कुराने लगे, तो दूसरे अपने आपको गलत समझने पर मजबूर हो जाते हैं।

– रॉबर्ट बलोच

इस अंक में

विकासात्मक लेख

- **हिमाचल दिवस पर मुख्यमंत्री का आलेख** 3
- **शांतिप्रिय लोगों की असाधारण संघर्ष गाथा** वेद प्रकाश 8
- **विकास का नया स्वरूप** विनोद भारद्वाज 12
- **पारदर्शी प्रशासन एवं संवेदनशील सरकार** 14
- **महिलाओं की सुरक्षा-सशक्तीकरण के लिए शक्ति बटन** विवेक शर्मा 15
- **पर्यटन की नई राहें, नई मंजिलें** योगराज शर्मा 17
- **वन संरक्षण के प्रति गंभीर प्रयास** 19
- **शिक्षा में गुणात्मक सुधार** 21
- **श्रेष्ठ स्वास्थ्य सेवाओं का सुदृढ़ नेटवर्क** नर्बदा कंवर 23
- **कृषि व बागबानी आय दोगुना करने का लक्ष्य** रीना नेगी 25

आलेख

- **संघर्षशील और स्वाभिमानी व्यक्तित्व** डॉ. कांता देवी 28
- **यायावरों के इष्ट महापंडित राहुल सांकृत्यायन** रत्न चंद निर्झर 31
- **मरुभूमि का लोकानुरंजन** सुदर्शन वशिष्ठ 34
- **मानवीय अनुभूतियों का लोक नाट्य : हॉर्न** डॉ. देवकन्या ठाकुर 40
- **करयाला में विशुद्ध पहाड़ी संस्कृति की झलक** नेम चंद अजनबी 46

कहानी

- **साइकल** रमेश चंद्र शर्मा 56
- **सुरक्षा** आशा पाण्डेय 58
- **सीता** गौरव गुप्ता 61

कविता

- **हरीश कुमार 'अमित' की कविताएं** 54
- **बंदर, बिल्ली और कौवा** डॉ. राकेश 'चक्र' 54
- **अनन्त आलोक की कविताएं** 55

समीक्षा

- **एक प्रामाणिक समीक्षा ग्रंथ** डॉ. ओमप्रकाश सारस्वत 63

अपनी बात

हिमालयी क्षेत्र में स्थित हिमाचल प्रदेश का वर्तमान भू-भाग आदिकाल से ही ऋषि-मुनियों की तपोस्थली रहा है और इसका तिलिस्मी सम्मोहन सदियों से यायावरों, साहित्य मर्मज्ञों व विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित करत रहा है। ऋषि-मुनियों ने अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए इस प्रदेश की पावन धरा को चुना। हिमाचल को आज भी प्रागैतिहासिक काल के एक ऐसे क्षेत्र के रूप में जाना जाता है जिसने मानवजाति को पोषित कर इसकी समृद्ध परम्पराओं की जड़ों को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस दौर में यह प्राचीनकाल से लेकर मध्यकाल तथा उसके बाद आधुनिक काल के दौरान भारत में हुईं अनेक राजनीतिक उथल-पुथल का शिकार होने के साथ-साथ विभिन्न कालखण्डों में अलग-अलग शासकों के अच्छे-बुरे शासन का साक्षी भी रहा है। देश की आजादी के आठ माह बाद वर्ष 1948 में 15 अप्रैल के ऐतिहासिक दिन इस क्षेत्र में स्थित 30 छोटी-बड़ी रियासतों के विलय से यह हिमाचल प्रदेश के रूप में अस्तित्व में आया। इससे पहले छोटी-छोटी रियासतों में बंटा होने के कारण यह क्षेत्र बहुत ही पिछड़ा हुआ था जहां अशिक्षा व पिछड़ेपन को ही लोगों की नीयति समझा जाता था। प्रदेश के प्रबुद्ध लोगों ने स्थानीय जन नेताओं के नेतृत्व में देश के स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लेने के साथ-साथ हिमाचल को अलग राज्य बनाने के लिए अंग्रेजों और रियासत कालीन शासन के खिलाफ दोहरा संघर्ष किया। देश के वर्ष 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर आजाद होने तक देश में जितने भी जन-आंदोलन या क्रांतियां हुई हैं, उन सभी में प्रदेश के लोगों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान धामी गोलीकांड, पझौता आंदोलन, सुकेत सत्याग्रह तथा प्रजामंडल जैसे आंदोलनों के माध्यम से प्रदेश के साहसी लोगों ने अतुलनीय योगदान देकर अपनी देशभक्ति का परिचय दिया। प्रदेश के नेताओं ने पहाड़ों में देशप्रेम व राष्ट्रभक्ति की अलख जगाए रखने के साथ-साथ रियासतों में बेगार प्रथा तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ भी अपनी आवाज बुलंद की। स्वतंत्रता संग्राम के दौान देश की ग्रीष्मकालीन राजधानी होने के कारण शिमला नगर, राष्ट्रीय आन्दोलनों का केन्द्र बनता जा रहा था जिससे समूचे क्षेत्र में लोगों को अंग्रेजों और रियासतकालीन शासन के विरुद्ध एकजुट होकर लड़ने की हिम्मत मिली। देश आजाद होने के बाद भी यहां के लोग पृथक राज्य की अपनी मांग पर डटे रहे और केन्द्रीय नेताओं के समक्ष पहाड़ी रियासतों को मिलाकर एक अलग भौगोलिक इकाई बनाने की पुरजोर मांग की पैरवी की। अंततः 15 अप्रैल, 1948 को पहाड़ी रियासतों के विलय से हिमाचल प्रदेश अस्तित्व में आया और इसे केन्द्र शासित राज्य का दर्जा मिला। लेकिन राज्य में लोकप्रिय सरकार के न होने के कारण लोगों का स्वराज का सपना अभी भी अधूरा ही था जिसे पूरा करने के लिए लोगों ने प्रदेशभर में आंदोलनों के माध्यम से अपने संघर्ष को जारी रखा। जुलाई, 1963 में हिमाचल प्रदेश में चुनी हुई सरकार का मार्ग प्रशस्त हुआ। प्रथम नवम्बर, 1966 को पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों को हिमाचल में विलय करने के केन्द्र सरकार के फैसले के साथ ही विशाल हिमाचल का सपना साकार हुआ और 25 जनवरी, 1971 को प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ जिससे हिमाचल में विकास के नये युग की शुरुआत हुई। विगत 70 वर्षों से यह प्रदेश विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर है। प्रदेश में 27 दिसम्बर, 2017 को सत्ता में आई वर्तमान सरकार ने 9 अप्रैल, 2018 को अपने शासन के 100 दिन पूर्ण कर लिए हैं। इस दौरान सरकार ने प्रदेशवासियों के हित में अनेक विकासोन्मुखी एवं जनकल्याणकारी कदम उठाए हैं। सहज अनुमान है कि प्रदेश में पहली बार इतनी छोटी अवधि में लीक से हटकर कुछ अलग और नया करने की दिशा में वर्तमान प्रदेश सरकार बुलंद इरादों के साथ 'सर्वहित हिताय' है।

– संपादक

आलेख

अभिनव पहल से खुशहाल हिमाचल की ओर



मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर

मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर का हिमाचल दिवस पर आलेख

आज हम अपने प्रिय प्रदेश हिमाचल की 70वीं वर्षगांठ मना रहे हैं। इस पावन अवसर पर मैं समस्त प्रदेशवासियों को अपनी और प्रदेश सरकार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ तथा उनके खुशहाल एवं उज्ज्वल भविष्य की मंगलकामना करता हूँ। हम सब जानते हैं कि 15 अप्रैल, 1948 के शुभ दिन, 30 छोटी-बड़ी रियासतों के विलय के साथ हिमाचल प्रदेश अस्तित्व में आया था। मैं इस अवसर पर उन सब महान विभूतियों, विशेषकर इस प्रदेश के प्रथम मुख्यमंत्री, हिमाचल निर्माता डॉ. वाई. एस. परमार को श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ, जिन्होंने हिमाचल प्रदेश को एक अलग पहचान दिलाई और उसे एक सशक्त आधार प्रदान किया।

हिमाचल दिवस का यह शुभ दिन, जहां हम सब प्रदेशवासियों के लिए उत्साह और उल्लास का पर्व है, वहीं यह अवसर आत्म-विवेचन का भी है, कि 70 वर्षों की विकास यात्रा में हम कहां पहुंचे हैं और हमने क्या पाया है!

अपने अस्तित्व में आने के समय हमारा यह पहाड़ी प्रदेश, गरीबी, पिछड़ेपन तथा आधारभूत सुविधाओं की कमी के कारण अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा था। शिक्षा, चिकित्सा व सड़क जैसी मूलभूत सुविधाएं शून्य के बराबर थीं। पिछड़ेपन को पहाड़ों की नियति समझा जाता था। मैं स्वयं एक दुर्गम क्षेत्र का निवासी होने के नाते, उस समय गरीबी व संसाधनों के अभाव के कारण, प्रदेशवासियों को हुई कठिनाइयों को भलीभांति समझ सकता हूँ।

लगभग नगण्य से अपनी विकास यात्रा आरम्भ कर, आज हिमाचल प्रदेश ने, न केवल पहाड़ी राज्यों, अपितु देश के अन्य राज्यों के लिए भी विकास का एक आदर्श प्रस्तुत किया है। प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी, राज्य का सकल घरेलू उत्पाद तथा साक्षरता दर विशेषकर महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि इत्यादि विकास के ऐसे सूचकांक हैं, जिनमें प्रदेश के विकास की बहुरंगी तस्वीर स्पष्ट झलकती है। हिमाचल प्रदेश के अस्तित्व में आने के समय, प्रति व्यक्ति आय मात्र 240 रुपये थी जो अब बढ़कर 1,58,462 रुपये हो गई है। यह राष्ट्रीय स्तर पर प्रति व्यक्ति आय से कहीं अधिक है। सकल घरेलू उत्पाद 26 करोड़ रुपये से बढ़कर 1,35,914 करोड़ रुपये हो गया है।

प्रदेश की इस शानदार विकास यात्रा के लिए, मैं समस्त प्रदेशवासियों को हार्दिक बधाई देता हूँ क्योंकि उनके सक्रिय सहयोग व भागीदारी से ही, इस प्रदेश का समग्र विकास सम्भव हो पाया है। प्रदेश की जनता पर हमें गर्व है। विधानसभा चुनाव-2017 में हिमाचल प्रदेश के स्वाभिमानी एवं कर्मठ लोगों ने भारतीय जनता पार्टी को भारी बहुमत के साथ प्रदेश की सेवा का दायित्व सौंपा है, जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। मैं, देश के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र

मोदी तथा भाजपा के शीर्ष नेतृत्व का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे सरकार का नेतृत्व करने के योग्य समझा और मुझे यह जिम्मेदारी दी।

प्रदेशवासियों की सेवा हमारे लिए एक साधना है और मै प्रदेशवासियों को आश्वस्त करना चाहता हूँ कि उनके हित हमारे लिए सर्वोपरि है। हमारी सरकार पूरी निष्ठा और समर्पण की भावना से कार्य कर रही है और सबका साथ, सबका विकास की नीति पर चलते हुए, एक टीम की तरह पूरी लगन से जनता की सेवा में तत्पर है। सत्ता की बागडोर संभालते ही, प्रदेश सरकार ने भारतीय जनता पार्टी के 'स्वर्णिम हिमाचल दृष्टि पत्र-2017' को सरकार का नीति दस्तावेज़ बनाने का अहम निर्णय लिया। वर्तमान सरकार ने विकास नीतियों को लागू करने के लिए, इसी 'दृष्टिपत्र' को अपना मार्गदर्शक अभिलेख बनाया है ताकि जन-प्रतिबद्धताओं को समयबद्ध ढ़ंग से पूरा किया जा सके।

वरिष्ठ नागरिक, समाज का एक संवेदनशील अंग है, उन्हें बेहतर सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए, सरकार ने ऐसे वरिष्ठ नागरिकों, जिन्हें अन्य कोई पेंशन प्राप्त न हो रही हो, की वृद्धावस्था पेंशन की आयु सीमा को, बिना किसी आय सीमा के, 80 से घटाकर 70 वर्ष किया है। इस निर्णय से 1.30 लाख वृद्ध लाभान्वित हुए हैं। हमारी सरकार ने सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना के अंतर्गत 32,808 नए मामलों को स्वीकृति प्रदान करने के अतिरिक्त पहली अप्रैल से सामाजिक सुरक्षा पेंशन की राशि को 750 रुपये मासिक किया है, जिससे 4,46,805 पात्र व्यक्तियों को लाभ प्राप्त हुआ है।

हमारी सरकार ने जब शासन संभाला, उस समय प्रदेश में भय, भ्रष्टाचार और असुरक्षा का माहौल था। हमारी सरकार ने इस दिशा में आवश्यक कदम उठाए ताकि लोगों के मन में सुरक्षा और विश्वास की भावना पैदा की जा सके। महिलाओं की सुरक्षा के लिए अन्य उपायों के साथ-साथ 'गुड़िया हेल्पलाइन' 1515 तथा 'शक्ति बटन ऐप' का शुभारम्भ किया गया ताकि किसी भी संकट की स्थिति में महिलाएं इनके माध्यम से तुरन्त पुलिस तक सूचना पहुंचा सकें।

भ्रष्टाचार को समाप्त करना हमारी सरकार की प्राथमिकता है। प्रदेश में वन माफिया, खनन माफिया तथा ड्रग माफिया के विरूद्ध कड़ाई से निपटने के लिए 'होशियार सिंह' हेल्पलाइन-1090 आरम्भ की गई है। मुख्यमंत्री कार्यालय चौबीस घण्टे इसकी निगरानी कर रहा है।

सेवा और सुशासन हमारी सरकार की प्रतिबद्धता है। कल्याणकारी योजनाओं को सक्रियता से लागू करने तथा प्रगति की निरन्तर समीक्षा करने के उद्देश्य से हमने 'मुख्यमंत्री डैशबोर्ड' आरम्भ किया है। महत्वपूर्ण विभागों में 'ऑनलाइन सेवाएं' आरम्भ की गई हैं, ताकि लोगों को संवेदनशील, पारदर्शी एवं उत्तरदायी प्रशासन उपलब्ध करवाया जा सके।

हमारी सरकार समयबद्धता और सुशासन की कार्य संस्कृति कायम करना चाहती है ताकि कम से कम समय में विकास के अधिकतम लाभ लोगों तक पहुंच सक.। हमने सत्ता में आते ही, सरकारी तंत्र को सक्रिय करने तथा निर्धारित समय सीमा में योजनाओं को पूरा करने लिए सभी विभागों को 100 दिन का लक्ष्य निर्धारित करने के निर्देश दिए। अधिकारियों को 'लीक से हटकर' तथा नई व नव प्रवर्तनशील योजनाएं तैयार करने के प्रति प्रेरित किया गया। मुझे खुशी है कि विभागों के स्तर पर इस दिशा में समर्पण और सहयोग की भावना के साथ कार्य हुआ तथा एक बेहतर कार्य संस्कृति का माहौल तैयार हुआ।

वर्तमान सरकार जन प्रतिनिधियों के सक्रिय सहयोग से योजनाओं को कार्यरूप दे रही है ताकि इन योजनाओं को व्यावहारिक बनाया जा सके और व्यापक रूप से जनहित को साधा जा सके।

हमने इस वर्ष के लिए 6300 करोड़ रुपये की वार्षिक योजना तैयार की है जो पिछली योजना के मुकाबले 10.51 प्रतिशत अर्थात् 600 करोड़ रुपये अधिक है।

हमारी सरकार युवाओं की क्षमता में वृद्धि, कमजोर वर्गों

हमारी सरकार आम आदमी की सरकार है। हम विकास की राह पर सबको साथ लेकर सबका विकास करने में विश्वास रखते हैं। हमारा लक्ष्य हिमाचल को एक शीर्ष और श्रेष्ठ राज्य बनाना है। हिमाचल दिवस के अवसर पर आइए, हम सब एक बार पुनः देश व प्रदेश सेवा का संकल्प लें।

सेवा और सुशासन हमारी सरकार की प्रतिबद्धता है। कल्याणकारी योजनाओं को सक्रियता से लागू करने तथा प्रगति की निरन्तर समीक्षा करने के उद्देश्य से हमने 'मुख्यमंत्री डैशबोर्ड' आरम्भ किया है। महत्वपूर्ण विभागों में 'ऑनलाइन सेवाएं' आरम्भ की गई हैं, ताकि लोगों को संवेदनशील, पारदर्शी एवं उत्तरदायी प्रशासन उपलब्ध करवाया जा सके।

के उत्थान, किसानों की समृद्धि व महिलाओं की सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील है। लोगों के जीवन-स्तर को बेहतर बनाने के लिए हमारी सरकार विशेषज्ञ स्वास्थ्य सेवाओं, गुणवत्तायुक्त शिक्षा व्यवस्था और आजीविका के नए अवसरों के सृजन पर विशेष बल दे रही है।

मुझे 9 मार्च, 2018 को हिमाचल प्रदेश विधानसभा में अपना पहला बजट प्रस्तुत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस बजट में हमने भारतीय जनता पार्टी के 'दृष्टिपत्र' में उल्लेखित अधिकांश वायदों को सम्मिलित करने का प्रयास किया है ताकि जन आकांक्षाओं को योजनाबद्ध ढंग से पूरा किया जा सके। हमने बजट में सभी वर्गों के कल्याण के लिए 30 नई योजनाएं प्रस्तावित की हैं जो अपने आप में एक रिकॉर्ड है।

सरकार संभालने पर हमने यह महसूस किया कि प्रदेश में अनेक छोटी-बड़ी परियोजनाएं अधर में लटकी पड़ी हैं। केन्द्रीय प्रायोजित योजनाओं के कार्यान्वयन को भी गंभीरता से नहीं लिया जा रहा था। हमने पहल करके इन योजनाओं के लिए अतिरिक्त धन उपलब्ध करवाया और इन्हें पूरा किया। 61 ऐसी पेयजल योजनाओं, जिनका 75 प्रतिशत से अधिक कार्य पूरा हो चुका था को अतिरिक्त धन उपलब्ध करवाकर पूरा किया गया। इससे 630 बस्तियों के लगभग एक लाख से अधिक लोग लाभान्वित हुए हैं।

हमने जल संरक्षण के लिए 4751.24 करोड़ रुपये की एक परियोजना वित्त पोषण हेतु भारत सरकार को प्रेषित की है। इसके अतिरिक्त, वर्ष 2000 से पूर्व प्रदेश में बनी पेयजल योजनाओं के सुधार के उद्देश्य से 798 करोड़ रुपये की एक अन्य योजना भी केन्द्र सरकार को भेजी गई है।

इसी प्रकार, हमने सड़कों की तुरन्त मुरम्मत व टारिंग के लिए 100 करोड़ रुपये की अतिरिक्त राशि जारी की। सड़क निर्माण के लिए 123 डी.पी.आर. तैयार की गईं। इस दौरान 213 सड़क कार्य आवंटित भी किए गए।

पर्यटन और जल विद्युत दोहन सहित अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में निवेशक विशेष रुचि नहीं दिखा रहे थे। प्रदेश के लिए केन्द्र सरकार ने 69 नए राष्ट्रीय राजमार्ग स्वीकृत किए परन्तु उनकी डी.पी.आर. तक नहीं बनाई गई थी।

हमने इन बातों को बड़ी गंभीरता से लिया और तेजी से कार्य आरम्भ किए। राष्ट्रीय उच्च मार्गों के लिए 43 परामर्शदाताओं की सेवाएं लेने के लिए पत्र जारी किए गए।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी का, इस प्रदेश के लोगों के प्रति विशेष लगाव व स्नेह रहा है। यही कारण है कि श्री मोदी जी के नेतृत्व वाली केन्द्रीय सरकार ने इस प्रदेश को, न केवल बड़ी परियोजनाओं को स्वीकृति प्रदान की है, बल्कि विकास के अनेक क्षेत्रों में सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया है ताकि प्रदेश के विकास में धन की कमी आड़े न आए। केन्द्र सरकार ने प्रदेश के विकास के लिए अनेक योजनाएं 90:10 के आधार पर स्वीकृत की हैं।

राज्य में कृषि क्षेत्र में एक हजार करोड़ रुपये की लागत की फसल विविधीकरण योजना का द्वितीय चरण आरम्भ किया जा रहा है। इसी प्रकार 800 करोड़ रुपये की वन प्रबंधन एवं आजीविका सुधार परियोजना चलाई जाएगी। इन दोनों परियोजनाओं के लिए जापान की अंतरराष्ट्रीय सहयोग एजेंसी (जिका) द्वारा वित्तीय सहयोग प्रदान किया जाएगा।

प्रदेश के युवाओं के कौशल विकास एवं रोज़गार सृजन के लिए 640 करोड़ रुपये की परियोजना कार्यान्वित की जाएगी, जिसके लिए हाल ही में भारत सरकार, एशियाई विकास बैंक तथा हिमाचल सरकार द्वारा समझौता ज्ञापन हस्ताक्षरित किया गया है। इस परियोजना के अंतर्गत प्रदेश के लगभग 65 हजार युवाओं को राष्ट्रीय कौशल मानकों के अनुसार रोज़गार उपलब्ध करवाने के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाएगा।

पर्यटन के क्षेत्र में भी हमने नई योजनाएं आरम्भ करने का निर्णय लिया है। इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने

हमारी सरकार समयबद्धता और सुशासन की कार्य संस्कृति कायम करना चाहती है ताकि कम से कम समय में विकास के अधिकतम लाभ लोगों तक पहुंच सकें। हमने सत्ता में आते ही, सरकारी तंत्र को सक्रिय करने तथा निर्धारित समय सीमा में योजनाओं को पूरा करने लिए सभी विभागों को 100 दिन का लक्ष्य निर्धारित करने के निर्देश दिए। अधिकारियों को 'लीक से हटकर' तथा नई व नव प्रवर्तनशील योजनाएं तैयार करने के प्रति प्रेरित किया गया। मुझे खुशी है कि विभागों के स्तर पर इस दिशा में समर्पण और सहयोग की भावना के साथ कार्य हुआ तथा एक बेहतर कार्य संस्कृति का माहौल तैयार हुआ।

के लिए 'नई राहें-नई मंजिलें' नामक 50 करोड़ रुपये की योजना आरम्भ की जा रही है ताकि पर्यटन के अन्छुए क्षेत्रों में भी पर्यटन गतिविधियां आरम्भ की जा सकें। प्रदेश में हवाई सेवाओं के विस्तार के लिए उड़ान-2 के तहत् 5 नए हेलीपैड के निर्माण की संभावनाओं के लिए सर्वेक्षण करवाया जा चुका है।

युवाओं एवं महिलाओं का स्वावलम्बन एवं सशक्तिकरण हमारी प्राथमिकताओं में से एक है। हमने इस दिशा में प्रयास आरम्भ कर दिए है। कौशल विकास कार्यक्रम को बड़े पैमाने पर कारगर ढ़ंग से लागू करने की योजना है। सभी रोज़गार केन्द्रों को कौशल पहचान केन्द्र एवं आदर्श कॅरियर परामर्श केन्द्र के रूप में परिवर्तित किया जा रहा है, इससे युवाओं को रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे। हमने इस अवधि में 4,101 नए अभ्यर्थियों को कौशल विकास भत्ता तथा 1737 युवाओं को बेरोज़गार भत्ता प्रदान किया है।

हमारा प्रयास है कि कौशलयुक्त युवाओं को रोज़गार मेलों तथा शिक्षण परिसरों में साक्षात्कार के माध्यम से रोज़गार प्रदान करवाए जाएं। इस छोटी-सी अवधि में ही ऐसे रोज़गार मेलों में 1500 से अधिक विद्यार्थियों को रोज़गार प्राप्त हुआ। शिक्षा विभाग के प्रयासों के परिणामस्वरूप पहली बार विभिन्न कॉलेजों में पढ़ रहे 138 विद्यार्थियों को भी नियुक्ति मिली है।

युवाओं को स्वरोज़गार अपनाने के प्रति प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से 'मुख्यमंत्री स्वावलम्बन' तथा 'मुख्यमंत्री युवा आजीविका' नामक दो नई योजनाएं आरम्भ की जा रही हैं जिनके तहत् उन्हें उद्यम आरम्भ करने के लिए निवेश पर विशेष उपदान देने की व्यवस्था की गई है।

हमारा यह प्रयास है कि हर घर में रसोई गैस हो ताकि गृहणियों को लकड़ी आदि पर खाना पकाने से छुटकारा मिल सके। इससे ईंधन के लिए लकड़ी इकट्ठा करने से बचा जा सकेगा, समय की बचत होगी, गृहणियों के स्वास्थ्य की रक्षा होगी तथा पर्यावरण का संरक्षण भी होगा। इसके लिए हम 'हिमाचल गृहिणी सुविधा' नामक योजना आरम्भ करने जा रहे हैं। इस योजना में उन परिवारों की गृहणियों को रसोई गैस सिलेण्डरों की जमा राशि तथा गैस चूल्हे के लिए आर्थिक मदद प्रदान की जाएगी जो केन्द्र सरकार की 'उज्ज्वला योजना' में शामिल नहीं हैं। हमारा लक्ष्य आगामी दो वर्षों में सभी परिवारों को रसोई गैस सुविधा प्रदान करने का है।

शिक्षा व स्वास्थ्य सरकार की प्राथमिकता सूची में सबसे ऊपर हैं। गुणात्मक शिक्षा पर हमारा विशेष बल रहेगा। हमने इस दिशा में कदम उठाने आरम्भ कर दिए हैं। 'मुख्यमंत्री आदर्श विद्या केन्द्र' नामक योजना आरम्भ की जा रही है, जिसके तहत् चरणबद्ध तरीके से सभी विधानसभा क्षेत्रों में जहां नवोदय विद्यालय अथवा एकलव्य विद्यालय नहीं हैं, वहां पर छात्रावास सुविधाओं सहित आदर्श विद्यालय स्थापित किए जाएंगे।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी बड़े सुधार किए जा रहे हैं। स्वास्थ्य संस्थानों में डॉक्टरों और अन्य पैरामेडिकल स्टाफ की कमी को दूर करने के लिए इस अवधि में चिकित्सकों के 262 पद भरे गए हैं तथा पैरामेडिकल के 2000 पद भरने की प्रक्रिया जारी है। आयुर्वेद विभाग में 200 चिकित्सा अधिकारियों के पद भरने की प्रक्रिया जारी है। जरूरतमंद लोगों के लिए आईजीएमसी, शिमला में रात-दिन 330 दवाइयां निःशुल्क उपलब्ध करवाई जा रही हैं।

राज्य में मुख्यमंत्री आशीर्वाद नामक नई योजना आरम्भ की जा रही है, जिसके तहत चिकित्सा संस्थान में प्रसव कराने पर दी जाने वाली 700 रुपये की राशि के अतिरिक्त अस्पताल में जन्मे सभी नवजात शिशुओं को 1500 रुपये की एक किट उपलब्ध करवाई जाएगी। निजी क्षेत्र की भागीदारी के महत्व को समझते हुए, हमने स्वास्थ्य में सहभागिता नाम की एक नई योजना आरम्भ करने की घोषणा की है, जिसके तहत् ग्रामीण क्षेत्रों में निजी अस्पताल स्थापित करने के लिए एक करोड़ रुपये के निवेश पर 25 प्रतिशत निवेश उपदान देने का प्रावधान किया गया है।

प्रदेश की अर्थव्यवस्था में कृषि व बागबानी का विशेष योगदान है। प्रदेश सरकार ने कृषि गतिविधियों में विविधता

लाने, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार और शून्य लागत की प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती को बढ़ावा देने की दिशा में कारगर कदम उठाए हैं। शून्य लागत की प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए 25 करोड़ रुपये की लागत से 'प्राकृतिक खेती-खुशहाल किसान' नामक नई योजना लागू की जा रही है। हमने आगामी पांच वर्षों में हिमाचल को 'जैविक कृषि' राज्य बनाने की परिकल्पना की है।

प्रदेश सरकार गौवंश के संरक्षण एवं संवर्धन के लिये कृतसंकल्प है। गौ-सदन स्थापित करने के लिये सरकारी भूमि को एक रुपये पट्टे पर दिया जाएगा ताकि प्रदेश में और स्वयं सेवी संस्थाएं इस पुनीत कार्य के लिये आगे आएं।

बागबानी क्षेत्र में भी अनेक सुधार आरम्भ किए गए हैं। इस वर्ष इन कार्यों पर 100 करोड़ रुपये खर्च किए जाएंगे। न्यूज़ीलैंड के विशेषज्ञा. द्वारा बागबानी क्षेत्र में तकनीकी सहयोग हेतु अनुबंध किया गया है।

हमने प्रदेश में संसाधन सृजन को ध्यान में रखते हुए, नई जल विद्युत् और खनन नीति लागू करने का निर्णय लिया है। खनन नीति को और कारगर बनाकर अवैध खनन पर सख्त दंड देने का प्रावधान किया गया है।

प्रदेश में एकल खिड़की के माध्यम से निवेशकों को बड़े पैमाने पर आकर्षित करने का अनुकूल वातावरण तैयार किया जा रहा है। हाल ही में 456.43 करोड़ रुपये के निवेश की 17 औद्योगिक इकाइयां स्वीकृत की गई हैं जिनमें 1610 लोगों को रोज़गार प्राप्त होगा। 2001 मेगावाट क्षमता की 31 जल विद्युत परियोजनाआ. के लिए अंतरराष्ट्रीय निविदाएं आमंत्रित की गई हैं।

प्रदेश में पर्यावरण संरक्षण पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण शहरों में इलेक्ट्रिक टैक्सियां व इलेक्ट्रिक बसें चलाई जा रही हैं। प्रदेश में पहली बार पर्यावरण गांव स्थापित करने की योजना आरम्भ की गई है, जिसके तहत प्रथम चरण में पांच गांव चयनित किए गए हैं। इन इको गांवों में 50-50 लाख रुपये खर्च किए जाएंगे।

कल्याणकारी योजनाओं को लागू करने और उनका लाभ आम लोगों तक पहुंचाने में कर्मचारियों का विशेष योगदान रहता है। हमने कर्मचारियों व पेंशनरों को महंगाई भत्ते तथा अंतरिम राहत के रूप में इस अल्प अवधि में ही 960 करोड़ रुपये से अधिक के लाभ प्रदान किए हैं। हमने अनुबंध आधार पर नियुक्त महिला कर्मचारियों का मातृत्व अवकाश 135 दिन से बढ़ाकर 180 दिन किया है। यह सुविधा दैनिक भोगी एवं अंशकालिक महिला कर्मचारियों को भी उपलब्ध करवाने के आदेश कर दिए हैं।

हाल ही में नूरपुर के निकट जो बस दुर्घटना हुई है उससे हम सभी व्यथित और द्रवित हैं। इस हादसे में 27 बहुमूल्य जानें चली गई, जिनमें 23 स्कूली बच्चे थे। इसका हम सभी को अत्यन्त दु:ख है। दु:ख की इस घड़ी में हम प्रभावित परिवारों के साथ हैं। ऐसी घटनाएं न हो इसके प्रति हम संजिदा हैं।

स्वतंत्रता सेनानियों, सेवारत एवं भूतपूर्व सैनिकों द्वारा मातृभूमि की रक्षा और गौरव के लिए दिए गए योगदान को हम कभी नहीं भुला सकते। मैं अपने इन वीर सेनानियों के प्रति अपनी श्रद्धा और सम्मान व्यक्त करता हूँ।

हमारी सरकार ने भूतपूर्व सैनिकों को अनुमोदिक सैन्य सेवा के लिए मिलने वाले वित्तीय लाभों को बहाल किया है। सेना में शहीदों के आश्रितों को करूणामूलक आधार पर रोज़गार दिया जाता है, इसी तर्ज पर अब यह लाभ अर्धसैनिक बलों में हिमाचली शहीदों के आश्रितों को भी दिया जाएगा। राष्ट्रमंडल खेलों में प्रदेश के अनेक खिलाड़ियों ने देश का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है और मेडल जीते हैं, जिस पर हमें गर्व है।

हमारी सरकार आम आदमी की सरकार है। हम विकास की राह पर सबको साथ लेकर सबका विकास करने में विश्वास रखते हैं। हमारा लक्ष्य हिमाचल को एक शीर्ष और श्रेष्ठ राज्य बनाना है। हिमाचल दिवस के अवसर पर आइए, हम सब एक बार पुन: देश व प्रदेश सेवा का संकल्प लें।

प्रदेश की अर्थव्यवस्था में कृषि व बागबानी का विशेष योगदान है। प्रदेश सरकार ने कृषि गतिविधियों में विविधता लाने, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार और शून्य लागत की प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती को बढ़ावा देने की दिशा में कारगर कदम उठाए हैं। शून्य लागत की प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए 25 करोड़ रुपये की लागत से 'प्राकृतिक खेती-खुशहाल किसान' नामक नई योजना लागू की जा रही है। हमने आगामी पांच वर्षों में हिमाचल को 'जैविक कृषि' राज्य बनाने की परिकल्पना की है।

हिमाचल का उदय

शांतिप्रिय लोगों की असाधारण संघर्ष गाथा

◆ वेद प्रकाश



हिमाचल प्रदेश के वर्तमान भू-भाग को प्रागैतिहासिक काल के एक ऐसे क्षेत्र के रूप में जाना जाता है जिसने मानव जाति को पल्लवित कर इसकी समृद्ध परम्पराओं को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सृष्टि के आदिपुरुष मनु का मनवालय हो या ऋषिगण वशिष्ठ, व्यास, भृगु के आश्रम, इन सभी ऋषि-मुनियों का यहां की पावन धरा से गहरा संबद्ध रहा है, शायद इसीलिए इस पर्वतीय प्रदेश में आज भी देवसंस्कृति की झलक देखी जा सकती है। अंग्रेजी शासन के दौरान पंजाब हिल स्ट्टेस तथा शिमला हिल स्ट्टेस के रूप में छोटी-छोटी रियासतों में बंटा होने के कारण यह समूचा पहाड़ी क्षेत्र विकास की दृष्टि से बहुत ही पिछड़ा हुआ था जहां अशिक्षा और पिछड़ेपन को ही लोगों की नियति माना जाता था। प्रदेश के संक्षिप्त इतिहास पर नजर दौड़ाने से पता चलता है कि प्रदेश के कर्मठ एवं ईमानदार लोगों ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान देने के साथ-साथ पृथक राज्य के गठन के लिए अंग्रजों और रियासतों के खिलाफ लड़ाई के रूप में दोहरे संघर्ष का सामना किया।

भारत के वर्ष 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर देश आजाद होने तक यहां जितने भी आंदोलन या क्रांतियां हुई उन सभी में इस पहाड़ी प्रदेश के लोगों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रांम के दौरान धामी गोलीकांड, पझौता आंदोलन, सुकेत सत्याग्रह तथा प्रजामंडल जैसे जन आंदोलनों के माध्यम से प्रदेश की देशभक्त जनता ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम की लहर में प्रजामंडल आंदोलनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इस दौरान शिमला और पंजाब हिल स्टेटस में प्रजामंडलों का विकास एक महत्वपूर्ण घटना थी। शिमला इन मंडलों के संचालन एवं कार्य-कलापों का केंद्र बना हुआ था। शिमला देश की ग्रीष्मकालीन राजधानी होने के कारण आंदोलनों का गढ़ रहा। लोगों को लामबंद कर पहाड़ी रियासतों के हिमाचल प्रदेश के रूप में एकीकरण में प्रजामंडल के नेताओं को अंतर्राज्यीय गतिविधियों, रियासती प्रजामंडल तथा बाद में हिमालयन स्टेट्स रीजनल कौंसिल की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

प्रदेश के इस क्रमिक घटनाक्रम के दौरान छोटी-छोटी रियासतों में बने प्रजामंडलों को इकट्ठा कर हिमालय रियासती प्रजामंडल की स्थापना की गई। प्रदेश के कुनिहार, चंबा, मंडी, सुकेत, सिरमौर, बुशहर, बिलासपुर तथा अन्य छोटी-छोटी रियासतों में भी प्रजामंडल संगठित होकर संघर्ष के मार्ग पर चल पड़े। वर्ष 1945 में बुशहर प्रजामंडल का गठन हुआ। इसी वर्ष के अंत में उदयपुर में 'ऑल इंडिया स्टेट्स पीपुल कांफ्रेंस' का

अधिवेशन आयोजित किया गया। अधिवेशन के उपरांत वहीं पर पहाड़ी रियासत के प्रतिनिधियों ने क्षेत्र में प्रजामंडल को सुचारू रूप से चलाने के लिए जनवरी 1946 में 'हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल काउंसिल' नाम से एक संस्था की स्थापना की। इसके प्रधान स्वामी पूर्णानंद बने व इसका कार्यालय मंडी रखा गया। पं. पदमदेव को इसका मुख्य सचिव, श्याम चंद नेगी को उपप्रधान तथा शिवानंद रमौल को संयुक्त सचिव बनाया गया। काउंसिल का प्रथम सम्मेलन 8 से 10 मार्च, 1946 को मंडी में हुआ। इस सम्मेलन में पहाड़ी लोगों के हित में तथा राजाओं को अत्याचारों को रोकने के लिए 14 प्रस्ताव पारित किए गए। तदोपरांत 31 अगस्त और पहली सितंबर, 1946 को नाहन में सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसके उपरांत प्रजामंडल के नेताओं ने अपनी-अपनी रियासतों में आंदोलन को तेज किया।

फरवरी 1947 में भज्जी के लीला दास वर्मा, बिलासपुर के कांशी राम उपाध्याय तथा प्राजमंडल के कुछ अन्य कार्यकर्ता डॉ. यशवंत सिंह के पास दिल्ली गए और उन्हें शिमला लेकर आए। शिमला में पं. पदमदेव, शिवानंद रमौल, दौलत राम सांख्यान, पं. सीता राम, दुर्गा सिंह राठौड़ और अन्य पहाड़ी नेताओं के आग्रह पर डॉ. परमार स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हुए। उन्होंने शिमला के उपनगर संजौली में कृष्ण विला लॉज में रहना आरंभ किया और वहीं पर लीला दास वर्मा ने प्रजा मंडल का कार्यालय खोला। यह वही दौर था डॉ. यशवंत सिंह परमार ने क्षेत्र में राजनीतिक पटल पर पूर्णकालिक रूप में पदार्पण कर पहाड़ी रियासतों में प्रजामंडल आंदोलन का कुशल नेतृत्व किया और पहाड़ी क्षेत्रों के एकीकरण के आंदोलन को नई दिषा प्रदान की।

मार्च, 1947 में हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल काउंसिल की बैठक शिमला के रॉयल होटल में आयोजित की गई। डॉ. यशवंत सिंह को नई काउंसिल का प्रधान चुना गया। इसका पहला सम्मेलन 31 जुलाई 1947 को शिमला की पहाड़ी रियासत सांगरी में आयोजित किया गया। लोगों की भावनाओं तथा सम्मेलन की सफलता को देखते हुए सांगरी का राजा परिवार सहित रियासत छोड़कर कुल्लू के आनी को पलायन कर गया।

अगस्त 1947 में सिरमौर प्रजा मंडल ने नाहन में सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन में सिरमौर के राजा राजेंद्र प्रकाश ने भी भाग लिया। 18 फरवरी, 1948 को पं. पदमदेव के नेतृत्व में सत्याग्रहियों ने तत्तापानी के रास्ते सुकेत रियासत में प्रवेश किया। 25 फरवरी को सुकेत की राजधानी सुंदरनगर पहुंचे। प्रजामंडल के सम्मुख रियासत की फौजी टुकड़ी ने हथियार डाल दिए। प्रजामंडल के नेता क्षेत्र की सभी पहाड़ी रियासतों को मिलाकर एक पहाड़ी राज्य बनाने के पक्ष में थे। इसी के दृष्टिगत 4 जनवरी 1948 को शिमला में एक कांफ्रेंस का आयोजन किया गया जिसमें पहाड़ी रियासतों के प्रजामंडल नेताओं ने हिस्सा लिया। सुकेत में आयोजित अन्य कांफ्रेंस में 'हिमालय प्रांत' बनाने के पक्ष में प्रस्ताव पारित हुआ। इसके पश्चात 13 जनवरी 1948 को दूसरी कांफ्रेंस कोटगढ़ में तथा तीसरी कांफ्रेंस रामपुर में हुई जिसमें 'हिमायल प्रांत' के गठन की पुरजोर वकालत की गई। इसी क्रम में 25 जनवरी, 1948 को शिमला के गंज मैदान में एक विशाल जनसभा हुई। इसमें प्रजामंडल के कई नेताओं ने भाग लिया। डॉ. यशवंत सिंह परमार की अध्यक्षता में आयोजित सभा में पहाड़ी रियासतों के भारत संघ में विलय सहमति व्यक्त की गई और 'हिमालय प्रांत' के गठन का प्रस्ताव पारित किया गया। पं. पदम देव व अन्य प्रजामंडलियों ने डॉ. परमार के प्रस्तावों का समर्थन किया। परंतु पहाड़ी रियासतों के भीतर और बाहर आंदोलनकारी नेताओं में रियासतों के भविष्य के बारे में काफी मतभेद बना रहा। पंजाब के नेता सब पहाड़ी रियासतों को पंजाब में मिलकर 'महापंजाब' प्रांत बनाने के हक में थे। उधर उत्तर प्रदेश के नेतागण टिहरी-गढ़वाल, सिरमौर के साथ शिमला की पहाड़ी रियासतों को भी उत्तर प्रदेश में मिलाने के हक में थे जबकि महाराजा पटियाला के समर्थक नालागढ़, क्योंथल, सिरमौर, चंबा और शिमला हिल्ज की रियासतों को मिलाकर कोहीस्तान बनाना चाहते थे। दूसरी ओर केंद्रीय

भारत के वर्ष 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर देश आजाद होने तक यहां जितने भी आंदोलन या क्रांतियां हुईं उन सभी में इस पहाड़ी प्रदेश के लोगों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रांम के दौरान धामी गोलीकांड, पझौता आंदोलन, सुकेत सत्याग्रह तथा प्रजामंडल जैसे जन आंदोलनों के माध्यम से प्रदेश की देशभद्र जनता ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम की लहर में प्रजामंडल आंदोलनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इस दौरान शिमला और पंजाब हिल स्टेटस में प्रजामंडलों का विकास एक महत्वपूर्ण घटना थी। शिमला इन मंडलों के संचालन एवं कार्य-कलापों का केंद्र बना हुआ था। शिमला देश की ग्रीष्मकालीन राजधानी होने के कारण आंदोलनों का गढ़ रहा। लोगों को लामबंद कर पहाड़ी रियासतों के हिमाचल प्रदेश के रूप में एकीकरण में प्रजामंडल के नेताओं को अंतर्राज्यीय गतिविधियों, रियासती प्रजामंडल तथा बाद में हिमालयन स्टेट्स रीजनल कौंसिल की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

सरकार भी छोटे प्रांत बनाने के हक में न थी। इस वैचारिक मतभेद के चलते पहाड़ी रियासतों के नेता भी दो अलग गुटों में बंट गए।

उधर स्वाधीनता दिवस के अवसर पर ठियोग रियासत के प्रजा मंडल के नेताओं ने राणा कर्मचंद को सत्ता छोड़ने पर मजबूर किया। ठियोग पहली रियासत थी जो हिमाचल प्रदेश के बनने से पूर्व ही भारतीय संघ में मिल गई। इसी तरह शेष रियासतें भी प्रजामंडल के सदस्यों ने शेष रियासतों के खिलाफ आंदोलन को तेज किया। इस दौरान पहाड़ी रियासतों को पूर्वी पंजाब में मिला देने की मांग भी उठी। पूर्वी पंजाब के गवर्नर चंदू लाल त्रिवेदी तथा मुख्य मंत्री गोपी चंद भार्गव ने शिमला के बार्नेस कार्ट व पंजाब सचिवालय अलरजली से पं. जवाहर लाल नेहरू तथा सरदार पटेल को पत्र लिखकर पहाड़ी रियासतों को पूर्वी पंजाब में मिलाने का आग्रह किया। इन प्रस्तावों का रियासतों के शासकों व लोगों ने डटकर विरोध किया। प्रजामंडल के नेताओं का तर्क था कि इन रियासतों के लोग भाषा, संस्कृति और सामाजिक व्यवहार के लिहाज से पंजाब के लोगों से एकदम भिन्न हैं। यह बात नेहरू तथा पटेल ने पंजाब के गवर्नर व मुख्य मंत्री के पत्रों के उत्तर में लिखी। शिमला की पहाड़ी रियासतों के राजाओं ने जनवरी, 1948 के प्रथम सप्ताह में दिल्ली में बैठक आयोजित कर एक प्रस्ताव पारित किया - "पूर्ण रूप से विचार करने के उपरांत यह निर्णय लिया गया है कि जनभावनाओं को ध्यान में रखते हुए शिमला की सभी पहाड़ी रियासतों को एक संघ के रूप में संगठित किया जाए।" सभी रियासतों को संदेश भेजा गया कि वे 26 जनवरी, 1948 को सोलन में भाग लें।

बघाट के राजा दुर्गा सिंह तथा मंडी के राजा जोगिंद्र सेन ने दिल्ली में महात्मा गांधी से भेंट की। गांधी जी ने दोनों राजाओं को सलाह दी कि प्रजामंडल तथा राजाओं के प्रतिनिधियों की बैठक बुलाकर अपने भविष्य के बारे में कोई फैसला लें।

राजाओं तथा प्रजामंडल के प्रतिनिधियों का सम्मेलन बघाट के राजा दुर्गा सिंह की अध्यक्षता में 26 से 28 जनवरी 1948 को सोलन के दरबार हाल में हुआ। इस सम्मेलन में शिमला की पहाड़ी रियासतों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में सभी ने पहाड़ी रियासतों को मिलाकर एक ही भौगोलिक एवं प्रशासनिक इकाई बनाने की पुरजोर मांग रखी। राजाओं तथा साथ ही चंबा, मंडी, बिलासपुर, सुकेत, सिरमौर आदि के शासकों व प्रजामंडल के नेताओं से बातचीत करने का प्रस्ताव भी रखा। इसी सभा में प्रस्तावित संघ का नाम 'हिमाचल प्रदेश' रखा गया।

इस दौरान 2 मार्च 1948 को भारत सरकार के राज्य मंत्रालय (मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स) ने दिल्ली में शिमला एवं पंजाब की पहाड़ी रियासतों के शासकों की बैठक बुलाई जिसमें मंत्रालय के सचिव सी.सी. देसाई ने पहाड़ी रियासतों के शासकों से बिना शर्त 'विलय पत्र' पर हस्ताक्षर करने को कहा। परंतु बघाट के राजा दुर्गा सिंह ने सोलन सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार पहाड़ी रियासतों के एक अलग प्रांत 'हिमाचल प्रदेश' में सामूहिक विलय का आग्रह किया। सचिव देसाई ने इसका विरोध किया। पहाड़ी रियासती के नेता व प्रजामंडल के प्रतिनिधि भागमल सौहटा, बुशहरी के नेतृत्व में नेताओं ने गृह मंत्री सरदार पटेल से मुलाकात कर सरदार पटेल को सोलन सम्मेलन का प्रस्ताव पेश किया और उनसे पहाड़ी रियासतों को मिलाकर एक अलग पहाड़ी प्रांत 'हिमाचल प्रदेश' के गठन की स्वीकृति देने की अपील की। तदोपरांत 8 मार्च, 1948 को शिमला की पहाड़ी रियासतों के राजाओं ने विलय पर हस्ताक्षर कर दिए। राज्य मंत्रालय (मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स) के सचिव ने केंद्रीय सरकार की ओर से पहाड़ी रियासतों के विलय से एक अलग प्रांत 'हिमाचल प्रदेश' के गठन की घोषणा की। सचिव वी.पी. मेनन ने इस अवसर पर स्पष्ट किया कि 'हमने शिमला हिल स्टेट्स को मिलाकर केंद्रीय शामिल प्रांत 'हिमाचल प्रदेश' बना दिया है और पंजाब हिल स्टेट्स के इसमें विलय की बात अभी विचाराधीन है। इस प्रकार 8 मार्च, 1948 को शिमला की हिल्स की पहाड़ी रियासतों के विलय से 'हिमाचल प्रदेश' के गठन की प्रक्रिया आरंभ हुई। कुछ प्रतिनिधि इसका नाम हिमाचल प्रांत चाहते थे। लेकिन सरदार ने 'हिमाचल प्रदेश' नाम का ही अनुमोदन किया। इस प्रकार सोलन सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार 'हिमाचल प्रदेश' का जन्म हुआ।

मंडी के राजा जोगेंद्र सेन ने 14 मार्च को विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए। चंबा के राजा लक्ष्मण सेन भी जनता के दबाव से विवश होकर विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए। सिरमौर व बिलासपुर की रियासतों ने अपनी रियासतों का विलय करने पर पत्र पर हस्ताक्षर किए। 23 मार्च को 1948 को केंद्रीय वित्त सचिव ई.पी. कृपलानी के समक्ष विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए।

अंततः 15 अप्रैल, 1948 को पहाड़ी क्षेत्र की 30 छोटी-बड़ी रियासतों के विलय से हिमाचल प्रदेश अस्तित्व में आया और इसे केंद्र शासित चीफ कमिश्नरी प्रोविन्स का दर्जा दिया गया।

एन.सी. मेहता को हिमाचल का पहला चीफ कमिश्नर नियुक्त किया गया व पैन्ड्रल मून ने डिप्टी चीफ कमिश्नर के रूप में कार्यभार संभाला। शिमला हिल स्टेट्स की 26 छोटी-बड़ी रियासतों को मिलाकर 'महासू' जिला बना दिया गया जबकि मंडी और सुकेत की रियासतों को एक करके मंडी जिला का नाम दिया गया। चंबा तथा सिरमौर के दो अलग-अलग जिले बना दिए गए। 1948 में इन चार जिलों में 23 तहसीलें बनाई गईं। उस समय हिमाचल का क्षेत्रफल 10,451 वर्गमील तथा जनसंख्या 9,83,367 थी।

हालांकि वर्ष 1952 तक हिमाचल प्रदेश चीफ कमिश्नर्ज प्रोविंस के रूप में केंद्र सरकार के अनतर्गत विकास पथ पर अग्रसर रहा परंतु लोकप्रिय सरकार न होने के कारण इस प्रदेश के नेता

और प्रजा का 'स्वराज का सपना' अभी पूरा नहीं हुआ था। प्रदेशभर में चीफ कमिश्नर के विरोध में आंदोलन और जलूस होते रहे। इस दौरान डॉ. यशवंत सिंह परमार कांग्रेस के शीर्ष नेता के रूप में उभर कर सामने आए। उनके नेतृत्व में प्रदेश कांग्रेस ने हिमाचल प्रदेश में लोकप्रिय सरकार की व्यवस्था के लिए केंद्रीय सरकार से संवैधानिक संघर्ष किया। अंततः केंद्र से हिमाचल प्रदेश को 'पार्ट सी स्टेट' का दर्जा देकर इसके लिए विधान मंडल की व्यवस्था की। वर्ष 1952 के आरंभ में भारत के प्रथम आम चुनावों के साथ हिमाचल में भी चुनाव हुए। 24 मार्च 1952 को प्रदेश में प्रथम लोकप्रिय सरकार बनी और डॉ. यशवंत सिंह परमार प्रदेश के प्रथम मुख्य मंत्री बने।

डॉ. परमार 1952 से 1956 तक मुख्य मंत्री रहे परंतु उन्होंने विशाल हिमाचल के लिए संघर्ष जारी रखा। हिमाचल के अस्तित्व पर अभी भी खतरा समाप्त नहीं हुआ था, क्योंकि 'राज्य पुनर्गठन आयोग' द्वारा हिमाचल को पंजाब में विलय करने की सिफारिश की थी। सभी राजनैतिक दलों ने मिलकर केंद्र सरकार के समक्ष अपना पक्ष मजबूती के साथ प्रस्तुत किया। अंततः हिमाचल कोएक अलग भौगोलिक इकाई रखने का केंद्र सरकार से आश्वासन मिला जिसे पूरा करने के लिए हिमाचल प्रदेश की लोकप्रिय सरकार को बलिदान देना पड़ा। परिणामस्वरूप हिमाचल का पार्ट-सी-स्टेट का दर्जा घटाकर 'यूनियन टेरीटरी' कर दिया गया। प्रदेश विधान सभा भंग करने के बाद 31 अक्तूबर 1956 को डॉ. परमार की मंत्रिपरिषद ने त्याग-पत्रा दे दिया और हिमाचल के अस्तित्व को बचाने के लिए 'यूनियन टेरीटॅरी' का स्टेटस स्वीकार कर लिया। एक नवंबर, 1956 को उप-राज्यपाल ने हिमाचल प्रदेश का शासन संभाल लिया।

15 अगस्त 1957 को हिमाचल प्रदेश में टेरीटोरियल कौंसिल बनी जिसमें प्रजा के प्रतिनिधि लिए गए। लेकिन इस कौंसिल का दर्जा महज एक जिला बोर्ड के समान था और जनता की लोकप्रिय सरकार की मांग पूरी न हो सकी। हिमाचल के नेताओं और स्थानीय जनता को प्रदेश के भौगोलिक अस्तित्व के बचाव और विस्तार व लोकप्रिय सरकार की बहाली के लिए पुनः संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में सभी राजनैतिक दलों ने इकट्ठे होकर एक सर्वदलीय समिति का गठन किया गया जिसका नाम 'विशाल हिमाचल समिति' रखा गया। दिसंबर 1959 में हिमाचल प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने डॉ. परमार के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल दिल्ली भेजा। डॉ. परमार ने हिमाचल में लोकतंत्रीय सरकार की मांग केन्द्र के समक्ष प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की और विशाल हिमाचल के उद्देश्य व प्रस्ताव को केंद्रीय सरकार के सामने रखा। प्रधान मंत्री, जवाहर लाल नेहरू और गृह मंत्री लाल बहादुर शास्त्री के आश्वासन पर 1962 के आम चुनाव में कांग्रेस विजय रही और काफी संघर्षों के उपरांत एक जुलाई 1963 को हिमाचल को लोकप्रिय सरकार की प्राप्ति हुई और टेरीटोरियल कौंसिल को विधानसभा में बदल दिया गया। उसके उपरांत पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों के नेताओं ने मिलकर विशाल हिमाचल का प्रचार आरंभ किया और अंततः यह सपना प्रथम नवंबर 1966 को उस समय साकार हुआ जब केंद्रीय सरकार ने कांगड़ा, कुल्लू, लाहौल-स्पीति, शिमला, ऊना, नालागढ़, डलहौजी, बकलोह आदि पहाड़ी रियासतों को हिमाचल प्रदेश में मिला दिया।

24 जनवरी 1968 को प्रदेश विधान सभा में सर्वसम्मति से पूर्ण राज्य प्रदान करने का प्रस्ताव पारित किया गया। मुख्य मंत्री डॉ. परमार ने स्वयं केंद्र में प्रधान मंत्री और गृह मंत्री से बात की। परिणामस्वरूप 31 जुलाई, 1970 को प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी ने संसद में हिमाचल को पूर्ण राज्य का दर्जा देने की घोषणा कर की और दिसंबर 1970 को संसद में स्टेट ऑफ हिमाचल प्रदेश एक्ट पास होने के साथ ही हिमाचल प्रदेश भारतीय गणतंत्र का 18वां राज्य बना। देश की तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने शिमला के ऐतिहासिक रिज मैदान में भारी बर्फबारी के बीच हजारों की संख्या में उपस्थित हिमाचलवासियों की मौजूदगी में हिमाचल प्रदेश का भारत के पूर्ण राज्य के रूप में उद्घाटन किया।

डॉ. परमार 1952 से 1956 तक मुख्य मंत्री रहे परंतु उन्होंने विशाल हिमाचल के लिए संघर्ष जारी रखा। हिमाचल के अस्तित्व पर अभी भी खतरा समाप्त नहीं हुआ था, क्योंकि 'राज्य पुनर्गठन आयोग' द्वारा हिमाचल को पंजाब में विलय करने की सिफ़ारिश की थी। सभी राजनैतिक दलों ने मिलकर केंद्र सरकार के समक्ष अपना पक्ष मजबूती के साथ प्रस्तुत किया। अंततः हिमाचल को एक अलग भौगोलिक इकाई रखने का केंद्र सरकार से आश्वासन मिला जिसे पूरा करने के लिए हिमाचल प्रदेश की लोकप्रिय सरकार को बलिदान देना पड़ा। परिणामस्वरूप हिमाचल का पार्ट-सी-स्टेट का दर्जा घटाकर 'यूनियन टेरीटरी' कर दिया गया। प्रदेश विधान सभा भंग करने के बाद 31 अक्तूबर 1956 को डॉ. परमार की मंत्रिपरिषद ने त्याग-पत्रा दे दिया और हिमाचल के अस्तित्व को बचाने के लिए 'यूनियन टेरीटॅरी' का स्टेटस स्वीकार कर लिया। एक नवंबर, 1956 को उप-राज्यपाल ने हिमाचल प्रदेश का शासन संभाल लिया।

विकास का नया स्वरूप

◆ विनोद भारद्वाज

देश की आजादी के उपरांत देश भर में लोकतांत्रिक प्रणाली लागू होने पर विकास यात्राओं का सिलसिला आरम्भ हुआ। इन विकास यात्राओं से हर वर्ग, हर क्षेत्र को सामाजिक-आर्थिक तौर पर सशक्त बनाया जा रहा है।

हिमाचल प्रदेश में श्री जय राम ठाकुर के नेतृत्व में प्रदेश में नव-विकास की यात्रा 27 दिसम्बर, 2017 को नई सरकार के गठन के साथ आरम्भ हुई। हालांकि इस यात्रा ने अभी तक 100 दिनों का सफर तय किया है लेकिन इस दौरान उठाये गये कदमों से राज्य का परिदृश्य बदलता नजर आ रहा है। सौ दिन की इस छोटी सी अवधि में प्रदेश सरकार ने विकास के मील पत्थर स्थापित किये हैं। इन सौ दिनों के भीतर सरकार ने वर्ष 2018-19 का बजट प्रस्तुत कर अपनी सरकार की राज्य के विकास की प्रतिबद्धता को दर्शाया है। वर्ष 2018-19 के लिये 41,440 करोड़ रुपये का बजट प्रावधान किया गया है। सरकार ने प्रदेशवासियों को पारदर्शी एवं कुशल प्रशासन देने की प्रतिबद्धता दिखाई है। बजट में समाज के सभी वर्गों को सम्मिलित किया गया है तथा इसमें पहली बार 28 नई योजनायें आरम्भ कर एक नई शुरुआत की गई है। युवाओं के लिये रोजगार, किसानों व बागबानों की आय दोगुना करने का संकल्प, निवेश व संसाधन सृजन पर बल दिया गया है। सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट सभी वर्गों का सर्वांगीण विकास, प्रगति की प्रक्रिया में उनकी सक्रिय भागीदारी एवं उन्नति की नई विचारधारा संजोये हुये है। सरकार के कार्यों पर नजर दौड़ायें तो राज्य में लोगों विशेषकर महिलाओं में कानून एवं व्यवस्था के प्रति विश्वास सुरक्षित एवं भय रहित वातावरण बनाने में सहायता मिली है। गुड़िया हैल्पलाइन तथा शक्ति बटन ऐप की शुरुआत से महिलाओं में पुलिस की कार्य प्रणाली पर पुनः विश्वास जागृत हुआ है। खनन, वन तथा नशा माफिया के विरुद्ध भी सरकार ने सार्थक कदम उठाये हैं। होशियार सिंह हैल्पलाइन की स्थापना व तीन पुलिस वृतों में अपराधों की निगरानी से ऐसी घटनाओं को रोकने में मदद मिल रही है।

सरकार ने विकास के लाभ हर व्यक्ति तक पहुंचाने के लिये पहल की है। सामाजिक सुरक्षा को अधिमान देते हुये वृद्धावस्था पेंशन की पात्रता आयु को 80 वर्ष से घटाकर 70 वर्ष किया है। कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिये महंगाई भत्ता तथा अंतरिम राहत प्रदान की गई है। पूर्व सैनिकों को सिविल रोजगार में वेतन निर्धारण के लाभ को बहाल करने का निर्णय लिया। कृषि-बागबानी क्षेत्र को सशक्त बनाने के लिये जल संचयन, हर खेत तक जल की उपलब्धता सुनिश्चित बनाकर वर्ष 2022 तक किसानों की कृषि आय को दोगुना करने के लिये कदम आगे बढ़ाये हैं।

बागबानी क्षेत्र को नई ऊंचाइयों पर ले जाने के लिये न्यूजीलैण्ड की तकनीक का हस्तांतरण राज्य में किया जायेगा। सिंचाई के तहत अधिक क्षेत्र को लाने व मध्य क्षेत्र में बागबानी क्षेत्र के विस्तारीकरण के लिये 800 करोड़ की दो मेगा परियोजनाओं को ब्रिक्स/एशियन विकास बैंक से वित्त पोषण के लिये आगे बढ़ाया है।

राज्य में केन्द्र के सहयोग से पर्यटन विकास को आगे बढ़ाया जा रहा है। हवाई सेवा के तहत उड़ान तथा आठ शहरों के लिये हैलीकॉप्टर योजना को केन्द्र की मंजूरी मिलने से राज्य में इस क्षेत्र में तेजी आयेगी।

राज्य मंत्रिमण्डल ने बीबीएमबी परियोजनाओं में लम्बित बकाया राशि की प्राप्ति के लिये मंजूरी दी है। 13066 मिलियन यूनिट ऊर्जा जिसकी औसतन दर 2.50 रुपये प्रति यूनिट होगी, से राज्य को 3266 करोड़ रुपये की राशि प्राप्त होगी। राज्य को आर्थिक तौर पर सशक्त बनाने के लिये सरकार ने उद्योग, पर्यटन क्षेत्रों को प्राथमिकता दी है। शिक्षा, स्वास्थ्य क्षेत्र को सशक्त एवं सुदृढ़ बनाया जा रहा है। सरकार ने छात्रों को गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने के ध्येय के साथ शिक्षा की नीतियों को आगे बढ़ाया है। शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए सूचना प्रौद्योगिकी को अपनाया जा रहा है। खेल गतिविधियों के समग्र विकास के लिये खेल नीति लाना प्रस्तावित है। ऊना जिले में ट्रिप्पल आइटी को खोलने का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है।

आम लोगों से जुड़ा स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। स्वस्थ हिमाचल के सपने को साकार करने के लिये राज्य सरकार ने राज्य

में स्थित सभी मेडिकल कॉलेजों को सुदृढ़ करने, इस वर्ष से हमीरपुर मेडिकल कॉलेज को कार्यशील बनाने का निर्णय लिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सकों की कमी को पूर्ण करने के लिये एलोपैथी चिकित्सकों व आयुर्वेदिक चिकित्सकों के 200-200 पद भरने को स्वीकृति प्रदान की है।

स्वास्थ्य क्षेत्र को मजबूती प्रदान करने के लिये केन्द्र सरकार ने बिलासपुर में 1351 करोड़ की लागत से एम्स की स्थापना, ऊना में पीजीआइ के उपग्रह केन्द्र की स्थापना को मंजूरी प्रदान की है।

केन्द्र सरकार के सहयोग से राज्य में स्वास्थ्य सेवाओं को नई दिशा मिली है। राज्य सरकार हर नागरिक को सस्ती दवाइयां उपलब्ध करवाने के प्रति कृतसंकल्प है। राज्य में जन औषधि केन्द्र खोले जा रहे हैं। शिमला स्थित आइजीएमसी में 24 घंटे खुला रहने वाला जन औषधि केन्द्र खोला गया है।

हिमाचल प्रदेश में सड़कें विकास की जीवन रेखायें मानी जाती हैं। सड़कों के माध्यम से राज्य की विकास की धारा बहती है। प्रदेश के दूरदराज तथा दुर्गम क्षेत्रों को मुख्य धारा से जोड़ने में सड़कों का महत्वपूर्ण योगदान है। केन्द्र सरकार ने 69 राष्ट्रीय उच्च मार्ग घोषित किये हैं।

वर्तमान सरकार ने इनके निर्माण को शीघ्र आरम्भ करवाने के लिये कार्य आरम्भ कर दिया है। इन मार्गों के बनने से राज्य में विकास के नये दौर का सूत्रपात होगा। सरकार ने इस अवधि में सिंचाई, वन, खाद्य पदार्थों की आमजन तक उपलब्धता, सामाजिक न्याय, सशक्त परिवहन सेवायें प्रदान करने को भी प्राथमिकता प्रदान की है।

प्रदेश में वर्तमान सरकार की सौ दिन की छोटी सी अवधि से ही स्पष्ट हो गया है कि राज्य आने वाले वक्त में विकास तथा उन्नति के नये पथ पर अग्रसर होगा। हिमाचल खुशहाल व एक समृद्ध राज्य की श्रेणी में होगा।

प्रदेश में समग्र विकास की दिशा में उठाये गये इन कदमों के सार्थक परिणाम देखने को मिल रहे हैं जिसका श्रेय मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर के कुशल नेतृत्व को जाता है और नई सरकार इसके लिये बधाई की पात्र है।

सरकार ने विकास के लाभ हर व्यक्ति तक पहुंचाने के लिये पहल की है। सामाजिक सुरक्षा को अधिमान देते हुये वृद्धावस्था पेंशन की पात्रता आयु को 80 वर्ष से घटाकर 70 वर्ष किया है। कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिये महंगाई भत्ता तथा अंतरिम राहत प्रदान की गई है। पूर्व सैनिकों को सिविल रोजगार में वेतन निर्धारण के लाभ को बहाल करने का निर्णय लिया। कृषि- बागबानी क्षेत्र को सशक्त बनाने के लिये जल संचयन, हर खेत तक जल की उपलब्धता सुनिश्चित बनाकर वर्ष 2022 तक किसानों की कृषि आय को दोगुना करने के लिये कदम आगे बढ़ाये हैं।

विकास

पारदर्शी प्रशासन एवं संवेदनशील सरकार

◆ विवेक शर्मा

प्रदेश सरकार ने राज्य में युवा सोच एवं ऊर्जावान कार्यशैली के साथ हिमाचल को प्रगति के शैल शिखरों तक ले जाने की एक नई कवायद शुरू की है। हर व्यवस्था में सुधार की गुंजाइश हमेशा रहती है तथा यह सुधार कुशल शासन प्रणाली और जन संवाद से ही संभव हो सकते हैं। संपूर्ण प्रणाली को पारदर्शी व तीव्र बनाकर ही कोई भी सरकार जनता का भरोसा हासिल कर सकती है। 'होशियार हैल्पलाइन'1090, बजट के लिए जनता से सुझाव, विधायक प्राथमिकताओं के लिए बैठकों का आयोजन जैसे सार्थक कदमों को सरकार द्वारा इस दिशा में किए गए प्रयासों के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार के सकारात्मक प्रयासों से ही हिमाचल का तीव्र एवं संतुलित विकास संभव है।

मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर ने सरकार की कार्यप्रणाली को पारदर्शी एवं स्वच्छ बनाने के लिए सर्वप्रथम सौ दिन के लक्ष्यों का निर्धारण करने के निर्देश दिए। हिमाचल सरकार ने प्रदेश के सभी जन प्रतिनिधियों और नागरिकों से जिस तरह सम्पर्क बनाने की पहल की है उससे सरकार की राजनैतिक इच्छाशक्ति एवं स्वच्छ शासन देने की प्रतिबद्धता उद्धृत होती है।

पारदर्शी प्रशासन का सपना साकार करने के लिए यह अनिवार्य होता है कि जन साधारण की समस्याओं को जल्द सुना जाए एवं उस पर त्वरित कार्यवाही कर जनता का भरोसा जीता जाए। इसी संबंध में सरकार ने मुख्यमंत्री कार्यालय द्वारा 'होशियार तथा गुड़िया हैल्पलाइन' की निगरानी का जिम्मा स्वयं लिया है।

इस कदम से लोगों का प्रशासन पर विश्वास पुनःस्थापित हुआ है। 'होशियार हैल्पलाइन' की मदद से वन विभाग ने पिछले दिनों पहली बड़ी कार्रवाई करते हुए पेड़ कटान की शिकायत पर 31,287 रुपये जुर्माना वसूला। 'होशियार हैल्पलाइन' नियंत्रण कक्ष से अवैध खनन एवं वन कटान की शिकायतें प्राप्त हो रही हैं और सरकार ने इन शिकायतों की जांच कर राज्य में वन व खनन माफिया के मामलों पर सख्त कार्यवाही आरम्भ कर दी है।

विकासात्मक कार्यों को गति प्रदान करने के लिए प्रदेश ने 'सुशासन सूचकांक परियोजना' को विकसित कर देश भर में एक मिसाल कायम की है। राज्य में अब इस परियोजना के अंतर्गत सभी उपायुक्तों से सात महत्त्वपूर्ण विषयों तथा 18 फोकस विषयों सहित 52 संकेतकों पर विस्तृत विवरण प्राप्त किया जाएगा।

सुशासन के विभिन्न आयामों में जनभागीदारी, सामाजिक न्याय, सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा जन शिकायत समाधान शामिल रहता है। इन सभी में जन शिकायत समाधान का विशेष स्थान है। शिकायत समाधान तभी संभव है जब सरकार एवं जनता के बीच संवाद स्थापित हो सके।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का मानना था कि भारत का सम्पूर्ण विकास तभी संभव है जब देश का आखिरी व्यक्ति भी इसके विकास में स्वयं को हिस्सेदार मानेगा तथा यह तभी संभव है जब शासन पारदर्शी एवं स्वच्छ हो जिससे कि सरकार उस आखिरी व्यक्ति की समस्या एवं उसके निवारण हेतु प्रयत्नशील रहेगी।



न्यूनतम सरकार अधिकतम शासन

सरकार ने प्रदेशवासियों को सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित सेवाएं प्रदान करने का निर्णय लिया है। इससे जहां कार्य प्रणाली में पारदर्शिता आएगी, वहीं लोगों को त्वरित जन सेवाएं मिलेंगी। हिमाचल गांव में बसता है तथा प्रदेश के दूरदराज क्षेत्रों में सरकार ने 'जन मंच' आयोजित करने का निर्णय लिया है जिसकी अध्यक्षता सभी मंत्री नियमित तौर पर करेंगे व सभी विभागों के अधिकारी भी वहां उपस्थित रहकर लोगों की शिकायतों का निवारण करेंगे। सरकार ने आगामी छः महीनों के भीतर सभी अधिनियमों/नियमों तथा योजनाओं के सरलीकरण का भी निर्णय लिया है। विभागों की कार्य प्रणाली को कागज रहित बनाने के लिए पांच विभागों में यह प्रणाली आरंभ होगी। खरीद–फरोख्त में पारदर्शिता लाने के लिए पांच लाख से अधिक की निविदाओं को ई–खरीद पोर्टल के माध्यम से किया जाएगा। एक ऐतिहासिक निर्णय लेते हुए मुख्यमंत्री कार्यालय में एक स्वतंत्र गुणवत्ता परीक्षण दस्ते का गठन होगा जो सभी निर्माण कार्यों का औचक निरीक्षण करेगा।

महिलाओं की सुरक्षा-सशक्तीकरण के लिए

शक्ति बटन

मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर के नेतृत्व में प्रदेश सरकार ने महिलाओं की सुरक्षा को सुनिश्चित बनाने की वचनबद्धता को निभाया है। महिला सुरक्षा के इन उपायों में ‘शक्ति बटन एप्प’, गुड़िया हैल्पलाइन की स्थापना प्रमुख है। इसके अतिरिक्त नशा माफिया, वन माफिया तथा खानन माफिया पर अंकुश लगाने के लिए होशियार सिंह हैल्पलाइन शुरू की है।



सरकार ने राज्य की बागडोर सम्भालते ही यह स्पष्ट कर दिया था कि सरकार यह हर हाल में सुनिश्चित बनाएगी कि महिलाएं शांतिप्रिय एवं भयरहित वातावरण में जीवनयापन कर सकें।

राज्य सरकार ने इस वर्ष गणतंत्र दिवस के पावन अवसर पर महिलाओं के विरुद्ध अपराध रोकने तथा सभी प्रकार के भ्रष्टाचार पर नकेल कसने के लिए तीन प्रमुख कदम उठाए हैं। इन कदमों के साथ नई सरकार ने सामाजिक सुरक्षा तथा कानून एवं व्यवस्था से जुड़े तीन वायदों को सत्ता सम्भालने के एक माह में पूर्ण कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

‘शक्ति बटन एप्प’ महिलाओं की सुरक्षा के लिए एक कारगर हथियार है। गौरतलब है कि आज हिमाचल के सभी नागरिकों के पास मोबाइल फोन उपलब्ध है। मोबाइल फोन पर प्रयुक्त होने वाली इस ‘एप्प’ को राष्ट्रीय सूचना केन्द्र (एनआईसी) ने पुलिस विभाग के सहयोग से तैयार किया है। यह एप्प हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषाओं में है तथा प्रयोग करने में आसान है। कोई भी महिला किसी भी आपात एवं संकट की स्थिति में एप्प पर उपलब्ध लाल बटन दबा सकती है। बटन के दबाने के बीस सेकंड के भीतर यह एप्प संकट अथवा हमले की स्थिति में महिला/लड़की का नाम, फोन नम्बर तथा स्थान की सूचना संबंधित जिला के पुलिस नियंत्रण कक्ष तथा केन्द्रीय नियंत्रण कक्ष को प्रेषित करेगी। जहां पीड़िता का ‘संकट का संदेश’ पुलिस स्टाफ प्राप्त करेगा और पीड़िता को तत्काल मदद के लिए संबंधित पुलिस स्टेशन और पुलिस पोस्ट को निर्देश जारी करेगा। इस एप्प की खासियत है कि छीना- झपटी के दौरान फोन के गिरने की स्थिति में संदेश, पुलिस तक पहुंचेगा। पुलिस के अलावा पंजीकृत दो या तीन करीबी रिश्तेदार / जानकार के फोन पर भी संकट की स्थिति की सूचना प्राप्त होगी।

इस एप्प की विशेषता है कि इसके लिए मोबाइल धारक को इंटरनेट की आवश्यकता नहीं होगी। शक्ति बटन एप्प को किसी भी एण्डरॉयड फोन पर गूगल प्ले स्टोर से डाऊनलोड किया जा सकता है। सरकार की इस पहल से महिलाओं की सुरक्षा

हैल्पलाइन सुविधा

गुड़िया हैल्पलाइन	1515
होशियार सिंह हैल्पलाइन	1090
महिला हैल्पलाइन	1091
वाट्सएप्प / पुलिस एसएमएस	94591-00100
एनईआरएस कॉल	112
द्वितीय महिला हैल्पलाइन	181

तथा महिलाओं के विरुद्ध अपराध रोकने में मदद मिलेगी।

महिलाओं की सुरक्षा के लिए 'गुड़िया हैल्पलाइन' के नाम से एक अन्य हैल्पलाइन आरम्भ की गई है। यह हैल्पलाइन आपातकाल में महिलाओं को 24 घण्टे तुरन्त सहायता प्रदान करेगी। इसके लिए टोल फ्री नंबर 1515 स्थापित किया गया है। पुलिस इस नम्बर पर गुहार लगाने वाली महिला को तुरन्त सहायता प्रदान करेगी। यह पीड़िता के मोबाइल पर छेड़खानी की घटना की ऑटोमैटिक वीडियो तथा ऑडियो रिकॉर्डिंग करेगी, जिसे बाद में अपराधी के खिलाफ बतौर साक्ष्य उपयोग किया जा सकता है।

सरकार ने सत्ता सम्भालने के एक माह के भीतर माफियाओं के विरुद्ध नकेल कसने के लिए भी कारगर कदम उठाये हैं। नशा, खनन तथा वन माफिया के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए होशियार सिंह हैल्पलाइन आरम्भ की गई। इसके लिए टोल फ्री नम्बर 1090 की स्थापना की गई है। इस योजना की निगरानी 24 घण्टे मुख्यमंत्री कार्यालय में की जा रही है। इस योजना के तहत सूचना देने वाले का नाम, पता, पहचान गुप्त रखने का प्रावधान किया गया है। इससे राज्य में नशीले पदार्थों की तस्करी, वन माफिया तथा अवैध खनन गतिविधियों पर अंकुश लगेगा। प्राकृतिक संपदा संरक्षित होगी वहीं युवा पीढ़ी को नशे से दूर रखने में कामयाबी मिलेगी।

सरकार की इन नवीन पहलों के अतिरिक्त आपात हैल्पलाइन नम्बर 94591-0010 की स्थापना भी की गई है। इस नम्बर पर भी महिला संकट की स्थिति में वाट्सएप्प संदेश अथवा एसएमएस के माध्यम से सम्पर्क कर सकती हैं।

सरकार की इन नवीन पहलों का मुख्य उद्देश्य है कि महिलाएं व हमारी बेटियां सुरक्षित एवं सम्मानजनक जीवनयापन करें, भय रहित वातावरण में अपने सपनों की उड़ान भर सकें और प्राकृतिक सम्पदा सुरक्षित रहे। नशे की बढ़ती प्रवृत्ति पर अंकुश लगे।



शक्ति बटन का बढ़ता दायरा

महिलाओं की सुरक्षा को सुनिश्चित बनाने के लिए सरकार ने सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से महिला फोन धारक के फोन पर 'एप' के माध्यम से शक्ति बटन प्रणाली आरम्भ की है। इस 'शक्ति बटन एप्प' को लोकप्रिय बनाने के लिए सरकार ने प्रिंट, इलैक्ट्रॉनिक तथा होर्डिंग के माध्यम से इसका प्रचार-प्रसार किया है। पुलिस विभाग भी इसको आम जन तक पहुंचाने में अहम भूमिका निभा रहा है। पुलिस विभाग ने इसका दायरा बढ़ाते हुए बैंक कर्मचारियों, एटीएम सुरक्षा कर्मचारियों, बैंक मैनेजरों, कैशियरों, नकदी ले जाने वाले सुरक्षा कर्मचारियों, टोल बैरियर पर तैनात स्टाफ के लिए इस सुरक्षा बटन को अपनाने की हिदायत दी है। इससे किसी भी अप्रिय घटना की जानकारी पुलिस को तुरन्त मिल पाएगी और वारदात करने वालों को शीघ्र पकड़ा जा सकेगा।

सरकार की इन नवीन पहलों के अतिरिक्त आपात हैल्पलाइन नम्बर 94591-0010 की स्थापना भी की गई है। इस नम्बर पर भी महिला संकट की स्थिति में वाट्सएप्प संदेश अथवा एसएमएस के माध्यम से सम्पर्क कर सकती हैं। सरकार की इन नवीन पहलों का मुख्य उद्देश्य है कि महिलाएं व हमारी बेटियां सुरक्षित एवं सम्मानजनक जीवनयापन करें, भय रहित वातावरण में अपने सपनों की उड़ान भर सकें और प्राकृतिक सम्पदा सुरक्षित रहे। नशे की बढ़ती प्रवृत्ति पर अंकुश लगे।



पर्यटन की नई राहें नई मंजिलें

योग राज शर्मा

प्रकृति ने हिमाचल प्रदेश को विभिन्न रंग- रूपों से संवारा है। प्रदेश में कल-कल करती नदियां, चांदी की चादर सी ओढ़े बर्फ के गगनचुंबी पहाड़ और प्रदेश के प्रसिद्ध शक्तिपीठ बरबस ही पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इन सबके साथ ही प्रदेश में मौजूद साहसिक खेल गतिविधियों के लिए अनुकूल माहौल, देश-विदेश के सैलानियों को विशेष तौर पर आकर्षित कर रहा है। सर्दियों के मौसम में जहां पर्यटकों के लिए स्कीइंग, स्केटिंग, स्नोबोर्डिंग जैसी गतिविधियां आकर्षण का केन्द्र बनी रहती हैं वहीं गर्मियों के मौसम में ट्रैकिंग, रॉक क्लाइमिंग व पैरा ग्लाइडिंग जैसे आयोजन भी यहां पर नियमित तौर पर आयोजित किए जा रहे हैं। सैलानियों के लिए यहां पर एक से बढ़कर एक आकर्षण मौजूद हैं। इन आकर्षणों के कारण ही यहां हर वर्ष करोड़ों की तादाद में देश एवं विदेश से सैलानी भ्रमण पर आते हैं। वर्ष 2016-17 के दौरान प्रदेश में 2 करोड़ से अधिक सैलानियों ने प्रदेश की हसीन वादियों के दीदार किए। मुख्यमंत्री श्री जयराम ठाकुर के नेतृत्व मे वर्तमान भाजपा सरकार भी खेल और पर्यटन संभावनाओं का समुचित दोहन कर प्रदेश को आर्थिक तौर पर सशक्त बनाने के प्रति प्रयासरत है। इन्हीं प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके विकास के नए मॉडल तैयार किए जा रहे हैं ताकि प्रदेश वासियों की आर्थिकी को पंख लग सकें। साथ ही यह प्रदेश दुनिया भर के सैलानियों का पसंदीदा स्थल बन सके। सरकार की नीति उच्च श्रेणी पर्यटकों को बढ़ाने की है ताकि इस क्षेत्र को एक नई दिशा दी जा सके। सरकार ने धार्मिक पर्यटन गतिविधियों को भी बड़े पैमाने पर बढ़ावा देने का निर्णय लिया है। प्रदेशवासियों ने आधुनिकता के इस दौर में भी अपनी सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण बनाए रखा है। मेहमान- नवाजी, भोलेपन व सादगी में भी यहां के लोगों का कोई मुकाबला नहीं है। वर्ष 2018-19 के वार्षिक बजट में भी सरकार ने पर्यटन गतिविधियों के विस्तार के लिए नीति

बनाने का निर्णय लिया है और नई राहें, नई मंजिलें, नाम से एक योजना चलाने का ऐलान किया है ताकि प्रदेश के अनछुए क्षेत्रों तक सैलानी जा सकें। इस योजना का मकसद प्रदेश की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता से रूबरू करवाना है। इस क्षेत्र के लिए सरकार ने 50 करोड़ रुपये का बजट प्रावधान किया है। युवाओं को रोजगार के अधिक से अधिक अवसर उपलब्ध हों, इसके लिए यहां पर मौजूद पर्यटन एवं जल- विद्युत क्षमताओं का समुचित दोहन कर ठोस पहल की जा रही है।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा शुरू की गई 'उड़ान' योजना यानि उड़े देश का आम नागरिक में हिमाचल प्रदेश को शामिल कर प्रदेश में पर्यटन गतिविधियों को विस्तार देने में अहम भूमिका निभा रही है। साथ ही सस्ती हैलीकाप्टर सेवा की शुरुआत की गई है। इस सेवा से प्रदेश के आठ शहरों को जोड़ा गया है। प्रदेश के प्रसिद्ध पर्यटक स्थलों पर सैलानियों को आधुनिक सुविधाएं मुहैया करवाने के साथ-साथ उन दुर्गम स्थानों को भी विकसित किया जा रहा है जहां पर पर्यटन की संभावनाएं मौजूद हैं।

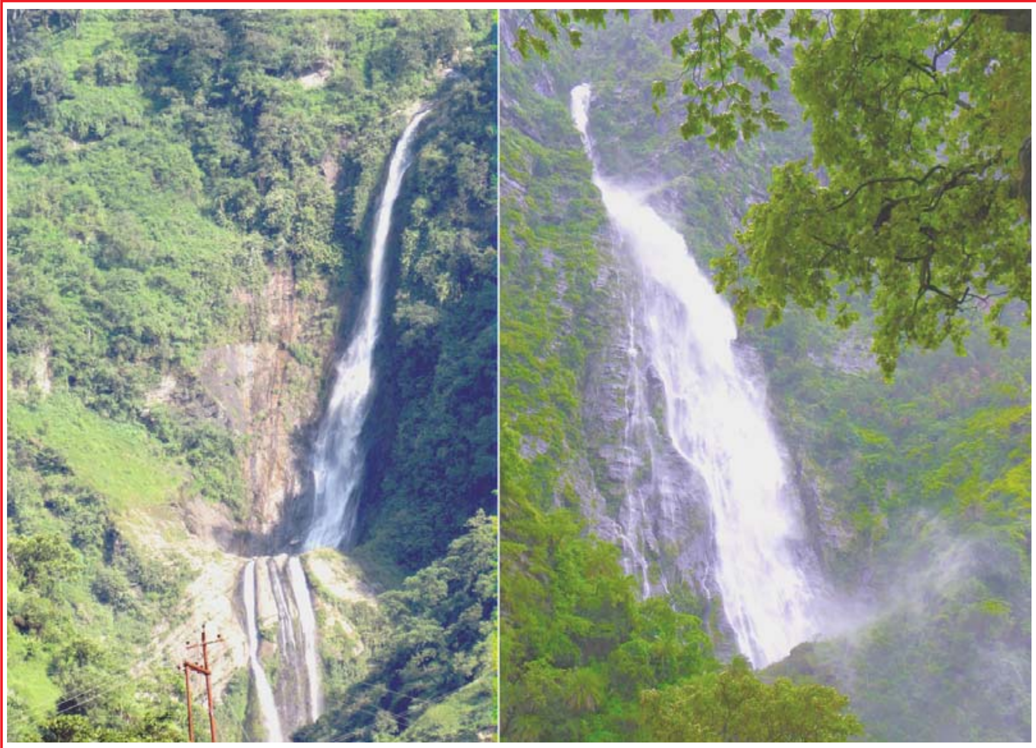
पर्यटन क्षमताओं का सही दोहन करने के लिए प्रदेश सरकार रेल व हवाई यातायात को सुदृढ़ कर रही है। रोहतांग सुरंग के बनने से जहां शीत मरुस्थल के नाम से प्रसिद्ध लाहौल-स्पीति जिले तक पर्यटक व स्थानीय लोगों को आवाजाही की सुविधा मिलेगी वहीं जोगिन्द्रनगर-पठानकोट रेल लाइन का मनाली से लेह तक विस्तार करने की योजना से भी प्रदेश के पर्यटन उद्योग को पंख लगने की उम्मीद है।

सरकार ने राज्य के सभी मानव निर्मित जलाशयों में साहसिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए योजना बनाई है। सरकार युवाओं को पर्यटन क्षेत्र में रोजगार देने के लिए भी कृतसंकल्प है जिसके लिए होमस्टे, पाक कला, संचार जैसी गतिविधियों में प्रशिक्षण दिया जाएगा।



नए प्रयास

- अनछुए क्षेत्रों में पर्यटन विकास के लिए 50 करोड़
- हेली-टैक्सी सेवा होगी आरंभ। अतिरिक्त हैलीपैडों का होगा निर्माण।
- उड़ान योजना से राज्य लाभान्वित
- स्वदेश दर्शन कार्यक्रम के तहत धार्मिक सर्किट के विकास के लिए 100 करोड़
- पौंग, कोल, भाखड़ा जलाशयों में साहसिक पर्यटन गतिविधियां होंगी आरंभ
- आनंदपुर साहिब से नैनादेवी, धर्मकोट से त्रियुंड, जंजैहली से शिकारी देवी तक रज्जू मार्ग स्थापित होंगे।



वन संरक्षण के प्रति गंभीर प्रयास

होशियार सिंह हैल्पलाइन का मिला सुरक्षा चक्र



हिमाचल प्रदेश की शान व पहचान बर्फ से ढकी पहाड़ियों, निरन्तर बहती नदियों, विभिन्न प्रजातियों के वृक्षों से आच्छादित ढलानों तथा स्वच्छ वातावरण से है। प्रकृति ने राज्य को अपार सुन्दरता से नवाजा है। हर कोस पर प्रकृति का नजारा बदल जाता है।

उत्तर भारत के पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाये रखने, नदियों में जल प्रवाह को यथावत रखने तथा राज्य के पर्यावरण को स्वच्छ एवं सुन्दर रखने में वन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। वर्तमान सरकार ने सत्ता सम्भालते ही राज्य की पहचान वन सम्पदा के संरक्षण, इसे बढ़ाने तथा वन व खनन माफिया पर अंकुश लगाने के लिए प्रभावी प्रयास किये हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ लेकर मुख्यमंत्री कार्यालय में होशियार सिंह हैल्पलाइन की स्थापना की गई है। इस पर कोई भी व्यक्ति अवैध खनन, अवैध कटान तथा वन उत्पादों की तस्करी की जानकारी दे सकता है।

सरकार ने इको पर्यटन गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए इस अवधि में सफल प्रयास किये हैं। नाचन तथा कुल्लू के लिए 6 करोड़ की इको संरक्षण योजना स्वीकृत की गई है। सिराज विधानसभा क्षेत्र में वन विश्राम गृहों की मरम्मत के लिए एक करोड़ रुपये जारी किये गये है। वन रक्षकों को वन सम्पदा की रक्षा के लिए हथियार प्रदान करने पर भी विचार किया जा रहा है। स्वच्छ पर्यावरण के लिए सभी जिलों में इलैक्ट्रॉनिक वाहन चलाने की योजना आरम्भ की है। प्रथम चरण में शिमला में 11 इलैक्ट्रिक वाहन चलाये गये हैं। हिमाचल प्रदेश 55673 वर्ग भू-भाग में फैला है जो देश के भौगोलिक क्षेत्र का 1.69 प्रतिशत है। राज्य के तीन पृथक क्षेत्र है। शिवालिक क्षेत्र 1500

मीटर तक, 1500 मीटर से तीन हजार मीटर के बीच मध्य हिमालयन क्षेत्र तथा तीन हजार मीटर से ऊपर का हिमांदरी क्षेत्र आता है। राज्य का एक तिहाई क्षेत्र स्थायी तौर पर हिमाच्छादित, ग्लेशियर तथा शीत मरुस्थल के तहत आता है। इस एक तिहाई क्षेत्र में विकट भौगोलिक परिस्थितियों के कारण वनस्पति, पेड़-पौधे उग नहीं पाते। राज्य में सालाना 1800 मिलीमीटर वर्षा होती है। राज्य का मौसम सब-जीरो से लेकर 40 डिग्री सेल्सियस के बीच रहता है। राज्य के बारह जिलों में से दो जिले जनजातीय तथा चम्बा जिले का पांगी तथा भरमौर क्षेत्र जनजातीय क्षेत्र है। वर्ष 2011 की जनसंख्या के अनुसार राज्य की जनसंख्या 6.86 मिलियन है जो देश की जनसंख्या का 0.57 प्रतिशत है। राज्य में 89.97 प्रतिशत ग्रामीण तथा 10.3 प्रतिशत शहरी जनसंख्या है। राज्य में जनगणना घनत्व 123 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। राज्य में वर्ष 2012 में हुई पशु गणना के अनुसार पशुओं की संख्या 4.84 मिलियन आंकी गई है। उपग्रह से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार राज्य में वनों के तहत क्षेत्र 15,100 वर्ग किलोमीटर है जोकि राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 27.12 प्रतिशत आंका गया है। वनों के वर्गीकरण के तहत राज्य में 3,110 वर्ग किलोमीटर सघन वन क्षेत्र, 6,705 वर्ग किलोमीटर मध्यम सघन वन क्षेत्र तथा 5,285 वर्ग किलोमीटर खुले वन के तहत आता है। वन सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार राज्य के वनों में कार्बन सोखने की क्षमता 175.782 मिलियन टन (644.534 मिलियन टन कार्बन डाइऑक्साइड के समकक्ष) है जोकि देश की कुल वन कार्बन का 2.48 प्रतिशत है। वन क्षेत्र में स्थित जलाशयों में भी 53 वर्ग किलोमीटर की बढ़ोतरी हुई है। हाल ही में वर्ष 2017 की भारतीय वन रिपोर्ट में वर्ष 2015 के मुकाबले वन क्षेत्र में एक प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई है।

राज्य में वन क्षेत्र में हुई वृद्धि से पर्यावरण को हरा-भरा रखने में मदद मिलेगी। यह आने वाली पीढ़ियों के लिए एक शुभ संकेत है।

वन विभाग की प्राथमिकताएं

- हरित क्षेत्र को बढ़ाने के लिए सघन पौधरोपण पर बल
- वनों की आग की रोकथाम के लिए टोल फ्री नं. 18188097
- प्रदेश के दस जिलों की 38 तहसीलों में वानर 'पीड़क जन्तु' घोषित
- स्वच्छ पर्यावरण के लिए सभी जिलों में चलेंगे इलैक्ट्रॉनिक वाहन
- नाचन व कुल्लू के लिए 6 करोड़ की इको संरक्षण परियोजनाएं
- वन रक्षकों को हथियार देना प्रस्तावित
- 25 नए इको पर्यटक स्थल आवंटित होंगे
- चीड़ पत्तियों पर आधारित उद्योग स्थापित करने पर 50 प्रतिशत निवेश उपदान
- वन समृद्धि जन समृद्धि नई योजना लागू
- सामुदायिक वन संवर्धन योजना व विद्यार्थी वन मित्र योजना
- वन संरक्षण गतिविधियों के लिए 651 करोड़ रुपये का बजट प्रावधान

पर्यावरण संरक्षण पहली प्राथमिकता

राज्य में पर्यावरण के प्रबंधन के लिए भी सरकार कृतसंकल्प है। सरकार ने प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की एक नई प्रयोगशाला सुंदरनगर में स्थापित करने का निर्णय लिया है। स्वास्थ्य विभाग को बायो मेडिकल कचरे के लिए वित्तीय सहायता दी जाएगी। जनता को प्रदूषण स्तर के बारे जागरूक करने के लिए 12 इलैक्ट्रॉनिक पट्ट लगेंगे। शहरों में ठोस कचरा प्रबंधन के लिए 10 शहरों के स्थानीय निकायों को तकनीकी उपाय सुझाए जाएंगे। उद्योगों का पर्यावरण ऑडिट होगा। ब्यास नदी के क्षेत्र में पड़ने वाली 1200 पंचायतों के 7000 गांवों का पर्यावरण आकलन होगा। आर्यभट्ट जियो इन्फॉर्मेटिक केंद्र के माध्यम से लोक निर्माण, स्वास्थ्य शिक्षा, ग्रामीण विकास तथा पर्यटन विभागों की ऑनलाइन प्रणाली विकसित होगी। चंबा, कुल्लू, मंडी, शिमला तथा सिरमौर में एक-एक विज्ञान ग्राम स्थापित होंगे। छात्रों में विज्ञान के प्रति अभिरुचि के लिए 'युवा विज्ञान पुरस्कार योजना' आरंभ होगी।

शिक्षा में गुणात्मक सुधार

नर्बदा कंवर

राष्ट्र के उत्थान में शिक्षा की अहम भूमिका को भलीभांति समझते हुए प्रदेश सरकार शिक्षा क्षेत्र में ढांचागत विकास पर बल दे रही है। इसके साथ ही स्कूलों में आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध करवाने पर भी जोर दिया जा रहा है। सभी विद्यार्थियों को गुणात्मक शिक्षा प्रदान के साथ उनके सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया जा रहा है।

वर्तमान सरकार का यह प्रयास है कि शिक्षा क्षेत्र में प्रदेश को देशभर में शीर्ष स्थान पर पहुंचाया जाए। प्रदेश में गुणवत्तापूर्ण व बेहतर शिक्षा प्रदान करने के लिए गुणवत्ता सुधार शिक्षा कार्यक्रम 'समर्थ' शुरू किया गया है जिसके अन्तर्गत ऑनलाइन अध्यापक प्रशिक्षण संसाधन व टीचर्ज ऐप की शुरुआत की गई है। इस ऐप का उद्देश्य अध्यापकों को किसी भी समय, कहीं भी शून्य लागत पर अध्यापन कार्य सिखाना और अद्यतन बनाना है। इस ऐप के माध्यम से शिक्षक देश-विदेश में शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे सुधारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। ऐप और इसकी सामग्री शिक्षकों को निःशुल्क दी जाएगी। सरकार का लक्ष्य इस ऐप के तहत वर्ष 2020 तक 1000 घण्टे की प्रशिक्षण सामग्री उपलब्ध करवाना है।

शिक्षा का सुदृढ़ होता आधार

- शिक्षा क्षेत्र के लिए 7044 करोड़ का बजट प्रावधान
- मंडी में 55 करोड़ की लागत से स्थापित होगा 'क्लस्टर विश्वविद्यालय'
- निजी स्कूलों को आयोग के दायरे में लाना प्रस्तावित
- बच्चों की बेहतर शिक्षा के लिए समर्थ के तहत ऑनलाइन अध्यापन प्रशिक्षण संसाधन टीचर ऐप की शुरुआत
- वर्ष 2020 तक 1000 घंटे की प्रशिक्षण सामग्री होगी उपलब्ध
- थाची महाविद्यालय के लिए पांच करोड़
- राज्य में सौ विद्यालयों में आधार पंजीकरण सुविधा
- शिक्षकों के ऑनलाइन तबादला के लिए बनेगी नीति
- हायर एजुकेशन काउंसिल के गठन का बिल होगा तैयार
- प्राथमिक स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाने का प्रयास
- उपस्थिति सुनिश्चित बनाने के लिए लगेगी बायोमीट्रिक मशीनें
- मुख्यमंत्री आदर्श विद्या केंद्र के तहत खुलेंगे 10 आदर्श विद्यालय
- जरूरतमंद छात्रों को पुस्तकों की उपलब्धता के लिए स्कूलों में आयोजित होंगे 'पुस्तक दान दिवस'
- पहली, तीसरी, छठी तथा नौवीं कक्षा के छात्रों को मिलेंगे स्कूल बैग
- मिड-डे-मील योजना के अंतर्गत पांच करोड़ की राशि स्वीकृत

कुछ क्षेत्रों में ऐसे स्कूल खोले गए हैं जहां बच्चों की संख्या भी कम है और आधारभूत सुविधाएं भी नाममात्र की हैं जिससे गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने में बाधा उत्पन्न हो रही है। प्रदेश सरकार ने इस समस्या के निदान के लिए इन संस्थानों की समीक्षा करने का निर्णय लिया है। स्कूलों में घटती नामांकन दर में सुधार लाने की दिशा में सरकार प्रयासरत है। हाल ही में इस बाबत राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एससीईआरटी) द्वारा सर्वेक्षण करवाया गया। इस प्रकार का सर्वेक्षण प्रदेश में पहली बार करवाया गया है। इस सर्वेक्षण के आधार पर सरकार गहन विचार कर रही है कि किस तरह से स्कूलों में घटती नामांकन दर को रोका जा सके। इस दिशा में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए सभी चुने गए प्रतिनिधियों के साथ-साथ प्रदेश के शिक्षकों से भी सुझाव लिए जा रहे हैं। सरकार द्वारा राज्य में 100 ऐसे विद्यालय चुने गए हैं जहां पर आधार पंजीकरण व अपडेट सुविधा उपलब्ध करवाई जा रही है। इस योजना से पांच से पंद्रह वर्ष तक की आयु के बच्चों का आधार बायोमीट्रिक तरीके से अपडेट किया जाएगा। पंजीकरण

के लिए इन विद्यालयों में 100 उपकरण दिए गए हैं। विद्यालयों में इस तरह की सुविधा मिलने से प्रदेश के छात्रों को आधार की सेवाएं लेने में आसानी होगी। इसमें पंजीकरण, नाम, पता और मोबाइल नंबर भी अपडेट किया जाएगा। इसके लिए सूचना प्रौद्योगिकी विभाग की ओर से स्टेट डाटा सेंटर की स्थापना की गई है।

निजी स्कूलों की मनमानी रोकने के लिए वर्ष 2010 में हि. प्र. निजी शैक्षणिक संस्थान (नियामक आयोग) अधिनियम 2010 गठित किया गया था। सरकार द्वारा निजी स्कूलों की इस मनमानी को रोकने के लिए इसे प्रत्येक निजी स्कूल में कड़ाई से लागू कर आयोग के दायरे में लाया जायेगा। सरकार उच्च शिक्षा परिषद् (हायर एजुकेशन कार्उंसिल) गठन के लिए भी बिल तैयार कर रही है। शिक्षकों की उपस्थिति को सुनिश्चित बनाने के लिए प्रत्येक शिक्षण संस्थानों में बायोमीट्रिक मशीनें लगाई जानी अनिवार्य की जा रही है।

सरकार शिक्षण संस्थानों में आधारभूत अधोसंरचना विकसित करने के लिए वचनबद्ध है और इस दिशा में सरकार द्वारा अनेक कदम उठाए जा रहे हैं। सरकार ने पहल करते हुए मंडी जिले में 55 करोड़ की लागत से क्लस्टर विश्वविद्यालय की स्थापना करने का कार्य आरंभ किया है। रूसा के तहत वल्लभ राजकीय महा विद्यालय मण्डी के भवन निर्माण के लिए 16 करोड़ 18 लाख रुपये तथा मण्डी जिला के गोहर के राजकीय महाविद्यालय बासा के भवन निर्माण के लिए लगभग 11 करोड़ रुपये की प्रशासनिक स्वीकृतियां प्रदान की गई हैं।

इसके अतिरिक्त सिराज विधानसभा क्षेत्र के थाची में खोले गए महाविद्यालय के भवन निर्माण के लिए पांच करोड़ स्वीकृत किए गए हैं। शिमला जिले की 19 वरिष्ठ माध्यमिक पाठशालाओं को बेहतर अधो- सरंचनात्मक सुविधाएं प्रदान करने के लिए भी सरकार ने लगभग आठ करोड़ रुपये स्वीकृत किए हैं। मिड-डे-मील योजना के अंतर्गत पांच करोड़ की राशि स्वीकृत की गई है। बार-बार शिक्षकों के तबादलों से बच्चों की प्रभावित हो रही पढ़ाई को ध्यान में रखते हुए सरकार शीघ्र ही शिक्षक स्थानांतरण नीति लागू करने जा रही है। विकास एवं समाज निर्माण में शिक्षा क्षेत्र की महत्ता को देखते हुए राज्य सरकार ने वर्ष 2018-19 के बजट में 7044 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है।

सरकार शिक्षण संस्थानों में आधारभूत अधोसंरचना विकसित करने के लिए वचनबद्ध है और इस दिशा में सरकार द्वारा अनेक कदम उठाए जा रहे हैं। सरकार ने पहल करते हुए मंडी जिले में 55 करोड़ की लागत से क्लस्टर विश्वविद्यालय की स्थापना करने का कार्य आरंभ किया है। रूसा के तहत वल्लभ राजकीय महा विद्यालय मण्डी के भवन निर्माण के लिए 16 करोड़ 18 लाख रुपये तथा मण्डी जिला के गोहर के राजकीय महाविद्यालय बासा के भवन निर्माण के लिए लगभग 11 करोड़ रुपये की प्रशासनिक स्वीकृतियां प्रदान की गई हैं। इसके अतिरिक्त सिराज विधानसभा क्षेत्र के थाची में खोले गए महाविद्यालय के भवन निर्माण के लिए पांच करोड़ स्वीकृत किए गए हैं। शिमला जिले की 19 वरिष्ठ माध्यमिक पाठशालाओं को बेहतर अधो- सरंचनात्मक सुविधाएं प्रदान करने के लिए भी सरकार ने लगभग आठ करोड़ रुपये स्वीकृत किए हैं। मिड-डे-मील योजना के अंतर्गत पांच करोड़ की राशि स्वीकृत की गई है। बार-बार शिक्षकों के तबादलों से बच्चों की प्रभावित हो रही पढ़ाई को ध्यान में रखते हुए सरकार शीघ्र ही शिक्षक स्थानांतरण नीति लागू करने जा रही है। विकास एवं समाज निर्माण में शिक्षा क्षेत्र की महत्ता को देखते हुए राज्य सरकार ने वर्ष 2018-19 के बजट में 7044 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है।



श्रेष्ठ स्वास्थ्य सेवाओं का सुदृढ़ नेटवर्क

किसी भी सरकार के विकास कार्यों को आंकने के लिए हालांकि 100 दिन का समय काफी नहीं होता लेकिन बावजूद इसके वर्तमान सरकार ने इस दौरान अनेक ऐसे महत्वपूर्ण फैसले लिए हैं जो सरकार की दूरदर्शिता को दर्शाते हैं।

सरकार ने द्वारा प्रदेश के लोगों को बेहतर एवं विशेषज्ञ स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध करवाना अपनी विशेष प्राथमिकताओं में शामिल किया है ताकि दूरदराज और ग्रामीण क्षेत्रों में गुणात्मक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार कर उन्हें और अधिक सुदृढ़ किया जा सके।

प्रदेश में स्वास्थ्य सेवाओं को और सुदृढ़ कर हिमाचल प्रदेश सार्वभौमिक स्वास्थ्य संरक्षण योजना को प्रदेश के समस्तजनों तक पहुंचाया जा रहा है। इस योजना के तहत ऐसे वर्गों को लाया जाएगा जो राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अन्तर्गत नहीं आते। 80 वर्ष से अधिक आयु के वरिष्ठ नागरिकों, एकल नारी, आंगनबाड़ी कार्यकर्ता/ सहायक, मिडडे मील कार्यकर्ताओं, अंशकालिक कामगारों, दिहाड़ीदारों, अनुबन्ध कर्मियों तथा 20 प्रतिशत से अधिक अक्षमता वाले व्यक्तियों को योजना के तहत लाया जायेगा तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अनुरूप ही निःशुल्क उपचार किया जायेगा। प्रदेश के लगभग 5.36 लाख परिवार ऐसे हैं जो किसी भी स्वास्थ्य बीमा संरक्षण एवं चिकित्सा प्रतिपूर्ति के अंतर्गत नहीं आते। इसी को मद्देनजर रखते हुए प्रदेश में यूनीवर्सल हैल्थ प्रोटेक्शन योजना आरंभ की जा रही है जिसके तहत लाभार्थी परिवार को एक साल के लिए एक रुपया प्रतिदिन यानि 365 रुपये जमा करवाने होंगे। योजना के तहत 3500 परिवारों को पंजीकृत किया गया है और भविष्य में पांच लाख परिवारों को योजना के तहत लाने का लक्ष्य रखा गया है।

प्रदेश के लिए केन्द्र सरकार की मदद से अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान चिकित्सा संस्थान (एम्स) जैसे प्रतिष्ठित संस्थान का खुलना किसी सपने से कम नहीं है। जिला बिलासपुर के कोठीपुरा में 205 एकड़ भूमि पर 1351 करोड़ की लागत से बनने वाला यह संस्थान राज्य में स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र में एक मील

पत्थर साबित होगा। 750 बैड की क्षमता वाले इस अस्पताल में 300 बैड सुपर स्पेशियलिटी, 320 बैड जन स्पेशियलिटी, 30 बैड आइसीयू तथा 50 बैड एमरजेंसी ट्रामा में उपलब्ध होंगे। हिमाचल में स्थापित होने वाला यह एम्स उत्तर भारत में अपनी तरह का सबसे बड़ा स्वास्थ्य संस्थान होगा जिसके निर्माण के लिए अंतर्राष्ट्रीय निविदाएं आमंत्रित की जायेंगी। प्रधान मंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना के तहत देशभर में छः नये एम्स खोले जाने हैं जिसमें हिमाचल को एम्स के रूप में मिली यह सौगात गौरवान्वित करने वाली है। संस्थान में एमबीबीएस की सौ सीटों के साथ 60 सीटें बीएससी नर्सिंग की भी होगी। इसके अलावा केन्द्र सरकार द्वारा ऊना में पी.जी.आई का उपग्रह केन्द्र खोलने को स्वीकृति प्रदान की गई है जिससे ऊना तथा इसके साथ लगते जिलों में लोगों को घर-द्वार के समीप विशेषज्ञ स्वास्थ्य सेवाएं एवं परामर्श सेवाएं उपलब्ध होंगी।

राज्य में एम्स के साथ-साथ नाहन, चम्बा, मण्डी और हमीरपुर में मेडिकल कॉलेज आरम्भ होने से प्रदेश मेडिकल हब के रूप में उभर रहा है। तीन कॉलेजों में तो पहले ही कक्षाएं आरंभ हो चुकी हैं जबकि हमीरपुर में भी इस सत्र से मेडिकल कॉलेज शुरू हो जाएगा। इन कॉलेजों में संस्था द्वारा स्टाफ तथा अन्य आवश्यक मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध करवाने के निर्देश दिए गए हैं। हमीरपुर कॉलेज में इस वर्ष शैक्षणिक सत्र आरंभ करने लिए 53 नियुक्तियों को सरकार ने स्वीकृत किया है।

प्रदेश में सुदृढ़ होती चिकित्सा शिक्षा का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि राज्य में निजी व सरकारी क्षेत्र में स्थापित मेडिकल कॉलेजों की संख्या बढ़कर 6 हो गई है जबकि बिलासपुर में एम्स व हमीरपुर में मेडिकल शुरू हो जाने से राज्य में मेडिकल कॉलेजों की संख्या और बढ़कर आठ हो जाएगी।

प्रदेश में उपलब्ध बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं और मेडिकल शिक्षा के सुदृढ़ नेटवर्क से यह प्रदेश देशभर में मेडिकल हब बनकर उभर रहा है।



स्वास्थ्य देखभाल को तरजीह

- स्वास्थ्य व चिकित्सा शिक्षा के लिए 2302 करोड़ का बजट प्रावधान
- 'क्षय रोग मुक्त हिमाचल' अभियान का शुभारंभ। वर्ष 2025 तक क्षय रोग मुक्त होगा हिमाचल
- ऐलोपैथिक डॉक्टरों के 200 पद स्वीकृत
- आयुर्वेद के 200 पदों को भरने की मंजूरी
- चिकित्सकों के भरे गये 179 पद
- आई.जी.एम.सी. में 24 घण्टे जैनरिक दवाइयां उपलब्ध करवाने का निर्णय
- ऊना में पीजीआई का उपग्रह केन्द्र खुलेगा
- बिलासपुर में एम्स का सपना हुआ साकार। 1351 करोड़ की परियोजना को मिली मंजूरी।
- हमीरपुर मेडिकल कॉलेज इस वर्ष से होगा आरम्भ
- राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत 539 करोड़ की परियोजना प्रस्तावित
- आनी अस्पताल को स्तरोन्नत कर 100 बिस्तरों का करने की घोषणा
- 19 लाख बच्चों को कृमि नाशक दवा।
- राष्ट्रीय स्वास्थ्य संरक्षण योजना के तहत 5 लाख लोगों को मिलेगा स्वास्थ्य सुरक्षा कवच
- मुख्यमंत्री निरोग योजना आरंभ। निःशुल्क दवा नीति का बढ़ेगा दायरा
- मुख्यमंत्री चिकित्सा सहायता कोष के लिए 10 करोड़

कृषि व बागबानी आय दोगुना करने का लक्ष्य

रीना नेगी



शून्य लागत खेती को बढ़ावा

पहाड़ों के स्वच्छ वातावरण में उत्पादित फलों, सब्जियों का स्वाद सभी लेना चाहते हैं। राज्य में बागबानी का इतिहास लगभग 100 वर्ष पुराना है। इससे पूर्व यहां पर पारम्परिक तौर पर उगने वाले फल-पौधे ही थे जिसका उपयोग गांव तक ही सीमित था। बागबानी को व्यावसायिक तौर पर बढ़ावा हिमाचल प्रदेश के गठन के उपरान्त मिला। हिमाचल प्रदेश बागबानी तथा वानिकी विश्वविद्यालय की स्थापना उपरान्त इसे और अधिक मजबूती मिली। राज्य में कृषि क्षेत्र को भी नई दिशा प्रदान कर कृषि उत्पादन को भी बढ़ावा देने की पहल की गई है। राज्य की वर्तमान सरकार के ठोस प्रयासों तथा मेहनतकश किसानों के सहयोग से कृषि क्षेत्र को नई राह मिलेगी।

हिमाचल प्रदेश सरकार ने राज्य की कृषि आर्थिकी में बदलाव लाने और ग्रामीणों की आर्थिकी को मजबूती प्रदान करने के लिए दो वृहद परियोजनाएं तैयार की हैं। एक परियोजना के तहत जल संचयन के माध्यम से कृषकों की आय को दोगुना करना तथा दूसरा प्रदेश के समशीतोष्ण क्षेत्र में (मध्य पहाड़ी क्षेत्र) में बागबानी को बढ़ावा देना।

वर्तमान में राज्य में समशीतोष्ण फल खेती के तहत 81394

हेक्टेयर क्षेत्र आता है जो कि बागबानी के तहत कुल क्षेत्र का 34 प्रतिशत है। इसी के दृष्टिगत इन क्षेत्रों में किसानों को बागबानी की ओर मोड़ने के लिए प्रेरित किया जाएगा। इस परियोजना के प्रथम चरण के लिए 800 करोड़ की योजना, भारत सरकार के माध्यम से वित्त पोषण के लिए एशियन विकास बैंक को प्रेषित की जाएगी। इस परियोजना के तहत विदेशी तथा देश में प्रसिद्ध पौध सामग्री उत्पादकों से प्राप्त की जाएगी। उनको राज्य सरकार द्वारा नर्सरियों में पैदा कर बागबानों को वितरित किया जाएगा।

राज्य में 13 अनुसंधान केन्द्रों तथा आठ विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से किसानों तथा बागबानों को कृषि तथा बागबानी की उन्नत तथा नवीनतम जानकारियां हस्तांतरित की जा रही हैं। सरकार ने सभी विज्ञान केन्द्रों के साथ अपनी-अपनी परिधि के किसानों व बागबानों को वाट्सएप्प के साथ जोड़ कर एक नवीन पहल की है। इससे किसानों की समस्याओं का शीघ्र निदान होगा वहीं उन्हें ऋतुवार फसलों से संबंधित जानकारियां भी मिलेंगी। बागबानी क्षेत्र के समग्र विकास तथा प्रति हेक्टेयर फल उत्पादन में बढ़ोतरी के लिए राज्य में विश्व बैंक की सहायता से 1134 करोड़ रुपये की परियोजना कार्यान्वित की जा रही है। इस योजना के कार्यान्वयन में न्यूजीलैंड का तकनीकी सहयोग लिया जा रहा है। वर्ष 2018-19 में इस योजना पर 100 करोड़ रुपये व्यय होंगे तथा 3.70 लाख सेब के रूट स्टॉक का आयात होगा। शिलारू तथा पालमपुर में दो श्रेष्ठ केन्द्र खुलेंगे। सरकार ने किसानों व बागबानों की आय को दोगुना करने के लिए अनेक नई योजनाएं आरम्भ की हैं। खेतों तक पानी पहुंचाने के लिए 1.30 करोड़ का प्रावधान किया गया है।

लघु सिंचाई योजनाओं के तहत 227 करोड़ व्यय होंगे। नादौन तथा फिन्नासिंह सिंचाई योजनाओं पर 85 करोड़ व्यय होंगे। जल से कृषि को बल योजना के लिए 5 वर्षों में 250 करोड़ का प्रावधान किया गया है। प्रवाह सिंचाई योजना के लिए 5 वर्षों में 150 करोड़ का प्रावधान किया गया है। इसी अवधि में सौर सिंचाई योजना पर 200 करोड़ व्यय होंगे। उत्पादन लागत को कम करने पर बल दिया गया है। जीरो बजट खेती तथा जैविक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। कृषि की नई प्रौद्योगिकी तथा फसल को जंगली जानवरों तथा प्राकृतिक आपदाओं से बचाने के लिए व्यापक प्रावधान किया गया है। सभी जिलों में 1000 करोड़ रुपये की फसल विविधीकरण योजना तथा मौसम आधारित बीमा योजना के लिए 29 करोड़ रखे गये हैं। कृषि विविधिकरण योजना कार्यान्वित होगी। फूलों की खेती, पॉलीहाउस स्थापना, मौन पालन, मत्स्य पालन, डेयरी जैसी गतिविधियों का विस्तार होगा। फसलों की गुणवत्ता में सुधार, अच्छी पैदावार बीजों व फसलों के सम्बन्ध में कृषि विशेषज्ञों से सम्पर्क कर किसान घर बैठे ही अपनी समस्याओं का निदान कर सकें, इसके लिए विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए कृषि कार्य में मशीनीकरण को बढ़ावा दिया जाएगा। बिजली के साथ-साथ योजनाओं को सोलर ऊर्जा के माध्यम से भी चलाया जाएगा।

किसानों की समस्याओं व मांगों को प्राथमिकता के आधार पर निपटाने

ग्राम विकास की नई अवधारणा

- बागबानी विकास के लिए 1134 करोड़ की विश्व बैंक प्रायोजित योजना
- आठ कृषि विज्ञान केन्द्रों के साथ किसानों को वाट्सएप्प के साथ जोड़ना प्रस्तावित
- पालमपुर कृषि विश्वविद्यालय में शून्य लागत प्राकृतिक खेती केन्द्र का शिलान्यास
- पशुओं के उपचार हेतु वाहन सेवा प्रस्तावित
- जलसंरक्षण के माध्यम से किसानों की आय दोगुना करना व निचले क्षेत्रों में बागबानी विकास के लिए 800 करोड़ की दो मेगा परियोजनाएं
- सिंचाई योजनाओं को सौर प्रणाली के लिए 200 करोड़
- पांच वर्षों में कमांद क्षेत्र विकास के लिए 500 करोड़
- सभी जिलों के लिए 1000 करोड़ की फसल विविधीकरण योजना
- लघु मध्यम सिंचाई योजनाओं के लिए 362 करोड़
- 250 करोड़ की जल से कृषि को बल योजना
- 5 वर्षों में प्रवाह सिंचाई योजना के लिए 150 करोड़
- प्राकृतिक खेती खुशहाल किसान के लिए 25 करोड़
- कृषि उपकरण सुविधा केंद्रों की स्थापना पर मिलेगा 40 प्रतिशत उपदान
- 10 करोड़ की हिमाचल पुष्प क्रांति योजना
- प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना व मौसम आधारित बीमा योजना के लिए 29 करोड़
- नई मंडियों की स्थापना के लिए 150 करोड़

के लिए किसान कृषि विभाग की टोल फ्री हैल्पलाइन सर्विस-1550 चलाई जा रही है। विश्व बैंक पोषित कृषि विकास योजना के तहत हिमाचल प्रदेश के लिए 650 करोड़ रुपये की योजना स्वीकृत की गई है जिसका 80 प्रतिशत जोकि 515 करोड़ रुपये विश्व बैंक का अंशदान होगा तथा 20 प्रतिशत जोकि 135 करोड़ रुपये है, राज्य का अंशदान होगा। इस परियोजना की अवधि 2017 से 2024 तक सात वर्ष होगी। इस परियोजना का हिमाचल प्रदेश के 10 जिलों में कार्यान्वयन ग्राम पंचायत को इकाई मानकर कृषि तथा गैर कृषि योग्य क्षेत्र में किया जाएगा। प्रदेश की विविध जलवायुगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यहां सब्जी उत्पादन विशेषकर बेमौसमी सब्जी उगाने की अपार संभावनाएं मौजूद हैं। प्रदेश के तीन हजार करोड़ रुपये के सालाना सब्जी कारोबार में टमाटर की खेती प्रमुख है। जिसके उत्पादन में सोलन जिला अग्रणी है। प्रदेश सरकार शीघ्र ही यहां टमाटर आधारित प्रसंस्करण उद्योग की स्थापना करेगी, आलू आधारित प्रसंस्करण उद्योग कांगड़ा एवं कुल्लू में स्थापित करना भी प्रस्तावित है। इससे जहां प्रदेश में उत्पादित होने वाले आलू और टमाटर की फसल का पूर्ण उपयोग सुनिश्चित होगा। कृषि क्षेत्र में राज्य ने बेमौसमी सब्जी उत्पादन में नाम कमाया है। राज्य सरकार कृषि उत्पादकता को बढ़ाने, किसानों को उनकी उपज के जायज मूल्य प्रदान करने तथा विपणन ढांचे को मजबूत करने पर बल दे रही है। पालमपुर कृषि विश्वविद्यालय में शून्य लागत प्राकृतिक खेती केंद्र का शिलान्यास किया गया है। जल संरक्षण पर जोर दिया जा रहा है। सभी मंडियों को राष्ट्रीय कृषि बाजार से ऑनलाइन जोड़ा जा रहा है। सिंचाई योजनाओं को सौर ऊर्जा से संचालित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। परवाणू, मंडी तथा धर्मपुर मंडी के विस्तारीकरण के लिए क्रमश: दो व एक करोड़ रुपये स्वीकृत किये गये हैं।

गौवंश संरक्षण को प्राथमिकता

खेती को जंगली जानवरों तथा आवारा पशुओं से बचाने के लिए मंत्रिमंडल उपसमिति गठित की गई है जो गौवंश संवर्द्धन के उपाय सुझाएगी। सरकार ने गौ सेवा आयोग गठन करने का भी निर्णय लिया है। प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए देसी गाय की नस्ल सुधार व इसके पालन के लिए सरकार विशेष प्रोत्साहन देगी। गौ-मूत्र आधारित उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए 50 प्रतिशत निवेश अनुदान दिया जाएगा। मंदिरों में चढ़ावे का कम से कम 15 प्रतिशत गौ सदनों के निर्माण, रखरखाव तथा परिचालन पर व्यय होगा। शराब पर प्रति बोतल एक रुपये का गौवंश विकास कर लगेगा। सौरचलित बाड़बंदी करने के लिए किसानों को उपदान दिया जा रहा है। बंदरों की समस्या से निपटने के लिए 10 जिलों की 38 तहसीलों में वानरों को पीड़क जन्तु घोषित किया गया है।

न्यूजीलैंड की तकनीक से बढ़ेगी सेब की पैदावार

राज्य में सेब बहुल क्षेत्रों में सेब बागबानों को न्यूजीलैंड की तकनीक हस्तांतरित कर पैदावार बढ़ाने का कार्य आरम्भ करने का निर्णय लिया गया है। इस तकनीकी हस्तांतरण के लिए न्यूजीलैंड के उद्यान विभाग के विशेषज्ञों ने रामपुर जिले के कुछ बागानों का निरीक्षण किया। दल ने बागबानों को पैदावार में बढ़ोतरी के उपाय सुझाए। इसके तहत छिड़काव सारणी, सेब के पौधों की कटिंग, प्रूनिंग, तौलिए बनाने की जानकारियां भी सांझा की। दल द्वारा उद्यान विभाग के कर्मचारियों को सेब की स्पर प्रजाति के पौधों की प्रूनिंग का प्रशिक्षण दिया गया। गौरतलब है कि राज्य सरकार द्वारा इस परियोजना में तकनीकी सहयोग के लिए न्यूजीलैंड के साथ समझौता ज्ञापन हस्ताक्षरित किया गया है।



14 अप्रैल पर विशेष

संघर्षशील और स्वाभिमानी व्यक्तित्व

◆ डॉ. कान्ता देवी



अमानवीयता की लकीरें पार हुईं तो एक जन आंदोलन का जन्म अम्बेडकर के रूप में हुआ। यह कोई सामान्य जन आक्रोश न था। यह समता, स्वतंत्रता एवं भाईचारे के मानवीय अधिकार के हित में आगे बढ़ने का एक ऐसा संघर्ष था, जिसे बौध ज्ञानी उस मुकाम तक ले गया, जहां आज पीड़ित-प्रताड़ित जन स्वाभिमान से जी रहे हैं।

डा. भीमराव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्य भारत में महू नामक स्थान पर हुआ। उनके परिवार का निवास स्थान अम्बाबड़ें ग्राम के रत्नगिरी, महाराष्ट्र में था। इनका परिवार कबीरपन्थी विचारों को मानने वाला था। इनके पिता श्री राम जी सकपाल सेना में अध्यापक थे तथा सूबेदार मेजर के पद से अवकाश ग्रहण किया था। ये चौदह भाई-बहन थे तथा भीमराव उन सबमें सबसे छोटी सन्तान थे। सन् 1891 में इनके पिता ने सेना से अवकाश प्राप्त कर महाराष्ट्र के रत्नगिरि जिले के लोक निर्माण विभाग में स्टोर कीपर के पद पर नौकरी की, बाद में इनका तबादला सतारा हो गया। भीमराव की माँ का नाम भीमावाई था जो बम्बई के पास ही के एक गाँव गुरवंद की रहने वाली थी।

भीमराव अम्बेडकर का विवाह मात्र सोलह वर्ष की आयु में रानीबाई के साथ सम्पन्न हुआ। सन 27 मई 1935 को उनका देहान्त हो गया। सन 1948 में अम्बेडकर ने अपना दूसरा विवाह डा. शारदा कबीर से कर लिया। डा. शारदा एक चिकित्सक थीं। अम्बेडकर का स्वास्थ्य ठीक न रहने पर डा. शारदा ने उनकी काफी सेवा की जिससे प्रभावित हो उन्होंने उनसे दूसरा विवाह किया।

सन 1900 में अम्बेडकर ने सतारा के हाई स्कूल में प्रथम कक्षा में प्रवेश लिया, तो उनका नाम भीमा राम जी अम्बावाड़ेकर लिखा गया। उनके परिवार का कुलनाम सकपाल था। सतारा हाई स्कूल में अम्बेडकर नाम के एक अध्यापक थे जो भीमराव को अत्यधिक प्यार करते थे। अपने अध्यापक के प्रति श्रद्धा और सम्मान प्रकट करने के लिए भीमराव ने अपना नाम अम्बेडकर रख लिया।

पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। उस समय केलुस्कर जी ने सहयोग किया। सयाजीराव गायकवाड़ ने घोषणा की थी कि यदि अछूत जाति के बच्चे पढ़ना चाहते हैं तो वे सहयोग करेंगे। केलुस्कर स्वयं महाराज से वार्ता करके आये और महाराजा ने 25 रुपये मासिक छात्रवृत्ति स्वीकृत कर दी। सन 1912 में अम्बेडकर ने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन 1912 में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने बड़ौदा के महाराजा के यहाँ नौकरी की। किन्तु रियासत के सभी कार्यालयों में छुआछूत व भेदभाव का प्रभाव अत्यधिक था जिनसे उन्हें काफी परेशानी हुई। 1913 में उनके पिता की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात अम्बेडकर का मन

बड़ौदा में वापिस नौकरी करने का नहीं था। सामाजिक परिस्थितियाँ इतनी प्रतिकूल व असहनीय थीं कि उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी।

बड़ौदा के महाराज ने कुछ छात्रों को उच्च अध्ययन के लिए कोलम्बिया विश्वविद्यालय भेजने का विचार किया। अम्बेडकर भी उच्च अध्ययन के लिए विदेश जाना चाहते थे। महाराजा ने अम्बेडकर से प्रार्थना पत्र मांगा तथा उन्हें कोलम्बियाँ विश्वविद्यालय भेजने का निश्चय किया। 15 जून 1913 को वे जलमार्ग से अमेरिका उच्च अध्ययन के लिये रवाना हुए व 21 जुलाई 1913 को न्यूर्याक पहुँचे। उनका उद्देश्य विश्वविद्यालय की सबसे बड़ी डिग्री लेने के साथ-साथ शिक्षा, राजनीति, समाजशास्त्र व अर्थशास्त्र आदि विषयों में पारंगत होना था। अमेरिका में वह एक अन्तर्राष्ट्रीय क्लब में रहे।

जून 1916 में अम्बेडकर ने पी.एच.डी. के लिए अपना शोधकार्य प्रस्तुत किया जिसका विषय था : नेशनल डिविडेंड फार इंडिया : 5 हिस्टारिक एंड अनैलेटिकल स्टडी। आठ साल बाद यह थीसिस एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई, इसका नाम था द इवालूशन आफ प्रोविशियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इंड़िया अम्बेडकर ने अपनी यह पुस्तक बड़ौदा के महाराज सयाजी राव गायकवाड को समर्पित की थी। उनकी इस पुस्तक की सर्वत्र प्रशंसा हुई। लोगों ने उनकी तुलना लिंकन व बूकर टी. वाशिंगटन से की जिन्होंने निग्रो को दास बनाने की प्रथा को समाप्त करने के लिए संघर्ष किया था।'

सन 1917 से 1920 तक अम्बेडकर ने कई व्यवसाय करने की कोशिश की। बम्बई वापिस आकर अम्बेडकर ने एक पारसी की सहायता से दो छात्रों को ट्यूशन किया। उन्होंने स्टाक व शेयरों के बारे में सलाह देने के लिए एक व्यापारिक संस्था भी बनाई पर कोई भी ग्राहक एक अछूत से सलाह लेने का इच्छुक न था। 11 नवम्बर 1918 को उनकी नियुक्ति बम्बई के ''सीडेनहय कालेज'' में राजनैतिक अर्थव्यवस्था के प्राध्यापक के पद पर हुई। लेकिन समाज का व्यवहार वैसा ही रहा। सवर्ण जाति के प्राध्यापकों ने एक ही वर्तन में पानी पीने का विरोध किया, उन्होंने मार्च 1920 तक कालेज में कार्य किया। सितम्बर 1920 में लन्दन में कानून व अर्थशास्त्र की पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रस्थान किया। इस सम्बन्ध में कोल्हापुर के महाराजा साहू छत्रपति ने उनकी वित्तीय सहायता की।

जून 1921 में लंदन विश्वविद्यालय ने एम.ए. अर्थशास्त्र की डिग्री के लिए उनकी थीसिस स्वीकार की। सन 1922-23 के दौरान उन्होंने जर्मनी के वोन विश्वविद्यालय में कुछ महीनों तक अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। सन 1923 में उन्हें वार--एट-लॉ की डिग्री प्राप्त हुई। जनू 1925 से मार्च 1928 तक अम्बेडकर 'वाटली बायज एकाउंटेंसी ट्रेनिंग इन्स्टीयूट में मर्केटाइल लॉ के अंशकालीन प्रोफेसर रहे। इसी मध्य सन 1927 में सरकार ने उन्हें बम्बई विधान परिषद का सदस्य मनोनीत किया।

सन् 1930, 1931 व 1932 में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान उन्होंने लंदन में होने वाले गोलमेज सम्मेलनों में भाग लिया तथा दलितों के लिए सामाजिक न्याय व पृथक मतदान की मांग की । 1935 में बम्बई की सरकार ने उनकी योग्यताओं का सम्मान करते हुए गवर्नमेन्ट लॉ कालेज में प्रधानाचार्य के पद पर उनकी नियुक्ति की। उन्होंने वहां के शैक्षणिक स्तर को नये आयाम दिए। विद्वान योग्य प्रशासक के रूप में उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त हुई। मई 1938 में उन्होंने प्रधानाचार्य के पद से त्याग पत्र दे दिया क्योंकि उनका मानना था कि सरकारी नौकरी उनके सामाजिक सुधार एवं राजनीतिक संघर्ष में बाधा उत्पन्न करेगी। इसी कारण उन्होंने न्यायधीश का पद भी अस्वीकार कर दिया। 7 नवम्बर 1938 को डा. अम्बेडकर ने मजदूरों की माँगों को लेकर बम्बई के मिलों तथा कारखानों में हड़ताल का संचालन किया किन्तु अनेक विषयों पर उनके कम्युनिस्ट नेताओं से वैचारिक व व्यावहारिक मतभेद हो गये।

सन 1941 में वायसराय ने अपनी सुरक्षा सलाहकार परिषद

अम्बेडकर संघर्षशील तो थे ही, स्वाभिमानी भी थे। इसके अनेक उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किए। उन्होंने तत्कालीन पद दलितों को स्वाभिमान से जीने का अहसास कराया। जब वे एक तालाब तक पहुंचने के अधिकार से भी वंचित थे, तो अम्बेडकर आगे आए और पुरजोर विरोध के बावजूद निरीह लोगों को तालाब से पानी के दो घूंट पिलाने में सफल रहे। नेहरू ने उन्हें स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री का उत्तरदायित्व सौंपा था, किंतु जब उन्हें नीतिगत निर्णयों में विरोधाभास नजर आया तो वे स्वयं ही इस जिम्मेदारी से मुक्त हो गए।

में डॉ. अम्बेडकर को सदस्य मनोनीति किया। फिर 2 जुलाई 1942 को वायसराय ने अम्बेडकर को एक्जीक्यूटिव कौंसिल में शामिल किया। एक्जीक्यूटिव कौंसिल में 14 भारतीय व 5 यूरोपीय सदस्य थे। भारत के इतिहास में यह पहला अवसर था कि एक अछूत हिन्दू भारत सरकार की एक्जीक्यूटिव कौंसिल में शामिल किया गया। उन्होंने 20 जुलाई 1942 को नागपुर से तार के जरिए श्रम विभाग का कार्यभार संभाल लिया। वायसराय ने उन्हें श्रम मन्त्री का दायित्व सौपा था। लार्ड लिनलिथगो उनसे प्रभावित थे परिणामस्वरूप उन्होंने 10 दलित विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेजा।

सन 1946 में स्वतन्त्र भारत के संविधान के निर्माण के लिए संविधान सभा का गठन हुआ। अम्बेडकर इसमें बंगाल से निर्वाचित हुए। परन्तु 15 अगस्त 1947 को स्वतंन्त्रता प्राप्त होने पर वह बम्बई से मनोनीत होकर आये । 24 अगस्त 1947 को उन्हें संविधान सभा की प्रारूप समिति का सदस्य चुना गया और शीघ्र ही उन्हें इस समिति का अध्यक्ष चुना गया। उन्होंने स्वतंत्र भारत के संविधान का निर्माण किया। जुलाई 1947 में स्वतन्त्र भारत का प्रथम मन्त्रिमण्डल बना और नेहरू जी के आग्रह पर उन्होंने कानून मन्त्री का उत्तरदायित्व संभाला। लेकिन आगे चलकर नीतियों में विरोध होने के कारण 27 सितम्बर 1951 को उन्होंने मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया।

सन् 1951 में भारत में प्रथम आम चुनाव हुए। डॉ. अम्बेडकर चुनाव में हार गये। अतः 1952 में उनको राज्य सभा के सदस्य के लिए मनोनीत किया गया। मई 1954 में मण्डारा में हुए एक उप चुनाव में वे खड़े हुए परन्तु वहां भी जीत न सके। डॉ. अम्बेडकर ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से 1952 में मानार्थ एल.एल.डी. की डिग्री प्राप्त की। 12 जनवरी 1953 को उस्मानिया विश्वविद्यालय ने शिक्षा जगत की सर्वोच्च उपाधि डी. लिट प्रदान की

15 अक्तूबर 1956 को नागपुर नगर निगम ने अम्बेडकर का नागरिक अभिनन्दन किया। उन्हें एक समाज सुधारक, दार्शनिक और संवैधानिक पंड़ित बताया। जीवन के अन्तिम समय में डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म अपना लिया। 16 अक्तूबर 1956 को उन्होंने सामूहिक धर्म परिवर्तन समारोह का नेतृत्व किया था।

जीवन के अन्तिम समय में डॉ. अम्बेडकर अपने दिल्ली आवास अलीपुर रोड़ में ही अधिकतर रहते थे। उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता था। 5 दिसम्बर 1956 मध्य रात्रि में उनका देहान्त हो गया। 6 सितम्बर की सुबह जब श्रीमती अम्बेडकर रोजमर्रा की तरह सोकर उठी तो उन्होंने अम्बेडकर को मृत पाया। सोते-सोते ही वे स्वर्ग सिधार गये थे।

डॉ. अम्बेडकर के तीन मुख्य प्रेरणा स्त्रोत थे- कबीर, महात्मा, ज्योतिवा राव फूले, व गौतम बुद्ध। कबीर की भक्ति भावना से वह प्रभावित थे। ज्योतिवा राव फूले ने तत्कालीन ब्राह्मणवाद के विरोध के लिए प्रेरित किया।

आज समय बदला है, परंतु इसके पीछे अम्बेडकर का संघर्ष व बलिदान हमें स्वीकार करना होगा। वर्तमान में भी स्थितियां कुछ अनुकूल नहीं लगतीं, पर अगर उस महामहिम अम्बेडकर के इन शब्दों को हम निभा सकें कि -

"मैंने तुम्हारे लिए जो कुछ भी किया है, वह बेहद मुसीबतों, अत्यंत दुखों और बेशुमार विरोधियों का मुकाबला करके किया है। यह कारवां आज जिस जगह पर है, उस जगह पर मैं इसे बड़ी मुसीबतों के साथ लाया हूं। तुम्हारा कर्तव्य है कि कारवां सदा आगे ही बढ़ता रहे, बेशक कितनी ही रुकावटें क्यों न आवें। यदि मेरे अनुयायी इसे आगे न बढ़ा सके तो इसे यहीं छोड़ दें, पर किसी भी हालत में इसे पीछे न जाने दें।" तो बेहतर होगा।

चन्देल कॉटेज, विजय नगर, कसुम्पटी,
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 009।
मो. 0 98160 73507

"मैंने तुम्हारे लिए जो कुछ भी किया है, वह बेहद मुसीबतों, अत्यंत दुखों और बेशुमार विरोधियों का मुकाबला करके किया है। यह कारवां आज जिस जगह पर है, उस जगह पर मैं इसे बड़ी मुसीबतों के साथ लाया हूं। तुम्हारा कर्तव्य है कि कारवां सदा आगे ही बढ़ता रहे, बेशक कितनी ही रुकावटें क्यों न आवें। यदि मेरे अनुयायी इसे आगे न बढ़ा सके तो इसे यहीं छोड़ दें, पर किसी भी हालत में इसे पीछे न जाने दें।"

आलेख

यायावरों के इष्ट महापंडित राहुल सांकृत्यायन

◆ रत्न चन्द निर्झर



हिंदी साहित्य को 150 से अधिक विविध विषयों पर पुस्तकें लिखने वाले महापंडित राहुल सांकृत्यायन के योगदान को कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। खासकर घुमक्कड़ शास्त्र को आज के पर्यटन उद्योग का आधार कहा जा सकता है। सैर सपाटा करने वालों को आज से 50-60 वर्ष पूर्व प्रेरित करने वाली यह पुस्तक स्वयं में पहला पथ-प्रदर्शक करने वाला ग्रंथ है। उन्होंने स्वयं इस पुस्तक के बारे में लिखा था, "इस पुस्तक को पढ़कर न जाने कितने नौजवानों के माता-पिता मुझे कोसते होंगे जो घर-बार छोड़ कर दुनिया की लंबी सैर पर निकल गए। राहुल का मानना था कि जब कभी यात्रा पर निकलो तो घर को घर में ही छोड़ दो। घर को सिर पर लाद कर यात्रा का आनंद नहीं लिया जा सकता। उनकी इस यायावरी वृत्ति ने उर्दू के शायर वांजिदा के इस शेर को सार्थकत प्रदान की।

सैर कर दुनिया की गाफिल, जिंदगानी फिर कहां,
जिंदगानी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहां!

वर्ष 1984-85 में मुझे अपने सेवाकाल के दौरान किन्नौर के करच्छम में उनकी कृति 'किन्नर देश' पढ़ने को मिली। बस फिर क्या था मैं ताउम्र के लिए उनका मुरीद हो गया। 'मेरी जीवन यात्रा' के पन्नों ने मेरी उड़ान को और पंख दे दिए। फिर शुरू हो गया किन्नौर में ही छोटी बड़ी यात्राओं का सिलसिला, सबसे पहले वर्ष 1985 में उन्हीं के पद्चिह्नों को तलाशने पुराने हिंदुस्तान मार्ग पर पगडंडी को पंगी गांव से अकपा तक नापा। सारा दिन भूखे-प्यासे चलकर अपने 33 साल के सेवाकाल के दौरान यात्रा की यह अनबुझी प्यास निरंतर जारी है।

12-15 साल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों में सरकारी सेवा में बिताए। जब भी मौका मिला निकल पड़ा। झोला उठाकर, रेडियो व टॉर्च डाले लंबी-लंबी यात्राओं पर। खूब पैदल घूमा। कई अनुभवों से दो-चार हुआ।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन (मूल नाम केदार पंडित) का जन्म 9 अप्रैल, 1893 को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के पन्दहा गांव में हुआ जो कि इनका ननिहाल था। इनके पिता कनैला ग्रामवासी गोवर्धन पांडेय थे। सांकृत्य गोत्री सरयूपारीव ब्राह्मण के परिवार में जन्मे राहुल ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी माता कुलवंती देवी अपने माता-पिता के घर पन्दहा में ही रहती थी। प्रारंभिक पढ़ाई रानी की सराय में हुई और इसी अवधि के दौरान 1902 में इन्होंने पहली बार वाराणसी की यात्रा की। 1906 में निजामाबाद के स्कूल से आठवीं पास की। नौ साल की उम्र में पहली उड़ान कलकत्ता की ओर 1908 में दूसरी उड़ान 1909 में भरी।

इसी अवधि के दौरान वैराग्य का भूत इनके सिर आंखों पर चढ़ा। नौकरीव डिग्री को एक ओर धरते हुए साधु संन्यासी बनने का इरादा लेकर साधुओं की जमात में शामिल हो गए और उनकी टोली में साथ-साथ चल दिए अयोध्या, हरिद्वार, ऋषिकेश, गंगोत्री, जमनोत्री, केदारनाथ, बदरीनाथ के रास्तों पर। साधु समाज के अनुभवों को प्रत्यक्ष रूप से देखा-भोगा। 1911-12 में केदारनाथ बदरीनाथ की यात्रा से लौट कर इन्होंने काशी के चक्रपाणी ब्रह्मचारी के मठ में संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। विशेषतः लघु कौमुदी का गहन अध्ययन किया। साथ-साथ इन्होंने काव्य, इतिहास, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष इत्यादि विषयों पर भी अपना ध्यान केंद्रित कर गूढ़ता से ज्ञान अर्जित किया। कठिन

जप-तप व सिद्धि कर देवी का आशीर्वाद प्राप्त करने का असफल प्रयास भी किया। वर्ष 1912-13 में बिहार के छपरा जनपद के परसा मठ में वैष्णव साधु हो गए और यहां इनका नया नामकरण हुआ बाबा रामउदार दास। वैष्णव मठ से भी इनका जल्द मन उखड़ गया व इसे अपने पांव की जंजीर मानकर मठ से निकल पड़े जगन्नाथपुरी, रामेश्वर तिरुमलै, तिरुपतिवाला जी, बैंगलौर विजयनगर पंढरपुर, पुणे, मुंबई, नासिक, त्र्यंबक, कपिल धारा, ओंकारनाथ मान्यता, उज्जयनि जकोर के रास्ते पुनः परसा मठ पहुंचे। रात ठहरने के ठिकाने हुआ करते थे सड़क किनारे की धर्मशालाएं। फिर एक बार परसा मठ को छोड़ कर अयोध्या की ओर रुख किया। अयोध्या से फिर आगरा जा पहुंचे और आर्य समाज की ओर उन्मुख हुए। सत्यार्थ प्रकाश का गंभीरता से अध्ययन किया और बीच-बीच में आगरा से प्रकाशित 'मुसाफिर' पत्र के लिए भी लेख लिखते रहे। आर्य समाज के प्रचारक बनकर लाहौर भी गए। इनका 1919 से 1921 का काल राजनैतिक गतिविधियों में बीता। कई बार सत्याग्रह में भाग लिया। अमवारी किसान सत्याग्रह के दौरान चोटिल भी हुए। राजनैतिक गतिविधियों की सक्रियता से हजारीबाग व बक्सर की जेलों में बंदी रहे।

वर्ष1926 में इनकी पहली भेंट हरिनामदास (भदंत आनंद कौसाल्यायन) से हुई। साल 1927-28 तक इन्होंने 19 मास तक श्रीलंका विश्वविद्यालय में अध्यापन किया और बौद्ध साहित्य का गहन अध्ययन किया। यहां अध्ययनरत रहते हुए इन्हें त्रिपिटकाचार्य की उपाधि मिली। और इनका नाम रामोदर दास से राहुल सांकृत्यायन पड़ा और इन्होंने बौद्ध धर्म अपनाया। वर्ष 1929-30 का साल तिब्बत में बिताया। इसी साल इन्हें काशी पंडित सभा द्वारा 'महापंडित' की उपाधि से नवाजा। वर्ष 1932-33 में भदंत आनंद के साथ इंग्लैंड यूरोप की यात्रा की। साल 1934 में दूसरी बार तिब्बत गए। 1935 में जापान, कोरिया, सोवियत रूस होते हुए ईरान गए। 1936 में पुनः तीसरी बार तिब्बत गए। विकट परिस्थितियों में व्यापारी के बेटे का भेष धारण कर वापसी में लाए 22 खच्चरों पर तिब्बत से दुर्लभ पांडुलिपियों का खजानालादकर जिनमें कन्जूर प तन्जूर प्रमुख हैं।

1937 में ईरान व सोवियत भूमि की पुनः यात्रा की और यहां लोला से घनिष्ठता बढ़ी जो बाद में परिणय-सूत्र में बदली। साल 1938 में अफगानिस्तान-भारत व तिब्बत की चौथी यात्रा में बीता। 1939 में फिर राजनैतिक सक्रियता की ओर अग्रसर हुए व अमवारी किसान सत्याग्रह में भाग लिया। यहीं पर इन्होंने बौद्ध भिक्षु का चोला त्यागा और कम्यूनिज़्म की ओर परिवर्तित हुए। 1940-42 में प्रांतीय किसान सम्मेलन मोतीहारी के सभापति व अखिल भारतीय किसान सम्मेलन और पलाशा के सभापति चुने गए। हजारीबाग जेल और देवली कैंप में 29 मास की जेल काटी। पचास साल की आयु में का प्रण पूरा करते हुए अपने पैतृक गांव कनैला की यात्रा की। 27 साल के बाद जन्मभूमि पर कदम रखा और अपनी पहली पत्नी से भेंट की। इसी वर्ष इन्होंने उत्तराखंड की यात्रा की। 1944 में फिर से सोवियत यात्रा की तैयारी में जुट गए। 1945 में ईरान यात्रा की व 1947 तक रूस के लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में प्राच्य इतिहास के प्राध्यापक पद पर कार्य किया। इंग्लैंड हाते हुए अगस्त 1947 को स्वदेश लौट आए। 1947-48 में इन्हें हिंदी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष भी बनाया गया। वर्ष 1950 में इन्होंने लंबी यात्राओं को विराम देते हुए विशाल एकत्र साहित्य को पुस्तकाकार रूप देने की मंशा से मंसूरी में एक बंगला खरीदा 'हर्नक्लिफ' जहां पर जुट गए अपने सहयोगियों के साथ इन्हें अंतिम देने। यहीं पर इन्होंने कमला सांकृत्यायन से शादी की। 1955 में जया व 1956 में जेवा का जन्म हुआ। 1958 में चार माह चीन के गणवादी जनतंत्र का दौरा किया व साल 1958-61 में श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में दर्शनार्थ पद पर कार्य किया। वर्ष 1961 में दार्जीलिंग यात्रा की और वहीं पर स्थायी निवास बना लिया। कलकत्ता प्रवास के दौरान स्मृतिलोप का शिकार हो गए। सात माह तक मास्को के अस्पताल में इलाज

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने जहां एक विश्वव्यापी भ्रमण कर विपुल साहित्य सृजन किया, वहीं दूसरी ओर हिमालय के सौंदर्य, सभ्यता, संस्कृति से भी अंग-संग जुड़े रहे। हिमालय उनके जीवन में शुरू से अंत तक जुड़ा रहा। चाहे वह नेपाल की तराई हो या तिब्बत की भूमि, हिमालय के ओर-छोर को उन्होंने अपने कदमों से नापा। हिमालय खंड के विस्तृत भू-भाग तिब्बत, उत्तराखंड, हिमाचल, जम्मू-कश्मीर के लेह-लद्दाख, दार्जिलिंग सहित एशिया के दुर्गम भू-खंडों की उनके द्वारा नापी गई पगडंडियों आज भी उनके पदचिन्हों की गवाह हैं। हिमालय भू-भाग उनके रग-रग में समाया था।

चलता रहा। 14 अप्रैल 1963 को दार्जिलिंग के राहुल निवास में भारत का महान यायावर महापंडित राहुल सांकृत्यायन एक लंबी यात्रा पर महाप्रयाण कर गया।

इनके पांडित्य एवं अमूल्य साहित्यिक योगदान पर काशी पंडित सभा ने महापंडित, श्रीलंका विश्वविद्यालय ने त्रिपिटकाचार्य, हिंदी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद ने वाचस्पति, भागलपुर विश्वविद्यालय ने विद्यालंकार व श्रीलंका विश्वविद्यालय ने डी.लिट की मानद उपाधि से सम्मानित किया, वहीं भारत सरकार ने इनकी उल्लेखनीय साहित्यिक योगदान के लिए पद्मभूषण से सम्मानित किया।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने जहां एक विश्वव्यापी भ्रमण कर विपुल साहित्य सृजन किया, वहीं दूसरी ओर हिमालय के सौंदर्य, सभ्यता, संस्कृति से भी अंग-संग जुड़े रहे। हिमालय उनके जीवन में शुरू से अंत तक जुड़ा रहा। चाहे वह नेपाल की तराई हो या तिब्बत की भूमि, हिमालय के ओर-छोर को उन्होंने अपने कदमों से नापा। हिमालय खंड के विस्तृत भू-भाग तिब्बत, उत्तराखंड, हिमाचल, जम्मू-कश्मीर के लेह-लद्दाख, दार्जिलिंग सहित एशिया के दुर्गम भू-खंडों की उनके द्वारा नापी गई पगडंडियां आज भी उनके पदचिन्हों की गवाह हैं। हिमालय भू-भाग उनके रग-रग में समाया था। उनके यायावरी जीवन का सूत्रपात भी घर से भागकर बदरी-केदार पथ की ओर से हुआ था और जीवन के अंतिम पल भी मंसूरी के हर्नकिल्प एवं दार्जिलिंग के राहुल निवास में संकलत रचना सामग्री के विपुल भंडार को पुस्तकाकार रूप देने में बीते। राहुल जी ने अपनी तिब्बत यात्रा के दौरान आती-जाती बार तीन बार हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहुल-स्पीति व किन्नौर के पथ से होकर गुजरे। वर्ष 1948 में हिमाचल के किन्नौर जिले जोकि उस समय रामपुर बुशहर रियासत चिनी तहसील का हिस्सा था, चार माह का समय इस क्षेत्र के विस्तृत अध्ययन में बिताए। मधुमेह का मरीज होते हुए भी उन्होंने नारकंडा से किन्नौर के अंतिम छोर तक की यात्राएं पैदल घोड़े-खच्चर पर कई शारीरिक व मानसिक कष्टों को झेलते हुए कीं और उनका यह अथक परिश्रम एक स्वतंत्र पुस्तक 'किन्नर देश' के रूप में सामने आया जो कि उस समय के इस उपेक्षित भाग का एक प्रामाणिक दस्तावेज है।

अपनी किन्नर यात्रा के दौरान उन्होंने खाली घुमक्कड़ी ही नहीं की, अपितु एक सजग पत्रकार की भूमिका निभाते हुए उस समय की जन समस्याओं, क्षेत्रीय समस्याओं यथा पानी, बिजली, सिंचाई से जूझते लोगों की व्यथा-कथा को हिमाचल प्रदेश सरकार के समक्ष लाते हुए और रचनात्मक सुझाव देते हुए उन्हें हल करने हेतु गाहे-बगाहे प्रमुख सचिव एन.सी. मेहता को पत्र लिखे।

अपनी किन्नौर यात्रा के दौरान उन्होंने खाली घुमक्कड़ी ही नहीं की, अपितु एक सजग पत्रकार की भूमिका निभाते हुए उस समय की जन समस्याओं, क्षेत्रीय समस्याओं यथा पानी, बिजली, सिंचाई से जूझते लोगों की व्यथा-कथा की हिमाचल प्रदेश सरकार के समक्ष लाते हुए और रचनात्मक सुझाव देते हुए उन्हें हल करने हेतु गाहे-बगाहे प्रमुख सचिव एन.सी. मेहता को पत्र लिखे।

'किन्नर देश' में राहुल जी ने न केवल यहां का भौगोलिक परिचय ही नहीं दिया, अपितु यहां के खान-पान, रहन-सहन, प्रागैतिहास, लोकगीतों का भी विस्तृत परिचय पाठकों को दिया। उन्होंने उस समय किन्नर समाज में व्याप्त कुरीतियों, पाखंडों पर भी निर्भीकता से कलम चलाई है। विशेषतः कश्मीर मेले में चंडिका माता को बकरों की बलि दिए जाने के वीभत्स दृश्य को देखकर यहां के प्रबुद्ध समाज को अपने तर्कों के माध्यम से जागृत करते हुए भविष्य में बलि न दिए जाने का प्रण उपस्थित जनसमुदाय से लिया जो कि उनके एक समाज सुधारक होने का परिचायक है। किन्नर देश राहुल जी के गहन अध्ययन को दर्शाता है। किन्नर देश बार-बार पढ़ने को प्रेरित करती है। यूं तो राहुल जन्मजात मैदानी थे परंतु उनका मन बार-बार हिमालय की उपत्यकाओं में विचारने व बसने को मचलता था।

राहुल जी की हिमाचल में स्थायी रूप से बसने की हार्दिक इच्छा रही और उनकी इस मंशा को पूरा करने में उनके शुभचिंतकों व हितैषी मित्रों में से गोबिंद सिंह ठाकुर ने बाघी, टूटुपानी या ककोह में कुटीर बनाने की पेशकश की तो चंद्रकांत ने कुल्लू की ओर बसने का प्रस्ताव रखा। डॉ. भगवान सिंह नारकंडा से 25 मील पर आनी से थोड़ा ऊपर बसने को निमंत्रित कर रहे थे और वे कोटखाई में भी अपने घर के पास राहुल जी को एक एकड़ भूमि देने को तैयार थे। वर्ष 1949 की गर्मियों में उनका आनी में बसने का विचार भी बन गया था परंतु बाद में उन्होंने मसूरी के हर्नकिलप को खरीद कर स्थायी निवास बना लिया और यही साहित्य साधना की। राहुल जी ने हिमालय पर जो विस्तृत साहित्य लिखा, उसमें हिमाचल प्रदेश विशेष उल्लेखनीय है। इसमें हिमाचल परिचय के अंतर्गत इन्होंने हिमाचल प्रदेश के तत्कालीन जिलों का भ्रमण किया व उपायुक्तों की मदद से सरकारी आंकड़ों व जन सहयोग से जिलों के विविध विषयों से संबंधित खोजपरक सामग्री एकत्र की। उनके ये सभी आलेख हिमाचल प्रदेश सूचना एवं जन सपंर्क विभाग की मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' में 1960 के दशक में शृंखलावार प्रकाशित हुए। बाद में ये आलेख महापंडित राहुल जन्मशताब्दी पर हिमाचल परिचय के अंतर्गत दो भागों में प्रकाशित होकर सामने आए।

कार्यालय सुपरिंटेंडेंट इंजीनियर,
थर्ड सर्कल, एचपी पीडब्ल्यूडी, सोलन, हिमाचल प्रदेश-173 212, मो. 0 94597 73121

आलेख

मरुभूमि का लोकानुरंजन : बुछैन

◆ सुदर्शन वशिष्ठ

हास्य जीवन में एक नए रस का संचार करता है। एक नन्हे शिशु से लेकर बड़े बुजुर्ग जीवन में हास्य, व्यंग्य उनके दुःख, तकलीफ तथा कठिनाइयों से निपटने का कार्य करता है। हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहुल-स्पीति, किन्नौर के निवासियों ने पुरातन संस्कृति, परंपराओं को यथावत रखा है। राज्य के विख्यात साहित्यकार व लोक संस्कृति के ज्ञाता डॉ. एम. आर. ठाकुर के अनुसार लाहुल-स्पीति, किन्नौर और लद्दाख आदि जनजातीय क्षेत्रों में 'बुछैन' लोकानुरंजन का महत्वपूर्ण साधन है। मनोविनोद के अतिरिक्त इस खेल ने इन क्षेत्रों में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में विशिष्ट भूमिका निभाई है। स्थान भेद के कारण इसे बुचेन या बुज़ेन भी कहते हैं परंतु इसका वास्तविक नाम 'फो-बर-दो-चोग' है, जिसका अर्थ 'आमाशय' पर पत्थर-फाड़ खेल या अनुष्ठान है। यद्यपि इसकी पृष्ठभूमि धार्मिक है और यह माना जाता है कि इसके कलाकारों में अधिदैविक शक्ति होती है, परंतु हास्य-विनोद, आमोद-प्रमोद और मनोरंजन इसका मुख्य लक्ष्य प्रतीत होता है।

इस अनुष्ठान की पृष्ठभूमि मूल स्थान तिब्बत माना जाता है और लोक विश्वास के अनुसार महासिद्ध थांग-तोंग-ग्यलपो (लिखित थाङ-स्तोङ स्यलपो) इसके प्रवर्तक थे जिनका जन्म चौदहवीं सदी (1385 के आस-पास) के उत्तरार्द्ध में हुआ माना जाता है। थंग-तोंग-ग्यलपो का अर्थ 'मरुस्थल का राजा' है। ऐसी मान्यता है कि ल्हासा के महाराज र्जे-रिन्पो-छे ज़ोङ-खापा (1357-1419) के समय में हाला र्तविर्ग्यद नामक दानव और भूमंडलीय-ग्रह राहु (गज़ाब्दुद वियनजे) ने घोर आतंक मचा दिया। स्थानीय लोगों की असामयिक मृत्यु होने लगी। राजा ने प्रजा की रक्षा करने के लिए वैद्यों, चिकित्सकों, हकीमों, जादू-टोना विशेषज्ञों को बुलाया, परंतु सब असफल हुए। दानवों के समक्ष किसी की एक न चली। तब लोगों ने भगवान बुद्ध से प्रार्थना की जिसके फलस्वरूप स्वयं अवलोकितेश्वर ने थंग-तो-ग्यलपो के रूप में जन्म लिया। ग्यलपो ने सूखे तथा अकाल करने वाले दानवों को बुछैन अनुष्ठान करके समाप्त किया।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

माना जाता है कि इस अनोखे अनुष्ठान का जन्म तिब्बत में हुआ।

दूसरी आस्था के अनुसार नवमी शताब्दी में शासक लङ्.दर्मा बौद्ध धर्म का विरोधी हो गया। उसने पूरे तिब्बत से धर्म का नाश करने की ठान ली। उस समय कोई भी व्यक्ति मन्त्र का पाठ नहीं कर सकता था। लामाओं को मारना आरम्भ कर दिया। लामाओं तथा लोगों ने प्रार्थनाएं आरम्भ कर दीं जिसके फलस्वरूप त्रिलोकीनाथ की चाङ्-रे-जिग ने धरती पर अवतार ले कर थंग तोंग ग्यलपो के रूप में जन्म लिया। राजा के धर्मविमुख होने के कारण सारी प्रजा भी नास्तिक हो गई थी। कोई धर्म की बात सुनने के लिए तैयार न था। थंग तों ग्यलपो ने अपना एक नाट्य दल बनाया और धार्मिक अनुष्ठान के साथ चमत्कार दिखाने आरम्भ किए जिससे लोग उनकी ओर आकर्षित हो सकें। चमत्कारों के बीच में ये लोग धर्म का प्रचार भी करने लगे। इन्होंने गांव-गांव जा कर करतब दिखाने आरम्भ किए और धर्म का प्रचार भी जारी रखा। इससे लोग पुनः अपने धर्म की ओर प्रवृत्त हुए। समय के अनन्तर इन लोगों का यह पेशा बन गया और ये जगह जगह अपने करतब दिखाने लगे।

तीसरे मत के अनुसार चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ल्हासा के राजा र्जे-रिबयो-छे-खापा (1357-1419) के शासन में एक दानव या राक्षस ने आतंक मचा दिया। उसके प्रकोप से राज्य में बीमारियां फैलने लगीं। लोग परेशान हो गए। वे अपना काम करते हुए, खाना खाते हुए , सोते हुए ही मरने लगे। वैद हकीम, जादू टोने का इलाज करने वाले लामा हार गए। ऐसे समय में किसी ने राजा को बताया कि एक थंग-तोंग-ग्यलपो नाम के चमत्कारी सिद्ध हैं जो एक गोन्पा बना रहे हैं। वे गोन्पा का निर्माण करते तो रात को दानव उसे गिरा देते। वे दिन में पुल बनाते तो रात को दानव उसे बाढ़ से बहा देते।

तभी महाराजा को थाङ-स्तोङ् रग्यलपो की ख्याति का पता चला जो प्रजा की दानवों से रक्षा करने में माहिर था। राजा ने महासिद्ध के पास अपने दूत भेजे और अनुरोध किया कि वे ल्हासा को बरबाद होने से बचाएं। थाङ-स्तोङ ग्यलपो श्वेत पूंछ (ल्हासा) वाले गरुढ़ की सवारियों पर आया तथा महाराजा को उसने बताया

कि दानव बड़े पेट के आकार में राजभवन के दरवाजे के नीचे पड़े हैं। महासिद्ध ने उसी पेट के आकार का एक पत्थर तलाश किया। उसमें दानवों की रूह डाली, खंजर की शक्ल के एक छोटे पत्थर पर मंत्र पढ़ा और महाराज के दरबारियों तथा एकत्रित लोगों के सामने छोटे पत्थर के एक ही प्रहार से बड़े पत्थर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। पत्थर से चीखें निकलीं और कहीं दूर खामोश हो गईं।

'बुछैन' लोकनाट्य स्पीति में अन्य स्थानों में भी खेला जाता हैं किंतु इस का मुख्य केन्द्र स्पीति की पिन घाटी है। यहां के गांव सगनम में अभी भी बुछैन के कलाकार विद्यमान हैं। पिन घाटी कुल्लू और बुशहर के बीच एक संकरी घाटी है जहां आसपास ऊंची ऊंची पर्वत श्रृंखलाएं हैं। दुर्गम स्थान और बिलकुल अलग थलग रहने के कारण यहां की परंपराएं अभी भी जीवित हैं। 'बुछैन' में एक पूरा नर्तक दल रहता है जो गांव गांव में चमत्कारी खेल दिखाते हैं। ये लोग गांव गांव जा कर पूरे अनुष्ठान के साथ नाटक, नृत्य और अपने चमत्कारों के द्वारा ग्रामीणों को रिझा कर अपनी आजीविका भी कमाते हैं। ये अपने इलाके तक ही सीमित नहीं रहते बल्कि गांव-गांव जा कर भी अपने खेल दिखाते हैं। इनके खेल दिखाने का कोई समय निश्चित नहीं है किंतु फसल के कटने पर अपने करतब दिखाना इन्हें लाभकारी रहता है क्योंकि उन दिनों इन्हें खेल दिखाने के बदले अनाज आदि भेंट में मिल जाता है।

स्पिति में बुछैन परंपरा सदियों से चली आ रही है। यह परंपरा किसी समय लद्दाख में भी प्रचलित थी। अब वहां यह समाप्त हो चुकी है। स्पीति में भी धीरे धीरे यह समाप्त हो रही है।

सी.जी. ब्रूस द्वारा बुछैन का वर्णन

लद्दाख में भी कभी बुछैन परंपरा रही है। लद्दाख, जंस्कर, लाहौल, स्पीति और किन्नौर तक बुछैन का खेल प्रचलित रहा है। सन् 1912 में एक यूरोपियन अधिकारी सी.जी. ब्रूस ने लाहौल में बुछैन का खेल देखा। उन्होंने लाहौल के एक आखिरी गांव दो ज़म में इस खेल का प्रदर्शन देखा। यहां गर्मियों में बाजार लगता था जिसमें तिब्बत से ऊन, पश्म, नमक आदि बेचने के लिए लाया जाता और तिब्बती यहां से अनाज, बरतन और कपड़े आदि ले जाते। उन्होंने इस खेल की जादुई ढंग से समाप्ति पर हैरानी प्रकट की। उन्होंने उल्लेख किया है आरम्भ में प्रार्थना के बाद एक बुजुर्ग पीठ के बल लेट गया जिस के पेट पर एक भारी पत्थर रख दिया गया। उस पत्थर पर एक आदमी तब तक प्रहार करता रहा जब तक कि वह टूटा नहीं। यह नृत्य बड़ी सफाई से किया गया। ब्रूस ने आगे उल्लेख किया है कि दर्शक चारों ओर अर्धवृत बना कर यह खेल देख रहे थे। खेल समाप्त होने पर नर्तक लामा पीतल के वाद्य झांझ को थाली की तरह दर्शकों के आगे कर घूमा। ब्रूस साहब ने इस में एक रुपये का सिक्का डाला और उनके सहायक चंद्र सिंह ने एक दुअन्नी डाली। यह देख कर ब्रूस साहब हैरान रह गए कि बाकि दर्शकों ने केवल एक एक सूई ही डाली। सम्भवतः इस क्षेत्र में सूई भी एक महत्वपूर्ण चीज रही होगी। यहां कई क्षेत्रों में सूई एक दुर्लभ वस्तु थी जो व्यापार के समय अनाज के बदले भी ली जाती थी।

जॉर्ज डी रेरिख द्वारा बुछैन का वर्णन

जार्ज डी रेरिख ने इस खेल को सर्वाधिक सम्मान प्राप्त और इसके पात्रों को दिव्यशक्ति से सम्पन्न माना है। उन्होंने लिखा है कि इस खेल का कभी कभार ही प्रदर्शन किया जाता है। इस खेल का प्रारम्भ दुष्टात्माओं के दमन के लिए हुआ जिसने पत्थरों के टुकड़ों में अपना आवास बना लिया था। अतः इसे तिब्बती में 'फो-वर-दो-चोग' अर्थात् छाती पर पत्थर तोड़ने का खेल कहा जाता है।

रेरिख को इस नाट्य को लाहौल प्रवास के दौरान दो बार

हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र लाहुल-स्पीति, किन्नौर के निवासियों ने पुरातन संस्कृति, परंपराओं को यथावत रखा है। राज्य के विख्यात साहित्यकार व लोक संस्कृति के ज्ञाता डॉ. एम. आर. ठाकुर के अनुसार लाहुल-स्पीति, किन्नौर और लद्दाख आदि जनजातीय क्षेत्रों में 'बुछैन' लोकानुरंजन का महत्वपूर्ण साधन है। मनोविनोद के अतिरिक्त इस खेल ने इन क्षेत्रों में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में विशिष्ट भूमिका निभाई है। स्थान भेद के कारण इसे बुचेन या बुज़ेन भी कहते हैं परंतु इसका वास्तविक नाम 'फो-बर-दो-चोग' है, जिसका अर्थ 'आमाशय' पर पत्थर-फाड़ खेल या अनुष्ठान है। यद्यपि इसकी पृष्ठभूमि धार्मिक है और यह माना जाता है कि इसके कलाकारों में अधिदैविक शक्ति होती है, परंतु हास्य-विनोद, आमोद-प्रमोद और मनोरंजन इसका मुख्य लक्ष्य प्रतीत होता है।

देखने का अवसर मिला। इस नाट्य को स्पिति से आए घूमन्तु लामाओं ने प्रदर्शित किया जिन्हें बुछैन कहते हैं। महायोगी थंग-तोंग-ग्यलपो एक बौद्ध मठ का निर्माण करवा रहे थे कि बहुत से अपशकुन होने लगे। दिन में जो निर्माण कार्य हो पाता था, रात को उसे दुष्टात्मा गिरा देते थे। इस गोन्पा को पूरा करने के लिए पहली बार बुछैन का अनुष्ठान किया गया जिससे बौद्ध मठ का निर्माण ठीक ढंग से चल सका। एक लोहे के पुल के निर्माण के समय भी ऐसा ही हुआ। नदी का जल स्तर बढ़ जाता और पुल का निर्माण नहीं हो पाता। अतः दूसरी बार बुछैन का आयोजन किया गया जिसके बाद पुल के निर्माण का कार्य अबाध गति से चल पड़ा।

एक बार ल्हासा में एक दुष्टात्मा 'जा दुद' के प्रकोप से लोगों में बीमारियां फैल गईं। कई तरह के इलाज के बाद भी बीमारियां ठीक न हुईं अतः थंग-तोंग-ग्लपो को बुलवाया गया जो श्वेत पूंछ वाले गिद्ध पर सवार हो पहुंच गए। उस समय दुष्टात्मा प्रवेश द्वार की दहलीज में छिप कर बैठी थी। ल्हासा नगर में इस पत्थर को सभी लोगों के सामने खुले में रखा गया। थंग-तोंग-ग्लपो ने उस पत्थर को एक अन्य छोटे पत्थर से तोड़ दिया। इस पत्थर को तोड़ने के लिए किए जाने बारह प्रयासों की चर्चा की गई है। तेरहवीं बार भी पत्थर न टूटे तो अपशकुन माना जाता है। इसके बाद इसे चौराहे में रख कर एक सौ बालकों द्वारा शोर मचाते हुए एक सौ लौहारों या आठ नवयुवकों द्वारा तुड़वाया जाता है।

इसके बाद रेरिख द्वारा पूरे अनुष्ठान का वर्णन किया है जिस में पत्थर पूजन, बुछैन का मन्त्रजाप और नृत्य, चरवाहे का प्रवेश और लोगों को हंसाना, तलवारों का पेट में चुभोना, पत्थर तोड़ना आदि समस्त क्रियाओं का वर्णन किया है। रेरिख ने लिखा है : ''मेरे सामने जिन लामा नर्तकों ने इस विशेष आयोजन में भाग लिया, उनकी छाती असामान्य रूप से बलिष्ठ थी और उनके शरीर बहुत शक्तिशाली थे। इस अनुष्ठान के बाद 'पी-वड़.' के संगीत के साथ नृत्य आरम्भ हो जाता है। पी-वड़. का मुख्य अभिनेता बजाता है। नृत्य के साथ लोकप्रिय गीत भी गाए जाते हैं।''

सन् 1920 के गजेटियर में भी उल्लेख है कि प्रत्येक लामा का पुत्र बुछैन बनता था। पिन घाटी के लोग छोटे छोटे नाट्य दल बना कर बुछैन का प्रदर्शन कर अपनी आजीविका चलाते थे। वे गांव गांव ठहर कर धार्मिक कथाएं सुनाते हुए इस नाट्य का प्रदर्शन करते थे। ये लोग तिब्बत के साथ व्यापार भी करते थे जिस में नमक के बदले अनाज का व्यापार होता था। इस नमक को किन्नौर में बेचा जाता था और बदले में लोहा, भ्रेस और शहद लिया जाता।

स्पीति की पिन घाटी, जो इस नाट्य का केन्द्र रही है, में सन् 1917 में उन्नीस परिवार ये नाट्य कर रहे थे। अभी पिछले कुछ वर्षों पहले तक भी यहां कुछ नाट्य दल शेष है जो बाकायदा काम कर रहे हैं। इस घाटी के गांव खर, गुलिङ्, लितिंङ्, मुद तथा सगनम में बुछैन नाट्य दल अभी भी विद्यमान हैं। बुछैन बौद्ध धर्म की यिंङ्मा या शंगपा शाखा से निकला है। इस का मुख्य केन्द्र या स्थान गुलिङ् में माना जाता है।

बुछैन के जनक

इन सब धार्मिक और कल्याणकारी कार्यों के अलावा थंग-तोंग-ग्यलपो को बुछैन नाट्य परंपरा का जनक माना जाता है। इन्होंने सात बहनों की एक नाट्य मण्डली तैयार की। जगह जगह नाट्य का प्रदर्शन कर ये पुल बनाने के लिए धन एकत्रित करते थे। अपने कल्याणकारी कार्यों के कारण ये एक कुशल वैद्य, लोहार, अभियंता माने जाते हैं। बुछैन परंपरा के संस्थापक थंग-तोग-ग्यलपो की मृत्यु सन् 1485 में तिब्बत के चड्. प्रांत में हुई मानी जाती है।

पुरातन परंपरा का प्रारम्भ

थंग-तोंग-ग्यलपो ने इस लोक नाट्य का प्रारम्भ तिब्बत से किया। चौदहवीं शताब्दी में मणिपा लामाओं द्वारा 'ऊं मणि पद्मे हूं' का जाप करते हुए इस नाट्य की प्रस्तुति की जाती थी। मणिपा लामाओं ने तिब्बत में दीवारों पर कई कथाओं को चित्रों के माध्यम से प्रदर्शित किया।

इन कथाओं में धार्मिक और नैतिक शिक्षा भी दी जाती थी। थंग-तोंग-ग्यलपो का शिष्य बुछैन कहलाता था। मणिपा लामा और बुछैन में मुख्यतः अंतर यह है कि बुछैन मणिजाप के साथ अंत में छाती पर पत्थर तोड़ने का प्रदर्शन भी करते थे। एक कथा है कि थंग-तोंग-ग्यलपो एक बौद्ध विहार का निर्माण करवा रहे थे। जो निर्माण दिन में किया जाता, रात को उसे राक्षस नष्ट कर देते। तब थंग-तोंग-ग्यलपो ने इस के निवारण के लिए छाती पर पत्थर तोड़ने का समारोह किया इसी तरह एक बार जब वे लोहे के पुल का निर्माण कर रहे थे, राक्षसों और दानवों ने विघ्न डालने आरम्भ कर दिए। यहां भी उन्होंने समारोह कर पत्थर में स्थित आसुरी शक्तियों को पत्थर तोड़ शांत किया।

एक अन्य कथा के अनुसार तिब्बत की राजधानी ल्हासा में महामारी फैली तो थंग-तोंग-ग्यलपो सफेद गरूड़ पर सवार हो कर ल्हासा गए और महामारी फैलाने वाली दुष्टात्माओं को पत्थर में बैठा, उसे वज्र के प्रहार से नष्ट कर दिया।

थंग-तोंग-ग्यलपो के शिष्य ही बुछैन कहलाए। इन्होंने इस परंपरा को जारी रखा। आधि, व्याधि, प्राकृतिक आपदा, दैविक आपदा, दानवी आपदा, अकाल, अनावृष्टि आदि विघ्नों को दूर करने के लिए ये लोग अनुष्ठान करने लगे।

इस नाट्य का दूसरा उद्देश्य जनता में बौद्ध धर्म के प्रति आस्था, निष्ठा और विश्वास जगाना है। इस नाट्य को मनोरंजन का एक साधन बनाने के साथ धर्मनिष्ठ बनाया ताकि अत्याचारी और धर्मविरोधी राजा के होते हुए भी धर्म का प्रचार हो सके। बौद्ध

धर्म के मन्त्रोच्चारण, धार्मिक कथाओं के प्रवचन के साथ तान्त्रिका और चमत्कारपूर्ण नृत्यों से इस नाट्य ने धर्म का ह्रास होने से रोका। बाद में इसका उपयोग दुष्टात्माओं को दूर भगाने, प्राकृतिक या दैविक आपदा से बचने, रोग नाश करने के लिए होने लगा।

बुछैन अनुष्ठान का आयोजन

बुछैन का मुख्य क्षेत्र या केन्द्र अब स्पीति की पिन घाटी है। इस घाटी में सगनम के साथ साथ सोलह गांव है जिनमें यह परंपरा बची हुई है।

परंपरागत उत्सव के रूप में मनाए जाने वाले नाट्य का प्रारम्भ नवम्बर में होता है। सबसे पहले थंग-तोंग-ग्यलपो की मूर्ति की स्थापना की जाती है जो इस नाट्य के संस्थापक रहे हैं। यह अनुष्ठान पिन घाटी के मुद गांव से आरम्भ होता है। नाट्य मण्डली के स्वागत हेतु सभी ग्राम वासी इकट्ठा हो जाते है और उन्हें पहनाने के लिए खतग हाथ में लिए रहते हैं। साथ में दूध, दही और मदिरा भी लिए रहते हैं। ये भेंट सब बुछैन को दी जाती है। इनके ठहरने का प्रबन्ध किसी सम्पन्न घर में किया जाता है। ग्राम वासी भी अपनी अपनी श्रद्धा और क्षमता के अनुसार इन की आवभगत व खान पान का प्रबन्ध करते हैं। हर वर्ष इनके ठहरने के लिए एक खाता पीता, सम्पन्न घर चुना जाता है।

नाट्य का प्रारम्भ रात्रि को भोजन के बाद होता है। सर्वप्रथम शंख बजा कर इसके प्रारम्भ की सूचना दी जाती है जिससे लोग इकट्ठे हो जाते हैं। अब मणि जाप किया जाता है और इस बीच ग्रामीण इन लोगों को भेंट करने के लिए सत्तू, घी, अनाज और अपनी अपनी क्षमता अनुसार रुपये पैसे भी लाते हैं।

बुछैन मणिजाप के साथ अपने लाए चित्रों के बारे में बताते हैं। इन चित्रों में पद्‌म होदबर, डोवा सड्मो, ग्यलबु नोरसड् आदि की जीवनियां होती है जिनके बारे में जनसमूह को बताया जाता है। ग्रामीण इन लोगों से ज्ञान की बातें बड़े ध्यान से सुनते हैं। मणिजाप पूरा होने पर ग्रामीण अपने साथ लाई सामग्री इन लोगों को भेंट स्वरूप देते हैं।

मंच चयन, मूर्ति स्थापना तथा पात्रों की वेशभूषा

इस लोक नाट्य के लिए विशेष मंच की अपेक्षा नहीं रहती। गांव के प्रांगण में किसी भी खुले स्थान पर यह नाटक खेला जा सकता है। गांव के बीच या किनारे पर बारह गुणा बारह फुट का स्थान पर्याप्त रहता है। इस स्थान या मंच को 'छोद मचम' या 'तोगरा' कहा जाता है। मंच के पीछे या कभी कभी बीच में नाटक के संस्थापक थंग-तोंग-ग्यलपो' की मूर्ति स्थापित कर दी जाती है। यह मूर्ति अष्ट धातु से निर्मित होती है। इन की मूर्ति एक वृद्ध साधक की मूर्ति होती है जो पालथी मार साधना में बैठा है। सिर पर श्वेत जटाएं और मुकुट, हाथ आगे की ओर जंघाओं पर। ये हाथ में 'छे-बुम' अर्थात् अमृत का पात्र लिए हुए होते हैं। इन्हें प्रायः श्वेत वस्त्र धारण किए बताया जाता है। इस मूर्ति के साथ दो और मूर्तियां स्थापित की जाती हैं जिनमें एक अवलोकीतेश्वर की और दूसरी द्रीमेभ-कुंदनमथर की होती है। इन मूर्तियों को भी श्वेत वस्त्र में लपेट कर रखा जाता है। थंग-तोंग-ग्यलपो की प्रतिमा के बायीं ओर एक त्रिशूल रखा जाता है, दूसरी ओर घण्टी। प्रतिमा के चारों ओर सात कटोरियां रखी जाती हैं जिनमें जौ, धूप, पुष्प, जल आदि रखा जाता है। सामने एक दीपक जला कर रखा जाता है। अब कई जगह स्थायी मंच भी बन गए हैं।

मुख्य पात्र बुछैन जिसे लो-छेन भी कहा जाता है, सिर पर पांच रंगों की टोपी या पगड़ी पहनता है। इस टोपी को तिब्बती में 'फोद-का' कहते हैं। स्थानीय बोलियों में इसे 'थोद', 'दरमिजे' भी कहा जाता है। टोपी के पांच रंग पांच दिशाओं के द्योतक माने जाते है। पूर्व का सफेद, पश्चिम का लाल, उत्तर का नीला, दक्षिण का पीला और आकाश का हरा। ये पंचरंग उस मुकुट के प्रतीक हैं जो बाद्धिसत्व को सिद्धि प्राप्त होने पर मिले। बुछैन के कानों में चांदी के आभूषण होते हैं जिन्हे 'पंदप' कहा जाता है। वह एक लम्बा चोगा पहनता है जो रेशम के रंगीन कपड़ों से बनाया जाता है और

बुछैन का मुख्य क्षेत्र या केन्द्र अब स्पीति की पिन घाटी है। इस घाटी में सगनम के साथ साथ सोलह गांव है जिनमें यह परंपरा बची हुई है। परंपरागत उत्सव के रूप में मनाए जाने वाले नाट्य का प्रारम्भ नवम्बर में होता है। सबसे पहले थंग-तोंग-ग्यलपो की मूर्ति की स्थापना की जाती है जो इस नाट्य के संस्थापक रहे हैं। यह अनुष्ठान पिन घाटी के मुद गांव से आरम्भ होता है। नाट्य मण्डली के स्वागत हेतु सभी ग्राम वासी इकट्ठा हो जाते है और उन्हें पहनाने के लिए खतग हाथ में लिए रहते हैं। साथ में दूध, दही और मदिरा भी लिए रहते हैं। ये भेंट सब बुछैन को दी जाती है। इनके ठहरने का प्रबन्ध किसी सम्पन्न घर में किया जाता है। ग्राम वासी भी अपनी अपनी श्रद्धा और क्षमता के अनुसार इन की आवभगत व खान पान का प्रबन्ध करते हैं। हर वर्ष इनके ठहरने के लिए एक खाता पीता, सम्पन्न घर चुना जाता है।

जिसकी बांहे हाथों से बाहर तक लम्बी होती हैं। इसके ऊपर वह एक 'तोंगा' नाम का वस्त्र पहनता है और नीचे टांगों में गहरे लाल रंग का ऊनी घाघरा। ऊपर का वस्त्र 'किरा' नाम के रंगीन धागों से बने कमरबंद से बंधा रहता है। पैरों में स्थानीय जूता जिसे 'ल्हम' या 'ट्रेदपा' कहते हैं। इस जूते का तला याक की खाल से बना होता है।

पत्थर तोड़ने की क्रिया के समय बुछैन एक कपड़ा 'पुंग्खप' पीठ पर लटकाता है जो सूइयों से कन्धों पर बांध दिया जाता है। पत्थर को सफलतापूर्वक तोड़ने के लिए अभिमन्त्रित और तान्त्रिक अष्टघातु से निर्मित एक आभूषण भी मन्त्रोच्चारण के साथ पहनाया जाता है जिसे 'दोर्जे-फुरफा' कहते हैं। इसमें, ऊपरी भाग में तीन देवी की मूर्तियां तथा निचले भाग में भैरव की मूर्ति बनी होती है। इसे एक सौ आठ मनको की बनी माला 'ठड़ा' पहनाई जाती है। मंगा और मणियों से जड़ा एक हार भी पहनाया जाता है। चांदी और शंख से बना एक और आभूषण 'थोंगा' भी गले में डाला जाता है।

खेल का शुभारंभ प्रार्थना से होता है जिससे आरंभिक शब्द इस प्रकार हैः-

बुछैन एक विघ्नहारी और कल्याणकारी कृत्य है। यह प्रतिदिन किया जाता है जब तक बुछैन उस गांव में रहते हैं। बुछैन के दिन प्रातः ही एक लम्बा पत्थर ला कर रख दिया जाता है जिस के ऊपर जौ या गेहूं से स्वास्तिक चिह्न बनाया जाता है। रात्रि को इसी स्थान पर शंख ध्वनि करने के बाद एकत्रित होना होता है। वेनपा अर्थात् विदूषक की भूमिका सबसे पहले आती है। मणि जाप के बाद वेनपा अर्थात् विदूषक एक गडरिये का रूप धारण कर आता है। इस पात्र को लुगजी यानि गडरिया या चरवाहा कहा जाता हैं। इसके हाथ में पत्थर फैंकने के लिए युगदो होता और कन्धे पर टूटा-फूटा थैला। लोगों के हंसाने के लिए यह व्यक्ति उल्टे कपड़े या उल्टी खाल पहनता है, चेहरे पर सत्तु का लेप लगा अपनी मुद्राएं हंसी लाने वाली बनाता है। पीठ पर टूटी-फूटी टोकरी उठाए रस्सा बाटता हुआ गाने गाता है जिससे लोगों का भरपूर मनोरंजन हो सके। बुछैन वेनपा से धर्मकर्म के प्रश्न पूछता है तो ये उल्टे सीधे जबाब दे कर लोगों को हंसाता है। इसने अपनी टोकरी में गुधे हुए 'चाम्-पा' अर्थात् सत्तू रखे होते हैं जिन्हें उंगलियों में घुमा कई प्रकार की व्याख्याएं करता है और अंत में देवताओं को अर्पित करने के बाद उसे खा जाता है। चोगे से बोतल निकाल कर छंग (स्थानीय शराब) पीता है और मतवाला होने का अभिनय करता है। दर्शकों को भी छंग पीने को देने का अभिनय करता है। वह भोटी, हिन्दी और स्थानीय बोलियों में बात कर हंसाने की कोशिश करता है। थैले के कई कुछ निकाल कर बुछैन को देता है कि तुम्हारी पत्नी ने तुम्हें कुल्लू मनाली से तोहफा भेजा है। कई बार यह एक वनमानुष की तरह भी व्यवहार करता है। इसे मिर्गोद अर्थात् आदि मानव और शिकारी भी कहते हैं। अंत में बुछैन इस का शमन करता है।

मुख्य खेल

बुछैन द्वारा तरह तरह के हैरतअंगेज करतब दिखाना इस नाट्य का मुख्य अंग है।

नाटक के मुख्य पात्र को बुछैन या लो-छैन कहते हैं। वेनपा के अलावा इस नाट्य में दो या तीन कलाकार होते हैं जिन्हें बु-छुड् कहा जाता है। नाट्य प्रस्तुति के समय बुछैन केवल अधोवस्त्र सा पहन कर आता है। वह केवल अपने आभूषण पहने रखता है। पीठ पर लाल पीले ध्वज, सिर पर रंग बिरंगे कपड़े लपेटे जाते हैं। दोनों बांहों में सूइयां चुभो कर दोनों गालों के बीच भी लम्बी सूई चुभोई जाती है। इस बीच वाद्य यन्त्र बजते रहते हैं। दोनों हाथों में एक नुकीली तलवार ले कर उसकी नोक पर पेट के बल लेट कर करतब दिखाया जाता है। दर्शक मन्त्रजाप करते हुए हैरानी से इस करतब को देखते हैं। एक यंनपा अर्थात् श्रावक को नग्न कर उसके पेट पर तीन बार काले रंग का एक चिह्न लगाया जाता है। उसे दुष्टात्मा के रूप में मान कर उसके पेट पर तीन बार तलवार का वार किया जाता है। इसके बाद होता है पत्थर तोड़ने का प्रदर्शन। यह विघ्न निवारण का प्रदर्शन है। पहले वह मन्त्रोच्चारण करता हुआ पत्थर की परिक्रमा करता है। बार बार पत्थर के सामने झुकता है। एक पात्र से चारों ओर जौ फेंकता है। लो-छैन के प्याले में छंग भरी जाती है। वह उसे पत्थर के चारों ओर पांच बार गिराता है। इसके बाद पत्थर के सामने खड़ा होकर प्रार्थना करता है। प्रस्तुत ग्रामीणों में किसी को बुला कर जमीन पर लिटा दिया जाता है और उसके पेट पर पतला सा कपड़ा बिछा कर पत्थर रख दिया जाता है। इस पत्थर को बुछैन पेट पर ही तोड़ता है। पत्थर यदि पहले प्रहार से टूट जाता है तो शुभ माना जाता है। यदि दो तीन प्रयासों में भी पत्थर न टूटे तो किसी दूसरे व्यक्ति को लिटा कर पुनः पत्थर तोड़ने का प्रयास किया जाता है।

अब बुछैन को लोग घर से लाए जौ, अनाज, सत्तू, घी और रुपये पैसे भेंट करते हैं। बुछैन वाद्य बजाता है और सभी नृत्य करने लगते हैं। बुछैन इस समय अश्लील शब्दों का भी प्रयोग करता है ताकि दुष्टात्माएं गांव से भाग जाएं।

नाट्य की समाप्ति पर बुछैन दूसरे गांव की ओर प्रस्थान करते हैं। एकत्रित ग्रामीण उन्हें अपने गांव की सीमा तक छोड़ने जाते हैं। दूसरे गांव के लोग उन का स्वागत करते हुए अपने गांव में श्रद्धापूर्वक ले जाते हैं। इस तरह यह नाट्य गांव गांव में दिखाया जाता है ताकि गांव से दुष्टात्माओं को भगाया जा सके और सारी विघ्न बाधाओं का नाश हो। यह भी परंपरा है कि यदि बुछैन पिन घाटी के अंतिम गांव तक न पहुंच पाएं तो अगले वर्ष उसी गांव से नाट्य की शुरुआत होगी।

स्पीति की पिन घाटी में तो यह परंपरा जीवित है। किन्नौर,

स्पीति की पिन घाटी में तो यह परंपरा जीवित है। किन्नौर, लद्दाख और लाहौल में भी यह पंरपरा निभाई जाती है। अब घरों में भी सुख समृद्धि के लिए बुछैन दलों को आमन्त्रित किया जाता है। कई जगह फसल कटाई से पहले जब छम्म नृत्य होता है, इसके साथ अंत में बुछैन भी करवाया जाता है। अब विवाह, शुभ कार्य, मेले उत्सव में भी बुछैन होने लगा है। वार्षिक मेलों जैसे लदारचा उत्सव, किनौर तथा केलंग में जनजातीय उत्सवों में भी बुछैन का प्रदर्शन किया जाता है। स्कूल, कॉलेज के समारोहों में भी बुछैन नाट्य किया जा रहा है जो एक अच्छी परंपरा है और इससे यह नाटड जीवित रह सकेगा।

लद्दाख और लाहौल में भी यह पंरपरा निभाई जाती है। अब घरों में भी सुख समृद्धि के लिए बुछैन दलों को आमन्त्रित किया जाता है। कई जगह फसल कटाई से पहले जब छम्म नृत्य होता है, इसके साथ अंत में बुछैन भी करवाया जाता है। अब विवाह, शुभ कार्य, मेले उत्सव में भी बुछैन होने लगा है। वार्षिक मेलों जैसे लदारचा उत्सव, किनौर तथा केलंग में जनजातीय उत्सवों में भी बुछैन का प्रदर्शन किया जाता है। स्कूल, कॉलेज के समारोहों में भी बुछैन नाट्य किया जा रहा है जो एक अच्छी परंपरा है और इससे यह नाट्य जीवित रह सकेगा।

अन्य विशेषताएं

बुछैन प्रस्तुति में महिलाएं भाग नहीं लेतीं। बुछैन के कलाकार निम्नमध्य वर्ग से होते हैं। किसी को बुछैन में शामिल होने पर प्रतिबन्ध भी नहीं है। सामान्यतः सन्भ्रांत परिवारों से बुछैन नहीं बनते। सन्भ्रांत परिवारों को 'खाड़्छेन' कहते हैं। उनसे अलग हुए परिवार, जिन्हें 'खाड़्छुड' अर्थात् छोटे परिवार या घर कहा जाता है, से ही बुछैन बनते हैं। समाज में समझे जाने वाले निम्नतर वर्ग जैसे गरा या बेडा से भी बुछैन नहीं बन सकता। बुछैन लामाओं से अलग तरह से लम्बे लम्बे बाल रखते हैं। आम बोलचाल में बुछैन को बु-ज्हेन भी कहा जाता है।

इस कला को सीखने के इच्छुक युवा को दो तीन वर्षों तक किसी दल के साथ रह कर उनके साथ घूमना पड़ता है। इसे गा कर और नाच दिखा कर अपनी योग्यता का प्रदर्शन करना होता है। इसे प्रशिक्षण के समय 'थोगपो' अर्थात् सेवक कहा जाता है।

बुछैन का अर्थ 'बड़ा लड़का' भी है। बौद्ध मत में लामाओं और शिष्यों को पिता पुत्र के समान माना जाता है। अतः बुछैन का अर्थ है सब से बड़ा शिष्य। बुछैन के संस्थापक थंग तोंग ग्यलपो के नाम से पहले 'फ' लगाया जाता है। उन्हें 'फ डुबछेन थंग तोंग ग्यलपो' कहा जाता है जिस का अर्थ है पिता महासिद्ध थंग तों ग्यलपो।

बुछैन द्वारा कथाओं का प्रदर्शन

बुछैन को अपने प्रदर्शन के समय कई कथाओं का सहारा लेना पड़ता है क्योंकि उसे इन कथाओं को सुनाने और इनका नाट्य रूपांतर करने की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न धार्मिक कथा कहानियों, जातक कथाओं को उसे नाट्य के समय सुनाना और प्रदर्शन करना पड़ता है। अतः मुख्य पात्र बुछैन को एक लामा की तरह पठन पाठन करना होता है। उसके घर में इन कथाओं की पोथियां विद्यमान रहती हैं। बौद्ध महापुरुषों की जीवनियां, जातक कथाएं तथा कई प्रसिद्ध प्रसंग इनके नाटक की कथावस्तु बनते हैं।

कहानियों में 'दय लोग नाग सा होन बुम', 'दय लोग लिंगजा छोए किद','दय लोग सांगे छोए जोम', 'उर्ग्यन डिमेद कुनदन', 'डम-जे जुग की यिंमा', 'छोए ग्यल युन रल वा', खिंऊ पदमा होद बर', डुगपा कुन्लेग', 'दोचा मोचा', जुड़्पो दोन योद' आदि कथाओं का प्रयोग इस नाट्य में किया जाता है। इन कथाओं में पुर्नजन्म, महान् साधकों के अतिरिक्त 'मिला रेपा' जैसे कवियों की कहानी भी कही जाती है।

'अभिनंदन' कृष्ण निवास
लोअर पंथा घाटी, शिमला-171009,
मो. 94180-85595

संदर्भ :

1. जनजातीय लोक नाट्य एवं अनुष्ठान : बुछैन : एम आर ठाकुर, विपाशा दशक अंक 60-61-62, जनवरी-जून,1995
2. बुछैन : हिमाचल पर जनजातीय लोक नाट्य, सुदर्शन वशिष्ठ, हिमप्रस्थ, सितंबर, 2015

आलेख

मानवीय अनुभूतियों को मुखरित करता लोक नाट्य हॉर्न

◆ डॉ. देव कन्या ठाकुर

लोकनाट्य, यूं तो लोकनाट्य का अर्थ अपने आप में व्यापक विस्तार लिए हुए है। इसे आमतौर पर ग्राम्य परिवेश से जोड़ा जाता है जो इसे संकुचित अर्थों में परिभाषित करता है। जबकि सही मायने में लोक के अन्तर्गत गांव में इतर रहने वाला वो जनमानस भी है जो परम्परा व आदिम विश्वासों से मुक्त नहीं है।

लोक का एक अर्थ सर्वसाधारण जनता से सम्बन्ध रखने वाला भी है जिसे सर्वहारा वर्ग के रूप में गांव व शहर में देखा जा सकता है, जो श्रम की बुनियाद पर अपने जीवन की इमारत खड़ी करता है। सही मायने में लोक की पहचान उसकी संस्कृति से होती है, क्योंकि वह संस्कृति का रचयिता भी है और उसकी रचना भी। वह सदैव सृजनशील रहा है। इसी सृजनशीलता का ही प्रतिफल है कि संस्कृति युग-युगांतरों से अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती रही है। लोक कलाएं आस्थाएं एवं परम्पराएं आदि लोक संस्कृति की सहज अभिव्यक्ति हैं।

हिमाचल प्रदेश में भी लोकनाट्य की अपनी एक स्वतन्त्र परम्परा है। स्थान-स्थान पर ये नाट्य अभिनीत होते हैं। जिनमें रंग-रंग की वेशभूषा, रसीले कथोपकथन, लकड़ी, कागज, माटी और पीतल के मुखौटों का प्रयोग होता है। इसलिये यहां के लोकनाटकों का विषय अधिकतर लौकिक है और इनका मुख्य उद्देश्य खाली क्षणों में मनोरंजन प्रदान करना है। कथाएं और स्थानीय नृत्यों की शौर्य पूर्ण कथाएं भी इनका विषय बन गई है।

लोकनाट्यों से लोकानुष्ठानों को अलग नहीं किया जा सकता। वस्तुतः लोकनाट्यों के मूल में लोकानुष्ठान आधारित हैं। बल्कि यह माना गया है कि नाटक का उदय धार्मिक अनुष्ठानों से हुआ है। हिमाचल प्रदेश में प्राचीन समय से ही लोकनाट्यों की विशिष्ट परम्परा रही है। यह लोकनाट्य हास्य प्रधान होने के साथ-साथ अपने समय में फैली कुरीतियों और विसंगतियों का विरोध भी करते आये हैं। यहां के लोक गीतों में जहां हिमाचली संस्कृति की अविरल धारा प्रवाहित होती है वहीं पर लोक नाट्यों में अपने समय की सामाजिक व्यवस्था मुखरित हो उठती है।



पहाड़ों में सर्दियों का मौसम जहां एक ओर हिमपात के मनोरम दृश्यों के लिये प्रसिद्ध हैं वहां दूसरी ओर यह लोक मनोरंजन का भी विशिष्ट समय है। वर्ष भर के कड़े परिश्रम के बाद जब जौ और गेहूं खेतों में बोए जाते हैं तो लोग खेत खलिहानों से अवकाश पाकर लोक नृत्य कथा कहानियों लोक नाट्यों आदि सांस्कृतिक कार्यक्रमों एवं विवाह शादियों, जागरा-मेलों आदि धार्मिक क्रिया-क्लापों में व्यस्त हो जाते हैं।

वस्तुतः प्रथम हिमपात के पूर्व का शरतकाल पहाड़ों में लोक नाट्यों का समय होता है। हिमाचल प्रदेश में लोक नाट्य अनेक रूपों में प्रचलित हैं। कांगड़ा जनपद में रास लीला, भगत लोक नाट्य बड़े प्रसिद्ध हैं। मण्डी में बांठणा, बिलासपुर में स्वांग, सिरमौर में करियाला, शिमला के निम्न क्षेत्रों में बलराज तथा कुल्लू, ऊपरी शिमला, किन्नौर तथा चम्बा क्षेत्र में हरण लोकनाट्य मनोरंजन के विशिष्ट साधन जुटाने के साथ-साथ हिमाचल के लोक जीवन की अंतरंग झांकी और प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इनमे रामलीला रासलीला और बलराज में प्रायः कथानक का महत्व रहता है। स्वांग और करियाला में संवाद और प्रहसन की प्रधानता रहती है और बांठड़ा में अभिनय प्रमुख रहता है। इस दृष्टि से हरण लोकनाट्य में नृत्य, संगीत, गीत, संवाद, वाद्य, अभिनय सभी दृष्टियों से हरण एक विशिष्ट लोकनाट्य है। बोली भिन्नता के कारण इसे कुल्लू के निचले क्षेत्र में हरण, भीतरी कुल्लू में होर्न, किन्नौर में होरिगंफों तथा चम्बा में हरणेतर कहते हैं। सबका सम्बन्ध शब्द हरिण से है।

हिमाचल प्रदेश में भी लोकनाट्य की अपनी एक स्वतन्त्र परम्परा है। स्थान-स्थान पर ये नाटक अभिनीत होते हैं जिनमें रंग-रंग की वेशभूषा, रसीले कथोपकथन, लकड़ी, कागज, माटी और पीतल के मुखौटों का प्रयोग होता है। इसलिये यहां के लोकनाटकों का विषय अधिकतर लौकिक है और इनका मुख्य उद्देश्य खाली क्षणों में मनोरंजन प्रदान करना है। कथाएं और स्थानीय नृत्यों की शौर्य पूर्ण कथाएं भी इनका विषय बन गई हैं।

प्राचीनकाल में मनोरंजन के साधन कम होने के कारण लोकनृत्य एवम् लोकनाट्य का अधिक प्रचलन रहा है। लोकनाट्य जनमानस से जुड़े होते हैं। इन नाटकों में समाज का चित्रण हास्य व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत होता है। कुल्लू में होरण सब से प्रमुख लोकनाट्य है। यहां हरणेतर को स्थानीय भाषा में होरन कहते हैं। इनमें कलाकार द्वारा हिरण का रूप धारण कर संवाग किया जाता है। इस लोकनाट्य की व्युत्पति पर तीन प्रसंग हैं। प्रथम प्रसंग सीता हरण से है।

लोक विश्वास के अनुसार जब मारीच राक्षस ने सीता हरण के समय सोने के हिरण का रूप धारण किया था तो अन्ततः श्री राम ने उसे मार दिया था। सीता की खोज करते हुए जब राम, लक्ष्मण और हनुमान आदि लंका पहुंचे तो सीता के ठिकाने का किसी को पता नहीं चला। तब हनुमान की सलाह पर वानरों में से कुछ ने राक्षस का रूप धारण किया और रावण के पास जाकर अनुरोध किया कि मारीच ने रावण के लिए बहुत बड़ा बलिदान दिया है। उसकी समृति में कुछ आयोजन होना चाहिए। रावण इसके लिए सहमत हो गया। तब मारीच की याद में एक खेल रचा गया। इसमें हनुमान ने मारीच हिरण का रूप धारण किया और अन्य वानरों ने साधुओं का रूप धारण कर इधर-उधर भागना शुरू कर दिया। इस वेश में उन्होंने अशोक वाटिका में सीता को खोज डाला था। उसी घटना की याद में हरण लोकनाट्य आज तक प्रचलित है।

दूसरे प्रसंग में कहा जाता है कि कुल्लू में राणाओं का राज्य था। वे जनता पर जुल्म करते थे। लोगों ने राणाओं के हिरण के मुखौटे में जाकर छल से समाप्त किया। तीसरी प्रथा के अनुसार जब गद्दी भेड़ बकरियां लेकर कई दर्रे पार करते हुये कुल्लू पहुंचते हैं तो वे अपनी प्रसन्नता का प्रदर्शन बकरे को नचाकर करते हैं।

कौरथुआ नागा नौचदा लागा
नौचदे-नौचदे नौठा छेते रे शागा
खान्दा लागा छेते रे शागा

यह गीत उस प्रसंग का है जिसमें हॉर्न को कौरथ (भेड़) कहा जाता है जिसमें पुहाल (भेड़पालक गद्दी) बकरे को नचाते हैं। कुल्लू में हार्न विशेष अवसर पर विशेष स्थान पर आयोजित किया जाता है। कुल्लू में हॉर्न का आयोजन अश्विन शुक्ल दशमी से आरम्भ होता है। बंजार क्षेत्र में विजय दशमी से आरम्भ होकर सात दिन तक यह पर्व चलता है। चम्बा क्षेत्र में हरण को हरणेतर कहते हैं। वहां हरण लोकनाट्य के प्रमुख दिन होली के दिन हैं। यों तो इसे सर्दियों में कभी भी खेला जा सकता है, परन्तु वहां होली का त्योहार हरणेतर के लिए प्रसिद्ध है। वहां भी हरण बनाने का ढंग लगभग कुल्लू जैसा है, परन्तु हरण नाचते समय उतना नहीं झुकती जितनी कुल्लू की हरण झुकती है। नृत्य के समय गीत प्रायः होली के ही होते हैं। जो गीत प्रदेश के अन्य भागों में होली में गाए जाते हैं, वही गीत हरणेतर के साथ गाए जाते हैं। यहां स्वांगी को नारद कहते हैं। उसे लम्बूतरी टोपी पहनाई जाती है। नर्तकों को सखियां कहा जाता है। साथ में गदी-गदन उनका कामा (नौकर) रहता है। हरण गांव-गांव और घर-घर में फिरती है। स्वांग में भी होली के स्वांगों की प्रधानता रहती है। चन्द्रावली व कृष्ण के प्रेमालाप भी स्वांग में रहते हैं। चम्बा में आंगन में प्रायः आग का घियाना भी रहता है जिसके गिर्द हरणेतर का नाच होता है। ऐसा अलाव कुल्लू की हरण के अवसर पर नहीं होता। चम्बा में स्वागों की प्रथा कुछ निर्धारित-सी है और यह क्रम से एक के बाद दूसरे प्रदर्शित होते

हैं।

इस नाट्य के जुड़ाव को ऋषि श्रृंगा से माना गया है। यह मान्यता है कि श्रृंगी हिरनी अर्थात जंगली बकरी का दूध पीकर बड़े हुए और यही श्रृंगी बाद में ब्रम्हतेज प्राप्त एकमात्र ऋषि के रूप में संसार में जाने गए। गौरतलब है कि विभण्डक मुनि का आश्रम और ऋषि श्रृंगा की जन्म स्थली कुल्लू के बन्जार में है। इस प्रकार इस से इस लोकनाट्य का निसन्देह करीबी नाता है।

कुछ अन्य रंगकर्मी विद्वानों का कहना है कि जब मुनि विभण्डक ब्रम्हतेज प्राप्ति के लिए साधना में लीन थे तो देवराज इन्द्र को लगा कि मेरा सिहांसन छीनने के लिए यह घोर तप हो रहा है। उन्होंने स्वर्ग से मुनि का तप भंग करने के लिए एक अप्सरा भेजी। वह मुनि का तप भंग करके स्वर्ग लोक चली गई। मुनि की कामोत्तेजना इतनी बढ़ गई कि उन्होंने किसी जंगली युवती से शादी कर ली। इस युवती का प्रसव के दौरान ही अन्त हो गया लेकिन बालक ठीक ठाक पैदा हो गया। वही बालक हिरनी का दूध पीकर बड़ा हुआ। मुनि महाराज तो साधना में सर्दी गर्मी लीन रहते थे और बच्चे के पालन पोषण की जिम्मेदारी उस हिरनी पर थी जिसे वह बच्चा अपनी मां समझता था। गर्मियों में तो वह उसे तरह तरह की चीजें जंगल से लाकर खिलाती परन्तु सर्दियों में जब कुछ न बचता तो वही हिरन आंगन आंगन जाकर लोगों को नाच दिखाकर मनोरंजन करती और अपने बच्चे के लिए आनाज मांगकर लाती। उस समय से ही यह हिरन नाच से मनोरंजन करने की परम्परा चली आ रही है।

कांगड़ा क्षेत्र में हरण खेल का समय प्रथम पोह से लोहड़ी के दिन तक है। लोहड़ी के आसपास इसका विशेष आयोजन होता है। यहां ये तो कुल्लू की तरह चित्रित पट्टू द्वारा हरण तैयार की जाती है या दो लड़कों को हिरण या किसी अन्य पशु की खाल पहनाई जाती है और उनके सिर पर लकड़ी के बने या किसी जानवर के सींग लगाए जातें है। एक लड़का स्त्री के वस्त्राभूषण लगा कर चन्दरौली बनता है और दूसरा उलटे सीधे कपड़े या चीथड़े लगाकर डंडू या मनसूखा का काम करता है। लड़के इकट्ठे होकर घर-घर फिरते हैं और अन्न इकट्ठा करते हैं। ढोल, नगारा वाद्य यंत्रों के संगीत में हरण और चन्दरौली नाचते हैं और डंडू कई तरह के स्वांग करते हैं। कुछ अन्य लड़के मदारी और साधू का स्वांग बनाए टोली में शामिल रहते हैं। प्रत्येक घर से अन्न के दाने मिलते हैं जिन्हें भारची बोरी में डालकर साथ चलते हैं। टोली इस अवसर पर लोहड़ी के गाने गाती हुई चलती है, परन्तु प्रत्येक घर के सामने केवल एक ही गाना गाया जाता है-

हरण मंगे तिल चौली दे।
लाल गुड़े दी रेवड़ी दे।
देंदी है दुआंदी है।
कोठे हत्थ पुआंदी है।
हरण मेया खेड़िया
टोपा पाया पेड़िया
हरण लाई सिंगे दी
हण्डी भज्जी हिगे दी।

हरण दरवाजे पर जाकर अपने सींगों से टक्कर मार कर सबके किवाड़ खटखटा कर लोगों को जगाता है।

लाहुल-स्पीति तथा किन्नौर क्षेत्रों में प्रचलित अनुश्रुतियों के अनुसार भी हरण का आरम्भ बहुत पुराने समय में हुआ। कहते हैं कि सातवीं शताब्दी के आरम्भ में तिब्बत के राजा सोंगचंग-गम्पों ने अपने मंत्री थोनभी सम्भोट को विद्या और धर्म के अध्ययनार्थ भारत भेजा। थोनभी सम्भोट ने 627-42 के बीच कश्मीर में अध्ययन प्राप्त किया और उस अध्ययन के आधार तिब्बत देश के लिए लिपि निर्धारित की। इसी के नाम पर तिब्बती अक्षरों को भोटी लिपि कहा जाता है। थोनमी सम्भोट ने लिपि के अतिरिक्त तिब्बती भाषा का सात खण्डों में व्याकरण भी लिखा जिस के माध्यम से अगली शताब्दियों में तिब्बत भर में बौद्ध धर्म का खूब प्रचार रहा और अनेकों संस्कृत ग्रंथ तिब्बती में अनूदित हुए। परंतु 9वीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध में लगभग सन् 836-842 तिब्बत में लागदर्मा नाम का राजा हुआ जो बड़ा अत्याचारी और धर्म विमुख था। उसने अनेक लामाओं को मौत के घाट उतारा और धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथों को अग्नि की भेंट किया, जिसमें थोनमी के व्याकरण के सात खण्डों में से पांच खण्ड भी थे जिनकी कमी को आज तक पूरा नहीं किया जा सका है। तब एक बार लोगों ने बड़े सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया, जिसमें मुंह पर मुखौटे और शरीर पर लम्बे-लम्बे बाजुओं सहित घुटनों तक लटके चोगे धारण करके नृत्य आरम्भ किया। चोगों के बीच छुरे छुपाए गए और समय पर लांगदर्मा को मार दिया गया। तब से इसी खुशी में मुखौटा नृत्य-नाट्य का आरम्भ हुआ, जो होरिंगफों, छम और छेशू आदि नाम से प्रसिद्ध है। किन्नौर क्षेत्र में होरिंग का अर्थ हरिण और

हरण लोकनाट्य आदिकाल से लेकर अपने मनोरंजनात्मक कलेवर के साथ पहाड़ों की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता को अक्षुण्ण रखते हुए समसामयिक मानवीय अनुभूतियों को मुखरित करता है। कुल्लू की लोकनाट्य परम्परा समृद्धि तथा विशेष प्रथाओं से बंधी हुई है। इसका मूल आधार देव प्रथा ही है। देव पूजन में भी नाट्यात्मक पद्धति अपनाई जाती है अतः प्राचीनकाल से ही देव परम्परा और नाट्य परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। ये लोकनाट्य केवल मनोरंजन के ही साधन नही अपितु जनमानस को भी अच्छी सीख देते है तथा कुशल नीति भी समझाते हैं। इन लोकनाट्यों के लिए निर्धारित स्थान तथा दिन होते हैं। हरण नाट्य को हरण खेल भी कहा जाता है।

फो का पशु है और शाब्दिक रूप में होंरिगफो का अर्थ हरिण पशु का नृत्य अभिनय है।

इन क्षेत्रों में होरिंगफो खेल के कुछ भिन्न रूप रहे हैं। श्रावण महीने में श्रावगण्गं सनतगं के समय लोग हरिण का रूप बनाकर होंरिगफो का स्वांग निकालते हैं। डॉ. बंशीराम शर्मा के अनुसार किन्नर शब्द का पर्याय हरिणनर्तक भी है और होंरिगफो लोकनाट्य में इनके हरिणनर्तक होने की प्रथा आज तक सुरक्षित रही है। होंरिगफो नाट्य के विभिन्न रूपों का उत्कृष्ट उदाहरण श्रावण महीन में जंगी गांव में प्रस्तुत होता है। लोग जंगल मे जाकर लकड़ी के विचित्र आकर के डण्डे लाते हैं। फिर उनमें रंगादि चढ़ाकर उन्हें सुन्दर बनाया जाता है। शाम के समय दो लड़कों के शरीरों के साथ सब ओर घास लपेट दी जाती है। उनमें से एक को लड़का और दूसरे को लड़की रूप दिया जाता है। उनके पेट से नीचे थोड़े भाग में छाल बांध दी जाती है। इस छाल के क्रमशः पुरुष और स्त्री के गुप्तांग बनाए जाते हैं। गांव पास ही अलगं नामक पानी वाले स्थान से वे लड़का तथा बनावटी लड़की होरिंगफो के साथ सनतंग की ओर जाते हैं। लोगों द्वारा लाए गए तथा रंगे गए डण्डे भी इनके साथ लाए जाते हैं। डण्डे संख्या में अधिक होने पर पर्याप्त लम्बे होते हैं। उन्हें दो चार व्यक्ति खड़ा करके उठा कर सनतग्ंड के तीन चक्कर लगाते हैं। होंरिंगफो लड़के व लड़कियों के पीछे दौड़ते तथा उनके साथ शरारतें करते हैं। डण्डों के साथ तीन चक्कर पूरा होने पर उन्हें फेंक दिया जाता है। उन डण्डों के सिरों पर हरी घास बांधकर शिश्नमुंड की भांति मोटा बनाया जाता है तथा उनका फेंकने पर उनके सिर टूटना आवश्यक है नहीं तो अपशकुन माना जाता है। इन डण्डों को शोशोल पशा (रंग बिरंगा डण्डा) कहा जाता है। होंरिंगफो आपस में भी स्त्री पुरुष संगम की सी शरारते करते हैं। जब डण्डे फेंक दिए जाते हैं तो लड़के और लड़की को भी घास आदि से मुक्त कर दिया जाता है। इसके पश्चात् मेला होता है। लोग रात भर नाचते रहते हैं। होरिंगफो के मुंह पर एक विशेष कपड़ा राणी जो देवता के यहां से मिलता है, लगाते हैं, ताकि उन्हें पहचाना जा सके। डण्डे सात-आठ मीटर लम्बे होने चाहिए। संख्या में इनका विषम होना तथा मंदिर की उंचाई तक पहुचना आवश्यक है नहीं तो देवता छेतपा (बिरादरी तथा देवता द्वारा किया गया जुर्माना) लगाता है।

हरण के चन्द्रावली गीत और लोक-गाथा के अनुसार रूक्मिणी और चन्द्रावली दो बहिनें थीं। कृष्ण रूक्मिणी को ब्याह कर घर लाते हैं। जब कृष्ण उसके सौंदर्य पर लट्टू होकर उसकी प्रशंसा करने लगे तो रूक्मिणी ने कहा मुझसे भी सुन्दर तो मेरी बहन चन्द्रावली है। उसके सामने सूर्य भी धूमिल हो जाता है, और स्वर्ग की अप्सराएं भी उसके आगे पानी भरती हैं। यह सुन कर कृष्ण बिना चन्द्रावली को देखे उस पर मोहित हो गए और उसे प्राप्त करने की ठान ली। चन्द्रावली को पाने के लिए उन्होंने कई रूप धारण किए। वे भौरा बन कर गए। चन्द्रावली डर गई। कहने लगी, भौरें, तू मुझे डंक मार कर कुरूपित करना चाहता है। वह दौड़ कर एक कोठरी में छिप गई। भौरा मंडराता रहा- मंडराता रहा और असफल होकर वापिस लौटा।

तब कृष्ण ने छेवड़ी (सुन्दर युवती) का रूप धारण किया। सिर पर चादर औढ़ी। कानों में मुदरी, (बालियां), पैरों में पोलडू (भांग के रेशों की जूतियां), हाथों में सनांगण (सोने के कंगन) की जोड़ियां पहनी। छातियों पर पवन कटोरियां लगाईं -

कान्हा किया छेउड़ी रा रूपा, पार धारे नोखी छेउड़ी आई।
काने नाई मुदंरी जोड़ी, पैरे लाई पोलडू जोड़ी।
गूंठी लाई सनांगण जोड़ी, दूधू लाई पोण कटोरी।
कुणी किया छेवड़ी रूपा, गवालटू पूजा गुगल धूपा।

ग्वालों ने अपने गोकुल में आई ऐसी सुन्दर स्त्री का गुगल धूप से पूजा करके खूब स्वागत किया। परन्तु शीघ्र ही भेद खुल गया। तब क्या था- ग्वालों ने ऐसी पिटाई की कि कृष्ण को जान बचाकर भागना पड़ा।

तब कृष्ण ने अपनी समस्या बलराम को बताई। बलराम ने समाधान बताया, तुम हरिण बनो। मैं कान्ह बनूंगा, और चंन्द्रावली से कहूंगा कि हरिण को शरण दो। काम बन जाएगा। गोकुल में बलराम गाने लगा -

हरण पाहुणी आई सलीए, हरण पाहुणी आई सलीए।
बाहर निकल मेरी सालिए, हरण पाहुणी आई सलीए।
चीतरे चाधरू आई भौरीया, दूरा पार न आई।
छेके नौचे हरणीए, रात आई भियाई।
किरकिटी तेरी बेहणी, रामशौरा तेरा भाई।
हरण पाहुणी मेरी सालीए, साई दे बधाई।

हे साली, हरिण पाहुनी (अतिथि) आई है (स्त्रीलिंग में), बाहर निकल आ। तब चन्द्रवली ने पूछा, कैसा हरिण है ? उत्तर मिला- यह साधारण हरिण नहीं है। यह तो विशिष्ट हरिण है। किरकिटी (कृतिका तारा) इसकी बहिन है। रामशौर (रामशर नाम का तारा) इसका भाई है। यह सुन कर चन्द्रावली घर के बाहर निकली और ज्योंही उसने नाचते हुए हरिण को देखा तो देखती ही रह गई। फिर क्या था ? वह हरिण को अपने घर मेहमान ले गई। उसे कमरे के कोने में रखा और स्वयं बिस्तर पर सो गई। अभी आंख लगी ही थी कि जाग गई। कमरे में प्रकाश था और हरिण की जगह कृष्ण को देखकर स्वयं उस पर मुग्ध हो गई। कृष्ण भी चन्द्रावली के रूप के वश में आ जाते हैं। तब चन्द्रावली कामना करती है कि उनका सम्बन्ध घनिष्ठ और लम्बा हो। उनका जोड़ा साई-बधाई वाला (मंगलमय) हो। इस सन्दर्भ द्वारा हरण का सम्बन्ध चन्द्रावली से जोड़ा जा सकता है।

इस प्रकार हरण लोकनाट्य आदिकाल से लेकर अपने मनोरंजनात्मक कलेवर के साथ पहाड़ों की प्राचीन संस्कृति और

सभ्यता को अक्षुण्ण रखते हुए समसामयिक मानवीय अनुभूतियों को मुखरित करता है।

कुल्लू की लोकनाट्य परम्परा समृद्धि तथा विशेष प्रथाओं से बंधी हुई है। इसका मूल आधार देव प्रथा ही है। देव पूजन में भी नाट्यात्मक पद्धति अपनाई जाती है अतः प्राचीनकाल से ही देव परम्परा और नाट्य परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। ये लोकनाट्य केवल मनोरंजन के ही साधन नहीं अपितु जनमानस को भी अच्छी सीख देते हैं तथा कुशल नीति भी समझाते हैं। इन लोकनाट्यों के लिए निर्धारित स्थान तथा दिन होते हैं। हरण नाट्य को हरण खेल भी कहा जाता है।

हरण लोकनाट्य के तीन प्रमुख पात्र हैं। इसके मुख्य तीन पात्र होते हैं - हरण, कान्हा और बूढ़ी। हरण का एक विशिष्ट परिधान होता है। इसके लिए समान लम्बाई चौड़ाई के दो चित्रित बारीक ऊन के काले हल्के पट्टू लिये जाते हैं जिसमें श्वेत और काले रंग की डिब्बिदार डिजाइन होते हैं। उन्हें एक तरफ लम्बाई की ओर से और दूसरी तरफ चौड़ाई की ओर से सिलाया जाता है। सिले हुये भाग का एक आदमी के पीठ पीछे फेंक कर खुले दोनों सीरों को चौड़ाई की आरे टांग तक लटका देते है। भांग के सूखे पौधे की लकड़ी के दो टुकड़े लेकर सींग बनाये जाते हैं जिन्हें बाहर से कपड़े और फूलों से सजाया जाता है। तब सिले हुए पट्टू के सिरे के साथ इन दोनों सींगों को उस आदमी के सिर पर बारीक दुपट्टे से बांध देते हैं। वह आदमी तब अगली हिरण कहलाता है। नाचने से पूर्व वह अपने शरीर को आगे की ओर झुका देता है। तब उसके पीछे एक दूसरा आदमी इन सिले हुए पट्टू में डाला जाता है। वह अगली हिरण के नितम्ब पर अपना सिर टिकाकर स्वयं भी आगे झुक जाता है। पिछली हिरण अगली हिरण के पीठ पर दोनो हाथ फैला देता है ताकि हिरण पूरा एक शरीर लगे। इस लिए इसे पिछली हिरण कहते हैं। उन दोनों की पीठ पर से सिर के सींगों से लेकर पीछे तक दुपट्टा जिसे स्थानीय भाषा में पटकू कहते हैं लटकाया जाता है। हरण के दोनों व्यक्तियों की पीठ पर से गुजरता यह दुप्पट्टा जब शरीर के बाहर पीछे की ओर लटकता है तो पूंछ का काम देता है।

हरण नृत्य का दूसरा पात्र कान्हा कहलाता है। कान्हा वस्तुतः कृष्णा कन्हैया ही है। परन्तु इसका अभिनय कन्हैया का नहीं होता है। वह बूढ़ी के साथ नाचने के अतिरिक्त कोई कार्य नहीं करता है। मुंह से कुछ नहीं बोलता। न बूढ़ी नाचने के सिवाय कोई और अभिनय करती है। दोनों के नृत्य मे विलास नहीं होता है। केवल सौन्दर्य प्रधान होता है। कान्हा का लिबास कुल्लवी नाटी मे पुरुष नर्तक द्वारा पहनी जाने वाली पोशाक जैसा होता है। टोपी पर चांदी की झालरें और मोनाल की सुन्दर कलगी सजी होती है। सफेद रंग का ऊनी चोला और सफेद पजामा पहना जाता है। दायें कन्धे से बाईं कमर की ओर चमकीला सुनहरा कपड़ा बंधा होता है। पैर मे पुले (स्थानीय घास से बने जूते) पहने जाते हैं।

हरण का तीसरा पात्र बूढ़ी असल में बुढ़िया का पात्र नहीं है। यह पुरुष पात्र होता है जिसे स्त्री की पोशाक पहनाई जाती है। सफेद, फूलदार कुल्लवी पोशाक पहने यह युवक नाचने में कुशल होना चाहिये।

हरण आयोजन के लिये कोई मंच नहीं होता है। खलिहान या खुला मंच ही इसका मंच होता है। प्रायः हर घर के सामने हरण का नृत्य और स्वांग होता है। जिनमें तीन मुख्य पात्रों के साथ गांव के बच्चे और युवा भी शामिल होते हैं-

तू नाचे हार्ने देउना रे खौले,
स्नेरे लिंगटु, रूपे रे पावे
तू नाचे हार्ने
वाह ली उहा, बाहली उहा उहा------

ढोल, नगाड़ा, दराध (बड़ा ढोल), काहल (करनाल), नरसिंघा(रणसीघा), शहनाई, बांसुरी, गलगोजा और भाणा के लोक वाद्यन्त्रों की धुन के साथ हरण का काफिला गांव के हर घर और एक गांव से दूसरे गांव तक जाता है।

हरण नाट्य के गीत मधुरतम लोक गीतों में से एक हैं। इन गीतों को केवल हरण के साथ गाये जाने की प्रथा है। इन्हें हरण नाट्य के मुख्य पात्र हरण बूढ़ी तथा स्वांगी नही गाते। इनके गायक वाद्य यंत्र वादकों के साथ एक किनारे पर बैठ जाते हैं। वाद्य यंत्रों और संगीत की धुन के साथ हरण, बूढ़ी और कान्हा मंच पर आते हैं। नाच आरम्भ होता है और गायक मधुर स्वर में गाते है। हरण के लगभग 12 से अधिक विशिष्ट नृत्य हैं जो भिन्न प्रकार के गीतों के अलग-अलग में नाचे जाते हैं। समय के साथ लोक कलाएं नष्ट होती जा रही है। फिर भी इस समय हरण के लिए छः नृत्य आवश्यक हैं। ये हैं- साई-बधाई, सूने रा बाधणू, चन्दरावली, देवा री खोली, दुध-कटोरू, और हरण पाहुणी आई। हरण का नृत्य प्रायः सांई-बधाई से आरम्भ होता है। यह लास्य नृत्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें संगीत विलम्बित ताल में धीमी गति से होता है। हरण केवल एक जगह नाचती है। आगे-पीछे आगे-पीछे इसकी हरकतें रहती हैं। बूढ़ी हरण के सिर से पूंछ की ओर, कान्हा हरण की पूंछ से सिर की ओर धीमी गति से नाचते है। बीच में पहुंच कर दोनों हाथ मिलातें है। उसके साथ ही दोनों दूसरा हाथ हरण पर फेरते हैं और पहला हाथ कमर पर होता है।

साई बधाई लोको, साई बधाई
हरण आई लोको हरण आई
बौरश रोजा री पाउणी आई
भौर भरोटूए साई आणी बधाई
पीउंले हौथड़ू केरिया आई
दूरा पारा न पाउणी आई
साई बधाई-------

हे लोगो! साई हो बधाई हो। हे लोगो हरण आई है। वर्ष रोज के बाद अतिथि बन कर आई है। भार उठाकर बधाई लाई है। पीले हाथ करके आई है। गायक और वादक जहां गीत और संगीत द्वारा समा बांधते हैं, वहां हरण कान्हा और बूढ़ी संगीत की ताल पर खलिहान में नाचते हैं।

स्वांग हरण का दूसरा दृश्य है। जब खलिहान में हरण, बूढ़ी और कान्हा नाच रहे होते हैं, तब स्वांगी कुछ दूर स्वांग तैयार करते हैं। लगभग दस मिनट नाच के बाद स्वांगी प्रवेश करते हैं। प्रवेश करते ही वह दूर से हू-हू करते हैं। तभी संगीत, वाद्य गायन बंद होता है। हरण खड़ी उठती है। पिछली हरण पट्टू से बाहर आ जाती है और कान्हा बूढ़ी सभी किनारे पर शांत बैठ जाते है और स्वांग आरम्भ होता है। यह अपने आप में सम्पूर्ण एकांकी होता है। परन्तु इसके न विषय पूर्व-निर्धारित होते हैं और न ही पात्रों के संवाद रटे-रटाए होते हैं। यह स्वागियों की योग्यता तथा कुशलता पर निर्भर करता है कि अवसर विशेष पर कौन विषय लाया जाए और उसे कैसे प्रस्तुत किया जाए। हरण की सफलता का उत्तरदायित्व बहुत हद तक स्वांगियों पर है और उनके परम्परागत गुण इस दिशा में हर्ष और श्लाथा के विषय हैं। यह लोग प्रकृति से ही बड़े हंस मुख, उच्च कोटी के गायक, नर्तक व्यंग्यकार और विनोदी होने के साथ बढ़िया आशुकवि और परिहासपटु होते हैं। अपनी हाजिरजवाबी और वाक्पटुता के कारण व मौके पर ही तत्काल स्वांग बांधते है, और मजाल है कि उनकी जबान कहीं लड़खड़ा जाए।

आज चूंकि व्यवस्था बदल गई है। लोकनाटकों के पुराने पात्र रहे नहीं हैं। व्यवस्था की निंदा का नाटकीकरण नहीं किया जा रहा है। साथ ही मनोरंजन के बहुत विकल्प सामने आये हैं। अतः प्रदेश की पुरानी संस्कृति के वास्तविक स्वरूपों की रक्षा के लिये किसी धैर्यवान एजेंसी की बड़ी आवश्यकता है। फिर सबसे बड़ा प्रश्न व्यावसायिकता का है। धार्मिक नाटक व भजन मण्डलियों को तो श्रद्धालुओं का पैसा मिल जाता है। फिल्में भी प्रायोजित हो जाती हैं। परन्तु लोकनाटकों के कलाकारों को ऐसी कोई सुविधा नहीं है। इनके प्रदर्शनकारियों की उपस्थिति अस्तित्व स्वैच्छिक व सीमित है।

स्वांग करते हुए वह मुंह पर लकड़ी या मिट्टी के बनाए मुखोटे पहनते हैं और अवसरानुकूल वस्त्र धारण करते हैं। स्वांग का कुछ भी विषय हो सकता है। सामान्यतः स्वांग समसामयिक सामाजिक समस्याओं पर आधारित होते हैं। इनके समाधान भी इनमें ही प्रस्तुत होते हैं। इलाके में चोरी, दगाबाजी, धोखाधड़ी की कोई घटना हुई हो तो उसे लेकर स्वांग द्वारा उसकी खूब खिल्ली उड़ाई जाती है। बिना नाम दर्शाए ही पूरा चित्रण प्रस्तुत होता है। इस प्रकार सामाजिक बुराइयों पर हरण का स्वांग कड़ा गतिरोध रखता है। मजाक ही मजाक में सब कुछ सामने आ जाता है। स्वांग जहां स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करता है, वहां यह सुधारात्मक साधन भी है। भले ही नाम-धाम अभिव्यक्त न हो, परन्तु भरे आंगन में खुले आम दोषी की भर्त्सना अपराधों और दोषों को रोकने के लिए बड़ी शक्ति है। यही नहीं, समसामयिक विषयों में गांव की समस्या और उसके प्रति सरकार, पंचायत या किसी अन्य संस्था की उदासीनता को लेकर ऐसा स्वांग गठित किया जाता है कि उसका प्रभाव आवेदन-पत्रों तथा प्रतिनिधि- ज्ञापनों से भी अधिक तुरंत देखने में आया हैं।

हरण के स्वांगी छोटे-छोटे प्रहसनों के माध्यम से लोकपरक अनुभूति और मनोरजंन का स्वस्थ स्वरूप प्रदर्शित करते हैं। समाज में प्रचलित अनेक बुराइयों और समस्याओं को एक ही प्रहसन में इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि उनका सही रूप भी प्रस्तुत होता है और उनका समाधान भी।

स्वांग का मुख्य उद्देश्य हास्य है और हास्य यहां अश्लील प्राधान्य न होकर नितान्त व्यंग्यात्मक होता है। जहां कहीं या जब कभी अश्लीलता के अंश आते हैं वहां भी अश्लीलता प्रखर न होकर अनुकूलता से परिपूर्ण होती है।

कई बार स्वांगियों को दर्शकों के प्रश्नों का सामना करना पड़ता है। यह स्वांगियों के लिए कड़ी परीक्षा की घड़ी होती है, क्योंकि प्रश्न दर्शकों में से कोई पूछना शुरू करता है। दर्शन की बात प्रायः अपने परिवेश की होती है, यथा- तुम्हारे गांव का सबसे बड़ देवता कौन है ? वह कहां से आया है? हमारे देवता और तुम्हारे देवता के बीच क्या रिश्ता है? दोनों मे से बड़ा कौन है ? क्यों ? आदि। इसी तरह, खीर गंगा का दूध जैसा और लाल पाणी का रक्त जैसा पानी क्यों है ? ऐसा कौन स्थान है जहां एक और उबलता हुआ और दूसरी तरफ बर्फ सा ठण्डा पानी निकलता है ? उतर में स्वांग कविता रूप में मणिकरण का, लोक कथा सहित, संदर्भ देते हुए महत्व बताता है।

आज चूंकि व्यवस्था बदल गई है। लोकनाटकों के पुराने पात्र रहे नहीं हैं। व्यवस्था की निंदा का नाटकीकरण नहीं किया जा रहा है। साथ ही मनोरंजन के बहुत विकल्प सामने आये हैं। अतः प्रदेश की पुरानी संस्कृति के वास्तविक स्वरूपों की रक्षा के लिये किसी धैर्यवान एजेंसी की बड़ी आवश्यकता है।

फिर सबसे बड़ा प्रश्न व्यावसायिकता का है। धार्मिक नाटक व भजन मण्डलियों को तो श्रद्धालुओं का पैसा मिल जाता है। फिल्में भी प्रायोजित हो जाती हैं। परन्तु लोकनाटकों के कलाकारों को ऐसी कोई सुविधा नहीं है। इनके प्रदर्शनकारियों की उपस्थिति अस्तित्व स्वैच्छिक व सीमित है।

द्वारा एसजेवीएल, बीसीएस, शिमला, हिमाचल प्रदेश

लोक नाट्य विधा

करयाला में विशुद्ध पहाड़ी संस्कृति की झलक

◆ नेम चन्द अजनबी

प्राचीन काल के साहित्य में नाट्य वेद को पांचवां वेद कहा गया है। इस कला के उद्‌भव के बारे में निम्न श्लोक मिलता है :-

जग्राह पाठ्यंऋग्वेदात् सामम्यो गीत मेव च,
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणदपि।

अर्थात ब्रह्मा जी ने ऋग्वेद से गेयात्मक सामग्री (पाठ्य सम्वाद) सामवेद से गीत-संगीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से शृंगारादि रसों को लेकर नाट्य वेद की रचना की।

कहते हैं कि एक बार देवताओं के राजा इन्द्र देवताओं को साथ लेकर सृष्टि रचयिता परम-पिता ब्रह्मा जी के पास गए और उन्हें मृत्युलोक के प्राणियों के मनोरंजन के लिए कोई उपाय ढूंढने की प्रार्थना की। तब ब्रह्मा जी ने नाट्य वेद देवताओं को देकर नाट्य, नृत्य और संगीत की कला प्रदान की। ब्रह्मा जी ने सर्वप्रथम देवताओं से नाट्य-कला का प्रदर्शन शिवजी, जो स्वयं नटराज है, के सम्मुख करने को कहा।

अतः देवताओं ने इन्द्र की अप्सराओं के साथ मिलकर नटराज शिव और पार्वती के सम्मुख नाट्य वेद प्रस्तुत किया। शिव ने देवताओं का पूर्ण मार्गदर्शन करने के साथ-साथ अपना प्रसिद्ध ताण्डव नृत्य भी देवताओं को सिखाया। देवता पार्वती से लास्य कला की शिक्षा लेकर शिव लोक से आ गये। इसके बाद देवताओं ने भरतमुनि के सौ पुत्रों को नाट्य कला में पारंगत किया। इसी के साथ नाट्य कला मृत्यु लोक में पहुंची।

एक अन्य धारणा के अनुसार देवताओं के आग्रह पर नटराज शिव ने अपने परम प्रिय शिष्य ताण्डु से भरतमुनि के सौ पुत्रों और गन्धर्वों को ताण्डव नृत्य की शिक्षा दिलाई। पार्वती ने लास्य नृत्य (वाद्य और गीतों के संयोग से मूलतः महिला नृत्य) सर्वप्रथम बाणासुर की पुत्री और अनिरुद्ध, (कृष्ण का पोता और कामदेव का अवतार) की अर्धांगिनी उषा को सिखाया। उषा ने यह कला द्वारिका की गोपियों को सिखाई। इस प्रकार धीरे-धीरे यह कला सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैल गई। इस क्रम में प्रदेश में अनेक लोक नाट्य मसलन रली-पूजन, तुपु, देवता का खेल, ठोडा, करियाला, स्वांग, चन्दरौली, बरलाज, जगराता, सिठणी, रामलीला, बुछैन, हरणातर, लड्डुघिंघा और धाज्जा आदि अनेक लोक नाट्य बर्बस ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

करयाला ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

हिमाचल प्रदेश के सोलन, शिमला, सिरमौर, बिलासपुर और मण्डी जनपदों में करयाला लोकनाट्य दीर्घकाल से लोगों के लिये जिज्ञासा और कौतूहल का विषय रहा है। इस लोक नाट्य के इतिहास, उद्‌भव और विकास के बारे में विद्वानों में मतभेद हैं। रामदयाल नीरज इस लोक नाट्य को भरतमुनि के नाट्य शास्त्र से पहले का मानते हैं जबकि ओम चन्द हाण्डा जी इसे धार्मिक मान्यताओं से प्रेरित होकर आदिम युग से मानते हैं। हालांकि हिमालय संस्कृति के मनीषी डॉ. हाण्डा ने आदिम युग की अधिक विवेचना नहीं की है फिर भी उनकी मान्यताओं के अनुसार करयाला की उत्पत्ति 17वीं शताब्दी से अधिक पुरानी नहीं है। किसी समय हिमाचल प्रदेश की पुरानी करयाला मण्डलियों में शामिल मण्ढोड़ घाट निवासी 76 वर्षीय श्री रेवादास वर्मा जी करयाला की उत्पत्ति कृष्ण और राधा की रासलीला से जोड़ते हैं। रेवा दास जी मण्ढोड़ घाट की करयाला मण्डली के मैनेजर रह चुके हैं। उनके अनुसार एक बार शिमला के 'गिल्जे के मैदान' (रिज मैदान, जिसे बुजुर्ग गिल्जे का मैदान कहते हैं अर्थात गिरजा घर को गिल्जा कहते हैं) पर उन्होंने भारत की पूर्व प्रधान मंत्री स्वर्गीय इन्दिरा गांधी के समक्ष करयाला किया था। जिस पर तत्कालीन प्रधान मंत्री जी ने 'साहब और मैम' के स्वांग पर खुश होकर पचास रुपये बख्शीश और हिमाचल प्रदेश की सर्वश्रेष्ठ करयाला मण्डली का प्रमाण पत्र प्रदान किया था। रेवा दास जी कहते हैं कि कृष्ण और राधा रासलीला करते हुए भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लोगों के बीच आ जाते और लोगों का मनोरंजन करते थे। कालान्तर में उनकी यह रास लीला ही करयाला लोक नाट्य के रूप में आज तक प्रचलित है।

प्रदेश की संस्कृति के एक अन्य स्थापित हस्ताक्षर श्री मौलु राम ठाकुर करयाला को मुण्डकोपनिषद तथा अनेक अन्य उपनिषदों में प्रयुक्त 'कराल' शब्द से जोड़कर देखते हैं। उनके अनुसार कराल शब्द असुरों, देवों, गंधर्वों, किरातों, राक्षसों के लिये प्रयुक्त हुआ है। गंधर्व और किरात आदि जातियां संगीत और

नाट्यप्रिय थी। सम्भवतः यह उन्हीं जातियों का खेल रहा हो। इतिहासकारों के अनुसार इन जातियों का आदि निवास हिमाचल प्रदेश था इसलिये यह पीढ़ी दर पीढ़ी परम्पराओं से करयाला आज इस रूप में हमारे समक्ष है।

सोलन जनपद के सपाटू के समीप देउथल स्थित बिजेश्वर मन्दिर के मुख्य पुजारी मदन लाल शर्मा के अनुसार, 'करयाला लोक नाट्य का आदि देव बिजेश्वर है जो एक विवाद में देव शिरगुल के विरुद्ध जुनगा राणा की सहायता के लिये काश्मीर के बिजवाढ़ा से आया था। कहते हैं कि जुनगा राणा इस क्षेत्र का छत्रपति राजा था। उसका किला सपाटू के आस पास था। बुजुर्गों के अनुसार सपाटू का पुराना नाम गढ़ था। जो जुनगा राणा के किले के कारण प्रसिद्ध हो गया था। जुनगा राणा के राज्य के अन्तर्गत अनेक खूंद आते थे। खूंद अर्थात लड़ाकू जातियों के कबीले। जिनमें चार प्रमुख थे - भौंटी, छिब्बर, परिहाड़ और भलीड़। किसी बात को लेकर परिहाड़ खूंद कबिले की देव शिरगुल से ठन गई। जुनगा राणा और शिरगुल के बीच युद्ध हुआ जिसमें जुनगा की हार होने वाली थी। अतः उसने परिहाड़ के एक योद्धा के माध्यम से अपने मित्र बिजवाड़ा के शासक बिजेश्वर को सहायता के लिये बुलवाया। बिजेश्वर अपने मित्र की सहायता के लिये तुरन्त हाजिर हुआ और उसने शिरगुल को युद्ध के लिये ललकारा। शिरगुल ने बिजेश्वर पर लोहे के शर बरसाये। बिजेश्वर ने अपने आपको प्रकृति (आसमान) में छुपा लिया। बिजेश्वर ने शिरगुल पर बिजली गिराई जिसके आगे वह टिक नहीं सका और अंततः हार मान ली। हस प्रकार जुनगा राणा बिजेश्वर की सहायता से शिरगुल को हराने में सफल हुआ। अतः चूढ़धार पर देवता शिरगुल के मन्दिर के समीप स्थित एक भारी चट्टान पर बैठ कर दोनों ने आपस में सुलह की। गिरी नदी को सीमा रेखा के तौर पर चिन्हित कर दिया गया। गिरी नदी से उधर सिरमौर के क्षेत्र में शिरगुल का राज्य कायम हुआ और गिरी नदी से इधर सोलन क्षेत्र पर जुनगा राणा का राज्य। जिस चट्टान पर बैठ कर सुलह समझौता किया गया था वह चट्टान आज भी साक्षी के रूप में चूढ़धार में शिरगुल देवता के मन्दिर के साथ यथावत खड़ी है। शिरगुल पर विजय से खुश होकर जुनगा राणा ने बिजेश्वर को देउथल का क्षेत्र भेंट किया जहां आज भी उसका सुन्दर और भव्य मन्दिर बना हुआ है। कहते हैं कि इसके तीन रानियां थी और एक टिका। मन्दिर तक जाने के लिये खड्ड पर 1923 में बने लोहे के सुन्दर पुल के ऊपर से जाना होता है जो इस मन्दिर की भव्यता और समृद्धि तथा देवता के प्रति लोगों की तत्कालीन श्रद्धा को भी दर्शाता है। जब बिजेश्वर देव कला में आया तो वह जुनगा राणा की रियासत का ज्येष्ठ देवता बना। मन्दिर के पुजारी मदन लाल शर्मा के अनुसार गिरी नदी से लेकर कुणी खड्ड तक बिजेश्वर देवता का एक छत्र राज है।

कहते हैं कि सपाटू क्षेत्र में जुनगा राणा के बहुत से खेत थे जहां वह लोगों से बेगार के तौर पर काम करवाता था। यह बेगारी दिन भर काम करके थक जाते और रात को एक दूसरे का मजाक उड़ाते हुए मनोरंजन करते रहते और थकान उतारते। कभी कभी यह बहुरूपिये बन कर मनोरंजन करते। एक दिन बिजेश्वर ने इन लोगों को यह हंसी ठिठोली करते देख लिया। उसे यह बहुत ही अच्छी लगा। एक दिन जुनगा राणा को बिजेश्वर ने मेहमाननवाजी के लिये बुलाया। इस मेहमाननवाजी में उसने उन लोगों से राणा का मनोरंजन करने के लिये ठिक उसी प्रकार की हंसी ठिठोली करने का आग्रह किया। लोगों ने अपना खेल शुरू करने से पूर्व बिजेश्वर देव से हर प्रकार की हंसी ठिठोली करने की छूट मांग ली थी। ताकि राणा उनकी बातों से नाराज न हो। राणा जुनगा यह देख कर बहुत खुश हुआ। उसने नाट्य करने वाले लोगों को खुश होकर बहुत सा उपहार दिया। अतः उसके बाद से इस क्षेत्र में लोग अपना अपना काम खत्म करके थकान मिटाने के लिये इन लोगों को मनोरंजन के लिये बुलाने लगे। जिसे बाद में करयाला शब्द का नाम दे दिया गया। अतः करयाला इस प्रकार इस क्षेत्र में बिजेश्वर देव के प्रति समर्पित हुआ और इस प्रकार बिजेश्वर देव करयाला लोक नाट्य का आदि देव बना। जिस समूह ने प्रथमतः इस नाट्य को प्रस्तुत किया वह प्रथम करयाला मण्डली बनी जिसका नाम था



गढ़िया करयाला दल।

हालांकि कालान्तर में साथ लगते क्षेत्रों में भी करयाला मण्डलियां बनी और उन्होंने करयाला का आदि देव बिजेश्वर के स्थान पर अपनी सुविधा के अनुसार अपने अपने आदि देव स्थापित कर लिये। इसके अतिरिक्त बाघल, मण्डी, शिमला और बिलासपुर क्षेत्र की परम्पराओं के अनुसार जिस स्थान पर करयाला नाट्य का मंचन किया जाता है, करयाला पार्टी उस स्थान के देवता की पूजा करके नाट्य का मंचन शुरू करते हैं। इसके बाद से श्रद्धालु बिजेश्वर देव अर्थात बिज्जु देव के नाम से मनौती करने लगे। मन्नत पूर्ण होने पर व्यक्ति करयाला का मंचन करने के लिये करयाला पार्टी को निमन्त्रण देता है और देवता के नाम से करयाला करवाता है। इस प्रकार करयाला की शुरुआत हुई। हालांकि बाद में लोग अपने अपने स्थानीय देवता के नाम से भी मन्नौतियां करने लगे और करयाला अपने ईष्ट देवता के नाम से करवाने लगे।

बिज्जू देवता से सम्बन्धित एक अन्य कहानी भी मिलती है। इस कहानी के अनुसार बिज्जु देवता कोटगढ़ रियासत के राजा अजय पत का बेटा बिजय पत था जो पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा। यह अनेक प्रकार की दिव्य शक्तियों का स्वामी था और विभिन्न प्रकार से चमत्कार किया करता था। राजा बनने के कुछ दिनों बाद यह राजपाट छोड़कर फकीर बन गया। फकीरी अवस्था में यह एक दिन देऊथल पहुंचा जहां उसने एक विवाद में शिरगुल को परास्त किया और उसके मन्दिर पर कब्जा कर लिया और शिरगुल को गिरी नदी के पार भेज दिया।

जंगताल के साथ होता है करयाला आरम्भ

करयाला लोक-नाट्य हिमाचल प्रदेश के प्रमुख लोक नाटयों में अग्रणी स्थान पर है। यह विश्व रंगमंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज करवा चुका है। करयाला किसी भी समय का मंचित होता है और वर्ष भर चलता रहता है परन्तु इसका असली समय सर्द ऋतु मानी जाती है। वास्तव में करयाला आश्विन मास के नवरात्रों के बाद आरम्भ होता है। वर्ष भर के कड़े परिश्रम के बाद कृषक अपने खेतों और खलिहानों से निवृत्त हो जाते हैं और उसे मनोरंजन की लालसा रहती है। इस लालसा की पूर्ति करियालची बड़ी सफलता से करते हैं। दर्शकों के मनोरंजन के लिये यहां संवाद प्रस्तुत करते हुए किसी प्रकार के शब्दों का बन्धन नहीं होता। प्रायः किसी नाटक को पेश करते हुए न ही अश्लीलता परोसी जाती है और न ही भोजन बगैरा किया जाता है जिससे की मंच पर गन्दगी न फैले। परन्तु करयाला में इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता।

करयाला के लिए किसी विशेष मंच की आवश्यकता नहीं होती। यह प्रकृति के खुले प्रांगण का खेल है और प्रायः रात के समय ही खेला जाता है। प्रांगण के कुछ भाग में चारों तरफ छोटे-छोटे खम्भे खड़े करके उसमें रस्सी बांधकर एक चोकोर वर्ग बना लिया जाता है। बदलते समय के परिदृश्य में अब इस सीमा की आवश्यकता महसूस नहीं की जा रही है। मात्र एक लकड़ी के डण्डे से गोल रेखा खींच ली जाती है जिसके बाहर चारों तरफ दर्शक आसीन होते हैं। उसके साथ ही कुछ दूरी पर करियालचियों की तैयारी के लिए दो-तीन चादरें तानकर एक छोटा तम्बु या कोई छोटा कमरा अथवा घास का छप्पर बना होता है। यहीं पर करियालची अपना हार-शृंगार करते हैं। रस्सियों से घिरा हुआ चौकोर स्थान या डण्डे से खींची गई गोल रेखा का वृत्ताकार स्थान ही मंच है। न रंग बिरंगे परदे की आवश्यकता है और न ही यह समय के घेर में है। इस स्थान को खाड़ा (अखाड़ा शब्द का अपभ्रंश रूप) कहते हैं। आग को स्थानीय भाषा में धूनी या घयाना कहा जाता है। इस घयाने की आग को पवित्र माना जाता है। यह आग जहां रात भर प्रकाश का काम देती है वहीं सर्दी के मौसम में ठंड से ठिठुरते लोगों को गर्मी देती है। अखाड़े के एक ओर वादक बैठ जाते हैं। करनाल, रणसिंघा, चिमटा, नगारा, शहनाई, बांसुरी, ढोलक, खांजरी आदि करयालचियों के वाद्य यन्त्र हैं। करियाला जंगताल से आरम्भ होता है। इसकी मधुर तान दर्शकों के लिए निमन्त्रण की घड़ी होती है। बजन्तरी अपने संगीत से दर्शकों का स्वागत करते हैं। इसे बधाई ताल भी कहा जाता है।

मंच पर चन्द्रावली का प्रवेश

बधाई ताल के बजते ही चन्द्रावली लक्ष्मी के रूप में हाथ में जले हुए धूप-दीप थाली में लिए हुए अखाड़े में प्रवेश करती है। पुरुष कलाकार ही स्त्रियों की वेश-भूषा में चन्द्रावली बनता है। चन्द्रावली मंच पर आते ही एक हाथ आकाश की ओर करके सरस्वती का आह्वान करते हुए वाद्य यन्त्रों को छूती है। अखाड़े की परिक्रमा करती है तथा वाद्य यन्त्रों एवं दर्शकों के ऊपर जलते धूप का पात्र घूमाकर कार्यक्रम का शुभारम्भ करती है। घयाने के चारों ओर चन्द्रावली करियाले की ताल पर नृत्य करती है। उसका यह नृत्य लगभग दस मिनट तक चलता है। कई बाद चन्द्रावली के साथ एक अन्य चरित्र भी होता है जिसे कान्हा कहा जाता है। कान्हा संभवतः कृष्ण कन्हैया ही है परन्तु वह एक ही दृश्य में पेश होता है। जब वह पांच-छः सखियों के बीच प्रस्तुत होता है तब उसके हाथ में एक कुल्हाड़ा या फरसा होता है। अब कुछ नाट्य मण्डलियां कुल्हाड़े के स्थान पर बांसुरी देने लगी है। कहीं कहीं इसे 'डांगरा कान्हा' भी कहा जाता है जो सम्भवतः कृष्ण का ग्वाल रूप का परिचायक है। प्रायः यही चरित्र मशालों या दीपों को जलाता है जिसे अखाड़ा बांधना कहा जाता है। अखाड़ा बांधने से अभिप्रायः ईष्ट देव की पूजा करके करयाला के सफल आयोजन की मनोकामना से है। इसे मन्त्रोचारण द्वारा, वन्दना या परिक्रमा द्वारा पूर्ण किया जाता है। वैसे अखाड़ा बांधने का विधान हर मण्डली का अपना-अपना होता है।

पूजा के वक्त निम्न आरती गाई जाती है -



जय जय कारी देव बिज्जू
हे देव बिज्जू छप छप पति राजा देवा
कनि रे कायदा है तेरा करयाला
देव तेरे नांव रा करयाला कबूल कर
ये बोल ऐसा रे बेटे री ब्याह रा था
छेवा ऐसारा बोल छिज्जे
पिछला बोल था अग्गे रक्षा रख माराज
जिथे तक याद करे जिंदगी
सही होवे।

चन्द्रावली विभिन्न पहाड़ी धुनों पर नृत्य करने के पश्चात वापस श्रृंगार कक्ष में चली जाती है।

चन्द्रावली - कृष्ण की गोपी या कोई और

करयाला में चन्द्रावली एक महत्वपूर्ण किरदार है, परन्तु इस किरदार की ऐतिहासिकता को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। एक संस्कृत के विद्वान के अनुसार चन्द्रावली शब्द संस्कृत के चंद्रावली का स्थानीय रूप है। एक अन्य विद्वान के अनुसार चन्द्रावली कृष्ण की गोपी नहीं बल्कि पार्वती है और साथ वाला पुरुष पात्र कान्हा नहीं स्वयं शिव है जो हाथ में फरसा लिये नृत्य करता है। जिसका पुरातन नाम अवधूत या टांडू था। समाज और संस्कृति में वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण पार्वती कृष्ण की गोपी बन गई और शिव कान्हा हो गये। ओम चन्द हाण्डा जी के अनुसार 'करियाला की प्रमुख नायिका 'चन्द्रावली' वैष्णव धर्म की देन है। वास्तव में चन्द्रावली कृष्ण की एक गोपी का नाम था।' लोक सम्पर्क विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तिका 'करियाला-हिमाचल लोकनाट्य' के अनुसार ''चन्द्रावली नटी है जो स्वांग आरम्भ होने से पूर्व वाद्यों को छूती है जिसका अर्थ है उनकी पूजा, फिर वह एक हाथ आकाश की ओर उठा कर देवी सरस्वती का आह्वान करती हुई अग्नि के चारो ओर नाचती है।'' इस सब से विपरित अशोक हंस का मत कुछ और ही है। उनके अनुसार चन्द्रावली कोई और नहीं बल्कि राजा बिजेश्वर की रानी पंजरवाल है और साथ में नृत्य करने वाला पुरुष पात्र उसका मार्गरक्षी। उन्होंने अपने लेख में एक हाईपोथिसिस दिया है कि प्रथम करयाला राजा जुनगा ने अपने मित्र राजा बिजेश्वर के नाम समर्पित कर करवाया था। इस नाट्य उत्सव का मुख्य अतिथि राजा बिजेश्वर को बनाया गया था। ''राजा बिजेश्वर आये या नहीं लेकिन मंच को देव्य शक्ति से सम्पन्न करने और अखाड़ा बांधने के लिये उन्होंने अपनी रानी पंजरवाल या यों कहिए कि अपनी एक शक्ति को भेजा होगा जिसे छोड़ने के लिए एक मार्गरक्षी भी भेजा होगा, इस प्रकार करयाला की चन्द्रावली रानी पंजरवाल हो सकती है।

स्वांग

चन्द्रावली के मंच से प्रस्थान के साथ ही स्वांगों का सिलसिला शुरू हो जाता है। करयाला में प्रस्तुत किये जाने वाले रूपक को स्वांग कहा जाता है। चन्द्रावली के मंच पर गमन के साथ ही साधु के स्वांग का कलाकार दर्शकों के बीच में से या कहीं बाहर भीड़ को चिरता हुआ अलख जगाता हुए साधू वेश में मंच की ओर लपकता है। उसके साथ ही चारों दिशाओं से साधु मंच की ओर लपकते हैं। दर्शकों की दृष्टि पड़ते ही अभिनय शुरू हो जाता है। स्वांग की कोई अवधि नहीं होती। ये भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं :-

1. साधु का स्वांग 2. बुद्धु का स्वांग 3. चूर्ण वाले का स्वांग 4. जोगी-जोगन का स्वांग 5. साहब - मैम का स्वांग आदि आदि।

साधु का स्वांग :-1. आमतौर पर करियाला में तीन या चार रूपक होते हैं। करियाला का प्रथम स्वांग साधु होता है। इसका एक प्रमुख कारण है :-

-माधो सेला, सावणा बरखा, तौंदी जेठो, साधू रे भेखा सदा नारायणों मेठो।

अर्थात माघ में सर्दी, श्रावण में वर्षा, ज्येष्ठ में गर्मी होती है। साधु के भेष में हमेशा नारायण वास करते हैं।

अखाड़े में प्रवेश करते ही आपस में भांति-भांति की चर्चा करते हैं। एक विदूषक अखाड़े में प्रवेश करता है और साधुओं से भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न पूछता है। जैसे :-

विदुषक : कहां से तुम जोगी आये कहां तुम्हारा गांव
कौन तुम्हारी भैन भान्जी, कहां धरोगे पांव।।
पहला साधु- दक्षिण से हम जोगी आए, पूर्व हमारा गांव।
दया हमारी भैन-भान्जी, यहां धरेंगे पांव।।

विदुषक- बाबा ! कुछ ज्ञान-ध्यान भी है तुम्हें ?

दूसरा साधु- हां ! हां ! बेटा हम बड़े ज्ञानी हैं।

विदुषक- तो मैं एक प्रश्न करता हूं।

दूसरा साधु- कहो बेटा।

विदुषक- वार भी लंका पार भी लंका, बिचे धुआं धारी।

राम लखन लंका गए तो कहां थे तपाधारी ?

मसखरा- वार भी लंका पार भी लंका, बिचे धुआं धारी।

राम लखन जेबे लंका गये ये साधु थे तिना रे बगारी।

पहला साधु- न बेटा ! न ! यह हंसी मजाक का समय नहीं। यहां ज्ञान ध्यान की बात चल रही है।

दूसरा साधु- वार भी लंका पार भी लंका, विचे धुंआ धारी।

राम लखन लंका गये उनके संग थे तपाधारी।।

2. दर्शकों की भीड़ को चीरता हुआ एक साधु मंच पर प्रवेश करता है -

बम-बम भोले। बम-बम भोले।।

साधु की नगरी में बसदा न कोये,

जो ही बसे वो साधु हो जाये।।

कुछ और साधु मंच पर प्रवेश करते हैं। इनके प्रवेश करते ही प्रश्नों का सिलसिला शुरू होता है। ये प्रश्न बड़े ही मनोरंजक होते है। ज्ञान-ध्यान की बातें चलती हैं परन्तु मंच का हास्य पात्र मसखरा बीच में अपनी मनोविनोद छिंटाकशी से माहौल को मनोरंजक और उल्लासपूर्ण बना देता है।

एक साधु- कहां से तुम जोगी आये, कहां तुम्हारा गांव,

कहां से तुम चलकर आए, कहां धरोगे पांव।

दूसरा साधु-दक्खन से हम जोगी आये, पच्छम हमारा गांव,

बिन्दराबन से चलकर आये, यहीं धरेंगें पावं।

मसखरा- जितु रे घराटे मुआ एसरा बाव।

मेरा बी लग्या बोलने रा दाव।।

(अरे जितु के घराट में इसका बाप रहता है। मुझे भी यह बताने का मौका मिला है।)

पहला साधु- कौन तुम्हारी बहन भान्जी, कौन तुम्हारी मात।

कौन तुम्हारे संग चलेगा, कौन करे दो बात।।

दूसरा साधु- दया हमारी बहन भान्जी, धरती हमारी मात।

लिया दिया सब साथ चलेगा, धरम करे दो बात।।

मसखरा- ए जाणो आरा एक ई बात।

खाया पिया और मारी लात।।

(यार ये तो एक ही बात जानता है। खाया पिया और लात मार दी)

पहला साधु :- कौन तपस्वी तप करे, कौन नित उठ नहाए।

कौन इस रस को उगले और कौन इस रस को खाए।।

दूसरा साधु :- सूर्य तपस्वी तप करे ब्रहम नित उठ नहाए।

इन्द्र इस रस को उगले और धरती सब कुछ खाए।।

मसखरा :- जप तप मुआ एसरा जाणो बाओ।

जेती एसखे खाणे खे मिलो तेथी रोज आव।

(अर्थात जप-तप यह कुछ नहीं जानता। जहां इसको खाने को मिले वहीं रोज जाता है।)

मसखरा वास्तव में अंग्रेजी साहित्य का जोकर है। यह नाना प्रकार से प्रकट होता है। श्रोताओं के मन की बात करता है। व्यंग्य उसका अस्त्र है, जिससे वह नाट्य की सार्थकता स्थापित करता है। अपनी हंसोड प्रवृति के कारण वह नाट्य को अधिक मनोरंजक बनाता है। अर्थात वह मूल रूप से नाट्य का जीवन है।

3. विदूषक- एक क्या होता है ?

मसखरा :- जिसका कोई न हो।

दूसरा साधु - नहीं बच्चा! तुम अभी अक्ल के कच्चे हो।

मसखरा :- भला फिर एक क्या होता है ?

दूसरा साधु :- एक ओंकार, दो चांद सूरज

तीन त्रिलोक, चार दिशाएं,

पांच पाण्डव, छः ऋतुएं

सात ऋषि, आठ अष्ट भूजा, नौ ग्रह

(इसी बीच मसखरा बोल उठता है)

मसखरा :- दस हुए दशांग, सोलहवें दिन सोला,

दरवाजे पांदे फोड़ा ठूठा

सतारहवें दिने दस्या गूठा।

पहला साधु :- आसन बांधू, पासन बांधू, बाधू कंचन केरी काया।

चार उंगल तेरा सिर का खोपड़ा, जटा कहां से लाया।।

मसखरा :- आसन खोलूं , पासन खोलू, खोलू केरी कंचन काया।

चार उंगल एसरा खोपड़ा खोलूं जटा उधार है लाया।।

इसी प्रकार वाद-विवाद से दर्शकों का मनोरंजन होता रहता है।

एक स्वांग में वार्तालाप कुछ यूं होता है -

विदुषक- माता थी गर्भ में पिता थे कवांरे,

तब कहां थे जन्म तुम्हारे।

मसखरा- माता थी गर्भ में पिता थे कवांरे, था यह उस वक्त घर में तुम्हारे।।

साधु- ना बच्चा ना। ज्ञान-ध्यान की बातें हैं सही-सही सुनो।

मसखरा- सुनाओ।

साधु - तो सुनो। माता थी गर्भ में पिता थे कवांरे।

पिता के मस्तक पर थे जन्म हमारे।।

विदुषक- धन्य हो महाराज, धन्य स्वामी जी।

एक अन्य करियाला मण्डली अपना साधु का स्वांग कुछ इस तरह शुरू करती है-

पहला साधु- जय शिव शंकर, कांटा लगे न कंकर।

दूसरा साधु- अरे दरिद्री, खाने पीने का ढंग कर।

पहला साधु- बम-बम भोले, बम-बम भोले।

दूसरा साधु- देख रहा मैं लाट-लाट में उड़न-खटौले।

तीसरा साधु- एक मछेरन सागर तट पर, डाल रही थी कांटा।

पहला साधु- मुझ को लगा ज्ञान का चांटा।

दूसरा साधु- चरपट हो तुम बड़े रसीले, एक आंख से भजते ईश्वर।

तीसरा साधु- तन के खोटे मन के भोले, नाड़ी के तुम ढीले।

पहला साधु- तेरे मन पर काई छायी, पहले इसको धोले,
बम-बम भोले , बम-बम भोले।।

दूसरा साधु- सारी उम्र गई मरघट में, धूनी बन गई कोले।
बम-बम भोले , बम-बम भोले।।

तीसरा साधु- भांग धतूरे की यह माया,

पहला साधु- जोगी इसमें क्यों भरमाया।

दूसरा साधु- अन्त समय कुछ हाथ न आया।।

सभी साधु- छूटे कुटुम्ब कबीले, बम-बम भोले , बम-बम भोले।।

बुद्धु का स्वांग

ग्रामीणों के बीच स्वांगो की अपनी विशेषता है। करयाला में विविधता, नयापन ताजगी और उत्सुकता रहती है। संज्ञा को जानबूझ कर ऐसे स्थानों पर प्रयोग किया जाता है जहां वाक्य अर्थ का प्रतीक होता है। उदाहरणत :-

प्रश्न - 'दावा' कहां होता है ?

उत्तर- दावा सनोडन में मिलती है।

दूसरा पाल- अरे ! दावा तो सेसन जज के यहां होता है।

चूर्ण वाले का स्वांग

प्रस्तुत स्वांग में चूर्णवाला चूर्ण के बहाने सीधे सादे शब्दों में कितनी अनूठी बाते कह रहा है :-

चूर्ण अमल वेद का भारी- जिस को खाते कृष्ण मुरारी
मेरा पाचक है पचलोना- जिसको खाता श्याम सलोना।
चुर्ण साहब लोग जो खाता -सारे का सारा हजम कर जाता।
चूर्ण पुलिस वाले खाते- सब कानून हजम कर जाते।
चूर्ण हाकिम साहब जो खाते- सब पर दूना टैक्स लगाते।।

जोगी-जोगन का स्वांग

जोगी जोगन स्वांग में एक पुरुष नारी भेष में व एक जोगी के रूप में मंच पर आते हैं। मंच पर आते ही वह एक भजन गाना शुरू करते हैं -

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा
माता तेरी पार्वती पिता महादेवा।

भजन के बाद स्वांग आगे बढ़ता है। इस स्वांग में पदों द्वारा नारी का कितना महान वर्णन किया गया हे। देखिएः-

नारी- सूरत तेरी देख के जी मेरा ललचाए।
हे जोगी तुम कौन हो, दीजो मुझे बतलाए।
(जोगी मौन रहता है)
नारी- कहां के तुम जोगी कहां तूम्हारा देश।
किस कारण जोगी बने, किया फकीरी भेष।।
जोगी- कंचनपुर के हम योगी, वहां हमारा देश।
प्रीति लगी रघुनाथ से, किया फकीरी वेश।।
जोगी पुनः- परनारी पैनी छूरी, मत कोई लाए अंग।
दस शीश रावण कटे, पर नारी के संग।।
नारी :- परनारी पैनी छूरी मत कोई लाए अंग।
रावण को भी राम मिले परनारी के संग।।
जोगी- नागिन से पर नारी बुरी, जो तीन ठौर से खाए।
धन छीने जोवन घटे, पंचो में पत जाए।।
नारी- नारी निन्दा मत करो नारी, नारी नर की खान।
नारी से नर होत है, ध्रुव प्रह्लाद समान।।

इसी प्रकार अनेक प्रकार के स्वांग दर्शकों के मनोरंजन हेतु प्रस्तुत किए जाते हैं। इन स्वांगों में लाड़ा-लाड़ी, पति-पत्नी, नट्ट-नट्टणी, आदि में समाज की विभिन्न बुराइयों को सजीव तरीके से परिलक्षित किया जाता है। जहां पिलपिली साहब में नौकरशाही पर तीखा पहार हैं वहीं साहब और मेम के प्रहसन में भारतीय समाज की अंग्रेजियत पर कड़ा कटाक्ष है।

साहब और मैम का स्वांग

इस स्वांग में साहब, मैम, बैरा, खानसामा, हंडूरिया और सिपाही आदि पात्र हैं। स्वांग की कथावस्तु अंग्रेजी राज के इर्द-गिर्द घूमती है। इस स्वांग में अंग्रेज साहब को भारत साहब कहा जाता है और मैम को किल्टे में उठाया जाता है। इसी स्वांग में एक बहुत ही सुन्दर रूपक पेश किया जाता है जिसमें बैरा और हंडूरिये का संवाद है -

बैरा-	कहां जा रहे हो ?
हंडूरिया -	नौकरिया चलु रा। तू क्या समजेया ?
बैरा -	ये जूता कंऊ चकी राख्या हाथा मंझे।
हंडूरिया-	भई जेबे नौकरिया चिमड़ना तेबे ढसणा ए।
बैरा-	जे नौकरी नी लगी तो ?
हंडूरिया-	तो साबणो रिया टिकिया मोया घसणा।

इसी प्रकार एक अन्य रूपक में अंग्रेजी साहब अपने मातहत नौकरों का आदेश देता है और परेड के लिये कहता है। जिसमें निम्न संवाद है-

लेफ्ट राइट लेफ्ट
लेफ्ट राइट लेफ्ट
ओरे हट
पोरे फिट

आगे चल

जबकि अन्य रूपक में संवाद कुछ इस तरह चलता है -

खुदा का मुल्क बादशाह का

इतला दी जाती है कि भारत साहब आ रहे हैं

सभी अपना अपना गली पछाड़ा साफ रखना

इसी प्रकार इस स्वांग के अन्य रूपक चलते रहते हैं जो ठेठ लोक प्रदर्शन होता है।

छोटे छोटे स्वांग

करियाले में इन स्वांगों के अलावा हिमाचली संस्कृति के छोटे-छोटे रूपक भी पेश किये जाते हैं। रांझू-फुलमू, कुंजू-चंचलो, राजा-गद्दन के रूपक बहुत प्रसिद्ध है। यह लोकगीतों की धुनों पर आधारित होते हैं, जिनमें विशेषकर वियोग की भावना जागृत होती है -

कपड़े धोंआं छम-छम रोआं चंचलों, विच क्या हो नशाणी हो।

हाय ओ मेरिये जिन्दे विच क्या हो नशाणी हो।।

कपड़े धोंआं छम-छम रोआं कुंजुआ, विच बटण नशाणी हो।

हाय ओ मेरिये जिन्दे विच बटण नशाणी हो।।

हिमाचली लोककथाओं पर आधारित इन रूपकों का सीधा सम्बन्ध दर्शकों से होता है। गाथाकार के कण्ठ में वे पात्र को विराजा हुआ देखते हैं। हिमाचल के ग्रामीण परिवेश में गायी जाने वाली इन लोककथाओं में सामाजिक परिस्थितियों का सही चित्रण प्रस्तुत होता है-

बाड़ुए सगाड़ुए कजो झांकदी वलीये कजो झांकदी,

दो हत्थ बटणे दे लाया फुलमु गला होई बीतियां।

कुणिये परोहिते तेरा व्याह लिखेया, कुणीए लगाई कड़माई।

कुले रे परोहिते मेरा व्याह लिखेया, बापुए कीती कड़माई,

गला होई बीतियां।।

लोककथाओं के अलावा समाज की वर्तमान परिस्थितियों को भी करियाले में छोटे-छोटे रूपकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। गार्ड स्वांग में जंगलायत के रिश्वतखोर गार्ड का चित्रण प्रस्तुत होता है-

पांज मांगे दस देणे ओ गार्डा,

देख्या मेरी डी आर कटदा ओ गार्डा।

तु मेरी रपोट मत करदा।।

इतना हास्य व्यंग्य विनोद के चलते लोग बड़ी उत्सुकता से गंगी, सुन्दर और लोका नामक लोकगीतों की प्रतीक्षा में रात-रात भर बैठे रहते हैं।

लम्बरदार का स्वांग

लम्बरदार रियासत काल में गांव में रियासत का राजस्व प्रतिनिधि होता था जिसका मुख्य कार्य राजस्व वसूलना होता था। इसके अलावा वह छोटे मोटे कार्य भी निपटाता था। इस स्वांग में मुख्य पात्र लम्बरदार है। उसके अतिरिक्त नट, नटी, चौकीदार, थानेदार और सिपाही भी शामिल है। स्वांग की कहानी एक नटी की हत्या से शुरू होती है। जिसमें चौकीदार लम्बरदार को कहता है कि थाने में रपट लिखवा दो उनके यहां खून हुआ है। चौकीदार और लम्बरदार का संवाद बहुत ही मजाकिया होता है। जैसे :-

चौकीदार - ओ लम्बरदारा तेरी तो यहां लम्बरदारी है। जा रपट लिखा।

लम्बरदार - आरा मेरी लम्बरदारी तो भितरे सोई रा बला।

चौकीदार - आरा मजाको रा टाईम नी आ। तैं कुछ सुणेया। गांव रे एक माणु काटा भई।

लम्बरदार - आरा माणुए रे नी जमो काटा। से तो मईसी रे जमो बला।

इस प्रकार हंसी विनोद चलता रहता है।

लम्बरदार के ही अगले रूपक में पुलिस महकमे में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों पर कटाक्ष किया गया है। जैसे खून होने के बाद हवलदार और सिपाही तहकीकात करने आते हैं और बैठने के लिये कुर्सी, खाने के लिये मुर्गा-शुर्गा, पीने के लिये बोतल-शोतल की फरमाइश करते हैं। इसी प्रकार स्वांग व्यंग्य विनोद के साथ समाजिक बुराइयों पर कटाक्ष करते हुए समाप्त होता है।



डाऊ डायन का स्वांग

इस स्वांग के माध्यम से समाज में व्याप्त अंधविश्वासों जैसे जादू टोनों आदि पर सुन्दर कटाक्ष करते हुए इस बुराई को उजागर किया गया है और देवता के प्रति श्रद्धा दिखाई गई है।

मनोरंजक खबरें

खबरे मतलब समाचार। इस स्वांग में दो पात्र होते हैं। एक समाचार सुनाने वाला और दूसरा सुनने वाला। स्वांग का अंत दोनों के हंसी विनोद के साथ होता है। खबरों के कुछ नमूने देखें -

1 दाड़ला घाट की सगाई हो रही थी पर अर्की ने पांजी मार दी।

2 अभी अभी समाचार मिला है कि भराड़ी घाट के सोनु ढाबे में चटनी चार चपातियों के साथ फरार हो गई है। यदि किसी को इनकी कोई सूचना मिले तो तुरन्त अर्की थाने में इतला करें।

3 आज एक अंग्रेज अर्की में चाय पीते पीते कप में डूबकर मर गया।

स्वांग के मध्य मंच पर थिरकती चन्द्रावली

स्वांगों के बीच में चन्द्रावली अहम भूमिका निभाती है। जैसा कि पहले ही बताया गया है कि स्त्री वेशभूषा में पुरुष ही चन्द्रावली का अभिनय करता है। अनेक स्वांग मण्डलियों ने चन्द्रावली के साथ एक पुरुष पात्र रौलू को भी अभिनय के लिये तैयार किया होता है। रौलू का काम दूसरे लोक नाट्यों में मसखरे द्वारा निभाई गई भूमिका की तरह है। यह चन्द्रावली का विशेष कलाकार है। उल्टे सीधे कपड़े पहनता है, विशेषकर रंग-विरंगे भद्दे कपड़ों से, शरीर की झांकी प्रस्तुत करता है।

यह नृत्य तब तक चलता रहता है जब तक कि दूसरा दृश्य तैयार न हो जाये। दर्शकों द्वारा फरमाइश पर चन्द्रावली गीत पेश करती है। पहले पहाड़ी गीतों की ही फरमाईश की जाती थी परन्तु अब फिल्मी गीत भी पेश किये जाते हैं। खुशी के मारे दर्शक चन्द्रावली पर रुपयों की वर्षा कर देते हैं। जिस पर चन्द्रावली दानी का नाम पूछ कर कहती है -

जय जननी ज्वालामुखी तु खूब रचाइयों खेल
लाला जी ने एक रुपया दिया
उनकी खूब बढ़ाओ बेल! ओ रामा!
उनकी खूब बढ़ाओ बेल............।

स्वांग के माध्यम से मण्डली अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों का सही चित्रण करती है। राझुं-फुलमू, कुंजू-चंचलों और सुईमाता की गाथा प्रस्तुत करते हुए आज भी दर्शक रो उठते हैं। इसके अलावा अनेक दूसरे स्वांग जैसे हरिश्चन्द्र, पूर्ण भगत, शिव पार्वती, साधु स्वांग की कृष्ण लीला आदि प्रसंगों को बड़े सहज रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

इसी प्रकार सारी रात यह क्रम चलता रहता है। नृत्य भी चलता रहता है। स्वांग भी प्रस्तुत होते रहते हैं।

इतना कुछ रोचक होते हुए भी आज इस मनोरम और उल्लासपूर्ण खेल का भविष्य अन्धकार में है। इसके कारण ढूंढना भी कठिन नहीं है। विज्ञान और उद्योग के चमत्कारपूर्ण विकास के युग में हर वस्तु को भैतिकवादी दृष्टिकोण से आंका जाता है। हमारी सांस्कृतिक धरोहर आज दुष्प्रभावित हो रही है। इस सांस्कृतिक धरोहर को बचाने के लिए करियालचियों को प्रोत्साहन दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है ताकि विज्ञान के इस युग में करियाला का अस्तित्व बना रह सके।

शिक्षा- क अनुभाग
आर्मजडेल विल्डिंग, कमरा नं.-402(ए),
हिमाचल प्रदेश सचिवालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171002
मोबाईल न0 94180-33783

संदर्भ :

1. Hans, Ashok.k. 1986. k. KARYALA-A FOLK THEATRICAl~ FORM OFk~ HIMACHAl~ PRADESH.k~ Delhi-51, Sahitya Sahkar.
2. Ahluwalia, Kailash.k~ 1995.k~ KARYALA: An Importu Theatre fo~ Himachal Pradesh.k~ New Delhi-08, Reliance Publishing House.
3. Rose, H.A., Minor Gods in the Simla hills ; Page-469),A Glosary of the TribesAnd Castes of the PunjabAnd North – Western Frontier Province ;Vol.-I), 1999.k~ Delhi.-52, Low Price Publications.k~
4. हंस, अशोक. करयाला- हिमाचल प्रदेश का एक लोक रंगमंचीय रूप (पृष्ठ-66 से 71), हिमप्रस्थ : अप्रैल-मई 2005, शिमला-02, निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग हिमाचल प्रदेश।
5. अजनबी, नेम चन्द. लोक नाट्य व लोकानुरंजन (पृष्ठ- 8 से 11 व 50 से 53), हिमप्रस्थ : नवम्बर 2008, शिमला-02, निदेशक, सूचना एवं जन-सम्पर्क विभाग हिमाचल प्रदेश।
6. ओम चन्द हाण्डा, हिमाचल का लोक नाट्य-करियाड़ा, सोमसी : जनवरी 1975 (प्रवेशांक), शिमला, हिमाचल कला, संस्कृति, भाषा अकादमी।
7. अशोक हंस, कृष्ण की गापी नही करयाला की चन्दावली, सोमसी : जनवरी- मार्च 2004, शिमला, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका।
8. करियाला-हिमाचल लोकनाट्य, लोक सम्पर्क विभाग हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित पुस्तिका।

हरीश कुमार 'अमित' की कविताएं

डांट

बड़े बाबू को
छोटे बाबू के सामने ही
साहब डांट रहे थे
तो छोटे बाबू के
पैरों तले से
जमीन खिसक रही थी
छोटे बाबू को पता था
कि कुछ देर बाद
बड़े बाबू
यही डांट
सूद समेत
उसी को पिलाएंगे।

दिमाग से कंकाल

दिमाग से बेशक
वे कंकाल हैं
पर चूंकि वे खूब मालामाल हैं
इसलिए उनकी बेवकूफियों पर भी
कहते सभी -
कमाल है! कमाल है!
हुजूर आप बेमिसाल हैं!
बुद्धु बनाकर उन्हें इस तरह
गलाते लोग अपनी दाल हैं।

रोग

जब से उन्होंने
कविताएं लिखनी शुरू की हैं
उनका वज़न कम हो गया है
और सेहत भी सुधर गई है
वजह इसकी यह है कि
उन्हें देखते ही
इधर-उधर भागने लगते हैं लोग
ऐसे में दौड़ना पड़ता है
इन कवि महोदय को भी
उन लोगों के पीछे-पीछे
ताकि मिटा सकें
कविता सुनाने का अपना रोग।

304, एम.एस. 4, केंद्रीय विहार, सेक्टर 56, गुड़गांव,
हरियाणा-122 011, मो. 0 98992 21107

बाल कविता

बंदर, बिल्ली और कौवा

डॉ. राकेश 'चक्र'

बंदर मामा थे झगड़ालू
तोड़ कभी खाते थे आड़ू
इधर-उधर को कूड़ा फेंके
नहीं लगाते थे वे झाड़ू।

एक थी भूरी बिल्ली-रानी
दुश्मन थी चूहों की नानी
बिल्ली 'औ' बंदर मामा की
आपस में दुश्मनी पुरानी।

बंदर मामा, मौसी बिल्ली,
एक पेड़ पर आ टकराए
धमा-चौकड़ी करके दोनों
एक-दूसरे पर गुर्राए।

चपत मारते बंदर मामा
मौसी ने पंजे आजमाए
दोनों ने ही अपने-अपने
दांव जोर के खूब लगाए।

हार नहीं मानी दोनों ने
इतने में कौवा जी आए।
कांव-कांव कर सहज भाव से
दोनों को मधु वचन सुनाए।

झगड़ा दोनों बंद करो अब
हम दोनों को पूड़ी लाए
फिर दोनों को दे दी पूड़ी
दोनों ने तर माल उड़ाए
कौवे ने यूं मित्र बनाकर
प्यार भरे फिर गीत सुनाए।

90बी, शिवपुरी, मुरादाबाद-244 001,
मो. 0 94562 01857

कविताएं

अनन्त आलोक

चिटकनी

दरवाजा साक्षी है
तुम्हारी अय्याशियों का
यह जानता है
उसकी अनुपस्थिति में तुमने
किस किस को घसीटा है पलंग पर
किस किस के बालों में पिरोई उँगलियाँ
और चूमा कितने होठों को ...
उसने देखा है तुम्हारे रोम रोम में दौड़ता रसना रस ...

ये बात अलग है
कि किसी से कहेगा नहीं दरवाजा
पुरुष जात है न !
लेकिन इसकी भी एक पत्नी है
वही तो रोकती है इसे
समय और संयोग की हवा आने पर
जब ये छटपटाता है भाग जाने को
हवा में फुर्र हो जाने को
मचलता है मस्ती करने को कुंवारे लाट सा
पटकता हाथ पाँव
उस समय इसे एकदम स्थिर कर देती है
चिटकनी !
वो चाहे तो बता सकती है
तुम्हारी करतूत भी
तुम्हारी पत्नी को !
तुम बिन चिटकनी
के दरवाजे हो !!!

काँधे चढ़ी औरतें

पहाड़ के काँधे चढ़ी औरतें
कर रही हैं हजामत
बूढ़े पहाड़ की

कनपटी और सिर के पिछले हिस्से में
बचे खुचे, पके, भुरियाये बाल
कतर देती हैं हर वर्ष
जाड़ा आने से पहले
ये औरतें भले ही प्रोफेशनल हजाम न हों
लेकिन इनके आगे बड़े बड़े हजाम
भरते हैं पानी
जब चलता है इनका दराती उस्तरा

इनमें से अधिकतर ने नहीं पढ़ा है
गणित
मगर इनके ज्यामितिक ज्ञान का कोई सानी नहीं
बिजली की फुर्ती से कतरती हैं ये
अपने अपने हिस्से की आयतें
वर्ग और त्रिभुजें
बिना स्केल पेंसिल और परकार के
काटती हैं
भिन्न भिन्न प्रकार के स्टेंशियल

पहाड़ का सर हो जाता है
एकदम फैशनेबल, आकर्षक
फिल्मी सितारों
आज के नौजवानों ने
इन्हीं से सीखा होगा
बालों में कटिंग के अलग अलग
डिजाइन बनवाना

पहाड़ ने गर्दन से छाती तक
ओढ़ा रखा है स्लेट पत्थर के श्याम सफेद
चेकदार मकानों से बना
काफिया
गेहुँवी हरी टी शर्ट पहने पर्वत
लगता है एकदम स्मार्ट
हेंडसम ओल्ड यंग मेन

औरतों ने रख दी हैं
अपने अपने हिस्से की आकृतियाँ
अपने देसी फार्मूले से बदलकर
बड़े बड़े शंकू और बेलन में

ताकि बर्फ पड़ने पर खिला सके
गाय को और
सफेद अमृत बना कर
दे गाय माता वापस
पियें बच्चे बूढ़े और जवान

'साहित्यालोक', बायरी, ददाहू, जिला सिरमौर,
हिमाचल प्रदेश-17302, मो0 094187 40772

कहानी

साइकल

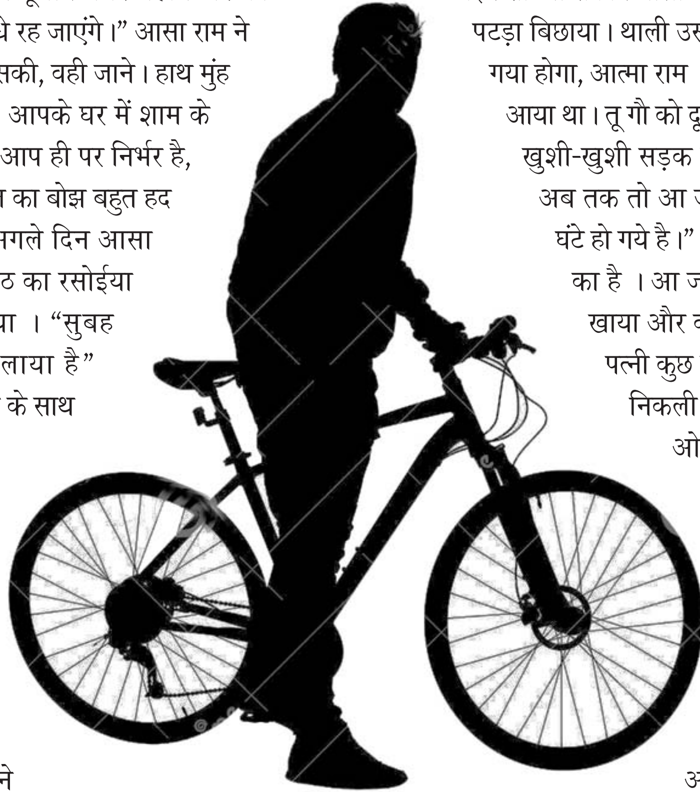
◆ रमेश चंद्र शर्मा

आसा राम बहुत थक चुका था। पूरे दिन मालिक के खेतों में गुड़ाई खुदाई का काम किया। आराम का मौका तक नहीं मिला, क्योंकि वह कुर्सी पर बैठा-बैठा काम को देखता रहा और अपनी इच्छानुसार काम करवाता रहा। नौकरों मजदूरों को आज उसने खाना भी दिया ताकि वे दोपहर की छुट्टी लेकर आने में देर न कर दें। घर में आते ही आसा राम ने चाय मांगी और फर्श पर बिछी चटटाई पर ही लेट गया। उसे नींद आने लगी। उसका दस-ग्यारह साल का बेटा आतू भागता हुआ घर में आया और अपने पिता के पास बैठ गया। सदा की तरह उसकी छाती पर सिर रख कर बोला- 'बापू मेरी साइकल?" आतू उठकर बैठ गया। आसा राम सो चुका था । उसने उसे झकझोरा। 'सोने दे बेटा। मैं बहुत थक चुका हूँ। सोते-सोते उसे याद आया कि वह वचनबद्ध है। वह सूझ-बूझ से काम न लेकर यह भी नहीं कह सकता था कि गरीब के बच्चों के पास ऐसे खिलौने नहीं हो सकते। श्रमिक का बेटा कूली ही रहेगा या मजदूरी करेगा, यह भी नहीं कहना चाहता था। वायदा कर बैठा था ताकि उसे हीन भावना न हो। आतू ने फिर कहा "बापू सेठ का बेटा कहता है कि तुम गरीब हो। साइकल नहीं ले सकते।' आसा राम आँखे मलते हुए उठ बैठा। गरीब क्या होता है? "गरीब वह होता है बेटा, जो सेठ के लिए रोटी कमा कर देता है।" वो कैसे? जैसे मैं कर रहा हूँ। अगर मैं खेत में हल न जोतूं। फसल की बिजाई न करूं?

"कौन खिलाएगा मालिक के परिवार को खाना?" वह शान्त मुद्रा बनाए हुए बैठा रहा। समझ तो चुका था कि मालिक का बेटा जो आतू का हम उम्र है बचकाना हरकतें करने लगा है। वह अभी भी अपने बेटे की भाव-भंगिमा पढ़ रहा था। उपने बेटे को अपेक्षित प्रोत्साहन देने के लिए बोला कि महीना खत्म होने पर साइकल लाकर दे देगा। मगर शर्त यह है कि वह पढ़ाई-लिखाई में मन लगाए। अगर उसके अध्यापक ने बताया कि आतू ठीक से पढ़ लिख रहा है तो वायदा रहा साइकल ला कर दे दूंगा। उसने पुत्र को गौर से देखा अब रोआंसे से मुंह पर कुस्कुराहट लाओ पढ़ो लिखो और मुझे भी खुश होने का मौका दो । वह फिर लेट गया। "मुझे वही साइकल चाहिए जो सेठ के बेटे के पास है।" आसा राम चुप रहा। आतू हंसता हुआ फिर से बाहर निकल गया। खेलता-खेलता आया था। "बापू से मिल लिया मां।" अब तक आतू की मां चाय लेकर आ गई थी। पति को चाय का गिलास थमाकर बोली, "गरीब के बेटे को हीन भावना से बचाना एक चुनौती है, जी। मैंने बाप बेटे की बातें सुन ली है। रसोई भी तो कमरे के साथ ही है। अब सेठ का बेटा उस पर अपनी धौस जमाने लगा है," वह बोली। आज के समाज की परिभाषा वोट ने बदल डाली है। मगर कई सेठ, बड़े जमीदारों की आदतें बदली नहीं। वे नेताओं को पैसे देते

महीने का अन्त हुआ और मजदूरी के पैसे मिलने का दिन आया आसा राम अपने मालिक की आंखों में देखता हुआ खड़ा था। कैसे कहूँ क्या बोलू ? सेठ ने सौहार्दपूर्ण लहजे से पूछा, "आसा राम। मजदूरी के पैसे तुम्हारे सामने मेज पर पड़े है। उठा लो।" उसके मन में ऊहा-पोह बढ़ने लगी। पैसे सेठ की ओर सरका कर बोला, "सेठ जी मेरा बेटा न समझी की सी बातें करने लगा है। आपके कंवर के साथ खेलता है। कहता है उसे भी साइकल चाहिए। इसलिए मैं अपना पैसा वापस देकर साइकल मांगता हूँ, ताकि घर पहुँचकर गरीबी में स्वर्ग रचा सकूं।" आसा राम की आंखों में आंसू आ गए।

है। चुनाव लड़ाते हैं इस प्रकार अपना रुतबा बनाए रखते हैं। छोटे बड़े की खाई वैसी की वैसी कायम है।" महीने का अन्त हुआ और मजदूरी के पैसे मिलने का दिन आया आसा राम अपने मालिक की आंखों में देखता हुआ खड़ा था। कैसे कहूँ क्या बोलू ? सेठ ने सौहार्दपूर्ण लहजे से पूछा आसा राम। मजदूरी के पैसे तुम्हारे सामने मेज पर पड़े है। उठा लो।" उसके मन में उहा-पोह बढ़ने लगी। पैसे सेठ की ओर सरका कर बोला, "सेठ जी मेरा बेटा न समझी की सी बातें करने लगा है। आप के कंवर के साथ खेलता है। कहता है उसे भी साइकल चाहिए। इसलिए मैं अपना पैसा वापस देकर साइकल मांगता हूँ, ताकि घर पहुँचकर गरीबी में स्वर्ग रचा सकू। आसा राम की आंखों में आंसू आ गए। "ठीक है ठीक है। मजदूरी इस 'सैकिंड हैड' साइकल की अबकी कीमत से ज्यादा है। आधे पैसे रख लो। मैं अपने पुत्र कंवर के लिए नई साइकल लेकर आउंगा। इसे आपको सौप दूंगा। मगर महीने भर का गुजारा कैसे करोगे, पैसे आधे रह जाएंगे।" आसा राम ने आसमान की ओर देखा, उसकी, वही जाने। हाथ मुंह दिए हैं, खाने को भी देगा। आपके घर में शाम के बाद भी काम करूंगा। यह आप ही पर निर्भर है, सेठ जी।" आसाराम के दिल का बोझ बहुत हद तक हल्का हो गया था। अगले दिन आसा राम के दरवाजे के आग सेठ का रसोईया खड़ा था। वह बाहर आया । "सुबह सुबह क्या सेठ जी ने बुलाया है" "नहीं। इस बाहर की दिवार के साथ खड़ी बच्चा साइकल सेठ ने भेजी है।" यह कहते ही रसोईया चला गया। आसा राम ने आसमान की ओर देखकर दोनों हाथ जोड़, "धन्यवाद - दीनबन्धु। आप ने मेरी चिन्ता दूर कर दी। उसने उपने बेटे को आवाज दी, जागो। इधर आओ तुम्हारी साइकल आ गई है।" आतू आंखें मलता हुआ बाहर आया। साइकल देखकर खुश हो गया। पिता को अपनी पतली-पतली बाहों में भर कर बोला, "पिता जी, बापू जी धन्यवाद धन्यवाद।" साइकल हाथ में संभाली। उसका हैंडल पकड़कर बाहर की ओर निकल गया। नेशनल हाइवे जो इस गांव से होकर निकलता था, वहां साइकल ले आया। दिन चढ़ गया था। वहां से कुछ ही दूरी पर सड़क ढलानदार थी। साइकल तेज बेकाबू रफतार से चलने लगी। उसने ब्रेक लगाई जो नहीं लगी।



सुबह सवेरे के धुंधलके के समय कोई उधर से जाता दिखाई न दिया। उसने आवाज लगाई, "बापू, अम्मा, लोगो, साइकल रोको।" उसे किसी ने नहीं सुना। घर काफी दूर पीछे छूट चुका था। उसने साइकल मोड़ी और पैरापिट की ओर घुमा दी। सड़क किनारे की यह मुंडेर उसे रोक न पाई । वह तुरन्त द्रुतगति से उसके पार जाकर ढॉंक में गिर पड़ा। साइकल पीछे छूट कर डंगे के साथ गिरी रह गई। सिर पर चोट आई। आंखों के आगे अन्धेरा छा गया। बुड़बुड़ाया । बेहोश हो गया। फिर कुछ हिला। बैठा, घुटने मोड़े। फिर मूर्च्छित। उधर आसा राम अपने नितकर्म से निपट कर सूर्य को अर्घ देते हुए, बोला, "आतू की मां । जल्दी करो सवा आठ बज गए है। नौ बजे दिहाड़ी पर पहुँचना है।" "आई, खाना तैयार है। गाय को घास डाल कर आई । पर आत्मा राम कहाँ है? सवेरे से दिखाई नहीं दिया।" कहती कहती चूल्हे के सामने बैठ गई। रोटियां सेकी। थाली परोसी और आसा राम के लिए पटड़ा बिछाया। थाली उसके सामने रख दी। कहीं नहीं गया होगा, आत्मा राम । साइकल सेठ का रसोइया ले आया था। तू गौ को दूह रही थी। वह साइकल लेकर खुशी-खुशी सड़क की तरफ चला गया होगा।" अब तक तो आ जाना चाहिए था। लगभग दो घंटे हो गये है।" नया-नया शौक है । दस साल का है । आ जाएगा।" आसा राम ने खाना खाया और काम पर निकल गया। उसकी पत्नी कुछ देर और प्रतीक्षा के बाद बाहर निकली। सड़क पर पहुँची। नीचे की ओर भागी। इधर-उधर देखती रही। और जब वह उसी पैरापिट के पास पुहँची तो देख कर हैरान रह गई। साइकल उस मुंडेर के बाहर, साथ ही गिरी पड़ी थी। और नीचे झांका। वहां उसका बेटा आत्मा राम उकंड़ बैठा था। दोनों बाहे।

घुटनों को थामे हुए थी। सिर घुटनों के बीच था। वह वहां पहुंची, उसे हिलाया - "आत्मा राम बेटा। आतू आतू ।" वह वहीं जमीन पर ढेर हो गया। न जान, न प्राण । वह चीख पड़ी। और आकस्मिक ही बेटे को गोद में भीच लिया। मूर्छित होकर धरती पर धम से गिर पड़ी।

सेवानिवृत्त आईएएस, टकसाल हाउस, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 002, दूरभाष : 0177 2621199

कहानी

सुरक्षा

◆ आशा पाण्डेय

प्लेटफार्म नंबर एक के यात्रियों के लिये बनी बेंच पर वह बैठी है। उम्र कोई पच्चीस से अठाईस के आस पास। आखें बड़ी और भाव प्रवण। नाक लम्बी, होठ पतले, रंग मटमैला किन्तु पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अगर साबुन से रगड़-रगड़ कर नहला दिया जाये तो इस मटमैले रंग के नीचे से झक गुलाबी गोरा रंग निकल कर सबको विस्मित कर देगा। बेतरतीब ढंग से पहनी गई मैली साड़ी का लगभग आधा हिस्सा नीचे लटक रहा है। बाल कंधों पर बिखरे हैं, जिसे देख कर ये तो नहीं लगता की सौंदर्य-बोध के कारण उसने जानबूझ कर बालो को कंधों पे फैलाया होगा, किन्तु कंधे पर फैले बाल उसकी सुन्दरता को बढ़ा जरुर रहे हैं। दोनों हाथ की कलाइयाँ कांच की चूड़ियों से भरी है। चूड़ियों के माप और रंग में कोई समानता नहीं है। कोई बड़ी, कोई छोटी, कोई हरी, कोई लाल। ऐसा लगता है कि चूड़ी की दुकान पर जा कर चूड़ियाँ मांग लेती होगी, दुकानदार भी अधिक ध्यान न देते हुए एकाध चूड़ी दे देता होगा और लम्बे समय तक ये सिलसिला चलते रहने के कारण आज उसकी कलाई नई -पुरानी रंग-बिरंगी चूड़ियों से भरी है।

अब उसने अपने दोनों पैर ऊपर उठा लिये और बेंच पर ही पालथी मार कर बैठ गई। उसके पास एक थैला है, वह थैले को ऊपर उठा कर अपनी गोद में रख लेती है, बार बार उसमें कुछ देखती है, हाथ से उसे छूती है , कुछ बोलती भी है फिर बड़ी मोहक अदा से मुस्कुराकर शर्मा जाती है।

रेलवे प्लेटफार्म जीवन का क्षणिक ठहराव है। मंजिल पर पहुंचने के मार्ग का एक पड़ाव मात्र। किन्तु सरपट भागती जिंदगी के बीच कुछ ऐसे लोग भी हैं जो जन्म से मृत्युपर्यंत यही ठहर कर रह जाते हैं। प्लेटफार्म पर बैठ कर भी किसी ट्रेन के आने का इंतजार उन्हें नहीं रहता। शायद उस महिला को भी कही नहीं जाना है। यही प्लेटफार्म उसका निवास है। यहाँ के शोर-शराबे से बिलकुल अनभिज्ञ-सी अपनी ही दुनिया में खोई है वह। उसके बैठने के बाद भी उस बड़ी-सी बेंच पर बहुत-सी जगह खाली है। उसकी एक निष्ठ नीरव मुस्कान से प्रभावित हो कर कुछ पुरुष मुसाफिर उसके पास बैठने के इरादे से वहां आते भी हैं। किन्तु महिला को ध्यान से देखते ही वे बैठने की इच्छा त्याग कर आगे बढ़ जाते हैं। उसे कोई परवाह भी नहीं है ? लोग आएँ, जाएं, बैठें कुछ भी फर्क नहीं पड़ता उसे। उसने ध्यान ही कब दिया कि लोग वहां बैठने आ रहे हैं या फिर बिना बैठे ही आगे बढ़े जा रहे हैं। वह स्वयं में संतुष्ट एकाग्र तन्मयता से सुखानुभूति में डूबी है।

अब उसने अपने पैर फिर नीचे लटका लिए हैं। पैर लटकाते समय बड़े ध्यान से वह नीचे देखती है। जमीन पर लटक रही साड़ी को थोड़ा सा उठाती है फिर उसी हालत में छोड़ कर मुस्कुरा देती है। हृदय में उठ रही तरंगों की गति के भावनात्मक पक्ष को नापने का कोई यंत्र होता तो यह कहना आसान होता कि भीड़ भरी इस जगह पर बैठ कर भी वह किसी गहरे अलौकिक सुख में किस हद तक डूब चुकी है। बीच-बीच में मुस्कुराकर वह अपनी उस खुशी को थोड़ा-बहुत व्यक्त कर रही है।

एक अधेड़-सा पुरुष उस बेंच की तरफ बढ़ता है। गहरा काला रंग, सामान्य-सा चेहरा, किन्तु आंखों में चमक। पुरुष के पास भी एक मटमैला सा थैला है। बेंच के पास जा कर वह इधर-

महिला आकर फिर से बेंच पर बैठ गई। अब वह अपने थैले में कुछ खोज रही है। पुरुष भी उसकी बगल में बैठ गया। आस पास खड़े उसके इष्ट मित्रों की टोली उसे प्रोत्साहित करते हुए खिलखिला रही है। पुरुष फिर से महिला के एकदम करीब आ गया और उसकी चूड़ियों को सहलाने लगा। महिला ने अपना हाथ खीच लिया। पुरुष थोड़ा हताश हुआ लेकिन थोड़ी देर बाद ही वह फिर से महिला को खुश करने में जुट गया।

उधर देखता है, फिर थैला नीचे रख कर बेंच पर बैठ जाता है। इसे भी किसी ट्रेन का इंतजार नहीं है। लगता है यह भी इसी प्लेटफार्म का नियमित वाशिंदा है।

पुरुष ने आपना थैला उठाया, उसमें से कुछ निकाल कर महिला की तरफ बढ़ाया और इसी बीच वह महिला के थोड़ा नजदीक सरक आया। महिला अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को उठा कर गहरे आश्चर्य से उस पुरुष को देखती है, फिर उस सामान को जो वह उसे देना चाह रहा है और अंत में दूसरी तरफ मुंह कर के पुनः अपने में ही व्यस्त हो जाती है। हाथ में ली हुई उस वस्तु को वहीं बेंच पर रख पुरुष ने महिला की नीचे लथड़ रही साड़ी को उठा कर बड़ी आत्मीयता से उसके शरीर पर डाल दिया। महिला ने फिर उस पुरुष की तरफ नजर उठाई। पुरुष मुस्कुरा दिया, महिला शांत रही। अब वह पुरुष उस महिला के थोड़ा और नजदीक खिसक आया। जब महिला ने कोई प्रतिकार नहीं किया तब पुरुष महिला के हाथ को अपने हाथों में ले उसकी चूड़ियों की प्रशंसा करने लगा। अपनी चूड़ियों को देख कर महिला एक बार फिर मुस्कुरा दी। यद्यपि उसकी मुस्कान में उस पुरुष की उपास्थिति की खुशी का भाव तनिक भी नहीं था किन्तु पुरुष की हिम्मत बढ़ गई। अब वह उस महिला से कुछ कह रहा है जिसे अनसुना कर वह इधर-उधर देखने लगी। पुरुष थोड़ी देर शांत बैठा रहा फिर महिला का हाथ पकड़ कर बड़ी मीठी आवाज में बोला, 'चलो।'



महिला ने उसे प्रश्न भरी नजर से देखा जैसे पूछना चाह रही हो, 'कहाँ "

पुरुष हाथ से इशारा करते हुए बोला , 'वहाँ ...पीछे।'

महिला अपना सिर खुजलाने लगी। पुरुष का हाथ महिला के कंधे पर था जिसे हटा कर वह वहीं खड़े ठेले के पास आ गई। पास खड़े मूंगफली वाले ने एक कागज में लपेट कर थोड़ी सी मूंगफली उसकी तरफ बढ़ाई। महिला निर्विकार भाव से मूंगफली देने वाले की तरफ देखने लगी।

'ले, पकड़ न'" मूंगफली वाले ने आग्रह किया। महिला बिना मूंगफली लिये ही वहां से थोड़ा हट कर खाली पड़ी ट्रेन की पटरियों को देखने लगी। फिर सिग्नल की तरफ नजर दौड़ाई।

'गाड़ी आने का इंतजार कर रही है क्या?' मूंगफली वाले ने पूछा। अब तक वह भी उसके पास पहुँच गया था।

'इसका कोई आने वाला होगा' चने चुरमुरे वाले ने चुटकी ली।

मालगाड़ी से उतारे गये सामानों के बड़े-बड़े बक्से प्लेटफार्म पर रखे थे। रेलवे कर्मचारी उन बक्सों को हाथ गाड़ियों में लाद कर ले जाने लगे जिससे पूरे प्लेटफार्म पर धड़-धड़ की आवाज फैल गई। महिला को इन हाथ गाड़ियों के शोर से थोड़ी राहत मिली। वह फिर से ठेले के पास आकर खड़ी हो गई ? ठेला तेल, कंघी, पाउडर, ब्रश, पेस्ट आदि यात्रा में उपयोग में आने वाले सामानों से भरा था। प्लास्टिक के कुछ खिलौने भी थे। महिला एक गुड़िया उठा लेती है। ठेले वाला जो अब तक चुप बैठा सब के क्रिया-कलापों को देख रहा था, एकदम चिल्ला कर महिला को डाटा ' रख...जल्दी रख, उसे लेकर नहीं जाना।'

महिला बड़े आश्चर्य से उसे देखने लगी फिर कुछ प्रसन्न हो कर गुड़िया रख दी। वह पुरुष जो बेंच पर उसके पास बैठा था, आगे बढ़ कर उस ठेले वाले से बोला, 'क्या बात करता है यार, पैसे ले लेना... मैं दे दूंगा पैसे।'

'रख दो... मैंने कहा रखो...मुझे बेचना नहीं है' ठेले वाले ने क्रोध भरी आवाज में कहा। पुरुष ने भी नाराज होते हुए गुड़िया रख दी। महिला अब भी ठेले के पास ही खड़ी है। उसके बगल में एक चाय वाला खड़ा है, उसने महिला से पूछा- 'चाय पिएगी ?' महिला कुछ बुदबुदाई। अब वह पुरुष भी चाय वाले के पास आ गया है। चाय वाले ने बड़ी शरारत भरी मुस्कान के साथ धीरे से उस पुरुष से कहा, पगली है ...पट जाएगी फिर दोनों हँसने लगे आस पास खड़े चने चुरमुरे, बड़ा पाव, चाय काफी आदि बेचने वाले भी ठठाकर हँसने लगे। इस समय प्लेटफार्म पर कोई ट्रेन नहीं है इसलिए सब फुर्सत का समय मजे से बिता रहे हैं।

महिला आकर फिर से बेंच पर बैठ गई। अब वह अपने थैले में कुछ खोज रही है। पुरुष भी उसकी बगल में बैठ गया। आस पास खड़े उसके इष्ट मित्रों की टोली उसे प्रोत्साहित करते हुए

खिलखिला रही है। पुरुष फिर से महिला के एकदम करीब आ गया और उसकी चूड़ियों को सहलाने लगा। महिला ने अपना हाथ खींच लिया। पुरुष थोड़ा हताश हुआ लेकिन थोड़ी देर बाद ही वह फिर से महिला को खुश करने में जुट गया। अब उसने चाय वाले से दो कप चाय ली। एक कप उसने महिला को पकड़ा दिया और बड़ी अर्थपूर्ण नजरों से पीने का आग्रह करने लगा। महिला ने गंभीरता से उसे देखा। ऐसा लगा मानो ऊपर से शांत प्रतीत हो रहे समुद्र में तूफान आने वाला हो। चाय का कप अब भी महिला के हाथ में है पुरुष पुनः अश्लील इशारे से उसे चाय पीने के लिये कहता है। महिला पुरुष की ओर देखते हुए कप होठों तक लाती है और अकस्मात् चाय को पुरुष के मुंह पर उछालते हुए उसे एक करारा थप्पड़ जड़ देती है। गरम चाय से पुरुष की आंखे जल जाती हैं, वह छटपटाने लगता है। महिला का चेहरा क्रोध से लाल हो गया है। अब वह पुरुष के बाल पकड़ कर अपनी पूरी ताकत से खींचने लगी। इस अप्रत्याशित घटना से स्तब्ध आस-पास खड़ीं उसकी मित्र मंडली नजदीक पहुँच कर उस पुरुष को महिला की पकड़ से छुड़ाने का प्रयास करने लगी। महिला का क्रोध भयंकर रूप ले चुका है। वह चंडी बन चुकी है। पुरुष दर्द से छटपटा रहा है। लोगों ने बड़ी मुश्किल से उस महिला को अलग किया। थोड़ी देर तो वह क्रोध में कांपती हुई वहीं खड़ी रही फिर अपना थैला उठाया और ठेले के पास आकर नीचे बैठ गई। ठेले वाले से उसे कोई डर नहीं है। वह जगह उसे सुरक्षित लग रही है।

वह पुरुष कुछ देर तो औंधे मुंह जमीन पर पड़ा रहा फिर हिम्मत करके उठा, अपने थैले को उठाया, थैले में से निकल कर बिखर गई चीजों को समेटा तथा चने चुरमुरे वाले की सहायता से स्वयं को घसीटता हुआ बेंच पर आकर बैठ गया। नोचे गये अंगों से खून रिस रहा था। कुछ देर तक तो वह दर्द से कराहता रहा फिर अपनी गर्दन उठाकर महिला की तरफ देखने लगा। इस बार उसकी आखें महिला पर स्थिर हो गईं, चेहरा विद्रूप हो उठा, आखें फैल कर चौड़ी होने लगीं, पता नहीं भय से या क्रोध से। वह हांफने लगा फिर अचानक नाग की तरह फुफकारते हुए चिल्ला-चिल्ला कर महिला को गालियां देने लगा। एक लड़का दौड़ कर पास की दुकान से ठंडा पानी ले आया तथा पानी में रुमाल गीला कर उसकी आँखों पर रखने लगा। चेहरे से होते हुए चाय गरदन, सीने तथा पेट तक फैल गई थी। वह बुरी तरह जल गया था, किंतु जलने से भी अधिक पीड़ा उसे अपने अपमान से हो रही है। एक मामूली सी पागल औरत उसका इस तरह अपमान करे ! आस-पास खड़े पुरुष आंखें तरेर कर महिला को इस अपराध के लिये सजा देना चाहते हैं लेकिन उससे कुछ बोलने की हिम्मत नहीं कर पा रहे हैं। पागल है, क्या पता फिर से टूट पड़े। सब उस पुरुष को ही शांत कराने में लगे हैं। महिला पर उसकी गालियों का कुछ भी असर नहीं हो रहा है, वह शांत भाव से पुरुष को छटपटाते हुए देख रही है। पुरुष बार-बार अपनी आँखों को हाथ से ढंक रहा है, लगता है जलन तेज हो रही है। वह लड़का रुमाल गीला करके उसकी आँखों को पोछ रहा है, साथ ही उसे चुप भी करा रहा है।

'जाने भी दो यार, पगली है, मुंह लगना ही नहीं चाहिए था।'

'पुलिस से शिकायत करनी पड़ेगी। इस पगली को यहाँ से हटाएं , नहीं तो हम सभी को खतरा है।...आज उसकी आँख में गर्म चाय उड़ेल दी, कल हमारे ऊपर कुछ फेंक देगी। और तो और अब यात्रियों की भी खैर नहीं।' चना चुरमुरा बेचने वाले ने चिंता व्यक्त की।

'इसका दिमाग कुछ अधिक खराब हो गया है ...ऐसे खतरनाक पागल को तो पागल खाने में होना चाहिए। लेकिन क्या कहें इस देश को ...खुलेआम घूम रही है। देश दुनिया के प्रति चिंतित (!) एक व्यक्ति ने अपनी पीड़ा को अभिव्यक्ति दी।

'अरे मैं तो ऐसी एक पागल को जानता हूँ जो पागल खाने के अधिकारियों को चकमा देकर वहाँ से भाग निकली और अब खुलेआम शहर में घूमती है तथा पत्थर फेंक-फेंक कर रोज दो चार के सिर फोड़ती है।' भीड़ में से किसी ने कहा।

'मुझे तो कुछ और ही लग रहा है। देखो न, कैसे चुपचाप बैठी है, मैं तो कहता हूँ कि यह पागल है ही नहीं बल्कि किसी माफिया या आतंकवादी गिरोह की सदस्य है।' आदमी की आँखों पर ठंडे पानी की पट्टी रखते हुए एक व्यक्ति ने धीमी आवाज में कहा

'सच कहते हो अभी पिछले साल की तो बात है, चौक में जो बम-विस्फोट हुआ था,जिसमें बहुत से लोग मारे गये थे, याद है न ?...बम विस्फोट के पंद्रह दिन पहले वहां एक पागल घूमता हुआ दिखता था। बम विस्फोट के दो दिन पहले से ही वह वहाँ से कहाँ गायब हो गया, पता नहीं चला। बाद में तो समाचार में भी आया था कि शायद वह आतंकवादियों के लिये जासूसी कर रहा था।'

'जो भी हो, हमारे लिये यह हर तरह से खतरनाक है। हमें मिल कर कुछ करना होगा ...इसे यहाँ से हटाना ही होगा।'

'हाँ, हाँ, सच में इसे प्लेटफार्म से हटाना ही पड़ेगा। हमारी सुरक्षा का सवाल है।' सबका समवेत स्वर प्लेटफार्म पर गूंजा।

पुरुष अब भी जलन से छटपटा रहा है। ठंडे पानी की पट्टियां रखी जा रही हैं। थोड़ी देर पहले चंडी बनी महिला अब पूरी तरह शांत होकर ठेले के पास बैठी है। चेहरे पर न तो कटुता के भाव हैं न क्षोभ और न अंतर्द्वंद्व के ही। वहाँ एकत्र पुरुष इस अप्रत्याशित घटना से चिंतित है। शाम होने वाली है, अपनी सुरक्षा के लिये परेशान पुरुष मंडली को देखकर महिला थोड़ा मुस्कराती है, फिर उठ कर आवेशहीन आंतरिक संतुष्टि तथा दृढ़ता के साथ आगे बढ़ जाती है। जैसे प्लेटफार्म पर बड़ी देर से रुकी कोई ट्रेन चल पड़ी हो।

5, योगिराज शिल्प, स्पेशल आई.जी. बंगला के सामने, कैंप, अमरावती, महाराष्ट्र-444 602, दूरभाष : 0721 2660396

कहानी

सीता

◆ **गौरव गुप्ता**

तेज मूसलाधार बारिश, रात का समय यही कोई आठ बजे होंगे। सीता अपने दोनों बच्चों को साथ लेकर घर लौट रही थी।

सीता जब सोलह की थी तभी उसका ब्याह हो गया। हीरा नाई चालीस का था उस समय। सीता के माँ बाप ने देखा कि खुद की दुकान है, अपना कमाता खाता है। चालीस का हुआ तो क्या हुआ। बिटिया खुश रहेगी। और हर शुक्रवार जब दुकान बंद रखता है तो भी घर पर यूँ ही पड़ा नहीं रहता बल्कि हाथ ठेला चलाकर मजदूरी भी करता है।

शर्मा दीदी ने आज देर तक घर पर रोक लिया था और काम खत्म करते करते रात हो गई। बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही थी। एक जोर की बिजली चमकी और सारे शहर की लाइट गुल।

गुड़िया उस समय तीन साल की थी और बन्नो कुछ छह बरस की।

सीता ने गुड़िया को सीने से लगाया और बन्नो का हाथ जोर से पकड़ कर चली जा रही थी। घर जल्दी पहुंचना जरूरी था। हीरा की तबियत जो ठीक नहीं थी। चलते चलते अचानक सीता को एहसास हुआ कि जैसे कोई पीछा कर रहा है। कल्लू ने सीता का हाथ जोर से पकड़ अपनी ओर खींचने की कोशिश की।

सीता के साथ ये कोई पहला वाकया नहीं था। लेकिन माँ बनने के बाद सीता अब सिर्फ सीता नहीं रही थी, राक्षस से लड़ने के लिए भवानी बनना वो जानती थी।

"कल्लू हाथ छोड़, आदमी बीमार है, घर जल्दी जाना है।" सीता जोर से चिल्लाई। लेकिन ये क्या कल्लू ने तुरंत सीता का हाथ छोड़ दिया। सीता स्तब्ध आश्चर्यचकित, शैतान शरीफ कैसे बन गया? लेकिन कल्लू के अंदर का शैतान तो अब जाग रहा था। उसकी नजर सीता को छोड़ बन्नो पर थी और ये समझते सीता को देर ना लगी। सीता ने नीचे पड़ा पत्थर उठाया और दे मारा उसके सिर पर। "बन्नो भाग गुड़िया को लेकर भाग।" सीता जोर जोर से चिल्ला रही थी।

"कल्लू हाथ छोड़, आदमी बीमार है, घर जल्दी जाना है।" सीता जोर से चिल्लाई। लेकिन ये क्या कल्लू ने तुरंत सीता का हाथ छोड़ दिया। सीता स्तब्ध आश्चर्यचकित, शैतान शरीफ कैसे बन गया? लेकिन कल्लू के अंदर का शैतान तो अब जाग रहा था। उसकी नजर सीता को छोड़ बन्नो पर थी और ये समझते सीता को देर ना लगी। सीता ने नीचे पड़ा पत्थर उठाया और दे मारा उसके सिर पर। "बन्नो भाग गुड़िया को लेकर भाग।" सीता जोर जोर से चिल्ला रही थी।

तेज बारिश/अंधियारी रात/सड़क पर कोई नहीं/ सिर्फ और सिर्फ मूसलाधार बारिश। बन्नो एक गली में गुड़िया को लेकर दुबकी बैठी, चुपके से देख रही थी। कल्लू के सिर पर खून सवार था। सीता को एक तरफ धक्का दे, कल्लू फिर बन्नो की ओर बढ़ा। बन्नो की तरफ उसने कदम बढ़ाया ही था कि पीछे से सीता ने ललकारा। कल्लू का उस पर अट्टाहस कर बन्नो की तरफ कदम बढ़ाना, सीता के क्रोध की पराकाष्ठा थी। एक जोर सी बिजली चमकी और कल्लू को सीता का चेहरा दिखाई दिया. सीता नहीं साक्षात्भवानी सामने थी। सीता ने पास पड़ी लोहे की रोड से वार किया, अंतिम वार और कल्लू वहीं ढेर।

कल्लू का अट्टाहस/उसका दुस्साहस/ माँ की ललकार और अंतिम प्रहार, बन्नो गुड़िया के साथ सब देख रही थी।

इस दुनिया में जीना एक संघर्ष है और संघर्ष तब और बढ़ जाता है जब आप स्त्री जाति में हों। सीता अपनी बेटियों को सिखा देना चाहती थी संघर्ष से जीने और लड़ने का हुनर।

बारिश थम चुकी थी और घर भी अब नजदीक था। लाइट वापस आ गई लेकिन हीरा नाई की जीवन ज्योत अपने अंतिम समय में थी। बन्नो को अपने सीने से लगा, हीरा आशा भरी नजरों से सीता को बस एकटक देखे जा रहा था। गुड़िया बापू बापू की रट लगा रही थी और हीरा बस आँखे खोले निढाल पड़ा था। बच्चों के रोने की आवाज सुन आस पड़ोस के रिश्तेदार आए, बच्चों को संभाला और सीता का ढांढस बंधाया।

हीरा की लम्बी बीमारी और बढ़ते खर्चे ने रिश्ते नातों की परिभाषा समझा दी थी। 'जब जरूरत थी पैसों की तब तो कोई न आया, अब आए हैं दुःख दर्द दिखाने, ढोंगी कहीं के। मुझे किसी

ढोंगी रिश्तेदारों की मदद नहीं चाहिए।' सीता मन ही मन बड़बड़ाई।

अलसुबह, घर पर रखे हाथ ठेला पर ही हीरा के शव को रख चल पड़ी शमशान घाट। बन्नो और गुड़िया उसके पीछे पीछे। सीता ने निर्णय लिया- अब अकेले ही आगे बढ़ना है और उद्देश्य- सिर्फ एक, कल्लू जैसे लोगों से भरी हुई इस दुनिया में अपने बच्चों को इतना सशक्त बनाना कि वो संघर्ष कर सकें/लड़ सकें/ बिना रुके /बिना थके /बिना डरे।

दुनिया में सभी लोग खराब नहीं होते कुछ अच्छे भी हैं। जैसे कि वो पुलिस इंस्पेक्टर जिसने सीता को मामले से दूर रखा क्यूंकि कल्लू और उसकी अपराधी प्रवृत्ति को अच्छी तरह से जानता था और जैसे कि शमशान घाट के पंडित तिवारी जी, जो कि हीरा नाई के बड़े मुरीद थे। हमेशा बाल उसी से बनवाते थे। सीता की इच्छा का सम्मान करते हुए उन्होंने सामाजिक परम्पराओं और बंधनों को तोड़ा। पूरा क्रियाकर्म सीता के हाथों करवाया। बन्नो पास खड़ी सब देख रही थी, माँ के हाथ में अग्नि/बापू का धधकता शरीर/ गुड़िया का बिलख कर रोना और मां की आँखों का सूखा पानी। बालमन ना जाने कितने तूफानों का सामना कर रहा था।

सभी क्रियाकर्म होने के बाद अब नई शुरुआत करनी थी लेकिन फिर वही दूसरों के घर झाड़ू पोंछा करना, सीता के मन में खटक रहा था। घर के बाहर घूमते हुए उसकी नजर अपनी ही दुकान पर पड़ी। हीरा ने शादी के बाद दुकान का नाम 'सीता सैलून' रख दिया था। बस निश्चय किया कि हीरा की जगह अब वो खुद लेगी। हीरा ने अपने जीते जी सैलून का काम सीता को सिखा दिया था लेकिन समाज के डर से कभी करने नहीं दिया। शुरू शुरू में दुकान में कोई नहीं आता, सब एक औरत को देख कर बिचक जाते। और जो आते भी वो कल्लू की तरह होते। खैर ऐसे कल्लू से निपटना तो सीता अच्छे से जानती थी। एक औरत का सैलून चलाना भारतीय समाज और परंपरा के विपरीत है, ये जानते हुए भी सीता अपने निर्णय पर अडिग थी। कुछ हफ्ते गुजरे। धीरे धीरे मोहल्ले के लोग अपने बच्चों को लेकर आने लगे और सीता सैलून एक बार फिर चल पड़ा। कुछ पैसे आए तो सीता ने बच्चों का दाखिला पास के सरकारी स्कूल में करा दिया।

एक दिन पंडित तिवारी जी मोहल्ले से गुजर रहे थे और उनकी नजर सीता सैलून पर पड़ी। पंडित जी अपने आप को रोक ना पाए। दरवाजा खटखाते हुए अंदर गए। सीता ने पंडित जी को देख प्रणाम किया। दीवार पर हीरा की तस्वीर देख पंडित जी की आँखों में आंसू उमड़ पड़े। पंडित जी बोले- बेटा मैंने जीवन में ब्याह तो नहीं किया लेकिन ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि कभी मुझे बेटी दे तो सीता जैसी बेटी दे। एक पंडित के मुख से नाई की स्त्री को बेटी की तरह मानना, सीता तो बस पंडित जी से लिपट कर जैसे बिलख पड़ी, लगा बापू फिर लौट आए हैं। हीरा के जाने के बाद यह पहला मौका था जब सीता के आँख में आँसू थे।

पंडित जी जहाँ भी जाते सीता के संघर्ष की कहानी जरूर सुनाते, चाहे वो विवाह संस्कार हो मुंडन या फिर अंतिम संस्कार ही क्यूँ ना हो। अब तो मोहल्लों की औरतों ने भी आना शुरू कर दिया। सीता का संघर्ष लोगों की जुबाँ से होता हुआ अखबारों की सुर्खिया बन गया। दिन महीने और वर्ष गुजरे। बच्चे बड़े हो गए। सीता ने बन्नो को सरकारी कॉलेज में दाखिला दिला दिया। पार्ट टाइम कोर्स का अपना फायदा है, पढ़ते पढ़ते कुछ कमाया भी जा सकता है। पांचवी पास सीता, समय बीतने के साथ साथ पढ़ाई के बारे काफी कुछ जान गई थी। सीता ने अब अंतिम फैसला लिया। हीरा के जाने के बाद निश्चय किया था कि बिटिया को अपने पैरों पर खड़ा करके रहूंगी।

कॉलेज से लौटते वक्त बन्नो की नजर दुकान के बोर्ड पर गई। 'सीता सैलून' की जगह लिखा था 'सीता ब्यूटी पार्लर'। सीता ने दुकान की चाबी बन्नो को सौंपते हुए कहा बेटा बहुत थक गई हूँ, अब कुछ आराम करना है। बन्नो ने अम्माँ को सीने से लगा लिया।... ....

डिपो मैनेजर, इंडियन आइल, जयंत
सुपुत्र श्री जे. पी. गुप्ता
दुबे कॉलोनी, बरही रोड, कटनी, मध्य प्रदेश-483501
मो. 0 94253 94355

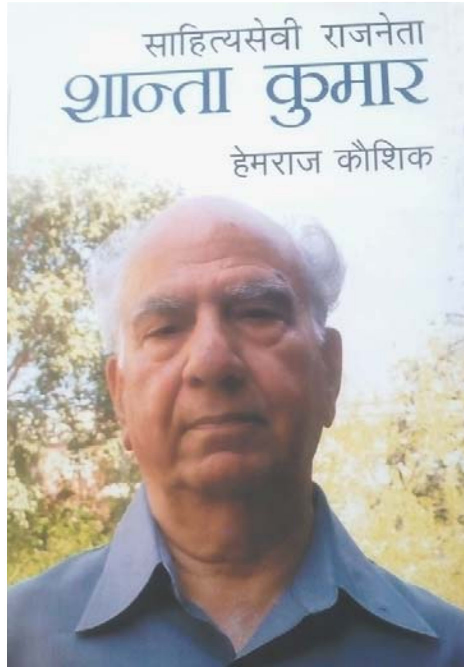
सीता ने अब अंतिम फैसला लिया। हीरा के जाने के बाद निश्चय किया था कि बिटिया को अपने पैरों पर खड़ा करके रहूंगी। कॉलेज से लौटते वक्त बन्नो की नजर दुकान के बोर्ड पर गई। 'सीता सैलून' की जगह लिखा था 'सीता ब्यूटी पार्लर'। सीता ने दुकान की चाबी बन्नो को सौंपते हुए कहा बेटा बहुत थक गई हूँ, अब कुछ आराम करना है। बन्नो ने अम्मा को सीने से लगा लिया।

समीक्षा

एक प्रामाणिक समीक्षा ग्रंथ

◆ डॉ. ओम्प्रकाश सारस्वत

समाज-स्वीकृत कोई भी उदार/उदात्त व्यक्तित्व कई धनात्मक सम्प्राप्तियों का समाहार होता है और इसी से वह अपने समर्थकों/प्रशंसकों के बीच उनके आदर्श का हेतु बनता है। अपने चहेतों के बीच सम्मानजनक स्थान बना चुके शान्ता कुमार अपने लेखन और राजनीतिक क्षेत्र में आदर्श मूल्यों के पक्षधर माने जाते हैं। समीक्षक डॉ. हेमराज कौशिक ने इन दोनों ही क्षेत्रों में सामायिक जगत के इस मूल्यवान व्यक्तित्व के जीवन के उभयविध पक्षों को बड़ी आत्मीय सजगता के साथ प्रस्तुत किया है। 'साहित्य सेवी राजनेता शान्ता कुमार' पुस्तक उनके साहित्यिक और राजनीतिक योगदान का प्रामाणिक दस्तावेज है। डॉ. कौशिक ने पुस्तक में विश्वसनीय 'इनपुट' दिया है।



सेवा कार्य समाज में गहन दायित्वपूर्ण धर्म माना गया है। (सेवाधर्मः परमगहन योगिनामप्यगम्यः)। करुणा, त्याग, उपकार, दया, साहाय्य/सहयोग एवं शिक्षा इसके मूल तत्व हैं। ये तत्व संस्कार जन्य है। कोई भी समाज सेवाव्रती ऐसे तत्वों से तभी व्युत्पन्न होता है जब उसे किसी संस्कारवान् वातावरण में पलने/बढ़ने का अवसर मिला हो।

शान्ता कुमार का पारिवारिक जीवन और संस्कार उनके लिए प्रेरक शक्तियों की तरह रहे हैं। किसी भी व्यक्तित्व के सकारात्मक विकास के लिए व्यवहार/आचरण का परिवेश उसका शिक्षा क्षेत्र एवं सत्य की ग्रहणशीलता, सभी ईमानदार वातावरण के निर्मायक घटक होते हैं, परिणामस्वरूप जाने/अनजाने शान्ता कुमार के कोमल हांधर्मी बालमन पर अच्छे संस्कारों का उदय हुआ और एक कुमार मन, युवा होते-होते एक संस्कार-सम्पन्न समाजसेवी और सफल साहित्यकार के रूप में परिणत हुआ।

शान्ता कुमार की अब तक की लगभग सम्पूर्ण सृजनात्मक सोच को एक ग्रन्थ में समेट कर डॉ. कौशिक ने गम्भीर उपयोगी कार्य किया है। पूर्वकथन और परिशिष्ट के साथ सारे चिंतन को लेखक ने दस अध्यायों में आयामित किया है। व्यक्तित्व विश्लेषण से लेकर उनकी रचनाओं, मन के मीत, लाजो, मृगतृष्णा, वृन्दा एवं उनकी कहानियों, कविताओं, हिमालय पर लाल छाया, पर पुस्तक लेखन का तात्विक विमर्श है। किसी भी रचना के बारे में किसी भी अध्येता का अपना विचार हो सकता है। कौशिक के समीक्षक को जैसा लगा, उन्होंने उजागर किया है। पुस्तक के बीच से साहित्यकार की मानसिकता/मनोदशा उसके अभिप्रायों को उसके व्यक्तित्व के आलोक में आरेखित करना एक पारखी आलोचक का कर्तव्य होता है। पूरी रचना अपनी समग्रता में क्या कहती है यह समालोचना बताती है। डॉ. कौशिक ने पुस्तकों के निष्कर्षात्मक वक्तव्य में उनके कथ्य और लब्धि को भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत उपन्यस्त किया है। विवेकी लेखक ने रचनाओं की सारभूत अभिवृति को उद्घाटित करते हुए लेखकीय दृष्टि और चिंतन के मर्म को पाठकों के लिए संवेद्य बनाया है, जो अपेक्षित था। सामाजिक सरोकारों के संदर्भ में रचनात्मक कंसर्न को, क्रिटिकल एप्रिसियेशन की पीठिका पर व्याख्यायित करते हुए कृति की महत्ता उजागर की है। एक ईमानदार कोशिश को अग्रेषित करना और रचनाकार के संप्रत्ययों को सम्मुख लाना ही विवेचक/समीक्षक का कर्तव्य है। डॉ. हेमराज ने यह कार्य

मुक्तमन से किया है।

सभी पुस्तकों की सीमाओं/इयत्ता के बीच मूल लेखक और समीक्षक दोनों ने 'हिमालय पर लाल छाया' को समस्त लेखन का 'मील पत्थर' माना है। राष्ट्रीयता के विराट् संदर्भों में, सोच की भारतीय दृष्टि और देशप्रेम की निष्ठा, इस पुस्तक में व्यक्त हुई है। राष्ट्र की सीमाओं, उसकी हदों/सरहदों, उसके कण-कण में बसा प्रेम समस्त देशवासियों के लिए अमूल्य धरोहर के समान है। फिर देश की प्रकृति, उसकी उपकृति, उसकी वत्सलता, उसकी ममता, उसकी पालन क्षमता, उसकी पितृता, उसकी मातृता प्रत्येक जीवजात की संवेदनाओं के मर्म का हिस्सा होते हैं। जननी और जन्मभूमि अपनी प्रतीकता और उपकारिता में हर देश के लिए एक पुनः-पुनः अभिलषित संप्रत्यय है।

भारत के लिए भी ये प्रमुखता से वांछित मूल्य है। मक्कार पड़ोसी चीन ने 1962 में जब 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' की मान्यता पर, गोली दागते हुए अपनी विस्तारवादी/साम्राज्यवादी सोच के तहत भारतीय सीमाओं और हिन्द के सैनिकों के सीनों को छलनी किया, तब प्रत्येक देशप्रेमी भारतीय का दिल दहल उठा। ऐसे में एक संवेदनशील साहित्यकार अपने दायित्व बोध से कैसे विमुख रह सकता था? एक राष्ट्रप्रेमी साहित्यकार ने 'हिमालय पर लाल छाया' लिखी और लेखन को एक राष्ट्रीय संदर्भ दिया। एक श्रेष्ठ लेखक अनेक संभावनाओं को व्यंजित करता है। कृतिकार ने अपनी रचनाओं में इन सम्भाव्यताओं को आविष्कृत किया है।

अपने इस लेखन में साहित्यकार शान्ता कुमार ने व्यक्ति मन, चाहे वह पुरुष मन हो चाहे नारी मन, सामूहिक मन हो चाहे, मनोवृत्तियों का समुच्चय सबके द्वारा विभिन्न मानवीय दशाओं आकांक्षाओं, आशाओं, निराशाओं को एक मनोविश्लेषणात्मक भूमिका पर भी अनुसूचित किया है। व्यक्ति चरित्रों में मनोविज्ञान की गहरी पकड़ शान्ता कुमार के लेखन में है।

'कैदी' उपन्यास में कैदी राजीव का मनोमंथन/आत्मविश्लेषण अपनी गृहस्थी और परिवार की चिंता, वर्तमान और भविष्य में सामजस्य बिठाने का उद्योग एक संघर्षशील जुझारू और सहनशील व्यक्तित्व को सम्मुख लाता है। ऐसे ही 'लाजो' में, नारी मन की सूक्ष्म संवेदनाएं और वैधव्य की भयावहता, एक क्रूर संसार की निर्मम मानसिकता को द्योतित करते हैं। 'मृगतृष्णा' में सामाजिक, राजनीतिक मृगमरीचिकाओं के आकर्षण-विकर्षण, अपनी सांकेतिकता में प्रश्नवाही अनुभवों की तरह आरेखित है। 'लाजो' जितनी अन्तर्मुखी है 'वृन्दा' उतनी ही बाहर की ओर खुला वातायन।

समीक्षक ने लेखक की सहधर्मिणी संतोष शैलजा के सहयोग, उनके लेखन और लेखन की परिलब्धि पर भी प्रकाश डाला है, जो आवश्यक भी था और वांछित भी। संतोष शैलजा, भारतीय समकालीन नारी-लेखन में एक प्रतिष्ठित नाम है। वह भी एक कवयित्री, उपन्यासकार, कहानीकार तथा मननशील लेखिका हैं।

सारी पुस्तक को पढ़ने पर एक हल्का-सा आभास यह भी होता है कि 'लम्बी-लम्बी, उद्धृतियों से' लेखक, पुस्तक के आकार के प्रति चिंतित है। वह सोचता है कि कहीं पुस्तक क्षीणकाय न रह जाए। उपन्यास/कहानी के समीक्षक को, संयम बरतने की ज़रूरत होती है। समीक्षकीय आकलन के समय यदि वह सारे उपन्यासों/कहानियों की कथा का पुनर्लेखन करने बैठ जाएगा तो फिर रचना का पुनर्पाठ ही प्रस्तुत हो जाएगा और आशय और मंतव्य पीछे छूट जाएंगे।

साहित्यकार शान्ता कुमार के समग्र लेखन में, सामयिक समस्याओं, वर्तमान की चिंताओं, व्यक्ति, परिवार, समाज, देश, राष्ट्र, अंतराष्ट्रीयता सब पर उनकी बेबाक राय और विवेचन है। पुस्तकों के शीर्षक ही सम्प्रेष्य की प्रकृति के द्योतक है। इनका लेखन जैसा कि डॉ. कौशिक का मत है- 'एक व्यापक आयाम को समेटे हुए है जो मानवीय संवेदनाओं के एक बहुत बड़े-हिस्से से रू-ब-रू होता है' बड़ी अर्थवत्ता की सूक्ति है।

प्रस्तुत पुस्तक, चूंकि शान्ता कुमार के साहित्यकार और राजनेता के दोनों रूपों को अपेक्षित आयाम देती है तो भी समीक्षक महोदय, वर्तमान समय को इस उल्लेख्य शख्सियत का बदलती साहित्यिक अवधारणाओं, मानदण्डों और नए-नए राजनीतिक परिप्रेक्ष्यों पर यदि एक ताजा साक्षात्कार भी जोड़ देते तो अधिकस्य अधिकम् फलम् वाली कहावत और फलवती हो उठती।

जी-6, नॉल्सवुड कॉलोनी, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171002, मो. 94180-54054

समीक्षित पुस्तक : साहित्य सेवी राजनेता शान्ता कुमार

लेखक : हेमराज कौशिक

प्रकाशन : अमर सत्य प्रकाशन, दिल्ली-110002

कुल पृष्ठ : 311, मूल्य : चार सौ नब्बे।



मुख्य मन्त्री श्री जय राम ठाकुर राज्य स्तरीय हिमाचल दिवस के अवसर पर उत्कृष्ट खिलाड़ी कुमारी आंचल ठाकुर को 'हिमाचल गौरव पुरस्कार' व उपायुक्त कुल्लू श्री यूनुस को 'सिविल सेवा पुरस्कार' तथा नीति आयोग के सदस्य प्रो. विनोद के. पाल को 'प्रेरणा स्रोत सम्मान' प्रदान करते हुए।





पंजीकरण संख्या : 845/1957 अप्रैल, 2018 एच.पी./79 एस.एम.एल. 2018—20



ऐतिहासिक धरोहर : प्राचीन महाकाल मंदिर, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश

अनुपम कश्यप, निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित तथा यश पाल शर्मा, नियंत्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग द्वारा हिमाचल प्रदेश सरकार के लिए राजकीय प्रेस, शिमला—171005 से मुद्रित करवाकर शिमला से प्रकाशित। सम्पादक वेद प्रकाश।

ISSN 2454-972X

हिमप्रस्थ

मई, 2018



हिम सौंदर्य

महामहिम राष्ट्रपति राम नाथ कोविंद के शिमला आगमन पर उनका अभिनंदन करते हुए मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर



महामहिम राष्ट्रपति राम नाथ कोविंद शिमला में 'नागरिक अभिनंदन' समारोह के दौरान श्री संजीव राणा को 'एक ईंट शहीद के नाम' कार्यक्रम के तहत शहीद स्मारक निर्माण के लिए ईंट भेंट करते हुए

ISSN : 2454-972X

हिमप्रस्थ

वर्ष : 63 मई 2018 अंक : 2

सम्पादकीय कार्यालय : हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्क : 150 रुपये, एक प्रति : 15 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374
Website: himachalpr.gov.in/himprastha.asp

ज्ञान सागर

जीवन का सबसे बड़ा गुरु वक्त होता है, क्योंकि जो वक्त सिखाता है, वह कोई नहीं सिखा पाता।

– **अज्ञात**

इस अंक में

प्रकृति की गोद में छिपा है सहअस्तित्व का संदेश	**महामहिम राष्ट्रपति**	3

लेख

एक ऐतिहासिक इमारत 'द रिट्रीट'	विनोद भारद्वाज	6
हिमाचली स्नेह से अभिभूत महामहिम	विशेष प्रतिनिधि	8
हर नागरिक को स्वास्थ्य छत्र		10
हिमाचली भाषा की सांस्कृतिक शब्दावली विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. पीयूष गुलेरी	12
सामाजिक संस्कारों का मूलस्रोत घर की पाठशाला	आइवर यूशिएल	18
मृत्यु संस्कार के लोकगीतों में कर्मफल	डॉ. लीला मोदी	20
हिमाचल प्रदेश की प्राचीन लिपि टांकरी दशा और दिशा	हरिकृष्ण मुरारी	23
मुंशी प्रेमचंद और दलित विमर्श	डॉ. सुनीता देवी	27

कहानी

रिफ्यूजी	हंसराज भारती	30
इति सिद्धम	शेर सिंह	34

रूपांतर : अरुणाचली कहानी

एक स्त्री, प्यारी नदी सी	डॉ. जगदीश शर्मा	38

कविता/ग़ज़ल

पलाश का फूल	समर्थ अक्षय कुमार	33
राकेश धर द्विवेदी की कविताएं		44

समीक्षा

सूक्त वाक्यों की वर्तमान समय की जरूरी पुस्तक	बद्री सिंह भाटिया	45
जीना सिखाती कहानियां		47
ग्राम्य जीवन के यथार्थ का सजीव चित्रण		48

अपनी बात

विकास, स्वयं में बेहतरी और निरंतर गतिशीलता का द्योतक है। विकास चाहे किसी वर्ग, समूह, समाज या देश का हो, सभी के लिए इसके अलग-अलग मायने हैं और यह हर रूप, हर विधा में नजर आता है। किसी भी समाज या राष्ट्र को प्रगति के पथ पर आगे ले जाने के लिए यह आवश्यक है कि विकास प्रक्रिया को जन-कल्याण के साथ इस प्रकार जोड़ा जाए कि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' ही इसकी परिणति बन जाए। विकास की इसी धारणा के दृष्टिगत वर्तमान में समावेशी विकास की अवधारणा प्रचलन में आई है। भारत में समावेशी विकास की धारणा कोई नई नहीं है। हमारे प्राचीन धर्म ग्रंथों का यदि गहनता से अवलोकन किया जाए तो उनमें सभी को साथ लेकर चलने का भाव निहित है। उदारीकरण के दौर में तो वैश्विक अर्थव्यवस्था को भी आपस में निकट से जुड़ने का अवसर मिला है, जिससे यह अवधारणा अब देश, प्रांत से बाहर निकलकर वैश्विक संदर्भ में प्रासंगिक बन गई है। किसी भी देश या समाज के समग्र विकास में श्रमिकों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। विकास कार्यों को धरातल पर लाने के लिए सबसे पहले श्रम शक्ति की जरूरत रहती है और इसके लिए आवश्यक संसाधनों के साथ-साथ पर्याप्त संख्या में कुशल-अकुशल अथवा प्रशिक्षित श्रम शक्ति का उपलब्ध होना अति आवश्यक है। समावेशी विकास की इसी प्रक्रिया में श्रमिकों की अहमियत को ध्यान में रखते हुए दुनिया भर में 1 मई को श्रमिक दिवस के रूप में मनाया जाता है। दरअसल विश्व भर में मजदूर दिवस मनाने की शुरुआत 1 मई, 1886 को हुई थी। इससे पहले दुनिया भर में मजदूरों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी जिन्हें कठिन परिस्थितियों में कार्य करते हुए अनेक यातनाओं को सहन करना पड़ता था, फैक्ट्रियों, कारखानों तथा भूमि मालिकों के शोषण का शिकार भी होना पड़ता था। शोषण के एक लंबे दौर के बाद अमेरिका के श्रमिकों ने अपने आप को मजदूर संघों में संगठित कर निश्चय किया कि वे, दिन-रात की एक शिफ्ट में 8 घंटे से ज्यादा काम नहीं करेंगे। इन संघों ने अपनी इस मांग के समर्थन में हड़ताल की जिसके दौरान शिकागो की हे-मार्केट में बम ब्लास्ट हुआ। वहां की पुलिस द्वारा इससे निपटने के लिए एकत्रित मजदूरों पर गोली चलाई गई जिसमें अनेक मजदूरों की मौत हो गई और सैंकड़ों मजदूर घायल हो गए। इसके उपरान्त वर्ष 1889 में अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में घोषणा की गई कि हे-मार्केट नरसंहार में मारे गए निर्दोष श्रमिकों की स्मृति में एक मई को अन्तरराष्ट्रीय मजदूर दिवस के रूप में मनाया जाएगा और इस दिन सभी कामगारों और श्रमिकों को अवकाश रहेगा। भारत में भी कामकाजी लोगों के सम्मान में मई दिवस मनाया जाता था और यहां लेबर किसान पार्टी ऑफ हिन्दुस्तान ने 1 मई, 1923 को मद्रास में इसकी शुरुआत की, हालांकि उस समय इसे मद्रास दिवस के रूप में मनाया गया था। स्वतन्त्र भारत में श्रमिक वर्ग, विशेषकर कामकाजी लोगों की स्थल पर कार्य परिस्थितियों को बेहतर बनाने के लिए काफी कुछ किया गया। हिमाचल प्रदेश में विगत कुछ समय से औद्योगिकीकरण को बढ़ावा मिलने से श्रमिकों की संख्या में वृद्धि दर्ज की गई है। प्रदेश सरकार ने राज्य में संगठित व असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों के कल्याणार्थ अनेक कारगर कदम उठाए हैं। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों को सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम दिहाड़ी प्रदान करना अनिवार्य बनाया गया है। श्रमिकों को रोजगार प्रदाताओं के शोषण से बचाने के लिए उन्हें दिहाड़ी का भुगतान बैंकों के माध्यम से किया जा रहा है। प्रदेश के औद्योगिक क्षेत्रों में लागू होने वाले विभिन्न फैक्टरी अधिनियमों व श्रम कानूनों के प्रावधानों के अन्तर्गत पंजीकरण, लाइसेंसिंग व नवीकरण की प्रक्रिया को ऑनलाइन कर पूरी तरह पारदर्शी बनाया गया है। प्रदेश में श्रमिकों के लिए सौहार्दपूर्ण माहौल है जिसमें वे खुशनुमा जीवन यापन कर रहे हैं।

संपादक



आइए, धरती मां का ऋण चुकाएं

प्रकृति की गोद में छिपा है सहअस्तित्व का संदेश

◆ राम नाथ कोविंद, महामहिम राष्ट्रपति

आज सुबह जल्दी उठकर मैं अपने पोते और पोती के साथ सुबह की सैर के लिए 5.00 बजे शिमला जल संग्रहण क्षेत्र तथा वन्य जीव अभयारण्य के लिए निकल पड़ा। मैं पिछले 5 दिन से मशोबरा में ठहरा हुआ हूं और यह अभयारण्य मशोबरा से बाहर निकलते ही सामने है। शिमला पक्षी विहार शहर से बहुत नजदीक है लेकिन शहर के शोरगुल से बहुत दूर भी है। इसकी परिकल्पना एक वन के रूप में की गई थी। सोचा गया था कि यहां पर फूल-पौधे होंगे और शिमला के लिए एक बड़ा जलस्रोत तैयार हो सकेगा।

यहां आकर मैं प्रकृति की शोभा देखकर मंत्रमुग्ध रह गया। मैंने यहां छिप कर चिड़ियों को देखा, उनकी जादुई आवाज सुनी, छोटे-छोटे लुभावने जीव-जन्तुओं की प्राकृतिक सुंदरता और हरियाली देखी। सीधे तनकर खड़े देवदार और ओक के वृक्ष देखे, छोटे बच्चों की खिल- खिलाहट सुनी और महसूस किया कि मशोबरा का अपना अलग ही स्वर्ग है। मैंने प्रकृति को उसके भव्यतम रूप में देखा। मैंने यह भी अनुभव किया कि यहां प्रकृति किस तरह से मनुष्य की चिंता करती है, यह वन किस तरह से शिमला और इसकी जनता का पोषण करता है। यह वन बिल्कुल उसी तरह हमारी देखभाल करता है जैसे कोई मां अपनी संतान का भरण-पोषण करती है। प्रकृति हमें प्यार करती है और हम उसे प्यार करते हैं।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि किसी साधारण सी यात्रा में

भी कोई बड़ा विचार पनप जाता है। यहां आकर अनेकों विचार मेरे मन में आए। मैंने सोचा कि यह धरती मां कितनी अच्छी तरह से हमारा पोषण करती है। लेकिन हम इसके पोषण के लिए क्या करते हैं। हम इसके लिए क्या कर सकते हैं। अगर हमें यह सुनिश्चित करना है कि यह प्रकृति एक संसाधन के रूप में, स्रोत के रूप में, मित्र के रुप में हमारी आने वाली पीढ़ियों को उपलब्ध रहे, तो इसके लिए हमें क्या करना चाहिए? क्या आने वाली पीढ़ियों के प्रति,अपनी संतति के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का एहसास है या नहीं?

आगामी 2 अक्टूबर के दिन हम सब महात्मा गांधी जी की 150वीं जयंती मनाने जा रहे हैं। यह एक राष्ट्रीय पर्व है। 2022 में हमारी आजादी की 75वीं वर्षगांठ भी एक राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाई जाएगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन महत्वपूर्ण अवसरों पर देश में अनेक सार्थक योजनाएँ आरंभ की जाएंगी। 2047 में जब भारत की आजादी के 100 वर्ष पूरे होंगे, उस समय का भारत कैसा होगा। जब 2069 में हम गांधी जी की 200वीं जयंती मना रहे होंगे, उस समय का भारत कैसा होगा।

हमारे पास आज इन प्रश्नों के बहुत स्पष्ट उत्तर नहीं हैं। लेकिन सामाजिक, बौद्धिक,नैतिक और प्रकृति एवं पर्यावरण के क्षेत्रों में जो कुछ भी निवेश आज की पीढ़ी कर रही है, उसी पर हमारे इन सवालों का जवाब निर्भर है। हम लोग ही यह तय करेंगे कि अगले 25 से 50 वर्षों में इस भारत का निर्माण करने वाले लोगों के पास कैसी ताकत होगी, कैसी क्षमता होगी। हम लोग ही यह तय करेंगे कि हजारों हजार वर्षों से जो नदियां, जो पहाड़ और जो जंगल हमें इस प्रकृति ने अपनी पूरी भव्यता में उपलब्ध कराएं हैं, वही नदियां, वही पहाड़ और जंगल क्या हमारी आने वाली पीढ़ियों को इसी भव्य रूप में उपलब्ध रह पाएंगे?

हमने बहुत तरक्की की है। अनेक उपलब्धियां प्राप्त की हैं। लेकिन अभी बहुत कुछ ऐसा है जो प्राप्त किया जाना बाकी है। जैसे-जैसे कोई समाज विकसित होता है वैसे-वैसे उसके लक्ष्य भी सटीक और संक्षिप्त होते जाते हैं, निश्चित होते जाते हैं। हिमाचल प्रदेश में यह गौरव का भाव मौजूद है कि यहाँ के स्कूलों में बेटे और बेटियों की शिक्षा के लिए, उनको स्कूल तक पहुंचाने के संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रगति की गयी है। दूसरे राज्य भी हैं जिन्होंने स्कूलों में बच्चों के दाखिले के मामले में सराहनीय प्रगति की है। लेकिन हमारा अगला लक्ष्य स्कूलों के नामांकन से आगे शिक्षा के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों पर होना चाहिए।

हमारे बच्चे कक्षाओं तक पहुंच तो रहे हैं लेकिन वहां जाकर वे कितना कुछ सीख पा रहे हैं। कितना ज्ञान अर्जित कर पा रहे हैं। आने वाले चौथे औद्योगिक युग के लिए हम उन्हें किस प्रकार तैयार



चौबीस मई, 2018 को भारत के राष्ट्रपति महामहिम राम नाथ कोविंद ने शिमला जल संग्रहण क्षेत्र एवं वन्यजीव अभयारण्य का भ्रमण किया।



बाईस मई, 2018 को महामहिम शिमला में प्रतिष्ठित रिज मैदान पर स्थानीय निवासियों और पर्यटकों का अभिवादन करते हुए

कर पा रहे हैं। कितना तैयार कर पा रहे हैं। ये सवाल ऐसे हैं जो हर मां बाप को परेशान कर रहे हैं। इसी प्रकार से अगर सोचें तो जिस प्रकार से स्कूलों का प्रसार स्थान स्थान पर हो गया है, क्या हैल्थकेयर भी इसी प्रकार से आधारभूत सुविधा के रूप में अपनी जनता को उपलब्ध नहीं कराई जानी चाहिए। ये मुद्दे समाधान चाहते हैं,हर भारतीय के लिए हमें इन मुद्दों से जूझना होगा और ऐसा करते हुए क्षेत्र के आधार पर, धर्म के आधार पर, किसी प्रकार के भेदभाव को पास फटकने नहीं देना है। ये सुविधाएं सब को देनी होंगी चाहे हमारे किसान भाई बहिन हों या फिर औद्योगिक नगर हों। सब को हैल्थकेयर उपलब्ध करानी होगी।

यहां पर भी प्रकृति हमें एक संदेश देती है। जिस प्राकृतिक क्षेत्र में मैं आज गया था, वहां एक दूसरे के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाता। यहां पर जल सभी के लिए उपलब्ध है, यहां के पेड़ सभी को छाया देते हैं, यहां की साफ हवा सभी को पोषण देती है, भाईचारा और करुणा तो मानो प्रकृति के स्वभाव में है। जो कुछ भी हम एक समाज के रूप में करते हैं, वह सब करते हुए हमें उसी करुणा को, भाईचारे को, मानवीयता को और परस्पर गरिमा को, सम्मान के भाव को अपनी आशाओं में और भारत के प्रति अपने सपनों में शामिल करना होगा।

इस सब के मूल में मेल मिलाप की भावना है,सब को एक सूत्र में पिरोने वाली भावना है। प्रकृति हमें एक दूसरे पर निर्भरता सिखाती है, मधुमक्खी को पोषण फूल से मिलता है, जल सभी जीवों की प्यास बुझाता है, और वृक्ष पक्षियों और जीव-जंतुओं का स्वागत बांह पसार कर करते हैं। मेलजोल में एकात्मकता में एक प्रकार का संगीत महसूस होता है। ऐसा लगता है कि जैसे कोई ईश्वरीय बंधन है,इन सबके बीच। जीवधारी चाहे छोटा हो या बड़ा, शांत हो या शोर मचाने वाला, सभी को मिलजुल कर साथ-साथ पुष्पित-पल्लवित होने देती है हमारी प्रकृति। आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करती है। मानव जाति को भी प्रकृति से यह गुण सीखना चाहिए।

भारत को प्रकृति से अनुपम वरदान मिला है। इसलिए आइए हम सब मिलकर उस एकात्मकता को और हर एक व्यक्ति को अपनी यह आकांक्षा पूरी करने, अपने सपनों और अपने भाग्य के लिखे को पूरा कर पाने में सहायक बनें। इसे हमें एक राष्ट्रीय आंदोलन का रूप देना होगा। भारत का ऋण है हमारे ऊपर। हमें अपने वर्तमान का यह ऋण चुकाना है। आइए धरती मां का, प्रकृति का यह ऋण हम उतारकर जाएं।





धरोहर बसेरा

एक ऐतिहासिक इमारत
'द रिट्रीट'

◆ विनोद भारद्वाज

शिमला की खूबसूरत इमारतों के अलावा, मशोबरा स्थित 'द रिट्रीट' अंग्रेजों के समय में एक खूबसूरत इमारत मानी जाती थी। आज यह भारत के राष्ट्रपति का तीसरा आधिकारिक निवास स्थान है। दिल्ली के राष्ट्रपति भवन के अलावा हैदराबाद स्थित प्रेजीडेंट नीलयम राष्ट्राध्यक्ष के अन्य निवास स्थान हैं। राष्ट्रपति का एक निवास उत्तर में (रिट्रीट) तथा दूसरा दक्षिण में (नीलयम) भारत की एकता तथा सांस्कृतिक विविधता के प्रतीक हैं।

वर्ष 1850 में रिट्रीट को ऑकलैंड के नाम से जाना जाता था। वर्ष 1847 में यह बंगाल के सिविल अधिकारी विलियम एडवर्ड की संपत्ति थी जो इसी वर्ष शिमला हिल स्टेट के अधीक्षक तथा बाद में आगरा हाईकोर्ट के न्यायाधीश बने। वर्ष 1866 में विलियम एडवर्ड ने 'बंगाल सिविलयन के पुनर्जागरण' में लिखा कि उस वक्त रिट्रीट में प्रथम मंजिल नहीं थी तथा इसमें उत्तर क्षेत्र में बर्फ की चोटियों की ओर एक खुला बरामदा था। वर्तमान उद्यान तथा बाग नहीं थे। इस भवन में लार्ड विलियम हैथ के वक्त में ऊपर की मंजिल का निर्माण हुआ, जब उसने इसे एडवर्ड से खरीदा। सर सडवर्ड बक इस एस्टेट में 17 वर्ष तक रहे तथा वर्ष 1904 में उन्होंने इस भवन के बारे में एडवर्ड जे बक को लिखा, जो उनकी पुस्तक 'शिमला पास्ट एंड प्रेजेंट' में प्रकाशित हुआ।

"मई 1869 में यहां से अपनी पहली पहाड़ों की यात्रा के लिए

इन जंगलों से निकला। उस वक्त जंगल में देवदार के वृक्ष अपनी वसंत ऋतु की रंगत में थे, मैं इस वक्त इस घर के पीछे बैठ गया तथा मैं यहां की सुंदरता से मदहोश हो गया। मैंने प्रण लिया कि अगर भाग्य ने मुझे कभी शिमला आने का मौका दिया तो यह वन मेरा होगा। भाग्य मुझे अक्तूबर 1881 में यहां लेकर आया तथा एक माह उपरांत यह वन तथा भवन मेरा था।"

उस वक्त यह भवन 'लारटी साहिब की कोठी' के नाम से जाना जाता था। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि लारटी का अभिप्राय लॉर्ड विलियम हे से था, जो इस भवन में शिमला हिल स्टेट के कमीशनर थे। हालांकि इसका निर्माण मेडिकल अधिकारी ने करवाया था। लॉर्ड विलियम हे के नाम कोठी के स्थानीय राजा की ओर से मकान तथा वन का स्थायी पट्टा था।

लॉर्ड विलियम हे के जाने के बाद स्थायी पट्टा सर विलियम मैनसफील्ड कमांडर इन चीफ तथा सर डियटरिच के नाम रही। वर्ष 1881में इस स्थान का पट्टा सरकारी अधिकारी लियोनिल बर्कले की विधवा के पास था, जिसने इसे 15000 रुपये पर मुझे देने का वायदा किया। उस वक्त कोठी से राजा को 100 रुपये वार्षिक किराया मिलता था। वे भी इसे पुनः खरीदना चाहता था। इस एस्टेट की सीमा निर्धारित करने में मुश्किल आई। इसके लिए लारटी साहिब के पुराने चौकीदार को ढूंढा गया, जिसे सीमा तथा हदबंदी का ज्ञान था। संपूर्ण एस्टेट की नपाई की गई तथा 300 एकड़ वन क्षेत्र इसके तहत आया। इस पर पुराने चौकीदार की निष्ठा से उसे पुनः काम पर रखा गया तथा वह मृत्यु तक उनके यहां रहा।

एस्टेट के सर्वे के उपरांत सर एडवर्ड के नाम नया पट्टा बना। भूमि का किराया दोगुना किया गया। उस वक्त भवन की स्थिति ठीक नहीं थी। इसकी नींव तथा भवन को संरक्षित करने की आवश्यकता थी। मकान की छत भी लकड़ी की बनी थी। पहले इस भवन के लिए एक ही प्रवेश द्वार था, बाद में द्वितीय प्रवेश हॉल बनाया गया। विलियर्ड रूम जोड़ा गया।

वर्ष 1895 में इस भवन को तत्कालीन वायसराय ने खरीदा। यह शिमला के ऐतिहासिक रिज मैदान से एक हजार फुट ऊंचाई पर स्थित है। लकड़ी तथा धज्जी दीवारों से बने इस भवन में 10,628 वर्गमीटर क्षेत्रफल है।

सर एडवर्ड बक इस भवन का प्रयोग सप्ताहांत में रिट्रीट के रूप में करते थे। इस स्थल के एकांत वास को देखते हुए वे शिमला की भीड़भाड़ तथा धूल मिट्टी से दूर रहना पसंद करते थे। यह आधिकारिक सम्मेलनों के लिए भी पसंदीदा स्थल था। एडवर्ड बक जो राजस्व तथा कृषि विभाग में कार्यरत थे, के अनुसार यहां विभागों की अनेक योजनाओं व कार्यक्रमों पर मोहर लगी।

1896 में इसे वायसराय का निवास स्थान बना दिया गया। वायसराय के निवास बनने पर इसके बाहरी भवनों का जीर्णोद्धार हुआ लेकिन मुख्य भवन वैसा ही रहा। एडवर्ड बक के समय में इस भवन से हिंदुस्तान-तिब्बत रोड तक रास्ते का निर्माण हुआ। इस भवन की उत्तरी ढलानों पर नारकंडा तथा हाटू के जंगल से पेड़ों को लाकर लगाया गया। यहां पर मेपिल पेड़ों की चार प्रजातियां भी लगाई गईं - सिल्वर फिट, हैजल नट तथा रिंगवाल बांस प्रमुख थे। मशोबरा के इस भवन में इंग्लैंड से लाकर पेड़-पौधों की अनेक प्रजातियां लगाई गईं। यहां यूरोपियन फल तथा सब्जियों को प्रयोगात्मक तौर पर भी लगाया गया। सबसे ज्यादा सफलता सेब को मिली।

इस जंगल का प्रयोग शिमला के निवासी पिकनिक मनाने के लिए करते थे।

वर्तमान में यह भारत के प्रथम नागरिक का आधिकारिक निवास स्थान है। इस वर्ष महामहिम साप्ताहिक प्रवास पर यहां आए थे। राष्ट्रपति के इस निवास स्थान को अब सेब, चेरी का सुंदर बाग तथा फूलों विशेषकर गुलाब की अनेक प्रजातियां खूबसूरती प्रदान करती हैं। इसकी देखरेख 13 माली तथा एक मैनेजर के हाथ में है।

शिमला का रिट्रीट अपने भीतर एक लंबी एवं अनुपम ऐतिहासिकता को संजोए हुए है।



वर्तमान में यह भारत के प्रथम नागरिक का आधिकारिक निवास स्थान है। इस वर्ष महामहिम सप्ताहांत प्रवास पर यहां आए। उनके इस निवास स्थान को अब सेब, चेरी का सुंदर बाग तथा फूलों विशेषकर गुलाब की अनेक प्रजातियां खूबसूरती प्रदान करती हैं। इसकी देखरेख 13 माली तथा एक मैनेजर के हाथ में है। शिमला का रिट्रीट अपने भीतर एक लंबी ऐतिहासिकता को संजोए हुए है।

हिमाचल को सम्मान

हिमाचली स्नेह से अभिभूत महामहिम

◆ विशेष प्रतिनिधि

हिमाचल की मिट्‌टी में एक जादुई सम्मोहन है। जो भी यहां आता है, इस माटी का आशीर्वाद लेकर जाता है। यहां के कण-कण में देवी-देवता बसते हैं। शिखरों से लेकर सघन वनों में इनके स्थान हैं। इसी कारण हिमाचल देवभूमि के नाम से विश्वविख्यात है। यहां के भोले-भाले लोगों में अतिथि सत्कार की भावना भी कूट-कूट कर भरी है। हर एक यहां के निवासियों का स्नेह सदैव साथ लेकर जाता है।

भारत के प्रथम नागरिक महामहिम रामनाथ कोविंद ने भी अपने पहले प्रवास के उपरांत शिमला से लौटने पर हिमाचल की धरा पर बिताए पलों को अपने फेसबुक पर साझा करते हुए लिखा, “विदा लेते हुए फर्स्ट लेडी और मैं हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल, मुख्यमंत्री और प्रशासन तथा सबसे बढ़कर इस राज्य और शिमला के स्नेही और मित्रतावत् निवासियों के आतिथ्य के लिए धन्यवाद व्यक्त करते हैं। हम आपके स्नेह को अपने हृदय में लेकर दिल्ली जा रहे हैं।”

बतौर राष्ट्रपति श्री कोविंद का हिमाचल का यह पहला प्रवास था। इससे पहले वे पहली बार वर्ष 1974 में कुल्लू-मनाली आए थे। इसके उपरांत सांसद तथा राज्यपाल के रूप में प्रदेश का अनेक बार प्रदेश का दौरा करते हुए यहां के जनजीवन, संस्कृति, से रू-ब-रू हुए व यहां की खूबसूरती को निहारा है।

हिमाचल के हर नागरिक के लिए यह गर्व की बात है कि महामहिम ने उनके सम्मान में आयोजित नागरिक अभिनंदन समारोह में कहा कि, “देवभूमि के आशीर्वाद की बदौलत वे राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए हैं।” बिहार के राज्यपाल के तौर पर जब वे पिछले वर्ष मई माह में शिमला के दौरे पर आए थे, तो यहां से लौटने के 20 दिन उपरांत उन्हें राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी बनाया गया। देवभूमि के इस आशीर्वाद को वे भूले नहीं हैं। इसका जीता जागता उदाहरण है कि इस वर्ष गणतंत्र दिवस समारोह में उन्होंने हिमाचल की शान पहाड़ी टोपी पहन कर ‘हिमाचली टोपी’ का सम्मान बढ़ाया। राष्ट्रपति महोदय का राष्ट्रपति भवन, दिल्ली में प्रदेशवासियों को सीधा आमंत्रण कि हमजब भी दिल्ली आएं तो राष्ट्रपति भवन जरूर आएं, उनके हमारे प्रति अपार स्नेह को दर्शाता है।

राष्ट्रपति महोदय ने नागरिक अभिनंदन समारोह के दौरान एक ईंट शहीद के नाम कार्यक्रम के तहत श्री संजीव राणा को एक ईंट भेंट की। उन्होंने प्रदेश के वीर सपूतों देश के प्रथम परमवीर चक्र विजेता कैप्टन सोम नाथ शर्मा, जो कांगड़ा जिले के निवासी थे तथा स्वतंत्रता संग्राम के महानायक राम सिंह पठानिया द्वारा दिए गए सर्वोच्च बलिदान को नमन किया। उन्होंने आजादी के उपरांत हुए सैन्य अभियानों, युद्धों में वीरों के अदम्य साहस को भी सलाम किया। प्रथम नागरिक के इन उद्‌गारों से युवा पीढ़ी में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने में भी सफलता मिली है। देवभूमि के सपूत सदैव ही देश की रक्षा के लिए आगे रहते हैं। इसलिए राज्य को देवभूमि के नाम के अलावा वीरभूमि भी कहा

हिमाचल के हर नागरिक के लिए यह गर्व की बात है कि महामहिम ने उनके सम्मान में आयोजित नागरिक अभिनंदन समारोह में कहा कि, “देवभूमि के आशीर्वाद की बदौलत वे राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए हैं।” बिहार के राज्यपाल के तौर पर जब वे पिछले वर्ष मई माह में शिमला के दौरे पर आए थे, तो यहां से लौटने के 20 दिन उपरांत उन्हें राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी बनाया गया। देवभूमि के इस आशीर्वाद को वे भूले नहीं हैं। इसका जीता जागता उदाहरण है कि इस वर्ष गणतंत्र दिवस समारोह में उन्होंने हिमाचल की शान पहाड़ी टोपी पहन कर ‘हिमाचली टोपी’ का सम्मान बढ़ाया।



प्रकृति की गोद में महामहिम

जाता है। हालांकि राष्ट्रपति का यह ग्रीष्मकालीन प्रवास था लेकिन उन्होंने इस दौरान डॉ. यशवंत सिंह परमार बागबानी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन में दीक्षांत समारोह की अध्यक्षता, शिमला में उनके सम्मान में नागरिक अभिनंदन समारोह में शिरकत, शिमला के माल रोड, रिज मैदान पर चहलकदमी के अलावा छरावड़ा के सघन वन क्षेत्र में ठंडक भरी फिजाओं का आनंद ही नहीं उठाया बल्कि इस प्रदेश की प्रकृति प्रदत्त सुंदरता को नजदीक से निहारा।

नौणी में दीक्षांत समारोह में डॉ. वाई.एस. परमार के प्रदेश के निर्माता व विकास में योगदान तथा एक निरक्षर जमादार भलकू जिसने अंग्रेजों को पहाड़ों में रेल मार्ग की राह दिखाई, का उल्लेख कर इन महान विभूतियों को स्मरण किया। हिमाचल की कृषि, बागबानी क्षेत्र में हुई प्रगति को सराहा, वहीं भविष्य में इन क्षेत्रों को मजबूती प्रदान करने के लिए फल विधायन तथा जैविक खेती के उन्नयन का स्नातकों को परामर्श दिया।

शिमला में आयोजित नागरिक अभिनंदन समारोह में कहा कि, "हिमाचल, हिमालय क्षेत्र में स्थित राज्यों में केंद्रीय स्थान पर खड़ा है तथा पहाड़ी राज्यों में हिमाचल एक आदर्श के रूप में उभरा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तीकरण, गरीबी उन्मूलन, प्रति व्यक्ति आय के क्षेत्र में राज्य के प्रयास अनुकरणीय हैं। राज्य पर्यावरण संरक्षण के साथ कार्बन न्यूट्रल राज्य बनने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है।

राज्य सरकार द्वारा पर्यटन विकास तथा पर्यावरण संरक्षण के लिए किए जा रहे प्रयासों की भी सराहना की।

हिमाचल की फिजाओं में यह बात है कि वे प्रकृति का संदेश तो देती ही हैं, इतर हर व्यक्ति को कुछ कहने, लिखने पर भी मजबूर करती हैं। यहां की वादियां, प्रकृति, सुंदरता का उल्लेख महामहिम राष्ट्रपति ने अपने लेख में किया है। उन्होंने इस लेख में भावी पीढ़ियों के लिए हरी-भरी तथा बेहतर धरती सौंप कर जाने के लिए पर्यावरण की रक्षा तथा वन्य जीवन के संरक्षण के प्रति वचनबद्धता को दोहराया है। इस लेख में उनका एक-एक शब्द दर्शन से भरा है। इसमें अनुभवों के साथ चिंतन है। चिड़ियों की चहचहाहट को छिप कर देखना, उनकी जादुई आवाज को सुनना, छोटे-छोटे लुभावने जीव-जंतुओं को देखना और प्रकृति का लुत्फ लेना, का जिक्र करना स्मरणीय रहेगा। उन्होंने कहा कि इन पलों में उन्होंने प्रकृति के भव्यतम रूप को देखा।

इस लेख में गांधी जयंती का उल्लेख, 2022 में आजादी की 75वीं वर्षगांठ, 2047 में भारत के 100 वर्ष तथा 2069 में गांधी जी की 200वीं जयंती का स्मरण एक खुशहाल भारत के निर्माण की कल्पना है।



पहल

हर नागरिक को स्वास्थ्य छत्र

भारतीय संस्कृति में आयुष्मान भवः का आशीर्वाद सदियों से दिया जा रहा है। इसका मूल सार व्यक्ति की लंबी उम्र से है। लंबी उम्र यानी स्वस्थ एवं सुखमय जीवन। देश के नागरिक के स्वस्थ रहने पर ही देश की प्रगति, तरक्की निर्भर करती है। इसी विचारधारा को अपनाकर केंद्र सरकार आगे बढ़ रही है। हर नागरिक के स्वस्थ जीवन के लिए योग को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी के प्रयासों से ही '21 जून' अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में जाना जाने लगा है।

संपूर्ण देश में सबके लिए स्वास्थ्य की सुविधा प्रदान करने के लिए भारत सरकार ने युगांतकारी पहल 'आष्युमान भारत' की है। इस योजना के दो घटक हैं - एक 1.5 लाख स्वास्थ्य एवं वेलनेस केंद्रों की स्थापना तथा दूसरा राष्ट्रीय स्वास्थ्य संरक्षण मिशन के माध्यम से यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज प्रदान करना।

14 अप्रैल, 2018 को छत्तीसगढ़ के जंगल में हेल्थ एवं वेलनेस केंद्र की शुरुआत की गई है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य संरक्षण मिशन केंद्र सरकार द्वारा विश्व-बैंक पोषित विश्व की सबसे बड़ी स्वास्थ्य बीमा योजना बनने वाली है। इससे जनसंख्या के उस तबके की अपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति होगी, जो वित्तीय संस्थानों की कमी के कारण अब तक उपेक्षित रहा है। इसका मूल उद्देश्य गरीब से गरीब व्यक्ति को स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ प्रदान करना है। इस योजना के तहत देश के 50 करोड़ लोगों को (10 करोड़ परिवारों) को 5 लाख रुपये प्रति परिवार/प्रतिवर्ष के हिसाब से स्वास्थ्य बीमा कवर उपलब्ध होगा।

केंद्र सरकार ने वर्ष 2017 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति की भी घोषणा की है। नीति में देश के सभी घटकों को समाहित किया गया है। केंद्र सरकार ने 'स्वस्थ जन स्वस्थ राष्ट्र' को भी नई दिशा दी है।

हिमाचल की राजधानी शिमला से केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री जगत प्रकाश नड्डा तथा मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर की उपस्थिति में आयुष्मान भारत योजना के कार्यान्वयन के लिए पांच राज्यों, एक केंद्र शासित प्रदेश तथा भारत सरकार के राष्ट्रीय मिशन के मध्य समझौता ज्ञापन हस्ताक्षरित हुआ। इस योजना से

प्रदेश के गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे 15.31 लाख लोगों को पांच लाख रुपये तक का निःशुल्क स्वास्थ्य उपचार उपलब्ध होगा।

केंद्र सरकार ने राज्य को नाहन, चंबा, मंडी, हमीरपुर मेडिकल कॉलेजों को प्रदान करने के अतिरिक्त बिलासपुर में 1351 करोड़ रुपये की लागत से एम्स की स्थापना को स्वीकृति प्रदान की है। इनके खुलने से राज्य में स्वास्थ्य सेवाओं का एक सशक्त ढांचा उपलब्ध होगा। नाहन, चंबा तथा मंडी में कक्षाएं आरंभ हो गई हैं जबकि हमीरपुर में इस वर्ष से कक्षाएं आरंभ होंगी। सोलन के सुल्तानपुर में निजी क्षेत्र में एक मेडिकल कॉलेज कार्यरत है।

राज्य में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत 4,83,643 परिवारों को पंजीकृत किया गया है। इसके तहत 30,000 आधार पैकेज में, 1,75,000 रुपये क्रिटिकल देखरेख पैकेज तथा 2,25,000 कैंसर मरीजों के लिए कैशलेस उपचार सुविधा उपलब्ध करवाई जा रही है। मुख्यमंत्री राज्य स्वास्थ्य देखभाल योजना में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना की तर्ज पर स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान की जा रही हैं। इसके अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश सार्वभौमिक स्वास्थ्य संरक्षण योजना के अंतर्गत अन्य परिवारों को भी शामिल किया है जिसमें प्रीमियम 365 रुपये प्रति वर्ष है। राज्य सरकार ने मुख्यमंत्री स्वास्थ्य देखभाल योजना के लाभार्थियों को भी भारत सरकार की तर्ज पर स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान की है। राज्य में गरीबों, जरूरतमंदों को गंभीर बीमारियों के वक्त राहत प्रदान करने के लिए मुख्यमंत्री राहत कोष की स्थापना की गई है। इससे आगे बढ़ते हुए सरकार ने इस वर्ष से 10 करोड़ के बजट प्रावधान से 'मुख्यमंत्री चिकित्सा सहायता कोष' का गठन किया है।

इससे भी आगे बढ़कर निःशुल्क दवा नीति के तहत 66 दवाएं निःशुल्क दी जा रही हैं, जिनकी संख्या को बढ़ाकर 330 किया जाएगा। 18 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क हेमोफिलिया तथा इंसुलिन की दवाएं भी प्रदान करने का निर्णय लिया है। मिजल तथा रूबेला की बीमारियों की रोकथाम के लिए सघन टीकाकरण कार्यक्रम सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया गया। संस्थागत प्रसूति पर 700 रुपये का प्रोत्साहन व मुख्यमंत्री आशीर्वाद योजना के अंतर्गत 1500 रुपये मूल्य की नवागंतुक किट भी प्रदान की जा रही है। इंदिरा गांधी मेडिकल कॉलेज में गुर्दा प्रत्यारोपण के लिए चार करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। रोगियों की सुविधा के लिए 108 राष्ट्रीय एंबुलेंस सेवा के अंतर्गत 198 एंबुलेंस का एक बेड़ा कार्य कर रहा है। सरकार ने 2 अप्रैल से 108 बाइक एंबुलेंस सेवा शिमला से आरंभ की है।

वर्तमान प्रदेश सरकार ने अपनी चार माह की इस छोटी सी अवधि में स्वास्थ्य क्षेत्र में अनेक मील पत्थर स्थापित किए हैं। विभिन्न स्वास्थ्य संस्थानों में चिकित्सकों के 262 पद भरे जाएंगे। पैरामेडिकल के लगभग दो हजार पदों को भरने की प्रक्रिया जारी है। आयुर्वेद विभाग में 200 पदों को भरने की मंजूरी प्रदान की गई है। बालीचौकी, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र को सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, कांगड़ा जिले के नूरपुर अस्पताल को 200 बिस्तरों के अस्पताल में स्तरोन्नत करने, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र भवारना, नगरचीड़ को 50 बिस्तरों के नागरिक अस्पताल में स्तरोन्नत करने को मंजूरी प्रदान की गई। वहीं कुल्लू जिले के नागरिक अस्पताल आनी को 100 बिस्तरों वाले अस्पताल में स्तरोन्नत करने को मंजूरी दी गई।

पांच स्वास्थ्य उपकेंद्रों में टेलिमेडिसिन सुविधा आरंभ की गई। सरकारी सेवाओं के अतिरिक्त निजी क्षेत्र में स्थित अस्पताल, क्लीनिक प्रदेशवासियों को सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। सरकार ने पहल करते हुए स्वास्थ्य में सहभागिता योजना आरंभ की है। इस नई योजना के तहत कोई व्यक्ति/चिकित्सक चिन्हित ग्रामीण क्षेत्रों में एलोपैथिक निजी अस्पताल की स्थापना करता है तो उसे एक करोड़ रुपये के निवेश पर 25 प्रतिशत निवेश उपदान तथा तीन वर्षों तक 5 प्रतिशत ब्याज उपदान दिया जाएगा।

स्वास्थ्य क्षेत्र में सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों से सभी नागरिकों को प्रदेश के भीतर उत्कृष्ट स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध होंगी और स्वस्थ हिमाचल का सपना होगा साकार।

000

राज्य में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत 4,83,643 परिवारों को पंजीकृत किया गया है। इसके तहत 30,000 आधार पैकेज में, 1,75,000 रुपये क्रिटिकल देखरेख पैकेज तथा 2,25,000 कैंसर मरीजों के लिए कैशलेस उपचार सुविधा उपलब्ध करवाई जा रही है। मुख्यमंत्री राज्य स्वास्थ्य देखभाल योजना में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना की तर्ज पर स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान की जा रही हैं। इसके अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश सार्वभौमिक स्वास्थ्य संरक्षण योजना के अंतर्गत अन्य परिवारों को भी शामिल किया गया है जिसमें प्रीमियम 365 रुपये प्रति वर्ष है। राज्य सरकार ने मुख्यमंत्री स्वास्थ्य देखभाल योजना के लाभार्थियों को भी भारत सरकार की तर्ज पर स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान की है।

आलेख

हिमाचली भाषा की सांस्कृतिक शब्दावली
विश्लेषणात्मक अध्ययन

◆ डॉ. पीयूष गुलेरी

हिमाचली संस्कृति मानवीय संवेदना, प्रेम, प्यार, आत्मिक आनन्द, समस्त प्राणियों का कल्याण, सामूहिक आनन्दोत्सव की क्राँति, लोकहित एवं लोक-कल्याण का मिश्रित स्वरूप है। वैसे तो संस्कृति अपने वृहद् अर्थ में समस्त प्राकृतिक परिदृश्य, भौगोलिक संरचना, मानव-समाज एवं प्राणी मात्र के संसर्ग, संस्पर्श एवं सादृश्य को स्वयं में समेट लेती है फिर भी संस्कृति के विश्लेषणात्मक अध्ययन में हम पाते हैं कि समाज-व्यवहार का योगदान इसके निर्माण में सर्वाधिक है।

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न अंचलों एवं जनपदों में अनेक बोलियां व्यवहार में हैं, जो थोड़े-बहुत अंतर के साथ समरूप लोकरीति, लोक-व्यवहार, लोक-नाट्यों एवं लोक-गीतों में यत्र-तत्र-सर्वत्र अपनी अनुपम छटा बिखेरती हैं। सन् 1966 ईसवी के पश्चात् हिमाचल प्रदेश का पुनर्गठन भाषा एवं संस्कृति के आधार पर हुआ तो विरसे में हिमाचल प्रदेश की साहित्यिक भाषा की ललक भी साथ में आई जिसके कारण हिमाचल प्रदेश की सर्वोपरि भाषा ने साहित्यिक स्वरूप लेना प्रारंभ कर दिया। हमें विदित है कि जब-जब साहित्यिक भाषा अपनी क्लिष्टता, दुरुहता अथवा अन्य कारणों से अपना महत्व खो देती है तब-तब लोकभाषा से संस्कारित होकर नई-नई भाषाओं का जन्म होता है।

हिमाचली समाज में व्यवहृत हिमाचली-भाषा का यहां की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को परिष्कृत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान है। किसी भाषा के निर्माण में वहां के व्यवहार में आने वाले सामान्य शब्दों, ठेठ शब्दों एवं सांस्कृतिक शब्दों का विशेष महत्व हुआ करता है। वैश्विक उथल-पुथल, भाषायी आदान-प्रदान एवं चतुर्दिक प्रगति के परिणाम-स्वरूप हिमाचली-पहाड़ी भाषा की पुरानी संस्कृति एवं परम्परा के शब्दों का धीरे-धीरे क्षय हो रहा है। हमारी पुरातन संस्कृति, समाज- व्यवहार, जन-जीवन, जीवन-शैली, रहन-सहन, तीज- त्योहारों एवं आपसी रीति-नीति में प्रयुक्त होने वाले शब्दों, शब्द- वैविध्य, उनके लाक्षणिक और व्यंजनात्मक स्वरूप पर विचार- विश्लेषण हमारा लक्ष्य है जिससे

हिमाचली समाज में व्यवहृत हिमाचली-भाषा का यहां की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को परिष्कृत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान है। किसी भाषा के निर्माण में वहां के व्यवहार में आने वाले सामान्य शब्दों, ठेठ शब्दों एवं सांस्कृतिक शब्दों का विशेष महत्व हुआ करता है। वैश्विक उथल-पुथल, भाषायी आदान-प्रदान एवं चतुर्दिक प्रगति के परिणामस्वरूप हिमाचली-पहाड़ी भाषा की पुरानी संस्कृति एवं परम्परा के शब्दों का धीरे-धीरे क्षय हो रहा है। हमारी पुरातन संस्कृति, समाज-व्यवहार, जन-जीवन, जीवन-शैली, रहन-सहन, तीज-त्योहारों एवं आपसी रीति-नीति में प्रयुक्त होने वाले शब्दों, शब्द-वैविध्य, उनके लाक्षणिक और व्यंजनात्मक स्वरूप पर विचार-विश्लेषण हमारा लक्ष्य है जिससे आने वाले समय में यह शब्द- सम्पदा और शब्दों का सांस्कृतिक महत्त्व सुरक्षित रहे। हिमाचली जन-समाज में प्रयोग में आने वाले विविध शब्दों के परिप्रेक्ष्य में उनका विश्लेषण- संश्लेषण, व्याख्या, सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व और परम्परा-पोषण को लेकर विचार- विमर्श, चिंतन-मनन एवं हृदय-मंथन किया जाएगा।

आने वाले समय में यह शब्द- सम्पदा और शब्दों का सांस्कृतिक महत्त्व सुरक्षित रहे। हिमाचली जन-समाज में प्रयोग में आने वाले विविध शब्दों के परिप्रेक्ष्य में उनका विश्लेषण-संश्लेषण, व्याख्या, सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व और परम्परा-पोषण को लेकर विचार-विमर्श, चिंतन-मनन एवं हृदय-मंथन किया जाएगा।

घर में किसी शुभ कार्य, त्योहार, उत्सव अथवा सांस्कृतिक जन्मोत्सव-विवाहादि के पूर्व सौभाग्यवती महिलाएँ दूर्वा अथवा गेंदा फूल के पत्रों (तीन पत्ती वाले) से मुख्य द्वार की दहलीज, आँगन मंद्दल़ (मध्य) में, कमरे की दहलीज और फिर अंदर कमरे में 'देहरे' (कुलदेवता) तथा इष्टदेवता के समक्ष पतरी हंडाती हैं। इसे पतरी पाणा अथवा 'पतरी हंडाणा' भी कहा जाता है। 'पतरी हंडाणे' का कार्य घर की सौभाग्यवती महिला, (पण्डित) पुरोहित अथवा पंडिताइन द्वारा किया जाता है। घर के मुख्य द्वार की दहलीज को जल से अभिसिंचित किया जाता है, तीन-तीन दूर्वा अथवा गेंदे की पत्तियों को पंक्तिबद्ध सीधा रखा जाता है तथा उन्हें चंदन, पुष्प-अक्षत भेंट किये जाते हैं। 'पतरी हंडाणे' वाली महिला अथवा पंडित एक थाली में सारी पूजा सामग्री लिये रहता है जिस में धूप, अगरबत्ती और ज्योति प्रज्ज्वलित रहती है। ऐसे अवसर पर नंगे सिर रहना निषिद्ध है। इसी क्रम का निर्वहण आँगन के मंद्दल़ (मध्य) 'उआन' (मुख्य कमरे की दहलीज), उआन में स्थापित 'देहरे' और इष्ट देवता के समक्ष किया जाता है। पूजा-सामग्री की थाली वहीं धर दी जाती है जिसमें से सामग्री का उपयोग पूजा करने-करवाने में किया जाता है। स्वाभाविक है कि पतरी हंडाणे या 'पतरी पाणे' का कार्य नहा-धोकर शुद्ध वस्त्र धारण करके ही किया जाना विहित है। वैसे 'पतरी' शब्द का प्रयोग पंचाग अथवा जंतरी के अर्थ में भी किया जाता है किन्तु पतरी शब्द एकल रूप में पंचाग के अर्थ का द्योतक है जबकि पतरी- हंडाणा, पत्तरी-पाणा शब्द-युग्म सांस्कृतिक रीति-नीति एवं परम्परा निर्वहण को दर्शाता है। जिस घर में पतरी हंडाई गई हो तो मुख्य द्वार पर पहुंचने वाले आगंतुक स्वयं समझ जाते हैं कि अमुक घर में कोई शुभ कार्य हुआ या होने वाला है। इस प्रकार घर में पतरी हंडाणे के अनेक संकेतार्थ स्वयं स्पष्ट हो जाते हैं।

भोजन के समय न्योड़ा या सलूणा शब्दों का प्रयोग साग, सब्जी, तरकारी के अर्थ में होता है। न्योड़ा और सलूणा प्रायः पर्यायवाची शब्द हैं जो एक दूसरे के पूरक हैं। उधर सूखी सब्जी और तरीदार शब्द के अर्थ-भेद को जतलाने के लिए रसला शब्द व्यवहार में आता। रसला न्योड़ा अथवा सलूणा तरीदार सब्जी-तरकारी का द्योतक माना जाता है। न्योड़ा, सलूणा और रसला शब्द हिमाचली-पहाड़ी भाषा के शुद्ध ठेठ शब्द हैं जो अभी भी गांवों-गृहस्थियों में प्रयोग में लाए जाते हैं। वैसे हिमाचली-भाषा का सलूणा और हिन्दी का सुलोना ऊपर से एक जैसे दिखने पर भी भिन्नार्थों को द्योतित करते हैं।

एक शब्द है मणसणा। मणसणा के अन्य रूप हैं मणसोआणा, मणसाणा और मणसोणा जिनके न केवल अनेक भिन्नार्थ हैं प्रत्युत् वाच्यार्थ, गुह्यार्थ और गजब के व्यंग्यार्थ भी निहित हैं। मणसणा शब्द दान देना है। किन्तु यह दान विधिवत् घर में पूजोपरांत उआन (मुख्य कमरे) में इष्टदेव एवं देहरे-कुल़जा की स्थापना करके उन्हें साक्षी बनाकर दिया जाता है। पुरुष अथवा महिला जिसे भी कोई दान-मणसणा होता है वह नहा-धोकर पवित्र वस्त्र पहनता है, पूरी श्रद्धा-भक्ति के साथ समर्पण-भाव के साथ पात्र में रखे हुए अन्न, पकवान्न, लवणान्न, मिष्ठान्न, वस्त्राभूषण, अथवा गौमाता आदि का जलाभिषेक करके उस पर चंदन, पुष्प, अक्षत चढ़ाता है, धूप-दीप नैवेद्य अर्पित करता है और जलांजलि देकर, दान लेणे वाले को अर्पित कर देता है। अर्पित करने से पूर्व विधिवत् परिक्रमा करके दान की जाने वाली वस्तु को मनसः, वाचः, कर्मणाः अधिकारी व्यक्ति को भेंट कर देता है। खास बात यह है कि मणसी (दान की हुई) वस्तु का दाता-दातृ भूलकर भी कभी खुद उपयोग नहीं करता। जैसे मणसी हुई गौ माता का दूध उपयोग में न लाना। मणसणे के लिए ग्रहानुसार भैंस अथवा भैंसा मणसणे की प्रथा भी है। भैंसे की पीठ पर विधिवत् भिन्न-भिन्न अन्नों और लवणादि की छट डालकर बुझरू जाति के पण्डित को दान में दे दी जाती। यह शनिग्रह की शाँति का अच्छा उपाय माना जाता है। मणसणा शब्द स्वयं दान करने को अभिहित करता है जबकि मणसाणा किसी दान देने के भाव को द्योतित करता है। मणसोआणा में कोई व्यक्ति अपने संबंधी अथवा जानकार से दान दिलवाने में प्रत्यक्ष-परोक्ष में सहायक होता है। मणसोआणां में सहायक व्यक्ति किसी को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से दान देने के लिए प्रेरक और साधक की भूमिका में रहता है। मणसोणा शब्द व्यंग्यार्थ में प्रयुक्त होता है। जब हम किसी को कहें कि "तूं काहलू मणसोणा (आना), कुथू ऐं मणसोया (बैठा हुआ), आ तिज्जो मणसने आं (तुझे दान में दे देते हैं), मणसेया माल (मुफ्त की चीज) तो यह अनेक व्यंजनार्थों को ध्वनित करता है जिसको संदर्भार्थों में समझने पर अर्थ की कई पर्तें खुलती चली जाती हैं। विवाह के समय सालियों द्वारा दूल्हे-जीजा को हास्य-व्यंग्य में गालीगीत द्वारा मणसणे (दान देने) के इसी भाव को यों व्यक्त किया गया है :- "जीजा रिह्न मसरां दी दाल़, मसाला मैं दिन्नींआं। जीजा कर माऊ दा दान, बापू मैं दिन्नीं-आं। जीजा कर भैणा दा दान, भाऊ मैं दिन्नी आं।" आदि कहकर सभी निकटवर्ती संबंधियों के नाम गिना-गिना कर हास्य का अद्‌भुत सृजन होता है। उपरिलिखित गीत में शुद्ध हास्य का स्वरूप देखते बनता है। मणसणा (दान देना) में कन्यादान भी वृहद् अर्थ में अवेष्टित हो जाता है। मणसणा (दान देना) हिमाचली समाज में दान देने के संदर्भ एवं पारम्परिक स्वरूप को उजागर करने में पूर्णतया समर्थ है।

हिमाचली-समाज के लोक-व्यवहार एवं संस्कारों में 'फुल्ल-अच्छत' शब्द-युग्म खूब प्रयुक्त होता है। 'फुल्ल-अच्छत', फूल (पुष्प) अक्षत का अपभ्रंश हैं। 'फुल्ल अच्छत' के बिना कोई सामाजिक धार्मिक अथवा सांस्कृतिक कारज (कार्यक्रम) सम्पन्न नहीं हो सकता। मानों फूल और अक्षत यदि उपलब्ध हैं तो पूजा की अन्य सामग्री न होने पर भी पूजा सम्पन्न हो जाती है। धार्मिक अनुष्ठान, व्रत त्योहार, संस्कार, यज्ञ, हवन आदि में 'फुल्ल-अच्छत' अपरिहार्य भूमिका निभाते हैं। पूजा के समय तो चंदन, पुष्प और अक्षतों का योगदान होता ही होता है किन्तु पूजा के पश्चात् दान दी जानी वाली वस्तु - अन्न, वस्त्र, आभूषण, जीव आदि - पर 'फुल्ल अच्छत' वार कर सांस्कृतिक प्रक्रिया को सफल माना जाता है। लोक-रीति में फूलों को पानी से धोना निषिद्ध माना जाता है जबकि अक्षतों को जल से अभिसिंचित करके ही प्रयोग में लाए जाने का विधान है। इस प्रकार 'फुल्ल-अच्छत' हिमाचली भाषा का प्रयोग में लाया जाने वाला ऐसा शब्द-युग्म है जो सामाजिक एवं सांस्कारिक परिवेश को स्वयं में समेटे रहता है। वैसे 'फुल्ल-अच्छत' के अभिधेयार्थ के अतिरिक्त लाक्षणिक और व्यंजनार्थ में भी गजब की शक्ति है। बड़े से बड़ा दान, अमूल्य चीज की भेंट, मूल्यवान वस्तु को अर्पित करने के पश्चात् भी जब कोई कहे कि 'यह मेरी ओर से आपके लिए 'फुल्ल-अच्छत' हैं, तो दाता की चरम विनम्रता प्रदर्शित होती है। ठीक इसी प्रकार जैसे भगवान राम विभीषण को लंका का राज्य बड़े संकोच के साथ अर्पित करते हैं जिसे दशकंधर रावण ने अपने दस सिर देकर अर्जित किया था।

'बिन्नां' शब्द हिमाचली समाज, व्यवहार, मानसिकता और संस्कारों के अनेक अर्थों को ध्वनित करता है। 'बिन्नां' शब्द मुख्यतः आसन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'बिन्नां' बनाने के पीछे समाज का श्रम, मानसिकता और भाव छिपे हुए हैं। लोक-समाज अपने दैनिक प्रयोग के लिए स्वयं 'बिन्नां' आसन बना लेता था। अधिकतर लोग खजूर के 'बिन्नें' बनाया करते। खजूर काट कर लाना, सुखाना और फिर करीने से बिन्नां बनाने का सदुद्योग करना परिश्रम एवं ग्रामीण-कारीगरी को घोषित करते हैं। कई लोग साधारण तो कई लोग रंग-बिरंगे बिन्नें बनाया करते। खजूर के अतिरिक्त मक्के के भुट्टे के पोचल़ों (छाल) से भी बिन्नें बनाए जाते। पोचल़ों के बिन्नें और खजूर के बिन्नें समान रूप से प्रयोग में लाए जाते। यही नहीं गाँववासी आस-पड़ोस और सगे-संबंधियों में बिन्नों का खूब आदान-प्रदान भी करते क्योंकि बिन्नां रोज मर्रा के प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तु जो थी। घर में आगंतुक को देना, बरामदे, आंगन, कमरे अथवा रसोई घर में जमीन पर बैठने के लिए बिन्नां तो चाहिए ही न। आसन हीन बैठना, बिठाना लोकरीति के विरुद्ध है। घर आए को बिन्नां (आसन देना) और पानी-धानी पिलाना सर्वप्रमुख प्रक्रिया है। आज धीरे-धीरे बिन्नां-परम्परा क्षीण होती हुई दिख रही है क्योंकि आधुनिक विकास क्रम में आसन के स्वरूप और विधियां दिनोंदिन बदल रही हैं। फिर भी हिमाचल प्रदेश के गाँववासी बिन्नां-परम्परा को अभी भी सहेजे हुए हैं। वैसे बिन्नां शब्द मुख्यतः बैठने में उपयोग लाए जाने वाले आसन के लिए प्रयुक्त होता है फिर भी सामान्यार्थ में 'बिन्नां' सिर पर घड़ा अथवा अन्य बर्तन रखने के लिए बनाया जाता है। पानी लाने के लिए सिर पर बर्तन रखने के लिए आसन-स्वरूप प्रयोग में आने वाले बिन्नें का आकार और स्वरूप घड़े अथवा बर्तन के तल के लिए आसन की आवश्यकतानुसार छोटा होता है किन्तु उसकी बनावट और निर्माण-विधि एक ही है।

बिन्नें की बात चली है तो बन्दरी और पराल दो आपसी तालमेल वाले शब्दों पर भी चर्चा कर लें। पराल शब्द धानों के पौधों की छाल के लिए प्रयोग में लाया जाता है। पराल को पराल्ली शब्द से भी संज्ञित किया जाता है। पराल अथवा पराली पशुओं के चारा के रूप में उपयोग किया जाता है जबकि कुछ सुघड़ महिलाएँ पराल अथवा पराली को कपड़े के सिले हुए बुग में भरकर बन्दरी के रूप में काम में लाती हैं। बाद में जूट अथवा आधुनिक किस्म की प्लास्टिक की बोरियों को सिलकर बन्दरी बनाई जाने लगी है। बन्दरी, बिन्नें से बड़ा बिछौना है। बिन्नां मात्र एकाध व्यक्ति के बैठने के काम आता है जबकि बन्दरी, बिन्नें से चौड़ा और लगभग पाँच पौने पाँच फीट लम्बा पराल से भरा हुआ बिछौना है जो एकाधिक लोगों के बैठने के काम आता है और रात को धरती अथवा चारपाई पर बिछाकर सोने के लिए भी बिछाया जाता है। बन्दरी सर्दियों में खासकर गर्म और गुदगुदा सुखदायक बिछौना है। भले ही अब बन्दरी का बिछौना धीरे-धीरे, शहरों में विशेषकर, कम प्रयोग में आने लगा है फिर भी गाँवों में अभी भी बन्दरी लोकप्रिय बिछौना है।

एक अन्य ठेठ शब्द है बन्हं। बन्हं शब्द बाँध, बंधन अथवा बांधना का अपभ्रंश है जो हिमाचली-पहाड़ी भाषा के मूल शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। बन्हं शब्द आमतौर पर बहते हुए पानी को बांध बनाकर बाँधना और मनोनुकूल विशेष दिशा में ले जाकर समुचित उपयोग करने से है। जब घराट-परम्परा अपने शिखर पर थी तो छोटे-छोटे जल स्रोतों, खड्डों एवं नालों पर पत्थरों-पत्तों, घास के उपयोग से बाँध बनाए जाते थे और बहते हुए जल को पूर्ण रूप से बांधकर कूहल द्वारा निश्चित घराट वाले स्थान तक पहुंचाकर घराट चलाने का काम किया जाता था। जब जल-स्रोत तीव्र होता तो था तो कई लोग मिलकर बड़ा बाँध बाँधते और बड़ी कूहल बनाकर अनेक घराट चलाया करते। घराटियों की मिलजुल कर काम करने, सामूहिक मेल-जोल और स्वयं पानी की वितरण-व्यवस्था को अंजाम देने की अद्भुत परम्परा थी। पहले जब बरसात में घराट पानी में वह जाते थे तो ग्रामीण इक्ट्ठा तीन महीने का राशन पिसवा कर रख लेते थे। तीन महीने का राशन पिसवा कर रख लेना आवश्यक था क्योंकि तब आवागमन की कठिनाई

एवं पिसा हुआ आटा बिकने की रिवायत आम न थी। लोग बतरीःण (तीन महीनों का राशन) पिसवा कर गोबर लिपे हुए पेड़क्ओं में सहेज कर रख लिया करते थे। बन्हं शब्द बन्हंण अर्थात् बांधना प्रेम के बंधन को भी अभिहित करता है। जैसे 'प्यारे दे बन्हंण' अर्थात् प्रेम के बंधन। वैसे बन्हं पाणा विशेष पेट-रोग पीड़ित, विशेषकर महिलाओं के संदर्भ में अधिकतर प्रयोग में लाया जाता है। प्रसूति महिलाओं को दाइयां जच्चा के पेट को चिकित्सकीय ढंग से मसाज कर विशेष ढंग से कपड़े से अच्छी तरह बांध देती थीं और फिर निश्चित समयोपरांत ही खोलती थीं। यह प्रसूति-महिला का जननोपरांत चिकित्सकीय ग्रामीण विधि-विधान था। अभी भी कुछ ग्रामीण लोग पेट का लुआल़ा खिसकने पर गांव के हड्डी-पसली विशेषज्ञों से बन्हं बंधवाकर उपचार करवाते देखे गए हैं।

गौमाता हमारे समाज में माता के समान पूज्य एवं आर्थिकी की रीढ़ है। गौमाता के दर्शन, पूजन एवं गोदान स्वयं में महत्त्वपूर्ण सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था है। समाज में शुभ कार्यों के लिए गौमाता को गौ, गाए, गाए माता आदि शब्दों से संज्ञित किया जाता है किन्तु जब गौमाता को मृत्यु के समय दान में दे दिया जाता है तो वही गौमाता बैत्तण शब्द से अभिहित की जाती है। बैत्तण वह गौ है जो मृतक प्राणी से मृत्यु के समय दान करवाई जाती है। मरते हुए प्राणी के हाथ में गाय की पूंछ पकड़वाकर गंगा जल से अभिसिंचित करके मणसवाई, दान करवाई जाती है। खास बात यह है मृत्यु के समय मणसवाई जाने वाली गौ का दान लेने का अधिकारी केवल अचारज है। अचारज शब्द भी आचार्य का अपभ्रंश प्रतीत होता है जो ब्राह्मणों की विशिष्ट प्रकार की उत्तर-क्रिया करवाने वाले ब्राह्मणों को संज्ञित करता है। अंतिम समय का गौदान प्राणी की उत्तर-यात्रा में वैतरणी नदी को सहज में पार कर लेने में सहायक होता है, ऐसी मान्यता है। वैतरणी पार करवाने वाली गौमाता को ही कदाचित् हिमाचली-भाषा में बैत्तण शब्द रुढ़ार्थ में प्रयुक्त होने लगा।

बैत्तण गौ आम तौर पर समाज में एक खास नजरिये से देखी जाती हैं। आम तौर पर बैत्तण को लोग मोल लेने से भी परहेज करते हैं। बैत्तण का दूध, दही, घी मात्र दान लेने वाला परिवार अथवा परिवार समूह ही उपयोग में लाने का अधिकारी है। आस-पास का समाज, जिसे विदित हो कि अमुक गौ बैत्तण है, तो वे उसका दूध, दही अथवा घी प्रयोग में नहीं लाता।

वैसे बैत्तण शब्द में अनेक लक्षणार्थ, गूढ़ार्थ, गुह्यार्थ और व्यंजनार्थ भी समाहित हैं। जैसे कोई व्यक्ति किसी की गाय द्वारा खेती अथवा अन्य नुकसान करने पर यदि कहे -- 'तिज्जो लग्गै बैत्तण।' अर्थात् तेरी गौ ने मेरा नुकसान किया यह गाय तुझसे मृत्यु के समय दान करवाई जाए तो बैत्तण शब्द व्यंजनार्थ में गाली हुआ। ऐसी गाली जो बड़ी शालीनता से मारक अर्थ को स्वयं में समेटे हुए है। किसी की गाए अथवा गौउएं यदि किसी की हरी-भरी खेती को उजाड़ दें और वह व्यक्ति गुस्से में कहेरू- 'बैतणी कुथी दियां।' तो चंगी भली गाए को गाए न कहकर बैत्तणी कहने में क्रोध, चिढ़ और गाली के प्रच्छन्नार्थ हैं, जो गहरी मार करते हैं। व्यंजना की यह विशेषता तो है ही है।

हिमाचली-पहाड़ी भाषा में प्रस्तर अथवा पत्थर के लिए भिन्न-भिन्न शब्द रूपों का इस्तेमाल होता है। ये रूप हैं गिट्टी, गिट्टू, पत्थर, पथरोलू, टुरा, टोह्ल़, टिल्ला और घोड़ी। गिट्टी, छोटा लम्बूतरा पत्थर है तो गिट्टू गोलाकार लघु पत्थर। पथरोलू , गिट्टी और गिट्टू के मिले-जुले आकार वाला छोटा पत्थर है जो आम तौर पर पैरों में चुभता है अथवा फेंकने और चोट देने के काम में लाया जाता है। 'टुरा' शब्द सहारा देने के अर्थ में काम आने वाले पथरोलू

गौमाता हमारे समाज में माता के समान पूज्य एवं आर्थिकी की रीढ़ है। गौमाता के दर्शन, पूजन एवं गोदान स्वयं में महत्त्वपूर्ण सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था है। समाज में शुभ कार्यों के लिए गौमाता को गौ, गाए, गाए माता आदि शब्दों से संज्ञित किया जाता है किन्तु जब गौमाता को मृत्यु के समय दान में दे दिया जाता है तो वही गौमाता बैत्तण शब्द से अभिहित की जाती है। बैत्तण वह गौ है जो मृतक प्राणी से मृत्यु के समय दान करवाई जाती है। मरते हुए प्राणी के हाथ में गाय की पूंछ पकड़वाकर गंगा जल से अभिसिंचित करके मणसवाई, दान करवाई जाती है। खास बात यह है मृत्यु के समय मणसवाई जाने वाली गौ का दान लेने का अधिकारी केवल अचारज है। अचारज शब्द भी आचार्य का अपभ्रंश प्रतीत होता है जो ब्राह्मणों की विशिष्ट प्रकार की उत्तर- क्रिया करवाने वाले ब्राह्मणों को संज्ञित करता है। अंतिम समय का गौदान प्राणी की उत्तर-यात्रा में वैतरणी नदी को सहज में पार कर लेने में सहायक होता है, ऐसी मान्यता है। वैतरणी पार करवाने वाली गौमाता को ही कदाचित् हिमाचली-भाषा में बैत्तण शब्द रुढ़ार्थ में प्रयुक्त होने लगा।

के लिए होता है। टुरा छोटे से पथरोलू का बड़े आकार-प्रकार वाले पत्थर अथवा चट्टान के तले में मिट्टी के साथ सन कर ऐसा सहारा देना है जो छोटा होकर भी उस बड़ी चट्टान को थामे रखता है। टुरा देणा, टुरा लाणा आदि शब्द सहारा देने के अर्थ में प्रयोग में लाए जाते हैं।

घोड़ी शब्द नदिया अथवा खड्ड के उस किनारे वाला अथवा जल के मध्य वाली चट्टान के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिसका आकार-प्रकार घोड़े अथवा घोड़ी की पीठ जैसी लम्बाई में हो। यह घोड़ी जल में अथवा जल से सटी हुई छः सात फीट की ऊंचाई वाली चट्टान होती है, जिसके आस-पास दस-पन्द्रह फीट गहरी आल़ (गहरा जल) रहा करती है। नहाते समय बच्चे-युवा मस्ती में दौड़-दौड़ कर घोड़ी-नुमा चट्टान पर चढ़ते और दौड़ते-दौड़ते छलांग लगाकर नदिया अथवा खड्ड में कूद जाते। गहरे जल के तल को पैरों से ठेल कर ऊपर आते और तैरते-तैरते फिर उस घोड़ी पर चढ़ते और छलांग लगाते तैरते और आनंद उठाते। यह क्रम और प्रक्रिया यथेष्ट समय तक चलती। खड्ड अथवा नदिया में छोटी, मध्यम और बड़ी घोड़ियां भी होतीं जिनका उपयोग समय, अवस्था और रुचि-शुचि के अनुकूल किया जाता।

हमारे गांव गुलेर की वाण-गंगा में तीन चार ऐसी घोड़ियां थीं जिन पर सवार होकर हमने खूब छलांगे लगाईं हैं। छलांगे लगा-लगाकर मन भरता ही न था और कई बार इस आनंद मंगलाचार की भरपाई घर में विलम्ब से पहुंचने पर माँ-बाप से मार खाकर चुकानी पड़ती। लेकिन बचपन तो बचपन है - “दो पेइयां स्हार लेइयां, यारां दियां दूर बलैइयां।” अर्थात् दो थप्पड़ पड़े सहार लिये मित्रों का मित्रचारा बना रहे। मार को हम सहज में भूल गये। किन्तु खेद का विषय है कि अब वे सब घोड़ियां काल के गाल में समा चुकी हैं। उन्हें ढूँढने के प्रयास में विफलता और निराशा हाथ लगी। मन मसोस कर रह गया। शायद प्रकृति के निर्माण और विध्वंस के अटल नियम में ये घोड़ियां भी समा गईं।

टोहल़ अथवा टिल्ला शब्द मध्यम, बड़ी और भीमकाय चट्टान के लिए प्रयुक्त होता है। यह चट्टान कहीं भी समतल भूमि, ढलान अथवा पहाड़-पहाड़ी पर अवस्थित हो सकती है। इन चट्टानों के भीमकाय स्वरूप को देखकर लगता है कि ये कैसे और किसने स्थापित की होंगी ? ऐसी चट्टानों के बारे में किंवदंतियां हैं कि इसे अमुक देवता, भीम अथवा असुर ने स्थापित किया है। हमारे गांव गुलेर में वैसे तो कई ऐतिहासिक ऐसी टोहल़ें (चट्टानें) हैं किन्तु कुछ चट्टानें अपने आकार-प्रकार के कारण विशिष्ट नामों से जानी जाती हैं। जैसे एक चट्टान ‘हाथी टिल्ला’ के नाम से संज्ञित है। यह हाथी टिल्ला ऐसी भीमकाय टोहल़ है जिसका आकार-प्रकार और शक्ल-सूरत हाथी जैसी है। रंग में भी यह श्याम वर्ण है। इस प्रकार गुणानुरूप न जाने कब से समाज में इस टोहल़ को हाथी टिल्ला नाम दे दिया गया। किसने दिया कब दिया, कैसे दिया यह सब किसी को विदित नहीं लेकिन ‘हाथी टिल्ला’ बन गई। ‘सिरैं टोहल़ लाणा’ क्योंकि उत्तर-कृत्य का अंग थी इसलिए इसका अर्थ भी अपशगुन के रूप में लिया जाने लगा। फिर व्यंजनार्थ में “सिरैं टोहल़ लाणा’ किसी को मरने की गाली देने में परिवर्तित हो गया। अब जब कोई क्रोधाभिभूत होकर किसी को यह कहेरू- औंऐं तेरैं सिरैं टोहल़ लांअ अथवा तेरैं सिरैं टोहल़ लग्गै अर्थात् आओ न तेरे सिर के नीचे टोहल़ (बड़ा पत्थर धरूं) अथवा तेरे सिर के नीचे टोहल़ लगे तो इसका अर्थ मरने की गाली से लिया जाता है। क्योंकि सिरैं टोहल़ चिता पर धरकर मृतक के सिर को अच्छी तरह टिकाए रखने के लिए लगाई जाती थी।

देखा जाए तो आर्थिक समृद्धि, उन्नति, सामाजिक बदलाव, ढांचा-गत प्रोन्नति के पश्चात् हमारी पुरानी रीति-नीति और लोक-परम्पराओं में भी आमूल चूल परिवर्तन देखने को मिला है। परिणाम-स्वरूप पारम्परिक और पारिवारिक व्यवसायों को त्याग कर लोग आधुनिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न जीवन व्यतीत करने में विश्वास रखने लगे हैं। यही कारण कि पारिवारिक व्यवसायों का परित्याग, अदला-बदली, परिवर्तन और शनैः-शनैः ह्रास देखने में आया है। इस ह्रास और सामाजिक बदलाव की चपेट में सामाजिक व्यवस्थाएं और लोक-परम्पराओं का कहीं ह्रास और कहीं-कहीं विनाश देखने में आने लगा है। वैज्ञानिक सुख-सुविधा और सामाजिक विकास के कारण हिमाचल प्रदेश में ग्यासण और नेज जैसी लोक-परम्पराएं अब लगभग नदारद हैं। कहना अत्युक्ति न होगा कि विकासात्मक दौर की परिवर्तनशील लहर में ज्यों-ज्यों लोक-परम्पराएं मिटती जाएंगी त्यों-त्यों उन परम्पराओं एवं संस्कारों से जुड़े हुए शब्द भी काल के गाल में समा जाएंगे। इस संदर्भ में हिमाचली-भाषा के अनेक ठेठ शब्द नयी पीढ़ी द्वारा विस्मृत कर दिये गए हैं तो कई शब्दों का अन्य भाषा-प्रयोग के कारण उन्हें ज्ञान ही नहीं है। एतदर्थ हिमाचली-पहाड़ी भाषा के कतिपय शब्दों को सांस्कृतिक, सामाजिक, भाषायी एवं लोक-व्यवहार में प्रयोग के संदर्भ में विश्लेषित करके सहेज कर रखने के विनम्र प्रयास होने ही चाहिए।

टोहल़ शब्द ग्रामीण लोकरंग में अभी भी अपनी पहचान बनाए हुए है। ठीक ऐसे ही वाण गंगा के किनारे धार (पहाड़ी) पर एक गोलाकार टोहल़ (चट्टान) है जिसे हमारे गांववासी 'धारनाथ' कहकर पुकारते हैं। 'धारनाथ' पर विशेष उत्सवों के समय व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से पूजा-अर्चना करके समाज मनौतियां मनाता है तथा धारनाथ के प्रति अपनी अगाध-श्रद्धा, आस्था और विश्वास को दर्ज करवाना नहीं भूलता। बच्चे, युवा, बूढ़े, पुरुष और महिलाएँ सभी श्रद्धा-भक्ति से भेंट आदि अर्पित कर सकते हैं। 'धारनाथ' खुले में विराजमान हैं और हम जितनी बार भी उस ओर से जाएं श्रद्धावनत होकर धारनाथ को शीष नवाकर ही जाते हैं।

हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक मानसिकता से जुड़े दो शब्द पर्यायार्थ में प्रयोग में आते हैं -- सीह्धा तथा नसरौआं। सीह्धा अथवा नसरौआं चावल अथवा गेहूं के आटे पर गुड़ घी आदि रखकर उसे मणसा, मणसवाया (दान में देना) जाता है। यह सीह्धा अथवा नसरौंआं दान देने की परम्परा भगवान विष्णु को अर्पित करने की है। सीह्धा अथवा नसरौंआं हर शुभ कारज के पश्चात् दान में दिये जाने का विधान है। किसी बड़े दोनें अथवा पात्र में आटा, चावल, गुड़ को जल छिड़क कर तीन बार जल को वृत्ताकार अंजलि भर कर श्रद्धापूर्वक घुमाकर छोड़ दिया जाता है। स्वाभाविक है कि जल छोड़ने के साथ सामर्थ्यानुसार सीह्धे में दक्षिणा-द्रव्य भी डाला जाता है। जन्मदिन, विवाह अथवा किसी अन्य शुभ कार्य की पूजा करवाने के पश्चात् सीह्धा अथवा नसरौंआं दान दिये बगैर कारज सम्पन्न नहीं होता। सीह्धा अथवा नसरौंआं का दान लेने के लिए पूजा करवाने वाला ब्राह्मण ही अधिकारी होता है। जिस प्रकार कारज की सम्पन्नता के लिए सीह्धा अथवा नसरौंआं मणसणा (दान देना) अनिवार्य उपक्रम है ठीक वैसे ही शुभ कार्य की अंततः देवी पूजन के साथ पूर्णता मानी जाती है। देवी अथवा कंजका पूजन किसी भी धार्मिक कृत्य के पश्चात् अपरिहार्य अंग है। कंजका अर्थात् कन्या पूजन। हमारी सामाजिक व्यवस्था में कंजका साक्षात् मां भगवती के रूप में पूजी जाती हैं। होता सर्वप्रथम कंजका के चरणों का जल, अक्षत, पुष्प, चंदन, धूप, दीप एवं नैवेद्य से पूजन करता है फिर उसके माथे पर चन्द्राकार लाल टीका लगाकर पूजा करके उसे अपने हाथों से तीन बार नैवेद्य खिलाता है। बाद में दक्षिणा देकर प्रणाम करके कंजका का आशीर्वाद लिया जाता है। कंजका, देई, देअ, देउआ आदि कन्या के लिए प्यार-भरे आदर सूचक सम्बोधन हैं।

विवाह आदि सांस्कृतिक कृत्यों में एक कंजका का विधिवत पूजन करके लाल डोरी (मौली) बांधकर प्रत्येक संस्कार को उससे प्रारंभ करवाकर घरवाले शेष विधि का निर्वाह करते हैं। मौली बंधी कंजका को कारज के प्रारंभ से लेकर सम्पन्नता तक हर समय उपस्थित रहना पड़ता है। मौली बंधी कंजका को 'कंगणां बझियो कंजका' के रूप में संज्ञित किया जाता है और स्वाभाविक है कि 'कंगणा बझियो कंजका' पूरे उत्सव की धुरी होती है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि धार्मिक एवं सांस्कृतिक समारोहों की सम्पन्नता एवं पूर्णता में सीह्धा अथवा नसरौंआं तथा कंजका पूजन परम्परा अपरिहार्य अंग है।

हिमाचली संस्कारों, लोक विश्वास एवं धार्मिक चिंतन से जुड़े हुए दो शब्द हैं -- ग्यासण और नेज। ग्यासण अथवा नेज किसी अधिकारी ब्राह्मण को प्रतिदिन प्रातः का भोजन दान में देने की परम्परा है। ग्यासण अथवा नेज नियमित रूप से पकवान देने की प्रथा है। अधिकारी ब्राह्मण, कुल पुरोहित अथवा कोई अन्य पूजक व्यक्ति नित्यप्रति ग्यासण देने वाले के घर से स्वयं पकवान ले आया करता था। पांच-सात घरों से नित्यप्रति ग्यासण अथवा नेज लेकर उस ब्राह्मण परिवार के भरण-पोषण में सहायता हो जाया करती थी। ग्यासण अथवा नेज देने-लेने की परम्परा अब लुप्तप्राय होती जा रही है। जैसे-जैसे समाज में आर्थिक-समृद्धि का दौर आया है वैसे-वैसे अब कोई ब्राह्मण ग्यासण अथवा नेज नहीं लेना चाहता। जब कोई लेना ही न चाहेगा तो देने वाला चाहकर भी नहीं दे सकता। देखा जाए तो आर्थिक समृद्धि, उन्नति, सामाजिक बदलाव, ढांचा-गत प्रोन्नति के पश्चात् हमारी पुरानी रीति-नीति और लोक-परम्पराओं में भी आमूल चूल परिवर्तन देखने को मिला है। परिणाम-स्वरूप पारम्परिक और पारिवारिक व्यवसायों को त्याग कर लोग आधुनिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न जीवन व्यतीत करने में विश्वास रखने लगे हैं। यही कारण कि पारिवारिक व्यवसायों का परित्याग, अदला-बदली, परिवर्तन और शनैः-शनैः ह्रास देखने में आया है। इस ह्रास और सामाजिक बदलाव की चपेट में सामाजिक व्यवस्थाएं और लोक-परम्पराओं का कहीं ह्रास और कहीं-कहीं विनाश देखने में आने लगा है।

वैज्ञानिक सुख-सुविधा और सामाजिक विकास के कारण हिमाचल प्रदेश में ग्यासण और नेज जैसी लोक-परम्पराएं अब लगभग नदारद हैं। कहना अत्युक्ति न होगा कि विकासात्मक दौर की परिवर्तनशील लहर में ज्यों-ज्यों लोक-परम्पराएं मिटती जाएंगी त्यों-त्यों उन परम्पराओं एवं संस्कारों से जुड़े हुए शब्द भी काल के गाल में समा जाएंगे। इस संदर्भ में हिमाचली-भाषा के अनेक ठेठ शब्द नयी पीढ़ी द्वारा विस्मृत कर दिये गए हैं तो कई शब्दों का अन्य भाषा-प्रयोग के कारण उन्हें ज्ञान ही नहीं है। एतदर्थ हिमाचली-पहाड़ी भाषा के कतिपय शब्दों को सांस्कृतिक, सामाजिक, भाषायी एवं लोक-व्यवहार में प्रयोग के संदर्भ में विश्लेषित करके सहेज कर रखने के विनम्र प्रयास होने ही चाहिए।

अपर्णा श्री, हाऊसिंग कॉलोनी, चीलगाड़ी,
धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश-176215, मो. 94180-17660

आलेख

सामाजिक संस्कारों का मूलस्रोत: घर की पाठशाला

◆ आइवर यूशिएल

यह बात हम सब अच्छी तरह से जानते ही हैं कि हमारे जीवन में शिक्षा का कितना महत्व है। शिक्षा के बिना जीवन भी कोई जीवन है भला। विशेषकर आज के युग में जब प्रगति के पथ पर सारा संसार तेजी से आगे बढ़ता जा रहा है, शिक्षा से विहीन रह जाने का सीधा अर्थ है पशुओं की तरह जीवन जीने की मजबूरी और ऐसी मजबूरी भला कौन स्वीकारना चाहेगा। वैसे भी प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धा के इस दौर में शिक्षा के क्षेत्र का दायरा भी अब पहले से बहुत विस्तृत और विशाल हो गया है।

देश के हर कोने में शिक्षण संस्थान तेजी से विस्तार ले रहे हैं। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों तक में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या में दिनों दिन इज़ाफा होता जा रहा है। व्यावसायिक शिक्षा के गढ़ मैडिकल व इंजीनियरिंग कॉलेजों से प्रशिक्षित छात्र देश में ही नहीं, देश के बाहर भी अपनी कुशलता की पहचान बना रहे हैं। पहले की तरह शिक्षा प्राप्ति के लिए अब क्षेत्र सीमा भी कोई अवरोध पैदा नहीं कर पा रही। कुछ दशक पूर्व तक जहाँ जिले के बाहर जाकर अध्ययन करना एक चुनौती माना जाता था वहीं आज उच्च शिक्षा के लिए विदेशों तक छात्रों की पहुँच कोई बहुत विशेष बात नहीं रह गयी है।

शिक्षा के महत्व का इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है कि महानगरों एवं स्तरीय शहरों में तो बच्चे के जन्म से पूर्व ही विद्यालय में उसके दाखिले का रजिस्ट्रेशन कराया जाने लगा है। यह स्थिति एकतरह से हास्यास्पद हो सकती है परन्तु शिक्षा के महत्व को समझने के लिए इससे अच्छा उदाहरण दूसरा कौन-सा हो सकता है? वैसे इसी सिलसिले में मैं यहाँ अपने जीवन में घटी एक घटना का भी उल्लेख करना चाहूँगा जो आपको रोचक तो लगेगी ही साथ ही आपके लिए प्रेरणादायक भी सिद्ध होगी ।

पारस पत्थर के बारे में तो आपने जरूर सुना होगा। लोहे को सिर्फ अपने स्पर्श से सोना बना देने के अलौकिक गुण के कारण हमारी प्राचीन कथाओं में इसका जिक्र बराबर होता आ रहा है। परन्तु वास्तविकता में मानव कभी इसका उपयोग नहीं कर पाया क्योंकि यह उसके मस्तिष्क की महज एक कल्पना थी, इसका कभी कोई अस्तित्व रहा ही नहीं।

लगभग दो दशक से भी पहले आपके जैसे एक बच्चे ने मुझे पत्र लिख कर यह पूछा था कि वह पारस पत्थर प्राप्त करना चाहता है, इसके लिए उसे क्या करना होगा? मैंने जवाब में सिर्फ इतना ही लिखा कि इस बारे में मैं कुछ बता सकूं इसके लिए उसे पहले अच्छे अंकों में उच्च शिक्षा प्राप्त करनी होगी। फिर एक लम्बे समय के उपरान्त दिल्ली के एक सम्मेलन में जब एकाएक उससे मेरी मुलाकात हो गई तो इतने लम्बे अर्से बाद भी उसने उत्सुकतावश अपना वही प्रश्न फिर दोहराया जबकि तब तक वह एम.एस-सी., पीएच.डी. करके किसी विद्यालय में अध्यापन कार्य शुरू कर चुका था। मैंने स्पष्ट किया कि पारस तो वह पहले ही प्राप्त कर चुका है क्योंकि सच्ची शिक्षा से बेहतर कहीं कोई पारस नहीं। यही एक मात्र ऐसा साधन है जिससे अपने धर्म यानी कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता पैदा होती है, अर्थ यानी धन अर्जित करने का जरिया प्राप्त होता है, कामनाओं की पूर्ति में मदद मिलती है और इसके सहारे जीवन सन्तोष और सम्मान से व्यतीत किया जा सकता है। यह शिक्षा ही तो है जिससे समझ पैदा होती है, समझ से सही फैसले लेने में मदद मिलती है और जीवन में लिए गये सही फैसले ही मनुष्य को प्रगति के मार्ग पर सफलता के साथ आगे बढ़ने में सहायक होते हैं।

आपके साथ आज की अपनी बात को एक मजबूत आधार देने के विचार से ही मैंने यहाँ अपने जीवन के इस अनुभव को आपके साथ बाँटा ताकि आपको भी लगे कि वास्तव में शिक्षा किसी पारस मणि से कम चमत्कारी नहीं। यह जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही उपयोगी भी। फिर इस बहुमूल्य धरोहर में एक विशेषता यह भी है कि इसे न तो कोई छीन सकता है और न ही इसे चुराया जा सकता है बल्कि यह अपने तरह की एक ऐसी अनोखी सम्पदा है जिसे जितना बाँटा जाता है वह उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है ।

आम तौर पर शिक्षा का सीधा संबंध विद्यालयों से जोड़ा जाता है और अपनी पारम्परिक सोच व सामाजिक विचारधारा के अनुसार पिछले लम्बे समय से शिक्षा प्राप्ति के लिए विद्यालय जाना एक आवश्यक शर्त-सी बन चुकी है। इन विद्यालयों का स्तर

धीरे-धीरे प्राप्त की जाने वाली शिक्षा के बढ़ते स्तर के साथ ही ऊँचा उठता जाता है और इस तरह शिक्षा के विभिन्न स्तरीय पाठ पढ़ते हुए छात्र विद्यालय से महाविद्यालय और फिर विश्वविद्यालय तक पहुँच कर अपना लक्ष्य प्राप्त करते हैं। वैसे विद्यालय चाहे किसी भी तरह के हों, किसी भी स्तर के हों परन्तु वहाँ छात्रों को पढ़ाये जाने वाले पाठ ही वास्तव में उनकी शिक्षा का आधार बनते हैं। शायद यही कारण रहा कि हमारे समाज में पाठ शब्द इतना महत्वपूर्ण होकर उभरा कि शाला के साथ जुड़कर पाठशाला के रूप में यह प्रारम्भिक शिक्षा का एक तरह से पर्याय ही बन गया। साथ ही इस धारणा ने पाठशाला को और अधिक महत्व दिलाया जिसके अन्तर्गत यह मान लिया गया कि बालक के अंदर शिक्षा, ज्ञान व संस्कार ढालने की शुरुआत इन्हीं पाठशालाओं से होती है जबकि असलियत इससे बहुत भिन्न है जिसे प्रायः नजरअंदाज कर दिया जाता है। वास्तविक स्थिति तो यह है कि शिक्षा, संस्कार, स्वाभिमान और आत्मविश्वास का पाठ पढ़ने के लिए जब बालक प्रारम्भिक शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश करता है तो उससे पहले ही वह अपने परिवार और परिवेश के हिसाब से ऐसा काफी कुछ सीख चुका होता है जो उसकी आगे की जिन्दगी को प्रभावित करने में अपनी प्रभावशाली भूमिका अदा करता है और यह सबसे महत्व पूर्ण पाठशाला होती है उसका अपना घर। यहाँ माँ की गोद में बच्चा जिंदगी के जो सबसे पहले पाठ पढ़ता है उनकी कोई बराबरी नहीं हो सकती ।

घर की पाठशाला इतनी महत्व पूर्ण क्यों है और माँ की गोद में सीखे हुए शुरुआती पाठ आगे की पूरी जिन्दगी को कैसे प्रभावित कर देते हैं यह जानना भी कम रोचक नहीं। जन्म लेने के बाद हर नवजात शिशु के लिए उसके आसपास की सारी दुनिया एक अजूबे की तरह होती है जिसकी प्रत्येक वस्तु से परिचित होने की जिज्ञासा उसमें जन्म जात समायी रहती है। बिस्तरे पर लेटे रहने की तुलना में परिजनों-परिचितों की गोद शिशु को ज्यादा लुभाती है और बाहर घूमने की चाहत तो इतनी होती है कि इसके लिए प्रायः परिचित-अपरिचित का दायरा भी उसके लिए मायने नहीं रखता।

इस सबके पीछे वास्तव में एक मनोविज्ञान कार्य कर रहा होता है और वह यह कि जिस संसार में आगे लम्बे समय तक शिशु को जीवन बिताना होता है उसके प्रत्येक अंश के साथ वह जल्दी से जल्दी परिचय प्राप्त कर लेना चाहता है। सब कुछ उसके लिए यहाँ नया ही होता है शक्लें, ध्वनियाँ, वस्तुएँ परन्तु उसे शिशु अधिक समय तक नया नहीं रहने देना चाहता। जो कुछ उसके आसपास है, जो कुछ उसे अपने चारों तरफ नजर आ रहा होता है, वह क्या है, क्या कहलाता है इसे सीखने-जानने की उसे बेताबी रहती है और ऐसे में उसकी सबसे करीबी रिश्तेदार यानी माँ उसकी सबसे बड़ी शिक्षक सिद्ध होती है।

यही समय होता है जब शिशु अवस्था में वह अपने सूक्ष्म निरीक्षण और अवलोकन से आचरण, उच्चारण और अभिव्यक्ति के तमाम तरीके सीखने शुरू कर देता है और इसमें मुख्य भूमिका होती है घर में मौजूद सदस्यों की जिनके व्यवहार से शिशु के लिए एक वातावरण तैयार होता है सीखने और उसे आत्मसात करने के लिए।

गाँधी जी का यह कथन भला कैसे असत्य हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपने जीवन के शुरुआती सिर्फ पांच वर्षों में जितना कुछ सीख लेता है, उस रफ्तार से, उतनी मात्रा में वह पूरी जिन्दगी में भी नहीं सीख पाता। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार भी मानव मस्तिष्क में याद रखने की क्षमता उम्र के साथ घटती जाती है जबकि समझ और अनुभव बढ़ते जाते हैं। यह तथ्य सिर्फ किताबी नहीं बल्कि जीवन में व्यावहारिक रूप में पूरी तरह खरा उतरता है। बचपन में जो कुछ याद किया जाता है उसे सारी उम्र व्यक्ति भूल नहीं पाता और इसीलिए यह समय शिशु को संस्कारपूर्ण सारी बातों को सिखाने के लिए पूरी तरह उपयुक्त होता है ताकि आगे चलकर एक वयस्क के रूप में वह सभ्यतापूर्ण सुसंस्कारी जीवन जी सके।

समाज में यह बात सर्वत्र देखी जा सकती है कि पढ़े-लिखे व मर्यादित जीवन जीने वाले परिवारों की अगली पीढ़ी भी प्रायः उन्हीं सारे गुणों से युक्त विकसित होती है जो उन्हें संसार में आँखें खोलते ही अपने परिवार में चारों और देखने को मिलती हैं। इसके विपरीत अनैतिकता, द्वेष, विलासिता और लाभ जैसे दुर्गुणों से घिरे परिवारों में अच्छे इनसान के रूप में शायद कहीं कोई बिरला ही विकसित हो पाता होगा जिसे एक अपवाद माना जाएगा। इसीलिए यह बात पूरी तरह समझ लेनी बहुत आवश्यक है कि हमें अपने देश में यदि एक स्वच्छ एवं सुन्दर समाज का निर्माण करना है तो इसके लिए प्रत्येक परिवार को अपनी नई पीढ़ी के सुनहले भविष्य के लिए अपने-अपने घरों में ऐसे गुणों से युक्त वातावरण का निर्माण करना होगा जिन विशेषताओं की वे अपने बच्चों में अपेक्षा करते हैं क्योंकि यही वातावरण बच्चों के लिए एक ऐसी अनदेखी पाठशाला का-सा प्रभाव पैदा कर देता है जहाँ बच्चे वो सब कुछ सीख लेते हैं जिन्हें बाद में सिखा पाना बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के वश की बात नहीं हो पाती और दुर्भाग्य से यदि इन्हें वातावरण उपयुक्त न मिले तो आगे चलकर ऐसी पाठशालाओं के छात्र हवालात और कारागार में रहकर भी अपने बचपन के पाठ न भुला पायें तो आश्चर्य कैसा ? यही महत्व है घर की पाठशाला का जहाँ इंसान भी तैयार किये जा सकते हैं और हैवान भी। बाकी हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम अपने यहाँ किस प्रकार के समाज की रचना करना चाहते हैं?

ज्ञाशिम, सी 203, कृष्णा काउण्टी, मिनी बाईपास,
बरेली-243122, मो. 094566 70808

आलेख

मृत्यु संस्कार के लोकगीतों में कर्मफल

◆ डॉ. लीला मोदी

मृत्यु मानव जीवन का अन्तिम व प्रमुख संस्कार है। सभी देशों और समाजों में किसी न किसी रूप में यह संस्कार सम्पन्न किया जाता है। भारत में हर संस्कार के गीत हैं, अन्य संस्कारों पर लोकगीतों में जहाँ अपार अह्लाद होता है तो दुःख और विषाद का सागर भी उमड़ता दिखाई देता है। ये गीत अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें सर्वप्रथम मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन होता है, कुछ में मृतक बुजुर्ग के अभाव में आगामी कष्टों की संभावना का वर्णन होता है। छोटे बच्चे के काल के गाल में चले पर ममता के करुण सागर में भीषण ज्वार की सुनामी देखी जाती है। उसके सौन्दर्य, भोलेपन और सरलता का वर्णन होता है। कमाने वाले व्यक्ति की मृत्यु पर आर्थिक दुर्दशा का वर्णन भी लोकगीतों में पाया जाता है। इनमें कुछ गीत तत्काल आह से उपज कर आते हैं। मेरी दृष्टि में इसे गीतात्मक रुदन कहना चाहिए जो नारियों के कंठ से आँखों के आँसू में भींगकर सामने आते हैं। ऋग्वेद से लेकर कालिदास तक के साहित्य में मृत्युगीत मिलते हैं। इनमें गोदान का भी उल्लेख है। राजस्थान के मृत्यु गीतों मे लय होती है। इन गीतों में एकादशी उपवास का महत्त्व और सामाजिक चेतना का विराट दिग्दर्शन मिलता है।

एकादशी उपवास का महत्त्व

भारतीय समाज व संस्कृति में एकादशी के व्रत का सर्वाधिक महत्त्व है। एकादशी उपवास में विविध प्रकार व माहम्य के एकादशी उपवास हैं ''पुत्रदा, षटतिला, जया, विजया आमल की एकादशी, इसके पश्चात् पापमोचनी, कामदा, वरुथनी, मोहिनी और अपरा। गंगा दशहरा के बाद निर्जला एकादशी का सर्वाधिक महत्त्व है इसी माह में योगिनी एकादशी आती है। देवशयनी पर सभी मांगलिक कार्य विवाह आदि बंद हो जाते हैं। पवित्रा और अजा के बाद जलझूलनी, इंदिरा, पापकुशा, रमा, देवप्रबोधिनी पर तुलसी व सालिग्राम का विवाह किया जाता है, यहाँ से वैवाहिक मांगलिक कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं और वैतरणी मोक्षदा और सफला एकादशी विशेष रूप से मोक्षार्थ किए जाते हैं।''[1]

तेरहवीं के दिन मृतक आत्मा की मोक्ष कामना के लिए ग्यारस देने की प्रथा है। इस प्रकार जो व्यक्ति कभी ग्यारस का व्रत नहीं करता उसे भी यह व्रत करना पड़ता है और अप्रत्यक्ष रूप में लाभ उसी को मिल जाता है। ग्यारस देना पूर्वजों के प्रति श्रद्धा का प्रतीक है। ग्यारस लोकगीत में सामाजिक चेतना इस प्रकार वर्णित है। हे मानव एकादशी का व्रत करो। ईश्वर भजन (मन्दिर) के बिना संसार से मुक्ति मिलना असंभव है। जो मनुष्य ग्यारस के दिन उपवास नहीं करता उसे बारस के दिन तिल चबाने पड़ते हैं। तिल चबाना गुलामी करने का प्रतीकार्थ है -

''बरत करो रे अेकादशी, हरी भजन बिना मुकती किसी
ग्यारस नै ज्यौ ग्यारस न्हँ करै, बारस नै उं तिल चाबसी।''[2]

इस कार्य के द्वारा उसे अगले जन्म में कौवा बनना होगा तो उसे सदा कुवां-कुवां (कड़वे-बोल) बोलना होगा। गीत में आगे नारियों को शिक्षा दी गई हैं कि जो काना-फूसी करती हैं या छिपकर दीवार पर कान लगाकर सुनती हैं। दूसरों की बातें दीवार पर कान लगाकर सुनती है। वह इस कुकृत्य के फलस्वरूप छिपकली बनती हैं। अर्थात् उसे कीड़े-मकौड़े खाने को मिलते हैं। वह दीवार पर ही चिपकी फिरती रहती हैं-

''जिन करणी में होसी कागलो, कुरां-कुरां करतो फिरसी
बरत करो रे अेकादशी...
ओले-छाने बातां करसी, छाने बातां जो सुणसी
ई करणी सूं होय चिपकली, भीतां रे चिपकी वां फिरसी।''[3]

गीत में सास के लिए भी चेतना का स्वर है- जो सास बहुँओं के आगे ताले लगाकर रखती है। छुप-छुप कर सामान रखती हैं। वह इस कुकर्म के फलस्वरूप बिल्ली बनकर म्याऊं-म्याऊं करती रहती है। उसे भी बिल्ली जीवन रूप में छिपकर चोरी से दूध पीना व खाना पड़ता है। अर्थात् जैसी करनी वैसी भरनी -

''बहुआ आगै ताळा राखै, ओला-छानै जो करसी,
जीं जन्म में होई मिनखड़ी म्याऊं-म्याऊं करती वां फिरसी।''[4]

यदि कोई पुरुष आपस में झगड़ा करता है। वह परस्पर घर परिवार या समाज में आपसी लड़ाई झगड़ा या वैमनस्यता पैदा कराता है तो वह अपने इस दुष्कर्म के कारण कूकर (कुत्ता, गंडकड़ा) बनता है। वह जीवन भर भौं-भौं करता रहता है। अंत में कुत्ते की मौत मर जाता है-

''सगळां सूं जो झगड़ो करतो, राड़ करातो जो फिरसी,
ई करणी सूं होय गंड़कड़ो, भौं-भौं करतो वो फिरसो।''5

जो पुरुष दूसरे के खेत की बाड़ सरकाता है और अपने पैर फैलाता है अर्थात् दूसरे की भूमि पर अतिक्रमण करता है। उसका किसी भी प्रकार का धर्म नहीं लगता चाहे वह कितने ही पुण्य कर्म करे। इस दुष्कर्म के कारण उसे रेगिस्तान में भतुळिया (चक्रवात) बनना पड़ता है। उसे भीषण गर्मी में लू के थपेड़ों में झुलसना पड़ता है-

''कांकड़ काट पायतण बावै, वां नै धरम किया होसी
ई करणी सूं होय भतुळियो, भंटका उड़ातो वो फिरसो।''[7]

ऐसे पुरुष जो पनघट की पाल पर बैठता है और पनिहारियों को बुरी दृष्टि से देखता है। वह अपने इस घृणित और कुत्सित कार्य के लिए कोढ़ी बनता है। वह सम्पूर्ण जीवन कोढ़ खुजाते हुए ही मर जाता है -

''पिनघट जासी पाळ बैठसी, पिणहारियां तकतो-फिरतो
ई करणी सूं होय कोढ़ियो, कोढ़ खुजातो वो फिरसो।''[8]

आगे सामाजिक चेतना का सबसे बड़ा बिन्दु उजागर किया गया है कि व्यक्ति चाहे कितना ही जप-तप-तीरथ कर ले और अपने बड़े-बूढ़ों की सेवा न करे उसका जीवन निरर्थक ही जाता है। उसका किसी भी प्रकार का धर्म-कर्म व पुण्य नहीं लगता। इस प्रकार घर परिवार व समाज के हर नर-नारी को सामाजिक चेतना का आह्वान किया गया है-

''बूढ़ै बड़ैरां री सेवा नीं करसी, तीरथ जाता वै फिरसी
सुण लो कान खोल कै, वांनै धारम किया होसी।''[9]

कर्मफल का महत्त्व

लोकसमाज में मान्यता है कि चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के बाद पुण्य कर्मों के फलस्वरूप मानव का जन्म मिलता है। यह कर्मों की रेखा का प्रताप है। लोकगीत के वर्ण्य-विषय में कर्मों के अनुसार जीवन भर प्राप्त फलों को इस प्रकार भोगने की चेतना उजागर की है। सांवरे तू अपनी जननी (माँ) को दोष मत देना। तुझे जैसा भी जन्म के बाद कर्मफल मिला है वो तेरी पूर्वजन्म के किये सद्कर्मों व दुष्कर्मों का ही फल है। उदाहरण स्वरूप कहा है कि ''एक गाय ने चार बछड़ों को जन्म दिया है उनकी कर्मगति इस प्रकार है। पहला बछड़ा सांड है, जो सूर्य देवता के रथ को हांकता है। वह सृष्टि को उजाले से भर कर प्रकाशवान बनाता है। धरती को उष्मा देने, जल का वाष्पोत्सर्जन करके वर्षा करने, वृक्षों से प्राणवायु संचरित करने, दिन और रात का कारक, ऋतु परिवर्तन, दिशा-दिग्दर्शन में सहायक है। जब मानव सूर्य को जल अर्पित करते हैं तो इसे भी वह अर्ध्य चढ़ता है। अर्थात् सूर्य के इस सारथी को सर्वश्रेष्ठ कर्मों का फल प्राप्त हुआ है। लोकगीत में चेतना यही है कि हम भी इसी प्रकार सृष्टि के विकास के सौपानों में सहायक बनें ताकि समाज में आदरणीय बनें।''[10]

दूसरा बछड़ा शिव जी का नंदी (नांडियो) बना। यह धरती के दीन-दुखियों की पुकार व आर्तनाद अपने कान में सुनकर महादेव तक पहुँचाता है। यह धरती और कैलाश के बीच सूचना-वाहक (मैसेंजर) की महत्ती भूमिका निभाता है। लोक चेतना में यह परोपकारी भाव का विराट दिग्दर्शन है। पशु भी मानव पीड़ा को ईश्वर तक पहुँचाकर उसके कष्ट निवारण की याचना करता है, फिर हम तो मानव हैं। उसकी पीड़ा को दूर करने में सहायक बनना चाहिए।

तीसरा बछड़ा कृषक का हल में जुतने वाला बैल है जो खेत के हल में जुतता है। वह अन्न उपजाने में सहायक है। वह पशु-पक्षियों एवं जीव-जगत के पेट की भूख को मिटाने में सहायक है। इसमें भी वृहत लोक चेतना है कि जिस प्रकार बैल अपने कंधों पर भार-वहन कर सृष्टि की सुधानल को मिटाता है, हमें भी उसी प्रकार भूखे व अतृप्त लोगों की भूख मिटाने का भार मानव होने के नाते अपने कंधों पर लेना चाहिए। उपर्युक्त तीनों पशु स्वतंत्रता के प्रतीक हैं। सूर्य का सांड दिन में कार्यरत है। रात में उसे आराम मिल जाता है। शिव का नंदी मंदिर में भक्त गण आते हैं तब प्रातः से सायंकाल तक उनकी मनोकामनाएं सुनता है। रात में मंदिर के कपाट बंद होते ही उसे आराम मिल जाता है। किसान भी खेत में दिन में ही हल जोतता है। अतः रात में यह भी आराम करता है।

चौथे बैल की भाग्य की विड़म्बना देखिए। उसे तेली के यहाँ तेल की घाणी में जोता जाता है। उसकी आँखों पर पट्टी बाँधी जाती है। अर्थात् आँखें होते हुए भी अंधे जैसा जीवन यापन करना पड़ता है। उसे एक ही परिक्रमा में दिन-रात कठोर परिश्रम करना पड़ता है। बैल की गति अगर थोड़ा सुस्त हो जाए तो उसकी कोड़े से पिटाई होने लगती है। उसे जीवन में कभी आराम नहीं मिलता है। वह गुलामी का प्रतीक है। ऐसा जीवन उसे अपने किसी दुष्कर्म के फलस्वरूप ही भोगना पड़ता है। अतः मानव जीवन में सद्कर्म करने की शिक्षा दी गई है। यह लोक चेतना तो सजीव गो-माता के बछड़ों की है-

''सांवरा, मत दे मायड नै दोष, करमां री रेखा न्यारी-न्यारी
सांवरा, अेकगऊ रै बछड़ा चार, चारूं की करणी न्यारी-न्यारी
सांवरा, पैलो सूरजजी रो सांड, दूजो शिवजी रो नांदियो
सांवरा, अगलो हळ रै हेटै, चौथो तेला घाणी जुत्यो
सांवरा, मत दे गऊ नै दोष, करमां री रेखा न्यारी-न्यारी''[11]

अब निर्जीव माटी से बने बरतनों के माध्यम से भी लोकचेतना को अभिव्यक्त किया है। एक मिट्टी से चार बर्तन बने हैं। एक बरतन में दूध गर्म किया जाता है। दूसरे में दही जमाया जाता है। तीसरे बड़े भाँडे (मटके) में मक्खन निकाला जाता है। यदि इस तीसरे मटके से श्रीकृष्ण ने माखन निकाल कर खाया हो तो उसे परमात्मा का स्पर्श कितना पावन बना देगा। चौथा घड़ा अपशगुन का प्रतीक है जो अपने स्वजनों की जलती चिता के चारों

और परिक्रमा के बाद फोड़ा जाता है। अर्थात् ऐसे मिट्टी के अशुभ पात्र कहीं भी उपयोग में नहीं लाये जा सकते।

लोक में सामाजिक चेतना भी यही है। मानव समाजोपयोगी बने। उन्हीं तीन पात्रों की तरह जिसके दूध, दही, नवनीत हैं वही मानव जीवन श्रेष्ठ व सार्थक है। चौथा पात्र अनुपयोगी है। जब मिट्टी के पात्र भी अशुभ हैं तो मानव तो समाज का अभिन्न अंग है। हमें ऐसा नहीं बनना अन्यथा घर, परिवार, समाज व राष्ट्र उसे महत्त्वहीन समझेगा। वह महत्त्वहीनता का दंश सहता हुआ स्वयं ही समाप्त हो जायेगा। इसका दोष-कुंभकार (कुम्हार) को या प्रजापति ब्रह्मा को भी नहीं देना चाहिए क्योंकि यह व्यक्ति के स्वयं कर्मों का प्रतिफलन है -

''सांवरा, अेक माटी का बासण चार, चारूं की करणी न्यारी-न्यारी
सांवरा, पैलै में दूध तपाय, दूजै में जसोदा दही रै जमाती
सांवरा, अगलै सूं माखन खावे कन्हैया, चौथे फूटे मसाण,
सांवरा, मत दे कुंभारी नै दोष, करमां री रेखा न्यारी-न्यारी।''[12]

आगे मानव का उदाहरण है-एक माता ने चार पुत्रों को जन्म दिया। चारों को अपने कर्मों का फल इस प्रकार मिला। पहले पुत्र के चार पुत्र हुए। दूसरे पुत्र के एक पुत्री राधा का जन्म हुआ। जिसके प्यार में जगतनियंता श्रीकृष्ण भी बंध गये। तीसरे पुत्र की पत्नी मर जाने से उसे विधुर का जीवन जीना पड़ा। चौथा अविवाहित ही रह गया। उसके वंश का नाश हो गया। इसमें उसकी माता का दोष नहीं है। यह उनके कर्मों का ही फल है -

''सांवरा, अेक माता रै पूत चार, चारूं की करणी न्यारी-न्यारी
सांवरा, पैलै नै जन्म्यां पूत चार, दूजै राधिकां प्रीत री खदान
सांवरा, तीजै री मरगी लुगांई, चौथैड़ा रोवै पूत बिना दन-रात
सांवरा, मत दे मायड नै दोष, चारूं की करणी न्यारी-न्यारी।''[13]

कपास से वस्त्र बनते हैं। एक ही कपास के वृक्ष से चार कपड़े बने पहला वस्त्र तिरंगा। यह राष्ट्रीय ध्वज जग में सम्मान की आन-बान और शान का प्रतीक है। हर स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस पर इसे फहराया जाता है। शहीदों को इसी को ओढ़ा कर सम्मानित किया जाता है। दूसरा-वस्त्र शहीद की वर्दी के बनाने में काम आता है, जिसे युगों-युगों तक संग्रहालय में संरक्षित रखते हैं। तीसरा-ईश्वर के वस्त्र जिनसे देव प्रतिमाएँ सुशोभित होती हैं। चौथा-वैश्या का चादर जो कीमती होने पर भी अमर्यादित, दागदार, कुत्सित और हेय दृष्टि से देखा जाता है। लोकचेतना मानव के व्यक्तित्व को उज्ज्वल चरित्र बनाने को सावचेत करती है। हेय व दागदार नहीं -

''सांवरा, अेक कपास चीर चार, चारूं की करणी न्यारी-न्यारी
सांवरा, पैलै रे तिरंगो फहराय, दूजी शहीदां री वर्दी,
सांवरा, अगलो देवां रो चीर, चौथैड़ो वैश्या रो चादर
सांवरा, मत दे रूंखड़ा नै दोष, चारूं की करणी न्यारी-न्यारी''[14]

निर्वेद से विश्वमंगल मनोकामना

मृत्यु के तेरह दिनों में मानव का आत्मबोध जागृत हो जाता है। यह समझा जाता है कि मरने के बाद कुछ भी साथ नहीं जायेगा। उजली से जीव का मोक्ष माना जाता है। इन लोकगीतों में मंगलकामना की भावना की प्रधान विशेषता है। 'ग्रामीण लोकगीतकार संसार का कल्याण चाहता है। विश्व के मंगल की इच्छा करता है। मानवतावादी दृष्टिकोण होता है। उसकी यही उत्कर्ष अभिलाषा रहती है कि घर, परिवार और संसार में सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो। लोकसंस्कृति व लोकगीतों में यही विराट भाव देखा जाता है- "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माँ कश्चित् दुःख भाग्भवेत।" परम्परागत तैरवें से मांगलिक कार्यक्रमों के लोकगीत राजस्थान के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग तरीके से गाये जाते हैं।

विभागाध्यक्ष, (हिंदी विभाग)
राजकीय वाणिज्य कन्या महाविद्यालय, कोटा,
राजस्थान- 324006, मो. 0 946282 99006

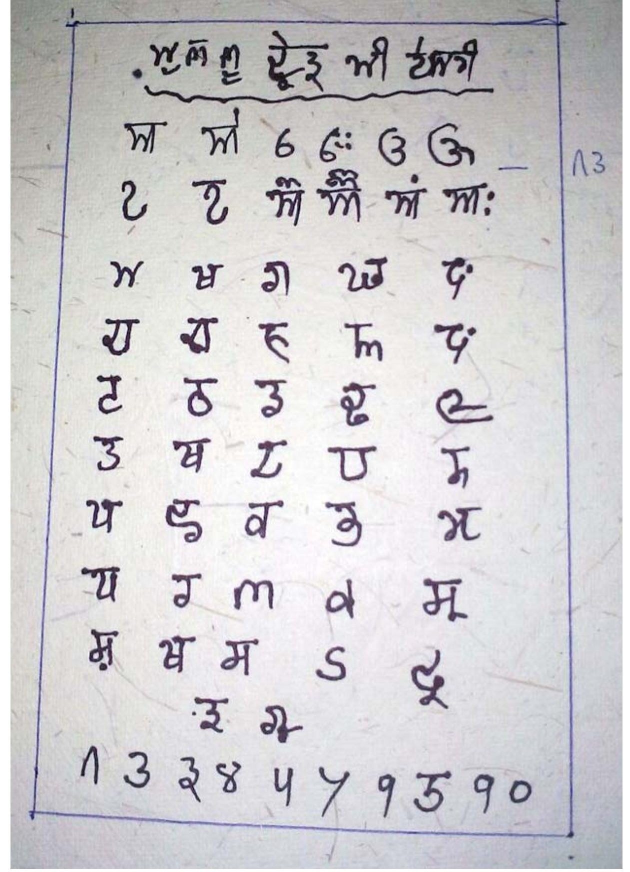
संदर्भ ग्रंथ :

1 कानूनी राजस्थान जंत्री 2017- प्रधान संपादक, प. मनोहर लाल औदिच्य।
2 लाखीणा लोकगीत- संकलन- श्रीमती पुष्पा देवी, संपादक डॉ. किरण नाहटा, गीत स. 422 पृ. स. 302।
3 वहीं
4 वहीं
5 वहीं
6 वहीं
7 वहीं
8 वहीं
9 वहीं
10 हाडौती लोकगीतों में संस्कृति- डॉ. लीला मोदी, पृ. स. 242।
11 हाड़ौती लोकगीत- संकलन- डॉ. लीला मोदी, संपादक नरेन्द्र मोदी, गीत स. 431 पृ. स. 312।
13 वहीं
14 वहीं
15 वहीं
16 वहीं
17 वहीं

आलेख

हिमाचल प्रदेश की प्राचीन लिपि टांकरी दशा और दिशा

◆ हरिकृष्ण मुरारी



भारतवर्ष का इतिहास बताता है कि लगभग दो सौ वर्षों तक हमारा देश अंग्रेजों के अधीन रहा। ब्रिटिश शासनकाल से पूर्व और उनके शासनकाल में भी वर्तमान भारत छोटे-छोटे राज्यों-रियासतों में विभाजित था। अंग्रजों की एक ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में व्यापार करने के बहाने आई थी परन्तु उसने अपनी कूटनीति के द्वारा कुछ ही वर्षों में समस्त भारत के राजाओं को अपने अधीन कर लिया था। कई देशभक्त राजाओं ने उनसे विद्रोह भी किया परन्तु उन राजाओं के गद्दार कारकुन्नों ने अंग्रेजों का साथ देकर युद्ध में हार दिलवाई या उनकी हत्या करके या करवाकर स्वयं अंग्रेजों के अधीन रहकर उन रियासतों पर राज करते रहे। अपने ही लोगों ने अपने ही लोगों के साथ गद्दारी करके अंग्रेजी शासन को सशक्त बनवाया था। परन्तु अंग्रेजों के भारत में आने से पूर्व भारत के इन छोटे-बड़े राज्यों में अपनी-अपनी भाषा थी और उन भाषाओं को व्यक्त करने में अपनी-अपनी लिपियां होती थीं। जैसे बंगाल में बांगला, महाराष्ट्र में मराठी, गुजरात में गुजराती, कर्नाटक में कन्नड़, उड़ीसा में उड़िया, पंजाब में पंजाबी और वर्तमान हिमाचल प्रदेश की उन सभी छोटी-छोटी रियासतों में टांकुरी लिपि को यहां की अलग-अलग बोलियों में लिखा जाता था। आजादी से पूर्व हिमाचल प्रदेश छोटी-छोटी रियासतों में विभाजित था, जैसे चम्बा, कांगड़ा, मण्डी, सुकेत, बिलासपुर, हमीरपुर, नादौन, नूरपुर, बुशैहर आदि न जाने कितनी रियासतें थीं और कितने ही राजे व राणे थे। उस समय हमारी प्राचीन वैदिक संस्कृत भाषा की लिपि देवनागरी थी परन्तु लोक बोलियों को टोकरी लिपि में लिखा जाता था। इस लिपि को टकरी, टाकरी, टकरी और टांकरी भी कहते थे। इसके द्वारा समस्त प्रकार का पत्र-व्यवहार, व्यापारिक लेखा-जोखा, राजस्व विभाग का लेखन, ज्योतिष संबंधित लेखन, तन्त्र-मंत्र, जड़ी बूटियों के बारे में लेखन तथा अन्य साहित्य सृजन भी इसी टांकरी लिपि में हुआ करता था। उस समय को टांकरी लिपि का स्वर्णिम काल भी कह सकते हैं। व्यापार के क्षेत्र में इसका प्रचलन कांगड़ा, कुल्लू और चम्बा आदि सारे हिमाचल प्रदेश के अतिरिक्त लाहौर, रावल-पिण्डी, स्यालकोट वर्तमान पाकिस्तान में भी था और यह सारा लेखन कार्य इसी लिपि में होता था। इस लिपि में किए गए सभी कार्य अंग्रेजों की भारत में घुसपैठ के बाद भी काफी समय तक होते रहे हैं। उस समय में अनेक साहित्य रचनाएँ भी इसी लिपि में हुई थीं। जिनमें से कुछेक साहित्य आज भी जिला कुल्लू के विद्वान स्वः श्री खूबराम जी के पास, भूरिसिंह संग्रहालय चम्बा,

राज्य संग्रहालय, शिमला, हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला, तथा एकीकृत हिमालयन संस्थान शिमला में सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त इसके लिए समस्त हिमाचल प्रदेश में इसके लिए खोज की जाए तो इस लिपि में लिखा हुआ काफी कुछ उपलब्ध हो सकता।

15 अगस्त 1947 को जब भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ, उस समय भी यहां छोटे-छोटे राज्य ही थे। तब यहां की सभी रियासतों में टाकरी लिपि का प्रयोग भी होता था। 25 जनवरी 1971 में हिमाचल प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ था। पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त होने के बाद पुराना हिमाचल (Old Himachal Pradesh) और जो क्षेत्र प्रथम नवंबर 1966 को हिमाचल में मिलाए गए, वह पहले पंजाब प्रान्त के भाग थे उसे नया हिमाचल प्रदेश (New Himachal Pradesh) कहा गया। परन्तु इस समय तक इस टाकरी लिपि का प्रचलन लगभग समाप्त हो चुका था।

वर्ष 1986 में हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला द्वारा राज्य संग्रहालय चौड़ा मैदान शिमला में टाकरी के उत्थान हेतु एक 15 दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें प्रदेश के 15 लोगों ने इस लिपि का बेसिक प्रशिक्षण तत्कालीन संग्रहालय अध्यक्षा स्वः श्रीमती डा. रीता शर्मा से प्राप्त किया था। इनमें से 7-8 लोग हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी तथा भाषा एवं संस्कृत विभाग शिमला से थे, जिनमें से कुछ जिला भाषा अधिकारी, कुछ तकनीकी अधिकारी आदि थे। कुछ विभिन्न विद्यालयों के प्रवक्ता थे और कांगड़ा से मुझे इस प्रशिक्षण में भाग लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। तब यह भी बताया गया था कि शीघ्र ही इसके और भी प्रशिक्षण होंगे और इस लिपि को जीवंत करके प्रचलन में भी उतारा जाएगा, परंतु ऐसा नहीं हुआ। इसके उपरांत लगभग 24-25 वर्षों तक ऐसा कोई प्रशिक्षण हुआ। मैंने ही इस लिपि को जीवन्त रखा हुआ है। इसी संदर्भ में मैंने वर्ष 2007 को एक परियोजना संस्कृति मंत्रालय भारत

हिमाचल की चार भाषाएं लुप्त होने के कगार पर

यूनेस्को ने हाल ही में जारी अपनी रिपोर्ट में देश की 42 भाषाओं को लुप्त होने की श्रेणी में रखा है। इनमें से चार भाषाएं - सिरमौरी, बघाटी, हिंडूरी तथा पंगवाली हिमाचल की हैं। यूनेस्को ने इन भाषाओं को बचाने के लिए प्रयास करने को कहा है। यूनेस्को के भाषा के लुप्त होने के मानदंडों में जब इसको बोलने वालों की संख्या दस हजार व्यक्तियों से कम हो जाती है तथा इसे लुप्त तब माना जाता है जब कोई भी व्यक्ति इसे बोलता या याद नहीं करता है।

सिरमौरी भाषा सिरमौर के मुख्यतः गिरिपार आर व पार के क्षेत्र में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त यह सिरमौर के साथ लगते क्षेत्र महासू में भी बोली जाती है। बघाटी बोली सोलन जनपद में बोली जाती है। हिंडूरी सोलन जिले के नालागढ़ क्षेत्र तथा बिलासपुर के साथ लगते क्षेत्रों में बोली जाती है। पंगवाली चंबा जिले की पांगी घाटी में बोली जाती है।

भारत में अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत के इन छोटे-बड़े राज्यों में अपनी-अपनी भाषा थी और उन भाषाओं को व्यक्त करने में अपनी-अपनी लिपियां होती थीं। जैसे बंगाल में बांगला, महाराष्ट्र में मराठी, गुजरात में गुजराती, कर्नाटक में कन्नड़, उड़ीसा में उड़िया, पंजाब में पंजाबी और वर्तमान हिमाचल प्रदेश की उन सभी छोटी-छोटी रियासतों में टाकुरी लिपि को यहां की अलग-अलग बोलियों में लिखा जाता था। आजादी से पूर्व हिमाचल प्रदेश छोटी-छोटी रियासतों में विभाजित था, जैसे चम्बा, कांगड़ा, मण्डी, सुकेत, बिलासपुर, हमीरपुर, नादौन, नूरपुर, बुशैहर आदि न जाने कितनी रियासतें थीं और कितने ही राजे व राणे थे। उस समय हमारी प्राचीन वैदिक संस्कृत भाषा की लिपि देवनागरी थी परन्तु लोक बोलियों को टोकरी लिपि में लिखा जाता था। इस लिपि को टाकरी, टकरी और टांकरी भी कहते थे। इसके द्वारा समस्त प्रकार का पत्र-व्यवहार, व्यापारिक लेखा-जोखा, राजस्व विभाग का लेखन, ज्योतिष संबंधित लेखन, तन्त्र-मंत्र, जड़ी बूटियों के बारे में लेखन तथा अन्य साहित्य सृजन भी इसी टांकरी लिपि में हुआ करता था। उस समय को टांकरी लिपि का स्वर्णिम काल भी कह सकते हैं। व्यापार के क्षेत्र में इसका प्रचलन कांगड़ा, कुल्लू और चम्बा आदि सारे हिमाचल प्रदेश के अतिरिक्त लाहौर, रावल-पिण्डी, स्यालकोट वर्तमान पाकिस्तान में भी था और यह सारा लेखन कार्य इसी लिपि में होता था। इस लिपि में किए गए सभी कार्य अंग्रेजों की भारत में घुसपैठ के बाद भी काफी समय तक होते रहे हैं। उस समय में अनेक साहित्य रचनाएँ भी इसी लिपि में हुई थीं। जिनमें से कुछेक साहित्य आज भी जिला कुल्लू के विद्वान स्वः श्री खूबराम जी के पास, भूरिसिंह संग्रहालय, चम्बा, राज्य संग्रहालय, शिमला, हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला, तथा एकीकृत हिमालयन संस्थान शिमला में सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त इसके लिए समस्त हिमाचल प्रदेश में इसके लिए खोज की जाए तो इस लिपि में लिखा हुआ काफी कुछ उपलब्ध हो सकता।

सरकार को भेजी, जो वर्ष 2008 के अंतिम महीनों अक्तूबर-नवंबर में स्वीकृत हुई जिसे 2009 के माह मार्च में 12 प्रशिक्षणार्थियों की कार्यशाला का आयोजन स्व. डा. प्रेम भारद्वाज के मार्गदर्शन में नगरोटा बगवां के एक सामुदायिक भवन (पाठशाला) में किया गया। परियोजना में मात्र 10 लोगों की ही स्वीकृति थी, मगर इसमें 12 लोगों को प्रशिक्षण दिया।

टांकरी लिपि के संदर्भ में 21 जनवरी 2009 को दैनिक समाचार पत्र दिव्य हिमाचल में समाचार छपा था, " सांचा विद्या पर शोध करेगा एकीकृत संस्थान, निदेशक विद्या शारदा ने उठाया बीड़ा, टांकरी विद्वानों की ली जाएगी मदद... ...." मुनीष बन्याल।

शिमला - सांचा यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र युक्त वंश दर वंश परम्परा के आधार पर ब्राह्मणों द्वारा पाबूची, चंदवाणी, पंडवाणी लिपियों में लिखित ग्रन्थों में बटोरी गई विद्या को विश्वविद्यालय का एकीकृत हिमालयन संस्थान संरक्षण प्रदान करेगा। सांचा यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र युक्त वंश दर वंश परम्परा के आधर पर ब्राह्मणों द्वारा लिखित महत्वपूर्ण ग्रन्थ : पाबुची, चंदवाणी, पंडवाणी लिपियों में हैं। ये ग्रन्थ हिमाचल के कई जिलों जैसे कि शिमला, सिरमौर और सोलन के कुछ क्षेत्रों में विद्यमान हैं। ये पांडुलिपियां इन क्षेत्रों में काल क्रमानुसार स्थापित गुरुकुलों में बनती आई हैं। इन ग्रन्थों में काल विभाजन, मुहूर्त विचार, ग्रह-नक्षत्रों की गति का निर्धारण आदि महत्वपूर्ण विषयों पर विचार किया जाता रहा है। इसके अतिरिक्त सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, व्रत, पर्व-त्योहार, वर्षफल, नक्षत्र, ग्रह-संचार तथा उनके प्रभावों की गणना भी की जाती रही है। इसके अतिरिक्त भी विभिन्न प्रकार की जानकारी इन ग्रन्थों में भरी पड़ी है जो कि शोध एवं अध्ययन के लिए विशेष महत्व रखती हैं क्योंकि इन पांडुलिपियों के जानकार धीरे-धीरे समाप्ति की ओर हैं। इस शोध के दौरान पांडुलिपियों का व्यक्ति और गांव के आधार पर सूचीकरण तथा विषय-वस्तु का अध्ययन किया जाएगा। सूचीकरण के लिए विशेषज्ञ एवं निपुण विद्वानों की सेवाएं ली जाएंगी।'

संस्थान के निदेशक प्रो. विद्याशारदा का मानना है कि महाभारत काल से इस विद्या का सृजन माना जाता है। पंडवाणी लिपि में तैयार किए गए काव्य की उत्पत्ति बड़ग ठियोग, चंदवाणी लिपि में तैयार किए गए ग्रन्थों की उत्पत्ति चांदना धार शिमला तथा पाबुची लिपि में तैयार किए गए ग्रन्थ की उत्पत्ति खड़कान (सिरमौर) से मानी जाती है। उनका मानना है कि इस शोध कार्य में टांकरी भाषा के विद्वानों, अंक गणना व ज्योतिष विज्ञानियों की सेवाएं भी ली जाएंगी। यह पांडुलिपियां टांकरी लिपि में लिखी गई हैं, जिसके लिए टांकरी भाषा के विद्वानों का होना बहुत जरूरी है। उनका मानना है कि इस शोध कार्य से इस पुराने ज्ञान को अगली पीढ़ी तक पहुंचाने के लिए सहायता मिलेगी।

वर्ष 2011, माह मई में हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला द्वारा पौराणिक लिपियों पर एक 25 दिन की कार्यशाला राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन नई दिल्ली के सहयोग से शिमला के गेयटी थियेटर में आयोजित की गई। जिसमें हिमाचल प्रदेश विश्व विद्यालय शिमला के एम. फिल और पी. एच. डी. के 30 विद्यार्थियों ने पाबुची, चंदवाणी, पण्डवाणी, भोटी तथा टांकरी का प्रशिक्षण लिया। इस कार्यशाला में मुझे भी 10 दिनों तक टांकरी लिपि का प्रशिक्षण देने का सौभाग्य

पंगवाली भाषा के संरक्षण में पंगवाली पत्रिका का योगदान

किसी भी भाषा के लुप्त होने का मुख्य कारण है कि लोग उसे बोलना बंद कर देते हैं। पूर्व भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी श्री के.आर. भारती, जो वर्ष 1986 से 1989 तक पांगी के उपमंडलीय अधिकारी पद पर रहे, के अनुसार पांगी एक छोटा सा सुंदर स्थल है तथा यहा आबादी दूर-दूर बसी है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार वहां की आबादी 17,500 है। इस जनसंख्या में से कुछ ही लोगों द्वारा पंगवाली बोली जाती है। वर्तमान में यहां से अधिकांश जनसंख्या बेहतर भविष्य के लिए पलायन कर गई है। यहां के निवासी चंबा, कुल्लू तथा जम्मू क्षेत्र में बस गए हैं। इनके बच्चों ने इनके नए निवास स्थान के क्षेत्रों के भाषा, संस्कृति को अपना लिया है। स्कूलों में अंग्रेजी भाषा का रुझान भी पुरातन भाषाओं के लुप्त होने का मुख्य कारण बनता जा रहा है।

बघाटी बोली के संरक्षण में ईश्वरी दास शर्मा के प्रयास

कोई भी बोली तब तक जिंदा नहीं रह सकती जब तक कि इसे लिखित रूप में संरक्षित न किया जाए। बघाटी भाषा के संरक्षण में स्वर्गीय डॉ. ईश्वरी दत्त शर्मा के प्रयास सराहनीय हैं। वे राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में व्याकरण के प्रवक्ता पद पर रहे और उन्होंने बघाटी भाषा में पी.एच.डी. की उपाधि वर्ष 1979 में पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से प्राप्त की। उनकी यह उपाधि बघाटी भाषा पर पहला शोध कार्य था। वे हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा पहाड़ी शब्द कोश के सह-लेखक भी थे।

सोलन तथा नालागढ़ क्षेत्रों में बघाटी तथा हिंडूरी के लुप्त होने का कारण इन क्षेत्रों में बाहर से आए लोगों का बसना, आधुनिक संस्कृति की ओर बढ़ता रुझान माना जा रहा है। सोलन में बघाटी (बारह घाटी) सामाजिक संस्था भी बघाटी बोली के संरक्षण में प्रयासरत है।

प्राप्त हुआ था। इस प्रशिक्षण के मध्य, अकादमी ने महाराजा संसार चन्द की वंशावली जो टाकरी में लिखी हुई पांडुलिपि थी, का देवनागरी में अनुवाद करवाया था। पहले उस पांडुलिपि का अनुवाद मैंने स्वयं किया तथा बाद में प्रशिक्षणार्थियों को भी अनुवाद करना सिखाया। इसके साथ ही अकादमी ने भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार-कवि स्वः हरिवंशराय बच्चन जी की अमर कृति मधुशाला का टाकरी लिपि में अनुवाद भी प्रशिक्षणार्थियों से करवाया था।

वर्ष 2015 में स्वारघाट (जिला विलासपुर) से वहां के पुजारी परिवार से चंद्रमणी गोस्वामी बिलासपुर के राजा विजय चन्द द्वारा प्रदत्त टांकरी के दस्तावेज को पढ़वाने हेतु हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला के कार्यालय में पहुंचा तो अकादमी ने उसे सीधा मेरे पास भेज दिया जिसका मैंने अनुवाद करके उसे सौंप दिया। वह दस्तावेज राजा विजय चन्द द्वारा ठाकुरद्वारा के नाम से गोस्वामी परिवार को दी गई भूमि इत्यादि का था तथा वहां उसके दो भाइयों ने अपने मकान बना लिए थे परंतु जब चन्द्रमणी अपना मकान बनाने लगा तो गांव वालों ने उस पर रोक लगवा दी और गोस्वामी परिवार के पास उस भूमि से संबंधित केवल वही दस्तावेज था। जिसे टाकरी में सं. 1737 हाड़ प्र० 10 को लिखा गया था। मैंने उसका टाकरी से देवनागरी में 16 जुलाई 2015 को अनुवाद करके दिया । 18 जलाई 2015 को कोर्ट ने उस अनुवाद के आधार पर स्टे समाप्त कर दी और फिर चन्द्रमणी ने मकान बना लिया।

अभी हाल ही में 25 अगस्त 2017 से 14 सितम्बर 2017 तक राष्ट्रीय पांडुलिपि मिशन नई दिल्ली के सहयोग से विभिन्न लिपियों पर एक कार्यशाला का आयोजन राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान बलाहर परागपुर द्वारा किया गया जिसमें देश के विभिन्न राज्यों बंगाल, कर्नाटक, उड़ीसा, महाराष्ट्र, विहार, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और शिमला हिमाचल प्रदेश से 40 पी.एच.डी के विद्यार्थियों ने भाग लिया जिसमें दिनांक 26 अगस्त से 30 अगस्त 2017 तक मैंने उन्हें हिमाचल प्रदेश की इस प्राचीन लिपि टाकरी को लिखना तथा पढ़ना सिखाया। इस प्रकार आज तक इस लिपि को जीवन्त रखने में किए जा रहे प्रयास कम ही नज़र आते हैं। आज इसके उत्थान हेतु इसकी इस प्रकार विलुप्त होती दशा को, सही दिशा की राह पर ले जाने की अत्यन्त आवश्यकता है।

चिन्तन कुटीर, रैत, गांव व डाकघर रैत,
तहसील शाहपुर, जिला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश-176208
मो. 98165 16978

भाषाओं के संरक्षण में सरकार के प्रयास

प्रदेश भाषा एवं संस्कृति विभाग ने हिमाचली बोलियों पर गहराए संकट के बादलों के मद्देनज़र इनके संरक्षण एवं संवर्द्धन का कार्य किया है। भाषा कला एवं संस्कृति विभाग की निदेशक श्रीमती रूपाली ठाकुर के अनुसार हिमाचल की बोलियों पर यूनेस्को की रिपोर्ट संस्कृति के लिए एक चिंता का विषय है।

विभाग द्वारा मार्च माह में शिमला में पहाड़ी सप्ताह का आयोजन किया गया। इसमें प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के पहाड़ी शोधकर्ताओं ने अपने पत्र पढ़े। इसके अलावा हिमाचल प्रदेश लोक संपर्क विभाग का साप्ताहिक पत्र 'गिरिराज साप्ताहिक' पिछले तीन दशकों से पहाड़ी भाषा के संरक्षण के लिए नियमित विशिष्ट पन्ने प्रकाशित कर अपना अविस्मरणीय योगदान दे रहा है। भाषा अकादमी की पत्रिका 'हिमवंती' भी इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रही है।

जिला स्तर पर भाषा विभाग पहाड़ी भाषा की संगोष्ठियों का आयोजन भी कर रहा है।

सिरमौरी भाषा को संरक्षित रखने में विद्यानंद सरैक का अनवरत योगदान

हिमाचल प्रदेश में कुछ मीलों उपरांत बोली बदल जाती है। हालांकि सरकारी काम-काज की भाषा हिंदी है फिर भी राज्य में 30 से अधिक बोलियां बोली जाती हैं। सिरमौर भाषा के संरक्षण में अनेक सांस्कृतिक संस्थान भी आगे आए हैं। इनमें पहाड़ी साहित्यकार एवं लोक कलाकार श्री विद्यानंद सरैक का नाम सर्वोपरि है। वे अपनी ओर से इसके संरक्षण के लिए कार्यरत हैं।

78 वर्ष श्री सरैक ने अपना संपूर्ण जीवन सिरमौरी संस्कृति, भाषा के संरक्षण के लिए लगाया है। इस वर्ष जनवरी माह में उन्हें लोक संस्कृति के संरक्षण के लिए राष्ट्रपति श्री राम नाथ कोविंद द्वारा सम्मानित भी किया गया है।

उन्होंने राष्ट्र कवि रवींद्र नाथ टैगोर की 20 कविताओं तथा रामायण का सिरमौरी में अनुवार किया है। इसके अलावा अनेक किताबें और लोकगीत भी लिखे हैं। उन्होंने सिरमौरी के दो पुरातन नृत्य भरालटू तथा सिंगटू को संरक्षित करने का कार्य भी किया है।

सिरमौरी भाषा के संरक्षण में 10 स्वयंसेवी संगठन कार्यरत हैं। इनमें चूड़ेश्वर लोक नृत्य मंडल, राजगढ़ तथा साधना कला मंच प्रमुख हैं।

आलेख

मुंशी प्रेमचंद और दलित विमर्श

◆ डॉ. सुनीता देवी

इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ में ही विमर्श के दौर में 'दलित विमर्श' अधिकांश साहित्यकारों का प्रिय विषय बन गया। आज के दौर में दलित सबसे अधिक चर्चा में रहा है। किन्तु आज दलित विमर्श को लेकर चर्चा में उतरे रचनाकारों को पता होना चाहिए कि इस चर्चा की नींव वर्षों पहले मुंशी प्रेमचन्द जी ने रख दी थी। प्रेमचन्द जी एक ऐसे प्रगतिशील लेखक थे, जिन्होंने नायक के परम्परागत मानदण्डों को खण्डित कर एक आम आदमी को नायक का दर्जा दिया है। उन्होंने प्रसंगानुसार दलितों को अपने साहित्य में स्थान दिया। उनके अधिकांश पात्र दलित वर्ग से सम्बन्धित हैं। दलित अर्थात 'मसला', 'कुचला', या 'रौंदा' हुआ होता है। समकालीन युग में 'दलित विमर्श' साहित्य के क्षेत्र में एक बहुचर्चित मुद्दा रहा है। प्रेमचन्द की रचनाओं का दलित विमर्श के सन्दर्भ में 'मूल्यांकन करने से पूर्व उस समय की दलित समस्याओं पर राजनीतिज्ञों की सोच, सामाजिक मान्यताओं, विद्वानों लेखकों की धारणाओं से सम्बन्धित जानकारी आवश्यक है। क्योंकि उसी समय स्वतन्त्रता आन्दोलन, नवजागरण, आर्य समाज, ब्रह्म समाज, हिन्दू महासभा, गांधी जी, भीमराव अम्बेडकर आदि के आन्दोलन अपने शिखर पर थे। हिन्दी साहित्य में यही काल छायावाद के नाम से जाना जाता है। प्रेमचन्द का समूचा रचना-कर्म इसी दौर का है। यह काल गहरी उथल-पुथल से भरा हुआ था। इसी समय डॉ अम्बेडकर ने मूक दलितों को वाणी दी थी। हजारों साल के शोषण-दमन और सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध दलितों ने अपनी आवाज उठाई थी। किन्तु दलितों के इस मुक्ति-संघर्ष को हिन्दू अलगाववादी नजरिये से देख रहे थे। लाला लाजपतराय जैसे नेता भी दलित-आन्दोलन को सन्देह की दृष्टि से देख रहे थे। उनका कहना था, "नौकरशाही की सहानुभूति के पात्र के रूप में अछूत एक नई खोज हैं... भारतीयों की स्वराज-कामना के विरुद्ध एक हथियार के रूप में अछूत कितने बहुमूल्य हैं।" इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि यह विरोध कोई नया नहीं है। दलितों ने जब भी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया उन्हें इसी दृष्टि से देखा गया और आरोपित किया गया। इसीलिए दलित इस समाज में जानवरों से भी बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर रहा है।

प्रेमचन्द युग में दलितों के प्रति यही दृष्टिकोण था जिसका सीधा प्रभाव उनकी साहित्यिक रचनाओं में देखा जा सकता है। एक संपादक की हैसियत से प्रेमचन्द ने अपने मासिक पत्र 'हंस', साप्ताहिक 'जागरण' में दलित समस्याओं पर अनेक टिप्पणियाँ लिखीं। पृथक निर्वाचन को लेकर गांधी जी जब आमरण अनशन पर बैठ गये थे वे दलित वर्ग को अलग सुविधाएं देने के खिलाफ थे। उनका मानना था कि यदि दलितों को अलग सुविधाएं प्रदान की गई तो समाज (हिन्दू धर्म) में फूट पड़ जाएगी। इन विपरीत परिस्थितियों में भी प्रेमचन्द जी ने अपनी लेखनी चलाई। लेकिन गांधी जी और मुंशी प्रेमचन्द की विचारधारा में समानता थी। प्रेमचन्द जी भी दलितों को नारकीय जीवन जीते हुए, प्रताड़ना सहते हुए, अपमान की हीनता से भरी जिन्दगी को 'राष्ट्रीय धर्म' के प्रति आस्था रखने का उपदेश दे रहे थे। जबकि दलितों के पास न रहने को घर थे, न जमीन, न धर्म ही उनका था। दलित आन्दोलन को वे साम्प्रदयिक कह रहे थे। पृथक निर्वाचन पर 22 अगस्त, 1932 के 'जागरण' में प्रेमचन्द की टिप्पणी देखिए, 'साम्प्रदायिक भेद की नीति ही आपत्तिजनक है। गवर्नमेंट भारत को राष्ट्र नहीं समझती है। हम अपने व्यवहार में उसे ऐसा समझने का अवसर ही नहीं दे रहे है। वह तो भारत को सम्प्रदायों की दृष्टि से देखती है। अतएव साम्प्रदायिक मताधिकार के लिए हम इतने इच्छुक हों, यह तो गवर्नमेंट की दृष्टि का समर्थन है।" प्रेमचन्द जी अपनी लेखनी के प्रारम्भिक दौर में आर्य समाज से प्रभावित थे, फिर गांधीवादी विचार का प्रभाव रहा और अन्तिम समय में यथार्थवादी एवं प्रगतिशील विचार धारा से प्रभावित रहे। इन्होंने अपने दलित विषयक लेखन में वर्ण व्यवस्था से उपजी शोषण-दमन की नीति की जगह आर्थिक व्यवस्था पर ज्यादा दृष्टिपात किया। प्रेमचन्द की सहानुभूति किसान वर्ग के साथ अधिक थी दलित वर्ग के साथ कम दिखाई पड़ती है क्योंकि आदर्शवादी काल में गांधी जी का प्रभाव। 'प्रेमाश्रम' से लेकर 'गोदान' तक की सृजन-यात्रा में उनकी विचार धारा में, रचना दृष्टि में जो भी परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं वे सहसा घटित नहीं हुए हैं। उनकी रचनाशीलता उन्हें वर्ग-विषमता की इच्छापूर्ति वाले आदर्श समाधान के त्याग और सत्य के साक्षात्कार की ओर अभिमुख कर रही थी।

प्रेमचन्द के रंगभूमि का सूरदास दलित वर्ग से सम्बन्ध रखता है लेकिन 'रंगभूमि' की असली अन्तर्वस्तु अछूतों की समस्या पर केन्द्रित नहीं है। स्पष्ट तौर पर 'रंगभूमि' का नायक एक किसान है, उसके पास जमीन है। हाँ, जाति से चमार है। उसकी पूरी लड़ाई में किसान की जमीन की लड़ाई है-यह लड़ाई एक बहुत ही व्यंजनात्मक प्रतीक है। किसान न तो अपनी जमीन बेचना चाहता है न कि ही पूंजीपति का कारखाना खड़ा करवाना चाहता है। आज का पाठक जब 'रंगभूमि ' की विषयवस्तु की अन्तर्यात्रा करता है तो पाता है कि 'रंगभूमि' की असली समस्या दलित समस्या या दलितोद्धार की समस्या या दलित चेतना की समस्या नहीं है। लेकिन समस्या किसान के पास जो जमीन है उस पर लगी पूँजीवाद की निगाह को लेकर है। इसलिए भैरों के साथ सूरदास का भजन-कीर्तन ग्रामीण समाज की सद्‌अनुभूति का हिस्सा भर है। पाँडेपुर भारत का एक औसत गाँव है और जात-पात के विचारों में एकदम खुला उतरी भारत का गाँव जिसका ढांचा दक्षिण भारत के गांव से भिन्न है। दक्षिण भारत के गांव में दलितों की हालत बेहद चिंताजनक थी और उनके साथ अमानवीयता का पीड़ादायक इतिहास रहा है। उत्तरी भारत में दलितों की हालत इतनी बदतर नहीं थी इसलिए पांडेपुर गांव का व्यवहार खुला और भिन्न था। इस गाँव में छूत-अछूत एक साथ बैठकर भजन रमते हैं! लेकिन गाँव की जमीन जायदाद को लेकर सबकी एक राय है जिसे ऊंच-नीच वाला जातिवाद अलग नहीं कर पाता। इस प्रकार माना जाता है कि उपन्यास का एक दुष्ट पात्र भैरों ताड़ी की दुकान चलाता है और मन्दिर भी जाता है सूरदास की तरह। इसी मन्दिर में पाँचों प्रमुख पात्र एक-दूसरे पर जाति को लेकर व्यंग्य-वाणों का महाभारत रचते हैं- ठाकुरदीन- मालूम नहीं, हाथ-पैर भी धोए हैं या वहां सीधे ठाकुर जी के मन्दिर में चले आऐ। अब सफाई तो कहीं रह ही नहीं गयी।

भैरों- क्या मेरी देह मैं ताड़ी पुती हुई है?

ठाकुरदीन- भगवान के दरवार में इस तरह नहीं आना चाहिए। जात चाहे ऊँची हो या नीची, पर सफाई चाहिए जरूरी।

भैरों- तुम यहाँ नित्य नहाकर आते हो?

ठाकुरदीन- पान बेचना कोई नीच काम नहीं है।

भैरों- जैसे पान वैसे ताड़ी। पान बेचना कोई ऊँचा काम नहीं है।

ठाकुरदीन- पान भगवान के भोग के साथ रखा जाता है। बड़े-बड़े जनेऊधारी मेरे हाथ का पान खाते हैं। तुम्हारे हाथ का कोई पानी नहीं पीता।

नयकराम- ठाकुरदीन यह बात तो तुमने बड़ी खरी कही। सच तो है। पासी से कोई घड़ा तक नहीं छुआता।

भैरों- हमारी दुकान पर एक दिन आकर बैठ जाओ, तो दिखा दूँ कैसे धर्मात्मा और तिलकधारी आते हैं। जोगी-जाती लोगों को भी किसी ने पान खाते देखा है? इस वाद विवाद संवाद का रोचक पहलू यह है कि इसमें सभी जातियों की हजामत की जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचन्द ने सवर्ण जातियों के मस्तक को सूरदास के चरणों में झुका दिया। आदर्शवाद के लिए तो ठीक है लेकिन यह भारतीय समाज का यथार्थ नहीं है।

इसी तरह गोदान का नायक होरी महज तीन बीघे जमीन का जोतदार है लेकिन वह दलित परिवार से सम्बन्ध रखता है। पत्नी धनिया, बेटा गोबर, बेटी सोना, रूपा, बहु झुनिया समूचा परिवार तीन बीघे की खेती पर निर्भर है। दलित परिवार से सम्बन्ध रखने के कारण कदम-कदम पर उन्हें शोषित होना पड़ता है लेकिन यदि अपना स्वार्थ साधना हो तो होरी दातादीन जैसे ब्राह्मण को भी अपने परिवार का सदस्य ही नजर आता है वह होरी को पुचकारते हुए कहता है, तुम शूद्र हुए तो क्या, हम ब्राह्मण हुए तो क्या! हैं तो सब एक ही परिवार के। तीन बीघे जमीन का स्वामी होने के बावजूद होरी की दयनीयता एक भूमिहीन दलित या खेतिहर मजदूर से कम नहीं है। विकल्पहीनता की स्थिति में उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध सारे कार्य करने पड़ते हैं। होरी की इच्छा थी कि वह अपनी जमीन का मालिक बना रहे मगर विपरीत परिस्थितियों में उसे जमीन गिरवी रखनी पड़ती है, फिर बेचने को विवश होना पड़ता है, किसान होरी मजदूर बनकर रह जाता है और अपनी बेटियों की शादी नहीं कर पाता, मजबूरन उन्हें बेचने की नौबत आ जाती है। वह जी तोड़ मेहनत करता है, पर शोषण-दमन की चक्की में पिसते हुए अभावग्रस्तता व निरीहता में ही उसका त्रासद अंत होता है। लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में जगह-जगह दलितों के क्राँतिकारी कदमों की आहट भी गाहे-बगाहे सुनाई देती है। यादवों के विरोध के बावजूद झुनिया को बहू के रूप में स्वीकार करने का होरी-धनिया का निर्णय। ब्राह्मणों के रूढ़िवादी समाज की परवाह न करते हुए पेट से रहने वाली सिलिया को धनिया का संरक्षण। यहाँ तक की उसके प्रेमी मातादीन को ब्राह्मण से दलित बनाने का साहसिक अभियान। सिलिया की मां का आक्रोश भरा ऐलान, 'हम सिलिया को अकेले न ले जाएंगे। उसके साथ मातादीन को भी ले जाएंगे,' जिसने उसकी इज्जत बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी-धरमी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पिओगे'! फिर सिलिया के पिता की भी हुंकार भरी गर्जना, 'हम आज या तो मातादीन को चमार बनाकर छोड़ेंगे या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे... तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मगर हम तुम्हें अपने जैसा बना सकते हैं...' मातादीन का ब्राह्मण से दलित और अंततः धार्मिक प्रायश्चित के जरिए दलित से ब्राह्मण बनकर भी सिलिया और बेटे को अपनाना। दलितों को केन्द्र और परिधि में रखकर रचित 'गोदान' के उपन्यासकार को दलित वर्ग की अपेक्षा किसान वर्ग का मसीहा माना जाता है। हर तरह से किसानों को लेकर कसौटी पर खरा उतरने वाला उपन्यास 'गोदान' हमारी विरासत है। प्रेमचन्द की 'कफन' कहानी को लेकर धर्मवीर

भारती की शिकायत है कि इस कहानी में सामाजिक सच्चाई से पर्दा नहीं उठाया गया है। इस कहानी का अंत स्पष्ट नहीं है क्योंकि लेखक ने इसमें स्पष्ट नहीं लिखा है कि बुधिया गाँव के जमींदार के लौंडे से गर्भवती थी इस बात को पाठक के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया है। तब घीसू और माधव इतना ही विद्रोह कर सकते थे कि जमींदार के बच्चे को अपना बच्चा नहीं कहेंगे। यही दलित की पीड़ा है। कई बार उसकी कथित औलाद भी उसकी अपनी नहीं होती। लेखक को यह बात किसी भी रूप में स्पष्ट करनी चाहिए थी। दलित महिलाओं पर होने वाले यौन अपराधों को लेकर भारत का सुप्रीम कोर्ट क्या कहता है- इससे प्रेमचन्द को क्या लेना-देना। प्रेमचन्द उस समाज पर व्यंग्य कर रहे थे जो जीते जी तो गरीब दलित को खाने के लिए एक पैसा नहीं देता-लेकिन मर जाने पर धर्म नैतिकता के वशीभूत होकर पैसा देता है।

'कफन' कहानी की रचना प्रक्रिया को कैसे सक्रिय किया गया है 'झोंपड़े' के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं और अन्दर बेटे की बीवी बुधिया प्रसव से पछाड़ खा रही थी' अलाव के पास बाप-बेटे का चुपचाप बैठना एक साथ कई अर्थों की व्यंजना करता है। पैसा नहीं है गरीबों के पास करें क्या। करना चाहते हुए भी कर नहीं सकते। उधार देगा कौन? इस कहानी को लेकर यह कहना कि प्रेमचन्द ने जमींदारों को 'दयालु' क्यों कहा- हरामखोर, बेरहम लफंगा क्यों नहीं कहा। प्रेमचन्द जमींदार, जमींदार में फर्क करना जानते थे सभी जमींदार मनुष्यता से रहित सामन्त न थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि रचनाकार का न कोई धर्म होता है, न मजहब, न जाति। वह तो मात्र 'माध्यम' होता है भाव विचार को व्यक्त करने का।

ठाकुर का कुआं कहानी में दलित विमर्श और दलित चेतना का प्रभाव है। डॉ अम्बेडकर के महार आन्दोलन और कालाराम मन्दिर आन्दोलन की वैचारिक छाप इस कहानी में अन्तर्निहित है। प्रस्तुत कहानी का संवाद देखिए- जोखू का संवाद- 'हाथ-पाँव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से, ब्राह्मण देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहु जी एक के पाँच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है। हम तो मर भी जाते हैं तो कोई दुआर झांकने नहीं आता, कन्धा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएँ से पानी भरने देंगे?

गंगी के आन्तरिक सोच और वेदना से प्रेमचन्द ने जो साक्षत्कार किया है, वह हिन्दी में अन्य कहीं दिखाई नहीं पड़ता- "हम क्यों नीच हैं और ये क्यों ऊँचे हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं यहाँ तो जितने भी हैं, एक-से-एक छँटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठ मुकदमें ये करें। अभी इस ठाकुर ने उस दिन बेचारे गड़रिए की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित जी के घर में तो बारह मास जुआ होता है। यही साहु जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं, काम करा लेते हैं, मजदूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊँचे।"

कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द की रचनाएं जितनी सहज और सरल हैं, उतना ही उनका प्रभाव गहरा है। यह सहजता जीवन की जटिलताओं से उभरी है। इसीलिए उसका सीधा संबंध जीवन की जिजीविषा से जुड़ता है। यही कारण है कि दलित रचनाकार प्रेमचन्द को अपने करीब पाता है। विरोध-सिर्फ वहाँ है, जब हिन्दी आलोचक 'कफन' जैसी कहानी को दलित-चेतना की कहानी कहते हैं, जिससे एक दिशाहीन भ्रम पैदा होता है, जिसके पीछे दलित-चेतना को नकारने की मंशा अधिक होती है।

प्रेमचन्द का अध्ययन करना प्रत्येक साहित्यकार एवं उस महानुभवी के लिए आवश्यक है जो साहित्य को मनुष्य की चिन्ताओं के लिए जरूरी मानता है। समाज के विकास में साहित्य की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है, यह प्रेमचन्द का गहन अध्ययन करने के बाद ही समझ आता है! प्रेमचन्द के साहित्य की प्रासंगिकता जितनी उस समय थी उससे कहीं अधिक आज के समय में है।

पी.डी.एफ हिन्दी विभाग
हि.प्र. विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला-171 005

संदर्भ सूची

1 ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य, अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।
2 ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य, अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।
3 विनय कुमार शर्मा, संचार बुलेटिन शोध पत्रिका, रिसर्च फाऊंडेशन, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।
4 कृष्ण दत्त पालीवाल, दलित साहित्य बुनियादी सरोकार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
5 प्रेमचन्द, रंगभूमि, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
6 इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचन्द एक विवेचन, राधाकृष्णन प्रकाशन, इलाहवाद।
7 प्रो. गजेन्द्र पाठक, डॉ. अभिषेक रौशन, अपनी माटी पत्रिका, प्रकाशन, राजस्थान।
8 प्रो. गजेन्द्र पाठक, डॉ. अभिषेक रौशन, अपनी माटी पत्रिका, प्रकाशन, राजस्थान।
9 कृष्ण दत्त पालीवाल, दलित साहित्य बुनियादी सरोकार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
10 कृष्ण दत्त पालीवाल, दलित साहित्य बुनियादी सरोकार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
11 ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य, अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।
12 ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य, अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली।

कहानी

रिफ्यूजी

◆ हंसराज भारती

रिफ्यूजी नहीं रफ्यूजी यह लफ्ज मैंने पहली बार अपनी दादी के मुंह से सुना था। दादी उम्रदराज औरत थी जिनके पास जीवन के अनुभवों का खजाना था। दादी द्वारा बताई और सुनाई गई बहुत सी कहानियों, घटनाओं के वर्णन और किस्सों की जिज्ञासाओं की सूची में यह लफ्ज मेरे लिए किसी अबुझ पहेली सा था। मैं तब शायद छः सात साल का रहा हूंगा। अक्सर हमारे घर आने वाले एक लम्बे, तगड़े/ दाड़ियल पहलवान नुमा आदमी को देखकर हम बच्चे मारे डर के भाग जाते। तब दादी हमें हौसला देती, ''डरो मत बच्चा, आ जाओ। ये कुछ नहीं कहता बच्चों को।'' हम कहते, ''दादी इसकी दाड़ी?" "रफ्यूजी है बेचारा क्या करेगा''? दादी का जवाब होता। उसके जाने के बात आई - गई हो जाती।

दूसरी बार ये लफ्ज अपनी मौसी के घर सुना था। उस समय मैं सातवीं में पढ़ता था। तब मौसी ने अपने घर आए एक ग्राम सेवक कर्मचारी से पूछा था, ''कहॉं के रहने वाले हो। यहॉं के तो लगते नहीं।'' उस आदमी के चेहरे पर यह सवाल सुनकर गहरी उदासी सी छा गई थी। धीरे से कहा था, ''हम रिफ्यूजी हैं , पाकिस्तान से आए हैं।'' पाकिस्तान से आए हैं, क्यों आए हैं? किसने भेजा है? मेरे बाल मन में एकसाथ कई प्रश्न उठे थे। पर कोई सही जबाब नहीं मिला। मौसी ने भी यह लफ्ज औरों से सुना था। इसका अर्थ वे इतना ही जानती थी कि जिसके पास घर - बार जगह जमीन कुछ नहीं होता वे रिफ्यूजी होते हैं। ऐसे भी लोग होते हैं क्या? वे कैसे जिन्दा रहते हैं? मैंने प्रश्न पूछा था। किसी ने कोई जबाब नहीं दिया।

तीसरी बार जब यह लफ्ज सुना ही नहीं पढ़ा भी था तो इसका सही अर्थ जान कर मैं हैरान था। तब दसवीं में था। अंग्रेजी अध्यापक ने इसका अर्थ बताया शरणार्थी। दूसरों की शरण में आया हुआ। बड़ी हैरानी तो यह थी कि ये लफ्ज अंग्रेजी का है जबकि मेरी अनपढ़ दादी, बुआ, मौसी आदि धड़ल्ले से इसका इस्तेमाल करती थीं। इस वजह से मैं भी इसे अपनी बोली का लफ्ज मानता था। शब्द कैसे अपने लिए घर ढूंढ लेते हैं जानकर अजीब सा लगता है। उजड़े हुए, उखड़े हुए और जड़ों से कटे हुए लोगों का नाम है रिफ्यूजी यानि बेचारे लोग। किसी आपदा, विवशता या सत्ता मद के कारण अपना घरबार, रोजगार, अचल सम्पत्ति आदि को छोड़कर जीने के लिए बाध्य लोग।

और जब मैं इस लफ्ज के सही-सही मायने जानने के काबिल हुआ तो मेरी दुनिया काफी बदल गई थी। अब मैं जवान हो गया था। एक साथ कई और लफ्ज मेरी जिन्दगी में दखल देने लगे थे। ये लफ्ज चुम्बक की तरह अपनी ओर खींचते थे। लेकिन जिस एक शब्द को भूल पहीं पाया न उसके अर्थ से दूर हो सका वह रिफ्यूजी ही था। वक्त गुजरने के साथ इस लफ्ज के और इससे जुड़ी त्रासदियों के और करीब आता गया।

दसवीं क्लास से लेकर आज तक लगातार इस लफ्ज को सुन ही नहीं रहा हूँ परन्तु जी भी रहा हूँ।

कालेज ज्वाइन करने पर मैंने इतिहास विषय में ऑनर्ज करने का चयन किया। यार दोस्तों ने मजाक उड़ाया। क्या सांइस छोड़ कर गड़े मुर्दे उखाड़ने में लगे रहोगे। कभी ये जन्मा, कभी वो मरा। ये जीता, वो हारा। लेकिन मैं अपने फैसले पर कायम रहा। दरअसल रिफ्यूजी लफ्ज के मायने जानने और समझने के बाद इतिहास विषय के प्रति मेरा रूझान बढ़ गया। इतिहास यानि हिस्ट्री। आदमी के खिलाफ आदमी की लड़ाइयों की त्रासद कथाओं से भरा पड़ा है। युद्ध किसलिए होते हैं? क्यों होते हैं? इनके परिणामों के भुक्त भोगी कौन होते हैं? सदियों से वही सामान्य जनता। सैनिकों के रूप में भी और युद्ध की बर्बरता का शिकार होने वाली भी वही। युद्ध होते हैं, फिर जीत हार होती है। एक बसी बसाई जिन्दगी और दुनिया उजड़ कर एक खानाबदोश लहजे में बदल जाती है। पूरी दुनिया के नक्शे में एक लम्बा सिलसिला है उजड़ने, बिखरने और खत्म होने का। शायद एशिया के लोगों की दास्तान अधिक लम्बी और त्रसदीपूर्ण है। भारत विभाजन, अफगानिस्तान, श्रीलंका, पश्चिमी एशिया, इंडोचाइना। इधर यूरोप में भी विशेषतया दो महायुद्धों के भयानक परिणाम, एक से बढ़कर एक लोमहर्षक, हृदयविदारक घटनाएं। उजड़ने-उखड़ने का सिलसिला आज भी जारी है। एक देश से दूसरे देश जाने की शरणार्थी समस्या कमोबेश एक ग्लोबल समस्या रही है। यूगो स्लाविया से कश्मीर तक। लेकिन अपने देश में एक

असमान्य सी रिफ्यूजी घटना है। अपने देश में अपने ही लोग शरणार्थी, यानि रिफ्यूजी। भले ही इनके लिए शब्दों का हेर फेर हो शरणार्थी की बजाय विस्थापित कह लो। पर असल मायने तो एक ही हैं। अपना घर बार, व्यवसाय, अचल सम्पत्ति छोड़ने को बाध्य। वो भी धर्म के नाम पर। जिन्हें उजड़ना, उखड़ना पड़ा है। अपनी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी है अपने ही मुल्क में वे रिफ्यूजी हैं। कितनी बड़ी बिडम्बना है। कितनी त्रासदी है। और इसके लिए जिम्मेवार कौन है? इस सवाल का जबाब आज तक ढूंढा जा रहा है पर पूछा जा रहा है, पर ....

इतिहास की उच्च्य शिक्षा लेने के बाद इतिहास का कालेज लेक्चरर नियुक्त हो गया। मेरे जहन में सवालों का कोई अंत नहीं था और त्रासदियों की कहानियों का भी। भारत विभाजन की त्रासदी इनसानी समाज की सबसे बड़ी बेदखली है। समय का पहिया बड़ी तीव्रगति और अनिश्चतता के साथ घूमता है। दूसरों की कथा-व्यथा पढ़ते, सुनते और सुनाते मेरे घर आंगन में यह इतिहास गाथा कब प्रवेश कर गई मुझे पता ही नहीं चला। घर परिवार में कोहराम मचना ही था।



हुआ यूं कि मेरा एक भतीजा जो एम.एस. सी. पास था जब कहीं और अपने सपनों को पंख देने में नाकामयाब रहा तो आखिरी विकल्प के रूप में बी एड करने जम्मू चला गया। भाई साहब बी एस एफ के इंस्पेक्टर थे, जम्मू में ही तैनात थे। बेइंतिहा कड़क आदमी। एकदम आग का गोला। कुछ रिश्तों को लेकर पूरे रूढ़िवादी। उन्होंने ही बी. एड की सलाह दी और सीट का जुगाड़ भी किया। साल बाद जब लड़का वापस आया तो उसके हाव-भाव कुछ बदले -बदले से थे। अपने अनुभव से मैं कुछ समझ गया कि बंदा इश्क के रोग में गिरफ्तार हो चुका है। लेकिन मैं शरीफों की तरह खामोश रहा। प्रेम रोग जब हद से गुजर गया तो भतीजे ने बगावत करते हुए सीधे-सीधे घोषणा कर दी कि वह प्रेम विवाह करना चाहता है। दबाब भी उस लड़की की ओर से है, वह बगावत नहीं आपसी सद्भाव चाहती है। घर में अफरा तफरी मचनी ही थी। खूब मची। सवालों की झड़ी। पढ़ी लिखी होने के बाद भी वही मानसिकता। कौन है? कहां से है? जात बिरादरी क्या है? धर्म क्या है? परिवार कैसा है? उसे मेरी खामोशी पर ज्यादा यकीन था। इसलिए पहले मुझे ही अपना राजदार बनाया। शुरू में तो कुछ नर्वस सा था, फिर मैंने जब हौंसला बढ़ाया कि बरखूदार डरो मत, ये इश्क का मामला ही ऐसा होता है। कहो, पर जो भी कहना सच सच कहना, छुपाना मत। वह थोड़ा सहज हुआ - कश्मीरी रिफ्यूजी लड़की है शारदा कौल साथ ही बी. एड करती थी। सुनते ही मैं उदास हो गया। भतीजे के कदम के कारण नहीं। उस लफ्ज के कारण जो अब मुझे विचलित कर देता था। गहरी उदासी निराशा में धकेल देता था। फिर वही रिफ्यूजी लफ्ज। वही जिंदगी से बेदखल होने की विवशता। उजड़ने, उखड़ने, बिखरने का अनकहा दर्द। मुझे इस रिश्ते का समर्थन करना चाहिए! क्या पता इस परिवार पर क्या-क्या गुजरी होगी। इससे पहले मैं कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त करता वह गम्भीर स्वर में बोला, ''उसके पिता की आतंकवादियों ने हत्या कर दी थी। जम्मू में ही रहते हैं कैम्प में।'' मैं स्थिति की भयानकता को समझ रहा था।

अब मैंने पूरे मन से उस का साथ देने का निश्चय कर लिया। शारदा कौल अब इस घर की बहू जरूर बनेगी। लेकिन परिवार के महिला समाज की प्रतिक्रिया बड़ी तीखी और विरोध से पूर्ण थी। रिफ्यूजी लड़की लाएगा। जिनका न घर वार न ठोर ठिकाना। न कुछ आगे न पीछे। बस गोरा रंग देखा लड़के ने और हो गया फौत। रंग थोड़े चाटना। परिवार, विरादरी भी देखनी पड़ती है। रिफ्यूजियों के पास होता क्या है। गंजी नहाए क्या और निचोड़े क्या?

मैं बीच में कूद पड़ा - ओ समझदारों, सुनो तो, इस तरह से रिफ्यूजी नहीं हैं जैसे आप समझ रहे हैं। ये थोड़ा अलग मामला है। ये लोग हिन्दुस्तान के सबसे जहीन और खुशहाल तबके से हैं। ये क्या हुआ कि सियायत की सियासत का शिकार हो गए हैं। वरना इन्हें क्या जरूरत थी ऐसे बेचारे बनने की।

लेकिन मेरी बातें मेरी तरह प्रभावहीन ही रहीं। वे टस से मस न हुईं। मैंने फिर समर्थन का तीर छोड़ा, ''लड़की बिलकुल ठीक है, शिक्षित है। फिर आजकल खुली हवाओं का जमाना है। लड़के नें कोई गुनाह नहीं किया है। सहमति दे दो। बखेड़े मत खड़े करो। जरा गहराई से सोचो।''

लेकिन मामला इतनी जल्दी सुलझने वाला नहीं था। उल्टे उलझ रहा था। मैं सोचता हम कहने, सुनने में कुछ और हैं और

असल में कुछ और! दूसरी ओर से पहला सवाल आया - लड़की की जात क्या है? फिर धर्म क्या है? एक उदाहरण दिया गया ताजा-ताजा विद्यार्थी शादी का, दोनों बी.एड. करते थे जम्मू में। कोई कमाने वाला या अच्छे-बुरे में खड़ा होने वाला भाई भी है? तगड़ा दहेज पाने की इच्छा रखने वाली भाभी बोली - रिफ्यूजी क्या लेंगे और देंगे भी क्या? आज तक इस परिवार में किसी ने लव मैरिज नहीं की है। मेरे मन में गहरी उथल - पुथल मची थी। 1989 से लेकर विशेषतया इसके बाद की पांच सात साल की घटनाएं किसी फिल्मी रील की तरह घूम रही थीं। जब आतंक और जंगल राज की इंतिहा थी। कितनी ही घटनाएं रोंगटे खड़े करने वाली थीं। जोर देकर कहा, इनका दर्द, बेबसी और हालात की मार देखो और समझो। सोचो हमें अपना घर जमीन, जायदाद छोड़कर कोई अपना खो कर कहीं दूर तम्बुओं में रहने पड़े तो क्या होगा, कैसा लगेगा? क्या मजाल कि कोई अपने आसन से हिली डुली हों। मजाल कि कोई नमी व्यवहार में आई हो। कोई हल निकलता नजर नहीं आ रहा था। भतीजा बार-बार बगावत का एलान कर रहा था। यहां तक कि खुदकुशी का भी संकेत दे रहा था। मैंने उसे संभाला और धैर्य न खोने का मशविरा दिया। उसे चुपके से कहा, मैं पूरी तरह तुम्हारे साथ हूँ। पर कोई अंतिम फैंसला लेने से पहले मैं शारदा से मिलना चाहता हूं। क्या यह संभव है? भतीजे की आंखों में चमक आ गई वह चहक उठा, ''आपको जम्मू चलना होगा।" मैंने सहमति जता दी।

जब मैं शारदा कौल से मिला तो मेरी रही-सही शंका भी दूर हो गई। वह अंग्रेजी साहित्य में एम. ए. थी। एकदम शालीन और सुघड़ सी। हां, चेहरे पर उम्र की शोखी, चंचलता की बजाय गम्भीरता थी जो जरूरत से कुछ ज्यादा लग रही थी। बातचीत में मधुरता और नपा तुला शब्द चयन था। गोरे चेहरे पर गहरी काली आंखें बेहद सुंदर लग रही थीं। लिखने पढ़ने का शौक रखती थीं। जबकि साहित्य कला को लेकर भतीजा मुझे निरक्षर भट्टाचार्य ही लगता था। आतंक और विस्थापित जिन्दगी के कड़वे अनुभवों को लेकर डायरी लेखन भी करती रही हैं। म्या एनी फैंक की तरह ये डायरी भी इतिहास का दस्तावेज बन सकती है? मैंने स्वयं से ही प्रश्न किया।

जब मैंने अपने परिवार की प्रतिक्रिया जाहिर की तो उसकी आँखों से झर - झर आंसू बहने लगे। जिस लफ्ज से आहत हुई वो रिफ्यूजी लफ्ज ही था। अपने मुल्क में अपने ही लोगों द्वारा बेदखली को मजबूर। बाकी सारा देश मूक दर्शक! मैंने उसकी डायरी पढ़ने की इच्छा जताई। शारदा एकदम तैयार हो गई जिसकी मुझे उम्मीद तक नहीं थी।

एक पन्ना थोड़ा फोल्ड था मैंने वही खोलना उचित समझा लिखा था - ''समझ नहीं आ रहा है वक्त को कौन सा लिबास पहनाऊं, किस नाम से पुकारूं! ये कैसा कहर है। कैसी ट्रेजडी है। अपना घर, गांव शहर छोड़कर, रिफ्यूजी बनकर जा रहे हैं। बिना कसूर के कसूर वार! आखिर हम क्यों छोड़ें अपनी मातृभूमि, हम यहां से कुछ नहीं ले जा सकते, न ये खूबसूरत मंजर न अपने बाग बगीचे, न यहां के मौसम, बस सिर्फ कुछ जख्म, कुछ टूटे सपने, आंसू और दहशत, ना उम्मीदी। मेरे पिता आतंक की भेंट चढ़ गए। वो दिन, उनका कसूर! सिर्फ उनका मजहब।'' पूरे पेज पर बड़ी भावुकता भरी शब्दावली पिरोई गई थी। बीच-बीच में कहीं शेरो शायरी का संकलन भी था जो इस उम्र में एक स्वाभाविक सा प्रवाह होता है। फर्क सिर्फ आपके चुनाव का होता है। मुझे यह सब पढ़ना किसी लिहाज से अच्छा नहीं अपितु अपना असभ्यपन ही अधिक लग रहा था। ज्यादातर पन्नों पर अंग्रेजी का ही अधिकार था। सरसरी निगाहें मारते हुए एक पन्ने पर नजर अटकी तो अटकी रह गई। यह पन्ना हिन्दी में लिखा था। लिखाई उम्मीद से ज्यादा सुंदर थी। जैसे मोती पिरोए गए हों। पढ़ने का लोभ संवरण नहीं कर पाया।

प्यार, प्रेम, मुहब्बत, इश्क। अढ़ाई आखर का करामाती लफ्ज दूसरे अनगिनत लफ्जों से जुदा है, उन पर भारी है। इसकी कोई परिभाषा बांधना संभव नहीं, मायने बताना इतना सरल नहीं। प्यार को सिर्फ महसूस किया जा सकता है रूह के अहसास से। अहसास ही प्यार का प्राण है। मैं इस लफ्ज की गहराई में डूबी हूँ। रोहित का साथ पाकर मैने कुछ ऐसा ही महसूस किया है। प्यार टुकड़ों में बंधी धरती नहीं, असीम आकाश है। जात-मजहब, रंग, नस्ल, भाषा की सब सीमाओं से ऊपर। एक अमृत की बूंद। एक अतल गहराई। एक राग, एक अबुझ प्यास। मुहब्बत का मजहब सिर्फ मुहब्बत ही होता है।

पढ़ते पढ़ते मैं जैसे खो सा गया। इस लफ्ज को लेकर मेरे भाव भी कुछ - कुछ ऐसे ही हैं। इससे आगे कश्मीर की दो महान

एक पन्ना थोड़ा फोल्ड था मैंने वही खोलना उचित समझा, लिखा था - ''समझ नहीं आ रहा है वक्त को कौन सा लिबास पहनाऊं, किस नाम से पुकारूं! ये कैसा कहर है। कैसी ट्रेजडी है। अपना घर, गांव शहर छोड़कर, रिफ्यूजी बनकर जा रहे हैं। बिना कसूर के कसूरवार! आखिर हम क्यों छोड़ें अपनी मातृभूमि, हम यहां से कुछ नहीं ले जा सकते, न ये खूबसूरत मंजर न अपने बाग बगीचे, न यहां के मौसम, बस सिर्फ कुछ जख्म, कुछ टूटे सपने, आंसू और दहशत, ना उम्मीदी। मेरे पिता आतंक की भेंट चढ़ गए। वो दिन, उनका कसूर! सिर्फ उनका मजहब।'' पूरे पेज पर बड़ी भावुकता भरी शब्दावली पिरोई गई थी। बीच-बीच में कहीं शेरो शायरी का संकलन भी था जो इस उम्र में एक स्वाभाविक सा प्रवाह होता है।

कवयित्रियों लल द्यद और हब्ब खातून की कविताओं, गीतों को उदघृत किया गया था।

मैं दुगने विश्वास और हौंसले के साथ वापिस लौटा। केस की पैरवी करने की नियत से। इस विवाह में कुछ भी गलत नहीं है। प्रेम का यह विरबा फलना-फूलना चाहिए। परन्तु अभी राह इतनी आसान नहीं थी और सबसे बड़ा राह का रोड़ा खुद बड़े भाई साहब ही लग रहे थे। भतीजा मेरी प्रतिक्रिया जानने के बाद आशा के रथ पर सवार था कि मैं उसके पक्ष में रथ हांकूंगा और वह यह युद्ध जीत जाएगा। मेरे द्वारा स्पॉट रिपोर्ट पेश किए जाने के बाद विरोध के स्वर नरम तो हुए थे पर समाप्त नहीं। अभी भी कई किन्तु - परन्तु आड़े आ रहे थे। रिफ्यूजी शब्द को लेकर लम्बी चौड़ी व्याख्या हो रही थी अब भी। मैं इस शब्द से आहत होता और मेरी हमदर्दी ऐसे लोगों के लिए बढ़ जाती। मेरे ढोल पीटने का असर यह हुआ कि बात अंतिम फैसले के रूप में बड़े भाई साहब पर छोड़ दी गयी। इन मामलों में उनसे किसी नरमी की आशा बहुत क्षीण सी थी। यह जिम्मा भी मुझे सौंपा गया कि मैं भाई साहब के संज्ञान में मामला लाऊं और उन्हें कायल करूं। मजनू बने भतीजे ने अंतिम गुहार के रूप में मेरे चरण पकड़े। उसका साफ कहना था कि पिता जी द्वारा अस्वीकृति की दशा में या तो वह विद्रोह कर देगा या फिर उसके जीने का मकसद ही खत्म हो जाएगा। मैंने उसे दिलासा की घुट्टी पिलाई और अच्छे की प्रार्थना के लिए कहा। महीने भर के अंदर भाई साहब सालाना छुट्टी पर घर आए। वही कड़क बात और व्यवहार। कहने की हिम्मत नहीं हो रही थी। लेकिन एक दिन लोहा गरम देखकर हौले से वार किया। फिर धीरे धीरे सारा किस्सा बयान कर दिया। सुनते ही भवें तन गईं। लेकिन खामोश रहे और अगली सुबह तक इंतजार करने को कहा।

भतीजा तो सोया नहीं होगा, मैं भी परेशान रहा। सुबह उन्होंने परिवार का दरबार सजाया। मां - बेटे को खरी खोटी सुनाई। मुझे नारद का रोल करने पर नाखुशी जाहिर की। बाकी सदस्यों को उपदेशों के टॉनिक पिलाए। महिलाओं को दुनिया न देखने का उलाहना दिया। फिर सन्नाटे को तोड़ते हुए ऊंचे पर नरम लहजे में कहा, ''खुश रैह ओ पुतरा। तूने नेक काम किया है। जिन्दगी में जिस लफ्ज से मुझे नफरत सी है, जिसे सुनकर मैं परेशान हो जाता हूं वह है रिफ्यूजी। मैंने इनका दर्द बहुत करीब से देखा है, सब आबाद रहें, किसी के घर बार न छूटें। सब सुख चौन से रहें। मुश्किल हालात का डटकर सामना करें। अब शारदा कौल हमारी बहू बनेगी। ये विवाह जरूर होगा और पूरे जश्न के साथ होगा।"

''नफरत, फिरकापस्ती, दहशत, खूनी खेल सब मुर्दाबाद।
प्यार, मुहब्बत, दोस्ती, भाईचारा, अमन, शांति जिन्दाबाद''

मेरे मुंह से अनायास ही निकल पड़ा - तमाम सवालों का जबाब है मुहब्बत!

बसंतपुर, सरकाघाट, मण्डी, हिमाचल प्रदेश-175042
मो. 0 98163 17554

कविता

पलाश का फूल

समर्थ अक्षय कुमार



सुंदर
परन्तु त्याज्य
जैसे पलाश का फूल!

न शास्त्र
न संस्कार
कहीं कोई जगह नहीं!

धर्म
पाप-पुण्य
आखिर किसकी उपज!

उगता
जंगल में
यह बिना बोए!

वीराने में
पहचान बनाता
पलाश का फूल!

गांव व डाकघर स्यूल, तहसील डाडा सीबा, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-177 112, मो. 0 94188 96459

कहानी

इति सिद्धम

◆ शेर सिंह

सुबह के आठ बजे के आस -पास का समय रहा होगा। शिमला से मेरे मौसेरे भाई श्याम का फोन आया... "मां अब नहीं रहीं ... हम लोग आज शाम तक डेड बॉडी लेकर कुल्लू पहुंच जाएंगे।" श्याम से जानकारी मिलने के बाद मैं तनिक हिल गया था। हालांकि मौसी जी बहुत समय से बीमार थीं। उन की अस्सीब-पचासी की उम्र हो चुकी थी। अंदेशा तो था, लेकिन इतनी जल्दी हम सबसे विदा ले लेगीं, इसकी उम्मीद नहीं थी। जानकारी मिल जाने के बाद मैं स्थिर नहीं रह सका। कुछ क्षण मैं किंकर्तव्यविमूढ़ सा बना रहा। किन्तु फिर श्मशान घाट की ओर चल दिया। हालांकि उन्हें शिमला से कुल्लू पहुंचने में पांच-छह घंटे का समय लग जाना था। बावजूद इसके, मैं लकड़ी आदि की व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए श्म शान घाट की ओर चल ही पड़ा था।

मैं ब्यास नदी के किनारे बने आधुनिक श्मशान घाट पहुंचा तो वहां दाह स्थल के पास बने सीमेंट के बैंच यानी थड़े, जिस पर अंतिम यात्रा विश्राम स्थन लिखा हुआ था, पर दो व्यक्ति एक झीने कपड़े में लिपटे मुर्दे को बैंच पर लिटाए अपने चेहरों पर चिंता लिए बैठे थे। दोनों स्थानीय नहीं लग रहे थे। वे शक्ल-सूरत से मजदूर और नेपाली लग रहे थे। अधेड़ उम्र, मुरझाए से मुख। चिंतातुर और असमंजस भरे चेहरों के साथ ! मैंने एक नजर में ही जान लिया कि वे दो ही मुर्दे के साथ हैं। आस -पास कोई और नहीं दिख रहा था। मुर्दे के साथ केवल दो लोग ही होने का कोई तो कारण होगा? मैं उनके पास पहुंचा तो पूछे बगैर नहीं रह सका।

"क्या हुआ ? कौन हैं ये ?"

"हम लोग तो नेपाली हैं जी... मजदूरी करते हैं। यह यहीं आस पास रहता था। कल मर गया।" वे मर गया ऐसे बोल रहे थे जैसे कोई चूहा या कुत्ता मर गया हो।

"कल मर गया ?" मैंने किंचित हैरानी व्यक्त करते हुए पूछा।

"हां जी। इसका कोई नहीं है। सड़क के किनारे पड़ा था... पुलिस उठाकर ले गई थी। अब पोस्टमार्टम करके गाड़ी से यहां छोड़ गई है। हमरे पास... कहा कि तुम इसको जानते हो। इसका क्रिया कर्म कर लेना। हम दो ही हैं जी। हमरे पास लकड़ी आदि के लिए पैसे भी नहीं है।" पुलिस ने अपनी जिम्मेदारियों से बचते हुए लाश को पोस्टमार्टम के पश्चापात इन नेपालियों को सौंप दिया था। दोनों उनको जानते भर थे, इसी से। मैंने पास जाकर सफेद चद्दर में लिपटे मुर्दे के मुंह से कपड़े को हटाया। अरे! यह तो साधु... बाबा किस्म का आदमी था। यहां पास के शंकर भगवान के मंदिर के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता था।

"यह तो बाबा हैं ! यहीं आस-पास ही तो रहते थे। आप दोनों इनको कैसे जानते हैं।" मैंने मुर्दे को पहचान लिया था। मुझे जिज्ञासा हो रही थी कि ये दोनों इन्हें कैसे जानते हैं, किस रूप में जुड़े हैं ? क्यों कि पुलिस ने पोस्टमार्टम के पश्चात शव उन दोनों को सौंप दिया था।

"हम इसको जानते थे जी। पुलिस पूछताछ कर इसे लावारिस मानने की जगह हमें सौंप कर चली गई है। हम दो ही हैं। इसका क्रिया कर्म हम कैसे कर पाएंगे... हमारे पास पैसे... रुपये कुछ नहीं है।" वे दोनों भी शायद खस्ता हालत में थे। इसी से वे दोनों चिंताग्रस्त थे। और तनाव में भी लग रहे थे।

"कोई चिंता नहीं... इन्हें लावारिस न कहो ! हम तीनों है न... मिलकर इसका अंतिम संस्कार करेंगे। ऊपर भगवान भी तो है।" मैंने कहा।

"आप दोनों इनके पास ही रहो। मैं लकड़ी आदि का इंतजाम करता हूं।" शिमला से मौसी की डेड बॉडी पहुंचने में अभी समय था।

"भाईया... दो तीन क्विंटल लकड़ी चाहिए... दाह संस्कार कराना है। थड़े पर मुर्दा पड़ा है न, उसके लिए।" मैंने श्मशान घाट के पास लकड़ी के स्टोर वाले से लकड़ियां देने के लिए कहा।

"आपके कौन हैं जी ? क्या लगते हैं..." स्टोर वाले ने थोड़े शब्द सुन सहज भाव से पूछा।

"लगता तो कुछ नहीं है भाईया... लेकिन अब आप मुझे ही उनका सब कुछ मान लो। उनका बेटा ही मान लो क्यों कि इनका कोई नहीं है। इन्हें लावारिस कहना मुर्दे का अपमान करना होगा। लकड़ी के कितने पैसे हुए ?"

स्टोर वाला हैरानी से मेरा मुंह ताकने लगा। "सर... आप इनको जानते नहीं ! आपका कुछ लगता नहीं... फिर यह सब खर्च

और काम... ?" वह हैरान ही था। लेकिन मैंने अपने स्वभाव के अनुसार बिना अधिक सोच-विचार किये उसके अंतिम संस्कालर हेतु हर संभव प्रयास शुरू कर दिया था।

"जनाब... लकड़ी के बारह सौ होते हैं। आप हजार दे दो... दो सौ रुपये मेरी ओर से दान मान लेना।" मेरे निःस्वार्थ कार्य और व्यवहार ने शायद उसे प्रभावित कर दिया था। श्मशान के लकड़ी के स्टोर वाले ने भी दान स्वरूप दो सौ रुपये की लकड़ियां फ्री में दे दी थी। यह शायद उसके स्वभाव के विपरीत था क्योंकि यहां हर तरह के लोग आते हैं। अधिक दया भाव दिखाने से इनका धंधा मंदा पड़ता है। परन्तु यह मुझे एक अपवाद जैसा लगा। हो सकता है, यह दयालु स्वभाव का ही हो। मैंने अपने पूर्वाग्रह को झटक दिया।

मैंने स्टोर वाले और दोनों नेपालियों को लकड़ियां दाह स्थल तक पहुंचाने के लिए कहा। स्वयं मुर्दे के पास खड़ा रहा। जब खरीदी गई सभी लकड़ियां पहुंच गई, तो मैं घी, तेल, साबुन, फूल, धूप-बत्ती आदि की व्यवस्था में जुट गया। मैंने सारी औपचारिकताएं पूरी कर लेने की ठान ही ली थी, तो अब इन सामानों की भी आवश्यकता थी। मैं ऊपर की ओर सड़क तक आया। छोटे से मार्केट की एक दुकान से दो लिटर सरसों का तेल खरीदा। धूप-बत्ती तथा फूलों की दुकान से कुछ फूल भी खरीद लिए। पास के शनिदेव मंदिर का पुजारीनुमा साधु शायद मेरी गतिविधियों को बारीकी से देख रहा था। सभी जरूरी सामग्री लेकर मैं फिर शव के पास पहुंचा। दोनों नेपाली अपनी बांहों को छाती पर बांधे चुपचाप खड़े मेरी ही राह देख रहे थे। कफन में लिपटा मुर्दा वैसे ही थड़े पर चित पड़ा था।

"अब शव को नहलाना होगा।" मैंने उन दोनों से कहा। हिंदू परंपरा के अनुसार अग्निदेव को कुछ भी सौंपने, समर्पित करने से पूर्व उस वस्तु का स्वच्छ व शुद्ध अथवा पवित्र होना आवश्यक है। अपने तन को स्वच्छ, साफ करने का सबसे सरल साधन साफ जल से स्नोन करना शुद्ध, शुभ और सर्वोत्तम माना जाता है। मैं शव को बिना नहलाए, स्वच्छ न किये बिना उसे अग्नि को समर्पित नहीं कर सकता था। इसलिए शव को नहलाने के लिए थड़ी पर सफेद चद्दर में लिपटाए मुर्दा जिस्म से कफन को मैंने हटाना शुरू किया। उसके जैसे-तैसे पहनाए कपड़ों को उतारा। समीप के नल के पास रखे बाल्टी और जग से उसके सिर पर पानी की धार डालते हुए दुकान से लाए साबुन से अच्छी प्रकार से उसके दाढ़ी वाले सूखे चेहरे को रगड़-रगड़ कर धोया। इसी प्रकार से उसकी गर्दन तक के भाग तथा कमर से नीचे वाले भाग को भी साबुन से मल-मल कर धोया, साफ किया। पता नहीं कितने समय से वे नहाए, धोए नहीं होंगे? साबुन मलने से मैल की वजह से पानी काला हो गया था। मैंने उनकी छाती से लेकर कमर तक के भाग को छोड़ दिया। पोस्टमार्टम किया हुआ होने के कारण उनकी छाती, पेट को चीर-फाड़ कर वैसे ही लंबे- लंबे टांके लगा कर सिल भर दिया गया था। यदि उस हिस्से को पानी से साफ करता, तो पानी अंदर तक चला जाता। तब खून और पानी मिलकर बहना शुरू हो जाते। इसलिए उस हिस्सो को छोड़ दिया। दोनों नेपाली बाल्टी और प्लास्टिक के जग में नल से पानी लाते रहे। और, मेरे हाथ मुर्दे के जिस्म पर हल्के- हल्के मगर जल्दी -जल्दी चलते रहे।

मैं ब्यास नदी के किनारे बने आधुनिक श्मशान घाट पहुंचा तो वहां दाह स्थल के पास बने सीमेंट के बैंच यानी थड़े, जिस पर अंतिम यात्रा विश्राम स्थन लिखा हुआ था, पर दो व्यक्ति एक झीने कपड़े में लिपटे मुर्दे को बैंच पर लिटाए अपने चेहरों पर चिंता लिए बैठे थे। दोनों स्थानीय नहीं लग रहे थे। वे शक्ल-सूरत से मजदूर और नेपाली लग रहे थे। अधेड़ उम्र, मुरझाए से मुख। चिंतातुर और असमंजस भरे चेहरों के साथ ! मैंने एक नजर में ही जान लिया कि वे दो ही मुर्दे के साथ हैं। आस-पास कोई और नहीं दिख रहा था। मुर्दे के साथ केवल दो लोग ही होने का कोई तो कारण होगा? मैं उनके पास पहुंचा तो पूछे बगैर नहीं रह सका।

नहलाने के बाद शव को हमने फिर से सफेद चद्दर में लपेट दिया। मैंने सफेद कपड़े में लिपटे शव के ऊपर कुछ फूल बिखेर दिए। इसके बाद फिर हम तीनों ने मिलकर चिता तैयार की। लकड़ी के स्टोर वाला भी आकर हमारा हाथ बटाने लगा। चिता तैयार हो गई। ऊपर शनिदेव मंदिर का बाबा हमारी गतिविधियों को टकटकी लगाए देखता जा रहा था।

अंतिम सस्कार के लिए हिंदू रीति-रिवाज के अनुसार कोई पंडित, भट्ट होना चाहिए था जो विधिवत अन्य ससृष्टि संस्कार संपन्न कराता। लेकिन इस समय यहां कोई नहीं था।

"आप लोग अंतिम संस्कार के कुछ मंत्र... श्लोक जानते हैं?" मैंने उन दोनों नेपालियों से पूछा !

दोनों मेरा मुंह ताकने लगे। मजदूरी करने वाले शायद इसे कहां सीख, समझ पाते होंगे ? अब मुझे स्वायं ही भट्ट, पंडित का रोल अदा करना था। मैंने गायत्री मंत्र उच्चारना शुरू किया। कुछ श्लोकों का भी जाप किया। वंदे शिवम शंकरम् ... महादेवाय नमः ... कपलिनी गौ माता... पुज्यौझ पाणी... और उन दोनों से "ऊं नमो शिवाय... बोलते रहने के लिए कहा।

दोनों नेपाली "ऊं नमो शिवाए" का जाप करते रहे। मैं स्वयं जितना मुझे आता या जानता था, गायत्री मंत्र और अंतिम संस्कार, अनंत यात्रा के लिए पढ़े, बोले जाने वाले मंत्रों, श्लोक को दूध मिले पानी के छींटे निस्पंद पड़े शव पर मारता हुआ उच्चारता रहा।

फिर हमने मुर्दे को चिता पर लिटा दिया। ऊपर से कुछ और

लकड़ियां डाल दीं। घी और सरसों के तेल को मुर्दे के सिर वाले भाग के ऊपर उंडेल दिया। धूप बत्ती जलाकर चिता के ऊपर चारों कोनो में लकड़ी के ऊपर चिपका दिया। मैंने पानी भरे कच्चे घड़े के साथ चिता के तीन फेरे लगाए और मटके को फोड़ दिया। जलती मशाल ले मैंने मुखाग्नि दी। हम तीनों ने फिर चिता के फेरे लगाए और आकर थड़े पर बैठे ही थे कि मेरा मोबाईल बज उठा, "रामनाथ ... कहां हो इस समय ? हम मौसी की गाड़ी के साथ पहुंचने ही वाले हैं।" यह श्याम का फोन था।

"भाई जी ! मैं तो यहीं श्मशान घाट में ही हूं। आप लोग पहुंचे।" मैंने कहा। अक्तूबर महीने की दोपहर अब ढलने को थी। इस समय तक मौसी के बहुत सारे रिश्तेदार, गांव के लोग श्मशान घाट पहुंचने शुरू हो चुके थे।

"आप इतनी जल्दी कैसे आ गए ? यह कौन है ?" उन्होंने मुझे जलती चिता के पास लकड़ियों को संवारते, व्यवस्थित करते देखा तो हैरान होते हुए पूछा।

"ये एक साधु बाबा थे। इनका कोई आत्मीय नहीं था। कोई कुटुम्बी...परिजन नहीं था। इसलिए... मैं ही इनका अंतिम संस्कार कर रहा हूं।" मैंने बताया।

"क्या ! बाबा या भिखारी ... क्या आपका कुटुंबी है ? आपका भग्यतड़ (परिजन), टबरी है ?" वे हैरान थे।

उन्होंने मजाक करते, टोंट कसते हुए मेरा उपहास उड़ाना शुरू किया। वे शायद मुझे अधपागल या पता नहीं क्यों समझ रहे थे, जो एक अनजाने साधु बाबा का इतनी श्रद्धा और धैर्य के साथ उसके अंतिम संस्कार में जुटा हुआ था। उन लोगों के चेहरों की भाव भंगिमाओं को देख, समझकर भी मैं अनदेखी करता रहा। दुख और शोक का माहौल होने के बावजूद वे तीखे कटाक्ष करने में चूक नहीं रहे थे। मैंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। लेकिन अपने चेहरे से मुस्कान को हटने भी नहीं दिया।

जल रही चिता में लकड़ियां कम पड़ रही थीं। अब तक मौसी के लिए लकड़ियां और आवश्यक सामग्री आ चुकी थीं।

"यहां से कुछ लकड़ियां ले लूं ..?" मैंने लकड़ियों के लिए कहा तो उन में से कुछ ने स्वयं ही लकड़ियां उठाकर चिता के ऊपर डाल दीं। मैं आग को और तेज करने के उद्देश्य से फिर पास की दुकान से सरसों का तेल खरीदने के लिए चल पड़ा। पास के शनिदेव मंदिर का बाबा शायद सब कुछ देख रहा था। जब मैं उसके पास से गुजरने लगा, तो उसने अपने सरसों के तेल से भरा कमंडल मुझे सौंप दिया। "कुछ हमें भी पुण्य का काम करने दो! आप अकेले ही पुण्य लाभ नहीं ले सकते हैं !" उसने अपनी लंबी दाढ़ी के बीच अपने सफेद दांतों को चमकाते हुए हंसते- हंसते कहा। मैंने उस बाबा के कमंडल का तेल लाकर धीमी पड़ती चिता पर उंडेल दिया। अग्नि की लपटें फिर तेज हो गईं। धीरे-धीरे छिपी हुई मानवीय सद्भावनाएं, संवेदनाएं शायद जाग रही थीं। ये शनिदेव मंदिर के बाबा, लकड़ी के स्टोर वाले, नेपालियों यहां तक कि फब्तियां, तंज कसने वालों में भी दिखनी शुरू हो गई थीं।

अब तक बगल में दूसरी चिता भी तैयार हो गई थी। इस ओर लोगों तथा दिवंगत के प्रिय जनों की लंबी कतार थीं। मौसी की डेड बॉडी पहुंच चुकी थी। चिता को श्याम ने मुखाग्नि दी।

"आप तो इसके भग्यातड़ हैं ? इसके कुटुंबी हैं ! इसकी अस्थियां अब आप हरिद्वार में विसर्जित करने के लिए ले जाएंगे न !" मेरे मित्रों, परिचितों ने व्यंग्य कसते, छींटाकशी करते, मेरा मखौल उड़ाते हुए मुझसे कहा।

"आप मुझे दिवंगत का धर्मपुत्र ही मान लें। इस गरीब को हरिद्वार में गंगा जी में प्रवाहित होने का सौभाग्य, पुण्य लाभ मिलेगा अथवा नहीं... पता नहीं ? लेकिन किसी नदी, पवित्र संगम की जलधारा का साथ अवश्य मिलेगा।" मैंने भी हंसते हुए परन्तु पूरी गंभीरता से कहा। वे लोग मुझे बेवकूफ, भावुक मूर्ख, अहमक आदि पता नहीं क्या-क्या... समझ रहे थे। मैंने उनकी बातों का बुरा नहीं माना और सहज भाव से उनकी हंसी- मजाक, व्यंग्य को झेलता, देखता रहा। मेरी पत्नी सुनीता भी मेरे लीक से हटकर काम करने पर अकसर मुझे टोकती, और डांटती भी रहती है। वह अकसर कहती, "परिवार, खानदान की नाक कटा रहे हो। आपके ऐसे कामों से हम शर्मिंदा होते हैं। सेवकराम बने रहते हो।" मैं हंसकर टाल देता या बिना कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किये चुप रहता। वह चिढ़ जाती। लेकिन बाद में लोग मेरे कामों की चर्चा करते हुए प्रसन्ता दर्शाते, तो वह जैसे संतुष्ट होकर चुप हो जाती। मैं सुनीता के स्वभाव को जानता था। वह ऊपर से कठोर दिखने की कोशिश करती थी, परन्तु अंदर से कोमल थी, जैसे नारियल। मैं कभी-कभी अपनी रौ में सुनीता से कहता, "हमारे प्रयास रेत में निशान की तरह नहीं, पत्थर में लकीर की तरह होने चाहिए।" वह तब अपना मुंह बिचका देती।

कपाल मोचन भी मैंने स्वयं ही किया। अब चिता की अग्नि मंद पड़ चुकी थी। शरीर स्वाह में बदल चुका था। मैंने गर्म राख में से लकड़ी की एक पतली डंडी की सहायता से फूलों (अस्थियों) को चुना। दूध से उन्हें धोया और एक साफ कपड़े में बांध लिया। चिता को ठंडा होने का इंतजार किये बिना ही उसी समय चिता की गर्म राख को बाल्टी भर-भरकर पानी से धो डाला और पूरी जगह को साफ कर दिया।

पास ही जल रही मौसी की चिता के किनारे खड़े लोग मेरी एक-एक गतिविधि, काम को ध्यान से देख रहे थे। लगता था, उनका सारा ध्यान मुझ पर ही केंद्रित था। अब मौसी की जलती चिता में लकड़ी की कमी दिख रही थी, क्योंकि उनकी लाई कुछ लकड़ियों का हमने इस्तेमाल कर लिया था। मैंने चुने हुए फूलों (अस्थियों) की पोटली को अपनी जेब में डाला। मंद पड़ती दूसरी चिता के लिए और लकड़ी लाने हेतु चल पड़ा। शनिदेव मंदिर के

बाबा फिर दिख गए।

"जा रहे हो ?" उसने पूछा।

"नहीं, यहां दूसरी चिता जल रही है... लकड़ियां कम पड़ गई हैं। उसके लिए और लकड़ी की व्यवस्था करनी है।"

"यह लो कुल्हाड़ी... इस पेड़ में से जो चाहे काट लो... ले जाओ !" बाबा ने मंदिर के साथ खड़े बड़े से पेड़ की ओर इशारा कर कहा। मैंने एक मोटी सी डाल काट ली। अब की बार बाबा ने ही लकड़ी का इंतजाम करवा दिया था।

मैं वापस आया। मैंने दोनों नेपालियों को अपने साथ लिया। "कहां जा रहे हैं ?" किसी ने पूछा ! बहुत सी उत्सुक नजरें हम तीनों की ओर उठी हुई थीं।

"इस गरीब के फूल को विसर्जित करने जा रहे हैं। इनके लिए यही ब्यास नदी हरिद्वार है, प्रयागराज इलाहाबाद है। मैं इनका धर्मपुत्र इतना ही कर पाने में समर्थ हूं। इससे अधिक मेरी सामर्थ्य नहीं है।" मैंने विनम्रता से दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा।

हम तीनों पास बहते ब्यास नदी के किनारे चलते-चलते एक ऐसी जगह पहुंचे जहां माहौल के पास बहते पहाड़ी नाले का साफ जल ब्यास नदी में मिलकर एक हो रहा था। यह नदी और एक स्वच्छ नाले के जल का संगम स्थल था। मैंने अपनी जेब से पोटली में बंधे फूलों को दोनों हाथ में लिया। देखा, पानी की तेज जलधारा के साथ गेंदा फूलों की एक बड़ी सी माला तैरती हुई हमारी ओर आ रही है। इसे संयोग कहेंगे अथवा सहज क्रिया या चमत्कार ! मैंने हाथ बढ़ाकर माला को लपक लिया और अपने हाथों में थाम लिया।

माला गेंदे के ताजा फूलों की थी और काफी बड़ी थी। कुछ क्षणों के लिए मैं भी अवाक रह गया था। यह कैसे संभव हुआ ? आस-पास भी कोई नजर नहीं आ रहा था। मैंने ऊपर आसमान की ओर देखा। ऊपर कुछ नहीं था। आसमान बिलकुल साफ था। हाथ में पकड़ी माला को फिर मैंने तीन समान भागों में तोड़ा और एक-एक टुकड़ा अपने सहयोगी नेपालियों को भी थमाया। मैंने पोटली को खोला। उसमें बंधे फूलों को फूलों की तोड़ी गई माला की लड़ियों के ऊपर रख अपने दोनों हाथ जोड़ते हुए दिवंगत आत्मा की शांति हेतु प्रार्थना और श्रद्धापूर्वक नमन कर बहती जलधारा में दोनों हथेलियों को जोड़ते हुए धीरे से ऐसे छोड़ा, जैसे कहीं हल्के से धक्के से भी वे कुम्हला न जाएं। मुझे बड़ी भावभीनी और बहुत ही संतोष भरी आत्मिक शांति की अनुभूति का अहसास हो रहा था। मेरे दोनों सहयोगियों ने भी मेरा अनुसरण करते हुए अपने हाथों में थामे फूल को फूलों की माला के ऊपर धीरे और अत्यसधिक कोमलता के साथ रखा। फिर उतनी ही कोमलता, सरलता के साथ अपनी हथेलियों को अर्घ्य देने के आकार का बनाते हुए पानी के ऊपर बहुत धीरे से छोड़ा। फूल (अस्थियां) सुकोमल फूलों की माला के ऊपर पहले धीरे फिर धार के साथ तेज-तेज आगे बढ़ते रहे। नदी में अपने आप हम तक अचानक आई माला के तोड़े गए तीनों भाग बाबा की अस्थियों को अपनी पीठ पर उठाए समानान्तर में आगे -आगे बढ़ते ही जा रहे थे। निर्मल जल का करुणा की शीतल धारा के साथ संगम हुआ था। और उसी करुण भावना के साथ मालाओं की किश्तियां पवित्र फूलों को लादे चली जा रही थीं। हम तीनों अपने हाथों को जोड़े तब तक नदी के किनारे खड़े रहे जब तक पवित्र फूल कोमल फूलों की माला की सवारी करते, तैरते हमारी नजरों से ओझल नहीं हो गए।

जब उनका दिखाना बिलकुल बंद हुआ, तो हम तीनों ने फिर से अपने हाथ जोड़े और वापस चल पड़े। यह दिवंगत आत्मा की यात्रा का अंतिम पड़ाव था। और यात्रा समाप्त हो चुकी थी। लेकिन दोनों नेपाली मजदूरों का चेहरा अब भी हैरानी और श्रद्धा से भरा हुआ दिख रहा था। वे दोनों पता नहीं मुझे क्या समझ रहे थे। बात विश्वास, आस्था और निष्ठा की थी। लेकिन उनके हाव-भाव से ऐसा लग रहा था कि वे दोनों मुझे कोई सिद्धपुरूष, चमत्कारी व्याक्ति समझ रहे थे। जबकि मैं एक साधारण से व्यक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं था। बस ! मैंने तो केवल एक सहृदय व्यक्ति अथवा मनुष्यता के तौर पर अपना कर्तव्य ही निभाया था।

मैंने हंसकर दोनों से कहा, "जिसका कोई नहीं होता है, उसका भगवान होता है।" इति सिद्धम् !

"आप मुझे दिवंगत का धर्मपुत्र ही मान लें। इस गरीब को हरिद्वार में गंगा जी में प्रवाहित होने का सौभाग्य, पुण्य लाभ मिलेगा अथवा नहीं... पता नहीं ? लेकिन किसी नदी, पवित्र संगम की जलधारा का साथ अवश्य मिलेगा।" मैंने भी हंसते हुए परन्तु पूरी गंभीरता से कहा। वे लोग मुझे बेवकूफ, भावुक मूर्ख, अहमक आदि पता नहीं क्या-क्या... समझ रहे थे। मैंने उनकी बातों का बुरा नहीं माना और सहज भाव से उनकी हंसी- मजाक, व्यंग्य को झेलता, देखता रहा। मेरी पत्नी सुनीता भी मेरे लीक से हटकर काम करने पर अकसर मुझे टोकती, और डांटती भी रहती है। वह अकसर कहती, "परिवार, खानदान की नाक कटा रहे हो। आपके ऐसे कामों से हम शर्मिंदा होते हैं। सेवकराम बने रहते हो।" मैं हंसकर टाल देता या बिना कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किये चुप रहता।

नाग मंदिर कालोनी, शमशी, कुल्लू,
हिमाचल प्रदेश- 175126, मो. 0 84470 37777

अरुणाचली कहानी

एक स्त्री, प्यारी नदी सी

मूल लेखक : **ममांग दाई** हिंदी अनुवाद : **डॉ. जगदीश शर्मा**

साहित्य सभी का साझा होता है। जीवन के सरोकार एक जैसे होते हैं विशेषकर साधारण पारिवारिक पृष्ठभूमि के लोगों के। उत्तरपूर्व भारत का जीवन सहज, सरल और मूलभूत जीवन बनाए रखने के बुनियादी संघर्ष का जीवन है वैसा ही जैसा किसी अन्य पर्वतीय प्रदेश या देशज जातीय समाज का होता है। किसी बाहरी के आने पर उत्सुकता और मुग्धता दोनों ही सहज सरल स्वभाव की प्राकृतिक कमजोरियाँ हैं। विश्वास और सब कुछ न्योछावर कर देने की उद्यता भले ही उसकी परिणति क्या हो, इसका रत्ती भर भी विचार नहीं होता। दूसरे को दोष देने की आदत भी नहीं, अपने निर्णय और उसकी परिणतियों पर जीवन जीने तथा विसंगतियों से जूझने का अदम्य साहस इस समाज का विशेष गुण है।
'एक स्त्री, प्यारी नदी सी' सुप्रसिद्ध अरुणाचली कथाकार ममांग दाई की कहानी का हिंदी अनुवाद है। ममांग दाई अंग्रेजी और अरुणाचली भाषाओं की चर्चित लेखिका और गहन जानकार हैं। उनके कई कहानी संग्रह और उपन्यास प्रकाशित हैं। प्रस्तुत कहानी का अंग्रेजी शीर्षक 'रिवर वुमैन' है। यह कहानी 'दी लेजेण्डस् ऑफ पेन्स्म' 'अन्तर्मन की कुछ कहानियाँ' कहानी-संग्रह में सम्मिलित है तथा अरुणाचल के देशज समुदाय की जीवनचर्या, सामाजिक एवं भावात्मक संवेग का चित्रण करती है। एक युवती के परिपक्व होते स्वभाव और संवेगात्मक परिवर्तनों का वर्णन करती कहानी जीवन में सामाजिक एवं पारिवारिक संघर्ष के कटु यथार्थ के चौराहे पर आकर खड़ी हो जाती है- **रिवर वुमैन : एक स्त्री; प्यारी नदी सी।**

'क्या तुम्हारे पास परिवार की कुछ पुरानी तस्वीरें है?' मोना ने लोसी से पूछा, 'तुम्हारे ससुर या तुम्हारे माता-पिता की या कोई भी पुराने दिनों की कोई तस्वीर?' मोना होक्जो परिवार की दोस्त बन चुकी थी। जब भी वह गाँव आती तो मुझसे मिलने गुरदुम भी आती, और अब तीन या चार बार साल में वह आने लगी थी।

'नहीं, ऐसी तो कोई तस्वीर नहीं हैं' लोसी ने हँसते हुए कहा। 'हमेशा मैंने सिर्फ कहानियों में सुना और मुझे लगता है कि अधिकतर कहानियाँ मेरे पति द्वारा ही खुद बनाई गई होंगी।'

पर वह घर के एक कोने में गई और पुराने बक्से में से कुछ कपड़े और बिस्कुट के डिब्बे निकालने लगी। एक डिब्बे के ढक्कन से उलझती हुई वह थोड़ी देर बाद हाथ में टेढ़ी-मेढ़ी पुरानी सी एक तस्वीर साथ ले आई।

तस्वीर में एक युवती थी, साथ में वर्दी में एक नौजवान युवक भी था। वह उसकी तरफ झुका हुआ था और कैमरे की तरफ मुस्कुरा रहा था। उसी वक्त मैंने और मेरी सहेली ने पहचान लिया कि यह वही महिला है जो हमेशा जवान रही है। उसकी आँखे चमकीली और काली थीं और वह अपने लंबे केश पीछे की तरफ साधारण रूप में बांधे हुए थी। यह उस खुबसूरत महिला, सुप्रसिद्ध निनम की तस्वीर थी, वही लोसी की माँ, जो एक ब्रिटिश अफसर से प्रेम करती थी।

मुझे आश्चर्य होता है कि किसने इस तस्वीर को खींचा होगा और कैसे हिम्मत जुटाई होगी इस तरह की तस्वीर खींचने की। वह भी किसी अफसर के बंगले के ठीक सामने। यकीनन निनम काफी साहसी रही होगी जिसने किसी मिलुन (ब्रितानी) को अपने आकर्षण से अपनी तरफ खींचा और उससे प्यार किया और बदले में उसे लोगों से तरह-तरह की बातें सुननी पड़ी थीं। राकुट को याद है कि उसके पिता खुशी से मिलुन लोगों के साथ काम किया करते थे। उस वक्त अपनी एकमात्र साईकल पर पूरे गाँव में घूम-घूम कर सरकारी पत्रों को पहुँचाने का काम किया करते थे और अक्सर कहा करते थे कि उसने निनम को बहुत बार साहिब के ऑफिस में आते-जाते देखा पर वह कभी उसके साथ नहीं गया। बस एक बार उसने उसे इशारों में बहुत कुछ कहने की कोशिश की थे परन्तु उसने अपनी नजरें फेर लीं थीं।

जो लोग निनम को जानते थे उन लोगों का कहना था कि वह

काफी शांत थी लेकिन साथ ही स्वभाव से वह काफी भावुक , जिसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता था। 'नदी की तरह ,' वे कहते थे।

यह वक्त, युद्ध का समय था। ऐसा ही युद्ध पहले एक बार भी हो चुका था, लेकिन इतनी बड़ी संख्या में मिलुन के सिपाहियों को सियांग घाटी में नहीं देखा गया था। इस बार वे अधिक संख्या में हर जगह दिखाई दे रहे थे। वे आगे पूर्व में जापान से युद्ध लड़ रहे थे, जहाँ होक्जो और राकुट के पिता भी गए थे।

सही मायने में कहा जाये तो गोरे साहिब अब इस इलाके में अब अजनबी नहीं रह गए थे। कोमसिंघ घटना के बाद सन् 1912 के आबोर अभियान से पूरी सियाङ घाटी की सीमा रेखा के बहुत से गाँवों को अंग्रेज सरकार ने छानबीन के लिए अपने नियंत्रण में ले लिया था। जब पूरा गाँव गोला-बारूद की चपेट में आ गया था, और गाँव खत्म होने को था तब गाँव के बड़े-बूढ़ों ने न चाहते हुए भी पुराने अखबारों को हवा में हिलाते हुए अपनी हार मान ली थी। कुछ साल पहले जब युद्ध की शुरुआत नहीं हुई थी तो ब्रितानियों ने दुयाङ गाँव के लोगों से जमीन को लेकर सौदा कर अपना कैंप पिगो नदी के किनारे स्थापित कर लिया था। गाँव वालों ने इस शर्त पर एक चौथाई किलोमीटर जमीन देने का तय किया था कि वे वहाँ डॉक्टर, पुलिस अफसर और राजनैतिक कामकाज जैसे सब के कार्यों के लिए इमारतों का निर्माण करेंगे।

अब पूरा इलाका स्वंतत्र रुप से व्यापार का केन्द्र बन गया था और नदी में नावों का काफिला, अधिकारी, व्यापारी और कुली हर जगह फैल गए थे। गाँववाले पिगो की रोशनी को पहाड़ों की चोटियों से देखते थे और नई चीजों को सीखने की चाहत रखते थे। कम से कम उनकी नजदीक से देख-परख करना चाहते थे और पता लगाने की कोशिश करते थे कि वे असल में हैं क्या। हर कोई बड़ी संख्या में इस नई मंजिल तक पहुँचना चाहता था जो अब सत्ता का केन्द्र बन गया था।

एक दिन दुयाङ से कुछ जवान लड़कियाँ पिगो के बाजार की ओर जा रही थीं। यह संतरे का मौसम था और घने हरे-हरे पेड़ों पर भरपूर फल लगे हुए थे। सभी लोगों को गाँव के मीठे और बड़े-बड़े संतरों पर गर्व था और लड़कियाँ टोकरियों में संतरे लादे हुए बाजार में बेचने को आती थीं। अगर उनके सारे संतरे बिक जाते तो वे मिट्टी का तेल, गुड़ या फिर तम्बाकू की कुछ गड्डियाँ खरीद लेतीं या फिर सिक्कों को अपनी चोली में बाँधकर घर लौट आतीं।

अचानक लड़कियों ने धूल से उड़ते बादल को ऊपर चक्कर लगाते हुए देखा और वे सभी रुक गईं।

' आई ! यह तो मिलुन लोग है।'

' शशश...। ! उन्हें गुजरने दो'

वे लोग अपने धूल भरे पैरों को देखती रहीं और अपनी-अपनी टोकरियों के फीतों को मजबूती से संभालने लगीं। एक जैतूनी हरे रंग की जीप वहाँ से गुजर रही थी, जब वह उनके पास से गुजरी तो उसकी गति थोड़ी धीमी होने लगी थी। निनम ने जब अपनी निगाहें उठाईं, तो उसकी निगाह उस नौजवान की आँखों से टकराई जो जीप चला रहा था। दोनों आपस में एक-दूसरे को ताकते रहे। फिर वह गाड़ी आगे चली गई और तेजी से नदी की तरफ बढ़ गई। जल्द ही यासाम और नयाङ आपस में बातें करने लगीं।

'आई.... मुझे लगा कि वह रुकने वाला है !'

'भला वह क्यों रुकता तो?'

'शायद वे हमारे संतरे खरीद लेते '

वे तेज गति से और डेढ़ घंटे तक चलती रहीं और जब पिगो पहुंचीं तो वे एक बड़े वृक्ष के नीचे रुक गईं जहाँ पहले से ही दूसरे गाँवों की औरतें बैठी हुई थीं। निनम ने अपने बैठने की जगह को चुन लिया और अपने संतरों को एक छोटी सी चमकती हुई जमीन के टुकड़े पर रख दिया। वह अपनी पैसे की थैली को तैयार करने लगी, अच्छी किस्मत के लिए वह हमेशा एक जादा हुआ थैला अपने पास रखती थी।

बाजार का ढाँचा गोल-आकार में था जहाँ तख्तों से बनी दुकानों में चावल, कपड़े, आभूषण, तम्बाकू और नमक बेचा जाता था। इन्हें बेचने वाले बाहरी लोग यानि मैदानी इलाकों से आये लोग थे, जो वहाँ की जनजातियों की बोली बोलते थे और किसी को इन लोगों के व्यापार करने पर कोई अपत्ति नहीं थी क्योंकि वे बहुत ही मिलनसार और गाँववालों को मोल-भाव करने पर कम दामों में भी सामान दे दिया करते थे। बाजार के बीचो-बीच एक बड़ा सा पेड़ था जो बहुत समय पहले से ही वहाँ था। इसकी शाखाएँ आस-पास के टीन के छतों पर किसी हरी छतरी के समान फैली हुई थीं। एक छोटी सी गली उस पेड़ के नीचे से गुजरती थी, और यहीं पर आस-पास के गाँवों के लोग आते और अपना सामान बेचते थे। यहाँ हर तरह के चावल, सब्जियाँ, बाँस की बनी टोकरियाँ, जड़ी-बूटियाँ, अदरक और स्थानीय दवाईयाँ

निनम ने नजरें ऊपर कीं। एक जवान मिलुन उसके सामने खड़ा था और वह संतरे की तरफ इशारा कर रहा था। निनम ने इशारे में सिर हिलाया। वह मुस्कुराया और झुककर उसके साथ ही बैठ गया। उसने एक संतरा उठाया और हाथों से घुमाते हुए देखने लगा, जैसे उसने कभी इससे पहले संतरा न देखा हो। 'खा कर देखिए,' निनम हाथों में हाथों में पकड़े संतरे और अपने मुंह की तरफ इशारा करती हुई बोली। निनम बड़े आश्चर्य से उसे संतरे छीलते हुए देख रही थी।

बेची जाती थीं। कुछ औरतें तो बुने हुए कपड़े तथा जंगले में प्रयोग हेतु सूती रस्सियाँ भी बेचने के लिए लाती थीं। वे उनके चमकीले तेज रंगों को हवा में उठा-उठाकर दिखातीं और जोर जोर से कहतीं कि इनका रंग हमेशा ही ऐसा बना रहेगा।

निनम को जब बाजार के प्रवेश-द्वार के पास कुछ शोरो-गुल का पता चला उससे पहले ही वह संतरों के दो ढेर बेच चुकी थी। उसने गौर किया कि उसके आस-पास बैठे सभी लोग गर्दन उठा-उठाकर यहाँ-वहाँ देख रहे हैं। तभी उसने उस जीप की झलक देखी। लोगों के इधर-उधर हटने से जीप भीड़ के बीच से होती हुई बाजार का चक्कर लगाकर उस छोटी से धूलभरी बेकरी की दुकान की ओर आ रही थी। एक आदमी जीप से उतरा और चलने लगा।

यासाम ने अपनी उँगली उसके कंधे पर मारते हुए कहा, ‘ क्या यह वही मिलुन नहीं हैं जिसे हमने अभी देखा था ?’

‘वही हैं, हाँ यह तो वही है। चलो उसे अपनी तरफ बुलाने की कोशिश करते हैं, क्या पता वह हमारे सारे संतरे खरीद ले?’ नयाङ ने कहा।

‘पागल मत बन’ निनम ने कहा, उसे गर्मी लग रही थी और उसकी सहेलियों की उत्सुकता से भी वह तंग आ चुकी थी।

‘क्यों नहीं? वैसे भी उसने हमें देखा भी था कि हम कैसे इन भारी-भरकम सामानों को उठाते हुए यहाँ तक लाये हैं ’ नयाङ ने अपनी बात को जोर देते हुए कहा। और सच में ही वह उसी क्षण उछलकर उठी और उस आदमी की तरफ हाथ हिलाते हुए इशारा करने लगी, हालाँकि वह आदमी तब तक दूसरी तरफ मुड़ चुका था।

लोग इधर-उधर घूम रहे थे। एक व्यक्ति यासाम के पास आकर कुकुरमुत्ते का मोल-भाव करने लगा और यासाम अपनी ऊँगलियाँ फैलाकर गिनने लगी। आपस में मोल-भाव कर रहे लोगों की ऊंची आवाजों से चारों ओर बाजार में काफी शोरगुल था। कई महिलाएँ अपनी पीठ पर अपने नन्हे बच्चों को बांधे हुए थीं, और वे महिलाएँ खड़ी-खड़ी बच्चों की पीठ को थपथपाते हुए उन्हें लोरियाँ सुना रही थीं ताकि बच्चे इस शोरगुल में भी आराम से सो जाएँ। वे सुस्ती से काम कर रहे बड़े बच्चों को जल्दी-जल्दी खुले पैसे न गिनने के लिए भी डांट रही थीं।

‘ हमम्म........ सं-त-रे..........अच्छे हैं ?’

निनम ने नजरें ऊपर कीं। एक जवान मिलुन उसके सामने खड़ा था और वह संतरे की तरफ इशारा कर रहा था। निनम ने इशारे में सिर हिलाया। वह मुस्कुराया और झुककर उसके साथ ही बैठ गया। उसने एक संतरा उठाया और हाथों से घुमाते हुए देखने लगा, जैसे उसने कभी इससे पहले संतरा न देखा हो।

‘खा कर देखिए,’ निनम हाथों में पकड़े संतरे और अपने मुंह की तरफ इशारा करती हुई बोली। निनम बड़े आश्चर्य से उसे संतरे छीलते हुए देख रही थी।

यासाम उसके कानों में उत्साह से बोलने लगी ‘ उनसे कहो कि मुझसे भी खरीदे।’ जब वह उनकी ओर देखने लगा तो यासाम ने अपने संतरों पर हाथ फेरते हुए उसे खरीदने को इशारा किया

वह मिलुन हँसते हुए संतरे खाने लगा। वह संतुष्टि के साथ अपना सिर हिला रहा था। दो लोग उसकी बगल में खड़े थे। वे खाकी वर्दी में थे और कमर पर पेटी तथा पिस्तौल बंधी हुई थी। निनम ने सोचा कि यह किसी अन्य देश के आदिवासी होंगे, पर उनके चेहरे पर कोई भाव नहीं दिख रहा था, लगता था जैसे उन्हें ज्यादा बातचीत पसंद नहीं थी और वे कहीं दूर से थे। मिलुन ने उन दोनों से कुछ कहा और वे दोनों आदमी गाड़ी की तरफ मुड़ गए।

‘तुमारा गाँव किधर है?’ उसने निनम को अपने हाथों से नदी और पहाड़ों की तरफ इशारा करते हुए पूछा।

वह हँस पड़ी और अपनी कलाई को पहाड़ की तरफ मोड़ दिया। निनम का गाँव पेड़ों से ढका हुआ था और इस शहर से दूर लोहे के उस पुल से नदी को पार कर वहाँ तक पहुँचा जाता था। वह दोयिङ वंश की भूमि थी और उस गाँव की गिनती इलाके के सबसे सुन्दर गाँवों में की जाती थी। क्योंकि वह पहाड़ों के बीचोबीच में था इसलिए वह नीचे गहरी कंदराओं से आने वाली तेज तूफानी हवाओं से सुरक्षित था। यहाँ गर्मी के मौसम में कटहल के पेड़ों के नीचे शीतल छाया मिलती थी। पर यह सब बातें वह उसे कैसे बताती।

‘आई.......आइ....यि.....’ यासाम और नयाङ शरमाती हुई आपस में बुदबुदाती हुई हँसने लगीं।

‘मेरा नाम डे-वि-ड है,’ उसने अपनी ओर इशारा करते हुए कहा।

निनम को ऐसा लगा जैसे वह अपना चेहरा अपने दोनों हाथों से छुपा लेगी। किसी अंग्रेज नाम को सुनकर उसे बहुत अजीब लगा। और वह उस नाम को ‘कहना’ नहीं चाहती थी, और अपना नाम भी नहीं बताना चाहती थी।

वे दोनों सुरक्षा कर्मी अपने साथ एक मजबूत थैली लेते वापस आये। यासाम और नयाङ जल्दी से उस थैली में अपने संतरे उठाकर भरने लगीं। इस जल्दबाजी में वे अपनी गिनती ही भूल गईं कि कितने पैसे हुए। पर उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ा क्योंकि सुरक्षा कर्मी ने उनके सामने मुट्ठी भर चमकते सिक्के रख दिये थे। वह मिलुन तब तक वहाँ इंतजार करता रहा जब तक कि निनम ने सिक्के अपनी छोटी थैली में न रख लिए। फिर उसने अदरक का एक टुकड़ा उठाकर शरारत भरे ढंग से उसे अपनी जेब में रख लिया और आगे चला गया। उसके पीछे वे दोनों सिपाही भी संतरे से भरी उस थैली को उठाकर चल दिए।

‘आई......उसने ऐसा क्यों किया?’ नयाङ आश्चर्य से पूछ रही थी। अदरक सुरक्षा के लिए उपयोग में लाया जाता है। जंगली अदरक बुरी आत्माओं को दूर भगाने का काम करता है। अदरक

का एक टुकड़ा छोटे बच्चों के गले में लटकाया जाता है ताकि उन्हें किसी प्रकार की बीमारी न हो और जब कोई व्यक्ति लम्बे सफर पर जाता है तब भी आदतन इसे साथ रख लिया जाता है, यह अदरक बहुत काम आता है।

'तब तो इन्हें हमारे रीति-रिवाजों का ज्ञान हो गया होगा शायद' नयाङ कहती जा रही थी, ' इन लोगों को तो सभी बातों का ज्ञान होता है।'

निनम उनकी बातों पर ध्यान नहीं दे रही थी। वह तो यह सोचने में व्यस्त थी कि वह उसे कैसे देख रहा था जब उसने अदरक अपनी जेब डाला। वह अजीब था। उसने ऐसा क्यों किया? उसकी उत्सुकता से विचलित वह थोड़ी डर गई थी। हर कोई बाजार में उनकी ओर ही देख रहा था। उसे ऐसा अभिनय करना पड़ा जैसे कि यह रोज का काम है। हालाँकि उसे पता था कि कभी ऐसा नहीं हुआ कि कोई आंग्रेज अफसर इस तरह बाजार के बीच जनजातीय महिलाओं के साथ संतरे खाए।

निनम, येलन गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति सोगोङ की अकेली पुत्री थी। वह अब उन्नीस वर्ष की हो चुकी थी, पर यह केवल अनुमान के आधार पर था क्योंकि उस वक्त जन्म और मृत्यु का कोई सरकारी लिखा-जोखा नहीं होता था। यह अनुमान इसलिए लगाया गया क्योंकि वह गाँव की उन कुछ लड़कियों में से थी जिसे अच्छे स्कूल में दाखिला मिला था।

कुछ साल पहले, उसके पिता ने उसे गाँव के नदी के पार लड़कियों के मिशन स्कूल में ले जाकर उसका दाखिला करवाया था। वह उसे पढ़ा-लिखा कर काबिल बनाना चाहता था। वह उसे किसी बेटे से कम काबिल नहीं समझता था। पर निनम के लिए यह उसकी पसंद का काम न था। अपने गाँव के स्कूल में कभी- कभार जाने के स्थान पर उसे इस स्कूल में भेज दिया गया जिसके ठंडे कमरों में वह नहीं बैठना चाहती थी, उसे स्कूल के कायदे और निश्चित चर्या पसंद नहीं थी। वह किताबों और प्रार्थना की किताबों से नफरत करती थी। वह उन शिक्षिकाओं से भी नफरत करती थी जो फूलों की छाप वाले कपड़े पहनती थीं और जिनके होंठ पतले होते थे, और सबसे ज्यादा नफरत वह उस कमरे से करती थी जहाँ पर सारी लड़कियाँ लम्बी सी कतार में मरी हुई मछलियों की तरह सोती थीं। एक साल बाद वह बीमार पड़ गई और ठीक नहीं हो रही थी। उस दिन जैसे उसे इस कैद से छुटकारा मिला जब उसके पिता उसे घर वापस ले जाने आये थे। उसने फिर से पहाड़ों को देखा, नदी की धारा का स्पर्श किया और वह एकदम ठीक हो गई।

हरे रंग की गाड़ी अब हर रोज दिखाई देने लगी थी। संयोग से एक दिन उस अफसर ने, जिसका नाम डेविड था उसकी मुलाकात उससे रास्ते में हो गई, उसने उसे घर तक छोड़ने का प्रस्ताव रखा। वह प्रस्ताव जिसे वह हमेशा मना करती रही और बाजार में किसी पुलिस के आदमी की तरह किसी की तलाश करती चलती थी। यासाम और निनम यह सब देख रही थीं। 'हाय! बेहतर होगा कि तुम उससे छिप जाओ !' वे अक्सर मजाक में कहती जब डेविड सामने दिख जाता था। 'क्या ! क्या वह और संतरे खरीदने जा रहा है ? वह कितने संतरे खायेगा !'

उसे बस आजादी चाहिए थी, उसने बात में यह बात अपनी सहेलियों को बतायी थी। उसे इस बात का डर था कि कहीं स्कूल उसकी आत्मा को ही न निचोड़ ले, या फिर उसकी आत्मा सदा के इस तरह बदल जाये कि वह कभी बहती नदियों को नहीं देख पाये।

अब वे पिगो बाजार से वापस घर लौट रही थी। उसे उसकी मिशन स्कूल की मेट्रन की याद आ गई जिसके बाल गहरे सुनहरे रंग के थे और आँखे नीले रंग की। बिल्कुल उस मिलुन के बाल और आँखों के समान। परन्तु उनकी आँखों में एक मुस्कान थी, एक कोमल सा आतुर प्यार का वादा था।

उस शाम हवा जोरों से चल रही थी। कटहल के पेड़ों के रस की हलकी-हलकी सी खुशबू वातावरण में छायी हुई थी। निनम उस शाम कुछ गुनगुनाती हुई खाना पका रही थी। उसके पिता घर के बरामदे में गाँव के कुछ लोगों के साथ बैठे हुए थे और उसकी माँ आग को हिला रही थी।

'वाह! क्या है यह ?' उसके पिता ने उससे पूछा जब उसने काला-आपोङ के साथ अंडे और अदरक को छोटे छोटे टुकड़ों में छीलकर उनके सामने परोसा। वह खुश होकर हँस पड़ी।'मैंने इसे बनाया है,' उसने कहा, और सबके सामने एक-एक कर परोसने लगी। ये वही कुछ दिन थे जब उसके पिता घर पर ही रहते थे। बाकी समय ज्यादातर सोगोङ घर से मीलों दूर जंगलों में अपने मिथुनों को घास चराने हर सुबह ले जाया करता था। या फिर अक्सर रात को वह रास्ते के आस-पास अपने दोस्तों के साथ बैठ कर पिया करता था। वह बहुत अच्छा वक्ता तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति था। उसने अपने शब्दों के दम पर कई कबाङ और गाँव के लोगों के बीच शांति के फैसले किये थे, परन्तु इससे भी अधिक वह दूर-दूर तक अपनी ईमानदारी और नेकदिली के लिए जाना जाता था। उनकी एक ही कमजोरी थी और वह था शराब पीना।

'वह देखो वहाँ हैं, तुम्हारे पिता, देखो !' उसकी माँ कहती थी, गुस्से में बुदबुदाती हुई, और भी बहुत कुछ। निनम उसे अपने सफेद शाल को ओढ़े हुए देखती थी, और नशे की हालत में अपने पिता को खूब उन्मुक्त स्वभाव में गाँव के पत्थरों से बातें करते देखती थी।

' पुराने दिनों में जीवन व्यतीत करना बड़ा मुश्किल था,' वे

कहते थे। ' हम अक्सर पत्थरों में से धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए और एक दूसरे को पुकारते थे क्योंकि हमें अकेले उन डरावने जंगलों में डर लगता था। अब आयिङ (बाहर के लोगों को कहा जाता है) हमारी भूमि छीन रहे हैं और हमें फिर से चट्टानों और शिलाखंडों में वापस जाना होगा। वश्स्श ! पर में अब भी महसूस कर सकता हूँ इन चट्टानों से होते हुए उन रास्तों को। मुझे याद है उन सभी की, उनकी आकृति, उनका आकार और स्पर्श,' और उसके बाद वे सही में झुक कर उन्हें प्यार से सहलाने लगे।

वह फिर से चट्टानों और पत्थरों की बातें करने लगे, और निनम समझ गयी कि ये लोग आज रात भर एक दूसरे से बातें करते रहेंगे और एक दूसरे से सलाह मशविरा करते हुए जागने वाले हैं। उसकी माँ अपने आप को घर में बनी सफेद चादर में किसी कोया की तरह लपेटे हुए कोने में सो रही थी। वह कुछ देर बैठी रही, उस शाम को याद करती हुई, उसके माता-पिता, उसके गाँव वाले, और उसकी सारी सहेलियाँ और उसकी अपनी जिन्दगी, इस घड़ी में, ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यह सब उसे अनगिनत खुशियों का अहसास दे रहे थे।

हरे रंग की गाड़ी अब हर रोज दिखाई देने लगी थी। संयोग से एक दिन उस अफसर से जिसका नाम डेविड था, उसकी मुलाकात उससे रास्ते में हो गई, उसने उसे घर तक छोड़ने का प्रस्ताव रखा।वह प्रस्ताव जिसे वह हमेशा मना करती रही और बाजार में किसी पुलिस के आदमी की तरह किसी की तलाश करती चलती थी। यासाम और निनम यह सब देख रही थीं।

'हाय! बेहतर होगा कि तुम उससे छिप जाओ !' वे अक्सर मजाक में कहती जब डेविड सामने दिख जाता था। 'क्या ! क्या वह और संतरे खरीदने जा रहा है ? वह कितने संतरे खायेगा !'

किन्तु डेविड अपनी ही धुन में था । वह उसका पीछा करता और उसे घेर लेता, वह उसका ध्यान पाना चाहता था। उसे किसी का डर नहीं था और निनम अपने मन में इस बात को जानती थी कि यह अजनबी उसे उन राहों पर ले जाने को बुला रहा है जो सिर्फ बर्बादी लायेंगी। सबसे अधिक डर उसे अपने ही उतावलेपन से था जो उस हरी गाड़ी के कुछ दिनों तक न दिखाई देने के कारण चरम पर होता था। पर फिर वह वहां ऐसे कहीं से आ जाता जैसे किसी जादू से ऐसा हुआ हो। उसका चेहरा धूप से झुलसा होता परन्तु उसे देखकर वह बड़ा ही खुश दिखता। बिना किसी कारण वह उसे याद करने लगती है, ऐसा लगता है जैसे वह उसे पहले से ही जानती थी कि वह कैसा इंसान है। ' ऐसा कैसे हो सकता है ?' वह अपने आप से हैरान होकर सवाल करती, वह सोचती कैसे ऐसे हो सकता है, वे तो एक-दूसरे की भाषा को भी नहीं जानते। डेविड उसकी भाषा को सीखने की पूरी कोशिश करता, वह उसकी भाषा के शब्दों को अजीब ढंग से कहता, जिसे सुन कर निनम और यासाम की हँसी फूट जाती, पर वह निनम खुद, उसने कुछ भी नहीं सीखा और उसके दिल की बात को भी नहीं समझ रही थी।

एक शाम, कुछ दिनों के लिए उसके चले जाने के बाद, निनम ने उसे नीचे छोटे से नए सिनेमा हॉल के सामने से जाते हुए देखा था। ऊपर से उसे देखते हुए निनम को आश्चर्य हुआ कि वह अब उसे दूर से ही पहचानने लगी है पर वह अपनी भावनाओं पर काबू करते हुए वहाँ से जल्दी चली गई। उसे कोई जरुरत नहीं थी वह बाजार में जाकर संतरे बेचने की, वह गाँव के एक जाने-माने प्रतिष्ठित व्यक्ति की बेटी थी, उसे वापस लौट जाना चाहिए था। परन्तु उसे अपनी सहेलियों के साथ बाजार जाना अच्छा लगता था और उसकी पढ़ने या अभी शादी करने की कोई इच्छा नहीं थी। वह शान से अकेली रास्ते चल रही थी, हवा के साथ एक होकर अपने शरीर की खुशबु के साथ मदमस्त। तब उसने किसी गाड़ी की आवाज सुनी और जान गई कि वही है।

वह अकेली चल रही थी। वह उसके साथ-साथ गाड़ी चला रहा था। वह रुका और गाड़ी में उसके आने का इंतजार करने लगा। जब उसने देखा कि वह शरमा रही है तो उसने इशारा किया कि वह उसे सिर्फ पुल तक ही छोड़ेगा। वह गाड़ी की बगल की सीट पर बैठ गई और शर्म से मरी ही जा रही थी कि गाड़ी ने हिचकोला लिया और वह आगे की तरफ आ गई। उसने अपना हाथ बढ़ा लिया ताकि वह आराम से बैठ सके और कुछ देर के लिए उसने अपनी साँसे रोक लीं। वे तेजी से पैदल चलने वाले लोगो से आगे बढ़ रहे थे और निनम लोगों के हैरान चेहरों को देख रही थी। जब वे पुल पहुँचे तो डेविड उतरा और उसके लिए गाड़ी का दरवाजा खोल दिया। उनके शरीर आपस में स्पर्श कर रहे थे। वह शांत खड़ा और चुप था और वह झिझकती हुई मुड़ी। डेविड ने उसके बालों को हलके से छुआ और उगँली उसके होठों पर रख दी। फिर वह मुस्कुराते हुए दूसरी तरफ से गाड़ी लेकर आगे बढ़ गया।

गर्मी के उस महीने में पूरब के तेज सूरज के कारण दोपहर को लोग अपने-अपने घर में कैद हो जाते और देर शाम तक बाहर नहीं निकलते परन्तु रातों में भी थोड़ी गर्मी होती। वह अब उससे नहीं डरती थी और उसके साथ कुछ दूर तक टहलने भी जाने लगी थी। कभी-कभी वह उसके साथ पुल पर भी खड़े रहता। वे लगातार एक-दूसरे से इस तरह से मिलने लगे, और इस तरह छह महीने बीत गए। छोटी-छोटी चीजें उनका ध्यान खींच लेती थीं। एक दिन उसने पहाड़ों की चोटी में से निकलते हुए शाम के चाँद को देखा। नदी चाँदी की तरह चमक रही थी और धुंधले रास्ते पर उन्हें अपनी आत्मा कुछ उन्मुक्त और शक्की तथा सतर्क और उत्पीड़ित लगती। बहुत से लोगों ने उन्हें एक साथ इस तरह से देखा था।

उस वक्त की उपलब्ध सूचना के मुताबिक कप्तान डेविड फर्ग्युसन एक बहुत ही काबिल अफसर थे जिसे पहाड़ी इलाके के

लोगों की सेवा के लिए और नए राजनीतिक अफसरों की नियुक्ति के लिए बंगाल से भेजा गया था। हर कोई उसे डेविड साहिब के नाम से जानते थे। वह करीब 28 वर्ष की उम्र का था। वह खुले दिल का और मिलनसार व्यक्ति था जो अच्छी हिन्दी बोल लेता था और ऐसा लगता था कि वह बहुत जल्दी ही नई भाषाओं को भी सीख लेता है क्योंकि अब तक उसने स्थानीय भाषा के कई शब्दों को अपने प्रयोग में शामिल कर लिया था। वह पुलिस के जवानों के साथ बालीबाल खेलता था। कभी-कभी वह जब गाँव के बच्चों को रास्ते में देखता तो अपनी जीप रोक देता और उन्हें गाड़ी की सवारी कराता और उन्हें गाड़ी से भी खेलने देता।

उसने अटकते और नए सीखे शब्दों के साथ जूझते हुए निनम को बताया कि उसके पिता भी किसी सीमा क्षेत्र के गाँव में थे जिसने भारत का भ्रमण किया था और यहाँ इस इलाके में भी ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्टीमर-जहाज से आए थे। उसने उसे बताया कि इन पहाड़ों की सीमा के पार वह नदी जिसे वे लोग अब ढेर सारे पानी के साथ छल्ले की तरह देखते हैं वह नदी गहरी घाटी से बहती हुई जाती है, उसे उसके देश के कुछ ही लोगों ने देखा है, क्योंकि वह घाटी हमेशा धुंध बादलों और जलकणों से ढकी रहती है। वह अपने हाथों से लम्बे आड़े-तिरछे इशारे करते हुए उसे समझा रहा था और निनम उसे सुनती और हर शब्द को समझने की कोशिश करती जा रही थी।

यह एक बड़ी रहस्यमय बात थी कि इस छोटे से पहाड़ियों में बसे शहर में जो देश के बाकी शहरों से अनजान था, कैसे दो अजनबी एक दूसरे के साथ इतना वक्त बिता रहे थे। किताबी ज्ञान में डेविड शायद निनम के लिए पूरी तरह से अजनबी था, पर उसके मन की गहराईयों में उसे ऐसा लगता था कि वह उसके जीवन से पूरी तरह परिचित है। उसे ऐसा महसूस होता था कि वह जिस समुद्र की बड़ी-बड़ी लहरों की बातें नदी की और इशारा करते हुए हर समय कहता था वह उसे जानती है। उसके द्वारा वह पूरी दुनिया को देख रही थी। वह शहर और गलियों में लोगों की भीड़ को देखती और आकाश में मंडराते हुए आवाज करते हवाई जहाज को भी, जो उसे किसी दूर जगह जाने की तमन्ना से भर देते।

चुपके से वह भी उसकी कल्पनाओं की उड़ान को देखता था। क्यों वह इतनी चिंता करता था इस शांत, जवान अजनबी स्त्री के लिए जो और पढ़ी-लिखी न थी। किन्तु वह हर बात इशारों और आँखों से कह जाती थी। वह एहसास जो किसी के अन्दर भगवान के होने का संकेत करता था। वह यही हर बार सोचता था। यह इस तरह था कि शायद वे दोनों ही एक साथ अपने अतीत से आए हों। जब वह उसके साथ होती थी तो वह मुस्कुराता और उसकी रुचि को समझने की कोशिश करता, उसे डर था कि कहीं वह उसे खो न दे। वह अपने बारे में उसे सब कुछ सावधानी से बताता ताकि वह उसे अच्छे से जाने न कि उससे डरे।

पर जब वह अकेला होता था तो वह नदी की बहती धारा की आवाज सुनता और उसे पता था कि वह जिन्दगी के मायने तलाश रहा था, और उसे यह एहसास हो रहा था कि यही वह औरत है जिसके जरिये वह धरती के राज, आसमान की नीरवता और यहाँ तक कि अपने में समाये हुए अनगिनत वर्षों की गहराइयों की उस पीड़ा से रुबरु होने जा रहा था और शायद उससे अब उसे पुनर्जन्म होने का एहसास हो भी रहा था।

डेविड से बड़े अफसर, राजनीतिक अफसर थे जिन्हें गाँव वाले मिगोम (अफसर) बुलाते थे, जो सड़क के किनारे बंगले में रहते थे और जिसके चारों ओर सफेद रंग से रंगे टकटे (बांस के तनों) का घेरा बना हुआ था। डेविड पास के छोटे बंगले में रहता था जो पेड़-पौधों से घिरा हुआ था। मिलुन के घर लकड़ी से बने थे। छत पर टिन और अन्दर कागज से बने तख्ते लगे होते थे और जमीन से एक फुट ऊँचाई पर कंक्रीट के खम्भों पर बनाये जाते थे ताकि साँप और जोंक से बचाव हो सके। दोनों बंगलों में खिड़कियाँ बनी हुई थीं जिससे नदी का नजारा देखा जा सकता था। डेविड एक बार निनम को उसके घर लेकर आया था ताकि उसे वह नदी का नजारा दिखा सके, जिसे वह रोज देखता रहता था। झाड़ियों के करीब से उसने उस उफनती घूमती बहती नदी को निहारा था। सूरज की किरणें नदी के स्वच्छ पानी के साथ खिलवाड़ कर रहीं थीं, उसे लगा कि वह भी उसके साथ नदी के बहाव में बही जा रही है। उस अज्ञात मंजिल की ओर। ....कहाँ ? किसे पता, पर वह अभी जवान और नादान थी, सभी कुछ से प्रभावित होने वाली, यही सोच रही थी कि अब जो कुछ उसके साथ हो रहा था उसका उसके भविष्य पर अवश्य असर होगा ।

एक बदलाव की प्यास, तेज हवा की तरह आ रही थी, घाटियों से प्रतिध्वनि आवाजें सुनाई पड़ रही थीं। जिस तीव्रता से बह रही थी, निनम सोचने लगी कि क्या वह इसमें जिन्दा रह पाएगी। ये हवाएं दुविधा में डाल देती थीं और खुद से वह पुनः-पुनः सवाल करती थी, चिंता में किस कारण से ? और किसके लिए ? वह क्यों चीजों को बदलना चाहती है, वह जो कुछ खयालों में सोचती है वह उन ही खयालों में जीना चाहती थी वह खयाल जो उसे बाँध कर रखे था ? वह एक कैद किये गए जानवर की तरह हो गई थी, सिकुड़ी हुई और सरसराती हवा की आवाजें सुनती, तैयार थी उस बीते समय और जगह को भुलाने के लिए अब जबकी वह इस बहाव में शामिल हो गई थी जो उसके खून में जोर जोर से ठाठें मार रहा था। (क्रमशः)

इग्नू, नई दिल्ली,
मो. 0 96541 77491

राकेश धर द्विवेदी की कविताएं

वह नदी नहीं माँ है



मेरे बचपन में मेरी मां ने एक किस्सा सुनाया
कि गंगा मां को आर-पार की पियरी चढ़ाई
और बदले में पुत्ररत्न का उपहार पाया,
धीरे-धीरे मैं बड़ा होकर अपनी यौवन अवस्था में
पुनः उसी नदी के तट पर नौकाविहार करने आया

और नदी की चंचल लहरों ने अपने निर्मल जल से दुलार कर
मेरे उज्ज्वल जीवन के शुभकामना संदेश को सुनाया
आज जीवन के अंतिम समय में
मेरे तमाम नातेदार, रिश्तेदार

मेरे निर्जीव नश्वर शव को
रख आये नदी के तट पर
और तिरोहित कर दिया सारा प्यार दुलार
भाव अनुराग, यह समझकर कि डुबो देगी नदी

इन्हें मेरे साथ अतल गहराई में
लेकिन नहीं, नदी की लहरों ने नहीं डुबोया मुझे
लगाकर अपने वक्षस्थल से घुमाती रही पूरे नदी तट पर
कुछ इस तरह जैसे कोई मां अपने

नवजात शिशु को स्तनपान करा रही हो।
और दुनिया को यह बता रही है ये मेरा अंश है
और उद्घाटित कर रही इस सत्य को वह नदी नहीं मां है।

कागा तुम नहीं आते मेरे द्वार

कागा तुम नहीं आते मेरे द्वार
वर्षों पहले तुम आते थे
अपनी कांव-कांव से यह बताते थे
कि प्रिय घर आने वाले हैं।

और मैं सज धज कर
तैयार हो जाती थी, तुम्हारे इंतजार में।
और प्रेम कबूतर तुम
तुम भी नहीं आते हो
न चिट्ठियां लेकर जाते हो
न साजन का कोई नया संदेश सुनाते हो
न निशि दिन छत की मुंडेर पर खड़ी
निर्मल आकाश को निहारती रहती हूँ
और तुम 'निष्ठुर' पक्षी नहीं आते हो

और हीरामन तुम
तुमने तो न जाने कितनी बार पिया मिलन की आशा जगाई
बार-बार उनका नाम पुकार मेरी प्रीत खूब बढ़ाई।
खैर मैने भी तुम्हारी निष्ठुरता से तंग आकर
एक वैज्ञानिक यंत्र कम्प्यूटर से दोस्ती कर ली

और प्रतिदिन ई-मेल चैटिंग से
प्रेम पथ पर बढ़ रहे हैं
महीनों बाद आज फिर तुम तीनों की याद आई है।

क्योंकि आज मेल बाउंस हो गया है।
और संदेशे का जवाब आया है कि
प्राप्तकर्ता अपने पते पर उपलब्ध नहीं है।
इसलिए तुम तीनों से हाथ जोड़कर है ये गुहार
कि फिर से पधारो म्हारो द्वार !

5/58, विनीत खण्ड,
गोमतीनगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

समीक्षा

सूक्त वाक्यों की वर्तमान जरूरत : 'कहना जरूरी है'

◆ बद्री सिंह भाटिया

दुनिया में ऐसा कोई जीव नहीं जो विचार अथवा राय नहीं रखता हो। राय विचार से उत्पन्न होती है। विचार ज्ञान की गहनता, तर्कणा से एक निश्चित रूप में निःश्रृत होता है। विचारों की अभिव्यक्ति में मनुष्य विशेष स्थान रखता है। विचारों की सांद्रता लोकोक्तियों, मुहावरों और सूक्त वाक्यों में अधिक प्रकट होती है। प्रत्येक व्यक्ति रचनाकार होता है और किसी एकांत, दो पर दो, समूह आदि में बैठ कर अपने अनुभव प्रकट करता है। कथा, कहानी के रूप में वार्तालाप अथवा विचार-विमर्श में अपनी बात अथवा ज्ञान को स्पष्ट करने में उक्त तीनों अभिव्यक्तियों का प्रयोग करता है। कई बार दूसरे उन लोगों के विचारों का उद्धरण भी करता है जो अपने विचारों के कारण श्रेष्ठता प्राप्त कर अमर हो गए होते हैं। ये व्यक्ति किसी मिशन, किसी विशिष्ट संत परंपरा अथवा दार्शनिकता के पुंज रहे होते हैं। उनका जीवन एक आदर्श बन सामने आता रहता है।

खलील जिब्रान, मैक्यावली, चाणक्य, दयानंद सरस्वती, कबीर, गांधी, मार्क्स आदि हमारे जीवन में अहम स्थान रखते हैं। महात्मा बुद्ध एक अलग प्रकार से भी सामने रहते हैं। इनके आदर्श, इनके आचरण और सूक्त वाक्य हमें राह दिखाने में अहम भूमिका निभाते हैं। इन लोगों अथवा आदर्श पुरुषों की अभिव्यक्ति, जीवनचर्या का तो अनेक लोगों ने अनुसरण कर पुस्तकें लिख डालीं, आश्रम खोल दिए आदि।

जीवन के झंझावात में फंसा व्यक्ति किसी निर्णय पर न पहुंच, परेशान सा फिर ऐसे स्थलों, ऐसे व्यक्तियों के पास पहुंच ही जाता है।

विचारों को लेकर सूक्त वाक्यों की एक पुस्तक इन दिनों हमारे सामने आई है। अपनी आयु से आगे सोचता व्यक्ति विचारों की सांद्रता के साथ सामने आया है, देश के सुदूरवर्ती अंचल मेघालय के शिलांग शहर में, भरत प्रसाद।

भरत प्रसाद की यह पुस्तक 'कहना जरूरी है' शीर्षक से पृथ्वी की मानवता के सर्वकालिक महानायक सिद्धार्थ गौतम, तथागत बुद्ध को समर्पित है।

विचार के बारे में भरत प्रसाद अपनी भूमिका में कहते हैं, यह पृथ्वी मनुष्यों की ही नहीं, सैकड़ों अर्थों, रंगों और प्रकृति वाले विचारों की युद्धभूमि है।... विचार हमारी आंखों की ज्योति हैं, मन की मूलभूत आदत हैं, आत्मा का ईंधन और शरीर के प्रत्येक अंग को आदेश पर आदेश, सुझाव पर सुझाव, चेतावनी पर चेतावनी देने वाले और हमें सर्वोच्च दंड देने वाले शस्त्र हैं।

विचारों की इस पुस्तक में जीवन के प्रत्येक पहलू को छुआ गया है। इनमें प्रेम, रचना, समाज, देश, आदमी, चिंतन आदि हैं। अधिक्य साहित्य व रचना का है। संभवतः वे स्वयं एक साहित्यकार हैं।

पुस्तक को दो भागों में विभक्त किया गया है। पूर्व दिशा और उत्तर दिशा। अकारांत से आरंभ पुस्तक स्वर और व्यंजनों की भूमिका भी निभाती है।

साहित्य पर अपना मंतव्य प्रकट करते वे रचनाकार की ओर उन्मुख होते हैं। रचनाकार सर्जक होता है। वह समाज को खुली आंखों से देखता, विचार, मनन करता एक निष्कर्ष पर पहुंच अपनी रचना प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि - सृजन में तीन प्रकार के अस्तित्वों की भूमिका केंद्रीय है। सर्वप्रथम विषय की, फिर रचनाकार की, तत्पश्चात कौशल की।...

यह कौशल ही है जो रचना को सुनवाता है अथवा पढ़वाता है। कौशल की न्यून कमी भी रचना से विमुखता पैदा करवाती है।

सृजन की एक भाषा होती है। वह कहता है कि सृष्टि में ऐसा कुछ भी नहीं,जिसकी अपनी मौलिक भाषा, शैली और अर्थवत्ता न हो... पृष्ठ 79

यह सही है। सब कुछ घटित है और अभिव्यक्त है फिर भी हम कहे जा रहे हैं, लिखे जा रहे हैं। यह शिल्प ही तो है जो आकर्षित करता है। 'सृजन की सच्ची आग को नहीं चाहिए प्रसिद्धि, नहीं चाहिए सर्वस्वीकृति, नहीं चाहिए तात्कालिक कामयाबी। वह दुःख की गहन अंधतम निशि में ही धधक-धधक कर काल के उस पार तक जलती रहती है।'

वे रचनाकार से आगे आलोचक पर भी बात करते हैं। आलोचक कारीगर की वह 'साण' होता है या सुनार की एक कसौटी जो रचना को घिस कर, रगड़ कर देखता है कि उसमें सोने

सी चमक या लोहे सी चिंगारी है भी कि नहीं परंतु वह कहता है, 'साहित्य की रक्षा में उठी आलोचक की कलम साहित्य को नहीं बचा पाएगी, बल्कि मनुष्य को बचाने में उठी हुई आलोचक की कलम से ही साहित्य सुरक्षित रहेगा।'

रचनाकारों के बारे वह आरंभिक पन्नों में बताता है कि परकाया प्रवेश रचनाकारों का आनुवंशिक गुण है। सही है वह विभिन्न रूपों में प्रकट हो अभिव्यक्ति को अंजाम देता है। वह अर्द्धनारीश्वर होता है।

बाजारवाद पर बात करते भरत प्रसाद कहते हैं कि दासबाज साहित्यकारों की विवेकशून्य जमात इसी बाजारवाद की देन है। और भी मनुष्य को बुद्धिमान जानवर के रूप में तबदील करने वाली भाषा का नाम बाजारवाद है।

उन्होंने देश, जाति, धर्म, किसान आदि विषयों को भी अपनी विचार शृंखला में प्रकट किया है। वह कहता है -

धर्म, जाति और पारलौकिकता भारतीय
मनुष्य का निर्माण करने वाले तीन घातक
तत्व हैं
और भी
अमीर द्वारा गरीब को मामूली समझा जाना
जातिवाद है। घर, समाज और देश की स्त्री को
खुद से कमतर आंकना जातिवाद है।

देश पर बात करते वह कह उठता है कि समय की सुई मनुष्य से कई गुना निष्पक्ष और निर्णायक होती है। ...देश है किसान, देश है मजदूर, देश है श्रमिक... देश है नौकर।

देश धर्म, जाति से होकर मनुष्य की विभिन्न वृत्तियों, प्रकृतियों की ओर जाता विश्रृंखल हो कुरीतियों, कुंठाओं का भी जनक है। अधिक छूट से मनुष्य शक्ति संग्रहण करता अनाचार, अत्याचार, व्यभिचार की ओर भी उन्मुख होता है। यह कड़वी दवा है। सर्वोच्च बनने की चाह में वह कुछ भी करने को तत्पर रहता है। यह वह अंतःयुद्ध है जो दूसरों से श्रेष्ठ, शक्तिशाली बनने की सतत कोशिश है। ये पार्टियों की बहुलता, ये बाबाओं की बहुलता अंधविश्वास और पक्षधरता को प्रकट करती घातक है।

भरत प्रसाद एक सूक्त वाक्य में कहते हैं -

प्रेम से बढ़ कर कीमती और जी भर कर
लुटाने योग्य पूंजी इस जीवन में और क्याफ

पूंजी पर अपनी अभिव्यक्ति के महानायक मार्क्स की विचारधारा के प्रतिफल और वर्तमान के दृष्टिगत भरत प्रसाद ने अपने निष्कर्षों को प्रकट किया है। वह कहते हैं :

भारत में मार्क्सवादी चेतना भारतीय
कार्ल मार्क्स के पैदा होने से ही जन्म लेगी।
और
मार्क्सवाद पढ़ कर मार्क्सवादी हो जाना
बड़ा आसान है, किंतु मार्क्स को जी कर
मार्क्सवादी कहलवाना मुश्किल।

संभवतया भरत प्रसाद का मंतव्य यह है कि मात्र विचारधारा रखने से ही काम नहीं चलने वाला उसे प्रायोगिक तौर पर जीवन में कर्मक्षेत्र में उतार ज्यादा प्रभावी बनाया जा सकता है। भारत के बारे में भी उनका शायद यही मंतव्य हो सकता है कि मार्क्सवादी विचारधारा को मूल अवधारणा से आगे व्यापकता की विशालता को अंजाम देना होगा। केवल शोर मात्र से या उकसाहट से कि कोई और कृत्य करें से बात नहीं बनने वाली।

वे श्रमिक के बारे में में भी कहते हैं, 'श्रमिक को मजदूरी तो मिल जाती है, लेकिन उसने अपने हृदय, अपने सम्मान और अपनी आत्मा को जो बेच दिया, उसका मूल्य कौन चुकाएगा?'

यह अहम प्रश्न है और विचारणीय भी कि जब कोई व्यक्ति श्रम करता है वह कहीं भी किसी भी क्षेत्र में हो, जिस काम को अंजाम देता है, उसका उसे उसके अनुरूप मेहनताना मिलता है। उसके ज्ञान, उसकी शक्ति का परीक्षण कर ही तो उसे काम दिया जाता है। काम में हृदय, उसकी प्रतिष्ठा और आत्मा सब लगी होती है। फिर यह विक्रय - कहीं स्पष्टता की मांग भी करता है और पुनः परख की भी।

अनेक विचार, अनेक पहलू लिए यह पुस्तक आज के समय की जरूरी पुस्तक है। यह घाटी वाले बाबाओं, संतों आदि के सूक्त वाक्य प्रयोग की ओर उन्मुख न होकर जीवन की प्रायोगिक धरती पर ठीक से विचरण करने की एक अहम पुस्तक है।

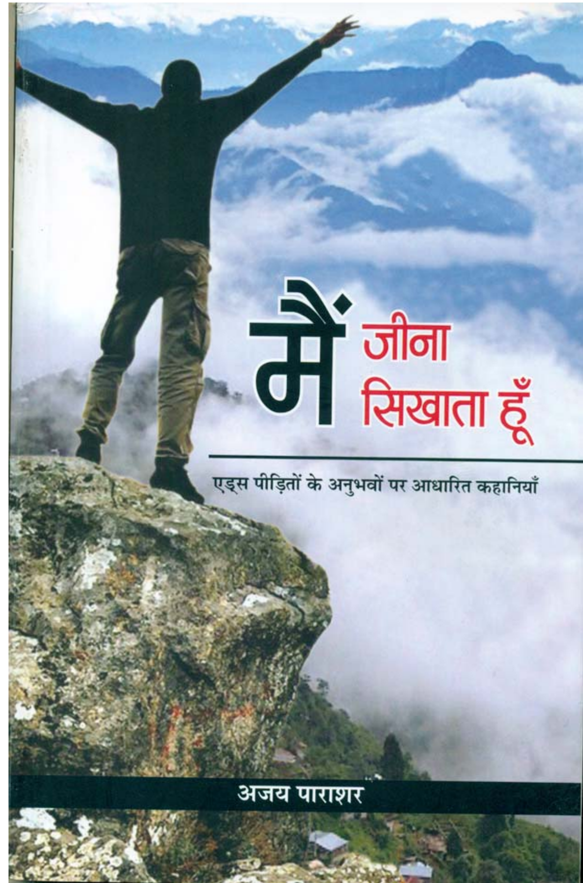
पाठक पढ़कर, विचार, मनन कर अपने भीतर उठे प्रायोगिक झंझावात के साथ मिलान कर प्रत्युत्तर समाधान निकाल सकते हैं।

ग्रीनवुड, दूसरी मंजिल,
गांव दुधली, डा. भराड़ी, शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171 001

पुस्तक : कहना जरूरी है (विचार) लेखक : भरत प्रसाद
प्रकाशक : प्रतिश्रुत प्रकाशन, कलकत्ता, मूल्य : 100 रुपये

समीक्षा

जीना सिखाती कहानियां



इस धरा पर मनुष्य के जीवन का सफर श्मशान, कब्रिस्तान में खत्म होता है। जन्म से मरण तक के सफर में जीवन चलता रहता है। जीवन को जीना ही एक कला है। इस धरा पर हर व्यक्ति की शक्ल-सूरत अलग-अलग है। वैसे ही जीवन की कठिनाइयां भी अलग-अलग होती हैं। भारतीय संस्कृति में इसे किस्मत की संज्ञा दी गई है। हिंदी साहित्य के प्रबुद्ध लेखक डॉ. सुशील कुमार फुल्ल के शब्दों में, "यथार्थवाद की अतिशयता एवं परिवेशगत प्रदूषण के कारण कई बार जाने-अनजाने हम ऐसे भंवर में फंस जाते हैं कि सांस लेना दूभर हो जाता है और हम मृत्यु का आलिंगन करने के लिए उद्विग्न हो जाते हैं।"

मानव के स्वच्छ जीवन के साथ दुःख-तकलीफ व रोग भी अपनी पहली सांस से आखिरी सांस तक जुड़ा है। इनका मानव के साथ चोली-दामन का संबंध है। कुछ रोग मानव के लिए प्रतिरोधात्मक शक्ति भी प्रदान करते हैं। लेकिन कुछ रोग ऐसे हैं, जिनका नाम व जिक्र होते ही सिहरन पैदा हो जाती है। एड्स/एच. आई.वी. संक्रमण ऐसा ही रोग है, जो व्यक्ति/परिवार को समाज की नज़रों में एकाएक गिरा देता है। अनेक बार दोष, दोष ग्रसित व्यक्ति का नहीं होता।

यह विडंबना है कि समाज से एड्स ग्रसित व्यक्ति को हमदर्दी की अपेक्षा नहीं रहती, बल्कि उसे समाज एक कलंक के रूप में देखता है। अब समय बदला है। कुछ संस्थाएं एड्स रोगियों के लिए सहारा बनी हैं। वे उन्हें जीना सिखा रही हैं। ऐसा ही एक गैर सरकारी संगठन है 'गुंजन' जिसने एड्स ग्रसित रोगियों की ओर मदद का हाथ बढ़ाया है।

एड्स/एचआईवी ग्रसित रोगियों के जीवन/घटनाक्रम पर आधारित पुस्तक 'मैं जीना सिखाता हूं' प्रकाश में आई। हिमाचल प्रदेश के युवा लेखक अजय पाराशर द्वारा लिखित इस पुस्तक में 16 कहानियां शामिल की गई हैं। ये सभी कहानियां उन व्यक्तियों के जीवन का एक मार्मिक यात्रा वृतांत हैं, जिन्हें इस रोग का सामना करना पड़ा।

एड्स यानी पल-पल सदृश्य मौत। अजय पाराशर का इस पुस्तक के प्रकाशन का उद्देश्य है कि समाज का नजरिया एड्स/एचआईवी ग्रसित लोगों के प्रति बदला जा सके।

पाराशर ने इन 16 कहानियों में जीवन से हार चुके व्यक्तियों को एक नया जीवन दिया है। रिसता है घाव नासूर बनकर, गलती हो गई, दिल तो करता है, भरोसा, मैं जीना सिखाता हूं आदि कहानियों को पढ़कर पाठक की आंखों में आंसू झलकना स्वाभाविक है। इन कहानियों में जीवन एक ऐसी चट्टान पर खड़ा नजर आता है, जहां एक ओर खुदकुशी करने का मन करता है, या जीवन जीने की उड़ान भरने का।

हम सभी एड्स बारे सुनते हैं, देखना नहीं चाहते, एड्स रोगी से हमदर्दी तो दूर की बात है। इस पुस्तक में एक ऐसा संदेश छुपा है, जिसे पढ़ कर ही प्राप्त किया जा सकता है। इनमें से कुछ कहानियां पाठ्यक्रम में शामिल किए जाने की सामर्थ्य रखती हैं। अनुभवों को पढ़कर साझा करने वाली पुस्तक 'मैं जीना सिखाता हूं' एक सराहनीय पहल है।

वरिष्ठ संपादक

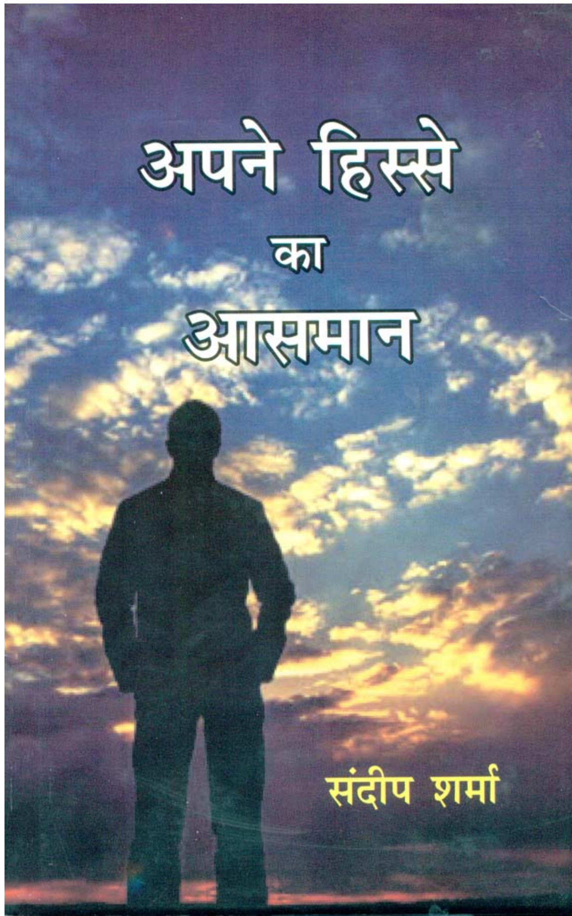
पुस्तक : मैं जीना सिखाता हूं लेखक : अजय पाराशर प्रकाशक : बोधिक प्रकाशन, जयपुर
मुद्रक : तरु ऑफसेट, जयपुर मूल्य : 200 रुपये

समीक्षा

ग्राम्य जीवन के यथार्थ का सजीव चित्रण

अपने हिस्से का आसमान

हिमाचल प्रदेश के युवा साहित्यकार संदीप शर्मा की नई पुस्तक 'अपने हिस्से का आसमान' प्रदेश के ग्रामीण परिवेश के यथार्थ के धरातल पर उपजी कहानियों का एक ऐसा संग्रह है जो पहाड़ों के जीवन के संघर्ष का सजीव चित्रण प्रस्तुत करती हैं। आज की शिक्षित युवा पीढ़ी ग्रामीण संस्कृति के बजाय शहरी रहन-सहन व जीवन शैली के मोहपाश में फंसती जा रही है। युवा पीढ़ी को अपनी समृद्ध संस्कृति से जोड़े रखने के लिए यह अति आवश्यक है कि ग्रामीण समाज को केंद्र में रखकर साहित्य सृजन को बढ़ावा दिया जाए। युवा लेखक संदीप शर्मा की नई पुस्तक इसी दिशा में किया गया एक सराहनीय प्रयास है और ऐसे साहित्यिक प्रयासों को यथासंभव प्रोत्साहन मिलना चाहिए। हमारे ग्रामीण समाज के तकरीबन हर गांव की पहचान किसी न किसी पेड़/वृक्ष या महत्त्वपूर्ण स्थल से अवश्य जुड़ी होती है। कमोबेश गांव के लोगों के रोजमर्रा के व्यवहार में इस पहचान का जिक्र अकसर देखा जा सकता है। समीक्षित पुस्तक की मुख्य कहानी 'अपने हिस्से का आसमान' में लेखक ने भी कथानक की शुरुआत एक आम के पेड़ से की है जिसका नाम 'आम टपकू' है। कहानीकार लिखता है, "इस आम का नाम 'टपकू आम' इसीलिए पड़ा था कि बस आम का सीजन शुरू हुआ नहीं कि टपकू आम के आम सबसे पहले टपकने शुरू हो गए। पता नहीं! क्या जल्दी रहती है इन आमों को नीचे टपकने की कि बस अधपके ही नीचे टपक पड़ते। शायद जमीन से मिलने और हम बच्चों के पेट में जाने की बहुत जल्दी होती होगी।" इस कहानी के मुख्य नायक 'टपकू' का नाम भी इसीलिए पड़ा कि वह शादी के पांच महीने बाद ही इस दुनिया में टपक पड़ा था। किसी और का अंश होने के कारण यह बालक उसके पिता को आंखों नहीं सुहाता। एक तरफ वंश को आगे बढ़ाने की लालसा तो दूसरी तरफ बालक पर हरामी का लांछण और उससे भी ज्यादा महिला के चरित्र पर संदेह, जीवन की इस जद्दो-जहद में अभागे बच्चे का क्या कसूर, बालक को गांव में खेलते अपने दोस्तों तथा स्कूल में सहपाठियों के व्यंग्य बाणों की असहनीय पीड़ा के साथ जीना पड़ता है। टपकू के जीवन संघर्ष को बयान करती यह कहानी सामाजिक कुरीतियों और संकीर्ण सोच पर तीखे प्रहार करती है। इस पुस्तक में संग्रहीत सभी 17 कहानियां गांव के परिवेश से निकल कर किसी न किसी उद्देश्य तक अवश्य पहुंचती हैं। जीवन के इसी संघर्ष में कठपुतलियां, बहुरूपिया, नंदी बैल, ढोल की तान, पत्थर चौथ जैसी कहानियां सुघड़ पात्रों के माध्यम से अपना आकार पाती हैं। कहानीकार ने इन कहानियों में अपने जीवन, विशेषकर पुरानी पीढ़ी के अपने बुजुर्गों के अनुभवों के निचोड़ को साहित्य में डालने का प्रयास किया है। कहानियों में कथानक का चित्रण यदि पात्रों के माध्यम से आकार प्राप्त करता तो पात्र और भी सजीव हो उठते। हिमाचल प्रदेश में सुंदर लोहिया, केशव, सुशील कुमार फुल्ल, एस.आर. हरनोट व बद्री सिंह भाटिया जैसे नामचीन अनेक साहित्यकारों ने साहित्य में ग्रामीण परिवेश के चित्रण की जिस समृद्ध परंपरा को स्थापित किया, उसे आगे ले जाने में संदीप शर्मा जैसे युवा लेखक का प्रयास प्रशंसनीय है।



संपादक

पुस्तक : अपने हिस्से का आसमान लेखक : संदीप शर्मा, प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, 4268-बी/3 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 मुद्रक : बी.के. ऑफसेट, दिल्ली-32 मूल्य : 300 रुपये



महामहिम राष्ट्रपति के सम्मान में आयोजित नागरिक अभिनंदन समारोह में उन्हें स्मृति–चिन्ह भेंट करते हुए राज्यपाल आचार्य देवव्रत और मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर



महामहिम राष्ट्रपति राम नाथ कोविंद सोलन स्थित डॉ. वाई.एस. परमार बागबानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में मेधावी छात्रा को उपाधि प्रदान करते हुए

पंजीकरण संख्या : 845/1957 मई, 2018 एच.पी./79 एस.एम.एल. 2018–20



शिमला के मशोबरा स्थित राष्ट्रपति निवास 'द रिट्रीट' में महामहिम राष्ट्रपति राम नाथ कोविंद

अनुपम कश्यप, निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित तथा यश पाल शर्मा, नियंत्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग द्वारा हिमाचल प्रदेश सरकार के लिए राजकीय प्रेस, शिमला–171005 से मुद्रित करवाकर शिमला से प्रकाशित। सम्पादक वेद प्रकाश।

ISSN 2454-972X

हिमप्रस्थ

जून, 2018



कलात्मक हाथों का हुनर
कामरू किला किन्नौर



शिमला में पर्यावरण संरक्षण के लिए 'पॉलिथीन हटाओ अभियान' का शुभारंभ करने के उपरांत
विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर पर्यावरण हितैषियों के साथ मुख्य मंत्री श्री जय राम ठाकुर



ISSN : 2454-972X

हिमप्रस्थ

वर्ष : 63 जून 2018 अंक : 3

सम्पादकीय कार्यालय : हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्क : 150 रुपये, एक प्रति : 15 रुपये

रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374
Website: himachalpr.gov.in/himprastha.asp

ज्ञान सागर

सज्जनों की मुसीबतों को सज्जन ही दूर कर सकते हैं।

– अज्ञात

इस अंक में

लेख

पर्यटन मानचित्र पर किन्नौर	धर्मेंद्र नेगी	3
पर्यटकों को लुभातीं किन्नौर की वादियां	वि. प्र. काला	5
किन्नौर की राहों पर	राम कृष्ण कौशल	7
साल भर चलते हैं जनजातीय किन्नौर में त्योहार	विपिन	9
सुस्कार : किन्नौर का प्रसिद्ध त्योहार	जगत बंधु	11
अर्थव्यवस्था में कृषि-बागबानी का अहम किरदार	रुचि काला	12
जल जंगल जमीन जीवन संरक्षण में साहित्यकार की भूमिका	डॉ. दादूराम शर्मा	16
मोहन राकेश के कथा-साहित्य में संवेदना के विविध आयाम	डॉ. राजेंद्र सिंह	23
प्राचीन भारत में विषकन्या अस्तित्व एवं स्वरूप	डॉ. आर. वासुदेव प्रशांत	26
छायावाद के गांव में एक दिन	श्याम नारायण श्रीवास्तव	29

कहानी

सोलह प्रेम पत्रों में लिपटी जिंदगी	राजगोपाल सिंह वर्मा	36
एक स्त्री, प्यारी नदी सी मूल लेखक : ममांग दाई अनुवाद : डॉ. जगदीश शर्मा		41

कविता/ग़ज़ल/गीत

जन्म दे हे! जननी	दिलीप 'विद्यानंदन'	33
पहाड़ और समुद्र	सत्यनारायण स्नेही	34
गांव, इन दिनों	ओम नागर	34
महेश शर्मा धार के गीत और ग़ज़ल		35
समानता	एल.आर शर्मा	45
स्वच्छता	बलवीर चंद उप्पल	47

समीक्षा

जनजातीय जीवन शैली 'पांगी घाटी की पगडंडियां एवं परछाइयां'	कृष्णवीर सिंह सिकरवार	46

आखिरी पन्ना

सावन का इंतजार	विनोद भारद्वाज	48

अपनी बात

हिमाचल प्रदेश अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए विख्यात है। हरियाली का आवरण ओढ़े हरे-भरे वन, सफेद बर्फ से ढंकी गगनचुंबी चोटियां और बारह महीने कल-कल बहती नदियां आगंतुकों को हिमाचल भ्रमण का न्योता देती हैं। ग्रीष्म ऋतु में तपते मैदानी इलाकों में तो पहाड़ी क्षेत्रों के अहसास मात्र से ही मन को ठंडक मिल जाती है। गर्मियों के मौसम में बड़ी संख्या में पर्यटक हिमाचल प्रदेश जैसे पहाड़ी क्षेत्रों का रुख करते हैं। वैसे तो हिमाचल हर ऋतु हर मौसम में सैलानियों के लिए पसंदीदा गंतव्य है, लेकिन गर्मियों के मौसम में यहां की शीत एवं स्वास्थ्यवर्धक जलवायु हर किसी को भ्रमण के लिए लालायित करती है। आज सुख-सुविधाओं के सर्वसुलभ हो जाने से हर कोई अपनी व्यस्त जीवन शैली में से फुर्सत के कुछ पल निकाल कर पसंदीदा स्थल पर अवश्य बिताना चाहता है। यातायात के साधनों में वृद्धि हो जाने से प्रदेश में पर्यटकों विशेषकर प्रकृति प्रेमियों, साहसिक रोमांच के शौकीनों, वन्य जीव व वनस्पति जिज्ञासुओं सहित भारी संख्या में आगंतुकों की चहल-पहल वर्षभर रहती है। प्रदेश में हवाई सेवाओं के विस्तार से पर्यटन व्यवसाय को बढ़ावा मिलने के साथ सैलानियों को आकर्षित करने में भी सहायता मिली है। केंद्र सरकार की उड़ान योजना तथा हाल ही में प्रदेश सरकार द्वारा शिमला-चंडीगढ़ के लिए हैली टैक्सी सेवा आरंभ करने से राज्य में हवाई सेवाओं का लाभ आम आदमी तक पहुंचाने में मदद मिली है। इस सेवा के शुरू होने से करीब पैंतीस सौ रुपये के टिकट से शिमला-चंडीगढ़ का हवाई सफर केवल कुछ मिनट में तय किया जा सकता है। इसी प्रकार मनाली से रोहतांग के लिए भी हैली टैक्सी सेवा आरंभ की जा रही है और प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर हैलीपैड बनाए जा रहे हैं। केंद्र सरकार की उड़ान-दो योजना के तहत चंडीगढ़-बद्दी-शिमला, शिमला-रामपुर-नाथपा, शिमला-कंगनीधार-मनाली तथा शिमला-गगल को जोड़ा जाएगा। प्रदेश के पर्यटन क्षेत्र में युवाओं के लिए रोजगार एवं स्वरोजगार के अवसर सृजित करने के लिए विशेष कदम उठाए गए हैं। राज्य में अनछुए क्षेत्रों में पर्यटन विस्तार गतिविधियों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रदेश सरकार ने 'नई राहें, नई मंजिलें' नामक योजना आरंभ की है, जिसके तहत चयनित क्षेत्रों में सड़क, परिवहन, पार्किंग जैसी मूलभूत सुविधाओं का सृजन किया जाएगा। इस योजना के अंतर्गत चुनिंदा स्थलों पर पर्यटक आरामगाह, पर्यटक मनोरंजन रिज़ॉर्ट, साहसिक पर्यटन गतिविधियों के साथ-साथ इको पर्यटक पार्क तथा रज्जु मार्ग जैसी सुविधाओं का सृजन किया जाएगा। प्रदेश में प्राकृतिक एवं साहसिक पर्यटन को प्रोत्साहन देने के लिए वन्य जीव अभयारण्यों व राष्ट्रीय पार्कों को सुदृढ़ किया जाएगा और ट्रैकिंग, राफ्टिंग, बर्ड वाचिंग, पर्वतारोहण, जलक्रीड़ा गतिविधियों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। युवाओं को होम स्टे योजना, पाक कला, संचार एवं विपणन, व्यवहार कुशलता, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक धरोहर तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान कर उन्हें रोजगार एवं स्वरोजगार के अवसर प्रदान किए जाएंगे। पर्यटकों को देवभूमि के पारंपरिक रीति-रिवाजों, जनजीवन व रहन-सहन से रू-ब-रू करवाने में होम स्टे योजना ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिससे हिमाचल के पारंपरिक व्यंजन देश-विदेश में लोकप्रिय हो रहे हैं। राज्य के जनजातीय एवं दुर्गम क्षेत्र पर्यटकों के लिए खुल जाने से पर्यटन विस्तार गतिविधियों का लाभ दूरस्थ क्षेत्रों तक सुनिश्चित हुआ है। इन क्षेत्रों में वर्तमान संदर्भ में पर्यटन व्यवसाय ने नया आयाम स्थापित किया है। इससे धार्मिक, ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक महत्त्व के स्थल विकसित होने के साथ-साथ कृषि व बागबानी व्यवसाय से आर्थिकी के नए द्वार खुले हैं। प्रदेश के जनजातीय जिला किन्नौर की खूबसूरत वादियों के जीवन में आए बदलाव और वहां की समृद्ध धरोहर से रू-ब-रू करवाने के उद्देश्य से प्रस्तुत अंक में विशेष सामग्री समाहित की गई है। विश्वास है इस जनजातीय क्षेत्र के अनूठे जीवन के दर्शन का सामीप्य उपलब्ध होगा।

संपादक



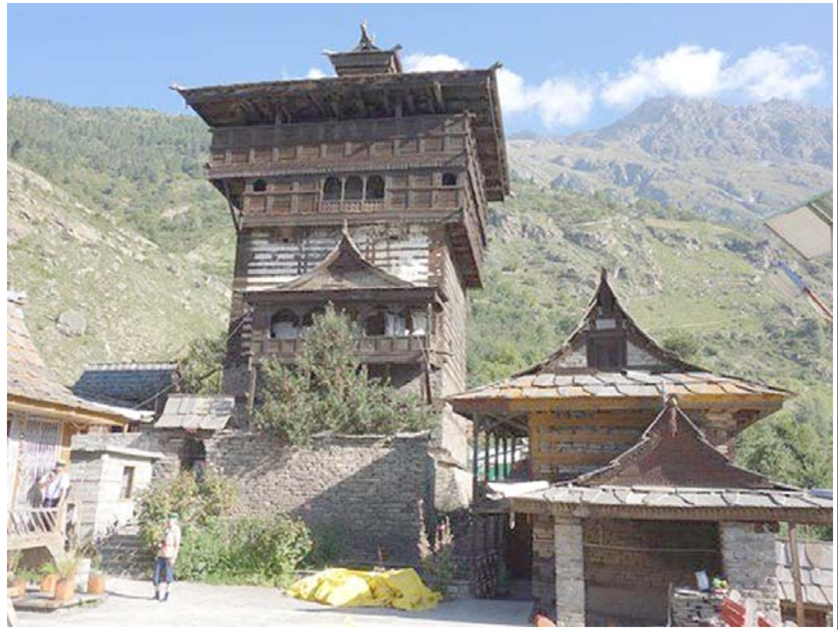
यायावरी

पर्यटन मानचित्र पर किन्नौर

◆ धर्मेंद्र नेगी

प्रदेश का जनजातीय जिला किन्नौर पर्यटन के दृष्टिगत विश्व मानचित्र में अपनी पृथक पहचान बना चुका है। कई मनमोहक घाटियों के होने से किन्नौर में हर साल देश विदेश के लाखों सैलानी घूमने आते हैं। पौराणिक किन्नरों की भूमि किन्नौर हिमाचल प्रदेश के उत्तर पूर्व में स्थित एक जिला है। ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों और हरे भरे पेड़ों से घिरा यह क्षेत्र ऊपरी, मध्य और निचले किन्नौर के भागों में बंटा हुआ है, लेकिन अब साहसिक और रोमांच प्रिय पर्यटक यहां बड़ी संख्या में आने लगे हैं। रिकांग पिओ किन्नौर जिले का मुख्यालय है। हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला से लगभग 240 किलोमीट दूर राष्ट्रीय उच्च मार्ग-5 पर यह नगर स्थित है। किन्नौर में पर्यटकों को लुभाने वाले क्षेत्र कल्पा, रिकांगपिओ, सांगला, छितकुल, नाको और अन्य कई पर्यटन स्थल हैं। कल्पा में नारायण नागनी मंदिर स्थानीय कला का अनुपम उदाहरण हैं। कल्पा में अनेक प्राचीन बौद्ध मठ बने हैं, वहीं से किन्नर कैलाश की भगवान शिव का शीतकालीन आवास माना जाता है। वहीं समुद्र तल से 3450 मीटर से ऊंचाई पर स्थित छितकुल गांव बास्पा नदी का अंतिम और सबसे ऊंचा गांव है। बास्पा नदी के दाहिने तट पर स्थित इस ग्राम में स्थानीय देवी माथी के तीन मंदिर बने हुए हैं। कहा जाता है माथी के सबसे प्रमुख मंदिर 500 साल पहले गढ़वाल के एक निवासी ने बनाया था। यहां माघ महीने में 'खा'

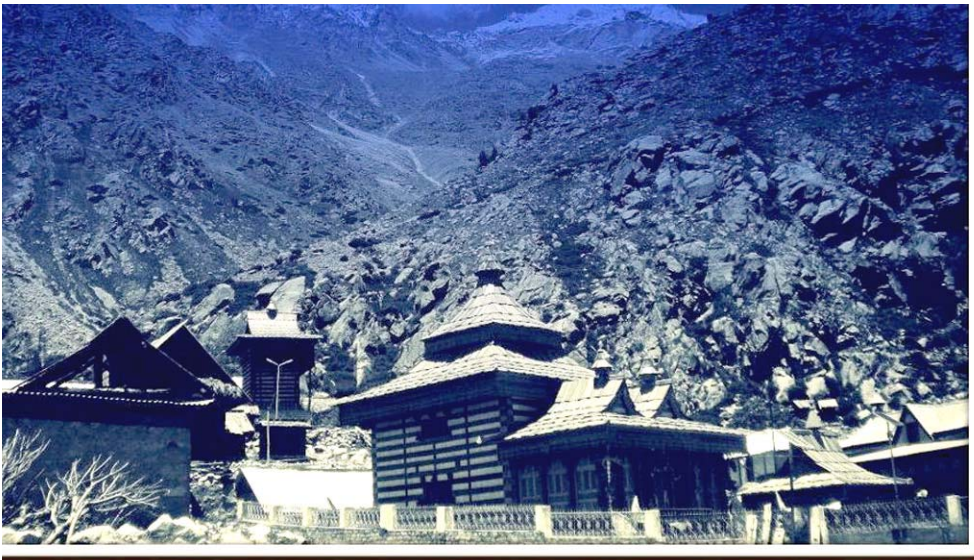
नाम से त्योहार मनाया जाता है जिसमें गांव के हर बिरादरी के घर से तीस से चालीस साल बाद नए साल के रूप में इस त्योहार को मनाने की बारी आती है। आधी रात को शुरू होने वाले त्योहर के दौरान कबायली लोग अपने साल भर के कामकाज को दीवारों पर सहेजते हैं। इस त्योहार की विशेषता है कि इस दौरान प्रकृति की पूजा की जाती है। इस दौरान रॉक या ट्राइबल चित्रकला दीवारों पर बनाई जाती हैं। इस चित्रकला में बिरादरी के बच्चों के नाम तक उकेरे जाते हैं। ताकि खानदान में कौन-कौन शामिल हैं। इसका संपूर्ण ब्योरा इसमें मिलता है।



छितकुल माता मंदिर : किन्नौर

नाको : हांगरंग घाटी में स्थित नाको गांव में नाको झील के कारण प्रसिद्ध है, जहां हजारों लोग घूमने जाते हैं। गर्मियों के दौरान यहां नौकायान की सुविधा उपलब्ध है। उसमें सर्द ऋतु में झील के जमने पर स्केटिंग भी की जाती है। किन्नर कैलाश किन्नौर जिले के तिब्बत सीमा के समीप 6050 मीटर पर स्थित है। यह पर्वत हिंदू धर्म में आस्था रखने वालों के लिए विशेष धार्मिक महत्व रखता है। इस पर्वत की विशेषता है कि एक चोटी पर स्थित प्राकृतिक शिवलिंग है। हिदू समाज में इसका विशेष महत्व है। वहीं कामरू किला सांगला घाटी से दो किलोमीटर दूर स्थित है। साथ ही यह हिमाचल प्रदेश में सबसे पुराने किलों में एक है। माना जाता है कि रामपुर बुशहर रियासत के राजा का राज तिलक यहां होता है। सिर पर टोपी के साथ कमर पर गाची पहने बिना मंदिर में प्रवेश होना मना है। इस कामरू किले में प्राचीन देवी माता कामाक्षा का मंदिर भी मौजूद है। इस किले में आम आदमी को किले के अंदर जाने की अनुमति नहीं दी जाती है। इस किले में आज तक रामपुर रियासतों के 111 राजाओं का राज-तिलक किया जा चुका है ।

बोझाटो निवास, गांव चाटी
तहसील निरमंड, डाकघर रामपुर बुशहर।
जिला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश-172001



ऐतिहासिक कामरू किला

आलेख

पर्यटकों को लुभातीं किन्नौर की वादियां

◆ वि. प्र. काला



जनजातीय जिला किन्नौर की
बसपा वैली का खूबसरत नजारा

हिमाचल का जनजातीय जिला किन्नौर पर्यटन की दृष्टि से लबरेज है और किन्नौर की खूबसूरत वादियां देश-विदेश के लाखों पर्यटकों को अपनी ओर सहज ही आकर्षित करती हैं। यहां प्राकृतिक सुंदरता के मनमोहक नजारे कदम-कदम पर हैं। प्रकृति के नजारों का आनंद उठाना हो तो किन्नौर से खूबसूरत वादियां कहीं और नहीं हो सकती। पर्यटकों के लिए किन्नौर की वादियों को वर्ष 1989 में खोला गया था और इसके बाद से देश-विदेश के सैलानियों का यहां हर सीजन में सैलाब उमड़ता है। हालांकि जिला किन्नौर की वादियां बर्फबारी के बाद करीब छह माह तक शेष विश्व से अलग-थलग पड़ जाती हैं। मानो सर्दियों में यहां जीवन की रफ्तार थम सी जाती है। इन छह माह में भले ही यह जिला शेष विश्व से कट जाता है परंतु किन्नौर के ग्रामीण घरों के अंदर रहकर अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए पूरी तनमयता से जुटे रहते हैं। ऊन कताई और ऊनी वस्त्र बनाने का काम जोर-शोर से चलाया जाता है। इसके अतिरिक्त घरों में रहकर स्थानीय लोग फलों को सुखाते हैं और जैसे ही यह क्षेत्र पुनः मुख्य धारा से जुड़ने लगता है तो यहां तैयार माल मंडियों में पहुंचाना शुरू हो जाता है।

जनजातीय जिला किन्नौर पर्यटन की दृष्टि से तेजी से विकसित हुआ है। जिले की खूबसूरत घाटियों के नजारे देखते ही बनते हैं। सतलुज और बसपा नदी के किनारे विकसित किन्नौर की घाटियों में कदम रखते ही एक बार यह महसूस होने लगता है कि वाह धरती का स्वर्ग तो यहीं है। शिमला से सांगला घाटी तक का सफर 230 किलोमीटर है। सांगला 9 हजार फुट की ऊंचाई पर बसा है और यहां हिमाचल की सुंदर और दूर तक फैली घाटी है। सांगला की ओर सबसे अधिक पर्यटक आते हैं और यहां अधिक समय तक पर्यटक प्राकृतिक सुंदर को निहारते हैं। पर्यटक इस घाटी की तुलना कश्मीर से भी करते हैं। यहां पर किन्नौर की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर सहज देखी जा सकती है। इसके अलावा सांगला में सेब के बगीचे पर्यटकों को खूब आकर्षित करते हैं। कामरू किला यहां से कुछ दूरी पर है। सांगला से चालीस किलोमीटर दूर तिब्बत सीमा के साथ सटा छितकुल गांव बसपा नदी के एक छोर में बसा है और दूसरी तरफ भोजपत्र के विशाल हरे भरे वृक्ष हैं। छितकुल को भारत का आखिरी गांव कहा जाता है। इसके बाद भारत का कोई गांव भी नहीं है। छितकुल जाते समय रास्ते में कलकल करते झरने पर्यटकों का खूब स्वागत करते हैं। ये झरने नजारों को और मनमोहक बनाते हैं।



किन्नौर के छितकुल गांव के पास पानी के प्राकृतिक स्रोत

पर्यटक उठा सकते हैं। ये दोनों घाटियां अच्छे सेब, मटर, आलू, खुमानी, अखरोट, अंगूर, शहद और राजमा की पैदावार के लिए जाने जाते हैं। किन्नौर जिले में साहसिक पर्यटन की व्यापक संभावनाएं मौजूद हैं। इसके अलावा जिले में तीन अभयारण्य भी हैं। किन्नौर जिला में खेती बाड़ी के साथ पर्यटन क्षेत्र लोगों की आजीविका में नया बदलाव ला रहा है और यह उनकी आर्थिकी को सुदृढ़ बना रहा है। किन्नौर की वादियों में जो एक बार आता है, उसका यहां बार-बार आने का मन करता है। यह भी सुंदरता तथा लोगों को स्वभाव हर व्यक्ति को आकर्षित करने पर मजबूर कर देता है।

सांगला से चालीस किलोमीटर दूरी पर बसा कल्पा कभी जिला किन्नौर का मुख्यालय हुआ करता था परंतु अब किन्नौर का जिला मुख्यालय रिकांगपिओ है। कल्पा एक छोटा सा गांव है और इसकी पुरानी सुंदरता बरकरार है। कल्पा और छितकुल ट्रैकिंग और साहसिक पर्यटन के दीवानों के लिए पसंदीदा स्थल है। एक समय लार्ड डलहौजी शिमला में अपनी व्यस्त जिंदगी की थकान मिटाने के लिए कल्पा घोड़े पर सवार होकर पहुंचे थे। कल्पा में रहकर डलहौजी ने प्राकृतिक सुंदरता का खूब आनंद उठाया था। किन्नौर को हिंदुस्तान-तिब्बत से जोड़ने का श्रेय भी लॉर्ड डलहौजी को जाता है। यहां से बर्फ से ढके किन्नर कैलाश पर्वत के नजारों से आनंद लिया जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो हिमालय हमारे ठीक सामने बाते करने को आतुर हो। किन्नर कैलाश में ही 7 फुट ऊंचा शिवलिंग विराजमान है। इसे भगवान शिव का निवास स्थान भी कहा जाता है। किन्नर कैलाश दिन में कई रंग बदलता है और यहां के नजारे देखने को पर्यटक भारी संख्या में उमड़ते हैं। कल्पा का बौद्ध गोंपा भी देखने लायक है। कल्पा में सेब के बगीचों से आती खुशबू किसी को भी सहज ही आकर्षित करती है। कल्पा से सूर्योदय का खूबसूरत नजारा बयां नहीं किया जा सकता। यहां पर भी चिलगोजे के जंगलों की भरमार है।

रिकांगपिओ किन्नौर जिले का मुख्यालय है और यहां से भावा वैली के नजारे देखने के लिए सीधे बसें ली जा सकती है। इसके अलावा अगर अपना वाहन है तो सीधे भावा वैली पहुंचना सहज है। भावा वैली भले ही पर्यटन की दृष्टि से ज्यादा विकसित नहीं है परंतु पिछले कुछ सालों से यहां ग्रामीण सड़कों का विस्तार हुआ है। इन सड़कों के जाल बिछने से भावा वैली और रूपी वैली की खूबसूरती का आनंद भी

वि. प्र. काला
1-ए, बिंदलेश भवन, नजदीक गुलमर्ग रिजेंसी
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 001

बाहर निकलने का एक ही मार्ग : वांगतू

हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग के निर्माण का श्रेय लॉर्ड डलहौजी को जाता है। इस मार्ग के बनने से प्रदेश के अंदरूनी इलाकों विशेषकर तिब्बत की सीमा तक सड़क मार्ग बना। व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ावा मिला। वर्तमान में किन्नौर को देखकर अंदाजा नहीं लगाया जा सकता कि आज से 200 वर्ष पूर्व यह क्षेत्र कितना दुर्गम था। इस संदर्भ में सन् 1841 में कैप्टन जैराई के वर्णन से उस काल की वस्तुस्थिति स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। उनके अनुसार मार्ग सामान्यतः पगडंडियों के रूप में है। हवा के झोंके से सिर पर खड़ी चट्टानों के टूटकर गिर जाने का भय सदैव बना रहता है।

इससे स्पष्ट है कि यहां की स्थलाकृति ने क्षेत्रीय संपर्क को सीमित कर रखा था। इस स्थलाकृति ने यहां के निवासियों को एक सुरक्षित आश्रयस्थल प्रदान किया था और आक्रमणकारियों से प्रायः अभय रक्षा प्रदन की हुई थी। बाहरी दुनिया में जाने का एकमात्र रास्ता 'वाङ्धार' ही ऐसा मार्ग होता था जहां से होकर गुजरा जाता था। यह मार्ग वाङ्धार नामक नदी को पार कर सतलुज के एक किनारे से निकलता था। किंतु यह आवाजाही के लिए सुगम नहीं था, जितना आज है। यह मार्ग भी पारगमन के लिए छाट्टाङ्ती नामक स्थान से पहाड़ पर बने अस्थायी संकरे मार्ग से गुजरता था। किन्नौर जनपद की 'हांडे-फिरे वाङ् तू' लोकोक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि आप किन्नौर में आज भी कहीं भी चले जाएं, किंतु बाहर निकलने का एक ही मार्ग है 'वाङ्तू'।

संदर्भ : किन्नौर आदिवासिस संस्कृति के आर्थिक आधार, डी.एस. गोलदार नेगी

इतिहास के पन्नों से

किन्नौर की राहों पर

◆ राम कृष्ण कौशल

सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जब भोट सम्राट सोङ चन गेम्पो (630-5030) ने सारे तिब्बत, सारे हिमालय, गिलगित, चीनी तुर्किस्तान से हावांगहो तट तक अपने राज्य की सीमाएं बढ़ा लीं तो किन्नौर का भी कोई अपना अस्तित्व नहीं रह गया। उसके पश्चात् के किन्नौर जनों और किन्नौर की कहानी उसी भोट साम्राज्यशाही की कहानी का एक अंश बन कर रह गई.... आक्रांताओं की अपनी अलग कहानी नहीं हुआ करती। और यह वही कहानी है जिसे पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारतीय तिब्बत के इतिहास के नाम से पुकारा है। इस इतिहास को रूप देने में कपितय पर्यटक जनों का विशेष योग रहा है।

बौध साधु रत्न भद्र (लो साबा रिन छैन ज़ंपो) (964-1048) जो शटलवर्थ के अनुसार भारतीय थे और राहुल सांस्कृत्यायन के अनुसार तिब्बती, के पश्चात् आधुनिक संसार को भारत के इस सीमावर्ती भूभाग का परिचय देने का प्रथम श्रेय ईसा के अनुयायी उन साहसी भिक्षुओं को है जो केवल मात्र सेवा भाव से धर्म प्रचार के लिए सात समुद्र पार के सुदूर पश्चिम से चल कर 17वीं शताब्दी के उस कठिन समय में अदृश्य प्रायः दुर्गम पहाड़ी पगडंडियों पर चल कर इस शैल श्रृंगमयी भूभाग तक आ पहुंचे। अज़ेवेदों दान्द्राया तथा दोसेद्री नामक साधुत्रैय के यात्रा वर्णन इस संबंध में विशेष उल्लेखनीय हैं। जहां के रहन-सहन वेशभूषा और भाषा से उनका दूर का भी परिचय नहीं था, वहां रह कर वहां के जनजीवन पर अपनी संस्कृति के चिह्न अंकित कर जाना कम साहस का कार्य नहीं होता।

इन सेवा पंथियों के पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में चार अन्य मुख्य पर्यटकों का इस देश भाग में आगमन हुआ। वे थे जेम्स बेली फ्रेज़र, मूरक्राफ्ट, कैप्टन जैरार्ड तथा वाईन।

फ्रेज़र 1815 में रामपुर होकर सराहन पहुंचे। उनकी पुस्तक उन पुस्तकों में से है जिन्होंने 19वीं शताब्दी के आरंभ और उसके कुछ पहले के भारत का बहुत ही व्यापक चित्रण किया है। उन्होंने नीरथ के पास न्यारियों को बालू धोकर सोना निकालते देखा था।

मूरक्राफ्ट 1920-25 में इस ओर आए थे। उनका यात्रा वर्णन मुख्य रूप से कांगड़ा राज्य से संबंधित है जो अठारवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पर्वतीय राज्यों में सबसे शक्तिशाली राज्य था। परंतु मूरक्राफ्ट किसी प्रकार कैलाश तक जा पहुंचे थे उस समय जबकि किसी भी पाश्चात्य व्यक्ति का तिब्बती सीमा में प्रवेश निषिद्ध था।

कैप्टन जैरार्ड राजकीय सर्वेक्षण अधिकारी थे। सर्वप्रथम किन्नौर का सर्वेक्षण कार्य इन्होंने ही संपन्न किया। आज भी उनकी पुस्तक (उनके यात्रा विवरण पर आधारित) किन्नौर संबंधी तथ्यों पर अधिकारिक विवरण माना जाता है। कैप्टन जैरार्ड ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने किन्नौर के भूगोल और भूगर्भ पर प्रकाश डाला और ऐसा कार्य किया कि अभी तक उसमें परिवर्तन अथवा संशोधन संभव नहीं हो सका। वैसे अब तक पुस्तक में एक अशुद्धि पत्र लग जाना चाहिए था। अक्षांश रेखा तथा देशांतर रेखा (Longitude and Latitude) का विवरण कैप्टन जेरार्ड के किन्नौर के मानचित्र में उस विवरण से भिन्न है जो उनकी पुस्तक के आरंभ में दिया हुआ है।

जैरार्ड के साथ वाईन का यात्रा वर्णन भी महत्त्व रखता है। मूरक्राफ्ट की तरह इनका संबंध भी कांगड़ा, कुल्लू और लाहौल से अधिक रहा। परंतु किन्नौर के सीमावर्ती होने के कारण इन देश भागों के वर्णन भी उल्लेखनीय हैं।

कैप्टन जैरार्ड का कार्य मुख्यतः सर्वेक्षण संबंधी था तथा मूरक्राफ्ट और वाईन आदि का केवल इस देश भाग की समकालीन परिस्थितियों का अवलोकन मात्र। अतः संभवतः इस देश की ऐतिहासिकता सामग्री एकत्रित करने की ओर उनका ध्यान कदाचित न गया हो। वास्तव में यह कार्य इतना सरल भी नहीं था। एतदर्थ तिब्बती भाषा का ज्ञान तथा तिब्बती ग्रंथों का अध्ययन अत्यावश्यक था।

यह कार्य सर्वप्रथम हंगरी देशवासी (Csomade Koras) सोमादी कोर्स (1827-30) द्वारा आरंभ हुआ। सोमादी कोर्स ने 1827 से 1830 तक कानम (किन्नौर) के बोध विहार में तिब्बती भाषा का अध्ययन किया और इनसे ही तिब्बती भाषा के अध्ययन की परंपरा आरंभ हुई। सर्वप्रथम सोमादी कोर्स को ही तिब्बत के राज्यों की बृहत् वंशावली होने का पता चला और अगले पांच वर्षो तक वह इसकी खोज में रहे परंतु उन्हें यह उपलब्ध न हो सकी। वह उस समय आठ लंबे वर्षो तक वह इसकी खोज में रहे परंतु

उन्हें यह उपलब्ध न हो सकी। वह उस समय आठ लंबे वर्षों तक किन्नौर में रहे - आज भी जब किन्नौर में सभी प्रकार की जीवनोपयोगी सुविधाएं प्राप्त होने पर भी राजकीय कर्मचारियों को कार्यवश भी किन्नौर में ठहरना कुछ अखरता है, इस अवस्था में उस कठिन समय में सोमादी कोर्स के अध्यवसाय की कल्पना सहज ही की जा सकती है। सच ही तो है 'मनस्वी कार्यथी गणयति च दुःखं न च सुखं।'

लद्दाख के विषय में सर्वप्रथम आधिकारिक सर्वेक्षण एलक्जांडर कनिंघम द्वारा संपन्न हुआ जिसका विवरण लद्दाख (लंदन, 1854) के रूप में मिलता है। कनिंघम ने लद्दाख के राजाओं सामंतों तथा पंडितों का विवरण भी प्रस्तुत किया, परंतु किसी तरह उन्हें यह विश्वास न हो सका कि 16वीं शताब्दी के पूर्व के लद्दाख की ऐतिहासिकता सामग्री भी उपलब्ध हो सकती है। उन्हें कहीं ऐसी सामग्री के होने पर भी संदेह था।

परंतु इसी बीच 1856 में (Hermann Von Schlag Inweit) हरमेनियम वोन शलनवीट) को लेहर में (Ladvags Rgyal Rab) दवास ज्ञाल-रव नामक वंशावली की एक प्रति मिल गई। संभवतः यह वही वंशावली थी अथवा उसका कोई अंश था जिसकी सूचना सोमादी कोर्स को मिली थी। इस वंशावली को शलैनवीट के भाई ऐमिल ने जर्मन भाषा टीका के साथ सन् 1866 में प्रकाशित किया मोरावियन भिक्षु जैसे (H.A. Jaschke) का अंगल तिब्बती शब्दकोष भी शायद इस वंशावली पर आधारित है। ऐमिलवोन शलनवीट (Tebetan Budhism) का आधार भी शायद यही है।

1865 ईसवी में मोरावियन पादी इपजल स्पू गए और 18 वर्ष काम करने के बाद 1883 में मृत्यु को प्राप्त हुए। 1850 में चर्च मिशन ने चीनी में काम प्रारंभ करना चाहा था परंतु मोरावियन पादरी तुस्की ही वहां मिशन स्थापित करने में सफल रहे।

1870-72 में एरर्वल्एन इस ओर आए थे। उनकी पुस्तकें Abode of Snow में इस देश भाग का उनका आंखों देखा वर्णन है। इसी संबंध में अन्य मोरावियन इसाई भिक्षु के. मार्क्स (K. Marx) का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्हें लगभग इसी समय ज्ञालरव की दो बड़ी प्रतियां मिल गईं। मार्क्स ने एक लद्‌दाखी मुंशी पाल ग्यास (Dpyal Rgyas) की सहायता से इन प्रतियों का अनुवाद कार्य प्रारंभ किया। जिसका पूर्व भाग 900 से 1620 तक का लद्दाख का इतिहास 1891 में, (J.A.S.) में प्रकाशित हुआ परंतु खेद कि यह लेख प्रकाशित होने से पूर्व ही मार्क्स की मृत्यु हो चुकी थी। 1894 में मार्क्स के संबंधी प्रोफसेर दल मैन (Prof. Dalman) ने उस वैंशलिन का अंग्रेजी रूपांतर 1920 से आगे ऐतिहासिक विवरण के साथ प्रकाशित किया। और 1902 में अंतिम रूप से श्रीमती फ्रैंक ने हस्तलिखित लेख को प्रकाशित किया था। इसमें 1834-42 का डोगरा युद्ध वर्णन शामिल था।

परंतु लद्दाख अथवा भारतीय तिब्बत की कहानी को अंतिम रूप देने का श्रेय है डॉक्टर फ्रैंक को जाता है। डॉ. फ्रैंक 1909 में सरजान मार्शल के द्वारा पश्चिमी तिब्बत के सर्वेक्षण के लिए नियुक्त किए गए। यह सर्वेक्षण 1909 से 1910 सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। इसी के विवरण का स्वरूप है (Antiquities of Indian Tibbet Calcutta-1914)।

डॉ. फ्रैंक के दल में एक शिक्षित तिब्बती तथा एक भारतीय फोटोग्राफर बाबू पिंडी लाल थे। 14 जून 1909 को इस दल ने शिमला से प्रस्थान किया और कोटगढ़, निरमंड, रामपुर, सराहन होता हुआ यह दल वांगतू पहुंचा। तत्पश्चात डॉ. फ्रैंक चीनी, मूरङ होते हुए शिपकिला तक जा पहुंचे। जहां से उन्होंने उत्तर की ओर मुड़ कर तिब्बती सीमा में प्रवेश किया।

डॉ. फ्रैंके को कानम में एक समय भिक्षु रत्न भद्र (लोसाबा रिन छिन जम्पो) के आगमन का प्रमाण मिला। उन्हें पूह के स्थान में एक पत्थर पर लेख भी मिला जिसमें लद्दाखी राजा (Yees Hod) थीसीड सन् 1085 का उल्लेख है। थीस हौड भारतीय बौद्धों के संपर्क में था और वह उनका आदर करते थे। डॉ. फ्रैंक ने ज्ञालरव के तिथिक्रम के औचित्य पर संदेह प्रकट किया है। मध्य तिब्बती इतिहास से तुलना करने पर उन्हें यह तिथि क्रम 12 वर्ष पीछे प्रतीत हुआ। तथापि फ्रैंक ने लद्दाख के राजाओं का राज्य काल देने का प्रयास किया। और उनके 1500 से आगे के काल विवरण की पुष्टि विभिन्न शिलालेखों से भी होती है।

डॉ. फ्रैंक के बाद महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन का नाम उल्लेखनीय है। भारतीय हिंदी लेखकों में उक्त पंडित जी की साधना में टैगोर के 'एकला चलो' की भावना चरितार्थ होती दिखाई देती है।

यह संभवतया प्रथम साहित्य-सेवी हैं जिनकी साधना ने कभी किसी की सहायता की उपेक्षा नहीं की और साहित्य के किसी प्रयोग को अछूत न छोड़ा। 1948 में किन्नर प्रदेश ने उन्हें आकर्षित किया। रुग्ण होने पर इस घुमक्कड़ साधक के पांव उस ओर उठ गए। रामपुर, सराहन, निचार, वांगतू, रोगी, चिनी, कोठी आदि होते हुए वह नमग्या तक जा पहुंचे और जो कुछ देखा समझा, उसका अद्वितीय वर्णन अपनी पुस्तक 'किन्नौर प्रदेश' के रूप में प्रस्तुत किया। किन्नर प्रदेश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा भविष्यत संभावनाओं की ओर महत्त्वपूर्ण संकेत प्रस्तुत करने का प्रथम श्रेय यदि किसी भारतीय पर्यटक को हो सकता है तो वह राहुल जी होंगे। उन्होंने स्पष्टतया लिखा नहीं परंतु उनका इतिहास संबंधी विवरण फ्रैंक के अध्ययन पर ही आधारित लगता है। वैसे उनका स्वतंत्र अध्ययन भी कम महत्त्व का नहीं है।

(हिमप्रस्थ, जुलाई 1962 से साभार)

जनजातीय जिला किन्नौर में आयोजित होने वाले प्रमुख त्योहारों में एक त्योहार है साजा। साजा त्योहार साल के आरंभ में यानी जनवरी में मनाया जाता है। साजा के दिन किन्नौर के लोग झीलों में स्नान करते हैं। जिले के जिन क्षेत्रों में झीलें नहीं हैं, वहां सतलुज या बसपा नदी के तट में जाकर स्नान करते हैं। ये लोग झील और नदी के किनारे पकवान ले जाते हैं। इन पकवानों में पोलटू, चावल, दालें, सब्जी, मीट, हलवा चिल्टा, और अन्य स्थानीय चीजें पकाकर ले जाते हैं। सुबह के दौरान लोग अपने स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करते हैं। देवी-देवताओं को भी पकवान चढ़ाए जाते हैं परंतु मीट शामिल नहीं रहता। दोपहर बाद भी देवी-देवताओं की पूजा की जाती है और उनको हलवा और स्थानीय बनाई शराब भी चढ़ाई जाती है। इस दौरान साजा के मौके पर स्थानीय लोग लोकनृत्य करते हैं और स्थानीय देवी-देवता किन्नर कैलाश के लिए प्रस्थान करते हैं।



आलेख

साल भर चलते हैं जनजातीय किन्नौर में त्योहार

◆ विपिन

हिमाचल प्रदेश के जनजातीय जिला किन्नौर में साल भर त्योहारों का सिलसिला जारी रहता है। ये त्योहार नए साल पर आरंभ होते हैं और यहां देवी-देवताओं की मौजूदगी में ये त्योहार हर्षोल्लास से मनाए जाते हैं। इन त्योहारों को परंपरागत तरीके से मनाया जाता है और ये त्योहार सांझे तौर पर पूरे गांववासी मनाते हैं। इस दौरान स्थानीय लोग तरह-तरह के पकवान भी तैयार करते हैं और एक दूसरे को परोसते भी हैं। इन त्योहारों को मनाने के लिए लोग एक निश्चित स्थान पर एकत्र होते हैं और इसके बाद त्योहारों को मनाया जाता है। इन त्योहारों का समापन देवी-देवताओं की विदाई के साथ होता है। इन त्योहारों का अपना अलग महत्त्व है। त्योहारों के दौरान लोग लोक नृत्य करते हैं और एक दूसरे को बधाई देते हैं। इस दौरान बड़े बुजुर्गों का आशीर्वाद भी प्राप्त किया जाता है।

जनजातीय जिला किन्नौर में आयोजित होने वाले प्रमुख त्योहारों में एक त्योहार है साजा। साजा त्योहार साल के आरंभ में यानी जनवरी माह में मनाया जाता है। साजा के दिन किन्नौर के लोग झीलों में स्नान करते हैं। जिले के जिन क्षेत्रों में झीलें नहीं है, वहां सतलुज या बसपा नदी के तट में जाकर स्नान करते हैं। ये लोग झील और नदी के किनारे पकवान ले जाते हैं। इन पकवानों में पोलटू, चावल, दालें, सब्जी, मीट, हलवा चिल्टा, और अन्य स्थानीय चीजें शामिल होती हैं। सुबह के दौरान लोग अपने स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा अर्चना करते हैं। देवी-देवताओं को भी पकवान चढ़ाए जाते हैं परंतु मीट शामिल नहीं रहता। दोपहर बाद भी देवा-देवताओं की पूजा की जाती है और उनको हलवा और स्थानीय बनाई शराब भी चढ़ाई जाती है। इस दौरान सांझ के मौके पर स्थानीय लोग लोकनृत्य करते हैं और स्थानीय देवी-देवता किन्नर कैलाश के लिए प्रस्थान करते हैं।

फागुल या सुसकर : फागुल या सुसकर त्योहार फरवरी से मार्च के मध्य आयोजित किया जाता है। यह त्योहार किन्नौर जिले के लोग अपने कंडों(पहाड़ों की चोटी में बने मकानों) में धूमध ाम से आयोजित करते हैं। इस त्योहार में प्रमुख रूप से देवी काली की उपासना की जाती है। यह त्योहार समूचे किन्नौर में मनाया जाता है और इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है। एक पखवाड़े तक चलने वाले इस त्योहार के प्रत्येक दिन के आयोजन को अलग- अलग नामों से मनाते हैं। इस दौरान तरह-तरह के



कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है? स्थानीय लोग भारी संख्या में मौजूद रहते हैं। त्योहार के अंतिम दिन धाम का आयोजन किया जाता है। ये पकवान देवी काली को विधि विधान से चढ़ाए जाते हैं और देवी का पूजन भी किया जाता है। मकानों की छत पर भी पकवान ले जाए जाते हैं। इसके बाद देवी काली खुश होकर वहां मौजूद सभी लोगो को खुशहाली का आशीर्वाद देती है। इसके साथ ही साजा त्योहार का समापन होता है।

बैसाखी या बीश : बैसाखी या बीश का त्योहार जनजातीय जिला किन्नौर में अप्रैल के माह में धूमधाम से मनाने की परंपरा है। शीतकाल के अंत में यह त्योहार हर्षोल्लास के साथ मनाया जात है। ग्रामीण पोलटू, हलवा, केशीद आदि तैयार करते हैं। स्थानीय देवता को पालकी में बैठाकर मंदिर से बाहर लाया जाता है। इस दैरान मेला भी आयोजित होता है। स्थानीय लोग लोकनृत्य करते हैं।

दखरैनी : जुलाई में आयोजित होने वाले दखरैनी में तरह-तरह के व्यंजन परोसे जाते हैं। स्थानीय देवी देवताओं को बाहर लाया जाता है और लोग लोकनृत्य करते और गाते हैं। झोंकर और लोकसर कंडे से फूल लाते हैं। देवी देवताओं को इन फूलों की मालाएं पहनाते हैं। ग्रामीणों को फूल बांटे जाते हैं। एक या दो लोग पहाड़ की चोटी पर चढ़ते हैं। लोगों की याद में भोजन फल गडरियों को देकर आत्माओं को विदा करते हैं। इन आत्माओं की याद में कंडों में सफे द झंडे लगाए जाते हैं और इन झंडों पर बौद्ध मंत्र भी लिखे होते हैं।

फूलैच या उख्यांग : फूलैच या उख्यांग त्योहार भी समूचे किन्नौर जिले में सितंबर माह में अलग-अलग तारीख को मनाया जाता है। गाजे बाजे के साथ स्थानीय लोग देवी देवता के साथ समारोह स्थल में पहुंचते हैं। फूलैच त्योहार भी कंडे में मनाया जाता है। शूलू फूल चोटी से लाते हैं और मालाएं बनाई जाती हैं। इस दौरान बकरे की बलि दी जाती है। देवताओं को फूल मालाएं पहनाई जाती हैं। देवी के साथ यात्रा से लौटते हैं।

लोसर : किन्नौर में लोसर दिसंबर माह में मनाए जाने वाला त्योहार है। स्थानीय लोग धूमधाम से नए साल का स्वागत करते हैं। जौ और मक्खन सभी परिवार अपने घरों से लेकर आते हैं। लोग एक दूसरे को चिलगोजे की माला पहनाते हैं और लोसूमा ताशी यानी नया साल मुकाबरक हो कहते हैं। एक दूसरे को वस्तुओं और भोजन का आदान प्रदान भी करते हैं। बुजुर्ग लोगों को अपना आशीर्वाद भी देते हैं। अधिकांश लोग अपने मकानों के बाहर कंटीली झाडियां लगाते हैं ताकि बुरी नजर से बचा जा सके। अगले दिन इन झाड़ियों को लोग घरों से दूर फेंक कर आते हैं।

जनजातीय महोत्सव : जिला किन्नौर के मुख्यालय रिकांगपिओ में जनजातीय महोत्सव मनाया जाता है। राज्य स्तरीय जनजातीय महोत्सव में स्थानीय लोक सांस्कृतिक की झलक देखने को मिलती है। इस दौरान किन्नौर में तैयार माल और यहां उगाए जाने वाली फल और फसलों को भी बेचने की व्यवस्था की जाती है। वर्ष 1994 से यह जनजातीय महोत्सव मनाया जा रहा है। हर साल यह महोत्सव 30 अक्तूबर को शुरू होता है। इस महोत्सव में किन्नौर नृत्य और गाने आकर्षण के प्रमुख केंद्र रहते हैं।

1/A, Bindlesh Bhawan
Shimla, HP-171 003



संस्कृति

सुस्कार : किन्नौर का प्रसिद्ध त्योहार



◆ जगत बंधु

जिस प्रकार भारत भर में होली एक आनंदोल्लास का पर्व मनाया जाता है, उसी प्रकार किन्नौर जिले के सुस्कार (सू-स-कार) त्योहार को यदि होली का ही पर्यायवाची शब्द माना जाए तो संभवतः किसी को आपत्ति न हो। सुस्कार किन्नौर का अपना लोक पर्व है और होली के साथ-साथ ही इसका आरंभ भी होता है।

किसी भी मेले अथवा पर्व के मनाए जाने का कारण हमारे देश में ही नहीं अपितु संसार के अन्य देशों में भी इसकी ऐतिहासिकता, पृष्ठभूमि कुछ न कुछ अवश्य होती है। सुस्कर मेला होली से मिलता-जुलता और समकालिक होते हुए भी अपनी पृष्ठभूमि कुछ अलग ही रखता है। लोक वाङ्मय का हिमाचल प्रदेश में कहीं भी पर्याप्त रूप से लिखित अभिलेख उपलब्ध नहीं होता फिर भी परंपरा और किंवदंति के आधार पर तद्स्वरूप उनकी समय-समय पर मौखिक आवृत्ति होती रहती है। और वे ही लोगों के मनोरंजन और सांस्कृतिक गतिविधियों की व्याख्या का माध्यम है।

फाल्गुन के अंत और चैत्र के आरंभ में यह मेला लगभग समस्त किन्नौर में केवल 'पंद्रह-बीस, अठारह-बीस तथा पूह के इलाके को छोड़कर, धूमधाम से मनाया जाता है। यहां यह कह देने में कोई अस्वाभाविक न होगा कि सुस्कर का आकर्षण केंद्र विशेषकर कोठी गांव और उसके निकटवर्ती गांवों में रहता है। सुस्कर आरंभ के पहले दिन घरों में सफाई और मेला मनाए जाने के वातावरण की सृजन मात्र रहती है। दूसरे दिन 'सावनी' देवतागण जिनका निवास पहाड़ों की चोटियों पर माना जाता है, आने के उपलक्ष्य में खुशी और उनकी पूजा का कार्यक्रम रहता है। उन देवताओं की पूजा एक विचित्र ढंग से की जाती है। प्रत्येक घर का वृद्ध अथवा उत्तरदायी सदस्य इस पूजा के कार्य को संपूर्ण करता है। इसमें सारे 'सावनी' देवताओं के नाम क्रम से लिए जाते हैं और सुख-समृद्धि का वरदान मांगते हैं। तीसरा दिन 'चिने कयङ्ग का मेला कहा जाता है। देवी चंडिका जी का पढ़ाया हुआ एक व्यक्ति जिसे 'डबलूच' की संज्ञा देते हैं। चीनी गढ़ से विष्णु देवता के मंदिर होता हुआ कोठी गांव में आता है। डबलूच व्यक्ति में यह विशेषता मानते हैं कि जब वह चीनी से कोठी गांव को जाता है, तो मार्ग में जिस किसी को भी देख लेता है। तो उस व्यक्ति पर कुछ ग्रह का प्रकोप ठहरता है। वैसे लोग उस दिन उस डबलूच की दृष्टि से बचने का प्रयत्न करते हैं। जिसे जब कभी डबलूच देख पाता है तो उस देखे गए व्यक्ति को ग्रह निवारण के लिए कुछ पूजा-दान आदि में खर्च करना अनिवार्य माना जाता है। चौथा दिन 'शुमरापा' के नाम से मनाया जाता है। सुस्कर का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण दिन इसे मानते हैं। इस दिन 'सावनी' देवता-गण देवी चंडिका के मंदिर में ठहरते हैं। इसी दिन की शाम को 'चौकेगुथू' स्थान का नाम जहां पर एक छोटा सा जल कुंड है, में पूर्णमासी की चांदनी में उन व्यक्तियों की परछाईं दिखाई देती है जिन्हें 'डबलूच' ने ग्रह ठहराया होता है। इस अद्‌भुत परछाईं के बारे में विश्वस्त रूप से कुछ कहना असंभव है क्योंकि इसे देखने वाले देवी चंडिका जी के कुछ ही लोग होते हैं और इसकी गोपनीयता का उनके बीच एक धर्म-बंधन माना जाता है। पांचवें दिन को 'तेले कयङ्ग' कहते हैं। इस दिन देवी चंडिका का प्रतिनिधि जिसे वहां की बोली में 'तेग' अथवा खंडों के नाम से अभिहित किया जाता है, तेलिंगी गांव में जाते हैं। देवता और दैव्यशक्तियों के प्रति श्रद्धा और आस्था का यह दिन एक विशेष स्थान रखता है।

छठे दिन से सब गांव के लोग योगदान द्वारा एक लोक नाट्य का आयोजन करते हैं। इसमें वहां की वेशभूषा में नायक-नायिका अभिनय करते हैं। अभिनय का कथानक कुछ नहीं होता। केवल वेश-विन्यास में वहां हो रहे लोकनृत्य में भाग लेते हैं। और उन पात्रों का अपना अलग-अलग नृत्य भी होता है। इसी अवसर पर रुचि रखने वाले व्यक्ति एक मूक आदमी का सा साधारण वस्त्र, जिनमें थोड़ा बहुत हास्याप्रद शृंगार भी सम्मिलित होते हैं, पहन कर लोक-हास्य का केंद्र-बिंदु बनते हैं। विभिन्न प्रकार के लोगों के दैनिक व्यापार का अभिनय वे करते हैं। इस अभिनय को हिमाचल के अन्य भागों में खेले जाने वाला करियाला का ही अंश समझना चाहिए। इस मेले की ऐतिहासिकता का जहां तक संबंध है, केवल यही कहा जा सकता है कि इसे लोग चिरकाल से मनाते आ रहे हैं इस त्योहार का उद्देश्य एक वार्षिक खुशी के दिन का नवीनीकरण है और लोगों का विश्वास है कि 'सावनी' देवता लोगों को शांति, सुख और समृद्धि देते हैं।

(हिमप्रस्थ, मई, 1962 से संकलित लेख)

किन्नौर

अर्थव्यवस्था में कृषि-बागबानी का अहम किरदार

◆ रुचि काला

हिमाचल प्रदेश का जनजातीय जिला किन्नौर भले ही चार से छह माह तक समूचे विश्व से कटा रहता है परंतु इस जिले की अर्थ व्यवस्था कृषि और बागबानी पर काफी हद तक निर्भर है। जनजातीय क्षेत्र के अधिकांश ग्रामीण पिछले कई दशकों से कृषि और बागबानी की आधुनिक तकनीक अपनाकर अपनी अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाए हुए हैं। यही नहीं, जनजातीय जिले के विभिन्न हिस्सों में ग्रामीण फसलों का उत्पादन करके अच्छी खासी कमाई कर रहे हैं। आज स्थिति ऐसी है कि चाहे वह कृषि फसलें हैं या फिर बागबानी, लोग किन्नौर जिले में उत्पादित फसलों को खरीदने के लिए टूट पड़ते हैं और लोग दिल खोल कर दाम देने को तैयार रहते हैं। हिमाचल प्रदेश के मेलों में जब भी किन्नौर के लोगों के स्टाल लगते हैं तो लोग वहां की फसलों और तैयार सामान खरीदने को उमड़ पड़ते हैं।



किन्नौरी सेब की बाजार में बढ़ती मांग

किन्नौरी सेब और नाशपाती : किन्नौर जिले में पैदा किए जाना वाले सेब और नाशपाती की देश के हर कोने में बराबर मांग बनी रहती है। अभी सेब और नाशपाती के पेड़ों में पत्तियां ही आ रही होती हैं और लोग इंतजार में रहते हैं कि कब किन्नौरी सेब खरीदने को मिलेगा। देश के विभिन्न हिस्सों से लोग किन्नौरी सेब खरीदने को प्राथमिकता देते हैं। किन्नौर के चांगो और सांगला के सेब की मांग सबसे ज्यादा रहती है। इन दोनों क्षेत्रों का सेब मुंह मांगे दामों पर खरीदने को लोग उमड़ते हैं। माना जाता है कि किन्नौर के जिस इलाके में सबसे ज्यादा ठंड और सबसे अधिक ऊंचाई होती है, ऐसे क्षेत्र में सबसे अच्छे सेब की पैदावार होती है। यूं तो समूचे किन्नौर में अच्छे किस्म का सेब पैदा किया जाता है और यही कारण है कि जब हिमाचल के अन्य हिस्सों में सेब की फसल तोड़कर मंडियों में पहुंचा दी जाती है तो फिर नवंबर में किन्नौरी सेब का सीजन शुरू होकर देश की विभिन्न मडियों में भेजा जाता है। किन्नौरी सेब का भंडारण लंबे समय तक किया जा सकता है। इसका स्वाद अन्य इलाकों के सेब से अच्छा रहता है। यही कारण है कि किन्नौरी सेब और नाशपाती को व्यापारी खरीदकर कोल्ड स्टोर में भंडारित करके बाजार मांग के अनुसार मंडियों में धीरे-धीरे बेचते हैं।

इसके अलावा किन्नौर जिले में खुमानी की पैदावार भी काफी मात्रा में होती है। खुमानी को बाजार में बेचकर बागबान काफी मुनाफा कमा रहे हैं। इसके अलावा खुमानी, सेब और आड़ू को सूखाकर भी बाजार में बेचा जाता है। सूखी खुमानी, सेब और आड़ू को लंबे समय तक भंडारित करके रखा जा सकता है। मेलों में किन्नौरी स्टाल लगाकर बागबान सूखे सेब, खुमानी, बादाम, अखरोट और आड़ू बेचकर अच्छा खासा मुनाफा कमाते हैं। रामपुर में हर साल आयोजित होने वाले अंतरराष्ट्रीय लवी मेले में किन्नौरी बाज़ार सजता है और जिले के बागबान और किसान अपनी तैयार फसलों को बेचने पहुंचते हैं। लोगों की भीड़ किन्नौरी

सामान खरीदने के लिए उमड़ी रहती है। किन्नौरी बाजार में सेब, नाशपाती, खुमानी, बादाम, अखरोट, चिलगोजा, सूखी खुमानी आदि खरीदने वालों की संख्या ज्यादा रहती है। इसी तरह से किन्नौरी ऊनी वस्त्रों को खरीदने के लिए लोग काफी संख्या में आते हैं।


ऊन से घोड़े के लिए रस्सी तैयार करता स्थानीय वासी

जिला किन्नौर में मौन पालन और पशुपालन व्यवसाय को अपनाए जिले के लोगों की आय का प्रमुख साधन भी है। किन्नौर में पशुपालन व्यवसाय कोई आसान काम भी नहीं है। छह माह तक बर्फ से ढके रहने वाले किन्नौर क्षेत्र में जहां पशु चारे की समस्या बनी रहती है और चारे का लंबे समय के लिए भंडारण भी नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में किन्नौर के भेड़ और अन्य पशुओं को मैदानी इलाकों में भेज दिया जाता है। पूरी सर्दियां पशुओं को मैदानों में रखने के बाद गर्मियों में पशुओं को वापस किन्नौर ले आते हैं। इसके बाद भेड़ों और बकरियों के बाल ऊन उतारी तैयार की जाती है। इसके बाद इसी ऊन से शाल, पट्टी और टोपी आदि तैयार की जाती है। ऊन से बने इन उत्पादों की बाजार में अच्छी मांग रहती है।

मौन पालन : किन्नौर क्षेत्र में बागवानी के साथ मौन पालन व्यवसाय को लोग लंबे समय से अपनाए हैं। किन्नौर में उत्पादित शहद के बाजार में दाम भी काफी ज्यादा रहते हैं। किन्नौर की शादियों और अन्य समारोह में किन्नौर शहर काफी उपयोग होता है। किन्नौर के समारोह में दिए जाने वाले भोज में शहद प्रमुखता से बांटा जाता है। यही कारण है कि किन्नौर के घर-घर में शहद


किन्नौर लौटती भेड़-बकरियां


किन्नौरी शहद के लिए लगाए गए मौन बॉक्स

तैयार किया जाता है। देश के विभिन्न बाजारों में किन्नौरी शहद की मांग काफी रहती है। लंबे समय के किन्नौर जिले के लोग कृषि क्षेत्र से जुड़े हुए हैं। किन्नौर के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग कृषि फसलें ली जाती हैं। किन्नौर की राजमाह, मटर, आलू, ओगला, कोदा, जौ और फांफरा की खेती ग्रामीणों की तकदीर बदल रही है। इन फसलों का खूब उत्पादन होता है। लोग अपनी फसलें बेचकर स्थानीय लोगों से दूसरी फसलें खरीद लेते हैं। इसके अलावा मेलों में लगने वाले किन्नौरी स्टालों में किन्नौर में पैदा की जाने वाली फसलों को बेचा जाता है। किन्नौरी राजमा, आलू, मटर, ओगला और फांफरा की मांग अधिक रहती है। विशेष समारोहों में फांफरे और ओगले की रोटी विशेष रूप से परोसी जाती है। इन रोटियों के साथ शहद, चटनी और घी भी परोसा जाता है। किन्नौर में होने वाले विवाह समारोह में अगर आप जाएं तो ओगला और फांफरे की रोटी के साथ घी, शहद और चटनी जरूर परोसी जाएगी।

1-A, Bindlesh bhawan, Shimla, HP- 171003

किन्नर देश में

राहुल सांकृत्यायन ने किन्नर देश में, कल्पा जिसे चिनी के नाम से भी जाना जाता है, के बारे में विस्तृत जानकारी दी है। चिनी में ब्रूस्की नामक जर्मन यूरोपियन पादरी ने 20वीं शताब्दी के आरंभ में एक बंगले का निर्माण अपने पैसे तथा श्रम से करवाया था। वर्ष 1877 के आस-पास मोरावियन धर्म प्रचारक रेस्लम् दंपति ने स्पुए (यहां से 48 मील और ऊपर) ने अपना आश्रय बनाया था। उन्होंने यहां सेब, नाशपाती आदि के पौधे लगाने का श्रीगणेश किया। उनका प्रयोग सफल रहा। उन्होंने यहां के लोगों को फलोत्पादन के लिए प्रेरित किया। इसके अलावा लोगों को दस्तकारी का काम भी सिखाया। वे यहां पर गाय तथा घोड़ा पालन भी करते रहे तथा खाद तैयार कर सब्जी उत्पादन भी किया। स्पू के बाद वहीं से एक पादरी ब्रुस्की 1887 में आकर यहां सड़क के किनारे चिनी में इस स्थान को किसी जमींदार से खरीदा। सुंदर बाग-बंगला (1900) और दूसरे घर बनाए। लड़कों के लिए स्कूल (1888-1907 ई.) खोला, लोगों में शिल्प का प्रचार किया। 13 वर्ष रहने के उपरांत ब्रूस्की चला गया तथा उस संपत्ति को पादरी पीटर ने संभाला।

अंत में 1912 में 9000 रुपये में मुक्तिसेना के हाथ में बेच दिया। मोरावियन मिशन यहां से चला गया। मुक्तिसेना ने अस्पताल खोले। इस अस्पताल में एक मुक्ति सैनिक एंग्लो-इंडियन डॉक्टर सैमुअल (बरफुट) और उसकी पत्नी ने साल भर कार्य किया। मुक्ति सेना ने यहां ऊन कातने-बुनने का स्कूल भी खोला। कुछ सालों तक संस्था चलाने की कोशिश की गई, किंतु वह चल नहीं सकी। प्रथम विश्व युद्ध के कारण दान के स्रोत भी बंद हो गए। इधर, राज्य का प्रबंध राजा पदम सिंह ने संभाल लिया। अंग्रेज प्रबंधक चले गए। अंत में वर्ष 1928 में मुक्तिसेना पांच हजार रुपये में बाग-बंगले को राज्य के हाथ में बेचकर चली गई। यहां काम का श्रेय ब्रूस्की और मोरावियन मिशन को है, जो अंग्रेज नहीं जर्मन थे। वे अंग्रेज अधिकारियों और सरकार की मदद से काम नहीं करते थे बल्कि यूरोप से सहायता पाते थे। ब्रूस्की ने चिनी में बंगले को मिस्त्री कृपा राम से बनवाया था। वहां यूरोपियन ढंग का चूल्हा लगाया। ब्रूस्की ने हालैंड से सेब व नाशपाती की पौध मंगाकर लगवाई।



खरीददारों की पहली पसंद किन्नौर के कृषि उत्पाद

कृषि बागबानी का सिरमौर बना किन्नौर

भारतीय कृषि अनुसंधान केंद्र जो डॉ. वाईएस परमार बागबानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौणी के तहत संचालित किया जा रहा हैं, के माध्यम से जिला किन्नौर के किसानों और बागबानों को उन्नत किस्म की कृषि और बागबानी फसलों के बारे में समय समय पर विस्तार से जानकारी प्रदान की जा रही है। इसके साथ ही जिले में कृषि और बागबानी फसलों के बारे में उत्पन्न समस्याओं का समय-समय पर निराकरण यह केंद्र करता रहा है। नई उन्नत किस्म की फसलों और सेब व अन्य फलदार पेड़ों के बारे में किसानों और बागबानों को जागरूक करने का काम भी यह केंद्र कर रहा है। किसानों और बागबानों के लिए केंद्र के वैज्ञानिक साल भर प्रशिक्षण कैंपों का भी आयोजन करता है। इसके अतिरिक्त पशुपालकों को पशुओं के बेहतर देखभाल के बारे और पशुओं को बीमारियों से बचाने के बारे में जागरूक करते हैं। किसानों को दलहनों, तिलहनों के अच्छे उत्पादन और नई किस्मों के बारे में बताया जाता रहा है। इतना ही नहीं, किसानों और बागबानों को प्रशिक्षित करने वाले कृषि और बागबानी से जुड़े फील्ड अफसरों को भी नई तकनीकों के बारे में जागरूक करने के लिए केंद्र में प्रशिक्षित किया जाता है ताकि जिले के किसानों और बागबानों तक समय पर नवीन जानकारी पहुंच सके। कृषि केंद्र में कृषि-बागबानी से संबंधित सभी विषयों जैसे विभिन्न फलों की बागबानी, सब्जी और बीज उत्पादनए फसल के कीट-पतंगे एवं बीमारी प्रबंधन, मिट्टी परीक्षण और पोषक तत्व प्रबंधन, मधु मक्खी पालनए खुंब उत्पादनए फल-सब्जी नर्सरी उत्पादन इत्यादि पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए जाते हैं। वैज्ञानिक अपने केंद्र के अतिरिक्त विभिन्न गांवों में जाकर भी वहां की आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण शिविर लगाते हैं। केंद्र में स्कूल छोड़ चुके युवक-युवतियों के लिए विशेष रोजगारोन्मुख विषयों पर प्रशिक्षण देते हैं। किसान और बागबानों के सभी समूह अपने क्षेत्रों में संबंधित विषयों पर प्रशिक्षण के लिए आवेदन कर सकते हैं। केंद्र महिलाओं से संबंधित विशेष रोजगारोन्मुख तकनीकें जैसे फल और नर्सरी उत्पादन, खुंब उत्पादन, मधु मक्खी पालनए फल सब्जियों के विशेष पदार्थ जैसे आचारए चटनी, टॉफी, मुरब्बा, जूस, जैम, मदिरा इत्यादि बनाने परे केंद्र पर प्रशिक्षण ले सकती हैं। सेब की विभिन्न किस्मों का अनुमोदन क्षेत्र की जलवायु के अनुसार से किया जाता है। गोल्डन डिलिशियस, गोल्ड स्पर, टाइडमैन अलींवरसैस्टर, गेल गाला इत्यादि सेब की प्रमुख परागण किस्में हैं। अलग-अलग क्षेत्रों की मिट्टी में विभिन्न पोषक तत्वों की मात्र तथा अनुपात एक जैसा नहीं होता, इसलिए मिट्टी के उचित प्रीक्षण के बाद ही खादों का अनुमोदन किया जा सकत है। जिला के विभिन्न क्षेत्रों में सेब, खुमानी, नाशपाती, अंगूर, बादाम, अखरोट, पिस्ता इत्यादि फसलों की अपार सम्भावनाएं है। केंद्र में सेब, खुमानी, नाशपाती, अंगूर, बादाम इत्यादि फलों के अच्छी गुणवत्ता के पौधे बागबानों को उपलब्ध करवाए जाते हैं। जिला किन्नौर में फलों की कुल पैदावार 82 सौ मीट्रिक टन रहती है। सेब की पैदावार सबसे अधिक 75200 मीट्रिक टन रहती है। यहां के प्रगतिशील किसानों ने नई कृषि व बागबानी तकनीकों को अपनाकर किन्नौर को गुणात्मक फल व कृषि उत्पाद का सिरमौर बना दिया है।

फल	उत्पादन मीट्रिक	क्षेत्रफल हेक्टेयर
सेब	75200	11 हजार
बादाम	141	986
अखरोट	62	420
गुठलीदार फल	410	420
राजमा	201	481
सब्जियां	42506	3500

भारतीय कृषि अनुसंधान केंद्र जो डॉ. वाईएस परमार बागबानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय नौणी के तहत संचालित किया जा रहा है, के माध्यम से जिला किन्नौर के किसानों और बागवानों को उन्नत किस्म की कृषि और बागवानी फसलों के बारे में समय समय पर विस्तार से जानकारी प्रदान की जाती है। जिले में कृषि और बागबानी फसलों के बारे में उत्पन्न समस्याओं का समय-समय पर निराकरण यह केंद्र करता रहा है। नई उन्नत किस्म की फसलों और सेब व अन्य फलदार पेड़ों के बारे में किसानों और बागवानों को जागरूक करने का काम भी यह केंद्र कर रहा है।

महान विद्वान राहुल सांकृत्यायन ने सन् 1947 में तहसीलदार मंगत राम से इस प्रदेश के कुछ गांवों में फलदार वृक्षों का बगीचा लगवाया था। उस वक्त अंगूर 4557, सेब 5978, नाशपाती 523, आड़ू 2274, आलूचा 6457, खुमानी 629, बादाम 285, पिस्ता 11, अखरोट 8165 के करीब पेड़ मौजूद थे।



पर्यावरण

जल जंगल जमीन जीवन संरक्षण में साहित्यकार की भूमिका

◆ डॉ. दादूराम शर्मा

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः- धरती मेरी मां है और मैं उसका पुत्र हूं" 'अथर्ववेद' के 'पृथिवीसूक्त' में ऋषि का यह अमर उद्‌घोष मानवीय चिन्तन की चरम परिणति है। धरापुत्र होने की यह अनुभूति और प्रतीति मनुष्य को धरती पर जन्मे और आश्रय लेने वाले समस्त चराचर, दृश्य-अदृश्य प्राणियों के साथ सहोदर भाव के- पारिवारिक अनुराग के सूत्र में बांध देती है। तब, नदी-निर्झर, लता-वृक्ष, जंगल-पहाड़, पालित पशु-पक्षी, इतर जलचर-थलचर-नभचर जीव सभी उसके आत्मीय बन जाते हैं, इनसे उसका आत्मभाव स्वयमेव स्थापित हो जाता है। वह सभी प्राणियों को अपने में और अपने को सभी प्राणियों में देखने लगता है -

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति।।

- यजुर्वेद 1/1

अचर या स्थावर जीवों-पेड़-पौधों, तृण-लताओं की जननी तो धरती है ही और चर या जंगम प्राणी भी जननी की कुक्षि से जन्म लेकर धरती की गोद में आंखें खोलते हैं। वही सबकी आश्रय स्थली है, सभी उसके परिवेश में व्याप्त वायु में सांसें लेते हैं, उसमें अवस्थित जल पीते हैं और उसी से प्राप्त भोजन से जीवन धारण करते हैं। वह रत्नप्रसवा है, वसुधानी है, सोना-चांदी, हीरे-मोती सभी तो उससे प्राप्त होते हैं। फसलें उस पर लहलहाती रहती हैं अतः उसे शस्य श्यामला या हिरण्यवक्षा कहा जाता है, उसके वक्ष पर अजस्र प्रवहमान नदी-निर्झर और आभ्यंतर जलधाराएं जीवन का जयनाद करती हैं। इसीलिए ऋषि की वाणी वसुन्धरा के स्तवन में मुखरित हो उठी हैं-

"विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यगर्भा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं विभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणं नो दधातु।।- अथर्ववेद 12/1/6
यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रो अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।"

- वही- 12/1/9

जल चराचर प्राणियों का जीवन है क्योंकि वह उनका पोषण, संरक्षण और संवर्धन करता है इसीलिए उसे 'अमृत', 'कीलाल' (रक्त) और 'जीवन' (जिंदगी, प्राणवत्ता) कहा गया है। वनों का पोषक, रक्षक और संवर्धक होने के कारण उसी को 'वन' की संज्ञा दी गई है। जल है तो जहान है इसीलिए उसे 'भुवन' कहकर भी पुकारा गया है- *पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्।*- अमरकोश

वाष्प और मेघरूप में अंतरिक्ष में विद्यमान, जमीन पर नदी-निर्झरों में प्रवहमान और कूप, तड़ाग, समुद्रादि में संचित जल सबका पोषण करता है, सबको प्रक्षालित करके शीतल और पवित्र करता है। बिना जल के जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती इसीलिए 'देवता' कहकर उसकी स्तुति की गई है-

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति, खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्थाः याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।। - ऋग्वेद' 7/49/2

जल द्वारा विविध रोगों का निदान होता है। वेदों में जल भैषज्य वर्णित है-

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम।- य.वे. 1/23/21

जिस तरह मानवरोपित उद्यान ग्रामों और नगरों के श्रृंगार हैं उसी तरह प्रकृति पोषित जंगल जमीन के श्रृंगार हैं। जंगल असंख्य जंगली जीवों के आश्रय स्थल हैं, वर्षा के कारक हैं, प्राण वायु के उत्सर्जक हैं, सूर्य की दाहकता के अवशोषक और शमक हैं इसलिए वातावरण के प्रशीतक और संतुलक हैं, हमारी विभिन्न जरूरतों के प्रतिपूरक हैं, स्वास्थ्यवर्धक-रोग निवारक औषधियों के आपूरक हैं। ये जमीन के संरक्षक हैं क्योंकि ये वर्षा जल के कटाव से धरती को बचाते हैं, उसकी उर्वराशक्ति को सुरक्षित रखते हैं।

जल और जंगल अन्योन्याश्रित हैं। वर्षा का जल जंगलों का पोषण करता है तो सूर्य द्वारा सतत वाष्पीभूत होकर अवशोषित होने वाले भूजल को वर्षा ऋतु में जंगल ही मेघों को रोककर उन्हें अपने संस्पर्श से जल बिन्दुओं में परिणत करके वर्षा द्वारा जमीन को लौटा देते हैं। प्रकृति के इस सनातन जलचक्र की विश्लेषक संस्कृत भाषा में इसीलिए 'वन' के दो अर्थ-जल और जंगल- "वने सलिल कानने"(अमरकोश)बतलाकरउनके अन्योन्याश्रयत्व को रेखांकित किया गया है। जल है तो जंगल है, जंगल हैं तो जल है और जल-जंगल हैं तो जमीन है, जमीन पर जीवन है। जंगल नहीं रहेंगे तो जल भी नहीं रहेगा, प्राणवायु नहीं होगी और तब जमीन पर जीवन भी नहीं रहेगा तभी तो जंगल को और जीवन को जल का पर्यायवाची माना गया है। जमीन, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंचतत्वों या पंचमहाभूतों से पर्यावरण भी बनता है और प्राणियों के भौतिक पिण्ड की संरचना भी होती है।

वन हमारी संस्कृति के केन्द्र थे और ग्राम एवं नगर सभ्यता के तपोवन अभयारण्य होते थे जहां तपोधान ऋषियों के संसर्ग से हिंसक जन्तु भी अपनी हिंसावृत्ति छोड़कर अन्य जीवों के साथ हिल-मिलकर रहते थे। उनमें वन्य जीवों का आखेट भी वर्जित था। नगर सभ्यता से लांछित-तिरस्कृत राजमहिषी गर्भिणी सीता ने महर्षि वाल्मीकि के तपोवन के विशाल अंक में आश्रय और संरक्षण पाया था। उनके अकारण परित्यागजन्य संताप का प्रशमन करते हुए महर्षि ने उन्हें आश्वस्त किया था- "पुत्रि ! शोक मत करो, समझो कि तुम अपने पिता के घर ही आ गई हो। तपस्वियों के संसर्ग से अपनी सहज हिंसावृत्ति को त्यागकर विनम्र और स्नेहिल बने इन जीवों के बीच तुम निर्भय होकर रहो। इसी पावन वातावरण में तुम्हारी संतान को भी निर्भयता, निर्वैरता, मैत्रीभाव और राग-द्वेष रहित विशाल हृदयता के संस्कार मिलेंगे-तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदेहि पितुर्निकेतम्।।-रघु. 14/72

वन भारतीय संस्कृति के आदिम उत्स रहे हैं। वह यहीं जन्मीं, फैली-फूली और फलित हुई। यहीं पर शिक्षा के केन्द्र ऋषियों के तपोवन थे जहां नगर के कोलाहल से दूर गुरुकुलों के शान्त स्नेहिल और पवित्र वातावरण में राजा से लेकर रंक तक के ब्रह्मचारी बालकों (वटुओं) को बिना भेदभाव के शास्त्रों-शस्त्रों और जीविपकोपार्जन की शिक्षा दी जाती थी। यहां से शिक्षा प्राप्त स्नातक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। वहां अपने पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों का सम्यक निर्वहन करके वे पुनः सपत्नीक वानप्रस्थ जीवन ग्रहण करके तपोवनों में आश्रय लेते थे और 'ऋषि' कहलाते थे। ये ही गुरूकुलों के आचार्य (शिक्षक) होते थे। प्रधान आचार्य को 'कुलपति' कहा जाता था। ये तपस्वी ऋषि ही हमारी आचार- संहिता के रचयिता थे, विधायक थे, राजनीति के नीति नियामक सूत्रधार थे। नगरों में राजा और उनकी मंत्रिपरिषद् के पास और ग्रामों में पंचायतों के पास कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्ति अवश्य थी किन्तु जटिल विवादों और उलझनों को तपोवनों के महर्षियों के निर्देशन में ही सुलझाया जाता था।



तपस्वी ऋषियों ने आचारसंहिता वेदों, आरण्यकों, सूत्र-स्मृतियों और पुराणों की रचना की है। काव्य का जन्म करुणा की कुक्षि से हुआ है। पर दुःख से द्रवित होना करुणा है। ब्रह्म की "एकोऽहं बहु स्याम प्रजेयम्'' की सिसृक्षा को-सृष्टि-विस्तार के संकल्प को पूर्ण करने में लगे क्रौंच-मिथुन में से नर क्रौंच को अपने बाणों से बिंद्ध करके प्रकृति के विरुद्ध आचरण करने वाले व्याध के लिए अभिशप्त वाक्य में आदिकवि वाल्मीकि के कंठ से प्रथम श्लोक फूटा था- *"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वं गमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौंच-मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।"* क्योंकि उसने परमात्मा की ''प्रजनश्चास्मि कंदर्पः'' और ''धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि'' रूप सृजन की इच्छा के विरुद्ध आचरण करके सृष्टि चक्र के संचालन में व्याघात उत्पन्न किया था। काव्य मृत्यु और विनाश का वारण करता है और जीवन और सृजन का वरण करता है, जीवन का जयगान करता है। जगमंगल विधायक काव्य का निस्सरण तपोवनों में तपोधनों की कालजयी लेखनी से हुआ है।

वन हमारी संस्कृति के केन्द्र थे और ग्राम एवं नगर सभ्यता के तपोवन अभयारण्य होते थे जहां तपोधन ऋषियों के संसर्ग से हिंसक जन्तु भी अपनी हिंसावृत्ति छोड़कर अन्य जीवों के साथ हिल-मिलकर रहते थे।

उनमें वन्य जीवों का आखेट भी वर्जित था। नगर सभ्यता से लांछित-तिरस्कृत राजमहिषी गर्भिणी सीता ने महर्षि वाल्मीकि के तपोवन के विशाल अंक में आश्रय और संरक्षण पाया था। उनके अकारण परित्यागजन्य संताप का प्रशमन करते हुए महर्षि ने उन्हें आश्वस्त किया था- "पुत्रि ! शोक मत करो, समझो कि तुम अपने पिता के घर ही आ गई हो। तपस्वियों के संसर्ग से अपनी सहज हिंसावृत्ति को त्यागकर विनम्र और स्नेहिल बने इन जीवों के बीच तुम निर्भय होकर रहो। इसी पावन वातावरण में तुम्हारी संतान को भी निर्भयता, निर्वैरता, मैत्रीभाव और राग-द्वेष रहित विशाल हृदयता के संस्कार मिलेंगे-तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्तासि वैदेहि पितुर्निकेतम्।।" -रघु. 14/72

तपस्विसंसर्ग विनीतसत्त्वे तपोवने बीतभया वसास्मिन्।

इतो भविष्यत्यनघप्रसूतेरपत्यसंस्कारमयो विधिस्ते।।

- वही 14/75

अपने बल के अनुरूप घड़ों से आश्रम के पौधों को सींचकर पोषित करती हुई तुम पुत्रोत्पत्ति के पूर्व ही मातृत्व का प्रशिक्षण प्राप्त कर लोगी- "*पयोघटैराश्रमबालवृक्षान् संवर्धयन्ती स्वबलानुरूपैः।*

असंशयं प्राक् तनयोपपत्तेः स्तनंधयप्रीतिमवाप्स्यसि त्वम्।।" 14/78

भारतीय संस्कृति देवोपासक है। 'देव' का लक्षण है- "देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा-देने वाला, द्योतित या प्रकाशित होने और प्रकाशित करने वाला 'देव' है। इसीलिए जल देव है, जल के रूप में जीवन देने वाला जलद देव है, पिता है- पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु (अथर्व. 12/1/12), छाया, काष्ठ, पत्र पुष्प, फल, औषधियां और जीवों द्वारा उत्सर्जित कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को ग्रहण करके प्राणवायु का उत्सर्जन करने वाले पेड़ देव हैं, वन देव हैं, पहाड़ देव हैं, प्रकाशित होने और प्रकाशित करने वाला ऊष्मा और ऊर्जा का अक्षय स्रोत सूर्य तो देव है ही, अग्नि देव है चन्द्र देव है, तारे देवता हैं, धरती और नदियां तो देवी ही नहीं माता भी हैं, गो माता है, वायु देव हैं। इन देवताओं की स्तुति, आराधना और उपासना भारतीय संस्कृति की कृतज्ञता की भावना को रेखांकित करती हैं। हमारे ऋषियों और महाकवियों ने धरा से लेकर गगन तक के समस्त प्राकृतिक उपादानों का मानवीकरण करके उनसे मानव के अनुरागमय पारिवारिक सम्बन्ध जोड़ दिए हैं।

सर्वलोकवंदित सर्वेश्वर शिव किसी अज्ञात लोक में नहीं, इसी धरा पर अवस्थित पर्वतराज हिमालय के उत्तुंग शिखर कैलास में सतत् निवास करते हैं। भगवती पार्वती तो पर्वतराज कन्या है ही और सीता भी भूमिजा हैं, धरापुत्री हैं। मानवता के संरक्षक, संस्थापक और प्रेरक राम का रामत्व, सीता का वंदनीय-वरणीय नारीत्व, मुरलीधर गोपालकृष्ण का कृष्णत्व, बलराम का हलधरत्व, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि का कवित्व, सिद्धार्थ का बुद्धत्व, वर्धमान का अपरिग्रही महावीरत्व सभी तो वनों की गोद में पले, बढ़े और विकसित हुए हैं।

फिर आया बीसवीं सदी की आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता का युग, भूमंडलीकरण का युग, जिसमें दुनिया सिमटकर छोटी हो गई, दूरियां घट गईं। विज्ञान नए-नए आविष्कारों से मानव की प्रकृति पर निर्भरता को जैसे मिटाने लगा। प्रकृति देवी से दासी बन गई, उसकी स्वार्थसिद्धि का साधन मात्र रह गई। मानव के सुख-साधन जुटाने वाला विज्ञान विनाशक आणविक अस्त्रों का आविष्कार कर-करके युद्ध द्वारा सर्वसंहार की त्रासदी और विभीषिका उत्पन्न करने लगा। ग्लोवल वार्मिंग से हिमशैल (ग्लेशियर) पिघलने लगे और समुद्र का जलस्तर बढ़ने से आवासीय भूमि सिमटने लगी। शहरीकरणोन्माद समस्त वनसम्पदा का निर्ममतापूर्वक दोहन करने लगा और जंगलों को अनावश्यक और जंगलीपन का कारक और परिचायक मानकर मिटाने लगा। पेड़ के शब्दों में-

फिर आई हमारे शवों पर पली-बढ़ी मशीनी सभ्यता !
उजड़े वन, बसे नगर, लगे कल-कारखाने
उठ गए हमसे बहुत ऊंचे तुम सभ्यता के दीवाने !
कारखाने करने लगे नदियों का दूषित जल
चिमनियां और वाहन उगल रहे धुआं अविरल
उनकी कर्णवेधी ध्वनि कर रही सबको विकल
तुम्हारे प्रश्वास से भर गया वायुमंडल
होकर प्रदूषित अब खो बैठा संतुलन !
हमारे अभाव में हमारे चिर सहचर
घिरते नहीं नभ में अब पूर्ववत् जलधर
घिरें भी तो बरसे बिना जाने कहां उड़ जाते
और चर-अचर सब तरसते रह जाते
इस तरह काटकर हमें काट लिया अपना मूल
कितनी महंगी पड़ी तुम्हें मानव ! तुम्हारी भूल ?

- स्वरचित ''पेड़ की पुकार'' कविता से

ओजोन-पर्त में प्रदूषण सतत् बढ़ाता छेद
क्यों न समझता मनुज इस सर्वनाश का भेद ?

- स्वरचित 'प्रदूषण' कविता से

साहित्य मानवीय संवेदना को जागृत और विकसित करता है, चिन्तन को सही दिशा देता है, आचरण और व्यवहार का संस्कार करता है और समाज में सौहार्द, सहिष्णुता, समन्वयशीलता, सहयोग, सहभाव और परस्पर समर्पण की भावना जगाता है। और यह साहित्य प्रकृति की गोद में जन्म लेता है, प्रकृति द्वारा प्रेरित और विकसित होता है। प्रकृति पोषित साहित्यकार सृष्टि का, समाज का सचेतक प्रहरी है। पर्यावरण असंतुलन और प्रदूषण उत्तर आधुनिक युग की विकराल समस्या

है। सर्वाधिक संवेदनशील होने से साहित्यकार की उसके लिए चिन्ता और उसके निवारण के लिए चिन्तनपरक सर्जना स्वाभाविक है-

करें वायु-ध्वनि-प्रदूषण ये कल-वाहन-यंत्र।
उलट दिया विज्ञान ने सहज प्रकृति का तंत्र।।
सरजल दूषित सरित्‌जल भूजल, सागर-नीर।
मृदा प्रदूषित गगन भी दूषित हुआ समीर।।
कलम लिए विज्ञान की आज मनुज मति-मंद।
प्रदूषण मसि से लिखे, सर्वनाश के छन्द।।

- स्वरचित 'प्रदूषण' कविता से

जब तक मानव प्रकृति का उपासक, सहचर और सेवक रहा, पंचमहाभूतों में समन्वय और संतुलन बना रहा, ऋतुचक्र यथावत् चलता रहा, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, सूखा और अकाल का संकट नगण्य रहा।

आज अपने को और समग्र जीवजगत् को सर्वनाश से बचाने और प्रकृति चक्र को पूर्ववत् संतुलित करने का एकमात्र उपाय है प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन, प्रकृति के साथ अपने पहले जैसे रागात्मक सम्बंधों की पुनः स्थापना, जिसकी दिव्य और भव्य झांकी हम अपने आदि राष्ट्रकवि किंवा विश्वकवि कालिदास के काव्य में देखते हैं।

अतीत में तपोवन, अभयारण्य होते थे, जिनमें वन्य जीवों का आखेट वर्जित था। राजा को भी इस नियम का कठोरता से पालन करना पड़ता था। अतः 'अभिज्ञान शाकुंतल' का नायक राजा दुष्यन्त जब भूल से आश्रम परिसर में प्रवेश करके हरिण को अपने बाण का निशाना बनाना चाहता है तो आश्रम का एक वटु- 'राजन् आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः' कहकर न केवल उसे रोक देता है अपितु उसे राजधर्म का स्मरण कराने से भी नहीं चूकता- 'आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि- राजन् ! आपका शस्त्र तो पीड़ितों की, दीन-दुःखियों और दुष्टों से सताए गए प्राणियों की रक्षा के लिए है, निरपराध वन्य जीवों को मारने के लिए नहीं।'

शकुन्तला का शिशु भरत तपोवन में सिंह शावक के साथ खेलता है, उसके दांत गिनता है और उसकी मां सिंहनी के आ जाने पर भी उससे जरा भी भयभीत नहीं होता।

मनुष्य की मनुष्यता औरों का जीवन लेने में नहीं, उनका जीवन बचाने और उन्हें जीवनदान देने में है। महाराज दिलीप जब भूखे सिंह के पंजों में छटपटाती, कातर नेत्रों से निहारती नंदिनी गो को शस्त्रबल से नहीं बचा पाते तो यह कहते हुए- "भाई सिंह ! कृपा करके मेरा यह शरीर ले लो और इसे खाकर अपनी भूख मिटा लो, किंतु सद्यःजात बछड़े की माता इस नंदिनी को छोड़ दो -

"स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।
दिनाबसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः।।"

अपना शरीर मांस के लोथड़े की तरह भूखे सिंह के आगे डाल देते हैं- स न्यस्त शस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत् पिण्डमिवामिषस्य। परप्राण रक्षा के लिए आत्मबलिदान की, दयावीरत्व की कैसी दिव्य झांकी है !

महर्षि कण्व के आश्रम के वृक्षों को घड़ों से पानी देतीं शकुन्तला और उसकी सखियों का यह मनोहर वार्तालाप सुनिए, जिसमें महाकवि ने वृक्ष-लताओं से उनके पारिवारिक स्नेह का हृदयावर्जक दृश्य उपस्थित कर दिया है- अनसूया-हला शकुन्तले! त्वत्तोऽपि तातकण्वस्य आश्रमवृक्षाः प्रियतराः इति तर्कयामि येन नवमालिका-कुसुम-परिपेलवापि त्वमेतेषामालबालपरिपूरणे नियुक्ता! (सखि, शकुन्तले ! लगता है, तात कण्व को आश्रमवृक्ष तुमसे भी अधिक प्रिय हैं तभी तो नवमालिका के फूलों से भी कोमल तुमको इन्हें घड़े से पानी देने के कठिन श्रमसाध्य कार्य में लगा रखा है। शकुन्तला- हला अनसूये ! न केवलं तातकण्वस्य नियोगः ममापि एतेषु सहोदर स्नेहः। (सखि अनसूये ! तात कण्व के आदेश से ही मैं इन्हें नहीं सींच रही हूं अपितु मेरा भी इन पर सगे भाइयों जैसा प्रगाढ़ स्नेह है।) सीता भी महर्षि वाल्मीकि के तपोवन के वृक्षों को सींच-सींचकर मातृत्व का पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त करती हैं।

महर्षि पतिगृह जाती हुई अपनी पुत्री शकुन्तला के लिए लता-वृक्षों के परिवार से कैसे मार्मिक शब्दों में विदा मांग रहे हैं- ''हे तपोवन के स्नेही पादपों ! अरी अनुराग-रंजित लताओं ! जो तुम्हें बिना सींचे स्वयं कभी जलपीने का भी विचार नहीं करती थी, जिसे यद्यपि पुष्पों और पल्लवों के आभूषण अत्यंत प्रिय थे किन्तु तुम्हें कष्ट न हो इसलिए जिसने कभी तुम्हारे पल्लव तक नहीं तोड़े और तुम्हारा पुष्पित होना ही जिसके लिए महान् उत्सव होता था, वही तुम्हारी स्नेहशीला शकुन्तला आज पतिगृह जा रही है, आप सभी कृपया उसे जाने की अनुमति प्रदान करें-



"पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वसिक्तेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्यै वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्याः भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।"

- अभिज्ञान शाकुंतल 4/11

और प्रकृति के प्रतिनिधि वसन्त के अग्रदूत कोकिल ने कूक द्वारा मधुर स्वर में उसे विदाई दी। शकुन्तला अपनी बहन माधवी लता से लिपटकर कैसे करूणा विगलित स्वर में विदा मांग रही है- "लता बहन ! अपनी शाखारूपी भुजाओं से मेरा प्रत्यालिंगन करो। आज से मैं तुमसे दूर हो जाऊंगी। पिताजी, आप मेरी तरह मेरी इस प्यारी बहन की भी देखभाल कीजिएगा- लता भगिनि ! प्रत्यालिंग मां शाखामयैर्बाहुभिः। अद्यप्रभृति दूर वर्तिनी खलु ते भविष्यामि। तात ! अहमिव इयं त्वया चिन्तनीया।" फिर आसन्न प्रसवा मृगी पर उसकी दृष्टि पड़ती है और वह पिता से अनुरोध करती है कि जब उसकी संतानोत्पत्ति हो तो वह शुभ समाचार उसे अवश्य पहुंचाया जाय- तात ! एषा उटजपर्यन्तचारिणी गर्भभार मंथरा मृगवधूर्यदा सुखप्रसवा भविष्यति तदा मे कमपि प्रियनिवेदकं विसर्जयिष्यसि। मा विस्मरिष्यसि।"

जिस मातृविहीन मृगशावक का उसने पुत्रवत् पालन किया था, उसे वह किसी तरह पिताजी को सौंपकर जाने का प्रयास करती है। विदा होती शकुन्तला के लिए समग्र प्रकृति आज जीवन्त हो उठी है। किसी वृक्ष ने उसे पहनने के लिए रेशमी वस्त्र दिए हैं, किसी ने चरण रंगने को महावर दिया है तो अन्य पादपों ने वनदेवता के हाथों से उसके अलंकरण के लिए दिव्य आभूषणों के उपहार दिये हैं।- (शाकुं. 4/7) शकुन्तला को आश्रम से सदा के लिए विदा होते देखकर हरिणियों ने कुशाओं के ग्रास उगल दिए, मोरों ने नाचना बन्द कर दिया और लताएं पीले पत्तों के रूप में आंसू बरसाने लगीं-

उद्गीर्ण दर्भकवला मृगी, परित्यक्तनर्तना मयूरी।
अपसृत पाण्डुपत्रा मुंचंत्यश्रु इव लताः।।

- शाकुं. 4/14

उस युग में पशु-पक्षियों से भी मानव के दृढ़ मैत्री सम्बन्ध थे। गृध्र जटायु की महाराज दशरथ से मित्रता थी। रावण द्वारा हरी जाती हुई उनकी पुत्रवधू सीता को छुड़ाने में अपने प्राणों का पण (बाजी) लगाकर उसने मैत्रीधर्म का हृदयावर्जक उदाहरण प्रस्तुत किया था -

तौ सीतान्वेषिणौ गृध्रं लूनपक्षमपश्यताम्।
प्राणैर्दशरथ प्रीतेरनृणं कण्ठवर्तिभिः।।'

'रघुवंश' 12/56

और पिता दशरथ भी जिनसे अंतिम संस्कार का सौभाग्य न पा सके, उन्हीं राम ने पिता के उस महान् परोपकारी मित्र का अपने हाथों पिता के समान ही अंतिम संस्कार किया-पितरीवाग्नि संस्कारात् परा ववृतिरे क्रियाः।- वही 12/58

जीवनदायक सर्वसंतापहारी जलद और उसके वक्ष पर कौंधती उसकी प्रियतमा तडित् को भी महाकवि ने अनुराग तरलित जीवन से सम्पृक्त कर दिया है। पक्व-पीताभ फलों से लदे आम्रवनों वाले आम्रकूट पर जब श्याम धन आश्रय लेता है तो वह धरती माता के बीच में काले और चारों ओर से गोरे पयोधर की कांति को धारण कर लेता है -

छन्नोपान्तः परिणत-फल-द्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणी सवर्णे।
नूनं यास्यत्यमर मिथुन प्रेक्षणीयामवस्थां,
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेष-विस्तार-पाण्डुः।।

- मेघदूत 1/18

महाकवि की सजल जलधर के लिए मां वसुंधरा के दुग्धस्रावी स्तनमुख की परिकल्पना कितनी सटीक है ! माँ स्तनपान कराकर अपने शिशु का पोषण करती है तो धरती माता का स्तन जलद जलवृष्टि करके वनस्पतियों को नवजीवन देता है, प्राणियों के लिए घास आदि और मनुष्यों के लिए अन्न उत्पन्न करता है।

महर्षि वाल्मीकि ने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' कहकर माता और मातृभूमि की सर्वोपरिता और महत्ता पर मुहर लगा दी है, कालिदास उसे 'देवभूमि' कहते हैं और 'विष्णु पुराण' में तो देवताओं ने भी पुरूषार्थ की स्थली तथा स्वर्ग और अपवर्ग

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबन्धों में 'वृक्ष' सर्वत्र मानव की उद्दाम जिजीविषा के पोषक और अभिनंदनीय- अनुकरणीय उदात्त मानवता के प्रेरक हैं। 'कुटज' कठोर पाषाण को भेदकर, वायुमंडल को चूसकर, झंझा-तूफान को रगड़कर अपना प्राप्य वसूल लेता है, आकाश को चूमकर अवकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींच लेता है ('कुटज' पृ. 12) शिरीष प्रचण्ड ग्रीष्म में जब धारती और आसमान जलते रहते हैं तब भी न जाने कहां से अपना रस खींचते रहता है। भयंकर लू के समय कोमल तंतुजाल और सुकुमार केसर उगा सकता है।('कल्पलता' पृ. 25) देवदारू को द्विवेदी जी ने उर्ध्वमुखी चेतना से अनुप्राणित देखा है।

(मोक्ष) की हेतुभूत भारतभूमि की महिमा गायी है -

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पद हेतुभूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्।।

'रामचरितमानस' में लंका विजय करके लौटते राम अपने विजयाभियान के सहयोगी सुग्रीव आदि मित्रों सें अपनी जन्मभूमि अयोध्या को बैकुंठ से भी श्रेष्ठ बतला रहे हैं -

''जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। वेद पुरान विदित जग जाना।। अवधपुरी सम प्रिय नहीं सोउ''

रामराज्य में धरती पर बारहों महीने फसलें लहलहाती थीं, वन वनसम्पदा से समृद्ध थे, वृक्ष सदैव फूलते-फलते थे, वन्य जीव परस्पर वैरभाव को भूलकर निर्भय विचरण करते थे, सरिताओं का जल, प्रदूषणमुक्त होने से निर्मल, सुस्वादु और स्वास्थ्यवर्धक था, समुद्र मर्यादा में रहते थे, मेघ यथेष्ट वर्षा करते थे, सूर्य आवश्यकतानुसार तपता था - ('रामचरितमानस' 7/23)

'आनन्दमठ' में वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने ''सुजला, सुफला, मलयजशीतला, शस्य-श्यामला, फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदलशोभिनी सुखदा, वरदा भारतमाता' की वन्दना की है।

'निराला' ने भारतमाता का बड़ा ही भव्य और दिव्य चित्र अंकित किया है। वह लंका के शतदल कमल पर अवस्थित है, समुद्र स्तवन करता हुआ उसके चरण धो रहा है वह तरु-तृण-वन-लता-निर्मित पुष्प सज्जित हरित दुकूल, गंगा के धवलहार और हिमगिरि के रजत किरीट से सुसज्जित है। पवित्र ओंकार की ध्वनि से मुखर है। ऐश्वर्य और समृद्धि के प्रतीक 'कनक' खाद्यान्न की प्रचुरता के प्रतीक 'शस्य' और शांति-मैत्री-सद्भाव के प्रतीक 'कमल' को धारण करती है।

राष्ट्रकवि 'दिनकर' नगपति हिमालय को 'साकार दिव्य गौरव विराट् पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल' कहकर पुकारते हैं।

अत्याधुनिक मानव भौतिक सुख-सुविधाओं के संसाधन बटोरने में इतना व्यस्त है अथवा उनके विषमय और त्रासद उपभोग में इतना मग्न हो गया है कि इस अमृतमयी प्रकृति की उसने पूर्णतः उपेक्षा कर दी है -

''मेरी कविता में गौरैया, वसन्त की धूप/वहीं रह गए। और मैं चल दिया !

इनकी स्मृतियां रह गई वहीं मेरे घर !''

- (रघुवीर सहाय)

जबकि 'सतपुड़ा के घने जंगल' (भवानी प्रसाद मिश्र) में प्रकृति की गोद में पलने वाले, अभावग्रस्त जीवन जीने वाले वनवासी सहज संतोष और स्वास्थ्य से सम्पन्न होने के कारण अकिंचन होते हुए भी धनी हैं और सर्वसुविधा सम्पन्न होने पर भी सदैव असंतुष्ट और विविध व्याधियों से जूझते रहने वाले शहरी कितने निःस्व हैं, कितने गरीब हैं क्योंकि उनके जीवन में ऐसा सहज उल्लास और आमोद-प्रमोद कहां है ?

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबन्धों में 'वृक्ष' सर्वत्र मानव की उद्दाम जिजीविषा के पोषक और अभिनंदनीय-अनुकरणीय उदात्त मानवता के प्रेरक हैं। 'कुटज' कठोर पाषाण को भेदकर, वायुमंडल को चूसकर, झंझा-तूफान को रगड़कर अपना प्राप्य वसूल लेता है, आकाश को चूमकर अवकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींच लेता है ('कुटज' पृ. 12) शिरीष प्रचण्ड ग्रीष्म में जब धरती और आसमान जलते रहते हैं तब भी न जाने कहां से अपना रस खींचते रहता है। भयंकर लू के समय कोमल तंतुजाल और सुकुमार केसर उगा सकता है। ('कल्पलता' पृ. 25) देवदारू को द्विवेदी जी ने उर्ध्वमुखी चेतना से अनुप्राणित देखा है। वह गुरुत्वाकर्षण के जड़ वेग को एवं धरती के आकर्षण को अभिभूत करके लगातार ऊपर बढ़ते जाता है। कालजयी महापुरुष भी साधारण आदमियों की तरह जमीन से ही नहीं चिपटे रहते, भौतिक आकर्षण में ही नहीं बंधे रहते अपितु जमीन से जुड़े रहकर भी निरंतर ऊपर उठते जाते हैं। धरती से उन्हें लगाव तो होता है किन्तु उस लगाव में निरपेक्ष प्रेम और करुणा का भाव होता है, मोह का नहीं। वे देना ही जानते हैं, लेना नहीं। शिव धरती की जड़ता पर जागतिक माया-मोह को उच्छिन्न करके आत्मानंद में भरकर ताण्डव करते हैं तो देवदारू भी धरती से बहुत ऊपर उठकर अपनी गगनचुम्बी झूमती हुई शाखाओं से ताण्डव नृत्य करता है। ('कुटज' पृ. 76-78)

मारणास्त्रों का विकास और विस्तार मनुष्य की आदिम बर्वरता और पशुता के अवांछनीय नवविकास को सूचित कर रहा है। आत्मघाती मानव बम बनकर निपराध जनसमूह को मौत के घाट उतारने में लगे आतंकियों के ओले जैसे- 'जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं' कृत्य ने तो विश्व को दुश्चिन्ता में डाल दिया है। जगत् को सर्वनाश से बचाने के लिए नाखूनों की तरह उन्हें काटकर नियंत्रण और मर्यादा में रखना आज की अनिवार्यता है। मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। मनुष्य अपने इन नाखूनों को और नहीं बढ़ने देगा। ('कल्पलता' पृ. 11)

महीयसी महादेवी का नारीत्व विराट् मातृत्व में परिणत होकर अपने असीम वात्सल्याप्लावित अंक में- 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के घेरे में रोपित पेड़-पौधों, स्वतंत्र और पालित पशु-पक्षियों, दलित, शोषित, लांछित, अनावृत, उपेक्षित और अभावग्रस्त समस्त नर-नारियों को सस्नेह समेटकर अपने 'महादेवी' नाम को जैसे चरितार्थ कर देता है।

मनुष्य की क्रूर और रक्तपिपासु आखेटप्रियता की भर्त्सना कैसे मार्मिक शब्दों में उन्होंने की है- "जिन्होंने हरीतिमा में लहराते हुए, मैदान पर छलांग भरते हुए हिरनों के झुंड को देखा होगा वे ही

उस अद्‌भुत गतिशील सौन्दर्य की कल्पना कर सकते हैं मानो सरल मरकत के समुद्र में सुनहले फेन वाली लहरों का उद्वेलन हो। परंतु जीवन के इन चल सौन्दर्य के प्रति शिकारी का आकर्षण नहीं रहता। मनुष्य जीवन की ऐसी सुन्दर ऊर्जा को निष्क्रिय और जड़ बनाने के कार्य को मनोरंजक कैसे कहता है ? मनुष्य मृत्यु को असुन्दर ही नहीं, अपवित्र भी मानता है। उसके प्रियतम आत्मीय जन का शव भी उसके निकट अपवित्र, अस्पृश्य तथा भयजनक हो उठता है ! जब मृत्यु इतनी अपवित्र है तब उसे बॉटते घूमना क्यों अपवित्र और असुन्दर कार्य नहीं है ?

आकाश में रंग-बिरंगे फूलों की धाराओं के समान उड़ते हुए और वीणा, वंशी, मुरज, जल तरंग आदि वृंद वादन बजाते हुए पक्षी कितने सुंदर जान पड़ते हैं। मनुष्य ने बंदूक उठाई, निशाना साधा और कई गाते-उड़ते पक्षी धरती पर ढेले के समान आ गिरे ! किसी की लाल-पीली चोंच वाली गरदन टूट गई, किसी के पीले सुंदर पंजे टेढ़े हो गए और किसी के इन्द्रधनुषी पंख बिखर गए। क्षत-विक्षत रक्तस्नात उन मृत-अर्धमृत लघुगातों में न अब संगीत है, न सौन्दर्य! परन्तु मारने वाला अपनी सफलता पर नाच उठता है।''

मनुष्य की ऐसी क्रूर मनोरंजनप्रियता को ऐसे ही मर्मस्पर्शी शब्दों द्वारा उसके हृदय को मथकर, उसमें तीव्र संवेदना उत्पन्न करके संस्कारित या समाप्त किया जा सकता है और परमात्मा द्वारा प्रकृति को दिए गए पशु-पक्षियों के इन अमूल्य उपहारों को बचाकर पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सकता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पृथिवी माता अपने ऊपर विनाश का ताण्डव करने वाले बेटे मानव से कह रही है -

''तुझको बड़े से बड़ा देखना चाहती हूँ मैं
मेरे जात! सारे जन्तुओं में मुख्य तू ही है
तो व्यक्तित्व अपना समष्टि में मिला दे तू
देश, कुल, जाति, किंवा वर्ग-भेद भूलकर
भीति नहीं प्रीति यथा रीति तेरी नीति हो
उठ बढ़ ऊंचा चढ़ संग लिए सबको
सबके लिए तू और तेरे लिए सब हों
नाश में लगी जो बुद्धि विलसे विकास में।''-

'पृथिवीपुत्र' पृ. 64

तो राष्ट्रकवि दिनकर चिन्तकों, कलाकारों और साहित्य सृष्टाओं से कह रहे हैं -

विज्ञान काम कर चुका हाथ उसका रोको
आगे आने दो गुणी ! कला कल्याणी को !

- 'धूप और धुआं'

और अब साहित्यकार कामायनीकार के शब्दों में पुनर्नवसृजन के लिए मानव की समवेत शक्ति का आवाहन करने लगे हैं -

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हों, हो निरूपाय
समन्वय उनका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।

पर्यावरण-असंतुलन और प्रदूषण से होने वाले सर्वनाश की विभीषिका ने अब हमारी आंखें खोल दी हैं और संसार के सभी देश पर्यावरण को संरक्षित और प्रदूषण मुक्त करने के भगीरथ प्रयास में जुट गए हैं। सर्वत्र प्रचुर मात्रा में पेड़ लगाए जा रहे हैं। वनों की अंधाधुंध कटाई पर रोक लगा दी गई है। वनों को अभयारण्य बनाकर वन्य जीवों के शिकार पर पूरे विश्व में पाबंदी लगा दी गई है। नदियों के जल को प्रदूषणमुक्त करने की परियोजनाएं चलाई जा रही हैं। रासायनिक खादों के स्थान पर जैविक खादों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। जैविक खेती की जा रही है। परमाणु-अस्त्रों के विस्तार पर रोक लगाई जा रही है। प्रति वर्ष पांच जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' मनाया जा रहा है, जो अन्य विश्व दिवसों की तरह मात्र दिखावा या औपचारिकता नहीं। उसमें गंभीरता से विचार किये जा रहे हैं। अभी तक किए गए कार्यों की समीक्षा और योजनाओं की उपलब्धियों का आकलन करके भविष्य के लिए और भी त्वरित और कारगर योजनाएँ बनाई जा रही हैं।

दिसंबर 2009 में डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में 'अंतर्राष्ट्रीय जलवायु सम्मेलन' आयोजित हुआ। इसमें 'ग्रीन हाउस गैसों' के उत्सर्जनकर्ता देशों को अपने कार्बन-उत्सर्जन-कटौती के लक्ष्यों की लिखित घोषणा 10 जनवरी 2010 तक करने और उसे शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने को कहा गया था। जिसका प्रायः पालन हुआ है।

मनुष्य विधाता की सर्वोत्तम कृति है। सृजन और संरक्षण उसकी सहजात प्रकृति है, स्वभाव है, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व उसका ध्येय है। इसलिए हम आशान्वित हैं कि वह विनाश से विरत होकर सृजन और संरक्षण में लग जाएगा। और अब हमें विनाश के दारूण और हृदयविदारक दृश्य नहीं देखने पड़ेंगे, अकारण मारे गए लोगों के परिजनों के करूण आर्तनाद नहीं सुन पड़ेंगे और हमारे वैदिक ऋषि की यह मंगल कामना मूर्त हो जाएगी-

माभ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।
भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

- भाई भाई से और बहन बहन से द्वेष न करे। सभी सद्‌भाव और सत्संकल्प वाले बनकर कल्याण कर वचन बोलें। हे परमात्मा! हम कानों से कल्याणकर वचन और शुभ समाचार सुने और आँखों से कल्याणमय दृश्य देखें।

महाराज बाग, भैरवगंज
सिवनी, म.प्र.-480661, मो. 088789 80467

आलेख

मोहन राकेश के कथा-साहित्य में संवेदना के विविध आयाम

◆ डॉ. राजेंद्र सिंह

मोहन राकेश के लेखन के संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों और अनुभूतियों को अपने कथा-साहित्य की पृष्ठभूमि बनाया। मोहन राकेश का संवेदनशील मन सदा अपने आस-पास की घटनाओं से उद्वेलित होता देखा जा सकता है। उन्होंने संवेदना भरी दृष्टि से जीवन को देखा और उसे अपनी कृतियों में अभिव्यंजित किया। एक ओर राकेश अपने मन की व्याकुलता को व्यक्त करना चाहते हैं, दूसरी ओर वे अपने आस-पास के जीवन को खुली दृष्टि से देखते हैं और उसका उपयोग अपनी रचनाओं में करते हैं। इस प्रकार उनकी रचनाओं में दो संसार एक साथ हैं- अपना और सबका। राकेश की अनुभूति जीवन के नाना प्रसंगों से सीधी जुड़ी हुई हैं। स्वयं राकेश ने लिखा है, ''मेरे लिए अनुभूति का सीधा संबंध मेरे यथार्थ से है मेरा समय और परिवेश-व्यक्ति से परिवार, परिवार से राष्ट्र और राष्ट्र से मानव समाज तक का पूरा परिवेश। मैं इनमें से किसी एक से कट कर शेष से जुड़ा नहीं रह सकता- अपने पास के संदर्भों से आँख हटाकर दूर के संदर्भों में नहीं जा सकता।''[1] मोहन राकेश ने लेखन की प्रेरणा को समयबद्ध करने की भी लगातार चेष्टा की है। इसका प्रमाण है इनका 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस'। उन्होंने इन नाटकों में प्राचीन को भी सामयिक परिवेश से जोड़ा है।

मोहन राकेश के कथा-साहित्य में समाजिक, वैयक्तिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि अनेक संवेदनाएँ पाई जाती है। राकेश ने पिता की मृत्यु के साथ-साथ प्रिया दिव्या की मृत्यु भी देखी। विभाजन के दर्द को झेला तथा अपनी भूमि से उखड़ने के दुख सहे। अग्निकांड, नृशंस हत्या, बलात्कार, लूटपाट, विस्फोट आदि को अपनी खुली आँखों से देखा। अनेक स्थानों पर नौकरियां की और छोड़ी। राकेश ने पिता की आर्थिक विपन्नता देखी तथा स्वयं अपने जीवन में दयनीय आर्थिक स्थितियों का सामना किया। इस तरह निजी अनुभव का क्षेत्र बढ़ता गया। पिता के साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्कारों ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया। उनके अध्यापक पंडित राधारमण ने संस्कृत साहित्य से साक्षात्कार करवाया एवं उनकी रचनाओं को सुसंस्कृत रूप दिया। अंग्रेजी साहित्य तथा देश-विदेश के साहित्य की नवीन गतिविधियों के अध्ययन ने राकेश को मांजा, परिष्कृत किया तथा समसामयिक परिवेश से जोड़ा।

इन तमाम बातों एवं घटनाओं ने राकेश को गहरी अनुभूति प्रदान की, उनके अनुभव को व्यापक बनाया तथा उन्हें आधुनिक युगबोध से संबद्ध किया। राकेश के कथा-साहित्य में संवेदना के विविध आयाम निम्नवत् हैं -

साहित्य हर स्तर पर समाज से जुड़ा हुआ है। समाज के किसी भी अंग को वह अपनी रचना का विषय बना सकता है। यह वर्तमान परिस्थितियों में जिस घुटन, पीड़ा, संत्रास का अनुभव करता है, वह उसकी पीड़ा न होकर वास्तव में पूरे समाज की पीड़ा होती है। समाज और जीवन के साथ कहानीकार का गहरा रिश्ता होता है। समाज में भिन्न-भिन्न वर्गों के लोग रहते हैं। साहित्यकार समाज के जिन अनुभवों को अपने साहित्य में व्यक्त करता है, वही अनुभव आगे चलकर सामाजिक संवेदना का रूप धारण कर लेते हैं। कोई भी साहित्यकार समाज से बाहर रहकर अपनी रचना का निर्माण नहीं कर सकता।

समाज में जो भी घटित होता है, साहित्यकार उसे अपने साहित्य में शामिल करता है। जैसे-जैसे समाज में बदलाव आता जाता है, वैसे-वैसे ही साहित्यकार के साहित्य में भी बदलाव आता जाता है। राकेश ने समाज में घटित होने वाली कई घटनाओं को और समस्याओं को अपने साहित्य में शामिल किया है। उन्होंने शोषक और शोषित के संबंध तथा वर्ग संघर्ष को आम पाठक के सामने रखने की कोशिश की है। शोषित में नारी की समस्याओं को प्रमुख विषय बनाया है। इनके साथ ही उन्होंने मध्यवर्गीय लोगों की स्थिति और मानव मूल्यों का वर्णन भी अपने साहित्य में किया है।

नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार राकेश के ये तीनों रूप एक से बढ़कार एक हैं। उनके शब्द यथार्थ चित्रण के लिए पूर्ण सक्षम हैं। इन तीनों रूपों में राकेश ने अक्षयकीर्ति अर्जित की। स्वाधीनता के पश्चात् जिन नई स्थितियों और नए बदलते जीवन मूल्यों को समकालीन मनुष्य अनुभव कर रहा था, उसे पहली बार राकेश ने सहानुभूति और साहस से अभिव्यक्त किया। सुषमा

अग्रवाल का कहना है, ''वस्तुत राकेश का औपन्यासिक मानस एक ऐसा दर्पण है जिसमें स्वातन्त्रयोत्तर समाज की विभिन्न छवियों, प्रतिध्वनियों के रंग दिखाई देते हैं। मध्यवर्गीय समाज की जो तसवीर राकेश के उपन्यासों में है, उसकी रूपरेखा की एक पहचान उनकी कहानियों के माध्यम से भी की जा सकती है।'' राकेश के कथा-साहित्य में तीन पक्ष हैं। उसमें एक ओर स्वतन्त्रता, देश के विभाजन और स्वतन्त्र देश की कुछ समस्याओं को रेखांकन है, तो दूसरी ओर उनकी कुछ कहानियों में राजनीतिक और नैतिक प्रसंग भी मिले हुए हैं। कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जिनमें व्यक्ति और उससे संबंधित समस्याओं को भी उभारा गया है। राकेश के उपन्यास कहानियों से अलग तो नहीं हैं, पर संवेदना एवं विचारधारा के स्तर पर वे अत्यधिक समसामयिक और सशक्त हैं।

परिवर्तनशील युग के साथ-साथ व्यक्ति की विचारधारा भी बदलती रहती है। साहित्य उसी युग के सत्य को उद्घाटित करने के लिए बाध्य होता है। समाज के हर पहलू पर साहित्यकार अपने विचार साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है। वह सामाजिक समस्याओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त करता है। कोई भी साहित्यकार अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। साहित्यकार की वैयक्तिक संवेदना का निर्माण वही समाज करता है, जिसमें वह रहता है। आज व्यक्ति को समाज में अनेक विषमताओं का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी विषम परिस्थितियों में देश की जो संवेदनशील, महत्त्वाकांक्षी और भविष्य के सुनहरे सपने देखने वाले साहित्यकारों की नई पीढ़ी उभरी, वह क्षोभ और आक्रोश से भरी हुई है। मोहन राकेश स्वयं इसी सामान्य जनता के अंग थे और उसकी सारी विषमताओं को भोग रहे थे।

मोहन राकेश का व्यक्तित्व अंतर्विरोधों से परिपूर्ण था। गोविन्द चातक ने तो उनके विषय में लिखा है, ''शायद मोहन राकेश एक अजीब मिट्टी से बना था। बेहद दोस्तों से घिरा हुआ, हंसी-ठहाकों में खोया हुआ, जिंदगी का मुस्तैद सिपाही, मुंहफट और जिंदगी को अपनी ही शर्त पर जीने वाला एक राकेश था, उसी के अन्दर एक दूसरा भी राकेश था जिसकी एक निजी भूख थी जो कभी मिटी नहीं, जिसने असुरक्षा की भावना को झेला था, जो अकेले जिंदगी से जूझा था, जो जीवन में सराबोर रहकर भी जिंदगी से हार गया था। बहुत सारे टूटते संबंधों की परवाह न करने वाला इन्सान, पर वास्तविक जीवन में वह कमजोर था, भावुक था। इनमें असली राकेश कौन था, यह चर्चा का विषय हो सकता है। उसे किसी ने समझा भी नहीं, यह भी कहना मुश्किल है।'' फिर भी अपने चारों तरफ लोगों को इकट्ठा करना शायद वे जानते थे। राकेश की एक और विशेषता यह है कि उनमें भावना का लगाव इतना सीधा ओर सच्चा लगता है कि अपनी रचनाओं में वे पुरोधा लगते हैं। वे अपने लेखन को मानवीय पीड़ा और तड़प के अनुष्ठान के रूप में लेते रहे। उन्होंने दर्द भरे सवाल ही नहीं उठाए वरन् सवालों से घिरी अपनी एक दुनिया भी खड़ी की जिसमें, पीड़ाएं और यंत्रणाएं हैं, संशय और विवषताएं हैं, किन्तु मोक्ष या मुक्ति नहीं है। लोग उन्हें ठीक समझे या न समझे, वे अपने को ठीक समझते थे। जो कुछ उन्होंने लिखा, उसे उन्होंने जीवन में जिया भी था। इसलिए जो कुछ भी उन्होंने लिखा, आंतरिक दबाव से उद्भूत था, निजी आवश्यकताओं की देन था।

मोहन राकेश ने अधिकतर स्वतन्त्र रूप से ही लेखन कार्य किया। इसके लिए वे किसी भी समझौते के लिए तैयार नहीं थे। इसी कारण उन्होंने अपने जीवन में अनेक नौकरियां छोड़ी। उनके लेखन के रूप में फिल्म कंपनी से दिये गये त्याग-पत्र का एक अंश उनकी इस विशिष्टता को अच्छी प्रकार उजागर करता है - ''... ....मेरे अधीन काम करते थे। अब स्थिति ऐसी चरम सीमा को पहुँच चुकी है कि मेरा मस्तिष्क अब ऐसे कार्य से और अधिक संबद्ध रहने को इनकार करता है। मैं अपने जीवन के लाभों को भविष्य की सुनहरी आशाओं की वेदी पर न्योछावर नहीं कर सकता।'' राकेश ने जितना भी साहित्य लिखा उसमें अपने जीवन-मूल्यों को नहीं त्याग सके। उन्होंने पूरी ईमानदारी से साहित्य लिखा। जहाँ बहुत से लेखक अपने व्यक्तित्व को कई खानों में बांटकर जी लेते हैं, वहाँ उनका सारा वजूद एक की खाना

मोहन राकेश के कथा-साहित्य में भी किसान, मजदूर के प्रति उनकी आर्थिक संवेदना को देखा जा सकता है। किसानों की स्थिति तो इतनी दयनीय है और उनके खेतों में भी कुछ नहीं उगता। मोहन राकेश ने 'उसकी रोटी' कहानी में लिखा है, ''नकोदर रोड में उस हिस्से में आस-पास कोई छायादार पेड़ भी नहीं था। वहाँ की जमीन भी ऊबड़-खाबड़ थी- खेत वहाँ से तीस चालीस गज के फासले से शुरू होते थे। खेतों में भी उन दिनों कुछ नहीं था।'' इसी प्रकार मोहन राकेश ने 'चाँदनी और स्याह दाग' में अब्दुल गनी के गाँव का वर्णन किया है, जिसको कबायलियों ने लूटा है। उन्होंने लिखा है, ''गाँव के कई घरों में कबायली चार-चार, पाँच-पाँच दिन तक टिके रहे थे। उन घरों की लड़कियों की आँखें बदल गई थीं। जेहलम से पानी भरती थीं और सिंघाड़े बीनने के लिए जाती थीं, मगर ....।'

है। उनके जीवन से लेकर साहित्य तक एक ही प्रतिमान था। सुषमा अग्रवाल ने लिखा है, ''जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उनकी जीने की अदम्य लालसा के कारण विकसित होता गया था। अनेक संघर्षों और असंगतियों के बीच उनके भीतर जिजीविषा थी। जितने अधिक संघर्ष आते और जितनी उलझने बढ़ती जातीं, उतनी ही मात्रा में जिजीविषा और गहरी होती जाती थी। जीवन को अपने ढंग से जीने के क्रम में वे न तो किसी की परवाह करते थे और न यही सोचते थे कि मेरे इस व्यवहार से किस पर कितना प्रभाव पड़ेगा?'' इससे भी स्पष्ट है कि मोहन राकेश ने राजनीति से स्वतन्त्र होकर ही साहित्य की रचना की है।

मोहन राकेश के कथा-साहित्य में भी किसान, मजदूर के प्रति उनकी आर्थिक संवेदना को देखा जा सकता है। किसानों की स्थिति तो इतनी दयनीय है और उनके खेतों में भी कुछ नहीं उगता। मोहन राकेश ने 'उसकी रोटी' कहानी में लिखा है, ''नकोदर रोड में उस हिस्से में आस-पास कोई छायादार पेड़ भी नहीं था। वहाँ की जमीन भी ऊबड़-खाबड़ थी- खेत वहाँ से तीस चालीस गज के फासले से शुरू होते थे। खेतों में भी उन दिनों कुछ नहीं था।'' इसी प्रकार मोहन राकेश ने 'चाँदनी और स्याह दाग' में अब्दुल गनी के गाँव का वर्णन किया है, जिसको कबायलियों ने लूटा है। उन्होंने लिखा है, ''गाँव के कई घरों में कबायली चार-चार, पाँच-पाँच दिन तक टिके रहे थे। उन घरों की लड़कियों की आँखें बदल गई थीं। जेहलम से पानी भरती थीं और सिंघाड़े बीनने के लिए जाती थीं, मगर ....।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि किसानों की आर्थिक संवेदना मोहन राकेश के कथा-साहित्य में यत्र-तत्र देखी जा सकती है।

मोहन राकेश ने दिखाया है कि मध्यवर्गीय परिवार निरन्तर आर्थिक संकट से जूझ रहा था। 'रोजगार' कहानी में मिस दारूवाला की भावुकता अपने भाई के लिए है, जो कि कुछ नहीं कमाता। इसी बात पर मिसेज एडवर्डस उससे कहती है, ''तू पैसे देता है? मिसेज एडवर्डस रजिस्टर खोलकर गुस्से में उसके पन्ने उलटने लगी। कमाकर पैसे देता, तो तेरे होश-हवास दुरूस्त रहते। तूने तो जिन्दगी में एक ही काम सीखा है, और वह है खाना और पड़े रहना।'' इस प्रकार मिस दारूवाला को अपने भाई के कारण आर्थिक संकट से जूझना पड़ता है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मोहन राकेश के कथा-साहित्य में संवेदना के विविध आयाम पाए जाते हैं। सामाजिक संवेदना के अन्तर्गत पूँजीवादी व्यवस्था, निम्नवर्ग, मध्यवर्ग व दलित वर्ग, क्रान्ति का आह्वान, समसामयिक जीवन यथार्थ एवं समस्याएं तथा धर्म आदि आते हैं। वैयक्तिक संवेदना के अन्तर्गत राकेश के कथा-साहित्य में प्रेम और सौन्दर्य, भावनात्मक प्रेम, आत्मीयता की भावना और वासनात्मक प्रेम आते हैं। राकेश के साहित्य में राजनीतिक संवेदना भी विद्यमान है जिसमें साहित्य और राजनीति, वर्तमान राजनीति की विविध विसंगतियाँ हैं। अवसरवाद एवं भ्रष्टाचार, न्याय व्यवस्था की सीमाएं और नौकरशाही का शोषक रूप भी कथा-साहित्य में देखने को मिलता है। राष्ट्र के प्रति असीम स्नेह, अहिंसा व शान्ति; बुनियादी आवश्यकताएं, प्राचीन परम्परा और संस्कृति की उन्मुखता आदि सांस्कृतिक संवेदना के अन्तर्गत आते हैं। आर्थिक संवेदना भी राकेश के साहित्य में देखने को मिलती है, जिसमें राकेश ने किसान, मजदूर की आर्थिक संवेदना, स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित आर्थिक संवेदना तथा शिक्षित व नौकरीपेशा मध्यवर्गीय आर्थिक संवेदना को अपने कथा-साहित्य में चित्रित किया है।

सुपुत्र श्री दुनी चन्द, गाँव व डाक घर जरी
तह. व जिला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश-175105
मो. 9779115459

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1 मोहन राकेश परिवेश वाराणसी : भारतीय ज्ञानपीठ, 1967, पृ. 26
2 सुषमा अग्रवाल मोहन राकेश : व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व, जयपुरः पंचशील प्रकाशन, 1986, पृ. 28
3 गोविन्द चातक, आधुनिक नाटक का मसीहा; मोहन राकेश, दिल्ली; इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, 1975, पृ. 27
4 कमलेश्वर, सारिका, बाम्बे; टाइम्स ऑफ इंडिया, 1973, पृ. 27
5 सुषमा अग्रवाल मोहन राकेश : व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व, जयपुरः पंचशील प्रकाशन, 1986, पृ. 37
6 मोहन राकेश, रोयें-रेशे, दिल्ली; राधाकृष्ण प्रकाशन, 1968, पृ. 123
7 मोहन राकेश, मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ दिल्ली; राजपाल एण्ड सन्ज, 1997, पृ. 445
8 मोहन राकेश, मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ दिल्ली; राजपाल एण्ड सन्ज, 1997, पृ. 298

आलेख

प्राचीन भारत में विष-कन्या : अस्तित्व एवं स्वरूप

◆ डॉ. आर. वासुदेव प्रशांत

भारतवर्ष में विष विद्या के संकेत प्राचीनकाल से ही मिलते हैं। संस्कृत ग्रन्थों में विष और निर्विषीकरण अर्थात्, विष के प्रभाव को समाप्त करने के विविध उपायों के बारे में प्रचुर प्रसंग उपलब्ध होते हैं। प्राचीन साहित्यिक एवं आयुर्वेदिक ग्रन्थों में विष के विभिन्न प्रयोगों और प्रभावों के संबंध में यत्र-तत्र वर्णन मिलते हैं। विष के बारे में प्राचीनतम उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है जहां क्रिमियों और दोषों के अलावा विष को भी अनेक रोगों का उत्पादक कारण माना गया है। वहां पर निर्विषीकरण के बारे में भी अनेक उपायों का उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद के निम्न मन्त्र से प्रतीत होता है कि विष-विद्या कितनी प्राचीन थी -

यद् ब्रह्मभिर्यद् ऋषिभिर्यद् देवैः विहितं पुरा।
यद् भूतं भव्यमोसन्वत् तेना ते वारये विषम्।। 6.122।।

इस मंत्र से ज्ञात होता है कि ऋषियों और देवताओं को भी विषविद्या का सम्पूर्ण ज्ञान था। अथर्ववेद में तो अनेक विषघ्न अर्थात् विष का नाश करने वाली औषधियों का उल्लेख भी मिलता है।

महाभारत के आदिपर्व में कश्यप और तक्षक के बीच हुए संवाद से तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण (3.51) में धन्वन्तरि और नागदेवी मनसा के परस्पर संवाद से तत्कालीन विषवैद्यक की स्थिति का ज्ञान होता है। आश्वलायन श्रौतसूत्र (30.417) में परिगिणित विद्याओं में विषविद्या का भी संकेत है। कौशिक सूत्र (29.2-5, 32.19) में भी विषभैषज्य का उल्लेख मिलता है।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में विष-विद्या

विष के लक्षण, प्रयोग और प्रभाव का प्रचुर वर्णन आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। चरक और सुश्रुत आदि संहिताओं में जांगम और स्थावर विषों के लक्षण तथा चिकित्सा के उपायों का प्रचुर उल्लेख है। इन प्रसंगों में इस बात का भी संकेत है कि विष ओज को आक्रान्त कर प्राणों का हरण कर लेता है। कई विष सद्य प्राणहर अर्थात् शीघ्र प्राणों का हरण करने वाले और कई अन्य कालान्तर प्राणहर अर्थात् धीरे-धीरे प्राणों का नाश करने वाले होते हैं।

विष की आशुकारिता को देखकर ही इसका प्रयोग चिकित्सा-कार्यों में भी होने लगा था। सर्वप्रथम वाग्भट ने अपने ग्रन्थ अष्टांगसंग्रह में विष संबंधी अध्याय (उत्तरस्थान, 48) में इस का प्रारंभ किया है। तांत्रिकों ने रसशास्त्र के साथ-साथ विषविद्या एवं विषोपयोग दोनों को प्रोत्साहन दिया है। यहां पर यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि 'रस' शब्द पारद (पारा) के साथ-साथ विष का भी वाचक माना गया है और रसशास्त्र के ग्रन्थों में विष का प्रकरण भी पाया जाता है।

राज-हत्याओं में विष का प्रयोग

प्राचीन काल में राजाओं एवं राजपुरुषों की हत्या के लिए स्त्रियों का बहुधा प्रयोग किया जाता था। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजा के लिए यह चेतावनी दी है कि वह किसी भी स्त्री के संसर्ग में जाने से पहले उस की जांच-पड़ताल अवश्य करवाये। कामन्दकीय नीतिसार (7.51-55) में भी यह कहा गया है कि राजा को अपने अन्तःपुर में तभी जाना चाहिए जब वह किसी विश्वस्त दासी के द्वारा रानी की व्यक्तिगत शुद्धि की अच्छी तरह से परीक्षा करवा ले। ऐसा किए बिना उसे कदापि रानी अथवा किसी भी स्त्री का स्पर्श तक नहीं करना चाहिए। इसी ग्रन्थ में ऐसे अनेक उदाहरण दिए गये हैं जब रानियों ने छल से राजा का वध कर दिया था। निम्न श्लोक में यह बात स्पष्ट की गई है :-

शस्त्रेण वेणीविनिगूहितेन विदूरथं वै महिषी जघान।
विष-प्रदिग्धेन च नूपुरेण देवी विरक्ता किल काशिराजम्।।

अर्थात्, चोटी में छिपाये हुए शस्त्र से महारानी ने राजा विदूरथ की तथा विरक्त पटरानी ने विष में बुझे हुए नूपुर से काशिराज वैरन्त्य की हत्या कर दी थी। इसी प्रकार राजा सौवीर की रानी ने विष में बुझी मणि से उस की हत्या कर दी थी और राजा जालूथ का वध भी उसकी रानी ने दर्पण की सहायता से कर दिया था जिस पर विष का लेप कर दिया गया था।

मनुस्मृति में भी इस बात पर बल दिया गया है कि राजा को अपने अन्तःपुर की स्त्रियों की खूब अच्छी तरह से परीक्षा करवानी चाहिए और किसी भी रानी पर ऐसे ही विश्वास नहीं कर लेना

चाहिए। संकेत इस प्रकार है :-

परीक्षिताः स्त्रियश्चौनं व्यजनोदकधूपनैः।

वेषाभरणसंशुद्धा स्पृशेयुः सुसमाहिताः।।7.29।।

अर्थात् (गुप्तचरों के द्वारा) परीक्षित गुप्तशस्त्र रखने तथा विषलिप्त आभूषण आदि धारण करने की आशंका से नियत वेष तथा आभूषणों से अच्छी तरह शुद्ध की हुई अर्थात् दोषरहित स्त्रियां (परिचारिकायें और दासियां आदि) चामर आदि से हवा करने, स्नान तथा पीने को पानी देने और सुगन्धित धूप आदि से राजा की सेवा करें। यहां पर 'वेषाभरणसशुद्धाः' से यही अभिप्राय है कि स्त्रियां शस्त्र आदि छुपा कर राजा की हत्या कर देती थीं। अतः मनु महाराज ने भी राजाओं को परामर्श दिया है कि वे सदैव अन्तःपुर के संबंध में सावधानी बरतें। इस प्रकार प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में राजाओं को विष. प्रयोग आदि से आत्मरक्षा के लिए यत्र-तत्र परामर्श दिए गए मिलते हैं।

राजहत्या में विष-कन्या का प्रयोग

प्राचीन भारत में राजाओं की हत्या के लिए विष-प्रयोग तथा स्त्री-प्रयोग के अलावा विष-कन्या के प्रयोग के उदाहरण भी काफी मिलते हैं। संस्कृत साहित्य तथा आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों में विष-कन्या के बारे में कई तरह के प्रसंग उपलब्ध हैं। अनेक विद्वानों का तो ऐसा मत है कि ये विष-कन्यायें केवल कल्पना मात्र थीं। किन्तु यह धारणा सत्य प्रतीत नहीं होती। ये विष-कन्यायें वास्तविक रूप में होती थी जिन के सहवास से मनुष्य की मृत्यु निश्चित थीं। वस्तुतः ऐसी विष-कन्यायें भी होती थीं जिनके स्पर्शमात्र से ही मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता था।

विष-कन्या का स्वरूप और पालन-पोषण

विष-कन्या के स्वरूप और पालन-पोषण के बारे में संस्कृत-ग्रन्थों में कोई खास तथ्य नहीं मिलते। प्रायः ऐसे संकेत अवश्य मिलते हैं कि किसी रूपवती कन्या को बचपन से ही धीरे-धीरे विष की थोड़ी-थोड़ी मात्रा दे कर पाला जाता था। इस के अलावा उसे विषैले प्राणियों के संपर्क में भी रखा जाता था ताकि उसे विष को आत्मसात् करने का अभ्यास हो सके। इसके अतिरिक्त उसे संगीत और नृत्य की शिक्षा भी दी जाती थी ताकि वह पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। और भी अनेक प्रकार की छल-विधियां उसे समय-समय पर सिखाई जाती थीं जिससे वह अपनी कला में पारंगत हो सके। ऐसा अनुमान भी किया जाता है कि किसी सुन्दर कन्या के योनि-प्रदेश तथा अधरों, स्तनों आदि पर विष का लेप कर दिया जाता था जिससे उसके संसर्ग से भोक्ता पुरुष के शरीर में विष धीरे-धीरे फैल जाता था और अन्त में उस की मृत्यु हो जाती थी। प्रायः अवसर आने पर ऐसी विष-कन्या को छल से शत्रु के पास भेज दिया जाता था। उस का श्वास तो विषमय होता ही था। साथ ही, उस के मुख में भी विष निहित होता था जिससे संभोग करने वाला पुरुष रोगी होकर परलोक को सिधार जाता था। इतिहास में ऐसा भी एक प्रसंग मिलता है जब गुजरात के राजा मुहम्मद शाह ने अपने पुत्र को बचपन से ही विष की थोड़ी-थोड़ी खुराक देनी आरंभ कर दी थी ताकि भविष्य में उस पर किसी भी प्रकार का दूसरा विष प्रभाव न दिखा सके।

सुश्रुत संहिता (2.5) में विष-कन्या के स्वरूप के संबंध में निम्न वर्णन देखने को मिलता है :-

विष-कन्योपयोगाद्वा क्षणाज्जह्यादसून्नरः।

तस्माद् वैद्येन सततं विषाद्रक्ष्यो नराधिपः।।

अर्थात्, विष-कन्या के संसर्ग से पुरुष क्षणभर में ही अपने प्राण त्याग देता है। अतः वैद्य को निरन्तर राजा की विष से रक्षा करनी चाहिए। वाग्भट ने भी अपने ग्रन्थ अष्टांगसंग्रह में विष-कन्या को उस के जन्म से ही विष के संयोग से पाले जाने की ओर संकेत दिया है :-

आजन्म विषसंयोगात्कन्या विषमयी कृता।

स्पर्शोच्छ्वासादिभिर्हन्ति तत्सात्वेतत् परीक्षणम्।।

अर्थात्, जन्म से ही कन्या को विष के संयोग से विषमयी

विष-कन्या के स्वरूप और पालन- पोषण के बारे में संस्कृत-ग्रन्थों में कोई खास तथ्य नहीं मिलते। प्रायः ऐसे संकेत अवश्य मिलते हैं कि किसी रूपवती कन्या को बचपन से ही धीरे-धीरे विष की थोड़ी-थोड़ी मात्रा दे कर पाला जाता था। इस के अलावा उसे विषैले प्राणियों के संपर्क में भी रखा जाता था ताकि उसे विष को आत्मसात् करने का अभ्यास हो सके। इसके अतिरिक्त उसे संगीत और नृत्य की शिक्षा भी दी जाती थी ताकि वह पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। और भी अनेक प्रकार की छल-विधियां उसे समय-समय पर सिखाई जाती थीं जिससे वह अपनी कला में पारंगत हो सके।

बना दिया जाता है। तब वह अपने स्पर्श और उच्छ्वास मात्र से ही पुरुष को मार देती है। इसी में उसका परीक्षण है। वाग्भट के इस विष-कन्या संबंधी प्रसंग की समरांगणसूत्रधार में आगे व्याख्या की गई है जो इस प्रकार है :-

तन्मस्तकस्य संस्पर्शान्मलायेते पुष्प-पल्लवौ, शय्यायां मतकुणैर्वस्त्रे यूकाभिः, स्नानवारिणा जन्तुभिः म्रियते। ज्ञात्वा तामेव दूरतस्त्यजेत्।

अर्थात् - उस के मस्तक अथवा सिर के स्पर्श-मात्र से ही फूल और पत्तियां मुरझा जाती हैं। बिस्तर पर खटमल तक मर जाते हैं। वस्त्रों में जूयें तथा उसके नहाने के जल से छोटे-छोटे जीव-जन्तु तक मर जाते हैं। ऐसा जानकर दूर से ही उसका परित्याग किया जाना चाहिए।

ज्योतिष शास्त्र में भी यद्यपि विष-कन्या का वर्णन मिलता है, किन्तु यह विष-कन्या उपर्युक्त विष-कन्या से बिलकुल भिन्न होती थी। ज्योतिःशास्त्र की विष-कन्या को संभवतः इसलिए भी विष-कन्या कहा जाता था कि वह बुरे नक्षत्रों में पैदा होती थी। इसी प्रकार दशकुमारचरित में वर्णित योगनारी या योगांगना से भी यह विष-कन्या भिन्न होती थी। यह योगनारी वस्तुतः एक कुलटा स्त्री होती थी जिस का प्रयोग राजा लोग प्रायः अपने शत्रु को छल से विष देने के लिए करते थे।

विष-कन्याओं का प्रयोग

विष-कन्याओं के प्रयोग के संबंध में संस्कृत साहित्य तथा इतिहास-ग्रन्थों में अनेक वर्णन मिलते हैं। विशाखा दत्त के मुद्राराक्षस नामक नाटक में विष-कन्या का उल्लेख मिलता है। जब चन्द्रगुप्त मौर्य अपने गुरु चाणक्य की सहायता से नन्द वंश का नाश कर देता है तो राक्षस नामक महामंत्री नन्दों के विनाश का प्रतिशोध लेने के लिए शपथ लेता है। अतः वह चन्द्रगुप्त से बदला लेने के उद्देश्य से उसके शयनकक्ष में विष-कन्या को भेजता है। किन्तु चाणक्य की कूटनीति से उसकी योजना विफल हो जाती है और चन्द्रगुप्त के स्थान पर उसके मित्र पर्वतक की हत्या हो जाती है। इस पर चाणक्य जनापवाद फैला देता है कि राक्षस ने विष-कन्या के द्वारा पर्वतक की हत्या करवा दी है।

विष-कन्याओं के प्रयोग के संबंध में संस्कृत साहित्य तथा इतिहास-ग्रन्थों में अनेक वर्णन मिलते हैं। विशाखादत्त के मुद्राराक्षस नामक नाटक में विष-कन्या का उल्लेख मिलता है। जब चन्द्रगुप्त मौर्य अपने गुरु चाणक्य की सहायता से नन्द वंश का नाश कर देता है तो राक्षस नामक महामंत्री नन्दों के विनाश का प्रतिशोध लेने के लिए शपथ लेता है। अतः वह चन्द्रगुप्त से बदला लेने के उद्देश्य से उसके शयनकक्ष में विष-कन्या को भेजता है। किन्तु चाणक्य की कूटनीति से उसकी योजना विफल हो जाती है और चन्द्रगुप्त के स्थान पर उसके मित्र पर्वतक की हत्या हो जाती है। इस पर चाणक्य जनापवाद फैला देता है कि राक्षस ने विषकन्या के द्वारा पर्वतक की हत्या करवा दी है।

विष-कन्या के संबंध में एक अन्य उल्लेख सुब्राबहुत्तरीकथा की 17वीं कथा में भी मिलता है। वहां धर्मदत्त नाम का एक राजा कामसुन्दर नाम के एक अन्य राजा से उस की कन्या का हाथ मांगता है, किन्तु उस का मन्त्री सिद्धेश उसे ऐसा न करने का परामर्श देता है। वह कहता है कि कामसुन्दर की कन्या वस्तुतः एक विष-कन्या है जो उस के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

सोमदेवविरचित कथासरित्सागर (3.5.81) में भी एक प्रसंग मिलता है जिस के अनुसार वाराणसी का राजा ब्रह्मदत्त वत्सराज उदयन के आक्रमण को विफल करना चाहता है। अतः उसे छल से मारने के लिए वह विष-कन्याओं का प्रयोग करता है तथा उसकी सेना में पण्यविलासिनी अर्थात् स्त्री-वणिकों को भेजता है। किन्तु उदयन का चतुर महामन्त्री यौगन्धरायण अपने शिविर में सैनिकों के किसी भी अपरिचित स्त्री के साथ समागम पर प्रतिबन्ध ा लगा देता है। और अपने रुमण्वान् मन्त्री की सहायता से राजा उदयन को छल से मारने आए स्त्री-पुरुषों को मरवा देता है।

कथासरित्सागर के अपने अंग्रेजी अनुवाद 'ओशन ऑफ स्टोरीज' में टॉनी ने एक स्थान पर उल्लेख किया है कि एक भारतीय नारी सिकन्दर के पास विष-कन्या भेजती है, किन्तु अरस्तु अपनी कूटनीति से उस की चाल को विफल कर देता है। कथासरित्सागर में ही एक अन्य प्रसंग भी मिलता है जहां बलधर नाम का एक सेनापति अपने राजा की सुरक्षा के लिए छल-कपट, विष-कन्या आदि के प्रयोग में दक्षता प्राप्त किए हुये हैं।

इस तरह प्राचीन भारत में शत्रु के नाश के लिए विविध छद्म उपायों में विष-कन्या का प्रयोग बहुलता से किया जाता था। आयुर्वेद के ग्रन्थों में पाये जाने वाले विष-कन्या संबंधी प्रसंगों और इतिहास तथा संस्कृत साहित्य में उपलब्ध उदाहरणों से स्पष्ट है कि यह कोई काल्पनिक स्त्री नहीं थी बल्कि वास्तविक रूप में प्रयोग किए जाने वाले शत्रुनाश संबंधी उपायों में से एक थी।

जवाहर नगर, धर्मशाला,
जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश- 176213
मो. 98171 87125,

एक साहित्यिक तीर्थ यात्रा

छायावाद के गांव में एक दिन

◆ श्याम नारायण श्रीवास्तव

निश्चय ही किसी प्रसिद्ध साहित्यकार का गाँव एक तीर्थ स्थान के समान होता है - एक साहित्यिक तीर्थ। साहित्य साधकों व साहित्य पुजारियों के लिए। जैसे-जैसे लोग साहित्यकार की रचनाओं, उनकी चर्चित कृतियों से रूबरू होते हैं। वैसे ही धीरे-धीरे वह स्थान, गाँव या फिर नगर अमुक साहित्यकार के नाम से अपनी पहचान बना लेता है। जैसे लमही नाम लेते ही उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद मानस पटल पर छा जाते हैं। जैसे बोलपुर अर्थात शांतिनिकेतन पर्याय है कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर का, तो मगहर कबीर दास का।

वैसे ही एक गाँव है बालपुर। छत्तीसगढ़ राज्य के एक जिले रायगढ़ में। इस गाँव से ही शुरू होती है हिंदी साहित्य में छायावाद की चर्चा। निश्चय ही यह उस महत्त्वपूर्ण साहित्यकार का गाँव है, जिसके लिए प्रख्यात आलोचक व समीक्षक डा नामवर सिंह अपनी चर्चित पुस्तक 'छायावाद' के भूमिका में लिखते हैं "निबन्ध के प्रथम अध्याय में छायावाद का इतिहास बतलाते समय कुछ नई सामग्री दी गई है, जिसमें मुकुटधर पाण्डेय का लेख 'हिंदी में छायावाद' (1920) बहुत महत्त्वपूर्ण है।" जी हाँ छायावाद के प्रवर्तक पद्मश्री पं. मुकुटधर पाण्डेय जी का गाँव बालपुर रायगढ़ शहर से लगभग 30 किलोमीटर दूर महानदी के तट पर स्थित है।

रायगढ़ जो कला साहित्य-संस्कृति एवं औद्योगिक क्षेत्र में सदैव अग्रणी रहा है जहाँ संगीत प्रेमी राजा चक्रधर के जन्मदिन पर प्रति वर्ष छत्तीसगढ़ शासन द्वारा 'चक्रधर समारोह' नामक भव्य आयोजन कई दिनों में सम्पन्न होता है। यदि सहभागिता की बात की जाय तो अब तक शहनाई वादक विस्मिल्ला खां, कत्थक सम्राट विरजू महाराज, नृत्यांगना व फिल्म अभिनेत्री हेमा मालिनी, भोजपुरी गायिका मालिनी अवस्थी, पांडवानी गायिका तीजनबाई, बांसुरी वादक हरिप्रसाद चौरसिया, सोनल मान सिंह, गजल गायक जगजीत सिंह, अनूप जलोटा जैसे बहुत से सम्मानित कलाकार अपनी प्रस्तुति इस मंच से दे चुके हैं। हाँ, वही रायगढ़ जहाँ संस्कृत, उड़िया व हिंदी के साहित्यकार पं चिरंजीव दास की स्मृति में हरकिशोर दास जी के नेतृत्व में प्रत्येक वर्ष होने वाले साहित्यिक आयोजन में प्रो राजेन्द्र मिश्र, वागीश शुक्ल, विनोद कुमार शुक्ल, अरुण कमल, रमेश चन्द्र शाह, मंगलेश डबराल, केदारनाथ सिंह, लीलाधर जगूड़ी, ऋतुराज, सुधीर सक्सेना, असद जैदी, एकांत श्रीवास्तव, हरीश चन्द्र पाण्डे, अष्टभुजा शुक्ल, अनामिका, राजेश जोशी जैसे वरिष्ठ एवं ख्याति लब्ध साहित्यकार अपनी साहित्यिक छटा बिखेर चुके हैं। वही रायगढ़ जहाँ रंगकर्मी अजय आठले व उषा आठले के नेतृत्व में इप्टा के कलाकार प्रति वर्ष बेहतरीन नाटकों का मंचन करते हैं। छायावादी कवि पं. मुकुटधर पाण्डेय इसी रायगढ़ के थे। मुझे रायगढ़ में रहते और जिंदल स्टील में कार्य करते हुए तेरह वर्ष से अधिक हो रहे हैं। इस बीच छत्तीसगढ़ के विभिन्न अंचलों के तमाम साहित्यिक आयोजनों में सम्मिलित होने के साथ-साथ, नगर व नगर से बाहर कई वरिष्ठ साहित्यकारों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों से परिचय हुआ। जिसमें डा. बलदेव जी, डा. प्रभात त्रिपाठी, डा. विहारी लाल साहू, आनंदी सहाय शुक्ल, विश्वरंजन, ललित सुरजन, जय प्रकाश मानस, रवि श्रीवास्तव, शम्भु शर्मा बसंत, गणेश कछवाहा, रमेश शर्मा आदि के साथ-साथ अन्य साहित्यकारों से परिचय की एक लम्बी सूची है। इसी क्रम में परिचय हुआ पं मुकुटधर पाण्डेय जी के परिवार के एक सम्मानित सदस्य श्री शिव कुमार पाण्डेय जी से। जो स्वयं एक वरिष्ठ रचनाकार हैं।

मैं अपने साहित्यिक मित्र अंजनी कुमार 'अंकुर' के साथ एक दिन श्री शिव कुमार पाण्डेय जी से बैकुंठपुर मोहल्ले में उनके आवास पर मिलने गया तो अपने मन की बात भी उनसे कह दी। सर, "मैं आपके दादा जी पं मुकुटधर पाण्डेय जी का गाँव अर्थात आपका गाँव देखना चाहता हूँ। मुझे उस पावन धरती को नमन करना है। जहाँ से छायावाद की चर्चा प्रारम्भ होती है।" पहले तो उन्होंने कहा, " श्रीवास्तव जी, अब वहाँ बचा ही क्या है ? सब लोग तो शहर में आकर बस गये। हमारा आधा से ज्यादा गाँव महानदी के आगोश में समा गया। बालपुर में तो अब हमारी डेहरी भी नहीं बची। जहाँ हम आप सब पाहुन का स्वागत कर सकें।"

फिर भी उन्होंने हमारे निवेदन को स्वीकार किया। कुछ ही दिन बाद उनकी ओर से यह भी प्रस्ताव आया कि कुछ लोग और भी हैं जो बालपुर चलना चाहते हैं। उन्हें भी अपने साथ ले लेते हैं। फिर वहीं सब मिलकर मुकुटधर व् लोचन प्रसाद जी पर एक गोष्ठी और तत्पश्चात एक कवि गोष्ठी भी कर लेंगे। मेरे लिए यह सोने में सोहागा जैसी बात थी। अंत में हुआ ये कि कुछ को आमंत्रित किया गया तो कुछ सुनकर स्वयं ही जाने को तैयार हो गये। शासकीय डिग्री कालेज के प्रोफेसर मीनकेतन प्रधान जी ने जब सुना तो उन्होंने पाण्डेय जी को फोन पर बताया कि हिंदी साहित्य

के कुछ शोधकर्ता छात्र-छात्राएं भी आपके साथ बालपुर जाना चाहते हैं। पाण्डेय जी ने उन्हें भी स्वीकृति दे दी। अप्रैल माह में एक रविवार का दिन निर्धारित किया गया। सुबह नौ बजे बैकुंठपुर मुहल्ले में शिव कुमार पाण्डेय जी के निवास पर सभी को एकत्र होने की सूचना दे दी गई। सारी आर्थिक व्यवस्था का दायित्व स्वयं पाण्डेय जी ने ले लिया। आने जाने का साधन, पहुँचने पर जलपान, दोपहर का भोजन, गोष्ठी समापन के पश्चात् गर्म चाय के साथ गर्म भजिया ही नहीं, बल्कि वहाँ पर पहुंचने वाले साहित्यकारों को उपहार देने तक की योजना भी बन गई। जिला ग्रन्थालय के पूर्व संचालक रवि मिश्रा जी को कह कर उन्होंने डायरी, पेन, फूल माला भी मंगा लिया। पं मुकुटधर पाण्डेय जी द्वारा कालिदास के मेघदूत को छत्तीसगढ़ी भाषा में किये गये अनुवाद की पच्चीस प्रतियाँ डा. विहारी लाल साहू जी ने वितरण हेतु प्रदान की, तो संकल्प रथ व साहित्य अभियान पत्रिका की प्रतियाँ भी वितरण हेतु आ गईं।

तैयारी ऐसे शुरू हो गई जैसे सावन में कांवरिये बाबा धाम दर्शन के लिए जाते हैं। जैसे स्कूल के बच्चे किसी पिकनिक में जा रहे हों। किसी ने फोटोग्राफी का दायित्व ले लिया, तो किसी को वैनर की व्यवस्था का दायित्व दे दिया गया। कार्यक्रम की रूपरेखा व संचालन का सम्पूर्ण दायित्व मुझे दे दिया गया था। फूल माला, उपहार, पत्रिकाएँ व अन्य उपयोगी सामग्री एक दिन पूर्व ही एकत्र कर ली गई।

उधर बालपुर में गोष्ठी स्थल , माइक , जलपान , भोजन आदि की समुचित व्यवस्था का दायित्व सुनील पाण्डेय जी ने ले रखा था। जो शिव कुमार पाण्डेय जी के सुपुत्र व टपरदा गाँव के सरपंच हैं। वे पूरी टीम के स्वागत में पहले ही गाँव पहुँच चुके थे।

आखिरकार वह पल आ ही गया। एक निश्चित समय पर रायगढ़ शहर से साहित्यकारों की टोली निकल पड़ी। उस बालपुर गाँव की ओर , उस पावन धरती को नमन करने। जहाँ चित्रोत्पला (महानदी का दूसरा नाम) की निर्मल जल धारा अबाध गति से बहती है। जहाँ पलाश के घने वन में रक्त वर्णित पुष्पों से बातें करते छायावादी कवि मुकुटधर पाण्डेय 'किंशुक कुसुम' जैसी कविता रचते हैं- "किंशुक कुसुम आज शाखा पर फूला देख, मेरा मन हर्ष से ये फूला न समाता है, पूरे एक वर्ष पीछे आया फिर देखने में, इतने दिवस भला कहाँ तू बिताता है।"

जहाँ साक्षी के रूप में वह पीपल का पुरातन पेड़ आज भी विद्यमान है, जिसकी शीतल छांव में पं मुकुटधर पाण्डेय चर्चित कविता 'कुररी के प्रति' लिखते हैं ---- बता मुझे ये विहग विदेशी अपने जी की बात / पिछड़ा था तू कहाँ, आ रहा जो कर इतनी रात? और फिर इस कविता में कवि मुकुटधर पाण्डेय प्रवासी पक्षी कुररी से हालचाल जानने हेतु प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं। जिसके लिए एक पुस्तक में तो मैंने इतना तक पढ़ा है कि साहित्यकार पदुमलाल पुन्नालाल वख्शी ने पाण्डेय जी की इस रचना को छायावाद की प्रथम रचना माना है। खैर....। ये एक अलग विषय है। सम्भव है गोष्ठी में इस पर चर्चा हो। दरअसल हम सब प्राकृतिक वैभव से परिपूर्ण परिवेश, महानदी के कलकल निनाद, घाट पर नाव के आवागमन, आम्र कुंज में कोयल के मधुर सांगीतिक वातावरण के उस बालपुर को देखना चाहते थे। जिसके लिए पं मुकुटधर पाण्डेय ने 'हिंदी में छायावाद' आलेख में लिखा है "सूर्य , चन्द्र आदि नक्षत्र समूह, बसन्तानिल, शारदाकाश, ज्योत्स्ना -रात्रि, संध्या और प्रभात की अरुणिमा, सरिता का कलरव, मेघों का गर्जन तथा पुष्पित कानन आदि प्राकृतिक दृश्य और घटनाएँ 'छायावाद' की प्रिय सामग्री है।" और आज सब की यही जिज्ञासा है कि क्या वे छायावाद की प्रिय सामग्रियां वर्तमान में भी बालपुर में उपस्थित है ? उस बालपुर साहित्यिक धाम के दर्शन हेतु हम लोग रायगढ़ से अलग-अलग कई गाड़ियों में बैठकर चल पड़े। कुछ साहित्यकारों ने अपने साधन से स्वयं सीधा बालपुर पहुँचने की बात की थी। उन्हें मोबाईल फोन से सम्पर्क किया जाने लगा। हमारी टीम में कुछ ने पहले भी बालपुर को देखा था। लेकिन मेरे जैसे कई लोग थे जिनकी यह पहली यात्रा थी। सबमें गजब का उत्साह था। ग्यारह बजते-बजते हम सब उस धरती पर पहुँच गए। गाड़ियों से उतरकर लोग ऐसा ताक-झांक करने लगे , जैसे उन्हें अभी यहीं कहीं पं मुकुटधर पाण्डेय जी अगवानी करते दिख जायेंगे। यहाँ से महानदी किधर है ? पाण्डेय जी का घर किधर था? उनके समय में यहाँ एक पुस्तकालय भी तो था ? कालेज के विद्यार्थी उन्हीं से पूछने लगते, जिन्हें भी वे बालपुर का निवासी समझते।

तभी जीर्ण-शीर्ण काया में पं मुकुटधर पाण्डेय के समय का एक साक्षी सामने खड़ा दिख गया। लोग उस ओर भागे। उसके साथ खड़े होकर फोटो खिंचाना शुरू कर दिए। तो कोई अकेले ही मोबाईल से सेल्फी लेने लगा। वह कोई और नहीं वही प्राचीन पीपल का वृक्ष था, जिसकी छांव में बैठ कर मुकुटधर पाण्डेय जी साहित्य रचते थे। जिसकी अब नई शाखाएँ भले ही न बढ़ रही हों किन्तु जड़ें आज भी धरती को सुदृढ़ता से वैसे ही पकड़ रखी हैं जैसे तमाम नई कविताओं के आगमन के पश्चात् भी छायावाद की जड़े साहित्य के भीतर गहराई में समाई हुई हैं।

इस साहित्यिक यात्रा के आयोजक शिव कुमार पाण्डेय जी ने तभी उस ओर चलने का संकेत दिया, जिधर एक बड़ा सा मन्दिर था। ज्ञात हुआ कि ये जगन्नाथ जी का मन्दिर है। जिसका निर्माण पाण्डेय परिवार ने ही कराया है और इसी मन्दिर के हाल में गोष्ठी की व्यवस्था भी है। भीतर जाने से स्वतः ही बात समझ में आ गई। पूरे हाल में सलीके से दरी बिछी थी। माइक भी दिख रहा था। मन्दिर के पुजारी को भी लोगों के आने की सूचना थी। तभी तो इतने लोगों के लिए गेहूं के आंटे की पंजीरी , बेसन की

बूंदी, केले आदि पर्याप्त मात्रा में 'प्रसाद' के रूप में थाल में रखे थे। लोगों ने जगन्नाथ जी को हाथ जोड़े , प्रसाद खाये ,पानी पिया और दरी पर बैठ गये। आयोजक, अध्यक्ष व कुछ वरिष्ठ साहित्यकारों के लिये कुर्सियां भी थीं। इसी के साथ माइक संचालक अर्थात मेरे हाथ में आ गया। निश्चय ही हमारे लिए यह एक महत्त्वपूर्ण दिवस था। जानकारी देते हुए मैंने इस आयोजन को तीन भागों में विभक्त कर दिया। पहले विचार गोष्ठी जिसमें डा. विहारी लाल साहू जी, डा बलदेव जी, शिव कुमार पाण्डेय जी व प्रो. के. के. तिवारी चर्चा करेंगे मुकुटधर पाण्डेय व लोचन प्रसाद पाण्डेय के साहित्यिक अवदान पर, यहाँ के भौगोलिक परिवेश पर और पाण्डेय जी के पारिवारिक इतिहास पर। दूसरा हम सब महानदी के तट पर जायेंगे, जहाँ अवशेषों के माध्यम से उनकी बखरी, पुस्तकालय, स्कूल आदि को देखने व जानने का प्रयास करेंगे। तीसरा यहाँ से कुछ ही दूर पर स्थित टपरदा गाँव चलेंगे। वहाँ पर होगा दोपहर का भोजन और फिर कवि गोष्ठी।

इस सत्र की अध्यक्षता का पद भार वरिष्ठ साहित्यकार डा. बलदेव जी ने संभाला। मन्दिर परिसर का हाल भरा हुआ था। सर्वप्रथम पं. मुकुटधर पाण्डेय जी के परिवार का परिचय देते हुए डा विहारी लाल साहू जी ने बताया कि पाण्डेय परिवार उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में पामपुरा गाँव के मूल निवासी थे। एक बार वे जगन्नाथपुरी दर्शन हेतु जाते समय सम्बलपुर के एक बगीचे में ठहरे थे। वहां के राजा ने इन लोगों की विद्वता सुनकर इन्हें राजमहल में आमंत्रित किया। लौटने पर इन्हें राज्य में बसने का आग्रह किया और कई गाँव दिए। जिसमें उन्हें लांती नामक ग्राम मिला जो संबलपुर फुलझर में पड़ता था। जलवायु अनुकूल नहीं होने पर ये कोर्रा , तत्पश्चात सोमनाथ पाण्डेय जी वहां से बालपुर आये। इनकी व्यवहार कुशलता और पांडित्य से प्रभावित होकर नारायण सिंह चन्देल ने इन्हें पांच गाँव दिए , यह सन् 1847 की बात है। बालपुर पुरी के मार्ग पर पड़ता है। सोमनाथ जी आत्मज भोलाराम पाण्डेय बड़े परिश्रमी व्यक्ति थे। उनके पुत्र शालिग्राम जी और उनकी पत्नी कुसुम देवी थीं। वे लोग धार्मिक स्वभाव के थे। इसी परिवार में 4 जनवरी 1886 को लोचन प्रसाद पाण्डेय जी का और 30 सितम्बर 1895 को उनके छोटे भाई मुकुटधर पाण्डेय जी का जन्म हुआ था। बहुत आगे चलकर पाण्डेय परिवार यहाँ के बड़े गौटिया व मालगुजार हो गये। महानदी के तट बसे इस सुरम्य गाँव, उपवन, विदेशी पक्षियों के आगमन से निर्मित परिवेश में जो रचनाएँ बनी। वे हिंदी साहित्य जगत में ध्रुव तारे की तरह स्थापित हो गईं। 18 नवम्बर 1959 को लोचन प्रसाद पाण्डेय जी एवं 94 वर्ष की लम्बी आयु तक साहित्य साधना में रत छायावादी कवि पद्मश्री मुकुटधर पाण्डेय जी का 6 नवम्बर 1989 को स्वर्गवास हुआ। इसी के साथ डा. बलदेव जी ने मुकुटधर पाण्डेय के साहित्यिक अवदान पर चर्चा करते हुए बताया कि आज हमारे लिए यह एक महत्वपूर्ण दिवस है। क्योंकि हम सब एक साहित्यिक तीर्थ पर उपस्थित हैं। मुकुटधर पाण्डेय जी सरस्वती, माधुरी, सुधा जैसी श्रेष्ठ पत्रिकाओं में कम उम्र में ही प्रकाशित होकर प्रसिद्ध हो गये थे। 1920 में श्री शारदा के चार अंको में उनकी 'छायावाद' शीर्षक लेखमाला छपी। 1921 में सरस्वती में उनकी 'कुररी' के प्रति जैसी छायावाद की दिशा निर्दिष्ट करने वाली कविता प्रकाशित हुई। कहानी संग्रह 'हृदय दान' (1918) प्रथम काव्य संकलन 'पूजा फूल' (1916) , विश्वबोध (महत्व पूर्ण कविताओं का संग्रह) , परिश्रम (निबन्ध संग्रह) छायावाद एवं अन्य निबन्ध पाण्डेय जी की चर्चित पुस्तकें हैं। इसी के साथ लच्छमा, शैलबाला, मामा, आदि उपन्यास का हिंदी अनुवाद एवं कालिदास के मेघदूत का छत्तीसगढ़ी में अनुवाद भी महत्वपूर्ण है।

उन्होंने आगे बताया कि पुरातात्विक और साहित्यिक वर्चस्व के पर्याय साहित्य वाचस्पति पं लोचन प्रसाद पाण्डेय और उनके अनुज छायावाद के प्रवर्तक कवि पं मुकुटधर पाण्डेय के कारण अर्ध-शताब्दी तक रायगढ़ , साहित्यकारों का तीर्थ रहा। मात्र 23-24 वर्ष की उम्र में उनके द्वारा सम्पादित कविता कुसुम माला जैसे ऐतिहासिक महत्व का काव्य संकलन इसका प्रमाण है। लोचन प्रसाद जी ने हिंदी, उड़िया, संस्कृत, अंग्रेजी और छत्तीसगढ़ी में लगभग 44 ग्रथों की रचना की थी। जिसमें मेवाड़ गाथा , पद्म पुष्पांजली, कलिकाल, दो मित्र , प्रवासी , बालिका विनोद , प्रेम प्रशंसा, छात्र दुर्दशा अत्याधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अंग्रेजी में 'लेटर्स

छायावाद

द्विवेदी युग के पश्चात साहित्य में जो कविता धारा प्रवाहित हुई, वह छायावादी कविता के नाम से जानी जाती है। छायावाद की कालावधि 1917 से 1936 तक मानी जाती है। वस्तुतः इस कालावधि में छायावाद इतनी प्रमुख प्रवृत्ति रही है कि सभी कवि इससे प्रभावित हुए और उनके नाम पर ही इस युग को छायावादी युग कहा जाने लगा है। प्रकृति के माध्यम से जब मानव भावनाओं का चित्रण होने लगा, तभी छायावाद का जन्म हुआ और कविता इतिवृत्तात्मकता को छोड़कर कल्पना लोक में विचरण करने लगी। डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक छायावाद में उल्लेख किया है कि छायावाद वस्तुतः अनेक काव्य प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और वह उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति पाना चाहता था और दूसरी और विदेशी पराधीनता से। छायावादी युग के चार स्तंभ - जय शंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला एवं महादेवी वर्मा हैं। हिमाचल से वरिष्ठ साहित्यकार श्रीनिवास श्रीकांत के आरंभिक दौर के लेखन में उत्तर छायावाद काल का प्रभाव दिखाई देता है।

टू माई ब्रदर्स', 'द वे टू बी हैप्पी एंड गे' उनकी चर्चित पुस्तक है। इसी के साथ-साथ कई महत्वपूर्ण अनुवाद भी हैं। गोष्ठी में उपस्थित शोधकर्ता छात्र-छात्राओं को परामर्श देते हुए डा बलदेव जी ने कहा कि यदि आप लोगों को छायावाद पर विशेष जानकारी चाहिए तो हमारी किताब 'छायावाद और मुकुटधर पाण्डेय' अवश्य पढ़ें। दूसरी 'छायावाद एवं अन्य श्रेष्ठ निबन्ध' भी देखें , जिसका सम्पादन मैंने (डा. बलदेव) किया था। इस प्रकार डा. बलदेव जी द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण जानकारी के पश्चात् प्रो. के. के. तिवारी ने भी लोचन प्रसाद पाण्डेय के द्वारा छत्तीसगढ़ राज्य के पुरातात्विक स्थलों की खोज व उन पर लिखे आलेखों एवं मुकुटधर जी के साहित्यिक अवदान की विस्तृत चर्चा की। इसी क्रम में अंजनी कुमार 'अंकुर' ने पाण्डेय परिवार पर लिखी एक कविता प्रस्तुत की। तत्पश्चात पाण्डेय परिवार के वंशज शिवकुमार पाण्डेय जी ने उन ऐतिहासिक स्थानों को दिखाया। जिसे देखने को सभी लालायित थे। महानदी के तट पर बसे उस बालपुर गाँव को सभी ने बारीकी से देखने की कोशिश की। गाँव व क्षेत्र की परिक्रमा करते समय शिव कुमार पाण्डेय जी इशारा करके बताते रहे। यहाँ एक स्कूल हुआ करता था। इधर पुस्तकालय था जिसका नाम पार्वती पुस्तकालय था। जहाँ देश की तमाम भाषाओं में छपने वाली सारी पत्रिकाएँ आती थीं। उधर 19 एकड़ में पलाश वन था। अभी तो महानदी का चौड़ा पाट यहाँ तक आ गया है ..... पहले ये बहुत पीछे था .... आधा गाँव तो नदी के आँचल में छुप गया। उस समय पाण्डेय परिवार इस क्षेत्र के बड़े मालगुजार थे। इधर हमारी बहुत बड़ी बखरी हुआ करती थी ... . खेती व अन्य कारोबार के लिए बहुत से नौकर चाकर थे। उन्हें कार्य या अल्पाहार हेतु मोर्रा (धान से बनी लाई), गुड़ व पीने की तम्बाकू आदि बाँटने के लिए जब बुलाना होता तो घंटी बजाई जाती थी। छात्र- छात्राएं बीच-बीच में शिवकुमार जी से तरह-तरह के प्रश्न पूछते, जिनका समुचित उत्तर पाते हुए सभी गाँव के भ्रमण का आनन्द ले रहे थे। यह तो पहले से ही ज्ञात था कि बालपुर में कोई बहुत बड़े सेमिनार का आयोजन नहीं हैं। हम लोग मात्र बालपुर गाँव देखने जा रहे हैं। उस धरती को नमन करने जहाँ से छायावाद के चर्चा की शुरुआत हुई। फिर भी थोड़ी देर में ही इतनी महत्त्वपूर्ण बातें हुई, इतनी अधिक नई जानकारियाँ प्राप्त हुईं कि एक रपट के बहाने सबका वर्णन करना सम्भव नहीं है।

भोजनोपरांत टपरदा में कवि गोष्ठी आयोजित की गई। जिसमें डा. बलदेव जी, शिव कुमार पाण्डेय जी, प्रो. के. के. तिवारी, मनोहर लाल चौबे जी, अंजनी कुमार 'अंकुर', सनत चौहान, नन्द लाल त्रिपाठी, अजय सन्नाड, मिलन मलरिहा, शम्भु शर्मा 'वसंत', शिव शरण पाण्डेय, राम गोपाल शुक्ल, गुलाब सिह 'कंवर', श्याम नारायण श्रीवास्तव, मनहरन सिंह ठाकुर, उर्मिला सिदार, निमाई प्रधान, राम विजय शर्मा, रामेश्वर राठौर ने काव्य पाठ किया। काव्य गोष्ठी में साहित्यकारों के साथ किरोड़ीमल डिग्री कालेज के छात्र-छात्राएं और टपरदा गाँव के बहुत से सम्मानित निवासी उपस्थिति थे, सभी ने काव्य पाठ का भरपूर आनंद लिया। कवि गोष्ठी का संचालन श्याम नारायण श्रीवास्तव अर्थात मैंने किया और अंत में सरपंच अध्यक्ष सुनील पाण्डेय ने सबके प्रति आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद ज्ञापित किया।

लोग विदाई के क्षण में कुछ चाय-वाय ले रहे थे और मैं एक किनारे बैठा सोच रहा था बालपुर के विषय में। निश्चय ही परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। अतीत की तुलना में वर्तमान बहुत परिवर्तित हो चुका है। महानदी का कटाव गाँव की ओर बढ़ने से आधा गाँव नदी के आगोश समा चुका है। दूर-दूर तक न कहीं पलाश वन दिखते हैं , न ही पाण्डेय जी की बखरी। स्कूल व पुस्तकालय भी नहीं दिखे। बालपुर में स्थापित जगन्नाथ मन्दिर से सड़क उस पार छोटा सा गाँव , गिरी हुई दीवारों के नींव का अवशेष और महानदी का चौड़ा पाट तो है। हाँ उस बूढ़े पीपल के सम्मान में ही कुछ आम, जामुन, बेल, बबूल, नीम, बांस की कोठ जंगली झुरमुट के साथ आज भी जीवित मिले।

किन्तु छायावाद को एक स्वरूप देने में मुकुटधर पाण्डेय जी का साहित्य के प्रति व पं लोचन प्रसाद पाण्डेय जी का इतिहास और पुरातात्विक क्षेत्र में जो अवदान है , उसके कारण अब ये मात्र पाण्डेय परिवार के पूर्वज ही नहीं रहे। बल्कि पूरे देश के लिए एक अमूल्य धरोहर से हो गये हैं। इसलिए भारत सरकार व सामाजिक संस्थाओं का भी दायित्व बनता है कि इस स्थल में कुछ कार्य करें। कम से कम एक सार्वजानिक पुस्तकालय इनके नाम से स्थापित करें। जहाँ पाण्डेय परिवार के साथ-साथ अन्य साहित्यकारों की श्रेष्ठ कृतियाँ उपलब्ध हों। जगन्नाथ मन्दिर के बाहर दीवार पर शिलालेख द्वारा भी पाण्डेय परिवार के विषय में आगंतुक हेतु विशेष जानकारी दी जा सकती है। हर सम्भव बालपुर को स्मारक स्थल का स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिए। वैसे यदि चाहें तो इस कार्य हेतु स्वयं पाण्डेय परिवार भी सक्षम है।

तभी किसी साथी ने कहा, 'चलिए श्रीवास्तव जी चला जाय।' मैं अचानक विचारों से बाहर आ गया। देखा , गोधूलि बेला दस्तक दे रही है। पशु-पक्षी, किसान, मंजूर सबके अपने नीड़ में वापस जाने की बेला हो गई है। अल्प समय में ही बालपुर व टपरदा में आयोजकों ने कल्पना से अधिक अपार प्यार व सम्मान दिया। बहुत अच्छा लगा। बहुत अच्छी रही ये साहित्यिक यात्रा। सभी अपनी-अपनी गाड़ियों में वापसी हेतु बैठने लगे। न जाने क्यों ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे अभी मन भरा नहीं, कुछ पल और ठहरने का मन था। मैंने मन ही मन तय किया। फिर आऊंगा एक बार बालपुर, और फिर विचार उठे कि -----

बीएफ-2, जिंदल स्टील एंड पावर लि. रायगढ़
छत्तीसगढ़-496001, मो. 79996 52646

कविता

जन्म दे हे! जननी

'बेटी बचाओ - बेटी पढ़ाओ' के संदर्भ में (चरण-7)

◆ दिलीप 'विद्यानंदन'

शिवे, कल्याणी,
अजन्मी कन्या का ।
सुन आर्त्त पुकार ,
करुण क्रन्दन,
तव कोमल 'भ्रूण-शिशु' का।

प्रभु का वरदान हो साकार,
तज पूर्वाग्रह का पारावार ।
परम्परा की तोड़ शृंखला,
धारण कर अभेद्य मेखला ।
आज दिखा शक्ति अपनी,
जन्म दे हे! जननी ।

कोमल ममता भीतर समेट,
दृढ़ निश्चय की चट्टान ओट ।
पाकर शिक्षा तब मर्यादा की,
साहस की सगुण निपुणता की ।
तब सुता बन हम,
सुरभित कर दें घर-आँगन।
बची रहे संस्कृति अपनी,
जन्म दे हे! जननी।

गार्गी, मैत्रेयी, लक्ष्मी, हाड़ी रानी,
न बैठी रही वह बनी-ठनी ।
'माँ' पा जायें तेरा दृढ़ सम्बल ,
'पुत्री' नर-पिशाचों में बनें न निर्बल ।
निज छवि क्यों न पहचानी,
जन्म दे हे! जननी।

'माँ' तेरे स्निग्ध मातृत्व की आकांक्षा,
अस्तित्व हमारा रहे,
जिन्हें है पुत्रों की वांच्छा ।
शंखनाद कर दो दिग-दिगान्त,
कर देंगी हम,



अबला की पीड़ा का युगान्त ।
ला मृदु हास,
मत बना सूरत रोनी,
जन्म दे हे! जननी।

क्षुद्र सोच मानव को ,
तेरी पुत्री के आगे झुकना होगा।
संयम सद्भाव धीरता संग,
दुर्गेशनन्दिनी का पग होगा ।।
अनुगमन पिता का करना है,
भ्राता संग सहयोग।
सहधर्मिणी पति की,
वात्सल्य सुत को जीवन योग ।।
मिला भावधारा,
पयधार में अपनी,
जन्म दे हे! जननी।

माँ! तू है सदैव सहनशीला,
फिर कैसे आज बनी प्रतिकूला ।
प्रतिष्ठित कर तव प्रतिकृति,
सतत् सुरक्षित हो मानव-संसृति
रोक दे! क्रूर हाथ की करनी,
जन्म दे हे! जननी।

जन्म दे हे! जननी !
जन्म दे हे! जननी !!

पी.जी.टी.(हिंदी)
केन्द्रीय विद्यालय, नाभा छावनी, जिला
पटियाला, पंजाब, मो. 91 9877688730

कविताएं

पहाड़ और समुद्र

सत्यनारायण स्नेही

पहाड़ का आदमी
जब कभी जाता है समुद्र के पास
उसके ज़हन में तब भी होता है पहाड़
अविचल एकाकी खड़ा खामोश
नदियों का जन्मदाता
समुद्र का पिता।
सागर की उमड़ती लहरों में
नज़र आता है उसे
हिमाच्छादित पहाड़
पहाड़ का आदमी देखता है
प्रकृति का विचित्र खेल
इस पृथ्वी पर पहाड़
सबसे ऊंचा होने पर भी
खामोश खड़ा है
समुद्र पानी से भरा है
फिर भी छलकता है
पहाड़ का आदमी
देख नहीं पाता
समुद्र की करामात
जिससे रंगते-सजते हैं पहाड़
बहती हैं नदियां
विकसित होता है जीवन
दरअसल
समुद्र से पहाड़ तक
तनी है पूरी धरती
जहां सदियों से
पहाड़ पर बैठा है समुद्र
समुद्र में तैर रहा है पहाड़
लगातार।

विभागाध्यक्ष, हिंदी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
रामपुर बुशहर, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश

गांव, इन दिनों

ओम नागर

गांव इन दिनों
दस बीघा लहसुन को जिंदा रखने के लिए
हजार फीट गहरे खुदवा रहा है ट्यूबवैल
निचोड़ लेना चाहता है
धरती के पेंदे में बचा रह गया
शेष अमृत
क्योंकि मनुष्य के बचे रहने के लिए
जरूरी हो गया है
फसलों का बचे रहना।

फसल जिसे बमुश्किल
पहुंचाया जा रहा है रसायनिक खाद के बूते
घुटनों तक
धरती भी भूलती जा रही है शनैः-शनैः
असल तासीर
और हमने भी बिसरा दिया है
गोबर-कूड़ा-करकट का समुच्चय।

गांव, इन दिनों
किसी न किसी बैंक की क्रेडिट पर है
बैंक में खातों के साथ
चस्पां कर दी गई है खेतों की नकलें
बहुत आसान हो गया है अब
गिरवी होना।

शायद, इसलिए गांव इन दिनों
ओढ़े बैठा है मरघट सी खामोशी
और जिंदगी से थक चुके किसान की गर्म राख
हवा के झोंके के साथ
उड़ी जा रही है
राजधानी की ओर...!

3-ए 26, महावीर नगर तृतीय, कोटा, राजस्थान-324
005, मो. 0 94606 77638

गीत/ग़ज़ल

महेश शर्मा धार

आस

चहक रही चिड़ियां और बोल रहा कागा
लगता पे बिरहन का भाग्य आज जागा ।

बिरहा का एक एक दिन
युग युग सा बिता
सारे जतन हार गये
प्यार नहीं जीता
शुष्क होते कंठों ने नीर क्षीर मांगा
लगता हे बिरहन का भाग्य आज जागा ।

प्रीतम परदेश गये
खबर नहीं कोई
बाट उनकी देख देख
अंखियां ना सोई
अंसुअन के मोती पड़े प्रतीक्षा का धागा
लगता हे बिरहन का भाग्य आज जागा ।

साजन घर आयेंगे
मधुर मिलन होगा
दूर होगा दारुण दुख
पल पल जो भोगा
इसी आस पर मन का अवसाद भागा
लगता हे बिरहन का भाग्य आज जागा

ग़ज़ल

चले आओ जरूरत है तुम्हारी
तुम्हीं बस एक मोहब्बत हो हमारी ।

ये दुनिया दर्दो गम का है समन्दर
तुम्हारी यादें कश्ती है हमारी ।

उजड़ते बाग सी बेनूर थी जो
हमारी जिन्दगी तुमने संवारी ।

तुम्हारे ख्वाब भी आयें तो कैसे
ये सारी रात आंखों में गुजारी ।

जो बस चलता तुम्हें जाने ना देते
रिवाजों की बंधी जंजीर भारी ।

तुम्हारे बिन ये दिन हैं सुने सुने
तुम्हारे बिन ये रातें हैं बेचारी ।

तुम्हारे संग अलग दुनिया बसाते
हमें आती कहां ये दुनियादारी ।

ग़ज़ल

वो जो तनहाइयों में रहता है
देवता है या है शैतान कोई ।

आदमी हर कदम पर मिलते हैं
पर नहीं दूर तक इनसान कोई ।

वो मेरे साथ हर सफर में थी
फिर भी जैसे है वो अनजान कोई ।

महल अटारियां भले होंगी
इनसे होता नहीं महान कोई ।

जो मिला करते थे कल तक हंस के
अब गुजरते हैं ज्यों अनजान कोई ।

तू सुकूं ढूंढता है महलों में
तेरे जैसा नहीं नादान कोई ।

224 सिल्वर हिल कालोनी धार
जिला धार मध्य प्रदेश
मो. 0 82369 40201

कहानी

सोलह प्रेम पत्रों में लिपटी जिंदगी

◆ राजगोपाल सिंह वर्मा

"ओह अभिनव, तुम मेरा जीवन हो और तुम अच्छी तरह से जानते हो कि जब किसी की जिंदगी उससे दूर चली जाती है, तो वह मर जाता है! तुमने कभी मुझे छलने की कोशिश भी की तो मैं अपनी जान दे दूंगी। मैं हमेशा के लिए इस संसार को अलविदा कह दूंगी। अब मुझे देखना है कि तुम कहां तक मेरा साथ दोगे!"

सही पहचाना आपने ! यह नव-प्रेम में डूबी एक षोड्सी का पहला पत्र था जो अपने उस प्रेमी के नाम लिखा था जिसके नाम उसने अपनी जिंदगी लिख दी थी ! 17 साल की कृति स्थानीय वैदिक गर्ल्स स्कूल में कक्षा 11 की छात्रा थी। लगभग 5 फुट 5 इंच के कद, गोरे रंग, तीखे नयन-नक्श और छरहरी काया वाली कृति किसी को भी एक दृष्टि में आकर्षित करने की क्षमता रखती थी। उधर अभिनव भी कद-काठी से सुगठित शरीर का स्वामी, जिम का शौक रखता था, बी एस सी में पढ़ रहा था और मां-बाप और बहन के साथ छोटे-से परिवार का था वह आशा बिन्दु !

कहने को अभिनव और कृति बचपन से ही पड़ोसी भी थे और मित्र भी थे ! साथ खेलते-कूदते बड़े हुए तो यह भी नहीं पता चला कि कब उस उम्र की सीमा तक आ पहुंचे जब लड़की के लिये नीची निगाह कर चलना और लड़कों से बात करने पर भी मनाही लागू थी । पर, यह मित्रता भला अचानक कैसे टूट जाये! कोई कारण भी तो हो? कृति की दुनिया सीमित थी। घर और माँ, पिता एक छोटा भाई बस ! पर हां, मुहल्ला बहुत बड़ा था। हम उम्र लड़कियों के खेलकूद से रौनक रहती। अभिनव यूँ तो उम्र में बड़ा था उससे, पर उसकी बहिन गुड्डी जरूर कृति की हमउम्र थी और दोनों में अच्छी मित्रता थी ! शाम होते-होते तो गली में ऐसा लगता कि मेले का सा माहौल हो।



और एक दिन जब कृति की बालकनी पर जो छोटे से पत्थर से बंधा पत्र गिरा तो कृति के आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। यह अभिनव का सटीक निशाना था ! वह दूर अपनी बालकनी से खड़ा मंद-मंद मुस्कुरा रहा था। उस कागज के पुर्जे को कृति ने न जाने कितनी बार पढ़ा पर कुछ अच्छा महसूस नहीं कर सकी ! ऐसा लगा कि कुछ बहुत ही गलत हो रहा है ! क्या यही प्रेम है ? अब उसे मालूम हो रहा था कि क्यों उसे लड़कों से बात नहीं करनी चाहिए। उसने तय किया कि वह सख्ती से अभिनव को मना करेगी। उसे नहीं करना किसी से प्रेम-वरेम! गुड्डे-गुड़ियों तक तो ठीक है पर यह बात कुछ जंची नहीं कृति को कि वह उसे पत्र लिखे। एक बार मन में आया भी कि मम्मी से शिकायत भी कर दें अभिनव की। फिर सोचा, क्यों नया बखेड़ा किया जाए, रहने देते हैं, कहीं पापा तूफान ही न खड़ा कर दें।

तीन दिन बीत गए। अभिनव भी नहीं दिखा। कम से कम एक बार घूर ही देते तो लाइन पर आ जाता, सोचा कृति ने ! पर यह क्या... आज तो गजब ही हो गया। अभिनव तो गली के नुक्कड़ पर ही मिल गया। साढ़े छह बजे सवेरे ! उसको कैसे पता कि अंजलि आज स्कूल नहीं जाएगी और कृति अकेली ही जाएगी।

कृति ने दूर से ही घूरा उसे और निकट आते ही पूछा, "क्या था वह सब..? क्यों पत्थर में रखकर पत्र भेजते हो? ऐसे कोई करता है क्या ? हमें नहीं पसंद यह सब कुछ ध्यान रखना। आगे ऐसा न हो...!" पर वह तो शांत खड़ा ऐसे ढीठ बन मुस्कुरा रहा था जैसे कुछ हुआ ही न हो ! उसे क्या पता कि कहीं घर में कोई और देख लेता तो न जाने कौन सी आफत आ जाती।

वह जाने लगी तो अभिनव रास्ता ही रोक कर खड़ा हो गया और बिना कुछ बोले ही एक और कागज की तह की हुई चिट्ठी कृति की मुट्ठी में पकड़ा दी थी उसने! और जब तक कुछ समझे कृति, अभिनव वहां से नौ दो ग्यारह हो गया। एक बार तो

सोचा फेंक दे उसे...पर फिर किसी के हाथ न लग जाये यह सोचकर नहीं फेंक पाई और लंबे-लंबे कदमों से सीधे स्कूल में जाकर ही रुकी। तिलमिलाकर रह गई थी कृति ! गुस्सा तो बहुत आया... पर जब स्कूल में इंटरवल में पढ़ा वह पत्र तो न जाने कैसे भाव तैर गए उसके चेहरे पर ! सब खेल के मैदान में थे और वह नितांत अकेली क्लासरूम में ! नहीं, अकेली नहीं, अभिनव का पत्र, दूसरा पत्र और उसकी कुछ बाल सुलभ यादें, वह भी आसपास ही थीं। आज इतना भी बुरा नहीं लगा था अभिनव का पत्र देना कृति को। शायद उसके खुरदरे हाथ के स्पर्श की अनुभूति थी यह, जिसमें अपनत्व के कुछ तत्व महसूस हो रहे थे कृति को!

स्कूल के बाद घर पहुंची तो कृति के मन में आक्रोश के भाव कम थे, एक नई दुनिया में प्रविष्ट करने की आकांक्षा के हिलोरें अधिक। उसे पता था कि लड़की का प्रेम वही होता है जो विवाह के लिए उसके परिजनों की पसंद होती है। उसे सिखाया जाने लगा था कि सिर्फ पति से ही प्रेम करना चाहिए, अन्य रिश्तों में तो प्रेम की सोच भी वर्जित है। पर...न जाने क्यूं प्रेमपत्रों के इस अचानक शुरू हुए सिलसिले ने उसके नन्हें कोमल हृदय में प्रेम की ऐसी भावनाएं अंकुरित कर दी थी जो उसकी धड़कनों का हिस्सा बन गई थी और वह अपने सपनों को आकार लेता देखने की कल्पना में खोने-सी लगी !

शाम को अंधेरा होने से पहले न जाने कितनी बार कृति ने अपनी संकरी गली की बालकनी से अभिनव की बालकनी को देखा पर उसकी खोजी निगाहें अभिनव को देख सकने में सफल नहीं हो सकी। उधर भाभी की आवाज पर वह किचेन में उनकी मदद करने को चली अवश्य गई पर उसका मन अभिनव को ही खोज रहा था।



कुछ ही देर में गली में बुलेट मोटरसाइकिल की जानी पहचानी आवाज ने उसे थोड़ा चैन दिया। बहाना बनाकर कृति बालकनी पहुंची। सही अनुमान था उसका। अभिनव मोटरसाइकिल थामे किसी से मोबाइल पर बात कर रहा था। कृति से नजर मिलते ही उसमें आंखों-आंखों में जो इशारा किया, उससे कृति की आंखें स्वतः ही झुक गई। अभिनव थोड़ा नजदीक आया और मुस्कुराते हुए उसने एक और ढेला बालकनी की ओर उछाल दिया।

कृति ने वह पत्थर के टुकड़े में लिपटा पुर्जा उठाया, उसे सहेजा और असंयत धड़कनों को संयत बनाने का प्रयास करती हुई सहज भाव से फिर भूतल पर किचेन की ओर चल पड़ी। दो पत्र वह पहले भी पढ़ चुकी थी अभिनव के, और उन पत्रों को पढ़कर भी कृति यह समझने में असफल रही थी कि प्रेम क्यों हो जाता है. ..। पर आज... उसे स्वयं कुछ बदलाव के संकेत दिख रहे थे और वह स्वयं इन संकेतों को अपने मन में महसूस कर रही थी। हालांकि अभी उसने अभिनव का दिया हुआ पत्र नहीं पढ़ा था पर उसे पढ़ने की उत्कंठा उस पर कुछ अधिक ही हावी हो रही थी, ऐसा उसने स्वयं अनुभव किया था ।

आखिरकार, वह समय आ ही गया जब उसको एकांत में अभिनव का पत्र पढ़ने का अवसर मिल गया। अपने कमरे में सोने से पहले जब उसने किताब के बीच रखकर धड़कते दिल से उसे पढ़ा, तब उसे धीरे-धीरे यह भी समझ में आ रहा था कि लोग प्रेम क्यों करते हैं तथा यह भी कि क्या वाकई प्रेम के बिना भी बेहतर रहा जा सकता है! उस को उत्तर मिल गया था। वह प्रेम के समुंदर में स्वतः बहती-सी जा रही थी। लगता था उतना ही प्रेम वह अभिनव से भी करने लगी थी जितना वह उसे अपने पत्रों के माध्यम से उसे अभिव्यक्त करने लगा था। उसको भी उतनी ही आतुरता होने लगी थी पत्रों की...और फिर मिलन की घड़ियों की...जितनी अभिनव प्रदर्शित करता था. कहें तो वह अभिनव के प्रेम को लेकर अपने प्रेमल जीवन के नूतन स्वप्न बुनने लगी थी।

न जाने कैसा रोमांच भर दिया था अभिनव ने कृति के मन में कि वह स्वयं ही उससे मिलने को उतावली रहने लगी। दोनों ने इसका रास्ता भी निकाल लिया। एक शनिवार को एक्स्ट्रा क्लास के बहाने से कृति जो स्कूल के लिए निकली तो शाम को चार बजे ही लौटी। कहाँ-कहाँ नहीं घूमे वो लोग! और जहाँ भी घूमे वह जगह कृति के मन में सपनों-सी कैद हो गई। दोनों ने खूब बातें की और सपनों की दुनिया में खोये रहे।

जिन्दगी के 15वें वसंत से शुरू होकर जो यह प्रेम कहानी आरम्भ हुई तो अब हर दिन उत्सव-सा लगने लगा था कृति को। वह बात अलग थी कि कुछ ही दिनों में सुगबुगाहट होने लगी थी उनकी प्रेम कहानियों की। दोनों के घर पर भी यह चर्चा और तनाव का कारण बन चुका था। दिन में न जाने कितनी बार कृति के पिता उसको भला-बुरा कहते। उन्होंने कृति के लिए आनन-फानन में रिश्ते देखने भी शुरू कर दिए थे और उस पर सख्त निगाह भी ।

दोनों के प्रेम में जो समानता थी बस वह यह थी कि दोनों के

पेरेंट्स इन संबंधों के प्रति अपनी-अपनी सख्त नाराजगी रखते थे और किसी भी दशा में इस रिश्ते को पसंद करने का उनका कोई इरादा नहीं था। आये दिन यह मुद्दा दोनों के घर उठता था और कुछ न कुछ तनाव बना रहता था । दोनों के परिवारों में आने-जाने के सम्बन्ध न जाने कब से टूट गये थे। राहत की बात यह थी कि कृति की मां प्रतिमा देवी अपनी बेटी की भावनाओं को समझती थी और उन्होंने कृति को अपने ढंग से ऊँच-नीच समझानी चाही, न जाने कितनी बार, पर बेटी के प्यार के सामने उन्होंने भी लगभग हार मान ली थी या यूँ कहिये उसके प्रेम सम्बन्ध को मूक स्वीकारोक्ति दे दी थी। पर, यह भी उतना ही सही था कि अंजनी प्रसाद-- कृति के पिता के लिए यह संबंध पहले दिन से ही पूरी तरह अस्वीकार्य था।

दरअसल, इस प्रेम सम्बन्ध के आड़े जाति व्यवस्था की भूमिका तो थी ही, अंजनी प्रसाद की उच्च सामाजिक और आर्थिक स्थिति से उपजा अहं और अभिनव का सेटल न होना भी था ! चूँकि वह अभी किसी नौकरी या धंधे में नहीं था और दिन भर इधर-उधर दिखाई देता था, इसलिए वह उसे आवारा की श्रेणी में रखते थे। दूसरी ओर अभिनव के पिता अमित प्रताप का जोर अपनी मूछों और बिरादरी के प्रति कूट-कूट कर भरा था। उनके सपने बिरादरी की पुत्रवधू से ही पूरे होने थे, भले ही बेटा निकम्मा ही क्यूं न हो !

कृति के स्कूल जाने पर रोक लग गई थी. "आखिर तू मर क्यूँ नहीं जाती मुंह काला करने से बेहतर!", या, अगर कुछ ऊंच-नीच पता चली तो खबरदार तुम्हारी दोनों की ही लाशें बिछ जायेंगी", "कुलटा", "बदचलन" सरीखी गालियाँ आम हो चली थी उसके पिता के मुंह से सुनना ! और वह, बस निर्विकार...शांत खड़ी रहती। पर इस सब अपमान से उसके मन में अभिनव के प्रति प्रेम भाव में कोई कमी नहीं महसूस हुई उसे !

"भविष्य की अनिश्चिन्ताओं के भंवर से बेफिक्र दोनों प्रेमी अब एक दूसरे के लिए जान देने को उतारू थे। अभिनव से अधिक शिद्दत कृति के प्रेम में थी यह भी स्पष्ट दिखता था, परन्तु उसका दूसरा पहलू यह भी था कि अभिनव वाकई में अभी गृहस्थ जिन्दगी के लिए बिना अपने घर के समर्थन के तैयार नहीं था । ऐसे में वह विद्रोह कर स्वावलंबी बनना तो दूर कृति को घर से अलग रखकर रहने का विचार भी मन में नहीं ला सकता था । यह बात उसने कृति को बता भी दी थी, पर कहते हैं न कि प्रेम अँधा होता है, उसे न रास्ते दिखते हैं, न कोई बाधाएं उसे हतोत्साहित कर पाती हैं, और तार्किकता का तो प्रेम में कोई स्थान होता ही नहीं है। तब प्रेम एक शब्द नहीं, बल्कि एक भावना, अहसास मात्र लगता है। यह जब दिल में उपजता है, तो सुख-दुख, लाभ-हानि, मान-अपमान, अपना-पराया का भेद मिटा देता है। एक प्रेम ही ऐसा रास्ता लगता है जिससे दुश्मन भी अपने हो जाते हैं। बिना प्रेम का जीवन तो नीरस-सा लगता है। प्रेम है तो खुशी है और जब खुशी होती है तो चेहरे पर मुस्कराहट बनी रहती है। जब मन प्रेम से भरता है तो दिनभर के सभी कामों में प्रेम झलकने लगता है। फिर चलना-फिरना, खाना-पीना, देखना, बोलना सब प्रेममय हो जाता है। और यही सोच कृति को, और थोड़ी बहुत अभिनव को भी जीवन दर्शन लगती थी।

दूसरी ओर यह भी उतना ही उचित लगता कि आकर्षण से मिला प्रेम क्षणिक होता हैं क्यूंकि वह अनभिज्ञता या सम्मोहन की देन होता है। इसमें आपका आकर्षण से शीघ्र ही मोह भंग हो जाता है और आप ऊब जाते हैं। यह प्रेम धीरे-धीरे कम होने लगता हैं और भय, अनिश्चिता, असुरक्षा और उदासी लाता है। इसके विपरीत जो प्रेम सुख-सुविधा से मिलता है वह घनिष्टता लाता है परन्तु उसमे कोई जोश, उत्साह, या आनंद नहीं होता है। उदाहरण के लिए आप एक नवीन मित्र की तुलना में अपने पुराने मित्र के साथ अधिक सुविधापूर्ण महसूस करते हैं क्योंकि वह आपसे परिचित है। दिव्य प्रेम इस सब को पीछे छोड़ देता है। यह सदाबहार और सदा नूतन रहता है। आप जितना इसके निकट जाएँगे उतना ही इसमें अधिक आकर्षण और गहनता आती है । इसमें कभी भी उबासी नहीं आती है और यह हर किसी को उत्साहित रखता है। सांसारिक प्रेम सागर के जैसा है, परन्तु सागर की भी सतह होती है। दिव्य प्रेम आकाश के जैसा है जिसकी कोई सीमा नहीं है। सागर की सतह से आकाश के ओर की ऊँची उड़ान को भरे।

लेकिन यहाँ सब उलझा सा था। यह प्रेम आकर्षण से जन्मा अवश्य था लेकिन कृति के लिए यह दिव्य प्रेम था। अभिनव की स्थिति त्रिशंकु थी। वह आकर्षण में आया जरूर था कृति के, और वह जितना कृति को अपने प्रेम में बांधना चाहता था उतना स्वयं भी प्रेम में रहना चाहता था लेकिन प्रेम समर्पण और जिम्मेदारी के बिना अधूरा है, इस तथ्य से अनजान था।

आखिर आज वह हो ही गया था जिससे दोनों परिवार आशंकित थे !

कृति सवेरे सात बजे ही घर से गायब हो गई थी। उधर अभिनव देर रात से ही अपने घर नहीं लौटा था। पूरे दिन की खोजबीन के बाद पता चला कि दोनों शहर के उस छोर पर स्थित महर्षिपुरम कॉलोनी में अभिनव की बुआ के घर से सटे मकान में एक कमरा लेकर रह रहे हैं। अंजनी प्रसाद ने कृति को जाकर पहले न जाने क्या-क्या खरी-खोटी सुनाई, फिर ठन्डे दिमाग से उसे ऊंच-नीच का भी वास्ता दिया। पर कृति को टस-से-मस न होना था, सो नहीं हुई। हार कर अंजनी प्रसाद घर लौट आये। उसकी माँ ने भी बहुतेरा समझाया कृति को, पर उसका जवाब था, "अब शादी तो मेरी हो ही चुकी ! तुम लोग मानो या न मानो, मुझे अधिक फर्क नहीं पड़ता। मैं अभिनव के साथ हर हाल में सुखी

हूँ । " उधर अभिनव के पिता आकर चुनिंदा गालियाँ उसे दे आये थे । उससे भी जी नहीं भरा तो हर दो दिन बाद उसे अपनी इज्जत खराब करने की दुहाई देकर लौट आते थे। वह यह भी ऐलान कर आये थे कि अभिनव को अपनी सम्पत्ति में से एक फूटी कौड़ी भी नहीं देंगे !

हालांकि बात इतनी भी सरल नहीं थी जितनी दिखती थी। दोनों परिवारों के बीच तनाव की खाई और गहरी हो चली थी। दोनों पक्ष एक दूसरे को ही दोषी मान रहे थे। संबंध अब सामान्य से वैमनस्यता की ओर बढ़ चले थे, जबकि यह तथ्य भी पूर्णतः शाश्वत था कि इस प्रेम-प्रसंग में दोनों परिवारों की संलिप्तता शून्य थी, वह तो मात्र दो प्रेमियों की नैसर्गिक गाथा थी, जो कृति और अभिनव ने सहज रूप से रच दी थी। उन दोनों के सामने हर तरह से अनिश्चितता का भविष्य सामने खड़ा था, पर न जाने उन्होंने किन परिस्थितियों में यह निर्णय लिया गया, कोई समझ नहीं पा रहा था ।

अब कौन समझाए कि प्रेम की बुनियाद कोई ईंट-पत्थर और सोने-चांदी की नींव पर नहीं होती है। दो प्रेमी शायद ही भविष्य की निर्ममता को लेकर सशंकित होते हों। वह तो बस जीने-मरने की कसमें खाते हैं, आने वाली कठिन समस्याओं के मुकाबलों के लिए हसीं सपनों का महल बुनते हैं पर, धीरे-धीरे उन सपनों की जब मौत होती है तो अपने वह घर वाले ही खेवनहार नजर आते हैं, जो अभी तक दुश्मन ही दिखते थे ! यही सब कृति और अभिनव के जीवन में होने लगा था। एक तो कोई काम-धाम नहीं, ग्रेजुएट भी नहीं था अभी अभिनव और कृति... वह तो इंटर पास करने वाली थी, अगर यह प्रेम कथा न लिखी गई होती।



एक हफ्ते में ही उन्हें आटे-दाल का भाव मालूम पड़ने लगा था ! सम्बंधों में प्रेम की जगह झुंझलाहट ने ले ली थी, कृति की जिंदगी उस एक कमरे में सिमट कर रह गई थी जबकि अभिनव दिन भर बाहर ही रहता, और जब देर रात लौटता तो नशे में होता। नोंक-झोंक, एक दूसरे को भला-बुरा कहना आम हो चला था। स्थिति बदतर इसलिए भी थी कि दोनों के पास भविष्य की कोई योजना नहीं थी। अभिनव से किसी आर्थिक सहारे की उम्मीद बेमानी थी, क्यूंकि वह इसके लिए पूरी तरह से न तो शिक्षित था और न ही कोई विशेष इच्छुक दीखता था। एक अतिरिक्त गुण और सामने आया था कि वह शराब का भी शौकीन था। रोज रात को बाहर से पीकर आना उसका नियम था। ऐसे में तो कुबेर का खजाना भी कम ही पड़ता।

उस दिन दोपहर के 3.30 बजे होंगे, जब कृति और अभिनव के घर खबर पहुंची। कृति ने अपनी मात्र 18 दिन की गृहस्थ जिन्दगी के निर्वहन के बाद स्वयं को आग लगा ली थी । लगभग सौ प्रतिशत जली अवस्था में उसे जिला चिकित्सालय में एडमिट कराया गया जहाँ गम्भीर अवस्था में मजिस्ट्रेट को दिए गये अपने बयान में उसने आग को 'शराबी अभिनव' द्वारा लगाया जाना आरोपित किया था। यह भी सही था कि अभिनव भी वहां से गायब था। जिन्दगी और मौत से चार घंटे संघर्ष के उपरान्त कृति ने दम तोड़ दिया, पर मालूम चला कि उसने मृत्यु पूर्व अपना बयान दर्ज कराया था।

मजिस्ट्रेट के समक्ष दिए गये बयान और परिस्थितियों के दृष्टिगत पुलिस ने प्रथम दृष्टि में अभिनव को दोषी पाया और गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। दोनों परिवार टूट गये थे। प्रेम की ऐसी परिणिति की किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी। 18 वर्ष की कृति और 22 वर्ष का अभिनव-- उन्होंने अभी इस दुनिया में देखा ही क्या था ! पर घटनाक्रम वाकई बहुत दुखद था। फिर से उसके पिता का प्रेम बेटे के लिए उमड़ आया था। आठ महीने तक जेल में रहकर, कोर्ट-कचहरी के चक्कर काटकर, रुपया पानी की तरह बहाकर अंततः अभिनव की जमानत हो पाई। यूँ कहिये उनका मकान तक गिरवी रखा गया, तब जाकर अभिनव को बाहर की दुनिया में आने की अस्थायी इजाजत मिल पाई।

केस की सुनवाई तो अभी बाकी थी ! कृति के पिता का भी अब रह-रहकर अपनी मृत पुत्री के प्रति आवश्यकता से अधिक प्रेम उमड़ता था, और न जाने कितनी बार उनकी आँखें स्वतः ही नम हो जाती थीं। उन्होंने अभिनव को फांसी की सजा से कम न होने देने का भी ऐलान कर रखा था। उधर अमित प्रसाद-- अभिनव के पिता का आधा समय वकीलों से राय-मशवरा और भागदौड़ में ही बीतता था। बेटे को बचाने की जिम्मेदारी तो पूरी थी ही न, शायद उतनी ही जितनी प्रेम को नकारने की रही होगी?

फास्ट ट्रैक कोर्ट में केस चला, जिसमें अभिनव की पक्ष से वह सोलह प्रेम पत्र पस्तुत किये गये जो कृति ने अभिनव को लिखे थे। सबसे मजबूत सबूत के रूप में इन पत्रों की ही भूमिका बताई गई। उन पत्रों के अनुसार पहले पत्र से ही कृति ने स्पष्ट कर दिया था कि उसे अभिनव के अलावा अपनी जिन्दगी में किसी और का

दखल मंजूर नहीं होगा। और यह भी, कि यदि कभी ऐसा होने की संभावना दिखी तो वह अपनी जिन्दगी खत्म करना बेहतर विकल्प समझेगी। अपने दूसरे पत्र में भी उसने लिखा था, "कि अगर उसके घर वालों ने कहीं उसकी शादी तय कर दी तो भी वह अपनी जान देना बेहतर समझेगी।" कई पत्रों में उसने शादी के बारे में अपने भाई और मां से बात करने का अनुरोध किया था। सब पत्रों में जो एक बात बार-बार लिखी गई थी, वह शादी न होने पर उसके द्वारा जान देने का इरादा !

कृति का दूसरा पत्र यूँ था, "यदि मेरे परिजनों ने मेरा विवाह कहीं और तय कर दिया तो मैं तो आत्महत्या कर लूंगी। यदि तुम्हारे घर वाले तुमसे कुछ कहते हैं तो तुमको सही बात बता देनी चाहिए। मौका मिलने पर मैं भी अपने ऐसे किसी वैवाहिक बंधन को तोड़ दूँगी। शादी करूंगी तो सिर्फ तुमसे ही, नहीं तो जान दे दूँगी !"

अगले पत्र में फिर वही आत्महत्या की बात ! और कुछ अलग भी, "तुम क्यूँ पूछते हो कि यदि मेरी शादी कहीं और कर दी गई तो मैं क्या करूंगी, तो जान लो, यह जिन्दगी ही नहीं रहेगी तब ! तुमने देखा था क्या इससे पहले मुझे इतना प्रसन्न, जब तक तुम मेरी जिन्दगी में नहीं थे !" फिर 14वें पत्र तक आते-आते उसके पत्रों में खिन्नता के साथ दृढ़ता भी दिखने लगी थी, और साथ में वही जान देने की बात!

15वें पत्र में कृति ने लिखा, "आखिर तुम भी वही निकले ना ?...जैसे चालाक लड़के...भोली लड़कियों को अपने प्रेम के झूठे जाल में फंसा कर उन्हें इस्तेमाल करते हैं। तुम भी उन भेड़ियों से अलग कैसे ? सिर्फ तुम्हारी वजह से मैं अपने परिवार वालों की निगाह में गिरी, समाज की निगाह में गिरी, पर तुम्हें कोई फर्क नहीं पड़ता दिखा। सोचो, कोई अगर तुम्हारी सगी बहन के साथ ऐसा करता तो भी क्या तुम ऐसा ही रुख अपनाते ? सच, ऐसी जिन्दगी से तो मर जाना ही बेहतर है।"

और 16वाँ पत्र...अंतिम पत्र केवल कोर्ट मैरिज या मर जाने का विकल्प बताने के लिए लिखा था कृति ने! यह वही पत्र था जिसके बाद कृति और अभिनव बगावत कर एक दूसरे के साथ रह रहे थे।

निर्णय में इन पत्रों और परिस्थितियों के विश्लेषण के बाद माननीय न्यायाधीश ने पत्रों की भूमिका को वाकई में महत्वपूर्ण माना। उन्होंने स्पष्ट किया कि कृति आरम्भ से ही अवसाद की शिकार थी और मेडिकल टर्मिनोलॉजी में वह 'आत्महत्या की प्रवृत्ति' से ग्रसित थी। पहले पत्र से ही उसके व्यक्तित्व का यह पहलू उभर कर सामने आया था, जो अंततः उस पर हावी रहा। अपनी थ्योरी को सिद्ध करने के लिए उन्होंने विश्व के विद्वान मनोवैज्ञानिकों के निष्कर्षों के उद्धरण भी दिए। निर्णय में उन्होंने लिखा कि, "आत्महत्या इस समाज के अपेक्षाकृत उस कमजोर व्यक्ति के लिए अंतिम रास्ता दिखता है जो इस जंगल जैसे समाज में अपना रास्ता भटक चुका हो। ऐसे समय में उसे वर्तमान जीवन की अपेक्षा मृत्यु का वरण अधिक उचित तथा व्यवहारिक प्रतीत होने लगता है।

उन्होंने यह भी निर्णीत किया कि जिस समय कृति ने आग लगाई, उस समय अभिनव न तो मौके पर मौजूद था, और न कोई परिस्थितियां उसके इस जघन्य अपराध में संलिप्त होने की ओर संकेत करती हैं। साथ ही, कृति के मृत्यु पूर्व बयान को भी कोर्ट ने विश्वसनीय नहीं माना क्यूंकि जब मजिस्ट्रेट ने वह बयान लिया था, तब अस्पताल के बर्न वार्ड में वह सौ प्रतिशत जली अवस्था में लाई गई थी, और उस स्थिति में उसके लिए बयान देना तो दूर कोई शब्द उच्चारित करना भी संभव नहीं था ! ऐसा जजमेंट में लिखा गया था ! कुल ग्यारह महीने की सुनवाई, 14 गवाहों के बयान और जिरह के बाद 244-पृष्ठों के निर्णय में अभिनव को अंततः इस प्रकरण में दोषमुक्त पाया गया और बाइज्जत बरी करने के आदेश हुए !

निर्णय सुनते ही कृति के पिता को कोर्ट रूम में ही बेचैनी की शिकायत हुई । दरअसल, उन्हें हल्का दिल का दौरा पड़ा था ! प्रेम में आकंठ कृति की जान चली गई थी, कुछ सम्बन्ध भी असमय काल-कलवित हुए थे, सामाजिक और मित्रता की भावनाओं को चोट पहुंची थी, साथ में उन प्रेमल भावनाओं की भी मृत्यु हुई थी जिन्हें प्रेमी युगल जीते-जी संजो कर रखते हैं। इस मामले में बलिदान सिर्फ प्रेम ने दिया था, एक ऐसा प्रेम जिसके पास कोई तर्क नहीं था, अँधा था वह प्रेम जिसके लिए सिर्फ अपने स्वप्निल संसार की कल्पना ही सब कुछ थी! शायद कृति की सोच इस प्रेम के आगे की जिन्दगी देख सकने में समर्थ नहीं थी।

अफसोस, कृति के व्यक्तिगत सामान में अभिनव का कोई पत्र नहीं मिला जो उसके प्रेम संबंधों की भावनाओं की कोर्ट के फैसले की तरह सरल व्याख्या कर सकता ! यह तो कभी पता ही नहीं चल सका कि अभिनव का प्रेम भी उतना ही गहन था या उसकी असमंजसता की तरह अनिश्चित ! कोर्ट ने तो कानून के अंधे होने की कहावत पर मुहर लगा दी थी ।

अंधे प्रेम ने एक नासमझ किशोरी की जान जाने को वैधानिक जामा पहना दिया था और एक संशयी प्रेमी को जीवन दान दे दिया था...इस सच्चाई से अनभिज्ञ कि जीवन लीलने वाली केवल माचिस की तीली ही नही होती, नासमझ उम्र में शारीरिक आकर्षण से पनपी प्रेम की चिंगारी भी होती है!

फ्लैट नंबर-1/3, रीगेल रेजीडेंसी,
आगरा एन्क्लेव, कामायनी हॉस्पिटल के पीछे, सिकंदरा,
आगरा, उत्तर प्रदेश

अरुणाचली कहानी

एक स्त्री, प्यारी नदी सी

मूल लेखक : **ममांग दाई** हिंदी अनुवाद : **डॉ. जगदीश शर्मा**

साहित्य सभी का साझा होता है। जीवन के सरोकार एक जैसे होते हैं विशेषकर साधारण पारिवारिक पृष्ठभूमि के लोगों के। उत्तरपूर्व भारत का जीवन सहज, सरल और मूलभूत जीवन बनाए रखने के बुनियादी संघर्ष का जीवन है वैसा ही जैसा किसी अन्य पर्वतीय प्रदेश या देशज जातीय समाज का होता है। किसी बाहरी के आने पर उत्सुकता और मुग्धता दोनों ही सहज सरल स्वभाव की प्राकृतिक कमजोरियाँ हैं। विश्वास और सब कुछ न्योछावर कर देने की उद्यता भले ही उसकी परिणति क्या हो, इसका रत्ती भर भी विचार नहीं होता। दूसरे को दोष देने की आदत भी नहीं, अपने निर्णय और उसकी परिणतियों पर जीवन जीने तथा विसंगतियों से जूझने का अदम्य साहस इस समाज का विशेष गुण है।
'एक स्त्री, प्यारी नदी सी' सुप्रसिद्ध अरुणाचली कथाकार ममांग दाई की कहानी का हिंदी अनुवाद है। ममांग दाई अंग्रेजी और अरुणाचली भाषाओं की चर्चित लेखिका और गहन जानकार हैं। उनके कई कहानी संग्रह और उपन्यास प्रकाशित हैं। प्रस्तुत कहानी का **अंग्रेजी शीर्षक 'रिवर वुमैन'** है। यह कहानी 'दी लेजेण्डस् ऑफ पेन्स्म' 'अन्तर्मन की कुछ कहानियाँ' कहानी-संग्रह में सम्मिलित है तथा अरुणाचल के देशज समुदाय की जीवनचर्या, सामाजिक एवं भावात्मक संवेग का चित्रण करती है। एक युवती के परिपक्व होते स्वभाव और संवेगात्मक परिवर्तनों का वर्णन करती कहानी जीवन में सामाजिक एवं पारिवारिक संघर्ष के कटु यथार्थ के चौराहे पर आकर खड़ी हो जाती है- **रिवर वुमैन : एक स्त्री; प्यारी नदी सी।**

(गतांक से आगे)

एक दिन निनम यासाम और नयाङ के साथ अपने गाँव से नीचे गई, डेविड पुल पर इंतजार कर रहा था। योजना के मुताबिक उसकी दोनों सहेलियाँ सिनेमा देखने चली गईं फिर बाद में जाते वक्त पुल पर मिलने को कहा ताकि वे तीनों फिर साथ गाँव वापस जा सकें। निनम जीप में बैठ गई तो डेविड ने गाड़ी आगे बढ़ा दी। मुश्किल से दोनों थोड़ी ही दूर गए होंगे कि गाड़ी एक गाय से टकरा गई। टक्कर काफी जोर की थी, जीप बुरी से मुड़ गई, जोर से चट्टान से टकराकर गाड़ी फिर सड़क पर गई। निनम ने उसे पकड़ने के लिए अपनी बाहें फैला दी थीं, डेविड उसे मुस्कुराता हुआ देख रहा था। गाय चिल्लाती हुई भाग गई। मुसीबत टलने से निनम धीरे से हंस पड़ी और फिर वे आगे बढ़ने लगे। आसपास के इलाके में बरसात होने लगी, जिससे पहाड़ अपने भूरे-पार्शुव और झुकते आसमान के बीच और हरे-भरे हो गए। उसने उसके हाथ को पकड़ लिया था। निनम ने भी अपने हाथ को नहीं खींचा और फिर एक दूसरे के हाथ पर हाथ रखे गाड़ी चलती रही। बीच-बीच में जब भी वे बाहरी घेराबंदी किये घरों के सामने से गुजरते तो दोनों एक साथ हंस पड़ते। निनम ने भी इसका विरोध नहीं किया।

नदी के किनारे उस छोटे से आराम-घर की दीवारों की सफेदी झड़ रही थी और फर्श दरारों वाले लकड़ी के तख्तों से बना था। यह आराम घर नदी के किनारे एक उंची जगह पर था और इसका प्रयोग साहिब लोग कभी-कभार ड्यूटी के वक्त या कभी-कभी नदी में मछली पकड़ने के समय करते थे परन्तु ज्यादातर समय यह खाली ही रहता था। एक जंगली नीबू के पेड़ की छाया उस घर पर पड़ती थी और उसके सफेद फूलों की सुगंध वातावरण को महका रही थी।

हैरान माली साहिब के स्वागत में दौड़ता हुआ आया और अपने बेटे को बुलाकर साहिब का सामान उठाने को कहा। जब उसने निनम को देखा तो उसने अपनी खांसी किसी तरह रोक ली परन्तु चाबियों के एक बड़े से गुच्छे से उसने दो कमरों में से एक का ताला खोल दिया और यह कहते हुए वहां से चला गया कि वह चाय बना रहा है। वह शीशे की एक पुरानी बोतल में लगी एक मोमबत्ती लिए हुए आया और दूसरी मोमबती खोजने के लिए दराज तलाशने लगा।

'जो आपने पकड़ी है उसे ही जला दो,' डेविड ने कहा, 'हमें किसी और चीज की जरुरत नहीं पड़ेगी।'

अब वे दोनों अकेले थे। केवल बारिश की आवाज सुनाई दे रही थी, बाकी सब आवाजें दब गईं थीं। निनम ने पहली बार मच्छरदानी को देखा था इसलिए उसने उसे नीचे गिरा दिया और हंसने लगी, परन्तु उसने जल्दी से उसे इकठ्ठा कर फिर से ऊपर रखा दिया। डेविड ने उसे देखा, मोमबत्ती की रोशनी में उसे प्रदीप्त और कांपते अंगों के साथ देखा, शायद भय और वासना का आवेग उस पर हावी हो गया था। निनम ने जब उससे कुछ कहा तो वह उसका जबाव नहीं दे सका।

उसने उसकी तरफ देखा और चुप हो गई। वह उसके पास आकर बिस्तर पर बैठ गया था। मोमबत्ती की रोशनी उसके मुंह और गले पर पड़ रही थी, निनम ने अपना चेहरा झुका लिया था ताकि वह उसके मनोभावों को न पढ़ सके। उसकी नसों में एक गर्म तरल दौड़ रहा था, उसे पता ही नहीं चला कब उसने उसके हाथ को पकड़ लिया। वह उससे खुद को छुड़ाना चाहती थी, कुछ कहना चाहती थी जिससे उसकी चिन्ता दूर हो जाए, किन्तु वह एक शब्द भी न कह पाई। वह मूर्छित हो गई थी, डेविड का मुँह उसके ऊपर था। उसने अपना सिर उठाया और अपनी आँखे बंद कर लीं। डेविड किसी बच्चे की तरह काँप रहा था, उसने उसे अपने आलिंगन में कसकर उठा लिया था। उसने उसके डर को बाँट लिया था। निनम के सिर को पीछे धकेलते हुए डेविड ने अपने मुंह से उसका मुंह खोला और बल पूर्वक उसके मुंह का मुआयना करने लगा, उसके संकोच को मिटाता हुआ जबतक की उसकी सांस न रूक गई।

‘ नहीं, नहीं.......’ वह बुदबुदाने लगा, उसे डर था कि कहीं वह उसे खो न दे, और निनम के शरीर से चिपकते हुए उसके हाथों को कसकर पकड़ लिया।

निनम ने कभी इस तरह के प्यार की कल्पना नहीं की थी। वह डरने लगी इस इंसान के छूने से, जिसने अपने आप को बड़ी हताशा से प्रकट कर दिया था। कौन है ये ? क्यों यह इस तरह से हो गया है ? उसकी वासना उसे उत्तेजित कर रही थी। उसे यकीन ही नहीं हो रहा था कि ये वही इंसान है जिसे उसने सच्चे मन से प्यार किया था।

उसका मुंह लगातार अपने दबाव से सरकता हुआ निनम के गले तक पहुँच गया था। उसे लगा उसके हाथ उसके वक्षों को छूने और अनावृत करने की कोशिश कर रहे हैं। उसे लज्जा आ रही थी और वह झुक कर उसके आगे खड़ी हो गई थी, उसके स्तनों के तने अग्रभाग डेविड के हाथों में थे। अब काफी देर हो चुकी थी। जब वह उसे नीचे लिटा रहा था तो निनम अपने चेहरे को उसके कँधों के बीच छुपाने की कोशिश कर रही थी। उसने प्रतिरोध नहीं किया, उसमें ऐसा करने की शक्ति शेष नहीं रह गई थी। यह अजीब था कि डेविड भी उतना ही बेबस है, उसे लगा। निनम बेसुद्ध नीचे बेहोशी की हालत में पड़ी थी, उसको देखकर डेविड की आह निकल गई।



जब वह ऊपर उठा तो उसके गीले बाल उसके मुंह पर आ गए थे, उसने वासना और अत्यंत नाजुकता से आवेश में लिया और निनम को कलाई से थामे रखा। वह धीरे-धीरे नाजुकता से उस बढ़ते हुए दर्द का उसे अहसास दिलाना चाहता था जिससे निनम उसे प्रत्युत्तर में प्यार करती परन्तु वह अपने सिर को छुड़ाने के लिए जोर-जोर से यहाँ वहां घुमा रही थी और रिरिया रही थी। डेविड ने उसके चेहरे को थाम लिया और अपनी तरफ देखने को विवश कर दिया था। जैसे ही उनकी नजरें एक दूसरे को एकटक देखने लगीं मानों दोनों कहीं अथाह समुंदर में डूब गए। संभलने पर निनम ने कांपते मुंह से उसका नाम लेते हुए अपनी नजरें झुका ली थीं। उसके आंसू निकल आये थे।

ओह! यह कैसा एहसास था जिसमें दर्द भी है और प्यार भी और सजा भी! उसके गोरे शरीर के हर अंग की सुन्दरता को देखता हुआ वह उठा खड़ा हुआ। वह देख रहा था निनम को जो जिसके चेहरे पर एक लावण्यमई रुलाई फूटने ही वाली थी। उसका शरीर कांप रहा था और वह लगभग समर्पण कर चुका था। काफी देर तक वह उसकी आगोश में चुपचाप पड़ा रहा। वह अपने ही ख्यालों से डर रहा था और सोच रहा था कि क्या हमेशा ही वे दोनों ऐसे ही बंधन में रहेंगे या उसे फिर से अकेला जीवन तो नहीं जीना पड़ेगा। वह फिर से उसे देखने लिए धीरे से उसकी ओर घूमा। उसने उसके कानों में कुछ कहा और उससे लिपट गई। बिना कुछ बोले, शांत, वे इसी तरह देर तक लेटे रहे।

अपने पिता के घर जाकर निनम ने लकड़ी के खम्बे से लटके छोटे से शीशे में अपना मुंह देखा। उसका चेहरा बिलकुल निर्मल था। उसकी बड़ी-बड़ी गोल और चमकती आँखे उसे दिखाई दे रहीं थीं। उसका मुहं बड़ा ही मासूम दिखाई दे रहा था, उसने कोई श्रृंगार भी नहीं किया था, परन्तु अभी भी उसके मुंह में वह प्यारा दर्द और

राकुट के पिता ने कहा था कि सोगोङ और साहिब देर तक साथ बैठे रहे। वे लोग क्या बातें कर रहे थे यह सुनने की वह कोशिश कर रहा था पर खुले दरवाजे पर लटका हुआ वह हरे रंग का परदा पारदर्शी था। उसे यह डर था कि अगर वह समीप खड़े होकर उनकी बातें सुने तो कहीं वे लोग उसे देख न ले। वह इतना ही कह पाया था कि जब सोगोङ बाहर निकला तो वह किसी गहरी सोच में डूबा हुआ लग रहा था। संभवतः उन दो लोगों ने जीवन, प्यार और दुनिया की रीति के विषय में ही बातचीत की होगी किसे पता ? दोनों ही समझदार व्यक्ति थे और उस मुलाकात के बाद सोगोङ ने उन सारे मामलों पर कुछ नहीं कहा, जबकि वह अपने ही घर से दूर होने लगा था। वह लम्बे और लम्बे समय तक बाहर अपने दोस्तों के घरों में रहने लगा था। किसी को भी उस विषय में बातें करना पसंद नहीं था और जल्दी ही लोग अपने अपने कामों में व्यस्त हो गये थे और उस मामले पर ध्यान न देने का ढोंग कर रहे थे, बड़े साहिब को छोड़कर, जिसने एक दिन इस मामले पर चर्चा अपने जूनियर से की थी।

'कप्तान डेविड,' उसने अपनी ऊँची और स्पष्ट आवाज में कहा, 'तुम्हें लेकर लोगों में कुछ बातें हो रही हैं, ३३ कि तुम किसी स्थानीय लड़की के साथ हो।'

जब डेविड ने जवाब नहीं दिया, उसने कहा, 'मैं एक शांतिप्रिय व्यक्ति हूँ। यहाँ जो लोग रहते हैं वे अच्छे लोग हैं। मैं प्रेम-प्यार अथवा उसके किसी ऐसे किसी प्रसंग के विरुद्ध नहीं हूँ, भगवान के लिए, पर.... ... तुम्हें यह नहीं लगता कि तुम्हारे इस व्यवहार से हमारा मिशन किसी खतरे में पड़ सकता है?'

अब भी वह कुछ न बोला।

आखिरकार उस बूढ़े आदमी ने कहा, 'क्या तुम उससे प्यार करते हो ?'

'हाँ'

वह खामोश था। तब साहिब ने कहा, 'क्या तुम उसके साथ अपना पूरा जीवन बिताना चाहते हो?'

'हाँ, सर ! मैंने तय कर लिया है... पर वह मुझे उस रूप में नहीं अपनायेगी। अगर में यहाँ से चला जाऊँगा तो वह मेरे साथ नहीं चलेगी, सर !'

'क्या, ओह , ऐसी बात है। हम्मम्म...।' वह खांसा और उस जवान लड़के को देखने लगा था। उसकी आँखों में हमदर्दी थी।

लावण्यमय स्वाद मौजूद था। वह महसूस कर रही थी कि किस प्रकार उसके होठों में उस रक्त प्रवाह के आने से जीवन का उल्लास आ गया था। यह अत्यंत संवेदनशील था, जो नदी के प्राणी की तरह आग के स्पर्शकों के साथ हरकत करता, स्खलित होता और फलित होता। उसका वजूद ही बदल गया था। वह पूर्ण हो गई थी और उसका भय दूर गया था। वह सचमुच जी उठी थी, ऊर्जा से भरपूर और सौंपने और स्वीकारने की इच्छा से भरपूर।

जब यह घटना सामने आई, तो गाँव के मुखिया सोगोङ ने अपनी बेटी से बात तक नहीं की और इसकी जगह उसने धमकी दे डाली कि वह उस मिलुन के घर को आग लगा देगा और उसे इस जमीन से दूर भगा देगा। उसने याद दिलाया कि दूयाङ कबीले और मिलुन लोगों के बीच लिखित रूप में सहमति-समझौता हुआ था, जिसमें लिखा था कि वे लोग पिगो की सीमा के एक चौथाई मील पर ही बसे रहेंगे परन्तु अब वे लोग पूरे गाँव पर अधिकार करने की कोशिश कर रहे थे। उसने अपने कुछ दोस्तों से सलाह-मशविरा किया और वे लोग उसकी इस अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में मदद करने की कोशिश करने लगे। गाँव की बेटी और वह मिलुन ! यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी ! तब भी वे लोग किसी स्त्री को पुरुष से प्रेम करने से नहीं रोक पाये, हर कोई यह अच्छी तरह से जानता था, निनम को भी मनाना आसन नहीं था। वह अपनी इच्छा के अनुसार चलती थी, उसे जो काम करने को मना या उस पर पाबन्दी लगाई जाती वह वही काम करती थी। उसकी माँ उस दिन को कोस रही थी जब वह पैदा हुई थी और सोगोङ को भी शराबी होने पर कोस रही थी और अंततः हर कोई एक दूसरे को इतना कोस रहे थे कि जो कोसने की असल वजह थी उसे हर कोई थोड़ी देर के लिए भूल ही गया था।

एक सुबह जब धुंधले से आसमान में पहाड़ों की सीमा साफ दिख रही थी, डेविड प्रातः काल ही चला गया था। निनम उसके पास तभी आ गई थी जब अभी अंधेरा था। डेविड की गाड़ी अब तक तेल डिपो से वापस नहीं लौटी थी और वे दोनों घर में अकेले थे। निनम ने उसके चेहरे को देखा, वह खामोश और शांत था। वह भी इंतजार कर रहा था, उस अनिश्चय में उसके बड़े-बड़े हाथ बंद मुट्ठियों में इस तरह जकड़े हुए कुर्सी पर थे मानो उसके सारे शरीर का वजन उन्हीं पर था। आज प्यार ही उनके लिए सबसे बड़ा कठिन लक्ष्य था। निनम ने उसकी उद्विग्नता और बेबसी को भांप लिया था, और जब डेविड ने याचना तथा समर्पण सहित उससे नजरें मिलाने की कोशिश की तो उसने अपनी नजरें झुका लीं।

एक दिन राकुट के पिता ने बूढ़े सोगोङ को उसके लाल कोट और उसके डंडे के साथ हड़बड़ी में मिगोम के आफिस की ओर जाते देखा गया था। बड़े साहब अच्छे इनसान थे। वे बूढ़े आदमी थे। देश की कई जन-जातियों के साथ समझौता करने का उसे कई सालों का तजुरबा था। वह स्थानीय भाषा बोलता था और उसने तुरंत सोगोङ को बुलाया। 'आ जाओ, अन्दर आ जाओ ! अरे, सोगोङ कैसे हो ? चलो हम थोड़ी चाय पीते हैं, आईए पीयें?'

'यहाँ के लोग कुछ अलग है। हाँ, ये लोग आसानी से बदलने वाले नहीं हैं, मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ। तुम सावधान रहना।'

डेविड के चले जाने के बाद साहब अपनी कुर्सी पर देर तक बैठे रहे। वह अपनी पेंसिल से सामने पड़े कागज पर हलके से चोट कर रहा था। उसे यह अजीब सा प्रतीत हो रहा था कि इतनी जल्दी कितने सारे वर्ष बीत गए। वह इन पहाड़ों में 1932 से अपनी सेवायें दे रहा था और अब साल 1943 चल रहा था। वहाँ घर पर बड़ा युद्ध मुंह बाए खड़ा था, वापस जाने की जोरदार तैयारी चल रही थी और उसका असर दूर-दूर तक हो रहा था। संभवतः अब समय काफी तेजी से भाग रहा था, उसने पछताते हुए सोचा। कितने सारे सर्वेक्षण मिशनों का उसने नेतृत्व किया था, उन इलाकों को पहचान देने के लिए, अपनी लम्बी सेवा के दौरान अभी यहाँ था, वह जवान दिलों की अजीब सी चाह के बारे में सोच रहा था। हे भगवान! अब समय हो गया है इंग्लैंड वापस लौटने का और यहाँ एक ऐसा अफसर भी है जो अलग दिशा में किसी बेवकूफ सा प्यार के मिशन में तैर रहा है। वह उस लड़के को पसंद करता था, पर वह बेवकूफ था। मुझे पता है कि डेविड की पोस्टिंग का फरमान निकल चुका था और यदि वह कुछ खास नहीं करता तो वह जल्द ही यहाँ से चला जायेगा, उसने सोचा।

एक साल बीतने से पहले ही यह खबर चारों ओर फैल गई थी कि अंग्रेज अधिकारी लोग जल्द ही यहाँ से जाने वाले हैं। देश के बाकि हिस्सों से उनके कई सारे दोस्त और रिश्तेदार अब तक जा चुके थे। बड़े साहिब से पहले वह अफसर डेविड चला जाएगा। यासाम और नयाङ ही थीं जिन्होंने सबसे पहले यह सूचना निनम को दी थी। वे दोनों उसके संयम को देखकर अश्चर्यचकित रह गई थीं।

'हाँ, मुझे पता है। चिंता मत करो, में कहीं गायब नहीं हो जाऊँगी! में उसके साथ कैसे जा सकती हूँ ?'

यासाम और नयाङ ने अब सुकून की साँस ली। वे इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकती थी कि निनम उनसे दूर कही चली जायेगी। कितनी बार उन लोगों ने इस बात को लेकर चर्चा की थी और जब डेविड उसे कहीं दूर ले जाएगा और वे लोग एक-दूसरे को दोबारा कभी देख नहीं पाएंगी और इतनी सी बात सोचते ही वे रोने लग जाती थीं। वे सहेलियाँ अब बड़ी हो गई थीं और एक-दूसरे को समझती थीं। वे दोनों जानती थीं कि निनम केवल अपना दिल कमजोर न होने का परिचय दे रही थी, वास्तविकता कुछ अलग ही थी। परन्तु यह कुछ ऐसा था कि जिस पर सहेलियों के बीच भी चर्चा नहीं की जा सकती थी।

एक सुबह जब धुंधले से आसमान में पहाड़ों की सीमा साफ दिख रही थी, डेविड प्रातः काल ही चला गया था। निनम उसके पास तभी आ गई थी जब अभी अंधेरा था। डेविड की गाड़ी अब तक तेल डिपो से वापस नहीं लौटी थी और वे दोनों घर में अकेले थे। निनम ने उसके चेहरे को देखा, वह खामोश और शांत था। वह भी इंतजार कर रहा था, उस अनिश्चय में उसके बड़े-बड़े हाथ बंद मुट्ठियों में इस तरह जकड़े हुए कुर्सी पर थे मानो उसके सारे शरीर का वजन उन्हीं पर था। आज प्यार ही उनके लिए सबसे बड़ा कठिन लक्ष्य था। निनम ने उसकी उद्विग्नता और बेबसी को भांप लिया था, और जब डेविड ने याचना तथा समर्पण सहित उससे नजरें मिलाने की कोशिश की तो उसने अपनी नजरें झुका लीं।

'निनम ! निनम........' उसके शब्द चीख की तरह मुंह से निकल रहे थे, जैसे वह डर रहा हो कि कहीं वह कमजोर न पड़ जाए, निनम जल्दी से उठी और उसे कुछ और कहने से रोकते हुए अपने हाथों को उसके चेहरे पर रख दिया। उसने उसे अपनी ओर खींच लिया था। निनम ने धीरे से उससे कुछ फुसफुसाकर कहा था। वह रो रहा था। निनम ने उसे जोर से अपने पास कर लिया था। वह धीरे से कुछ कहने लगी, वह चाहती थी कि वह उसकी बातों को समझ जाए। वह उसे जीतते देखना चाहती थी, इसलिए वह शुभकामनायें दे रही है, उसने कहा था। वह उसे यह समझाना चाहती थी कि जब तक मैं तुम से बहुत प्यार करती हूँ कोई तकलीफ तुम तक नहीं पहुँच सकती, और उसका प्यार रोशनी के लच्छों की तरह पहाड़ों की चोटियों के उस पार भी उसके साथ होगा।

इसके बाद उसके पास कहने को कुछ नहीं बचा था। वह घर खाली और शांत था, वहां कोई नहीं था, सिवा उन लोगों के जो बाहर दरवाजे पर इंतजार कर रहे थे, जो अपने पैरों से जमीन को खरोंच रहे थे, और इंतजार कर रहे थे कि वे उसे नौका (फेरी) तक सुरक्षित पहुंचा आयें।

वह घबराहट में जल्दी-जल्दी चला गया था, एक नौजवान अफसर अपने कपड़े के बैग को पकड़े गाड़ी की अगली सीट पर बैठकर, जिसका इंजन चालू हो गया था और उसके आगे बढ़ते हुए वह शायद किसी शून्य में देख रहा था।

कस्बे के गोल बाजार से जब निनम ने जब धूल के बादलों का गुब्बार उड़ते देखा तब उसे एहसास हुआ कि वह बहुत ही दुखी है। उसने अपने हाथों से अपने चेहरे को ढक लिया और रोने लगी। ' ओह ! वह चला गया ! क्या हम फिर कभी एक-दूसरे को देख नहीं पायेंगे ! मैं क्या करूँ? मैं क्या करूँगी !'

ऐसा कहना मुश्किल था कि भविष्य के लिए डेविड और निनम ने कुछ सोचा था या नहीं और उसके जाने से पहले उसने उसके पिता से क्या कहा होगा। इन सब के अलावा डेविड का उस बूढ़े व्यक्ति के साथ हमेशा दोस्ताना व्यवहार रहा था। और जब उसे उस जगह की कोई जानकारी प्राप्त करनी होती थी या गाँवों की सीमाओं के बारे में सूचना प्राप्त करनी होती थी तो वह कितनी ही बार उससे मिलने आता। उनके साथ बेशक वह टूटी-फूटी भाषा में बातें करता था परन्तु संकेत स्पष्ट होते थे।

सारा देश बदल रहा था। अंग्रेज सरकार से सत्ता की लगाम वापस लेने के लिए सभी जी-तोड़ प्रयास कर रहे थे। नए अफसर आये और बड़े साहब भी जल्द ही चले जाने वाले थे। गाँवों के सारे मुखिया निरंतर आने और जाने वालों के लिए इंतजाम में काफी व्यस्त थे। इस बदलते वक्त में निनम अपनी पुरानी जिन्दगी में वापस लौट आई थी और चुपचाप घर के कामों में व्यस्त हो गई थी। उसकी माँ खामोशी में उसके दुख को बाँटती। उसके पिता की लापरवाह पर चुलबुल हरकतें उसको छू लेती थीं। इन दिनों वह और अधिक पिया करते थे और उनकी आँखें अधिक प्रौढ़ और थकी हुई दिखती थीं। वह बहुत कुछ कहना चाहती थीं किन्तु उसकी अपनी ही अच्छाई से उसकी आत्मा कमजोर पड़ गई थी, फिर भी वह किसी बहाने से अपने मनोभाव प्रकट करने को कोशिश करती। वह ऐसी दिखती थी जैसे उसे कोई डर और चिंता छू नहीं सकती क्योंकि उसने अपने डर के दर्द और तकलीफ को जीत लिया था। जब उसकी सहेली नयाङ कि शादी हुई थी तब उसने खुशी मनायी और फिर जब एक दिन उसने एक बेटे को जन्म दिया था तब उसे और प्रसन्नता हुई। यासाम की भी शादी तय हो गई थी और इस तरह जिन्दगी आगे बढ़ने लगी थी। पूरब में युद्ध समाप्त हो चुका था और युद्ध की बहुत सारी असाधारण घटनाओं की कहानियों के साथ होक्जो तथा राकुट के पिता भी युद्ध से वापस लौट आये थे। वे बताते थे कि कैसे उन लोगों ने उन मिलुन लोगों के साथ मिलकर जापानी फौजियों को पहाड़ों पर चढ़ने और उनके गाँवों में प्रवेश करने से रोका था। उनके पास सुनाने के लिए ऐसी अनेको कथाएं थीं। पुरूष और महिलाएँ टाँगें पसारे चूल्हे के पास बैठे अपनी उम्मीदों और चिन्ताओं के बारे में बातें करते।

रात में गाँव के ऊपर दूर आसमान तारों से भरा था और निनम हर रात अपने आप से कहती, 'प्यार में कोई मरता नहीं है। मैंने उससे प्यार किया, और मैं उसमें खुश हूँ जो मेरे पास है।'

(इति)

इग्नू, नई दिल्ली,
मो. 0 96541 77491

कविता

समानता

एल. आर. शर्मा

मुझे समानता का पाठ पढ़ा कर
खो गए तुम दुनिया की भीड़ में
मैं उस पाठ को गले लगाए हुए
घूमता रहा, शहर की गलियों में, बाज़ारों में
बड़े दफ्तरों में, मंत्री के बंगलों में
जज के चैंबर में, भगवान के मंदिर में
पर समानता मुझे कहीं नज़र नहीं आई।

तब किसी विद्वान ने बताया -
कि समानता गांवों में बसती है
मैं एक गांव में गया, एक पंचायत घर में
प्रधान ने मेरी फटी चप्पल को देखा
मेरे कपड़ों पर नज़र घुमाई
फिर बाहर बेंच पर बैठने को कहा।

लोग आते, प्रधान से मिलते और चले जाते
मैं बैठा रहा
और इस तरह सूरज ढल गया
चौकीदार आ पहुंचा, उसने पूछा -
'क्या चाहते हो'
मैंने कहा - समानता अर्थात बराबरी को ढूंढने आया हूं
'कितना पढ़े हो' उसने पूछा
'दस पास हूं' मैं बोला
'ऊंह, पहले चौकीदार बनके तो दिखाओ
फिर समानता ढूंढना'
मैं उठा, और गांधी जी की मूर्ति के नीचे सो गया
युग बीत गए हैं शायद
अभी तक मैं वहीं सोया पड़ा हूं।

42/5, हरिपुर, सुंदरनगर, जिला मंडी,
हिमाचल प्रदेश-175 018, मो. 0 94181 00983

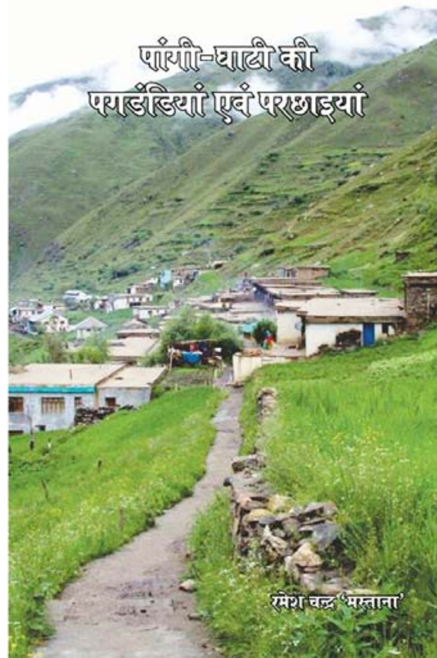
समीक्षा

जनजातीय जीवन शैली की झलक
'पांगी-घाटी की पगडंडियां एवं परछाइयां'

◆ कृष्ण वीर सिंह सिकरवार

पहाड़ों के प्रेमी तथा लोक संस्कृति के विद्वान चिंतक श्री रमेश चन्द्र 'मस्ताना' की सद्यः प्रकाशित कृति का शीर्षक 'पाँगी-घाटी की पगडंडियाँ एवं परछाइयाँ' (जनजातीय जीवन शैली की एक झलक) है जो अभी हाल ही में प्रिय प्रकाशन, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश से प्रकाशित हुई है। श्री मस्ताना विशुद्ध रूप से साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले साहित्यकार हैं। उनका हिंदी साहित्य के प्रति अगाध प्रेम व समर्पण प्रस्तुत कृति में दिखाई देता है। उनकी भाषा सहज, सरल व बोधगम्य है जो पाठकों को बाँधने पर मजबूर करती है व पाठक भी उनकी रचना को पढ़ते समय ऊबता नहीं है।

श्री मस्ताना जी प्राध्यापन-व्यवसाय के साथ-साथ साहित्य-लेखन और यायावरी का शौक भी रखने वाले हैं। इन्होंने अब तक जनजातीय-कबायली क्षेत्र पांगी-घाटी के अतिरिक्त अन्य कई दुर्गम क्षेत्रों की यात्राएं भी अपने साहित्यिक मित्र प्रभात शर्मा के साथ की हैं। प्रभात शर्मा ने अपने जीवन के दस वर्ष सेवाकाल के रूप में विभिन्न पदों पर पांगी-घाटी में व्यतीत किए हैं, इसलिए पंगवाला एवं भोट समुदाय के लोग प्रभात शर्मा को घर का ही आदमी मानते हैं और वे समस्त जनजातीय घाटी में अभूतपूर्व रूप से लोकप्रिय भी हैं। इन्हीं भावनाओं से प्रभावित होकर मस्ताना जी ने भी पांगी के पंगवालों और भोटों से आत्मीय संबन्ध बनाया है और पुस्तक को भी उन्हें ही समर्पित करते हुए लिखा है कि - 'पाँगी-घाटी की पगडंडियाँ एवं परछाइयाँ' एक दुर्गम एवं दूरस्थ जनजातीय कबायली क्षेत्र पर लिखी गयी अभूतपूर्व महत्वपूर्ण रचना है। लेखक ने पुस्तक में जिस सूक्ष्मता के साथ पाँगी-घाटी के प्राकृतिक सौंदर्य एवं वहाँ के रीति-रिवाजों का जो वर्णन किया है वह उनके पहाड़ों के प्रति अगाध श्रद्धा एवं समर्पणता को दर्शाता है। लेखक द्वारा पुस्तक में प्रस्तुत जानकारी को इकट्ठा करने के लिए कितना परिश्रम किया होगा यह केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है, क्योंकि पहाड़ों की यात्रा करना व प्राकृतिक सौंदर्य की जानकारियाँ इकट्ठा करना बेहद ही दुष्कर कार्य है।



पहाड़ों के दुर्गम रास्ते व भौगोलिक परिस्थितियाँ आपकी कदम-कदम पर विभिन्न प्रकार की परीक्षा लेती है, तथा प्राकृतिक आपदाएँ कभी भी किसी के साथ घटित हो सकती है इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता। इन सबके बावजूद लेखक ने अपने घुमक्कड़ी जीवन के कारण पाठकों को जो सौगात दी है वह अद्‌भुत होने के साथ-साथ रोमांचक भी है। कहा जा सकता है कि लेखक ने पाँगी-घाटी के अलौकिक जन-जीवन का कोई भी पहलू अनछुआ नहीं छोड़ा है।

प्रस्तुत पुस्तक को 14 महत्वपूर्ण अध्यायों में बाँटा गया है, यह अध्याय इस प्रकार है :- 'एक विचार बिंदु', 'पाँगी-घाटी तथा पंगवाला व भोट संस्कृति', 'पाँगी-घाटी का सामाजिक जनजीवन', 'भोट संस्कृति की प्रतीक : पाँगी की पाँच भटौरिया (सुराल भटौरी, हुडान भटौरी, परमार भटौरी, हिलु-टुआन भटौरी, चस्क भटौरी आदि) 'पाँगी-घाटी : राजनैतिक एवं प्रशासनिक पृष्ठभूमि', 'पाँगी-घाटी की धार्मिक आस्थाएँ', 'पाँगी-घाटी का मनमोहक फुल्लजाच एवं जुकारू उत्सव', 'पाँगी-घाटी कैमरे की

नजर से', 'पाँगी-घाटी की अनूठी प्रजा-प्रणाली', 'पाँगी-घाटी का अद्‌भुत पेय-पदार्थ : अराख अथवा पातरू', 'पाँगी-घाटी की विभिन्न समस्याएँ' 'पाँगी-घाटी में पर्यटन की सम्भावनाएँ', 'कुछ सुखद एवं सहज अनूभुतियाँ', 'पाँगी-घाटी की समस्याएँ एवं निदान के सुझाव' आदि।

उपरोक्त अध्यायों के शीर्षक देखकर सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि लेखक ने पाँगी-घाटी की संस्कृति के साथ-साथ वहाँ की धार्मिक आस्थाओं, लोक-उत्सवों, प्रजा-प्रणाली, पर्यटन की अपार संभावनाओं आदि को रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है। लोक संस्कृति की धारा सम्पूर्ण पुस्तक में अनवरत् बहती रहती है।

लेखक ने पुस्तक में कैमरे की नजर से देखते हुए लगभग 16 पृष्ठों के 32 कलर फोटोग्राफ्स को भी स्थान दिया है जो पाँगी-घाटी की अद्‌भुत छटा को बिखेरता है।

लोक संस्कृति के तत्व-चिंतक के रूप में तथा दुर्गम वादियों-घाटियों को नजदीक से निहारकर उन्हें साहित्यिक दृष्टिकोण के साथ पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करने के लिए श्री रमेश चन्द्र 'मस्ताना' का यह प्रयास निश्चित् ही सराहनीय है।

पुस्तक में संकलित धार्मिक रीति-रिवाजों, ग्राम्य जीवन की दैनिक चर्चाएँ, उत्सवों-आयोजनों आदि का वर्णन निश्चित् रूप से पाठकों को रुचिकर व ज्ञानवर्धक लगेगा।

कहा जा सकता है कि लोक जीवन में रुचि रखने वाले पाठकों व चिंतकों तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक परीक्षाओं की तैयारी कर रहे छात्रों के लिए प्रस्तुत पुस्तक उपयोगी साबित होगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। भविष्य में भी ऐसे प्रयास लेखक द्वारा निरन्तर जारी रहेंगे, मैं ऐसी उनसे उम्मीद करता हूँ।

आवास क्रमांक एच-3,
राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
एयरपोर्ट वायपास रोड, भोपाल, मध्य प्रदेश-462033
मो : 098265 83363

पुस्तक का नाम : पाँगी-घाटी की पगडंडियाँ एवं परछाइयाँ (जनजातीय जीवन शैली की एक झलक)

लेखक : श्री रमेशचन्द्र 'मस्ताना'

प्रकाशक : प्रिय प्रकाशन, मस्त कुटीर, नेरटी, पत्रालय नेरटी द्वारा रैत, तहसील : शाहपुर (कांगड़ा), हिमाचल प्रदेश-176208

मूल्य : 750/- रुपये (सजिल्द संस्करण)

पृष्ठ संख्या : 231

कविता

'स्वच्छता'

बलवीर चंद उप्पल

सागर मन्थन में प्रगट हुई,
मातृ भूमि मां भारती ।
विष्णु, पत्नी दुनिया जाने,
घर-घर में गूंजे आरती ।
अन्न जल देवे हर सुख देवे,
भारत मां हमको पालती ।
देव भूमि भारत भूमि,
बड़े चाव से हमें निहारती ।
जो मां हमको इतना सब दे,
उसको हमसे कुछ आशा है ।
हम गन्द कूड़ा दें बदले में,
क्या प्यार की यह परिभाषा है ?
गन्दगी न हो न झूठ रहे,
यह पाप है घोर निराशा है ।
स्वच्छता श्रृंगार बने मेरा,
भारत भू की अभिलाषा है ।
शुभ-विचार मन की स्वच्छता,
तन की स्वच्छता शुभ कर्म करे।
प्रिय वचन स्वच्छता वाणी की,
हो सत्यावादी मीठा उच्चरे ।
गली आंगन घर को साफ रखे ।
बीमारी न हो गन्दगी से डरे ।
कूड़ा न फैंके इधर-उधर,
स्वच्छता, स्वच्छता पर ध्यान धरे ।
आओ मां का सन्देश सुनो,
भारत मां हम से कहती है ।
शुभ-कर्म करो सतकर्म करो,
स्वच्छता इनमें ही रहती है ।
उज्ज्वल आचरण हो लालों का
मां जिनके लिए दुःख सहती है ।
स्वच्छता उद्‌घोष हो जन-जन का,
जिस देश में गंगा बहती है ।

अभिकल्प निदेशालय, बीबीएमबी,
नंगल, पंजाब-140124, मो. 0 94172 02061

आखिरी पन्ना

सावन का इंतजार

◆ विनोद

जून माह की गर्मी से तपते पहाड़ों को राहत के लिए हर व्यक्ति को दक्षिण पश्चिम मानसून के आगमन का बेसब्री से इंतजार रहता है। दूर दक्षिण से हवाएं बादलों को लेकर आएंगी और वर्षा ऋतु का आगाज होगा। वर्षा की बूंदों से धरती खिल उठेगी। पहाड़ों से टकराकर बादल अठखेलियां करेंगे। सावन में झूले लगेंगे। इस वर्ष मानसून की अपनी निर्धारित तिथि से एक सप्ताह पहले आने का अनुमान है। यह एक सुखद अनुभूति है। क्योंकि पिछले वर्ष सर्द ऋतु में पहाड़ों पर बर्फ के कम पड़ने से नदियों, नालों, बावड़ियों में जल की कमी हुई है। अधिकांश जलस्रोत सूख गए हैं। इसका प्रभाव पेयजल आपूर्ति तथा फसलों की पैदावार पर भी पड़ा है। हर व्यक्ति को अब वर्षा ऋतु का इंतजार है। किसान अंबर की ओर देखकर मानसून का बेसब्री इंतजार कर रहा है। मानव तो बोल सकता है लेकिन पशु-पक्षी, वनस्पति, पेड़-पौधे तो बस मौन रहकर वर्षा की बूंदों का इंतजार करते हैं। पर्यावरण संरक्षण दिवस भी हम सभी इस वर्ष 5 जून को मना चुके हैं। हम सभी ने नए-नए संकल्प लिए हैं। हिमाचल सरकार ने भी पर्यावरण संरक्षण के लिए थर्मोकोल की प्लेटों तथा कपों के प्रचलन पर प्रतिबंध लगाया है। इसके अलावा 15 लाख नए पौधे लगाने का संकल्प भी लिया है।

जीवन की सबसे बुनियादी जरूरतों में जल व स्वच्छ वायु है। जल पहले आसानी से उपलब्ध था, अब इसके लिए तरसना पड़ रहा है। ऐसे ही वायु पहले शुद्ध थी, अब शुद्ध हवा के लिए नीतियां व कार्यक्रम बनाने पड़ रहे हैं। पृथ्वी पर 71 प्रतिशत जल है लेकिन शुद्ध जल महज 2.5 प्रतिशत है। हमारे इस्तेमाल के लिए महज 0.03 प्रतिशत सतह पर है। बढ़ती आबादी, घटते वनों से नदियां तथा वायुमंडल प्रदूषित हुआ है। कार्बन उत्सर्जन से वातावरण में जहरीली गैसों की प्रतिशतता में वृद्धि दर्ज हुई है। पृथ्वी का लगभग 30 प्रतिशत भाग वनाच्छादित है लेकिन जिस गति से इसका दोहन हो रहा है, इससे इनका खत्म होना निश्चित ही है। प्रकृति में हुए बदलाव से तेजी से तापमान में बढ़ोतरी हो रही है, मौसम का चक्र बिगड़ा है, समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा है। यह चेतावनी प्रकृति की है।



एक संकल्प लेकर एक पौधा लगाएं। पौधा रोपे नहीं, बल्कि उसके बड़ा होने तक उसके पालन, देखरेख की जिम्मेदारी समझें। मत्स्य पुराण में उद्धृत है – दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक संतान तथा दस संतानों के बराबर एक वृक्ष होता है। प्रकृति हम सभी को अपना दायित्व निभाने का मौन संदेश दे रही है। इस संदेश को हमें आत्मसात करना ही होगा।

शिमला में मई-जून माह में हुए जल संकट से एक ओर चेतावनी आई है कि हम सभी को पर्यावरण प्रहरी की भूमिका निभानी होगी। जब यह पत्रिका आपके हाथ में होगी तो मानसून की बारिश से धरती पर हरियाली छाई होगी। आप भी बस एक संकल्प लेकर एक पौधा लगाएं। पौधा रोपे नहीं, बल्कि उसके बड़ा होने तक उसके पालन, देखरेख की जिम्मेदारी समझें।

मत्स्य पुराण में उद्धृत है - दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक संतान तथा दस संतानों के बराबर एक वृक्ष होता है।

प्रकृति हम सभी को अपना दायित्व निभाने का मौन संदेश दे रही है। इस संदेश को हमें आत्मसात करना ही होगा।

◆◆◆



विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर शिमला में 'प्रदूषण उपशमन पौध अभियान' 'पापा' का शुभारंभ करते हुए



हर घर में रसोई गैस सुनिश्चित बनाने के लिए मुख्यमंत्री 'हिमाचल गृहिणी सुविधा योजना' के दस्तावेज जारी करते हुए

पंजीकरण संख्या : 845/1957 जून, 2018 एच.पी./79 एस.एम.एल. 2015–17



किन्नौर जनपद की खूबसूरत झील : नाको

अनुपम कश्यप, निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित तथा यश पाल शर्मा, नियंत्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग द्वारा हिमाचल प्रदेश सरकार के लिए राजकीय प्रेस, शिमला–171005 से मुद्रित करवाकर शिमला से प्रकाशित। सम्पादक वेद प्रकाश।

ISSN 2454-972X

हिमप्रस्थ

जुलाई, 2018





मुख्य मंत्री श्री जय राम ठाकुर सिरमौर जिले के राजगढ़ में राज्य स्तरीय वन महोत्सव कार्यक्रम का शुभारंभ करते हुए

ISSN : 2454-972X

हिमप्रस्थ

वर्ष : 63 जुलाई 2018 अंक : 4

प्रधान सम्पादक
अनुपम कश्यप

वरिष्ठ सम्पादक
विनोद भारद्वाज

सम्पादक
वेद प्रकाश

सहायक सम्पादक
सतपाल

उप सम्पादक
योगराज शर्मा

कम्पोजिंग एवं पृष्ठ सज्जा : अश्वनी

सम्पादकीय कार्यालय: हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्क : 150 रुपये, एक प्रति : 15 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374
Website: himachalpr.gov.in/himprastha.asp

ज्ञान सागर

धर्म के कई द्वार हैं, संतजन उन मार्गों या रास्तों की बात करते हैं जो उन्हें मालूम होता है लेकिन सभी मार्गों का आधार आत्मसंयम है।

– भीष्म पितामह

इस अंक में

लेख

- सावन की फव्वारों में मिंजर की धूम — कपिल मेहरा — 3
- गुलेरी जी की कहानियों में लोक जीवन — विजय कुमार पुरी — 7
- जीवन वल्लरी का सुधारस : वफ़ा — डॉ. कन्हैयालाल राजपुरोहित — 10
- हिमाचल की लोक कलाओं को मिला आश्रय — जोगिंद्र सिंह — 14
- याद आए बचपन के खेल — पवन चौहान — 17
- एक यादगार यात्रा आस्था व प्रकृति का अभिनव मिलन — विनोद भारद्वाज — 23

कहानी

- आज का महाभारत — श्याम सिंह घुना — 29
- नदी के लुटेरे — संदीप शर्मा — 33
- परिस्थितियों के दाव-पेंच — रोशन लाल पराशर — 39

लघुकथा/बोध कथा

- स्वाद — पंकज शर्मा — 22
- सफाई — नफे सिंह कादयान — 32
- समय का चक्र — राजेंद्र परदेसी — 41

कविता/ग़ज़ल

- शब्द-चित्र — राजेंद्र निशेश — 38
- शबनम शर्मा की कविताएं — 42
- वन महोत्सव — रत्न चंद निर्झर — 43
- तोहफे — हरीश कुमार 'अमित' — 43
- चाय और रिश्ते — सीता राम गुप्ता — 44
- संजय वर्मा 'दृष्टि' की कविताएं — 47

समीक्षा

- पठनीय और संग्रहणीय लघुकथाएं — डॉ. अशोक भाटिया — 45

आखिरी पन्ना

- अंधेरी गुफा व महात्मा बुद्ध — विनोद — 48

अपनी बात

हरियाली धरा का शृंगार है, लेकिन वर्षा ऋतु इसकी सुंदरता में और भी चार चांद लगा देती है। सावन के महीने में आसमान में छाई घनघोर घटाओं से रिमझिम बरसती बारिश की बूंदें पूरे वातावरण को स्वच्छ एवं निर्मल बना देती हैं। प्रकृति का निखरा-निखरा रूप हर किसी को अपनी ओर आकर्षित करता है। नीले गगन में इंद्रधनुष के रूप में उभरी कुदरत की सतरंगी चित्रकारी जहां बाल मन को खुशी से उछल-कूद की जिद्द के लिए मजबूर करती है, वहीं कवि मन के लिए यह शब्द रूपी रचना बन जाती है। भारतीय संस्कृति में सावन के महीने को पवित्र माना जाता है जिसका हर दिन धार्मिक दृष्टि से बेहद महत्त्वपूर्ण होता है। इसकी प्रत्येक तिथि व्रत, त्योहार और पूजा-पाठ के लिए समर्पित होती है। हिंदू मान्यताओं के अनुसार वर्ष के सभी महीनों को किसी-न-किसी देवता या ईश्वरीय महत्त्व के साथ जोड़ा गया है और श्रावण माह तो भगवान शिव के लिए समर्पित है। जिस प्रकार प्रकृति, ग्रीष्म ऋतु की तपिश को सहती हुई सावन की बौछारों से अपनी प्यास तृप्त करती है, उसी प्रकार सृष्टि के समस्त प्राणियों की इच्छाओं और जीवन में आए सूनेपन को दूर करने के लिए यह मास भक्ति और इच्छापूर्ति का अनूठा संगम बनाता है। वर्षा ऋतु के विस्तृत महत्त्व की बात करें तो बरसात के इस मौसम में फसलों के लिए न केवल पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध होता है, बल्कि ग्रीष्म ऋतु की तपती धूप से सूख चुके कुएं, तालाब व नदी-नाले भी फिर से लबालब हो जाते हैं। मृतप्राय वनस्पति वर्षा का सान्निध्य पाकर पुनः जीवित हो उठती है। चहुं ओर हरियाली का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। खेत-खलिहानों में लहलहाती फसल को देखकर किसान गर्व से फूला नहीं समाता और कुदरत के इस खजाने को अपने पास पाकर ग्राम्य परिवेश प्रफुल्लित हो उठता है। सावन के महीने में झूलों पर झूलती युवतियों के गुनगुनाने की मधुर ध्वनि प्रकृति के संगीत को और भी सुरीला बना देती है। इस पावन महीने के दौरान देशभर में हरियाली तीज, नाग पंचमी और रक्षा बंधन जैसे त्योहार हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते हैं। हिमाचल में सावन में मनाए जाने वाले त्योहारों में चंबा का मिंजर मेला मुख्य रूप से शामिल है। चंबा शहर के ऐतिहासिक चौगान में आयोजित होने वाला मिंजर मेला हर वर्ष सावन महीने की संक्रांति के दूसरे रविवार से प्रारंभ होकर सप्ताह भर चलता है। इस मेले में क्षेत्र के हजारों निवासी शिरकत करते हैं। शोभा यात्रा मेले का मुख्य आकर्षण रहती है। पारंपरिक वेश-भूषा में सुसज्जित स्थानीय लोगों के साथ-साथ मेले में देश-विदेश से बड़ी संख्या में श्रद्धालु भी सम्मिलित होते हैं। मेले के दौरान जिले में पैदा होने वाली फल-सब्जियों के साथ-साथ चंबा की पहचान चंबा रूमाल, चंबा चप्पल तथा गर्म कपड़ों का भी खूब कारोबार होता है। देश-विदेश से आए लोग चंबा रूमाल, चंबा चप्पल व अन्य स्थानीय उत्पादों की खरीददारी करते हैं। मिंजर मेले में सांस्कृतिक आयोजनों एवं विकासात्मक प्रदर्शनियों के माध्यम से लोगों को एक मंच पर समूचे प्रदेश की विशेष समृद्ध संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। पत्रिका का यह अंक नियमित सामग्री के अलावा चंबा मिंजर मेला व वर्ष ऋतु के पावन महीने सावन पर विशेष लेखों के साथ आपके समक्ष प्रस्तुत है।

संपादक

मेरे चंबे दी मिंजर मशहूर

सावन की फव्वारों में मिंजर की धूम

◆ कपिल मेहरा

देवी-देवताओं की भूमि हिमाचल प्रदेश में यूं तो कई रीति-रिवाज, मेले और त्योहार मनाए जाते हैं। लेकिन, अगर चंबा जिले की बात की जाए तो यहां सावन के महीने में मनाए जाने वाले मेलों में मिंजर मेले का नाम सबसे पहले लिया जाता है क्योंकि इसकी ऐतिहासिक महत्ता के कारण इसे अंतर्राष्ट्रीय दर्जा प्रदान किया गया है। चंबा के चौगान में लगने वाला यह मेला सावन की संक्रांति के दूसरे रविवार को शुरू होता है और एक सप्ताह यानि तीसरे हफ्ते तक चलता है। मेले के दौरान रघुवीर जी के साथ करीब 200 देवी-देवता इसमें शिरकत करते हैं। इस बार यह मेला 29 जुलाई से 5 अगस्त तक चलेगा।

मेले के इतिहास और शुरुआत के संदर्भ में विभिन्न मान्यताएं और दंतकथाएं प्रचलित हैं। इतिहास में उल्लेख मिलता है कि चंबा में मिंजर मेले की शुरुआत दसवीं शताब्दी के दौरान तत्कालीन राजा साहिल वर्मन की ओर से की गई थी। साहिल वर्मन ने 920 ई. में रावी नदी के किनारे चंबा शहर की स्थापना की। बताया जाता है कि साहिल वर्मन के 10 पुत्र और एक बेटी थी, जिसका नाम चंपावती था। बेटी चंपावती के नाम पर ही राजा साहिल वर्मन ने चंबा शहर का नाम रखा। इससे पहले इस रियासत की राजधानी ब्रह्मपुर यानि भरमौर थी और राजा साहिल वर्मन इसे चंबा ले आया।

जहां पर वर्तमान में चंबा का चौगान स्थित है, वहां से रावी नदी का बहाव हुआ करता था। रावी नदी के एक तरफ चंपावती का मंदिर और दूसरे किनारे पर हरिराय मंदिर हुआ करता था। चंपावती के मंदिर में पूजा-अर्चना करने वाला साधु रोजाना हरिराय मंदिर में भी जाकर आराधना किया करता था। कई बार नदी में पानी का बहाव तेज होने के कारण लोग चंपावती मंदिर से हरिराय मंदिर में माथा टेकने से वंचित रह जाते थे और राजा साहिल वर्मन भी इस बात से परिचित थे। एक दिन उन्होंने चंपावती के मंदिर में रहने वाले साधु से कुछ ऐसा करने को कहा कि लोगों को चंपावती और हरिराय मंदिर जाने में आसानी रहे। राजा के कहने पर साधु ने लोगों एवं श्रद्धालुओं को एकत्रित करके एक यज्ञ का आयोजन किया, जो सात दिन तक चला। कहा जाता है कि यज्ञ में सात रंगों के धागों से एक डोरी बनाई गई, जिसे मिंजर का नाम दिया गया। यज्ञ के अंतिम दिन पूर्णाहुति के दौरान स्वतः ही रावी नदी का झुकाव दूसरी ओर मुड़ गया। इसके बाद लोग आसानी से चंपावती मंदिर के साथ हरिराय मंदिर में भी पहुंचने लगे। बताया जाता है कि यही सात दिवसीय यज्ञ, बाद में मेले के रूप में तबदील हो गया। तभी से चंबा के चौगान में मिंजर मेले का आयोजन होता आ रहा है।


चंबा शहर का विहंगम दृश्य

सात दिन चलने वाले इस मेले के दौरान चौगान में खूब सजावट की जाती है और शाम के समय हिमाचली व अन्य कलाकार अपनी प्रस्तुति देकर लोगों का मन मोह लेते हैं। मेले के दौरान रघुनाथ और लक्ष्मी नारायण

मंदिर में भी पूजा-अर्चना के लिए लोगों की भीड़ उमड़ती है। आजादी के बाद मिंजर विसर्जन के दौरान सिर्फ रघुवीर जी की पालकी ही मिंजर यात्रा के साथ चलती थी। लेकिन, बाद में प्रशासन ने स्थानीय देवी-देवताओं को भी इस यात्रा में शामिल करने की मंजूरी दे दी। मिंजर की शोभायात्रा अंतिम दिन पूरे राजशाही अंदाज में निकाली जाती है और मिंजर को रावी नदी में प्रवाहित किया जाता है। स्थानीय लोग मक्की और धान की बालियों को मिंजर कहते हैं। मेले का शुभारंभ रघुनाथ जी और लक्ष्मी नारायण भगवान को धान और मक्की से बनी मिंजर और लाल कपड़े पर गोटा जड़े मिंजर के साथ, एक रूपया, नारियल और ऋतुफल अर्पित किए जाते हैं।

कुछ विचारकों का यह भी मानना है कि 1559 ई. में गणेश सिंह वर्मन की मौत के बाद प्रताप सिंह वर्मन चंबा का राजा बना। वे अकबर का समकालीन था। गौरतलब है कि राजा गणेश वर्मन ने ही सबसे पहले सिंह की पदवी का प्रयोग किया था। प्रताप सिंह वर्मन ने कांगड़ा के राजा चंद्रपाल को युद्ध में पराजित करके गुलेर रियासत को चंबा रियासत में मिला लिया था। जब राजा युद्ध में विजयी होकर अपने राज्य की सीमा भटियात में पहुंचे तो भटियात वासियों और चंबा के लोगों ने उन्हें मक्की के सिट्टे से बनी मिंजर भेंट की। इस दौरान लोगों ने उत्सव का आयोजन किया और राजा को जीत की बधाई दी और पकवान बनाकर बांटे। बताया जाता है कि इसी जीत की खुशी में लोगों ने हर साल मिंजर का त्योहार मनाने की परंपरा शुरू कर दी।

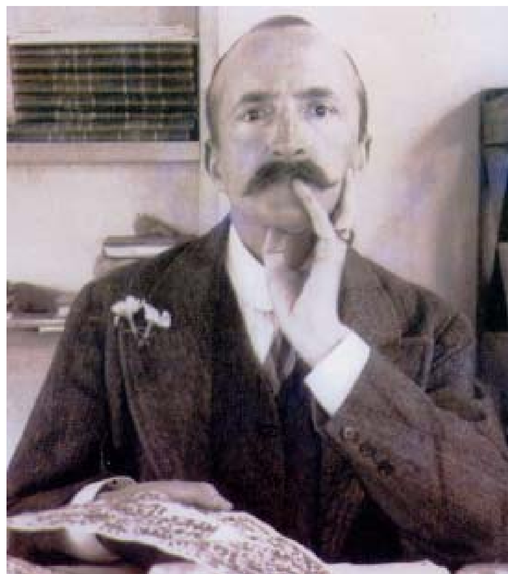
एक अन्य कथा के अनुसार करीब 17वीं शताब्दी में चंबा के राजा पृथ्वी सिंह दिल्ली दरबार गए थे। राजा पृथ्वी सिंह ने शाहजहां के शासनकाल में नौ बार दिल्ली की यात्रा की थी। जहां उन्हें शाहजहां की ओर से उपहार के रूप में रघुनाथ की प्रतिमा और मुस्लिम समुदाय के कुछ कारीगरों को भेंट किया गया। राजा इन कारीगरों को चंबा ले आए। जब राजा के स्वागत में चंबा में उत्सव हुआ तो मुस्लिम परिवारों ने रेशमी धागे से बनी मिंजर उन्हें भेंट की और तब से मिंजर की परंपरा शुरू हो गई इस मेले के पीछे दो समुदायों में एकजुटता की मिसाल भी कायम हुई। गौरतलब है कि देवताओं को अर्पित की जाने वाली मिंजर को चंबा में मुस्लिम समुदाय के लोग तैयार करते हैं। यह रीत ताजा नहीं, बल्कि वर्षो से चली आ रही है। पीढ़ी दर पीढ़ी चंबा में मिर्जा परिवार के सदस्य इस रीत को निभा रहे हैं। मक्की के सिट्टों अर्थात कौंपलों से प्रभावित होकर रेशम के धागे और मोतियों से पिरोई गई मिंजर तैयार की जाती है। जिसे सर्वप्रथम लक्ष्मी नाथ मंदिर और रघुनाथ मंदिर में चढ़ाया जाता है और इसी परंपरा के साथ मिंजर महोत्सव की शुरूआत की जाती है। रियासती काल के दौरान चंबा के तत्कालीन राजा के द्वारा मिंजर, मिठाई और मौसमी फल सर्वप्रथम रघुवीर मंदिर और लक्ष्मीनारायण मंदिर में चढ़ाए जाते थे। अब यह कार्य मिंजर मेला कमेटी एवं जिला प्रशासन के सौजन्य से होता है।

चंबा वासियों के अनुसार आजादी से पहले मेले के अंतिम दिन एक भैंसा भी रावी नदी में छोड़ा जाता था। उस समय मान्यता थी कि यदि रावी के पार पहुंच जाए तो चंबा नगर के सभी कष्ट


चंबा की शान : चंबा का चौगान

इतिहास के पन्नों से

जॉन फिलिप फोगल और चंबा



डचवासी जॉन फिलिप फोगल एक संस्कृतज्ञ के साथ-साथ पुरातत्त्वविद भी थे। फोगल ने 1899 से 1941 के मध्य पूरे भारत का भ्रमण किया। वह तब भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग में उत्तरी क्षेत्र के अधीक्षक पद पर कार्यरत थे। फोगल ने 8 अक्तूबर, 1899 को समुद्री जहाज से ब्रिंदसी, इटली से अपनी यात्रा आरंभ की। वे 20 अक्तूबर को बंबई पहुंचे। भारत में डच दूतावास ने फोगल की दिक्कतों को सुलझाया और उसके लिए गोविंद राधो नामक एक अच्छे नौकर की व्यवस्था की। फोगल ने एक साल तक भारत के विभिन्न शहरों, क्षेत्रों का दौरा किया और बाद में वे कोलंबो पहुंचे। इस दौरान वाराणसी में रहकर संस्कृत भाषा सीखी। वे इस दौरान लाहौर तथा श्रीनगर में भी रहे। वर्ष 1902 में जॉन मार्शल को पुरातत्त्व विभाग का नया महानिदेशक नियुक्त किया गया। फोगल तथा मार्शल ने संयुक्त रूप से कार्य किया। बाद में फोगल को अफगान सीमा पर 'ग्रीको-बुद्धिस्ट आर्ट' के प्रोजेक्ट का जिम्मा दिया गया।

फोगल ने 1904-1906 के दौरान बुद्ध के निर्वाण स्थल कुशीनगर की खुदाई की। अप्रैल 1910 से दिसंबर 1911 तक फोगल ने अस्थायी रूप से मार्शल के स्थान पर महानिदेशक का कार्य संभाला। मथुरा, लखनऊ, कलकत्ता व चंबा के संग्रहालयों के कैटालॉग तैयार किए और संग्रहालय को विस्तार देने तथा नए संग्रहालयों की स्थापना के लिए प्रयास किए। उन्होंने हिमालय की वादियों में अन्वेषण कार्य किए। जिनमें मंडी, कांगड़ा, कुल्लू और विशेषतया चंबा विशेष थे। अलैग्जेंडर कनिंघम की पुरातत्त्व संबंधी रिपोर्ट से प्रभावित होकर फोगल ने पंजाब के हिमालय क्षेत्र का व्यापक भ्रमण किया। यहां उन्होंने सामग्री का अध्ययन किया और कला वस्तुओं और शिला लेखों को संग्रहित किया। वर्ष 1911 में फोगल द्वारा 'एंटीक्वीटीज ऑफ चंबा स्टेट पार्ट-एक, दो पुस्तकें प्रकाशित कीं। चंबा फोगल के लिए आदर्श स्थल बना। यहां फोगल ने स्थानीय लोगों व रियासत को खुदाई के कार्य में शामिल किया। इन्हीं के मार्गदर्शन में 14 सितंबर, 1908 में तत्कालीन राजा भूरि सिंह ने संग्रहालय के निर्माण का निर्णय लिया। भूरि सिंह 1904 में चंबा का राजा बना था। चंबा के इतिहास में यह काल स्मरणीय है, जब यहां कला धरोहर की पहचान होने लगी और इसे सहेजने के प्रयास होने लगे। 2008 में भूरि सिंह संग्रहालय की शताब्दी का आयोजन हुआ तथा इससे दो वर्ष पूर्व चंबा शहर की स्थापना की सहस्राब्दी मनाई गई। यह संग्रहालय हिमाचल कला, संस्कृति, पुरातन धरोहर का खजाना है। इसकी दीर्घाओं व भंडार में पांच हजार से अधिक कलाकृतियां व पुरा वस्तुएं मौजूद हैं।

संदर्भ : विपाशा, हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग की द्वैमासिक पत्रिका, सोमसी, जुलाई-दिसंबर, 2005

खत्म हो जाएंगे। अगर भैंसा उसी तरफ वापिस आ जाता था तो उसे बुरा माना जाता था। लोगों की भीड़ दूरदराज के गांवों से मिंजर मेले के अंतिम दिन यात्रा को देखने के लिए आती थी। 1947 में इस प्रथा को समाप्त कर दिया गया और अब सिर्फ मिंजर का ही विसर्जन किया जाता है। अब भैंसे की जगह सांकेतिक रूप से नारियल की बलि दी जाती है। बताया जाता है कि उस समय पशु क्रूरता अधिनियम को लेकर सरकार सख्त हो गई थी और नदी में भैंसा छोड़ने की परंपरा को बंद कर दिया था। यह भी कहा जाता है कि 19वीं सदी में एक एक भैंसा रावी नदी को पार कर गया था। इसके बाद करीब 17 साल तक इस भैंसे को चंबा के राजमहल में शाही मेहमान के रूप में रखा गया। राजा ने उसकी देखभाल करने के लिए सेवादार भी नियुक्त किए थे। कहा जाता है कि इस भैंसे ने लगातार 17 बार रावी नदी को पार किया और बाद में राजमहल में ही उसकी मृत्यु हो गई थी।

मिंजर मेले में पहले दिन भगवान रघुवीर जी की रथ यात्रा निकलती है और इसे रस्सियों से खींचकर चंबा के चौगान तक लाया जाता है जहां से मेले का आगाज होता है। रघुवीर जी के साथ आसपास के 200 से ज्यादा देवी-देवता भी चौगान पहुंचते हैं।

कांगड़ा जनपद में भी मनाते हैं मिंजर

कांगड़ा जिले के कई गांवों में भी मिंजर का त्योहार अपने अलग अंदाज से मनाया जाता है। जिले के जवाली, भरमाड़, शाहपुर, कोटला, नूरपुर व सटे इलाकों में रंग-बिरंगे कपड़ों में धनिये के बीज बांधकर मिंजर बनाई जाती है। मिंजर पर्व पर इसे परिवार के सभी सदस्य गले में बांधते हैं और शाम के समय नजदीकी नदी में जाकर हलवा-पूड़ी व अन्य मिष्ठान के साथ मिंजर को धूप-दीप के साथ प्रवाहित किया जाता है। जवाली में भी मिंजर का त्योहार लोग अपने घर में एक-दूसरे को मिंजर बांधकर करते हैं और शाम के समय देहर खड्ड में पकवान के साथ मिंजर को नदी में प्रवाहित किया जाता है। लोगों का कहना है कि मिंजर जल में प्रवाहित करने से सारा साल घर में सुख- समृद्धि बनी रहती है। वहीं, कांगड़ा शहर में स्थित मां वज्रेश्वरी मंदिर में गोटे की मिंजर बनाकर छतर पर रखी जाती है और एक सप्ताह बाद इसे बाणगंगा में प्रवाहित किया जाता है। कांगड़ा जनपद में मिंजर परंपरा इस बात का द्योतक है कि रियासत काल में चंबा तथा कांगड़ा के सांस्कृतिक एवं धार्मिक संबंध रहे होंगे।

मिर्जा परिवार के लोग सबसे पहले मिंजर भेंट करते हैं। मेले की मुख्य शोभायात्रा राजमहल से चौगान से होते हुए रावी नदी के किनारे तक पहुंचती है। यहाँ मिंजर प्रवाहित की जाती है।

मेले के दौरान लोगों के घरों में कुंजड़ी मल्हार गीत भी गाए जाते हैं। कुंजड़ी को सारस पक्षी के साथ भी जोड़ा गया है। कहा जाता है कि गर्मी के मौसम के बाद जैसे ही बरसात शुरू होती है तो सारस पक्षी पहाड़ों पर प्रवास के लिए आ जाते हैं। इसका उल्लेख हिमाचल के प्रसिद्ध लेखक डॉ सूरत ठाकुर ने अपनी पुस्तक हिमाचल की देव संस्कृति में भी किया है। कुंजड़ी मल्हार गीत की कुछ पंक्तियां जो मेले के दौरान गाई जाती हैं :

गणिहर गरजे मेरी जान, गणिहर गरजे।
मेघा बरसे मेरी जान, गणिहर गरजे।
सखियां सावन आयो मेरी जान, गणिहर गरजे।
आई रित सावन दी मेरी जान, गणिहर गरजे।
घूरे-घूरे बादल छाए, आई बरसात लगी बरखा मेरी जान।
धोवियां चिट्टे कपड़े धोंदे प्राणा मेरी बरसे मेरी जान।
डंचे चाढ़िये बूटे मेह बरसेया।
आई रित सावन दी मेरी जान, गणिहर गरजे।
ओ कालेया मोरा डंक चोरा।
तेइयों मेरी निद्र जगाई
आई रित सावन दी मेरी जान, गणिहर गरजे।

इसके अलावा मिंजर मेले को लेकर कई गायकों ने पहाड़ी लोकगीत भी गाए हैं। अतः मिंजर मेले पर लोकगीतों की अपनी एलबमों को भी बाजार में उतारा है। इनमें कुछ गीत इस प्रकार हैं।

मेरी चंबे दी मिंजर मशहूर,
मिंजरां जो आयां जरूर।

चंबे मिंजरां नगोरी ओ मेरिये बांकी गोरिये।
असां मिंजरां जो जाणा मेरिये बांकी गोरिये।

सायें-सायें मत कर रावीये, मिंजो तेरा डर लगदा।
तेरे कंउे बसणे जो मेरा दिल करदा।।

एक अन्य लोक गीत जो पहाड़ी जनजीवन का मार्मिक एवं भावपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करता है।

चंबे रे चुगाना लगोरी हो
मिंजरा लगोरी रौणका हो
चल मिंजरांजो जाणा मेरी प्यारिये
चल मिंजरो जो जाणा हो
लिहसी जंघा पैंडा-किहूयां, मेरे प्यारूआ
चंबे मिंजरा किहूयां जाणा हो।

इसके साथ मेले के दौरान हिमाचल के विभिन्न जिलों व भरमौर के कलाकार भी गद्दी नाच-गाना व लोक गीत पेश कर अपनी लोक संस्कृति का बखान करते हैं। मेले के दौरान आयोजित सांस्कृतिक संध्या में मणिमहेश यात्रा पर आधारित धार्मिक गीत भी गाए जाते हैं। जिले में उगाए जाने वाले फलों एवं सब्जियों के साथ अन्य वस्तुओं चंबा चप्पल, चंबा रूमाल और गर्म कपड़ों का व्यापार भी काफी मात्रा में होता है और देश-विदेश से आए लोग इनकी खूब खरीदारी करते हैं। मेले ने वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की है तथा यह प्रदेश की समृद्ध संस्कृति तथा पर्यटन का एक मिला-जुला समन्वय प्रस्तुत करता है। इस मेले के आयोजन से क्षेत्र में पर्यटन गतिविधियों को भी व्यापक बढ़ावा मिला है। प्रदेश तथा अन्य राज्यों से आए कलाकारों द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा खेल प्रतियोगिताएं इस मिंजर मेले के मुख्य आकर्षण होते हैं। इस दौरान हिमाचल सरकार के विभिन्न विभागों, बोर्डों तथा निगमों द्वारा प्रदर्शनियां भी लगाई जाती हैं, जिसके माध्यम से प्रदेश सरकार की विविध विकासात्मक गतिविधियों बारे लोगों को जागरूक किया जाता है। सप्ताह भर चलने वाले इस अन्तर्राष्ट्रीय मेले में प्रदेश तथा बाहरी राज्यों से आने वाले श्रद्धालु एवं लोग मेले की शोभा बढ़ाते हैं।

गांव, डाकघर व तहसील जवाली,
जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176 023

आलेख

गुलेरी जी की कहानियों में लोक जीवन

◆ विजय कुमार पुरी

सात जुलाई 1883 को जन्मे श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। गुलेरी जी बहुभाषाविद् थे, उनका पांडित्य असाधारण था। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, लेटिन, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर उनका विशेषाधिकार तो था ही साथ ही मनोविज्ञान, दर्शन, पुरातत्व, इतिहास, संगीत आदि के क्षेत्र में भी उनका कोई सानी नहीं था। विषम परिस्थितियों में भी वे उदार ही रहते थे। सन् 1900 से लेकर जीवन पर्यन्त सरस्वती, इन्दु, वेश्योपकारक, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, मर्यादा, भारत मित्र, समालोचक आदि पत्रिकाओं में उनके लेख, निबंध, टिप्पणियाँ, कविताएँ, कहानियां आदि प्रकाशित होती रही हैं। यद्यपि उन्होंने भिन्न-भिन्न विधाओं में लेखन किया है, किंतु सर्वाधिक प्रसिद्धि उन्हें कहानीकार के रूप ही मिली है। इसे यूं भी कहा जा सकता है कि आम जनमानस कहानी पढ़ना ही अधिक पसन्द करता है, जबकि अन्य साहित्य आम आदमी के क्षेत्र से बाहर है। सम्यक अनुशीलन का प्रयास तो सभी करते हैं जबकि क्षेत्र विशेष में दक्षता रखने वाले उस विधा विशेष की समग्र चीरफाड़ कर उसके गुण अवगुण पाठकों अध्येताओं के समक्ष रखते हैं। गुलेरी जी की कहानियां उन्हें हिन्दी साहित्य का ही नहीं, विश्व कहानी साहित्य में अमर कथाकार बना गई। उन्होंने कितनी कहानियां लिखी हैं? इस सन्दर्भ में विद्वान एकमत नहीं हैं। सुखमय जीवन, बुद्धू का काँटा, उसने कहा था के अलावा पनघट, हीरे का हीरा भी गुलेरी की कहानियों के रूप में चर्चित होते रहे हैं। इसके अतिरिक्त डॉ विद्याधर गुलेरी ने दही की हंडिया, और भूखे का संघर्ष भी उनकी रचित बताई हैं, पर साथ ही उन्होंने इन्हें अनुपलब्ध भी



कह दी हैं। पनघट शीर्षक कहानी के सन्दर्भ में डॉ. पीयूष गुलेरी ने कहा है, "हाँ उनकी एक अप्राप्य कहानी पनघट की चर्चा काशी के पं. राम लाल जी शास्त्री ने अवश्य की परन्तु वह उपलब्ध न हो सकी। उनका कहना है कि उन्होंने गुलेरी जी की पनघट कहानी की पांडुलिपि भी देखी थी। परन्तु गुलेरी जी के देहांत के बाद उनके कागज पत्र इधर-उधर हो गए। बाद में गुलेरी जी की अमर कहानियाँ के सम्पादन के समय उनके सुपुत्रों योगेश्वर गुलेरी और शक्ति धर गुलेरी उसे ढूंढने के सब प्रयत्न विफल हुए।" इसी कहानी के सन्दर्भ में डॉ. मनोहर लाल ने भी श्री राम लाल शास्त्री से पत्र व्यवहार किया था। उनका हवाला देकर मनोहर लाल ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में पनघट का प्रसंग उठाया तो विद्याधर ने आजकल पत्रिका में लिखा..."पनघट, बुद्धू का काँटा का हिस्सा न होकर स्वतन्त्र कथा है, जिसे राजकमल प्रकाशन से ही प्रकाशित गुलेरी ग्रन्थावली में समाविष्ट किया जा सकेगा।" अर्थात बुद्धू का कांटा में वर्णित पनघट प्रसंग से भी इसे जोड़ा जाता रहा है। इस कहानी का अस्तित्व रहस्यमयी कन्दराओं में भटक रहा है।

हीरे का हीरा कहानी के सन्दर्भ में डॉ मनोहर लाल ने उसने कहा था तथा अन्य कहानियां में लिखा है, "हीरे का हीरा गुलेरी जी की चौथी कहानी है, उसकी खोज डॉ. छोटा राम कुम्हार ने सन् 1980-81 ईस्वी में गुलेरी जी के भाई पं. जगद्धर गुलेरी के घर उपलब्ध गुलेरी जी के कागज-पत्रों में से की थी।... पत्रों के साथ हीरे का हीरा कहानी भी मैंने सारिका को दी थी। सारिका सम्पादक ने कहा था कि दस्तावेज विशेषांक में छापेंगे, लेकिन न सारिका का वह अंक निकला और न ही गुलेरी जी से संबंधित किसी सामग्री

के साथ वह अधूरी कहानी सारिका में छपी।" यद्यपि 1994 में श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को समर्पित रचना पत्रिका के गुलेरी विशेषांक में हीरे का हीरा अपूर्ण कहानी को डॉ. सुशील कुमार फुल्ल ने पूरा करके प्रकाशित किया था। इसी तरह फुल्ल साहब द्वारा पूर्ण की गई कहानी 6 सितम्बर 1987 को जनसत्ता में प्रथमतः प्रकाशित हुई थी और नवनीत पत्रिका ने भी इसे प्रकाशित किया था। हिन्दी साहित्य के सुबोध इतिहास के परिशिष्ट तथा इंटरनेट में गुलेरी जी से सम्बन्धित सामग्री में भी इस कहानी को देखा जा सकता है। हीरे का हीरा कहानी में गुलेरी जी उसने कहा था कहानी के प्लाट को आगे बढ़ाते हुए दिखाई देते हैं। फर्क यही कि फ्रांस वेल्जियम की जगह युद्धभूमि चीन वर्णित है। पात्र अम्माँ, गुलाबदेई, पात्र अम्माँ, गुलाबदेई, हीरे(लहना सिंह) का पुत्र हीरा ही वर्णित हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हीरे का हीरा को उनकी चौथी कहानी माना जाए? जैसा कि प्रेम चन्द के अपूर्ण उपन्यास मंगलसूत्र तथा जयशंकर प्रसाद के अपूर्ण उपन्यास इरावती को उन्हीं द्वारा रचित माना जाता है। अतः हीरे का हीरा गुलेरी जी की चौथी कहानी माननी ही चाहिए।

किसी भी रचनाकार की रचनाओं में लोकजीवन को समेटे हुए कई पहलू आ जाते हैं। सहृदय, भावुक और कल्पनाशील होने के कारण रचनाकार जगत की अनुभूतियों को अपनी संवेदनाओं में समा लेता है। जिन घटनाओं से अन्य सामाजिक प्राणी कुछ क्षण ही द्रवित होते हैं... उन्हीं घटनाओं से साहित्यकार का मन तब तक उद्वेलित रहता है, जब तक वह उन घटनाओं को ताने-बाने में न बुन दे। अतः समाज की प्रत्येक हलचल साहित्य में समाहित होना अचंभे की बात नहीं। इसी हलचल में लोक संस्कृति और लोक जीवन के कई चित्र उन्हीं की भाषा में रचनाओं में आ जाते हैं।

हीरे का हीरा कहानी का आरम्भ ही हमें हमारी लोक संस्कृति के दर्शन करवा जाता है, "आज सवेरे ही से गुलाबदेई काम में लगी हुई है। उसने अपने मिट्टी के घर के आँगन को गोबर से लीपा है, उस पर पीसे चावल से मंडन मांडे हैं। घर की देहली पर उसी चावल के आटे से लीके खेंची हैं और उन पर अक्षत और विल्व पत्र रखे हैं। दूब की नौ डालियाँ चुनकर कुलदेवी बनाई है और एक हरे पते के दोने में चावल भरकर उसे अंदर के घर में भीत के सहारे एक लकड़ी के देहरे में रखा है।"

अर्थात इस तरह का पूजा विधान हिमाचल के अधिकांश घरों में देखा जा सकता है। मन्नत पूरी होने पर कुलजा पूजन भी अवश्य किया जाता है। पुराने समय में बकरा भी काटा जाता रहा है। स्थानीय हिमाचली कांगड़ी बोली में इसे जातर कहते हैं। जातर के अवसर पर वर या वधू पक्ष के लोग अपने ग्रामवासियों, भाई-बान्धवों के साथ ढोल बाजे सहित देवस्थल

गुलेरी जी के विचार

- *"...हिंदी को देखते अब संस्कृत का क्षेत्र हलका जान पड़ता है। हज़ारों पृष्ठों का महाभारत और लाखों श्लोकों का रामायण ग्रंथ 'आज' पत्र के एक मास की फाइल से अधिक न दिखाई देगा।"*
- *"हिंदी केवल संस्कृत की उत्तराधिकारी नहीं है। यह उत्पत्ति के समय एक बालिका थी इसे फारसी, अरबी, तुर्की आदि ने सहारा दिया और अपनी कुछ संपत्ति देकर पड़ी से खड़ी कर दिया। इसी से कदाचित् यह 'खड़ी बोली' कहलाई।..."*
- *"हिंदी का संबंध वेद भाषा से विशेष है। उदाहरण स्वरूप 'ही' इसका तत्सम शब्द संस्कृत में 'स्मित्' है। अर्थ दोनों का एक है। मराठी आदि के विषय में भी ऐसा ही कह सकते हैं।..."*
- *"संस्कृत पर एक ही का राज्य है। पाणिनि-व्याकरण ही उसमें प्रधान है। जैसा यह वैज्ञानिक है, वैसा दूसरा कोई व्याकरण नहीं है। पाणिनी के आरंभिक शब्द रूढ़ि हो गए। पांतजलि, वररुचि ने घटाया-बढ़ाया अवश्य है, परंतु उसका साम्राज्य बना हुआ है। व्याकरण की कठिनता से भाषा कठिन नहीं हो सकती। लोगों को केवल प्रयोगों के निश्चत कर लेने की आवश्यकता है।..."*
- *"जैसे नए सिक्के शहर में रहते हैं और पुराने ग्रामों में चले जाते हैं वैसे ही अच्छे शब्द 'आज' के ऑफिस में रहते हैं और पुराने ग्रामों में। उदाहरणार्थ - आप लोग, हम, तुम कहेंगे पर कहीं-कहीं 'अपन', 'तुमन' बोला जा सकता है। अपन का आप आत्मन् से निकला कहेंगे पर 'तुमन' को बहुत लोग अशुद्ध ही कहेंगे। पर विचार करने से ज्ञात होगा कि अशोक के लेखों में 'तुमेही' शब्द आता है। इससे स्पष्ट होता है हमारा 'तुमन' शब्द अशोक के समय से चला आता है।..."*
- *"आप लोग दो प्रकार की रचना करते हैं। एक तो उन ऐयारियों और तिलिस्मों में गोते खिलाना है जो कभी न थी और जो विज्ञान की चाहे कितनी ही उन्नति हो जाए, कभी भी संभव न होंगी, दूसरा गार्हस्थ्य और समाज के उन आदर्श चित्रों को दिखाना है जो वर्तमान समय में नहीं हैं, या तो प्राचीन समय में थे, या उस समय भी कल्पना में ही थे।"*
- *"हमें ऐसे उपन्यास लेखक चाहिए जो प्रेममय परिश्रम से इन साधारण वस्तुओं के सच्चे चित्रांकन करें, ऐसे मनुष्य जो इनमें सुंदरता देखते हैं और जिनको यह दिखाने में आनंद आता है कि स्वर्गिक प्रकाश इन वस्तुओं पर किस तरह पड़ता है। ... इन विरले अनुभवों को मैं अपना संपूर्ण प्रेम और संपूर्ण सहानुभूति नहीं दे सकता, मेरे प्रेम के भाव का अधिकांश मुझे अपने प्रतिदिन के साथियों के लिए चाहिए, विशेषतः उनके लिए जो सदा मेरे पास हैं, जिनके चेहरे मैं जानता हूं। जिनके हाथ मैं छूता हूं और जिनके लिए अदब के साथ मुझे मार्ग छोड़ना पड़ता है।"*

की और प्रस्थान करते हैं। गांव की सुहागिन एवम् वरिष्ठ महिला चलीठा लेकर आगे आगे चलती हुई गोलाकार में अलपना लगाती है तथा कोई अन्य कन्या या सुहागिन लाल रंग के रोलिये से गोलाकार अलपने में बिंदु लगाती है। यूं तो ऐसी जातरें (देव यात्राएं) पूरा वर्ष चलती रहती हैं, किंतु नव सम्वतसर के प्रारंभ में इनकी अधिकता देखने में आती है। इस सन्दर्भ में वर्ष का प्रारम्भिक चैत्र मास विशेष रूप से शुभ माना जाता है। उपरोक्त सभी विवरण बुद्धू का कांटा कहानी में स्थल-स्थल पर उनकी भाषा में सम्पुष्ट हुए हैं, "रघुनाथ का हृदय धुंए से घुट रहा था। विवाह के आते अवसर को वह उसी भाव से देख रहा था, जैसे चैत्र कृष्ण में बकरा आने वाले नवरात्रों को देखता है।" कई बार हिमाचली लोकजीवन में विवाहित होने वाले युवक को व्यंजनात्मक भाषा में बलिया दा बकरु से भी अभिहित किया जाता है।

आज के युग में लड़का-लड़की विवाह पूर्व एक दूसरे को देख लेते हैं, किंतु पुरातन काल में जब बच्चों के विवाह सम्बंध माँ-बाप द्वारा ही निर्धारित किए जाते थे तो ग्रामीण क्षेत्रों में विवाह वेदी में मुंह दिखाई रस्म प्रचलित थी, बल्कि आज भी है। विवाह की इस रीति-परम्परा के दर्शन बुद्धू का कांटा कहानी में हो जाते हैं..." कन्यादान के पहले और पीछे वर-कन्या को, ऊपर एक दुशाला डालकर एक दूसरे का मुंह दिखाया जाता है। उस समय दूल्हा- दुल्हन जैसा व्यवहार करते हैं। उससे ही उनके भविष्य, दाम्पत्य सुख का थर्मामीटर मानने वाली स्त्रियां बहुत ध्यान से उस समय के दोनों के आकार-विकार को याद रखती हैं।..." हिमाचली संस्कृति में इस लोकरीति को मुंहद्रष्टा कहा जाता है।

उसने कहा था कहानी में अमृतसर के बाजार का वर्णन करते हुए गुलेरी जी ने इक्के गाड़ी वालों के मुंह से जो वाक्यांश कहलवाये हैं, वे भी लोक आस्था का स्वरूप कहे जा सकते हैं। भीड़ भरे बाजार में बुजुर्ग महिलाओं के न हटने पर... "हट जा जीणे जोगिये, हट जा कर्मा वालिये, हट जा पुतरां प्यारिये,..." भाषायी आधार पर लोकरीतियों को पुष्ट करते हैं। इसी तरह लोकजीवन में झाड़-फूंक, जंतर-मंतर, कोजागर पूर्णिमा, संयुक्त कुटुंब प्रणाली, विवाह पूर्व जन्मकुंडली- टेवे मिलान में जोड़-तोड़, ममता स्वरूप दूध पिलाने के बाद बच्चों को धूल की चुटकी चटाना, बुरी नजर से बचाने के लिए काला टिक लगाना आदि कई लोकरीति के प्रसंग गुलेरी जी की कहानियों में भरे पड़े हैं।

गुलेरी जी की कहानियों में जो लोकजीवनात्मक आधार सुदृढ़ता से अभिव्यंजित हुए हैं, वह कहानीकार की सिद्धहस्तता और कलात्मक कुशलता के परिचायक ही नहीं, बल्कि उनकी रगरग में रंजित लोकसंस्कृति के सच्चे स्वरूप का भी दिग्दर्शन करवाते हैं। गुलेरी जनजीवन की व्यथा-कथाओं को निकट से जानते थे और उन मुलभूत समस्याओं और कुरीतियों पर उन्होंने वैसी ही कलकल निनादिनी जनभाषा में साध-साध कर व्यंग्य बाण मारे हैं। वास्तव में गुलेरी जी समाज में क्रांतिकारी परिवर्तनों के हामी थे। उन्हें शत शत नमन।

ग्राम पदरा पोस्ट हंगलोह, तहसील पालमपुर,
ज़िला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176059

साहित्य जगत का सितारा

जयपुर नरेश के राजपंडित के घर जन्मे पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी को साहित्य जगत 'उसने कहा था' जैसी अमर कहानी के रचयिता के रूप में जानता है। इसके अलावा गुलेरी जी ने कथा, कहानी, निबंध, लेख, शोध, पुरानी पांडपुलिपियों, संस्मरण, साक्षात्कार, वैदिक, पौराणिक साहित्य, लोक कला, धर्म, समीक्षा, कविता आदि सभी विधाओं में लेखन किया है।

मात्र तीन कहानियां सुखमय जीवन, बुद्धू का कांटा और उसने कहा था, लिखकर कथा जगत में एक नई जगह बनाकर हिंदी कहानी को एक नई दिशा दी। गुलेरी जी ने मुकुटधर पांडेय को लिखे अपने एक पत्र में इसका उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा था, "दो-चार कविता या लेख लिखकर भी आदमी अमर हो सकता है, जबकि बहुत लिखने के बाद भी, सौ पचास वर्षों बाद किसी का नाम लोगों को याद नहीं रहता।"

इस वर्ष गुलेरी जी की 135वीं जयंती मनाई जा रही है। उनकी कालजयी कहानी 'उसने कहा था' वर्ष 1916 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसने हिंदी जगत में तहलका मचा दिया था।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी का पैतृक गांव कांगड़ा जिले का हरिपुर-गुलेर है। इन बस्तियों का निर्माण वर्ष 1465 में हुआ था। आज भी इस गांव के आस-पास पुरानी इमारतें हैं जो इसके वैभव को दर्शाती हैं। यहां पुराना द्वार आज भी इसकी वैभक्ता का प्रमाण देता है। पठानकोट से जोगिंद्रनगर आने वाली छोटी रेल लाइन पर गुलेर स्टेशन आता है। यह स्थान देशभर में कांगड़ा चित्रकला के लिए भी जाना जाता है। यह स्थल महान चित्रकार मानकू तथा नैनसुख के कारण भी जाना जाता है।

पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी के पिता शिवराम, गुलेर से स्थानांतरित होकर राजस्थान के जयपुर चले गए। जहां वे राज दरबार के प्रमुख पंडित बने। सात जुलाई, 1883 को चंद्रधर का जन्म हुआ। वे तीन भाइयों में सबसे बड़े थे। हालांकि चंद्रधर शर्मा अधिकांश समय हिमाचल से बाहर रहे हैं लेकिन उन्होंने अपने पैतृक निवास स्थान गुलेर को अपने नाम के साथ जोड़ दिया है। चंद्रधर ने जयपुर से मिडल, कलकत्ता से दसवीं तथा इलाहाबाद से स्नातक की डिग्री हासिल की। चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने नौकरी के साथ-साथ लेखन कार्य किया। उन्होंने 308 के करीब लेख लिखे। साहित्य जगत का यह सितारा 39 वर्ष की आयु में 12 सितंबर, 1922 को संसार को छोड़कर चला गया।

आलेख

जीवन वल्लरी का सुधारस : वफ़ा

◆ डॉ. कन्हैयालाल राजपुरोहित

वफ़ा इन्आमे कुदरत है जो मिलता है मुक़द्दर से
खुसूसियत ये हर इंसान में पाई नहीं जाती

मानवीय प्रकृति एक ऐसी अनबूझ पहेली है जिसे सुलझाने का हर प्रयास उसे और उलझा देता है। सामान्य व्यक्ति की तो खैर बिसात ही क्या, इस संबंध में बड़े-बड़े दार्शनिकों व चिंतकों में प्रचलित वैचारिक द्वंद्व पर तो एक अन्य संदर्भ में कही गई 'फ़िराक़' साहब की बात शत प्रतिशत खरी उतरती है कि

इश्क़ क्या इश्क़ की हक़ीक़त क्या
जैसी जिसके गुमान में आई

एक ओर तो महाभारतकार का यह अभिमत है कि 'मनुष्य से श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं है तथा दूसरी ओर मैकियावलि की यह धारणा कि 'मनुष्य मूल रूप से दुष्ट होता है, भलाई का केवल दिखावा करता है', आम आदमी को वैचारिक बीहड़ में भटकाने को पर्याप्त है। मानवीय प्रकृति में निहित बुराइयों के ताप से दग्ध और त्रस्त व्यक्ति तो यह कहने को विवश हो जाता है -

कुबूल न करते हम अज़ल में किसी तरह यह लिबासे इंसां
ख़बर जो होती पस्त इस दर्जह फ़ितरते आदमी मिलेगी

वैसे इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि व्यक्ति को सदाचरण के सन्मार्ग का पथिक बनाने हेतु मनीषी एवं विभूमि व्यक्तित्व सदैव से प्रयत्नशील रहे हैं किंतु परिणाम ढाक के तीन पात। और तो और लगता है स्वयं सिरजनहार भी इस मामले में लाचार हो गया क्योंकि -

क्या क्या न जतन किए खुदा ने जन्नत में
आदम ने मगर गुनाह करके छोड़ा

इनसानी फ़ितरत विषयक इस निराशाजनक सेमेटिक नज़रिए के बरअक्स हमारी आर्ष परंपरा कहती है 'प्रत्येक मनुष्य एक संभावित दैवी आत्मा है।' स्वामी विवेकानंद ने इस धारणा को अत्यंत प्रभविष्णु रूप से रेखांकित करते हुए मानव जाति को औपनिषदिक शब्दावली में 'अमृत्सय पुत्राः' की संज्ञा से अभिहित किया है। अज्ञानवश सिंह शावक स्वयं को मेमने समझने की भ्रांति के शिकार हैं। भारतीय दर्शन तो निरंतर उदात्तता के सोपानों पर आरोहण को सार्थक जीवन का निकष मानता है और बताता है कि इस दुस्साध्य कार्य संपादन के पाथेय स्वरूप संभावनाएं एवं क्षमताएं मनुष्य में विद्यमान हैं। आवश्यकता है उन्हें पल्लवित पुष्पित कर पुष्टि प्रदान करने की।

उच्चता की ओर अग्रसर होने के लिए क्षुद्रता के परित्याग को स्वामी जी ने आधारभूत आवश्यकता बताया है। इस दृष्टि से जीवन को री व सौरभयुक्त बनाने वाले गुणों में वफ़ा (निष्ठा) का अग्रणी स्थान है। व्यापक एवं विशद इयत्ताओं युक्त यह दुर्लभ गुण स्वार्थपरता व क्षुद्रता से उद्‌भूत कल्मष का प्रक्षालन करने में सक्षम है।

वफ़ा व्यक्ति को सहर्ष बलिदान व त्याग के लिए प्रेरित करती है और यह सनातन सत्य है कि बिना त्याग के कोई बड़ा काम नहीं हो सकता। इतिहास साक्षी है कि वफ़ा ने ही उन मनोभावों की सृष्टि और सिंचन किया है, जो जीवन में माधुर्य एवं सरसता का संचार करते हैं। किसी बड़े ध्येय के लिए सर्वस्व अर्पण की ललक उस लक्ष्य के प्रति अविचल निष्ठा से ही जन्म लेती है क्योंकि

कुछ उसूलों का नशा था कुछ मुक़द्दस ख़्वाब थे
हर दौर में शहादत के यही असबाब थे।

वफ़ा में ही वह ताब है जो व्यक्ति को बड़ी से बड़ी विपदा में अविचल रहने की सामर्थ्य प्रदान करती है। जीवन के हर क्षेत्र को वफ़ा ही आलोकमय कर सकती है क्योंकि इससे अनुप्राणित व्यक्ति सर्वतो भावेन उच्च आरोही लक्ष्यों का संधान करने में परितोष एवं आल्हाद की अनुभूति करता है। वफ़ा से ओत-प्रोत आचरण व्यक्ति को जीवन की हर भूमिका में कल्याण पथ का पथिक बनाता है। जहां भी वफ़ा का दामन हाथ से छूटा, उसका अपरिहार्य परिणाम है, ग्रीक ट्रेजेडी के नायकों की नियति वफ़ा से स्पंदित मनुष्य की चेतना उसे अपने से पहले अपने प्रीतिपात्र के हितचिंतन व हित-संवर्धन के लिए प्रेरित करती है।

प्रकृति ने जहां मनुष्य को षड्रिपुओं के संधान पर रखा है, वहीं उनसे रक्षा कवच के रूप में वफ़ा व अन्यान्य उत्तम गुणों से भी वेष्टित किया है। ऐसे मार्मिक प्रसंग वफ़ा की ही देन हैं, जहां कहने को मात्र संवेगों से परिचालिक मानवेतर प्राणियों ने भी त्याग की अनुपम मिसाल पेश की है। उस प्रसंग पर विचार कीजिए जहां ग्रीष्म ऋतु में तालाब किनारे मृत पड़े एक मृग युगल को देखकर एक जिज्ञासु बाला अपनी सखी से पूछती है -

खड़्यौ न दीखै पारधि लाग्यौ न दीखै बाण

म्हैं थनै पूछूं हे सखि किण विध तज्या प्राण।

सहेली उसकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहती है -

जल़ थोड़ौ नै नेह घणौ प्रीत को लाग्यौ बाण
तूं पी तूं पी कह मर ग्या इण विध तज्या प्राण।

अर्थात् : न तो शिकारी खड़ा दिखाई दे रहा है और न ही बाण लगा हुआ दिखाई दे रहा है। सखी! मैं तुम्हें पूछ रही हूं, इस मृग युगल ने प्राण कैसे त्याग दिए?

उत्तर : हुआ यूं कि ग्रीष्म में बाकी तालाब में तो पानी सूख गया था। बस एक 'खाबोचिये' में थोड़ा सा पानी बचा था। वह इतना ही था कि एक की प्यास बुझ सकती थी। हिरण हिरणी से कहे 'तूं पी', हिरणी हिरण से कहे 'नहीं तूं पी'। इस प्रकार 'तूं पी तूं पी' कहते-कहते प्यास से उनके प्राण पखेरू उड़ गए।

यह तो कवि कल्पना की बात हुई। एक मूक पशु की वफ़ा की पराकाष्ठा का अप्रतिम उदाहरण छत्रपति शिवाजी महाराज के जीवन से जुड़ी सच्ची घटना है। छत्रपति का प्रिय पालतू श्वान था 'वाघ्या'। जो साए की भांति हरदम उनके संग रहता था। जब छत्रपति का निधन हो गया तो उसे अहसास हो गया कि मेरे स्वामी बिछुड़ चुके हैं। वह चुपचाप उनकी पार्थिव देह के पास अश्रुपात करते बैठा रहा। दूसरे दिन रायगढ़ दुर्ग में उनकी अंत्येष्टि के लिए शव यात्रा शुरू हुई तो 'वाघ्या' भी पीछे-पीछे चल पड़ा और चिता को मुखाग्नि दिए जाने तक चुपचाप खड़ा रहा। जैसे ही चिता से लपटें उठने लगीं, वह दौड़ता हुआ आया और चिता में कूद पड़ा। अपने प्राणों की आहुति देकर स्वामी का सहगामी बन गया। एक मूक पशु की इस निष्ठा व बलिदान को देखकर वहां उपस्थित लोग ठगे से रह गए। बाद में शिवाजी महाराज की समाधि के पास ही 'वाघ्या' की भी समाधि बनाई गई। एक ऊंचे प्रस्तर स्तंभ पर उसकी मूर्ति लगाई गई और स्तंभ के नीचे इस अद्वितीय बलिदान की घटना का विवरण उकेरा गया। रायगढ़ दुर्ग में आज भी वह स्मारक विद्यमान है।

महाबली मुगल सत्ता के दांत खट्टे करने और 'कुटिल कूटनीति विशारद' औरंगजेब को पटखनी देने में शिवाजी महाराज को मिली दिगंत प्रतिश्रुत सफलता की आधारशिला तानाजी मालुसरे, येसाजी कंक, ही रोजी फर्ज़ूद, जीवा म्हाला, मदारी मेहतर, बाजीप्रभु देशपांडे, प्रतापराव गूजर जैसे उनके विश्वस्त साथियों की पराकोटि की निष्ठा ही थी। आगरा में आसन्न मृत्यु से बचकर औरंगजेब के चंगुल से निकलने के बाद जब छत्रपति का राज्याभिषेक हुआ, उस अवसर पर विपदा की घड़ी में चट्टान की भांति साथ खड़े रहने वाले उनके साथियों व सेवकों को पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। आगरा कैद में शिवाजी के साथ रहे सोलह वर्ष के किशोर मदारी मेहतर से जब पुरस्कार विषयक उसकी पसंद के बारे में पूछा गया तो वफ़ा की प्रतिमूर्ति उस किशोर का उत्तर था, "महाराज, मुझे तो बस आपके सिंहासन की देखभाल की जिम्मेदारी सौंप दीजिए।"

यह वफ़ा का ही जज़्बा था जिसके चलते शिवाजी महाराज का संदेश मिलने पर अपने बेटे के विवाह समारोह को बीच में ही छोड़कर तानाजी मालुसरे तुरंत महाराज की सेवा में हाजिर हुए। शिवाजी ने उन्हें अत्यंत दुष्कर काम को अंजाम देने की जिम्मेदारी सौंपी और वह था पुणे के पास स्थित कोंडाणा के किले को मुगलों के अधिकार से मुक्त कराना। तानाजी अपने अद्भुत रण कौशल और पराकोटि के पराक्रम के बूते पर इस महत् अभियान में कृतकार्य हुए किंतु इसमें वे वीरगति को प्राप्त हो गए। गढ़ विजय विषयक विषाद मिश्रित हर्षदायक समाचार मिलने पर शिवाजी की व्यथा इन शब्दों में फूट पड़ी, "गढ़ आला पण सिंह गेला।" (गढ़ आया पर सिंह गया) और उन्होंने कोंडाणा का नाम बदल कर 'सिंह गढ़' कर दिया। सिंह गढ़ में स्थापित तानाजी की प्रतिमा उनकी वफ़ा की याद ताज़ा कर देती है।

किसी राष्ट्र की चहुंमुखी प्रगति उसके नागरिकों की अपने राष्ट्र के प्रति वफ़ादारी पर ही निर्भर करती है। इस बारे में जापान हमारे सामने जीवंत उदाहरण है। बात उन दिनों की है जब स्वामी रामतीर्थ जापान की यात्रा पर थे। उन दिनों वे फलाहार ही करते थे। संयोग कुछ ऐसा हुआ कि उस यात्रा में एक दिन कई स्टेशन निकल गए पर कहीं ताज़े फल नहीं मिले। एक बड़े स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी तब अपने पास बैठे सहयात्री से बात करते हुए अनायास उनके मुंह से निकल गया, "लगता है आज भूखा ही रहना

किसी राष्ट्र की चहुंमुखी प्रगति उसके नागरिकों की अपने राष्ट्र के प्रति वफ़ादारी पर ही निर्भर करती है। इस बारे में जापान हमारे सामने जीवंत उदाहरण है। बात उन दिनों की है जब स्वामी रामतीर्थ जापान की यात्रा पर थे। उन दिनों वे फलाहार ही करते थे। संयोग कुछ ऐसा हुआ कि उस यात्रा में एक दिन कई स्टेशन निकल गए पर कहीं ताज़े फल नहीं मिले। एक बड़े स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी तब अपने पास बैठे सहयात्री से बात करते हुए अनायास उनके मुंह से निकल गया, "लगता है आज भूखा ही रहना पड़ेगा। कहीं ताज़े फल नहीं मिल पाए हैं।" प्लेटफार्म पर खड़े एक जापानी युवक के कानों में यह बात पड़ी। थोड़ी ही देर में उसने ताज़ा फलों का एक टोकरा लाकर स्वामी जी को दे दिया। स्वामी जी द्वारा उसके दाम पूछे जाने पर युवक बोला, "इसके दाम यही हैं कि आप अपने देश जाकर यह मत कहिएगा कि जापान में ताज़े फल नहीं मिलते।"

पड़ेगा। कहीं ताज़े फल नहीं मिल पाए हैं।" प्लेटफार्म पर खड़े एक जापानी युवक के कानों में यह बात पड़ी। थोड़ी ही देर में उसने ताज़ा फलों का एक टोकरा लाकर स्वामी जी को दे दिया। स्वामी जी द्वारा उसके दाम पूछे जाने पर युवक बोला, "इसके दाम यही हैं कि आप अपने देश जाकर यह मत कहिएगा कि जापान में ताज़े फल नहीं मिलते।"

यह वफ़ा का ही कमाल था कि चित्तौड़ के गढ़ को हथियाने के लिए दुर्ग रक्षक जयमल मेड़तिया को मुगल सम्राट अकबर द्वारा दिए गए सारे प्रलोभन अप्रभावी रहे। बल से काम न बनते देखकर उसने जयमल को कहलवाया कि यदि एक बार आप हमें चित्तौड़गढ़ सौंप दें तो हम आपको यहां का सूबेदार बना देंगे। ऐसे घृणित प्रस्ताव को ठुकराते हुए जयमल ने जो उत्तर भेजा, उसका उत्स वफ़ादारी की स्तुत्य भावना ही थी। उसने कहलवाया -

गढ़ म्हांरौ म्हैं धणी असुर फिरै किम आंण
कूंची चित्रगढ़ री दीधी मुझ दीवांण

जैमल लिखै जवाब जद सुणजै अकबर शाह
आण फिरै गढ़ ऊपरां तूटां सिर पतशाह

अर्थात् गढ़ हमारा है और हम इसके स्वामी हैं, उस पर विधर्मी का स्वामीत्व कैसे हो सकता है। चित्रगढ़ (चित्तौड़) की चाबी मुझे दीवार (मेवाड़ महाराणा) ने सौंपी है। जयमल जो उत्तर भेज रहा है, बादशाह अकबर उसे अच्छी तरह से सुन लो। मेरा सिर काटने के पश्चात् ही गढ़ पर बादशाही स्वामीत्व की मुनादी हो सकेगी।

वफ़ा की भावना व्यक्ति को कितने उदात्त भाव लोक में स्थापित कर देती है, यह तथ्य राजस्थान के बाड़मेर जिले के नामी कवि आशानंद बारहठ की अपने परम आत्मीय सखा बाघजी कोटड़िया के निधन के पश्चात् हुई उनकी मनोदशा से प्रमाणित होता है। शेरशाह सूरी के समकालीन मारवाड़ के शासक राव मालदेव के सरदारों में अग्रणी बाघजी कोटड़िया देव दुर्लभ गुणों से संपन्न शख्सीयत थे। इसी कारण मालदेव के ससुराल जैसलमेर से आई रूपसी दासी भारमली इस विलासी पितृहंता व्यक्ति को धता बता कर बाघजी के पास कोटड़े चली गई। माल देव ने कवि आशानंद को कोटड़े भेजा कि वे भारमली को मनाकर वापिस लाएं। पर वहां पहुंचने पर बाघजी के गुणों ने कवि को ऐसा मोहित कर दिया कि वे अपने मिशन को भूल कर बाघजी के हो लिए। दोनों को देह एक प्राणवत् हो गए।

बाघजी के आकस्मिक निधन से कवि इतने आहत और विषादग्रस्त हो गए कि वे अपनी सुध-बुध भूल गए और हर घड़ी 'बाघजी बाघजी' करने लगे। इसी अवसन्न मनोदशा में वे घूमते-घूमते अमरकोट (सिंध) पहुंच गए। वहां के राणा ने उनकी परीक्षा लेने के लिए उन्हें प्रलोभन दिया कि यदि आप एक रात के चार प्रहरों में एक बार भी बाघजी का नाम स्मरण नहीं करें तो मैं आपको चार लाख रुपये दूंगा। (सोलवीं सदी के चार लाख रुपये) कवि का कहना था कि हां तो नहीं भर सकता क्योंकि बाघजी तो मेरी हर सांस में बसे हुए हैं। कवि के साथ आए भतीजे के जोर देने पर बोले, कोशिश कर सकता हूं। वचन नहीं दे सकता। शाम के बाद रात गहराने लगी। कवि ने एक प्रहर तक तो किसी तरह जब्त रखा, फिर रहा नहीं गया और बोल उठे -

बाघा आव वळैह धर कोटड़ै थूं धणी
जासी फूल झड़ैह वास न जासी बाघजी।

अर्थात् कोटड़े के स्वामी बाघजी आप एक बार फिर इस धरा पर आओ। फूल तो झड़ जाएंगे पर हे! बाघजी उनकी सुगंध बनी रहेगी।

रात गहराती गई। एक लाख रुपये तो कवि गंवा ही चुके थे। भतीजे ने कहा, अब तो जब्त रखो। किंतु उन्हें चैन कहां? दूसरा प्रहर बीतते-बीतते फिर बाघजी की याद की हिये में हिलोर उठ पड़ी और बोले -

बाघा हालै वेग दिन सारै दूधा हरा
आठूं पहर उदेग वीसारूं किम बाघजी

अर्थात् हे दूधा तनय! सारा दिन मन में दुःख की लहरें उठती हैं। आठों पहर मन उद्विग्न रहता है। बाघजी आपको कैसे विस्मृत करूं?

इसी मनोदशा में तीसरा पहर बीतते फिर बोल उठे -

चाल मना रै कोटड़ै पग दे पावड़ियांह
बाघा सूं बातां करां दे गळ बांहड़ियांह

अर्थात् हे मन निरंतर चलते हुए कोटड़ा की ओर प्रयाण कर। वहां गलबहियां डाल कर बाघजी से प्रेमालाप करेंगे।

आखिर में भोर बेला में मुर्गे की बांग सुनकर उसे संबोधित करते हुए कहा ने कहा -

क्यूं कुरळायौ कूंकड़ा ढळती मांझळ जोग
विहंग थनै कीं वीं ठियौ बाघ तणौ विजोग

अर्थात् कुक्कुट तू ढलती रात में क्यों विलाप कर रहा है? हे पक्षी! क्या तुझे भी बाघजी का वियोग सता रहा है?

और इस तरह अपने प्रिय सखा को याद करते हुए कवि आशानंद ने चार लाख रुपये की धनराशि को ठोकर मार दी।

इस घटनाक्रम से स्तंभित राणा ने आशानंद से पूछा, कवि राज! क्या आप किसी तरह बाघजी को भूल सकते हैं? इसका उन्होंने जो उत्तर दिया, वह भारतखंड तो क्या स्यात् संसार के इतिहास की एकमात्र घटना है। वफ़ा का अजर-अमर कीर्ति कलश है। कवि ने उन हालात का हवाला दिया, जिनमें उनके लिए बाघजी को भूल पाना संभव हो पाएगा। उन्होंने कहा -

जड़सी जेवड़ियांह कमळ घिसी जै काठ सूं
च्यारूं खंध चढ़यांह बाघा नै जद वीसरूं

चींघण चळवळियांह ठूंगं में ठंठेरियां
राणा राख थयांह बाघा नै जद वीसरूं
थड़ै मसांण थयांह आतम पद पूगां अलख
गंगा हाड गयांह वीसरसां जद बाघ नै

अर्थात् जब मेरे शव को अरथी पर मूंज से कस कर बांध दिया जाएगा, मेरा सिर अरथी के काष्ठ से टकराएगा और इस तरह चार कंधों पर सवार होने की स्थिति में बाघ जी को भूल पाऊंगा।

मेरी चिता को प्रज्वलित करने के बाद अग्नि के ताप से इधर-उधर गिरते अंगों को पुनः चिता में ढकेलने हेतु प्रयुक्त होने वाले बांस के डंडों से धकेले जाने व काष्ठ के सुपुर्द किए जाने पर बाघजी को भूल पाऊंगा।

श्मशान भूमि में राख के ढेर में तब्दील होकर, प्रभु के साथ एकाकार होने व गंगा नदी में अस्थि प्रवाह होने के बाद ही बाघ जी को विस्मृत कर पाऊंगा।

यह सच्ची ऐतिहासिक घटना है, मारवाड़ राज्य की। वफ़ा का ऐसा यशोज्ज्वल उदाहरण अन्यत्र न सुना गया है, न देखा गया है। सही अर्थों में 'न भूतो न भविष्यति घटना। यह है वफ़ा का चमत्कार और उसके प्रतीक आशानंद बारहठ लोक स्मृति में पूज्यपाद के रूप में अवस्थित हैं।

यह तो है करीब पांच सौ वर्ष पूर्व घटित घटना वफ़ा के आलम का जादू प्रत्यक्ष करने वाली बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में बाड़मेर जिले के समदड़ी गांव में घटित घटना भी लासानी है। हुआ यूं कि समदड़ी के एक रंगरेज को साफे रंगने में महारत हासिल थी। होली के अवसर पर न केवल समदड़ी बल्कि पूरे चौखळे के लोग भी अपने साफे रंगवाने उसी के पास आते थे। होली के दूसरे दिन उम्दा रंगत के उन साफों से सज-धज कर लोग ठाकुर से 'रामा-सामा' करने रावळे में जाते थे। एक होली के अससर पर गांव के लोग रामा-सामा के लिए रावळे में एकत्र हुए। वह रंगरेज भी उस मजमे में उपस्थित था। अचानक ठाकुर की नज़र एक युवक के साफे पर पड़ी। उसके साफे की रंगत की निराली ही धज थी। वैसी धज न तो स्वयं ठाकुर और न कुंवर के साफे की थी। ठाकुर ने रंगरेज से पूछा, भले मानुष! ये बता इस बार तुमने हमारे साफे ढंग से नहीं रंगे क्या? सवाल सुनकर रंगरेज अचकचा गया। बोला, 'क्यों अन्नदाता! ऐसी क्या बात हो गई? तब ठाकुर ने निराली धज वाले युवक के साफे की ओर इशारा करते हुए पूछा- हमारे साफे की रंगत उतनी बढ़िया क्यों नहीं है? तब रंगरेज ने अर्ज़ किया, 'अन्नदाता! गुनाह माफी का वचन दें तो कारण बताऊं।' ठाकुर के हां कहने पर वह बोला, 'मालिक! बात यह है कि वह युवक मेरी बेटी का मंगेतर है। उसका साफा मेरी बेटी ने रंगा है। उसकी रंगत में 'रंगे वफ़ा' है। यह है उसकी रंगत की निराली धज का राज़। वैसा 'रंगेवफ़ा' मैं भला कहां से लाऊं?' ठाकुर विस्मय विमुग्ध होकर रह गया।

उपर्युक्त घटनाएं इस तथ्य के निर्विवाद प्रमाण हैं कि इनसानी जिंदगी को ताबानी और महक वफ़ा ही प्रदान करती है। दुनियादारी की तमाम कामयाबियां अपने से जुड़े लोगों की वफ़ा से ही सुखद एवं सार्थक लगती हैं। वैसे वफ़ा की परीक्षा विपदा की घड़ी में ही होती है। गोस्वामी तुलसी दास ने इस सत्य को उजागर करते हुए बहुत सटीक बात कही है, 'धीरज, धरम मित्र अरू नारी आपतकाल परखिए चारी।'

रहीम ने भी इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए कहा -
रहिमन विपदा तू भली जो थोरे दिन होय
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय

विपदा में प्रायः बेवफ़ाई का गरल पान करना पड़ता है। बक़ौल पं. हरी चंद अख़्तर -

हमें भी आ पड़ा है अपने दोस्तों से कुछ काम
यानी हमारे दोस्तों के बेवफ़ा होने का वक़्त आया।

भले ही निजी नफे-नुकसान की हिसाबी-किताबी मानसिकता व्यक्ति को वफ़ा के राजमार्ग से विचलित कर दे; उसे क्षण जीवी सफलता का अहसास कराए किंतु यह त्रिकाल सत्य है कि वफ़ा आल्हादकारी मलयानिल है तो बेवफ़ाई चराचर को दग्ध करने वाली लू; वफ़ा कोकिल की श्रुतिमधुर कुहुक है तो बेवफ़ाई वायस की क्षुब्धकारी कांव-कांव; वफ़ा नवोढ़ा के हृदय में मीठी पीर जगाने वाली पपीहे की 'पीहू-पीहू' है तो बेवफ़ाई भुजंग की भीतिजनक फुत्कार; वफ़ा जीवनदायी वर्षा की फुहार है तो बेवफ़ाई जीवनशोषी अकाल का तांडव; वफ़ा सुहागिन की पाजेब की झंकार है तो बेवफ़ाई प्रज्वलित चिता की चड़-चड़। वफ़ा विपदा विमर्दित व्यक्ति का दृप्त संबल है, जो अंततः आततायी को निष्प्रभ कर देता है क्योंकि

जफ़ा सैयाद की अहले वफ़ा ने रायगां कर दी
क़फ़स की ज़िंदगी वक्फ़े खयाले आशियां कर दी।

भले ही निजी नफे-नुकसान की हिसाबी-किताबी मानसिकता व्यक्ति को वफ़ा के राजमार्ग से विचलित कर दे; उसे क्षण जीवी सफलता का अहसास कराए किंतु यह त्रिकाल सत्य है कि वफ़ा आल्हादकारी मलयानिल है तो बेवफ़ाई चराचर को दग्ध करने वाली लू; वफ़ा कोकिल की श्रुतिमधुर कुहुक है तो बेवफ़ाई वायस की क्षुब्धकारी कांव-कांव; वफ़ा नवोढ़ा के हृदय में मीठी पीर जगाने वाली पपीहे की 'पीहू-पीहू' है तो बेवफ़ाई भुजंग की भीतिजनक फुत्कार...।

सी-2, 'रत्न स्मृति', पंचवटी कॉलोनी, रतनाड़ा, जोधपुर, राजस्थान-342 011, दूरभाष ': 2437782

आलेख

नई शुरुआत
हिमाचल की लोक कलाओं को मिला आश्रय

◆ जोगिंद्र सिंह

हिमाचल की ओर हर वर्ष देश-विदेश के लाखों सैलानियों को आकर्षित करने का श्रेय यहां के हिमाच्छादित पर्वतशिखरों, गगनचुंबी पहाड़ों की चोटियों, सुंदर घाटियों, हरे-भरे वनों, शांत, शीतल नदी-नालों, झीलों तथा यहां के भोले-भाले लोगों को जाता है।

प्रकृति ने जहां इस धरा को संवारा, सजाया और विभूषित किया है, वहीं यहां के चिंतन, मननशील मानव, कलाकारों, दस्तकारों, कारीगरों, शिल्पियों ने भी अपनी प्रतिभा से इसे प्रफुल्लित, अलंकृत और विकसित किया है।

पहाड़ी चित्रकला की कृतियां आज विश्वभर के संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही हैं। मंदिरों, महलों के भित्तिचित्रों को देखकर इस प्रदेश की गौरवमय कला संसार का भान होता है। सुंदर, आकर्षक जनजातीय थनकों और अष्टधातु, काष्ठ, पीतल, चांदी की प्राचीन मूर्तियां, सोने के मुख-मोहरे हिमाचल की शान व पहचान हैं।

लोक कलाओं का संरक्षण एवं संवर्द्धन आज हम सभी का दायित्व है। केंद्र सरकार, राज्य सरकार तथा स्वयंसेवी संगठनों ने लुप्त होती इन लोक कलाओं को जीवित रखने का बीड़ा उठाया है।

आज सच्चाई यह है कि गांव में बांस, मिट्टी, काष्ठ, धातु से निर्मित होने वाले उत्पादों के शिल्पकार ही नहीं रहे हैं। जो रह गए हैं वे अपने शौक तथा इस पुरातन कला के संरक्षण में एक जुनून की तरह कार्य कर रहे हैं।

हिमाचल प्रदेश सरकार ने लोक कलाओं के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए सकारात्मक पहल की है। सरकार ने भाषा कला एवं संस्कृति विभाग के माध्यम से राजधानी में मई माह में पांच दिन का एक वृहद ग्राम शिल्प मेले का आयोजन किया। शिमला के ऐतिहासिक बैंटनी कैसल जिसका अधिग्रहण सरकार ने किया है, के प्रांगण में मेला लगाया गया। इन प्रयासों से जहां ग्रामीण कलाकारों, शिल्पकारों को अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का मंच मिला, वहीं स्थानीय निवासियों व प्रदेश भ्रमण पर आए पर्यटकों को हिमाचल की संस्कृति, परंपराओं, कला से रूबरू करने में सफलता मिली।

मेले में चंबा, कांगड़ा, बसौली कलम, चंबा रूमाल, मूर्तिकला, बांस व मिट्टी से निर्मित उत्पादों सहित शालोद्योग, टोपी, मफलर तथा हस्तशिल्प की वस्तुएं प्रदर्शित ही नहीं की गई थीं, बल्कि चंबा रूमाल का निर्माण, पहाड़ी चित्रकला की बारीकियों का कार्य भी हर व्यक्ति ने सहज भाव से देखा व कलाकारों की अपने कार्यों के प्रति निष्ठा व लगन से निहारा।

सिरमौर जिले के माताराम जो प्रस्तर शिल्प में महारत हासिल किए हैं, ने पत्थरों में भी जान फूंकी है। उन द्वारा निर्मित मूर्तियां देखकर हर आगंतुक चकित हो जाता था। उन्हें एक बात का मलाल है कि अब युवा पीढ़ी इस कार्य को करने के लिए आगे नहीं आ रही। वे चाहते हैं कि युवा इस कला को अपनाने के लिए आगे आएं, नहीं तो यह कला प्रदेश के इतिहास के पन्नों में खो जाएगी।

ग्राम शिल्प मेले में बांस से निर्मित सजावटी वस्तुओं ने मेले में आने वाले हर व्यक्ति को आकर्षित किया। कांगड़ा जिले के शाहपुर निवासी विजय कुमार द्वारा बांस से बनाई कश्ती सहित प्रदेश के प्रमुख धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थलों की कृतियां जैसे शिकारी देवी, हिमानी चामुंडा, शिमला का ऐतिहासिक गिरजाघर, भीमाकाली मंदिर, हडिंबा मंदिर, लक्ष्मी नारायण मंदिर चंबा, लंदन ब्रिज, पेरिस का ऐफिल टावर खरीददारों की पहली पसंद रही। वे अपनी इस कला को युवाओं को भी सिखाकर उन्हें हुनरमंद बनाने का संकल्प लिए हैं। वे चालीस से अधिक बंदियों तथा 45 महिलाओं को अभी तक प्रशिक्षण प्रदान कर चुके हैं।

हिमाचल में कलाकारों की कमी नहीं है। हमीरपुर जिले से करतार सिंह ने बंद बोतल में बनाई ऐफिल टावर की कृति से सभी को अचंभित किया। वे अपनी इस अनूठी कला का संग्रहालय बनाने का सपना संजोए हैं।

हिमाचल आदि काल से कला तथा कलाकारों का घर और आश्रय स्थल रहा है। जब कभी मैदानों में उपद्रवों, दुर्व्यवस्थाओं तथा अत्याचारों भरे वातावरण ने कलाकारों को घर छोड़ने के लिए मजबूर किया, तभी पहाड़ों ने उन्हें आश्रय दिया। यहां के शांत, स्वस्थ वातावरण ने उनकी कल्पन शक्ति और कौशला कला को और अधिक जागृत एवं प्रेरित किया है।

चंबा के राजा उमेद सिंह ने (1748-1764) में अनेक

कलाकारों को शरण दी। इसी का प्रतिफल है कि हिमाचल की पहचान चंबा रूमाल से होती है। कहने को तोयह रूमाल है लेकिन इस पर बनी कलाकृतियां भारतीय दर्शन का प्रतिरूप है। दोरुखा पद्धति पर बनने वाले रूमाल, दक्ष एवं कुशल हाथों का कमाल है। चंबा रूमाल में धार्मिक और पौराणिक चित्रों के अतिरिक्त स्थानीय सांस्कृतिक और लौकिक विषय वस्तुओं का विस्तृत प्रदर्शन होता है।

सुनीता देवी ने इस शिल्प मेले में आगंतुकों को चंबा रूमाल की कला से परिचित करवाया। सुनीता देवी, बालिकाओं को इस कला का प्रशिक्षण दे रही है ताकि वे आर्थिक तौर पर स्वावलंबी बन सकें। मेले में दो हजार रुपये से लेकर तीस हजार रुपये के चंबा रूमाल बिक्री के लिए उपलब्ध थे।

राज्य का हर जिला अपनी विशिष्ट लोक कला के लिए जाना जाता है। किन्नौर तथा लाहुल स्पीति जिला अमूल्य कला निधि थनका के लिए विश्वप्रसिद्ध है। थनका बौद्ध धर्म अनुयायियों की एक महान धार्मिक और आनुष्ठानिक चित्रकला और शिल्प है जो अपनी सुंदरता और विशिष्टता के कारण प्रसिद्ध है।

लाहुल स्पीति जिले की जानी मानी थनका कलाकार कृष्णा टशी बड़ी श्रद्धा, आस्था तथा भक्ति से इस कला को आगे बढ़ाने में तल्लीन हैं। वे अपनी इस कला को राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शित कर हिमाचल का नाम रोशन कर रही हैं।



मेले में सोलन, शिमला तथा बिलासपुर जिलों की महिलाओं ने चीड़ की पत्तियों से फूलदान, छोटी टोकरियां, फुटमैट, ट्रे, पर्स, करडिया बनाकर प्रस्तुत किया। ये उत्पादन महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर प्रदान कर रहे हैं। इस मेले में इन्हें इन उत्पादों के लिए बेहतर बाजार प्रदान किया।

किन्नौर जिले की संस्कृति, मान्यताओं, धार्मिक आस्थाओं को सजीव रखने का कार्य चंद्र कुमार कर रहे हैं। वे इस कला को लकड़ी के फ्रेमों, डायनिंग टेबल तथा अन्य सजावटी वस्तुओं पर उकेर कर लोक कला को जीवित करते हैं।

मिट्टी के बर्तनों पर प्रयोग मानव आदिकाल से कर रहा है। आधुनिकता के इस दौर में मिट्टी के बर्तन अब सजावट का सामान बनकर रह गए हैं। कांगड़ा जिले के देहरा विकास खंड के तरसेम लाल ने इस कला को अभी भी जिंदा रखा है। उनके बनाए घड़े तथा अन्य सामान मेले में हाथोहाथ बिका।

जिसकी नज़र कलाकृतियों को देखने में पारखी होती है, वे पत्थरों, लकड़ी तथा अन्य व्यर्थ सामान में उन्हें देख लेता है। कांगड़ा जिले के मकड़ोली गांव के निवासी पंकज कुमार ऐसी अनेक कलाकृतियों को ढूंढकर प्रदर्शनी में प्रकाशित किया। प्राकृतिक रूप में बनी कलाकृतियां देखते ही बनती थीं।

जम्मू-कश्मीर के बसोहली से लेकर हिमाचल प्रदेश के संपूर्ण क्षेत्र में चित्रकला का शुभारंभ सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ माना जाता है। तत्कालीन राजाओं ने कलाकारों को संरक्षण दिया। महाराज संसार चंद को इस कला का महान संरक्षक माना जाता है। पहाड़ी चित्रकला के गुलेर, नूरपुर, बसोहली, कुल्लू, कांगड़ा, चंबा, मंडी, बिलासपुर, नालागढ़, अर्की प्रमुख केंद्र रहे हैं। इस कला को जीवित रखने का संकल्प कांगड़ा जिले के दरगेला गांव के सुशील कुमार लिए हुए है। सुशील कुमार का बचपन का शौक इनकी रोजी-रोटी व रोजगार बना है। वे अपनी कला में भारतीय संस्कृति के दर्शन करवा रहे हैं। प्राकृतिक रंगों से बनी यह चित्रकला हर आगंतुक का मन मोह रही थी। उन्हें कांगड़ा कलम में उत्कृष्ट कार्य के लिए राज्य पुरस्कार से भी नवाजा गया है। इसके अतिरिक्त मुताण गांव के मनसा राम ने बांस व शीशम से निर्मित सोफा सेट प्रदर्शित किया था। इसकी खूबी यह थी कि इसमें कोई भी जोड़ नहीं था। एक अन्य कलाकार ने बांस से हवाई जहाज बनाकर, भारत की पहली अंतरिक्ष यात्री कल्पना चावला को समर्पित किया था। बिलासपुर जिले के गांव भराड़ी के शिल्पकार कांशी राम ने बांस से निर्मित वस्तुएं प्रदर्शित की थीं।

शिल्प मेलों को निहारने हजारों लोग आए। मेले में विशिष्ट मेहमानों में भारत की महिला नागरिक श्रीमती सविता कोविंद, उनका परिवार भी साथ था, जिन्होंने हिमाचल की लोक कला को निहारा ही नहीं बल्कि उसकी प्रशंसा भी की। मुख्य मंत्री श्री जय राम ठाकुर ने मेले का शुभारंभ किया। मेले में आगंतुकों ने हिमाचली पकवानों का भी लुत्फ लिया।

यह मेला हिमाचल के लोक कलाकारों, शिल्पकारों के लिए एक नई सुबह लेकर आया। कलात्मक हाथों का कमाल हर नागरिक ने देखा। सरकार के ये प्रयास हिमाचल की लोक कला को संरक्षित रखने की दिशा में एक मील का पत्थर साबित होंगे।

प्रभारी, पुस्तकालय, सूचना एवं जन संपर्क, स्कैंडल के नजदीक, द माल, शिमला-171 005, मो. 0 94180 67008

ऐतिहासिक धरोहर बैंटनी कैसल

शिमला में अनेक ऐतिहासिक इमारतें हैं। इनके साथ अनेक कहानियां, दास्तां एवं इतिहास जुड़ा है। ब्रिटिश काल की ये इमारतें आज भी अपनी भव्यता के लिए जानी जाती हैं।

प्रदेश सरकार ने इन इमारतों के संरक्षण तथा इन्हें अपने मूल स्वरूप में बनाए रखने के लिए प्रयास किए हैं। वर्तमान में माल रोड पर स्थित नगर निगम कार्यालय जिसे टाऊन हॉल के नाम से जाना जाता है, का जीर्णोद्धार अंतिम चरण में है। इस भवन का निर्माण वर्ष 1909 में किया गया था। इससे पहले माल रोड पर स्थित गेयटी थियेटर का जीर्णोद्धार पर इसे नया स्वरूप दिया गया है। अधिकांश भवन गोथिक वास्तुशिल्प पर निर्मित हुए हैं। इसकी भव्यता देखते ही बनती है।



वर्ष 2017 में सरकार ने माल रोड से चंद ही मिनटों के फासले पर माल रोड-कालीबाड़ी मार्ग पर 18,193 वर्ग मीटर में फैले ऐतिहासिक बैंटनी एस्टेट का अधिग्रहण 27.84 करोड़ रुपये में किया है। इसका अधिग्रहण भाषा, कला एवं संस्कृति विभाग ने राज्य में कला, संस्कृति के संरक्षण के साथ-साथ हैरिटेज संपत्तियों का संरक्षण सुनिश्चित बनाने के लिए किया है।

इस संपत्ति के ग्रहण से पूर्व तीन बिंदुओं में सर्वेक्षण करवाया गया। इनमें शहरी क्षेत्र में संग्रहालय का निर्माण, कला तथा पर्यटन को बढ़ावा देना तथा हैरिटेज संपत्तियों का संरक्षण प्रमुख था। इसके उपरांत सरकार ने रामकृष्ण एंड संज जिनकी यह संपत्ति थी, से इसका अधिग्रहण किया। इस भवन का निर्माण कैप्टर ए. गार्डन ने जो एक .... कलाकार थे, ने करवाया था। उसका इसके साथ लगता रिकैटी कॉटेज भी था। इसका सिरमौर क राजा ने वर्ष 1880 में अपने ग्रीष्मकालीन महल के लिए खरीदा था। यह भवन वर्ष 1946 तक सिरमौर के राज परिवार के पास रहा तथा इसी वर्ष दरभंगा के महाराज ने इसे खरीदा और वर्ष 1968 में इसे रामकृष्ण एंड संज को बेच दिया।

इस भवन ने आजादी से पूर्व तथा आजादी के उपरांत इतिहास को बनते देखा है। इस भवन में राज्य पुलिस मुख्यालय भी रहा, जिसे सरकार ने 2009 में खाली किया। इस परिसर में रोजगार कार्यालय का भवन भी रहा। इस भवन की बाहर की ओर सड़क के साथ नाहन फाउंडरी में बने रियासत के प्रतीक सील को 1902-03 में लगाया गया।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान इस भवन को सिरमौर के राजा अमर प्रकाश ने अंग्रेज सरकार को सैन्य कार्यों के संचालन के लिए दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भी इसे युद्धबंदी कैदियों के कार्य के लिए ऑल इंडिया रेडियो को दिया गया। सिरमौर की सेना के कमांडर विक्रम सिंह का निधन भी इसी भवन में हुआ था। यह अन्य रियासतों के राजाओं के लिए गेस्ट हाऊस के रूप में भी उपयोग में लाया जाता था। ग्वालियर रियासत के महाराज सिंधिया 1928 की ग्रीष्म ऋतु में यहां रहे थे।

बैंटनी एस्टेट के मुख्य भवन में विभाजन के उपरांत लाहौर से आए ट्रिब्यून समाचार पत्र में कार्यालय को सितंबर 25, 1942 से 12 मई, 1948 के मध्य खोला गया था। उस वक्त राजा जंग बहादुर सिंह तथा जे. नटराजन इसके संपादक थे। ट्रिब्यून की छपाई रिज मैदान के समीप लिडन प्रेस में होती थी। शिमल की स्थलाकृति तथा समाचार पत्र को पहाड़ों से मैदानों तक पहुंचाने तथा यहां की भौगोलिक परिस्थितियों के मद्देनजर इसे यहां से स्थानांतरित कर अंबाला ले जाया गया है। सरकार ने इस इमारत में जीर्णोद्धार के लिए 25 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है। इस भवन में संग्रहालय सहित प्रदेश का कला, संस्कृति, परंपराओं को प्रदर्शित करने के साथ-साथ कलाकारों की अपनी कला को प्रदर्शित करने, युवाओं को प्रशिक्षण देने का कार्य भी किया जाएगा। पर्यटन तथा कला के समावेश से राज्य को यहां आने वाले देशी व विदेशी पर्यटकों को हिमाचल की समृद्ध संस्कृति के साक्षात दर्शन होंगे। सरकार ने इस परिसर में इसके शुरुआत यहां शिल्प मेले के आयोजन से कर ही दिया है।

आलेख

याद आए बचपन के खेल

◆ पवन चौहान

समय कितनी जल्दी बीत जाता है और अपने साथ न जाने कितने ही मीठे-कड़वे अनुभवों को जोड़ता चला जाता है। उम्र बढ़ने के साथ पारिवारिक, सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाने के क्रम में तो वह फिर जिंदगी की चुनौतियों, मुश्किलों में उलझता ही जाता है। जब कोई इन उलझनों में उलझा कभी एकांत में बैठा किसी बच्चे की आजादी, उसकी निश्छल हंसी को देखता होगा तो अवश्य ही वह भी उतर जाता होगा अपने बचपन की गहराइयों में जहां वह हर फिक्र से कोसों दूर बस एक स्वतंत्र जीवन जीता है। यह जिंदगी का सबसे सुखद पहलू है।

बचपन को बच्चे हंस-खेल कर, मस्ती में बिताते हैं। आज का बचपन और लगभग डेढ़-दो दशक पहले के बचपन में बहुत ज्यादा अंतर आ गया है। आज का बचपन जहां इलैक्ट्रोनिक मीडिया के इर्द-गिर्द ज्यादा घूमता है वहीं पहले वाला बचपन इन सब सुविधाओं से परे अपनी ही आजादी, अपने ही तैयार मिट्टी या लकड़ी आदि के खिलौनों तथा मनमौजी खेलों के इर्द-गिर्द मस्ती करता था। वह अपने में ही मदमस्त मासूम अनुभव को जिया चला करता था। उस समय को याद करते हुए हमें वे खेल भी स्मरण हो आते हैं जो आज हमारे बच्चों के बचपन से तटस्थ से हो गए हैं। इस उम्र को याद करते हुए व्यक्ति बस यही सोचता है -



आज फिर याद आए बचपन के वे सारे खेल
वही मस्ती वही बच्चों की रेलमपेल
जिंदगी तु क्यों गुजर गई इतनी तेजी से
हर बढ़ती उम्र पूछे बस यही एक सवाल

इन खेलों में बच्चे जहां अपना भरपूर मनोरंजन करते थे वहीं वे खेल-खेल में ही जीवन की बहुत सारी बातें भी सीख जाया करते थे। यह सब संभव होता था उन खेलों से जो एक तो शरीर को चुस्त-दुरुस्त, शारीरिक तौर पर तंदुरुस्त रखते थे, दूसरे हमें अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन भी गाहे-बगाहे सिखाते चले जाते थे।

ऐसे बचपन के खेल पूरी दुनिया के बच्चों को अपनी परंपरा से मिले, अपने-अपने इलाके के हिसाब से सौगात स्वरूप खेलते हैं। पहाड़ी राज्य हिमाचल प्रदेश के संदर्भ में भी अनेक खेल बच्चों द्वारा खेले जाते थे और वर्तमान में भी खेले जाते रहे हैं। बस, हुआ इतना है कि उनका स्वरूप बदल गया है, तरीका बदल गया है। पहले खेले जाने वाले खेलों में जहां सामूहिक व्यवस्था थी, एक-दूजे की सहायता थी, नेतृत्व की भावना थी, दोस्ती थी, मासूम-सी दुश्मनी थी, हल्की-सी रूठन थी, थोड़ा-सा गुस्सा था, मनाना था, झूठी-सी अकड़ थी। और भी कुछ ऐसा था जो सबको बचपन का सही मायने में अहसास करवाता था। अब वह सामूहिक न होकर एकांत की तरफ लुढ़क गई हैं। आज बच्चा हाथ में मोबाइल पकड़े अपने खेल को अकेला पूरा करता है या फिर विडियो गेम्स का सहारा लेकर उसे अपने मनोरंजन का हिस्सा बनाता है।

बचपन के अनेक खेल हैं जो खूब खिलखिलाते हैं, नचवाते-गवाते हैं, सबका खूब मनोरंजन करते हैं। हिमाचल में कुल 12 जिले हैं जो अपनी-अपनी भोगौलिक परिस्थितियों के चलते कोई मैदानी इलाके का नेतृत्व करते हैं तो कोई खूब ऊंची-ऊंची पहाड़ियों के बीच कठिन व विपरीत परिस्थितियों के बीच अपनी गाथा, अपने जीवन का राग सुनाते हैं। यदि यहां के बच्चों के खेलों की बात करें तो सारे जिलों में लगभग एक जैसे खेल खेले जाते थे, और अब भी खेले जाते हैं। बस कुछ पहाड़ी या मैदानी इलाकों में इन खेलों में थोड़ा बहुत अंतर बोली के अनुसार उनके नामों से हो जाता है। इनमें कुछ ऐसे भी खेल हैं जिनका जन्म उन इलाकों की

सरंचना के अनुरूप हुआ है जो सिर्फ उन खास इलाकों में ही खेले जाते हैं। इस आलेख में खेलों के इतिहास, प्रचलन का विवेचन किया जा रहा है।

चहुएं (स्टापु) : इस खेल में जमीन पर कुछ क्षैतिज और खड़ी लाइने लगाई जाती हैं। अमूमन इसमें 6 वृत बनाए जाते हैं। इन लाइनों के बीच बनी जगह पर एक चपटे पत्थर को एक टांग पर उछलकर पंजे से ठोकर लगाते हुए इन खानों के बीच संतुलन बनाकर आगे-पीछे खिसकाया जाता है। यह प्रक्रिया कई चरणों में पूरी होती है। लाइन के ऊपर या इनके बाहर यदि पत्थर पड़े तो खिलाड़ी आउट हो जाता है और फिर दूसरे खिलाड़ी की बारी आती है। बिलासपुर में इसे चहुआ, कांगड़ा में स्टापु, हमीरपुर में चिप्पी, सोलन में स्टापु, और शिमला व चम्बा में स्टापु/चिप्पी व मंडी में इसे चहुएं कहते हैं।

ल्हुख लखाड़ी : यह छुप्पन-छुपाई का खेल है जिसमें खिलाड़ियों की संख्या की कोई सीमा नहीं है। बिलासपुर में इसे लुखा छुप्पी, कुल्लू में छु-छुलाई कांगड़ा व हमीरपुर में लुक लकैड़ा, सोलन में लुक मचाणी, शिमला में लुका छिप्पी, चम्बा में छप छपुहणी और सिरमौर में लुक छुपाई कहा जाता है।

आंख पर पट्टी बांधना : इस खेल में भी जितने मर्जी बच्चे इसको खेल सकते हैं। इस खेल में किसी एक बच्चे की आंख पर पट्टी बांधकर वह अन्य बच्चों को छूने की कोशिश करता है। जिसको पट्टी वाले बच्चे ने छू लिया वह आउट हो जाता है और फिर उसकी आंख पर पट्टी बांध ली जाती है। इसको खेल कर जीवन का आनंद हम सभी ने लिया है।

गुल्ली-डंडा : इस खेल के मुख्य बिंदु हैं एक छोटा लकड़ी का टुकड़ा जिसे 'गुल्ली' कहते हैं जो दोनों ओर से हल्का पैना छिला होता है तथा दूसरा लकड़ी का ही एक छोटा डंडा। इस छोटे टुकड़े को बड़े डंडे से एक तरफ से उछाला जाता है और उसी डंडे से पीटकर दूर, जितनी दूर हो सके इस डंडे की चोट से फेंक दिया जाता है। फिर उसी गुल्ली से एक फिक्स जगह पर रखे उस बड़े डंडे पर निशाना साधना होता है। यदि डंडे पर निशाना सध गया तो खिलाड़ी आउट हो जाता है, यदि निशाना नहीं लगा तो उस खिलाड़ी की बारी जारी रहती है। हमीरपुर जिले में इसे गिल्ली-डंडा, बिलासपुर में किल्ली-डंडा और लगभग सभी जगहों पर इसे गुल्ली-डंडा कहा जाता है।

पिट्‌ठू : यह एक ऐसा खेल है जिसमें बहुत सारे छोटे-छोटे चपटे पत्थरों को एक ढेरी से गिराने पर खेल के दौरान फिर से उनकी चिनाई की जाती है। लेकिन इस दौरान चिनाई करने वाले खिलाड़ियों को दूसरी टीम के खिलाड़ियों द्वारा उनको मारी गई गेंद से बचना होता है। यदि गेंद खिलाड़ी का छू जाए तो वह आउट हो जाता है। यदि टीम पूरे पत्थरों की चिनाई कर देती है तो वह टीम विजयी हो जाती है। बिलासपुर व कांगड़ा में इसे फिड्डु, हमीरपुर, सोलन, शिमला, सिरमौर, ऊना, किन्नौर में पिट्ठु, चम्बा में पिट्ठु गरम, कुल्लू में ठिंगुली बनाना मंडी में पिड्डू तथा लाहौल-स्पिति में थिप्पु कहा जाता है।

पंजघटड़े : पंजघटड़े अर्थात पांच छोटे-छोटे पत्थरों की गीट्टियों से खेला जाने वाला खेल। इस खेल को बच्चे एक जगह पर बैठकर गीट्टियों को हवा में उछाल-उछाल कर खेलते हैं। इसमें कम से कम दो खिलाड़ियों की जरुरत रहती है। इन गिट्टियों से कई और भी अलग तरह से खेल खेले जाते हैं। बिलासपुर, सिरमौर, हमीरपुर, ऊना, किन्नौर में इसे छौपचो, कांगड़ा में उच्चण गिट्टी, चम्बा में गिट्टे, सिरमौर में गिट्टी तथा लाहौल-स्पिति में क्वाच कहते हैं।



लंगड़ी टांग : लंगड़ी टांग में एक टांग पर उछल-उछल कर दूसरे खिलाड़ी को छुना होता है। इसी से ही मिलता-जुलता खेल लंगड़ी दौड़ भी है जिसमें एक टांग पर उछल-उछल कर दौड़ लगाई जाती है। इस खेल को 'पकड़म पकड़ाई' खेल से भी जोड़ा जा सकता है लेकिन यहां लंगड़ाकर नहीं पकड़ा जाएगा।

इमली गुट्‌टी : इसमें चार खिलाड़ी होते हैं जो अपनी गिट्टयों के साथ जमीन पर बने वृताकार आकृति जिसको दो व्यासों की सहायता से बराबर काटकर चार हिस्सों में बांटा गया होता है, के हरेक चार बिंदुओं पर अपनी गिट्टियों के साथ मौजूद रहते हैं। यह लुड्डो की तरह का खेल है। इसको खेलने के लिए इमली के दो बीजों को दो बराबर हिस्सों में फाड़ा जाता है। इस तरह से बीजों के चार टुकड़े बन जाते हैं जिसमें एक ओर से वे सफेद तो एक ओर से गहरे भूरे रंग के रहते हैं। इमली के इन चारों टुकड़ों को पासे की तरह इस्तेमाल किया जाता है। दो काले और दो सफेद आए तो दो कदम और पूरी तरह से सफेद हिस्सा आए तो चारों उंगली की मोटाई के बराबर या पूरा गहरा भूरे वाला हिस्सा आए तो एक हाथ तक की दूरी तक गिट्टी को आगे खिसका दिया जाता है। गिट्टियों

को पूरा चक्कर काटने के बाद वृत के केन्द्र तक पहुंचाना होता है।

इस तरह का ही एक अन्य खेल है 'मार गुड चार'। लेकिन इसे जमीन पर बने आयताकार या वर्गाकार छोटे-छोटे खानों के अंदर ऐसे ही बीज के गिरने से मिलने वाले अंकों के हिसाब से खेला जाता है और किसी एक अंतिम बिंदु पर पहुंचते ही यह खेल रुक जाता है। यदि इमली का बीज न मिले तो आड़ू या खुबानी के बीज से इन चार टुकड़ों को तैयार किया जाता है।

चूहा दौड़ बिल्ली आई : इस खेल को 'कोरड़ा' भी कहा जाता है।

कोरड़ा छमाके जिम्मे रात आई है
जिसने पीछे देखा उनकी शामत आई है।

यह लाइनें रेडर द्वारा बार-बार दोहराई जाती है। सारे बच्चे गोल दायरे में नीचे मैदान या आंगन में बैठ जाते हैं। एक बच्चा रेडर का रोल अदा करता है। रेडर के हाथ में एक दुपट्टा होता है जिसके एक कोने में हल्की-सी भारी चीज को लपेटकर बांधा गया



होता है जो बाद में मारने के काम आता है। रेडर दुप्पटे को हाथ में लेकर ऊपर लिखित लाइनों को सभी बच्चों के पीछे घूमते हुए दोहराता जाता है। फिर चुपके से, चालाकी के साथ किसी बच्चे के पीछे उसे रख देता है। यदि उसका पूरा राउंड लगाने के बाद तक भी उस बच्चे को उस दुपट्टे का जरा भी भान नहीं हुआ तो उस बच्चे को रेडर उस दुप्पटे के भारी वाले भाग से मार-मार कर भगाएगा जब तक कि वह राउंड काटकर अपनी जगह पर दोबारा नहीं आ जाता। उस वक्त सभी बैठे हुए और दौड़ाने वाला खिलाड़ी कहता जाता है-

चूहा दौड़ बिल्ली आई
चूहा दौड़ बिल्ली आई ....

यदि बैठे बच्चे को दुप्पटा रखने का पता चल जाता है तो वह उस दुप्पटे को उठाकर रेडर को दौड़ाएगा और खुद रेडर का कार्य संभाल लेगा और फिर वही पंक्तियां सबके पीछे घूमते हुए दोहराएगा। यह खेल तब तक चलेगा जब तक खिलाड़ी थक न जाए। यह खेल जहां हमें व्यक्ति के हाव-भाव, इशारों को समझने में मदद करता है वहीं एक मासूम-सी चतुराई का भी बोध करवाता है।

कंचों का खेल : इस खेल में भी खिलाड़ियों की संख्या पर कोई पाबंदी नहीं है। इस खेल की शर्त यह है कि खिलाड़ी के पास कंचे होने चाहिए बस। इस खेल में जमीन पर एक हल्का-सा छेद किया जाता है। जिसमें अपनी बारी के अनुसार अंगूठे को जमीन से टिकाकर और उंगली में कंचे को फंसाकर उस छेद में पहले अपना कंचा घुसाना होता है और उसके घुस जाने पर उसी छेद से किसी नजदीक वाले कंचे को निशाना लगाकर दोबारा छेद में कंचे को घुसाना होता है। ऐसा करने पर वह कंचा उसका हो जाता है।

ऐसा ही खेल अखरोट के साथ भी खेला जाता है लेकिन इसमें खड़े होकर ही जमीन पर खींचे वर्गाकार या आयताकार निशान की सीमा में रखे अखरोटों पर निशाना साधना होता है। इस खेल में अखरोटों को जीता जाता है। यह दोनों खेल जहां हमें निशाना साधने की प्रैक्टिस करवाते हैं वहीं अपनी-अपनी बारी से चलने की प्रक्रिया के चलते धैर्य और अनुशासन का पाठ भी पढ़ाते हैं।

पर्ची वाला खेल : इसमें कागज की पर्चियां बनाई जाती हैं जिसमें राजा, रानी, चोर, सिपाही लिखा जाता है। इस खेल में चार खिलाड़ी ही शामिल रहते हैं। चारों पर्चियों को आपस में खूब मिलाकर जमीन पर फेंक दिया जाता है। चारों खिलाड़ी एक-एक पर्ची को उठाते हैं। पर्ची उठाने के बाद राजा पूछता है कि मेरा सिपाही कौन है? जिसके पास सिपाही की पर्ची आई होगी वह बताएगा कि मैं आपका सिपाही हूं। फिर राजा सिपाही को आदेश देगा कि चोर की तलाश करो। यदि सिपाही अनुमान लगाकर बची दोनों पर्चियों में से चोर को नहीं बता पाता है तो चोर की पर्ची सिपाही को और सिपाही की चोर को दे दी जाती है। इस तरह से खेल की समाप्ति हो जाती है और पर्चियों पर लिखे अंक (जिसमें चोर को सबसे कम और राजा को सबसे ज्यादा अंक दिए गए होते हैं) एक कागज पर हर बारी के बाद लिख दिए जाते हैं। ऐसे कुछ बारियां खेलने के बाद हर खिलाड़ी के अंकों को जोड़ा जाता है। सबसे ज्यादा अंक लेने वाला खिलाड़ी विजयी घोषित किया जाता है। यह खेल जहां हमें गणित के योग और संख्या का ज्ञान करवाता है वहीं इस खेल में हर बार की पर्ची पर आने वाले पद का रहस्य भी इस खेल का आकर्षण है।

अटके-मटके दही चटाखे : इसे कितने भी खिलाड़ी खेल सकते हैं। इसमें सभी खिलाड़ी अपने दोनों पंजों को जमीन या समतल जगह पर एक साथ लाइन में रख देते हैं जिसमें से एक खिलाड़ी अपनी अंगुली से हरेक खिलाड़ी के पंजे के ऊपर अंगुली

को छूता हुआ यह दोहराता है-

अटक-मटक दही चटाखे,
अल मलोरे पटखे डोरे,
हम जम कीड़ी कांडा,
राजा गोपी चंद।

जिसके पंजे पर 'चंद' शब्द आ जाए, वह उस पंजे को उलट देता है और यदि दोबारा से दोहराने पर उस उलट किए पंजे पर 'चंद' शब्द आ जाए तो वह अपने उस पंजे को पीठ के पीछे ले जाता है। यदि ऐसे ही इन पंक्तियों को दोहराने पर दोबारा से दूसरे पंजे पर भी दो बार यही शब्द आ जाए तो वह खिलाड़ी जीतता जाता है। बारी बारी से यह प्रक्रिया दोहराई जाती है और जो खिलाड़ी अंत में बचता है वह हारा हुआ माना जाता है। यह 'अक्कड़-बक्कड़ बम्बे बो, अस्सी नब्बे पूरे सौ, सौ में लगा धागा, चोर निकल कर भागा' वाला ही खेल है। बस शब्द बदले हुए हैं।

घर-घर का खेल : यह खेल ज्यादातर लड़कियां खेलती हैं जिसमें वे अपने किसी ठिकाने पर गत्ते, दुपट्टे या किसी अन्य तरीके से घर बनाती हैं। यह खेल किसी पेड़ के नीचे या फिर किसी चट्टान या समतल जगह पर अपनी सुविधानुसार लड़कियों द्वारा खेला जाता है। लड़कियां अपने-अपने घर को खूब सारे फूलों, पत्तों, घास आदि से सजाती हैं। बता दें यह खेल उस समय खेला जाता है जब बसंत अपने यौवन पर होता है और प्रकृति कई प्रकार के फल तथा फूलों से लदी होती है। घर को सजाने के लिए प्रकृति से ही सारा साजो सामान लिया जाता है। अब होती है खेल की तैयारी। इस खेल में बच्चे दूसरे घर वालों को अपने घर पर मेहमान के रूप में बुलाते हैं और उनके आने पर उन्हे प्रकृति से मिले फल जैसे खरनु, कशमले, आखे, बैर या को दूसरी चीजें भोजन के रूप में परोसी जाती हैं। पानी के साथ मेहमान को चाय, जूस या फिर अन्य उनके घर में उपलब्ध सामान के हिसाब से पूछा जाता है। यह खेल एक भोले से समाज का चित्रण बखूबी प्रस्तुत करता है। यह कहना भी गलत नहीं है कि वे इस खेल के माध्यम से अपने भविष्य के समाज को समझ रहे होते हैं।

राणीए राणीए बाहर निकल : इस खेल में खिलाड़ियों की संख्या पर कोई पाबंदी नहीं है। यह बहुत ही प्यारा और मनोरंजक खेल है। इस खेल में बच्चा एक बारीक-सी लकड़ी लेकर उसे जमीन पर एक खास जगह पर गोल-गोल घुमाता है जिसके घुमाने पर एक छोटा-सा मिट्टी के रंग का जीव जमीन से निकलता है। इस छोटी-सी बारीक लकड़ी को घुमाते हुए बच्चे कुछ लाइनें भी दोहराते रहते हैं। अपने-अपने क्षेत्र के हिसाब से यह लाइनें बदलती रहती हैं। जिला मण्डी में इस जीव को 'राणी' या फिर 'कोल्हू मामा' कहते हुए यह पंक्तियां दोहराई जाती हैं-

'राणीए राणीए बाहर निकल
राजा आइरा'

या फिर

'कोल्हू मामा कोल्हू मामा
तेरे घरा चोर'।

जिला सिरमौर में इस जीव को 'गुग्गु' कहकर संबोधित करते हुए कहते हैं- 'गुग्गु गुग्गु तेरे घर में चोर'।

जिला बिलासपुर में इस जीव को 'बुढ़ीए' कहा जाता है और खेल के दौरान यह कहा जाता है-

'बुढीए बुढ़ीए बाहर निकल,
तेरे घरा पइरे चोर'।

यदि यह लाइने दोहराते हुए जीव सच में निकल जाए तो खिलाड़ी की जीत होती है और यदि न निकले तो वह हार जाता है। यह खेल बच्चों को समय बिताने के साथ-साथ इस रहस्य को भी बराबर बनाए रखता था कि जीव निकलेगा या नहीं।

उड़ चीड़ी, उड़ तोता : इस खेल को बहुत सारे बच्चे खेल सकते हैं। इसमें सभी बच्चे जमीन पर या किसी समतल पृष्ठ पर एक-एक अंगुली या फिर अपना एक पंजा रखते हैं। इन सभी में एक बच्चा लीडर का रोल अदा करता है जो खिलाड़ियों को थोड़ा-सा पज़ल करते हुए बार-बार दोहराता है- 'उड़ चीड़ी, उड़ तोता' या फिर 'उड़ चीड़ी, उड़ घोड़ा' या 'उड़ चीड़ी, उड़ हाथी'. ....। उसके मन में जिस पशु या पक्षी का नाम आता जाता है वह उसका नाम बच्चों को पज़ल करते हुए लेता जाता है। यदि किसी ने गलती से उस प्राणी के उड़ने पर हाथ उठा लिया जो उड़ता नहीं है तो वह खेल से बाहर हो जाता है। जैसे किसी ने हाथी के उड़ने वाली बात पर पंजा या हाथ उठा लिया तो वह आउट हो जाएगा। ऐसे करते-करते अंत में एक खिलाड़ी बचता है जो विजयी बनता है।

जीरो-काटा : इसे दो बच्चों के बीच में खेला जाता है, कॉपी



पर या फिर जमीन पर कुछ वर्गाकार खाने बनाकर। इन खानों में एक खिलाड़ी जीरो (शून्य) तो दूसरा काटा (क्रॉस) भरता जाता है। यह एक त्वरित प्रक्रिया वाला खेल है जिसमें यदि किसी खिलाड़ी के क्षैतिज, खड़े या तिरछे काटा या जीरो एक साथ में बन जाते हैं तो उसको प्वांइट मिल जाते हैं। ऐसे खेलते हुए अंत तक जिसके ज्यादा अंक होंगें वही विजेता होता है।

टिपी-टिपी टप-टप : एक कागज को चार हल्की-सी पहाड़ीनुमा आकार देकर और उसे उंगलियों में इस तरह फंसाया जाता है कि उसे आप इधर से उधर खोल या बंद कर सकते हैं। खिलाड़ी 'टिपी-टिपी टप-टप' करते हुए इस कागज को खोलता और बंद करता रहता है। सामने वाले खिलाड़ी ने जिस रंग को चुना होता है यदि वह इस कागज के इधर-उधर करने से आ जाए तो वह जीता अन्यथा उसकी हार होती है। यह खेल चालाकी, चुस्ती और एकाग्रता का है।

कन्चोह : यह वह खेल है जिसे दो खिलाड़ी खेलते हैं। इस खेल को खेलने का अपना ही तरीका है। जमीन पर कुछ संख्या में दो समांतर पंक्तियों में हल्के गहरे छेद किए जाते हैं। इन छेदों को दोनों खिलाड़ी बराबर-बराबर पत्थर की गिट्टियों से भर देते हैं। इसके बाद टॉस करने पर जिस खिलाड़ी की बारी आती है वह अपनी मर्जी से अपनी तरफ वाले किसी छेद से उन गिट्टियों का उठाकर एक-एक गिट्टी इन छेदों में रखता हुआ आगे बढ़ता रहता है। जहां ये गिट्टियां खत्म हो जाती हैं वह उसके बाद अगले खाने से गिट्टियों को उठाकर फिर बराबर सभी छेदों में एक-एक गिट्टी को रखता चला जाता है। इस दौरान कई छेद खाली भी हो जाते हैं। फिर जब इन छेदों में दोबारा से गिट्टियां डलती हैं और किसी खिलाड़ी के अपने तरफ के छेद में तीन गिट्टियां इकट्ठी हो जाएं तो वह गिट्टियां निकालकर अपने पास बाहर रख लेता है। इसे 'गाय का सुणा' (गाय का बच्चे को जन्म देना) कहते हैं। यह प्रक्रिया तब तक दोहराई जाती है जब तक पूरी गिट्टियां समाप्त नहीं हो जाती। जिसके पास अंत में सबसे ज्यादा गिट्टियां आएंगी वह विजेता बनता है। यह बहुत ही मजेदार खेल है। यह खेल अंक गणित को समझने के साथ मिलकर धैर्य से काम करने का संदेश देता है। मण्डी में इसे गाय सुणा और हमीरपुर में कन्चाहल कहते हैं।

बिचक बिल्ली : इस खेल में चार बच्चे तक खेल सकते हैं। इसमें दो बच्चे दो कोनो पर खड़े हो जाते हैं और बीच में एक या दो बच्चे खड़े हो जाते हैं। किनारे पर खड़े बच्चों के हाथों में कपड़े की गेंद होती है। इस गेंद से वे बीच में खड़े बच्चों पर निशाना साधते हैं। बीच में खड़े बच्चों को इससे बचना होता है। यदि उन्हे गेंद छु जाए तो वे आउट हो जाते हैं और यदि बीच में खड़े बच्चे ने गेंद को कैच कर लिया तो वह गेंद फेंकने वाले का स्थान ले लेता है।

खसतो पंजो खाल समुद्र देहली : यह खेल पांच बच्चों के बीच खेला जाता है। जिनके नाम खसतो, पंजो, खाल, समुद्र और देहली होता है। वे इन नामों को एक बार बोलते हुए अपनी बंद मुट्ठियों को आपस में बजाते हैं। एक बार फिर नाम लेने के बाद अपनी- अपनी संख्या के अनुसार अंगुलियों को भूमि पर या किसी समतल जमीन पर पांचों रख देते हैं। उसके बाद फिर से दोबारा हरेक उंगली को छूते हुए यही पांच नाम दोहराए जाते हैं। जिस खिलाड़ी की अंगुली पर अंतिम शब्द इन पांचों में से कोई भी आ जाए वह खिलाड़ी खेल से बाहर हो जाता है। यह प्रक्रिया दूसरे अंतिम खिलाड़ी तक दोहराई जाती है। जो खिलाड़ी बच जाता है वह हारा हुआ माना जाता है और उसे अन्य चार खिलाड़ी मजाक-मजाक में पीटते हैं। यह खेल काफी मनोरंजक है।

ऊंच-नीच का पापड़ा : इस खेल में जितने मर्जी खिलाड़ी भाग ले सकते हैं। सभी खिलाड़ी किसी हल्की-सी ऊंची जगह पर खड़े हो जाते हैं। इस खेल में एक रेडर होता है जिसने उस खिलाड़ी को छुना होता है जो धरती पर अपने पांव रख दे। जैसे ही रेडर उसे छुने को आता है वह फिर से ऊंचे स्थान पर खड़ा हो जाता है। यदि वह रेडर के छुने से पहले किसी ऊंचे स्थान पर नहीं पहुंच पाए और रेडर उसे छू ले तो वह आउट हो जाता है। छूने वाला उसे फिर चिढ़ाते हुए कहता है- 'ऊंच नीच का पापड़ा, गधे ने मारा झापड़ा'। जिसे छू लिया जाता है वह रेडर का काम संभाल लेता है। यह खेल तब तक चलता रहता है जब तक खेलने वालों की इच्छा रहे।

मुट्ठी में छुपाना : मुट्ठी में किसी चीज को लेकर छुपा लिया जाता है और फिर सामने वाले को थोड़ा पज़ल करते हुए किस मुट्ठी में वह चीज छुपाई है, के बारे में पूछा जाता है। यदि सामने वाले खिलाड़ी ने सही मुट्ठी को छू लिया तो वह जीत जाता है और फिर उसकी बारी आ जाती है। यदि उसने गलत मुट्ठी को बताया तो दोबारा पहले वाले खिलाड़ी की ही बारी आ जाती है। इस खेल को किन्नौर में 'तौंगे मंग' कहा जाता है।

छौदरो-छौदरो अर्थात बरकत। यह खेल जनजातीय जिला किन्नौर से संबंधित है। यह खेल उस समय बहुत प्रचलित था जब किन्नौर में अनाज की बहुत कम पैदावार होती थी। इस खेल में गांव के सभी बच्चे शामिल होते थे। खेतों से अनाज को पुलों से झाड़कर लाना होता था। इसमें एक झाड़ने वाली तो दूसरी ढोने वाली टीम होती थी। अनाज को ढोने वाली टीम जब दाने घर की ओर ला रही होती थी तो इनमें से कुछ छोटी लड़कियां अपनी जेब में कुछ दाने भर लेती थीं। यह खेल का ही एक हिस्सा था। अनाज झाड़ने वाली टीम उन छोटी लड़कियों को कमरे में रखी अनाज की ढेरी के ऊपर बैठाने की इच्छा रखती थी। ताकि उनकी जेब में भरे दाने निकलकर अनाज की ढेरी में वापस आ जाएं। ऐसा करने के लिए उन्हे ढोने वाली टीम झूठ-मूठ में रोकती है और हल्की-सी टोका-टाकी के बाद उन लड़कियों को अनाज की ढेरी में उलटा करके उन दानों को उनकी जेबों से वापिस ढेरी के ऊपर गिरा दिया

लघु कथा

स्वाद

◆ पंकज शर्मा

"भइया एक कुल्फी देना", मैंने कुल्फी वाले से कहा।

"अभी लो साहब", कह कर उसने झट से एक कुल्फी मुझे पकड़ा दी। मैं खोये वाली कुल्फी खाने में तल्लीन हो गया। तभी एक छोटे से मांगने वाले बच्चे ने पास आ कर कुछ इशारा किया। मैंने कहा, "क्या है?"

"बाबू जी, कुल्फी खानी है।" वह चेहरे पर दीनता के से भाव लाते हुए बोला।

पैसे देने के अलावा इस तरह से किसी भी मांगने वाले को कुछ खिलाना-पिलाना मैं ठीक नहीं समझता था क्योंकि इससे भी भीख मांगने की प्रवृत्ति बढ़ती है। ...और हमारे समाज में तो यूं ही यह एक अच्छा खासा व्यवसाय ही बनता जा रहा है, इसलिए मैं असमंजस में पड़ गया था।

मैं अभी सोच ही रहा था कि कुल्फी वाले ने उसे घुड़की दी, "चल भाग यहां से... चल, ...जाता है या नहीं।"

और वह बच्चा वहां से आगे हो लिया। उस छोटे से बच्चे पर मुझे सचमुच बड़ा तरस आ रहा था और मैं सोच रहा था, "इस छोटे से बच्चे का क्या कसूर है जिसे शुरू से ही मांगना सिखा दिया गया है, या जिसे परिस्थितिवश या किसी और वजह से मांगना पड़ रहा है।"

कुल्फी वाला शायद मेरे मन के भाव समझ गया था, बोला, "ये तो ऐसे ही यहां-वहां खड़े हो कर मांगते रहते हैं, इनका तो धंधा ही यही है, ... आप कुल्फी खाइए साहब।"

...परंतु मेरी कुल्फी का स्वाद अब फीका पड़ चुका था।

थप्पड़

"क्या हुआ बेटा, इतना रो क्यों रहे हो? और... और यह तुम्हारा गाल लाल क्यों है?"

"पापा, अभी जब मैं स्कूल से वापिस आ रहा था, तो रास्ते में दो आदमियों ने मुझे पकड़ लिया और जोर से थप्पड़ मारा। वे कह रहे थे कि यह उसी साले, हरामी का बेटा है न जिसने हमसे पैसे लेकर हमारा काम किया था।"

... मुझे लगा कि जैसे यह थप्पड़ मेरे अपने गाल पर पड़ा है।

19, सैनिक विहार, जंडली, अंबाला शहर, हरियाणा-134 005, मो. 0 94180 60445

जाता है। खेल को और मजेदार बनाने के लिए उन्हे उन अनाज के दानों से खेल-खेल में ढक भी दिया जाता है। इस प्रक्रिया को शुभ माना जाता था। उनका मानना था कि ऐसा करने से अनाज में बरकत होती है।

रुमाल वाला खेल-इस खेल में दो टीमें होती हैं। दोनों ही टीमों में बराबर-बराबर खिलाड़ी होते हैं और उन्हे एक, दो, तीन..... करके नम्बर बांटे जाते हैं। मैदान में एक वृताकर क्षेत्र बनाया जाता है जिसके बीच में रुमाल रख दिया जाता है। फिर रेफरी कोई नम्बर बोलता है। उस नम्बर वाले खिलाड़ी दोनों ओर से रुमाल को पकड़ने के लिए दौड़ते हैं और रुमाल उठाकर दोबारा अपनी सीमा में लौटना होता है। यदि रुमाल उठाए खिलाड़ी को अपनी सीमा के भीतर पहुंचने से पहले दूसरा खिलाड़ी छू ले तो प्वांइट छूने वाले को मिल जाते हैं। यह खेल चम्बा जिला में खेला जाता है।

इसके अलावा और भी खेल हैं जिन्हे बच्चे बड़े ही चाव से खेलते हैं। इसमें हम सलामी, मिट्टी से गाड़ियां व अन्य चीजें बनाना, तीर कमान, गुलेल से निशाना लगाना, आइस वाटर या विष अमृत, पिकाचु, डॉलफीन, बुसंग माड़ो, ठक-ठक कौन आया, आओ मिलो सीलो सालो..., आदि बहुत से खेलों को शामिल किया जा सकता है।

हिमाचल क्योंकि बारह जिलों का प्रदेश है और इसमें कुछ पहाड़ी, कुछ मैदानी इलाके हैं। इन क्षेत्रों की बोलियों में भी काफी विविधता पाई जाती है। इन पहाड़ी इलाके और बोलियों में काफी अंतर है। मैदानी इलाकों की सभी बोलियां लगभग आपस में मिलती-जुलती हैं और आसानी से समझ आ जाती हैं। इन बोलियों में हिन्दी, पंजाबी और डोगरी बोली के शब्दों का काफी समावेश है। लेकिन पहाड़ी क्षेत्रों की बोलियों को बहुत मुश्किल से समझा जा सकता है। बच्चों के यह खेल पूरे हिमाचल प्रदेश, चाहे फिर वह मैदानी इलाका हो या फिर पहाड़ी लगभग एक जैसे हैं। थोड़ी-बहुत भिन्नता अवश्य हो जाती है लेकिन बहुत ज्यादा नहीं। इन खेलों को अपनी-अपनी बोलियों के हिसाब से लोग संबोधित करते हैं। इन खेलों में जीवन का बहुत-सा सार समाहित है। यह कहना अनुचित न होगा कि कुछ समय के लिए अभिभावक अपने बच्चों को उपरोक्त खेलों में अवश्य शामिल करवाएं ताकि बच्चा सही मायने में एक अंदरूनी खुशी के साथ अपने बचपन की थाह पा सके।

गांव व डा. महादेव, तहसील-सुन्दरनगर, जिला-मण्डी हिमाचल प्रदेश-175018, मो : 098054 02242

शिखर से लौट कर

एक यादगार यात्रा
आस्था व प्रकृति का अभिनव मिलन

◆ विनोद भारद्वाज

मां का प्यार, माटी की महक, गांव से नाता-रिश्ता, पुरखों की जमीं - ये सब व्यक्ति को अपनी जड़ों की ओर खींचते हैं। पेड़, चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, उसका वजूद सदैव जड़ों पर ही टिका रहता है। जड़ें अंधेरे में रह कर उसके लिए जल, पौष्टिक तत्त्व इकट्ठा कर निरंतर उपलब्ध करवाती रहती हैं। शाखाओं पर लगे पत्ते सूरज की रोशनी में भोजन बना कर, पेड़ तथा जड़ों को मजबूती देते रहते हैं। यूं कहें अपना-अपना दायित्व निभाते हैं।

आज के वक्त में ऐसी भी पीढ़ियों हो गई हैं, जिनकी शाखाएं कहीं हैं तथा जड़ें कहीं हैं। जड़ों की तरह रिश्ते-नाते गांव में रहते हैं। इनसे मिलना-जुलना सिर्फ दुःख-सुख में ही होता है। ऐसे लोगों के लिए गांव की संस्कृति, परंपराएं, संबंध बहुत पीछे छूट गए हैं। नई पीढ़ी तो शहरों, महानगरों की चकाचौंध में खो सी गई हैं। गांव में भी जो सामर्थ्यवान हैं, वे अपनी पीढ़ी को शहरों की ओर धकेलने में लगे हैं। लेकिन शहर में रहने वाले भूल जाते हैं कि उन्हें भी गांव की जड़ों ने ही सींचा है।

गांव के जीवन में भाग-दौड़ नहीं है। यहां का जीवन, दिनचर्या निर्धारित नियमों पर चलती है। जीवन सूरज के उगने के साथ आरंभ होता है और सूरज के ढलने पर घरों में कैद हो जाता है। गांव-गांव तक सड़कों सहित दूसरी आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता, टेलीविजन, इंटरनेट व मोबाइल सेवाओं के पदार्पण से यहां के जीवन में भी बदलाव देखने को मिल रहा है। जिनके गांव छूट गए हैं, वे आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यटन के नाम पर, धार्मिक आस्था के नाम पर जाना पसंद करते हैं। आज के युवाओं में पहाड़ों को लांघना एक फैशन सा बन गया है। हिमाचल के हर गांव का अपना एक अलग इतिहास, कहानी, खूबसूरती, परंपराएं एवं संस्कृति है। अपने गांव की पहचान क्या है, उस पर सभी को फक्र होता है। किसी का स्वाद पानी, स्वाद सब्जी, खूबसूरती, किसी का रहन-सहन, पहनावा प्रसिद्ध होता है। यही चीजें शहर को गांव से अलग करती है। आस्था के नाम पर जून माह के दूसरे सप्ताह में मंडी जिले की सिराज घाटी में स्थित प्रमुख देवस्थल कमरू नाग की यात्रा का कार्यक्रम बना। देव कमरू नाग सिराज, करसोग घाटी के निवासियों का इष्ट देव है। इसे बड़े देव के नाम से भी जाना जाता है।

पंद्रह जून, 2018 को दोपहर दो बजे के करीब शिमला के उपनगर संजौली से सारथी राजीव के साथ यात्रा आरंभ की। शिमला को पीछे छोड़ते हुए ढली, मशोबरा, नालदेहरा की सुंदर वादियों से गुजरते हुए सतलुज नदी के किनारे बसे शांत कस्बे सुन्नी पहुंचे। इतिहास में मिलता है कि भज्जी रियासत की 29वीं पीढ़ी के शासक सोहन पाल ने सुन्नी गांव को बसाया व राजधानी की स्थापना की। नालदेहरा तक ही पर्यटकों की भरमार थी,उससे आगे तो स्थानीय लोगों की गाड़ियां, बसें व कुछ ट्रक ही लंबे फासले के साथ नजर आ रहे थे। पहाड़ों के आंचल में बसे गांव, सड़कें, निर्माणाधीन सड़कें, पहाड़ की समस्याओं, यहां के जीवन पर राह भर चर्चा का दौर चलता रहा। कुछ परिचितों के गांवों को रुक कर देखा। वापसी पर मिलने पर कहा आपके गांव को हमने देखा था। सुन्नी कस्बे की अब तसवीर ही बदल गई है। कोल बांध के निर्माण के उपरांत सुन्नी एक सुंदर झील से सटा एक टापूनुमा कस्बा नज़र आता है। कभी देवीधार से सतलुज की धारा सांप की तरह बलखाती नज़र आती थी, अब तो पूर्ण परिदृश्य ही बदल गया है। सुन्नी से छः किलोमीटर पहले बसंतपुर, जहां से रामपुर के लिए सीमा सड़क संगठन का मार्ग जाता है, में सड़क के किनारे नवनिर्मित वृद्ध आश्रम को देखकर ऐसा आभास मिलता है जैसे बेसहारों को नया आशियाना मिल गया हो। वर्ष 2013 में यह भवन जर्जर हालत में नज़र आता था। वसंतपुर से सुन्नी तक मार्ग के द्विमार्गी होने तथा जलयान से दो नए स्थल खुलने से पर्यटकों की उपस्थिति का भी अंदाजा हो जाता है। सुन्नी से पूर्व सड़क किनारे सतलुज नदी में रिवर राफ्टिंग करवाने वाले भी वाहनों को रोकते नज़र आ जाते हैं। सुन्नी का तंग बाजार पार करते ही सड़क फिर झील के साथ-साथ चलती है। तत्तापानी तक अब पानी ही पानी नज़र आता है। सतलुज नदी के किनारे गर्म पानी के चश्में

इतिहास बन चुके हैं। पुराना पुल जो वर्ष 1984 में बना था, जलमग्न है। नए कंक्रीट के पुल के पांवों तक पानी चढ़ा हुआ है। एक वक्त पुल से गुजरते वक्त जो सतलुज की धारा का शोर सुनाई देता था, अब नदी के ठहराव के साथ बंद हो गया है। ऐसा लगता है कि मानो सतलुज भी मानसरोवर से एक लंबी यात्रा के उपरांत कुछ पल के लिए विश्राम के लिए रुकी हुई है। पुल के इस ओर शिमला तथा पुल के दूसरी ओर मंडी जिला। छोटा सा कस्बा तत्तापानी पहले से ही बसों के ठहराव से अधिक नहीं रहा है। गर्मियों में तत्तापानी में रुकने का कोई साहस भी नहीं करता। बस के यात्रियों को तो बस के साथ ही चलना पड़ता है। चाहे वे करसोग से आएं या शिमला से बस का यहां रुकना अनिवार्य है। झील में गर्म पानी के चश्मों के डूबने पर ऊंचाई पर दो एक स्थानों पर पंडितों के तुलादान व नहाने की व्यवस्था के बोर्ड नज़र आते हैं। एक धार्मिक स्थल आधुनिक निर्माण के उपरांत बस स्मृतियों में ही रह गया है। कौल बांध निर्माण के कारण अनेक निवासियों को लाखों रुपये मुआवजे के रूप में मिले। ऊंचाई पर बने आलीशान भवन इसके जीते जागते उदाहरण हैं। वर्ष 1948 में सुकेत सत्याग्रह की शुरुआत भी तत्तापानी से हुई थी। इसकी याद भी इतिहास में रुचि रखने वालों के पास ही है।



कारवां सुन्नी, तत्तापानी को पार करता हुआ इस बार नई राह पर चला। तत्तापानी से दो किलोमीटर की दूरी पर 40 किलोमीटर लंबी तत्तापानी पंडार सड़क जो किन्नर, निहरी, होकर गुजरता है, की ओर गाड़ी का मुख किया। इकमार्गी, नीचे ढांक, ऊपर ऊंचे पहाड़ लेकिन पक्के रास्ते पर शिखर की ओर सफर आरंभ किया। हर मोड़ पर नया दृश्य, जंगली पेड़ों पर लगे रंग-बिरंगे फूलों की बहार। इस राह पर सारथी की निगाहें सड़क पर तथा यात्री दूर उत्तुंग शिखरों, इसके आगोश में बसे गांवों, खेत, खलियानों को निहारते हुए आगे बढ़ रहे थे। इस मार्ग पर पहला पड़ाव किन्नर गांव में आया। एक छोटा सा गांव, बस ठहराव पर एक चाय, करयाने व सब्जी की दुकान। दुकान में बैठे कुछ लोग आपसी बातचीत में मशगूल। गाड़ी से उतरते ही लाला जगदीश जी ने ऐसे अभिवादन किया जैसे वर्षों से जान पहचान हो। गर्म चाय की चुस्कियों के साथ ठंडी हवा के झोंके ने राह की सारी थकान दूर कर दी। गुफ्तगू में कहा, कहां से आए हो। कहां के रहने वाले हो। क्या करते हो। पर संवाद का सिलसिला चला। क्षेत्र का हालचाल, फसल तथा वहां से दूर-दूर तक दिखने वाले सुंदर गांवों, पहाड़ों की जानकारी हासिल की। किन्नर गांव में किसानों ने नकदी फसलों के उत्पादन से समृद्धि की नई इबारत लिखी है। सबसे बड़ी बात यह रही कि जनाब यहां से आपका शहर नजर आता है। फिर क्या था, जाखू मंदिर, संजौली, रिज़, लक्कड़ बाजार के नंगी आंखों से दर्शन हो गए। किन्नर, वह क्षेत्र है जो शिमला से शाली पर्वत के पीछे नज़र आता है। चाय समाप्त कर चलने की इज़ाजत मांगी तो पंडित जी ने वहीं रुकने का न्योता दे दिया। एक तरफ मंजिल थी तो दूसरी तरफ मेहमाननवाजी की पेशकश। हमारे मेहमान रहो। जो घर पर बनेगा, वही खाना साहब जी। बस इस बात पर इजाजत मिली कि पंडित जी अगली बार जब भी आएंगे, आपके पास रुकेंगे। बातचीत में इस गांव में वन विभाग का विश्राम गृह भी है, इस की जानकारी भविष्य के लिए मिल गई।

यात्रा पुनः पहाड़ की ओर आरंभ हुई। कुछ मील तो पंडित जी तथा शिमला के दर्शन पर ही बातचीत होती रही। आलू, फ्रासबीन की फसल से लहलहाते खेतों, चीड़, कायल, बान के मध्य से गुजरती हुई सड़क जब शिखर के पास पहुंची तो ढलानों पर सेब के बाग तथा मौसम में बदलाव नज़र आने लगा। आस पास के गांवों के अधिकांश घर पहाड़ी वास्तुशिल्प तथा छोटी स्लेटनुमा छतों वाले नज़र आए। सभी घरों की छतों की ढलान काफी थी। इससे स्वतः ही अंदाजा लगाया गया है, ये सर्द ऋतु में बर्फ को ध्यान में रखकर बनाए गए हैं। कुछ नए घरों की छतें टिन वाली भी नज़र आने लगी थीं। तत्तापानी से अभी तक लगभग तीस किलोमीटर का सफर हो चुका था। इस यात्रा में अभी तक तीन-चार छोटे वाहन व हिमाचल पथ परिवहन की एक बस ही मिली थी। यात्रा में एक वक्त तो ऐसा आया जब दूर तक दिखने वाली खाली सड़क को देखकर मुंह से बरबस ही निकला। लगता है राष्ट्रपति की सवारी गुजर रही है। सारे रास्ते बंद हैं। इसी खुशनुमा माहौल में शिखर के समीप एक स्थल पर

रुक कर प्रकृति का आनंद लेने का दिल किया। ऊंचाई से शिमला और अधिक विस्तृत रूप से दिखने लगा था। वहां से शिमला, पहाड़ों, गांवों, घाटियों के चित्र खींचे। शाम के लगभग साढ़े चार बजने को थे। पहाड़ों से धूप उतरनी शुरू हो गई थी। हवा में भी ठंड बढ़ने लगी थी। स्थानीय निवासी अपने मवेशियों के साथ पहाड़ों से उतर कर घरों की ओर प्रस्थान कर रहे थे। हर मोड़ पर पहाड़ों के दृश्य, आकाश में बादलों के रूप, हरियाली के विभिन्न रंग बदल रहे थे। बीच-बीच में रंग-बिरंगी चिड़ियाएं भी नज़र आ रही थीं। राह में किन्नर के उपरांत बंदली गांव को पार करने के उपरांत स्वच्छंद वातावरण में रुकने का मन किया। यहां राजकीय स्कूल तथा वन विभाग का विश्राम गृह भी सड़क के किनारे नज़र आया। कुछ यात्री सड़क के किनारे बैठे नज़र भी आए। इनको देखकर स्वतः ही अंदाजा हो जाता है कि बस आने वाली है। इस मार्ग पर आखिरी बस के निकल जाने पर घर पहुंचने का एक ही रास्ता रह जाता है कि मीलों पैदल चलो। गाड़ी से बाहर आकर ताजी हवा का आनंद लिया। ढलान पर बैठी स्थानीय महिला स्वेटर बुन रही थी। उसकी नज़र ढलान पर चर रही बकरियों पर थी। उससे गुफ्तगू का सिलसिला आरंभ हुआ। गांव, पहाड़ के जीवन पर बातचीत हुई। पहाड़ों में पूछे जाने वाले प्रश्न पुनः दोहराए गए। कहां के रहने वाले हो। पहली बार आए। हमारा इलाका कैसा लगा। चेहरे पर अलग तरह की मुस्कान लिए इस महिला ने बस एक ही आग्रह किया। आप हमारे मेहमान रहें। न जान न पहचान फिर भी दिल से एक निवेदन जो पहाड़ी जनजीवन, संस्कृति, अतिथि देवो भवः को दर्शाता है, का जीता जागता उदाहरण रहा। अम्मा के आग्रह व निवेदन को कैमरे में कैद कर आगे बढ़े।

रात्रि ठहराव का स्थल निहरी यहां से मात्र अब नौ किलोमीटर दूर था। राह के मील पत्थरों तथा यादों को पीछे छोड़ते हुए तत्तापानी से लगभग 34 किलोमीटर का सफर हो गया था। जैसे-जैसे मील पत्थर पीछे छूट रहे थे, वैसे-वैसे इस बात की चिंता हो रही थी कि निहरी गांव में खुला नया होटल कैसा होगा। इसी उधेड़बुन में निहरी गांव नजर आने लगा। दूर से गावं का विहंगम दृश्य देखकर ऐसा महसूस हुआ मानो कैनवास पर किसी कलाकार ने सुंदर कलाकृति बनाई हो। और हिंदी गीत 'वो कौन चित्रकार' के बोल याद आए।

निहरी शून्य किलोमीटर का मील पत्थर पारकर गांव के एक लड़के से 'जय श्रीहोटल' का रास्ता पूछा। भाई जी, वह जो सामने चार मंजिला नया मकान दिख रहा है, वही होटल है जी। बस अस्पताल रोड पर जाएं, जहां नया कॉलेज भवन बन रहा है। तहसील है तथा कॉलेज भी खुला है। वन विभाग का एक विश्राम गृह भी है।

जय श्री होटल के नीचे गाड़ी खड़ी कर, होटल की सीढ़ियां चढ़ीं तो सामने होटल के मालिक शिवराम जी नज़र आए। फोन पर ही बात हुई थी। अतिथि सत्कार में खड़े शिवराम ने पहला प्रश्न पूछा। रास्ते में कोई मुश्किल तो नहीं हुई। अभिवादन उपरांत सामान के साथ रिसेप्शन में कदम रखा। हम तीनों शांत थे। दीवार पर लगे गांव के खूबसूरत चित्र को निहार रहे थे। सभी के मन में बस एक ही बात उमड़ रही थी। गांव जिसकी आबादी मात्र 800 से 1000 के करीब है, में भी एक सुंदर आलीशान होटल। बहुत ही हिम्मत की बात है। ऐसे स्थल पर होटल खोलना, चलाना एक बहुत बड़ा जोखिम भरा कार्य लगता है। पानी पीने के उपरांत, चाय की चुस्कियों पर होटल के निर्माण, खोलने बारे बातचीत का सिलसिला आरंभ हुआ। बैंक से 50 लाख रुपये का ऋण लेकर छः कमरों वाले इस नए होटल की बात ही कुछ निराली थी। कमरों में शहरों वाली सभी आधुनिक सुविधाएं। गर्म पानी के लिए सौर ऊर्जा प्रणाली। होटल के शिखर पर साधना कक्ष। गर्म पानी/ चाय के लिए कमरे में कैटल/टेलीविजन, गर्म कंबल, रजाई इत्यादि। लाइट जाने की स्थिति में सोलर चलित लालटेन। स्थानीय निवासी श्री तुला राम चौहान के सुपुत्र श्री सेवानंद चौहान ने राजधानी शिमला में दस वर्ष तक जीवन में कुछ बनने के लिए माल रोड स्थिति फोटोग्राफी की दुकान में कार्य करने तथा उपनगर टूटु में अपनी दुकान खोल कर किस्मत आजमाई। लेकिन शहर की समस्याओं ने सदैव घेरे रखा। जब आशा की किरण नजर नहीं आई तो गांव लौट कर कुछ नया करने की हिम्मत जुटाई। कृषि/ बागबानी का पुश्तैनी कार्य तो था ही। बड़े भाई जो केंद्रीय विश्वविद्यालय में भौतिकी प्राध्यापक हैं, से सलाह मशविरा कर होटल व्यवसाय में नवंबर 2010 में कदम रखा। इस होटल को देखकर लगता है कि जिनके हौंसले बुलंद होते हैं, वे ही नया करने का दुस्साहस कर सकते हैं। आज निहरी तथा आसपास के गांव में सेवा नंद चौहान का परिवार होटल वाले के नाम से जाना जाता है।

वर्ष 2016-17 में देव समागम का आयोजन कर इस होटल का विधिवत शुभारंभ हुआ। अभी आरंभिक दिनों में होटल संचालन की कुछ समस्याएं तो हैं लेकिन भविष्य की जरूरतों तथा समाज में आ रहे बदलाव को देखते हुए इसका निर्माण किया गया है। होटल की बगल में बन रहे महाविद्यालय के मद्देनज़र धरातल मंजिल को रेस्तरां खोलने के लिए रखा गया है। अभी तो विवाह तथा अन्य समारोह घरों में ही आयोजित होते हैं लेकिन सेवानंद चौहान के अनुसार जैसे-जैसे लोगों के पास पैसा आ रहा है, वैसे विवाह या दूसरे आयोजन भी होटल में होंगे। इसके लिए होटल में स्थायी तौर पर स्टेज तथा खुले प्रांगण का प्रावधान किया गया है। कुछ ही सालों की बात है शहरों वाला दिखावा जरूर आएगा। उनके शब्द एक दार्शनिक व भविष्यवक्ता से कम न थे। आज उनका बेटा भी पिता का होटल व्यवसाय में हाथ बंटा रहा है।

निहरी गांव के इतिहास पर नज़र दौड़ाएं तो यह एक सुंदर गांव है। इसका नामकरण नेहरी यानि अंधेरे से हुआ है। कहते हैं वर्षों पूर्व यहां घने जंगल थे तथा स्थान स्थानीय बोली में नेहरी यानी अंधेरा से जाना जाता था। रियासत काल में यह सुकेत रियासत के अंतर्गत आता था। अब यह सुंदरनगर उपमंडल का हिस्सा है। नेहरी से नाम बदल कर निहरी हो गया। निहरी में नागरिक अस्पताल, बैंक, वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला तथा महाविद्यालय है। यहां आस-पास सुंदर दर्शनीय स्थल भी हैं। इनमें 7500 फुट की ऊंचाई पर स्थित टाबर हिल है जहां मोबाइल के टावर लगे हैं। स्थानीय देवता बाला टिका व तालाब का मंदिर है। जो काष्ठकूणी वास्तुशिल्प में बना है। देवता बाला टिका को आराध्य देव कमरू नाम के पुत्र के रूप में पूजा जाता है। यहां 300 वर्ष पुराना देव मशिशर मंदिर भी है तथा मंडलीधार पर हाल ही में निर्मित मां दुर्गा का मंदिर है। यह स्थल कैंपिंग के लिए प्रसिद्ध हो रहा है।

होटल की तीसरी मंजिल पर बरामदे से शिमला के दृश्य, करसोग घाटी का मशहूर धार्मिक स्थल माहूनाग, चुराग कस्बे को निहार कर रात की सारी थकान छू मंतर हो गई। संध्या का सौंदर्य अपनी चरम सीमा पर था। बरामदे में कुर्सियां लगा कर, प्रकृति, निहरी गांव को निहारते हुए सांझ के साथ ही दूर-दूर पहाड़ों पर बसे गांवों तथा शिमला की रोशनियां नज़र आने लगी थीं। वहां से चर्च, रिज, संजौली, लक्कड़ बाजार व जाखू पर स्थित 108 फुट ऊंची हनुमान जी की मूर्ति के साक्षात दर्शन हो रहे थे। शिमला से दूर होने के बावजूद ऐसा लगा रहा था कि हमारा शहर बस आंखों के सामने हैं। दूर पहाड़ों की ओर से चांद भी निकल चुका था। चांदनी रात में निहरी गांव की खूबसूरती देखते ही बनती थी। चारों ओर शांत वातावरण, आकाश में चांदनी बिखेरता चांद, तारों तथा शिमला तथा गांवों की रोशनियां देखते हुए रात के नौ बज गए, पता ही न चला। शहर में होते तो यह वक्त टेलीविजन या सोशल मीडिया पर ही कटता। रात होने के कारण ठंड भी बढ़ गई थी लेकिन अपने कमरों में जाने का कतई भी मन न था। भूख भी कुछ लगने लगी थी। इतने में खाने का बुलावा आ गया। सादा खाना, साथ में घर से था, ने भोजन को ओर भी स्वादिष्ट बना दिया। भोजन कर रात 10 बजे कमरे में आकर बस दिन की यात्रा व होटल की व्यवस्था पर कुछ चर्चा कर ऐसी नींद आई कि प्रातः 4.30 बजे शिवराम जी के स्थानीय भाषा में मधुर गीत के बोल पर नींद खुली। 5.30 बजे देव कमरू नाग की यात्रा पर जो निकलना था। पांच बजे चाय पीकर, सौर तापन व्यवस्था से गर्म पानी से नहा कर, तैयार हुए और शिवराम जी से इजाजत लेकर निहरी से 9 किलोमीटर की दूरी पर स्थित चौकी के लिए रवाना हुए। देव कमरू नाग की यात्रा के लिए तीन रास्ते जाते हैं। पहला चौकी से, दूसरा रवांडा से तथा तीसरा पंडार से जाता है।



हमें तो चौकी से यात्रा पर जाना था। चौकी सुंदरनगर-करसोग मार्ग पर एक छोटा सा स्थान है। निहरी से रवाना होते वक्त सूर्य देवता ने अपनी लालिमा पूर्व की ओर से बिखेर दी थी। गांव भी अब उठने लगा था। कुछ किसान खेतों की ओर रवाना होने लगे थे। कुछ बालाएं सड़क पर सैर के लिए निकली थीं। दो एक युवा एक मोड़ पर व्यायाम कर रहे थे। इसे देख कर अचंभा हुआ कि गांव के युवा भी अपनी सेहत के लिए चिंतित हैं। गांव के समाप्त होने पर छोर पर नई बनी सब्जी मंडी में भी कुछ चहल पहल होने लगी थी। इस शांत सड़क पर हमारी गाड़ी आगे बढ़ रही थी। इसी दौरान पंडार से एक किलोमीटर पीछे जंगली मुर्गों के एक परिवार को सड़क से गुजरते देखा। प्रकृति के तोहफे भी दिन की शुरुआत पर किसी सुरक्षित स्थान पर ठिकाना ढूंढने के लिए निकल पड़े थे। सुनहरी रंग, कलगी तथा परिवार के एक साथ देखने पर चित्त प्रसन्न हो गया।

पंडार पहुंचने पर करसोग-सुंदरनगर मार्ग पर आ गए। सड़क में बदलाव था। गांव की सड़क से यह मार्ग ज्यादा बेहतर था। गाड़ी की भी रफ्तार मार्ग की दृष्टि से बढ़ गई। छः बजे के करीब हम समुद्रतल से नौ हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित लोक निर्माण विभाग के विश्राम गृह के प्रांगण में पहुंच गए। विश्राम गृह का चौकीदार वर्षों से परिचित था। उससे मिल परिवार का कुशलक्षेम तथा श्रद्धालुओं, पर्यटकों की संख्या बारे जानकारी हासिल की।

अधिकांश यात्री रवांडा से यात्रा के लिए जाते हैं। कुछ अभी भी चौकी से होकर जाना पसंद करते हैं।

चौकी से देव कमरू नाग पैदल सफर लगभग आठ किलोमीटर का है। आधार से ही चढ़ाई आरंभ हो जाती है। दो किलोमीटर की दूरी पर इस पैदल मार्ग पर स्थित आखिरी बस्ती ग्राम पंचायत रवांडा के तहत गांव वनवाली आता है। मार्ग सात-आठ घरों के इस छोटे से गांव में सभी घर पत्थर तथा स्लेट वाली छत से बने हैं। गांव तक रास्ता मनरेगा के तहत पक्का पत्थरों वाला बना है। गांव अब दो-तीन वर्षों से तरक्की की राह पर आगे बढ़ता नज़र आता है। गांववासियों ने पारंपरिक गेहूं तथा आलू के साथ लहसुन तथा मटर की खेती को अपनाया है। अपने खेत में गोबर डाल रही दुर्गी देवी ने बताया कि तीन वर्षों से लहसुन की अच्छी फसल हो रही है। उस वक्त हर घर के बाहर लहसुन के ढेर लगे थे। गांव का एक किशोर अपनी खच्चर पर दो बोरी लाद कर चौकी से सफर पर निकल पड़ा था। एक ओर का भाड़ा 70 रुपये बोरी निर्धारित किया गया है। हमने भी वापसी में दुर्गी से लहसुन लेने का वायदा कर अपने कदम आगे बढ़ाए। पथरीली पगडंडी पर से नीचे गहरी खाई तथा दूर-दूर के सुंदर दृश्य दिख रहे थे। करसोग-सुंदरगनर मार्ग ऊंचाई से सांप की तरह नज़र आ रहा था। गांव में पेयजल, बिजली उपलब्ध है। जून 2017 में गांव में पेयजल के लिए नया टैंक बनवाया गया है। उस पर उप प्रधान यशवंत सिंह का नाम तथा बनने की तिथि बड़े अक्षरों में लिखी नज़र आती है। गांव को पार करते ही जंगल का रास्ता आरंभ होता है। धीरे-धीरे कदम आगे बढ़ाते हुए दूसरा पड़ाव वह नाला आया जहां वर्ष 9 जुलाई, 1994 में हिमाचल-पंजाब के तत्कालीन गवर्नर सुरेंद्रनाथ का जहाज दुर्घटनाग्रस्त हुआ था। उस वक्त इस नाले में गुज्जर दितू का डेरा था। जो अब खंडहर बन गया है। डेरे की गिरी दीवारों तथा आसपास फैले पत्थर इसके गवाह हैं कि कभी यह एक अबाद आशियाना था। यहां तक पहुंचते ही लगभग 6 किलोमीटर की यात्रा घने जंगल के मध्य बनी पगडंडी से गुजरती है। अनेक जगह गिरे पेड़ों के ऊपर से लांघ कर जाना पड़ता है। शांत वातावरण में कभी-कभी भेड़ों की आवाज आने से जंगल की शांति भंग होती है। पक्षियों के चहचहाने की आवाजें तो हर फर्लांग पर बदलती रहती हैं। अनेक जगह पेड़ों की जड़ों की सीढ़ियां यात्रियों का सहारा बनती हैं। मानो प्रकृति ने इनका निर्माण कर राहगीरों की यात्रा को सुगम बनाया हो। सफेद, जामनी पीले फूलों तथा नागछतरी की बूटियों से भरी ढलानों को पार कर तीसरा पड़ाव शिखर के समीप फूलों से लकदक घाटी का आता है। शिखर पर मखमली घास पर सुंदर जंगली फूलों को देखकर कुदरत के करिश्मे को दाद देने का मन करता है। लगभग एक किलोमीटर में फैली इस घाटी में आराम कर जड़ी-बूटियों की खुशबू से हर व्यक्ति तरोताजा महससू करता है। यहीं से शिकारी देवी के लिए पैदल रास्ता जाता है, जहां पहुंचने में 6 से सात घंटे लगते हैं। इस हरी भरी घाटी में दितू गुज्जर का पोता रफीक अहमद अपनी भैंसों को चरा रहा था। मई से अक्तूबर तक वह यहां अपनी भैंसों के साथ रहता है तथा सर्द ऋतु के आगमन पर नालागढ़ के समीप रोपड़ को चले जाते हैं। रोजाना 35-40 किलो दूध साथ लगते गांव रवांडा बिक्री के लिए ले जाते हैं। वे कमरू नाग तथा शिकारी देवी के जंगलों में अपने दादा के वक्त से आ रहे हैं। 21वीं सदी में भी वे परिवार सहित घुमंतू जीवन को जीने में आनंद महसूस करते हैं। रफीक के शब्दों में, 'बाबू वक्त बदल गया है। अब हम इन पहाड़ों पर अकेले नहीं हैं। मोबाइल है। कमरू देव में लाइट है। चार्ज कर लेते हैं। लेकिन हमारे लिए तो पुराना वक्त है। हम इस हाल में खुश हैं। जंगल में रहने का मजा ही कुछ और है। आप भी तो जंगल में आनंद लेने के लिए आए हैं। हम तो प्रकृति में रह कर प्रसन्नचित्त हैं। खुदा ने जैसे रखा है, वैसे हम रह रहे हैं। जंगली जानवरों, अकेलेपन से डर नहीं लगता। डर काहे का जब खुदा हमारे साथ है।' देव कमरू नाग का भी आशीर्वाद हमारे पर है। आपसी भाईचारे, सौहार्द की ऐसी मिसाल उत्तुंग पहाड़ पर देखने को मिली, तब ताज्जुब ही हुआ। अगले हफ्ते संक्रांति को सरानाहुली मेला लगेगा हम भी लुत्फ उठाएंगे। यहां घाटी पर जाकर आभास मिलता है कि यहां आकाश व पहाड़ का मिलन करवाने में बादल एक चादर का रूप धरते हैं।

चंद मिनटों उपरांत देव कमरू नाग का निर्माणाधीन गेट, चारदीवारी तथा पक्का रास्ता आने पर दर्शन की उत्सुकता बढ़ गई। मोबाइल पर लगभग सात किलोमीटर के सफर की सूचना मिल चुकी थी। 15 मिनट उपरांत झील के दर्शन होने लगे और मंदिर की घंटी की आवाज आने लगी। मेले से यह एक सप्ताह पहले की बात है। प्रथम आषाढ़ को यहां सरानाहुली मेला आयोजित होता है। उस समय यहां मंडी जिले की करसोग और चच्योट घाटी से सैकड़ों की संख्या में लोग आते हैं। फिर भी झील के साथ परिक्रमा की एक ओर अस्थायी बाजार सज गया था। चाय, पकोड़ों, जलेबी, खिलौनों, प्रसाद की दुकानें सज गई थीं। अवकाश होने के कारण मंदिर पर लगभग 200 के करीब श्रद्धालु जुटे थे। झील के एक ओर लकड़ी के स्तंभों पर विशुद्ध लकड़ी से बने मंदिर के मध्य देव कमरू नाग की प्रस्तर मूर्ति विराजमान है। इस मंदिर की छत है दीवारें नहीं हैं। सभी देव के सम्मुख धूप, प्रसाद चढ़ाकर पूजा-अर्चना में व्यस्त थे। पुजारी प्रसाद के रूप में चावल देते हैं। कमरू नाग झील को खजाने वाली झील के नाम से भी जाना जाता है। जिन श्रद्धालुओं की मन्नत पूर्ण होती है, वे सोना, चांदी झील में चढ़ाते हैं। यहां लिखी चेतावनी के बावजूद श्रद्धालु नकदी भी झील में चढ़ा देते हैं। झील में नोट तैरते नजर आते हैं। अब न्यायालय के आदेशानुसार पशु-बलि पर पूर्ण प्रतिबंध है। पूजा अर्चना कर देवदार के घने पेड़ों के बीच इस स्थल

की परिक्रमा की। मंदिर स्थल पर 9.15 के करीब पहुंचे थे। बिलासपुर के दानवीरों द्वारा मेला स्थल पर भंडारे का आयोजन भी किया था। इस भंडारे का संचालन तीन चार वर्षों से निरंतर किया जा रहा है।

कमरू नाग झील तथा मंदिर की ऐतिहासिकता पर नज़र दौड़ाएं तो इस स्थल का संबंध पांडवों के ठाकुर से भी जाना जाता है। महाभारत के युद्ध के दौरान बड़े-बड़े योद्धा इकट्ठे हो रहे थे तो पर्वतराज हिमालय के आंचल में रत्नयक्ष नाम का योद्धा भी भाग लेने के लिए जा रहा था। यह योद्धा उस पक्ष में युद्ध करने को आतुर था, जो हार रहा हो। भगवान कृष्ण को इसका आभास हो गया। उन्होंने ग्वाले का भेष बनाया। पहले उसकी धनुर्विद्या की परीक्षा ली थी। फिर वचन लेकर उसका सिर मांग लिया। ऐसी मान्यता है कि श्रीकृष्ण ने उसके उसके आग्रह पर उसे वरदान दिया कि वह महाभारत युद्ध देखेगा और तदोपरांत युद्ध की समाप्ति पर पांडव उसकी इच्छा अनुसार उसे पर्वतीय क्षेत्र में लेकर आए। जब वे वर्तमान स्थल पर पहुंचे तो रत्नयक्ष ने वहां रुकने की इच्छा व्यक्त की। इस पर उसने त्रेता युग में वासुकि नाग की संतान होने का वृतांत सुनाया। मैं यहां 'कंवरू नाग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा इस युग में रत्नयक्ष राजा बना। इस वृतांत के उपरांत पांडवों ने देव कमरू नाग को यहां विधि विधान से प्रतिष्ठित किया। समुद्रतल से 9 हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित अध्यात्मक स्थल प्रकृति प्रेमियों के लिए मनोरम पर्यटन स्थली है। यहां लकड़ी का बना कमरू नाग मंदिर, मंदिर के मध्य में स्थित कलापूर्ण पत्थर की मूर्ति, लगभग आधा किलोमीटर घेरे में फैली झील और चारों ओर खरशु, देवदार, कायल, रई, के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष इस स्थल के सौंदर्य को चार चांद लगाते हैं।

कमरूनाग देवता को भेंट चढ़ाने की एक विशिष्ट परंपरा है। श्रद्धालु जन अपनी भेंट मंदिर में मूर्ति के चरणों में अर्पित न कर झील में अर्पित करना उचित मानते हैं। इस परंपरा से इस झील में सिक्कों तथा कीमती धातुओं का भारी भंडार संचित है।

देव कमरू नाग से आज्ञा लेकर उसी रास्ते से चौकी की ओर प्रस्थान किया। आकाश पर बादल नज़र आने लगे थे। ठंडी हवा चल रही थी। लेकिन मौसम सुहावना था। दिन के बढ़ने के साथ कुछ युवाओं के दल तथा परिवार नज़र आने लगे थे। इस बार देवस्थल पर नई सराय भवन का निर्माण, श्रद्धालुओं के लिए नलकों की व्यवस्था, शौचालय की व्यवस्था नज़र आई। संपूर्ण झील हरी काई की चादर से ढकी थी। इस दौरान पहली बार मंदिर के आसपास कूड़ेदान की व्यवस्था भी नज़र आई। स्थल को स्वच्छ व साफ-सुथरा रखने के लिए हिदायतों वाले बोर्ड भी लगे थे।

धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए फूलों की घाटी में आए। शिमला से आया एक दल शिकारी देवी की यात्रा पर निकलने वाला था। साहसिक प्रेमियों के लिए यह पैदल मार्ग हाल ही के वर्षों में काफी लोकप्रिय हुआ है।

पहाड़ों को जितना चढ़ना मुश्किल होता है, उतना ही उतरते वक्त भी फिसलने तथा खाई में लुढ़कने का डर लगा रहता है। पगडंडी पर नज़र रखकर कदम धीरे-धीरे आगे बढ़ाते गए। कहावत है कि वापसी का रास्ता सदैव कम होता है। इसलिए गुज्जर का डेरा, जंगल का रास्ता कब समाप्त हुआ, पता ही न चला। यात्रा की स्मृतियों, प्रकृति के सान्निध्य में विचारों से लेकर कदम अब आखिरी गांव के छोर पर पहुंच गए। वहां रुक कर दूर-दूर तक फैली घाटियों, पर्वतों को निहारा। समय लगभग 11.30 बजे के करीब होने लगा था। और सूरज भी कुछ तप गया था। दुर्गी से वापसी में लहसुन खरीदने का वायदा जो किया था। उसने पांच किलो लहसुन तोल कर रखा था। जैविक रूप से तैयार लहसुन की खेती तीन वर्ष पूर्व होनी आरंभ हुई है। पहले ग्रामवासी आलू तथा गेहूं ही बीजते थे। लहसुन की फसल से गांव में नकदी फसल उत्पादन का नया दौर आरंभ हुआ है। सभी परिवार लहसुन बेचने में व्यस्त हैं। गांव के बच्चे भी यात्रियों की आवाजाही से खुश नज़र आए। स्कूल में अवकाश होने की स्थिति में वे प्रकृति में उगने वाली सब्जी लिंगड़ बेचने को आतुर थे। हमने भी 10 रुपये के हिसाब से पांच गठियां लिंगड़ू खरीदी। विशुद्ध वातावरण में पैदा हुई इस सब्जी का स्वाद ही कुछ और है। लिंगड़ू की सब्जी, मदरा तथा अचार बनाया जाता है। स्थानीय निवासी इसे सर्द ऋतु के लिए सुखा कर भी रख लेते हैं।

गांव से चौकी का रास्ता अब मात्र दो किलोमीटर दूर था। गांव के बच्चे रोज दो किलोमीटर चल कर पढ़ाई करने राजकीय विद्यालय चौकी आते हैं। बारह बज कर बीस मिनट पर हम विश्राम गृह चौकी में थे। विश्राम गृह का चौकीदार इंतजार में था। उसके साथ अनेक वर्षों से पहचान जो थी। कुछ देर रुक कर शिमला की ओर प्रस्थान किया। चौकी में दोपहर का भोजन किया। शिमला जाने को यहां से दो मार्ग थे - एक तो जिस मार्ग से आए थे और दूसरा पांगणा, चुराग होकर। लेकिन सभी की सहमति पंडार-तत्तापानी मार्ग से जाने की बनी। यह दूसरा मार्ग से पैंतीस किलोमीटर कम था। मार्ग संकरा तो था ही लेकिन यातायात न के बराबर। सारथी को भी इस मार्ग पर आने का अनुभव जो हो गया था। पंडार से तत्तापानी तक सारा मार्ग लगभग ढलाननुमा था। आते वक्त जिन नजारों पर निगाह नहीं गई थी, उन्हें भी देखने का मौका मिला। वापसी में निहरी गांव की खूबसूरती को दिल खोल कर देखा। फोटो खींची। निहरी गांव से गुजरते हुए, वहां मिठाई की दुकान पर बन रही गर्मागर्म जलेबियां खरीदीं। इसके स्वाद की तुलना भी तो शहर की जलेबी से करनी थी। यात्रा के स्वाद के साथ इसका स्वाद भी बहुत लगा। पहाड़ी की कठिनाइयों, सुंदरता यहां के जीवन, परंपरा पर बात

(शेष पृष्ठ 44 पर)

कहानी

आज का महाभारत

◆ श्याम सिंह घुना

मां ने समाचार दिया कि ससुर साहब कल पड़ोसियों के यहां पधारे थे। रात वहीं रहे। इस पर कमल ने पूछ लिया, "यहां क्यों नहीं आए होंगे?"

मां ने उत्तर दिया, "यहां तेरी घरवाली के डर से नहीं आया होगा कि कहीं बेटी कुछ मांग न ले। इस बार तो बागीचा बेचने के उपरांत इधर आया ही नहीं।"

कमल ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि गीता को इस बार सख्त चेतावनी देगा, "खबरदार जो अपने बाप से कुछ मांगा। विवाह पर तो कुछ दिया नहीं। अब किस्तों में देकर एहसान मार रहे हैं। कभी गाय तो कभी बैल। कभी रेडियो कभी प्रैशर कुकर। इनका भी पहले खूब प्रचार किया जाता है।"

अंदर-ही-अंदर वह अपने ससुर पर खूब बरस रहा था। इस बीच मां ने यह कह कर आग में घी डाल दिया, "एक दिन पहले भी आया था यहां। कह रहा था कि अगर कमल बेचता है तो दीपक इन लकड़ियों को खरीदना चाहता है। मैंने कह दिया कि नहीं। देखो न उसे। एक दामाद की मजबूरी का फायदा दूसरे दामाद से उठवाना चाहता है क्योंकि वह मालदार है और तू उसकी नज़र में दीन-हीन।"

कमल ने मकान बनाने की योजना बनाई थी। दस-बारह चट्टे पत्थर और लकड़ी का मैटीरियल इकट्ठा किया था। किंतु विवाहोपरांत उसके जीवन की दिशा ही बदल गई थी। उसके सारे कामों, सारी योजनाओं पर पानी फिर गया था। मकान की लकड़ियों को इस उम्मीद से किसी प्रकार बचाए हुए था कि कभी-न-कभी तो अवसर मिलेगा। वह अपने लिए मकान बनाएगा। किंतु जिनसे आशा थी उन ससुर जी ने अपने मालदार दामाद का पक्ष लेकर दूसरे दामाद की आशाओं पर पानी फेर दिया है। वह उसके 'मैटीरियल' को बेचना चाहते हैं।

जब परिश्रम, ईमानदारी, तपस्या, भक्ति, अच्छाई- कुछ भी काम न आए, फलदायक न हो, हर ओर निराशा ही हाथ लगे और चतुर्दिक अंधेरा छाया हो तो मार्क्सवाद सत्य प्रतीत होता है और ईश्वर अस्तित्वहीन। रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं पर ही मानव समाज के आपसी संबंध टिके हुए प्रतीत होते हैं। विशेषकर, तब जब तमाम अच्छाइयों को नकार कर सगे-संबंधी तक हमें हमारी आर्थिक औकात देख कर ही अपनाते हों। यदि आप आर्थिक रूप से संपन्न हैं, तो संबंध भी घनिष्ठ होंगे। यदि नहीं, तो संबंध भी वैसे ही उसके अनुकूल होंगे।

जब परिश्रम, ईमानदारी, तपस्या, भक्ति, अच्छाई- कुछ भी काम न आए, फलदायक न हो, हर ओर निराशा ही हाथ लगे और चतुर्दिक अंधेरा छाया हो तो मार्क्सवाद सत्य प्रतीत होता है और ईश्वर अस्तित्वहीन। रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं पर ही मानव समाज के आपसी संबंध टिके हुए प्रतीत होते हैं। विशेषकर, तब जब तमाम अच्छाइयों को नकार कर सगे-संबंधी तक हमें हमारी आर्थिक औकात देख कर ही अपनाते हों। यदि आप आर्थिक रूप से संपन्न हैं, तो संबंध भी घनिष्ठ होंगे। यदि नहीं, तो संबंध भी वैसे ही उसके अनुकूल होंगे।

कमल के विचार आजकल भगवान के अस्तित्व को लेकर तर्क-वितर्क में फंसे हुए थे। वह अपने बच्चों की शिक्षा को लेकर भी अत्यंत ही अपमानित व निराश था। क्या-क्या योजनाएं नहीं बनाई थी उसने। कितने सपने संजोए थे उनकी शिक्षा को लेकर। किंतु एक ही गलत कदम ने उसे मीलों के चक्कर में डाल दिया था। न वह दूसरों की तरह भाई-बहनों, पारिवारिक जिम्मेवारियों को उठाने के चक्कर में पड़ता, न अपने भविष्य के उज्ज्वल पक्ष की उपेक्षा करता। उसकी चारपाई ढीली हो गई थी। वह फर्श पर बिस्तर बिछाए उस पर पड़ा पढ़ रहा था। पास ही बच्ची पढ़ रही थी। एकाएक बिजली चली गई। कुछ देर बिजली आने की प्रतीक्षा करते रहे। नहीं आई तो वह दोनों रसोईघर में चले गए। वहां उसका चार वर्षीय बेटा एक कौली से तड़के हुए कुलथ खा रहा था। बिटिया ने उसे कुलथ खाते देखा तो उसका मन भी ललचा उठा। विशेषकर, इसलिए कि उसका भैया उसे दिखा-दिखाकर ज़ाहिर कर रहा था, "हाय, देखो मैं खा रहा हूं कुलथ।"

उनकी मां को चाहिए था कि बच्ची की मनःस्थिति भांप करके उसे भी अन्य कौली में तुरंत कुलथ दे देती। किंतु उसके लिए तो ऐसे अवसर महाभारत खड़ा करने हेतु स्वर्णिम होते हैं। अपने

पति को नाराज करके वह लड़ने के लिए भड़काती है। उसके मुंह लगने हेतु मज़बूर करती है। कोई दिन विरला ही निकलता है जब वह घर में महाभारत खड़ा नहीं करती। झगड़ा किए बिना उसे मज़ा आता ही नहीं। इसके बिना उसे चैन नहीं आता है। उसने बच्ची की भावनाओं को अनदेखा कर दिया। जब बच्ची डिनर की मांग करने लग गई तो उसे अनसुना कर दिया। अति में बच्ची ने ज़ोर-ज़ोर से रोना आरंभ कर दिया। उसका रोना सुनकर गीता ने उसे तुनकते हुए डांटा -

"अब क्या हो गया... आ...अ... मर रही है क्या, इसको खाने की चीज़ दिखी नहीं कि.... दिन भर इतना तो ढकोसती रहती है। ठूंस-ठूंस कर...."

मां-बेटी के मध्य शांति स्थापित करने की गरज से कमल बोला, "अरे यार दे दो न इसे भी।"

"देती हूं, देती हूं बाबा। ज़रा एक-दो रोटी तो बना लेने दो।"

"तब तक इसे भी कौली में निकाल कर कुलथ ही दे दो। बच्चों को समझाना चाहिए। इन्हें भड़काना नहीं चाहिए। इस तरह तो यह चिड़चिड़े बन जाएंगे। जिद्दी भी।"

"हां-हां। आप और आपके लाडले तो बगैर बात के ही चिड़चिड़ा बन जाते हैं।"

"बस यही तो समस्या है। बिन बात के बतंगड़ बना देती हो। तुम्हारे साथ हर बात पर पहले बहस और फिर झगड़ा खड़ा हो जाता है। तब जाकर कहीं बात बनती है।"

ऐसे अवसरों पर उसे बहुत गुस्सा आता है। आवेश में आ कर वह हाथ में लगी चीज़ों को पटक देता है। किंतु पत्नी पर हाथ नहीं उठाता। जबकि गीता यही चाहती है कि पति उस पर हाथ उठाए। एक मर्तबा ही सही। कहने को तो होगा कि पति उसे बहुत मारता है। किंतु उसने कसम खा रखी है कि अबला पर कभी हाथ नहीं उठाएगा। संभवतः यही कारण है कि राई का पहाड़ बन जाता है। तू-तू, मैं-मैं चरम पर पहुंच जाती है। वह अकसर उसे समझाने का प्रयास करता है। तर्क करते-करते वह दोनों बहस पर उतर आते हैं और फिर गाली-गलौच पर। जब तक कमल गीता पर ज़ोर-ज़ोर चीखने और चिल्लाने नहीं लग जाता, तब तक महाभारत चलता रहता है। गीता रणचंडी बन जाती है। उसके रसोईघर में थाली-गिलास से लेकर बाल्टी-कूकर तक कोई ऐसी वस्तु नहीं जो दागी नहीं बना दी गई है। चीनी-मिट्टी के बर्तनों में से किचन में केवल एक तश्तरी ही बची है। यह तश्तरी दही का बर्तन है और अलमारी में रहती है। दूध-घी को ज़ाया होते हुए वह देख नहीं सकता। कहीं भगवान की फटकार न लग जाए। वह डरता है।

जब उस पर गुस्से का दौरा पड़ता है तो वह दरवाज़े-खिड़कियों को पटकता है। आते-जाते हुए इनके कब्ज़े-कुंडे ढीले पड़ गए हैं। पल्ले अपने-अपने स्थान से हिल गए हैं। इन खिड़की दरवाजों पर 'महाभारत' होने पर कभी वह लात-घूंसे जमाता है तो कभी अपना सिर पटकता है। ऐसे समय में गीता खुदकुशी की धमकी देती हुई सामने से भाग जाती है। तब बच्चे रोते-चिल्लाते हुए अपनी मां के पीछे भागते हैं। अपना बाप उन्हें कसाई जान पड़ता है। एक दिन गीता ने बोतल उठा कर कीटनाशक से अपना मुंह भर लिया। कमल डर गया। भाग कर गीता का गला पकड़ा कर दबाया और गीता ने मुख खोल कर ज़हर उगल दिया। गुस्से में भड़कता हुआ कमल गरजते हुए बोला, "यह रणचंडी तो यहां इस परिवार को तबाह करने के लिए आई है। बनाने नहीं। इन मासूम भोले-भाले बच्चों का भविष्य बर्बाद करके ही रहेगी।"

गीता तो यों ही ज़हर निगलने का ढोंग ही कर रही थी। कमल ने उसका मुख व गला छुआ ही था कि उसने कीटनाशक उगल दिया। कमल को भय था कि आवेश में आकर गीता कहीं ज़हर निगल ही न दे। पोता-पोती का रोना-धोना सुन कर दादी घटनास्थल पर पहुंच गई। बहू के गले पर बेटे का हाथ देखकर मां ने सोचा कि वह बहू का गला दबा रहा है। गीता की सास ने भाव देखा न ताव और कपड़ा धोने की थप्पी उठा कर बेटे की पिटाई शुरू कर दी। थप्पी का एक वार कमल के कूल्हे पर इतना ज़ोर से पड़ा कि उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। दर्द से आंसू बह चले। एक दो मिनट तक इस असहनीय पीड़ा से लोट-पोट हुए कराहता और दहाड़ता रहा। कंक्रीट के फर्श पर से फिर उठा और घायल कूल्हे को दबाता, सहलाता और लंगड़ाता हुआ अपने कमरे में चला गया

उस दिन वह बहुत रोया था। दहाड़-दहाड़ कर। गुस्से और अफसोस की पीड़ा से उसका रोम-रोम चित्कार कर रहा था। चालीस की उम्र में भी उसकी मां उसे बच्चा ही समझकती है। अब समय आ गया था कि वह इसका प्रतिकार करे। इस नतीज़े पर पहुंचने के बाद उसने एक दिन ऐसे महाभारत के समय अपनी पैंसठ वर्षीय मां को टांग से पकड़ कर फर्श पर खूब घसीटा और झकझोरा। मां का ट्रंक, बिस्तर, चारपाई, गीता, रामायण और दूसरा सामान कमरे से निकाल कर बरामदे में लाया और एक-एक करके नीचे आंगन में फेंक दिया।

"जा यहां से। निकल बुढ़िया। मैंने तेरा ठेका नहीं ले रखा। तेरे दूसरे भी बेटे हैं जिन्होंने पिता की मृत्यु के उपरांत कभी तेरे हाथ पर थूका तक नहीं। जा उनके पास जा कर रह। कुछ साल तो रह कर देख। मैं तेरी सेवा भी करूं और मार भी खाऊं। भगवान से डरूं भी। जा यहां से।"

उस दिन से मां ने उसे डांटना-डपटना तो बंद कर दिया किंतु कमल गांव बिरादरी में बदनाम हो गया। लोग कहने लगे कि वह अपनी मां और पत्नी को पीटा करता है। गृहस्थी होती ही ऐसी है। बहुत सताती है। दुष्ट कहीं की। पत्नी के गुस्से को मां पर उतारना कहां का न्याय था?

चटकारे ले-लेकर बेटी कौली से फ्राइड कुलथ खा रही थी।

बेटा खा कर निपट चुका था। कमल को प्यास महसूस हुई। उसने गीता से लस्सी का गिलास देने को कहा। उसने अनसुना कर दिया तो बेटे को आदेश दिया, "जा बेटा तू ही दे दे गिलास लस्सी निकाल कर।" बेटा उठा और गिलास लेकर हिंडोलियम की छोटी गागर से लस्सी उंडेलने लगा। अभी गिलास भरा ही था कि लस्सी की गागर यकायक फिसलने से गिलास में ज़रा सा धक्का लग गया। यह छोटा सा लड़का गागर को संभाल न सका। साफ-सुथरे लकड़ी के फर्श पर लस्सी फैल गई। गीता गुस्सा हो गई, "इन लोगों को तो ज़रा भी सब्र नहीं है।"

कमल ने जवाब दिया, "ठीक हुआ। अब करती रहना साफ। तुमसे मांगी थी। दे देती तो लस्सी न गिरती, न फर्श मैला होता।"

गीता की आदत ही है। एक-दो बार तो सुनती ही नहीं। पति की बराबरी में रहने की चाहत में उसकी आवाज़ मोटी और चेहरा तमतमाया सा बना दिया है। उसका गोरे रंग व मुखड़े की आभा को उसके गुस्से ने खौलते हुए पानी का रूप दे दिया है, "आपकी जल्दबाज़ी और किच-किच से तो मेरा यह हाल हो रहा है। फिर कहते हैं कि दुबली होती जा रही है।"



"दुबला तो आदमी अपनी वजह से होता है। सभ्य लोगों में संकेतों की भाषा ही काफी है। चिक-चिक, न चूं-चपड़, सेहत जाएगी तो तुम्हारी। जूता जब नया-नया होता है तो पहनने वाला खूब रखाव करता है। प्रतिदिन पॉलिश से चमकाता है। पुराना होने पर एक-दो बार मुरम्मत करवाई जाती है। उसके बाद उसे फेंक दिया जाता है।"

"औरत जूता नहीं होती। वह मां होती है। बहन होती है। पत्नी होती है और गृह-स्वामिनी, गृह-शोभा तथा गृह-लक्ष्मी कहलाती है। मैंने ऐसा सुना था। आपके साथ शादी के बाद ही यह बातें समझ आई हैं।"

गीता की बातों को अनसुना करता हुआ उसका पति अपनी ही झोंक में बोलता रहा, "लड़कियां ससुराल में खुशहाली और जवानी लाती हैं। लेकिन तुमने तो मेरे जीवन में गरीबी और क्लेश तो लाया ही, अज्ञानता का अंधकार भी लाया। मैंने तो कल्पना भी न की थी कि पढ़े-लिखे बाप की तथा-कथित खानदानी लड़की निपट अनपढ़ होगी। परिवार की तारीफ़ सुन कर आंख मूंद ले आया तुम्हें अपने घर में।"

गीता ने अपने पति को गुस्से में घूर कर देखा और रसोई से भरभराती हुई निकल गई। किंतु तनिक रुकने के बाद उसने अपनी भड़ास को यह संवाद कह कर पूरा किया, "मेरे साथ धोख हुआ है। अच्छे खानदान से विवाह करने के चक्कर में दही के धोखे में कपास खा लिया। जीवन पश्चाताप व परेशानियों का गहरा कुआं बन गया है। जीवन में एक व्यापक रिक्तता आ गई है।"

कमल का सोचना किताबी ही साबित हुआ। वह चाहता था कि जिन चीज़ों पर वह भाषण झाड़ता रहा है, आज उन्हें अमल में ला कर समाज के सम्मुख एक जीता जागता उदाहरण बने। इसीलिए उसने बिना दहेज के साधारण विवाह किया था। पिता ने बड़े भाइयों को पढ़ाया लिखाया, विवाह करवाए और संयुक्त परिवार में स्थापित किया। उनका आकस्मिक निधन हो जाने से छोटे भाई अनाथ हो गए। विवाहित भाईयों ने अच्छी जमीनें बंटवारे में ले लीं। अपनी-अपनी पत्नियों के साथ अलग हो गए और छोटे भाइयों को बंजर जमीनें और बैंक का ऋण हिस्से में बांट गए। वह नौकरी में लगा। प्राइवेट पढ़ाई की। भाई-बहनों की मदद की। किंतु किसी ने अंत में उसकी ओर नहीं देखा। उसे स्वयं ही लड़की खोज कर साधारण सा विवाह करना पड़ा। बड़े भाइयों ने हाथ पर थूक तक नहीं। आज उसे लगता है जो लोग, समर्थ होते हैं, उन्हें कन्या का हिस्सा दहेज के रूप में अवश्य देना चाहिए और शिक्षा सबसे बड़ा दहेज है।"

गीता के मन-मस्तिष्क पर यह बात छाई रहती है कि उसके साथ अन्याय हुआ है। पापा ने उससे स्कूल छुड़ा दिया। उसे पांचवीं भी पूरा नहीं करने दी। उसके नाम कोई पैसा भी जमा न किया गया। यदि ऐसा कर लेते तो उसे कदम-कदम पर कठिनाइयों का सामना न करना पड़ता। पैसे वाला हो कर भी उन्होंने लड़का-लड़की में भेदभाव किया। बेटा होते ही उसकी देखभाल करने हेतु गीता को स्कूल छुड़ा दिया। घर-परिवार के लिए वस्त्र सिलना-बुनना उसका बाल्यकाल और यौवन बन गया। विवाह हुआ तो मानो खूंटे से बंधी गाय को दान किया हो। कन्यादान नहीं गौ-दान किया हो। अब सुनो रोज-रोज इनके तानें।

फ्राइड कुलथ खा लेने के बाद बेटी संतुष्ट हो गई थी। इस बीच बहस-बाजी चली रही। अंत में हमेशा की तरह कमल को ही

लघु कथा

सफाई

नफे सिंह कादयान

उनकी बात सुन कर बस परिचालक दोनों से बोला, "संतरे खाकर छिलके सीट के नीचे फेंकती जा रही हो। यह राज्य और भारत देश भी आपका घर ही है। इस बड़े से घर की सार्वजनिक संपत्ति की सफाई का भी खयाल रखो। बसों, ट्रेनों को कूड़ेदान मत समझो। जिस पैकेट से आप ने संतरे खाए हैं, कृपया उनमें सीट के नीचे से छिलके उठाकर डालिए और बस से उतर कर कूड़ेदान में डाल दीजिए।"

पहाड़ों की गोद में बलखाती सड़क पर दौड़ती बस में सवार दो महिलाएं संतरे खाते हुए सफाई पर बात कर रही थीं। मैं अपने घर के फर्श को ऐसे ही नहीं धोती, बल्कि कपड़े धोने वाला सोडा पानी में मिला कर चमकाती हूं।

पहली औरत की बात सुन दूसरी ने भी तपाक से जवाब दिया- मैं तो महंगा शैंपू डाल कर फर्श रगड़ती हूं और मेरी सफाई की तारीफ पूरा मोहल्ला करता है। क्या मजाल जो पूरे घर में मकड़ी का एक भी जाला चमक जाए।

वहां उनकी बात सुन कर बस परिचालक दोनों से बोला, "संतरे खाकर छिलके सीट के नीचे फेंकती जा रही हो। यह राज्य और भारत देश भी आपका घर ही है। इस बड़े से घर की सार्वजनिक संपत्ति की सफाई का भी खयाल रखो। बसों, ट्रेनों को कूड़ेदान मत समझो। जिस पैकेट से आप नेसंतरे खाए हैं, कृपया उनमें सीट के नीचे से छिलके उठाकर डालिए और बस से उतर कर कूड़ेदान में डाल दीजिए।"

गांव गगनपुर, डाकघर बराड़ा, जिला अंबाला, हरियाणा-133 201, मो. 0 99918 09577

चुप हो जाना पड़ा। वह लस्सी पी लेने के बाद गिलास को पटकता हुआ रसोई से निकल आया। बरामदे में लगी कुर्सी पर बैठ कर रसोई से उठा कर लाए एक पुराने अखबार को पढ़ने लगा। विगत में कई मर्तबा वह इस अखबार को पढ़ चुका है। जब कभी वह इधर-उधर जाता है तो घर लौटते समय कोई-न-कोई अखबार भी साथ ले आता है। इस तरह के कई अखबार उसके घर की जगह-जगह पड़े होते हैं। सेब सीज़न में रैपिंग हेतु लाई गई रद्दी में से भी उसने अंग्रेज़ी अखबारों के साहित्यिक परिशिष्ट चुन कर अपने पास रखे हुए हैं तनाव-मुक्त होने के लिए ध्यान बंटाने व समय काटने के लिए यह उसका एक उपयोगी साधन है।

बिजली आ चुकी थी। किंतु आले में रखी डिबरी अभी भी जल रही थी। ज्यों ही उसका ध्यान इस ओर गया, उसने गर्दन तानी और झपाटे से उसे बुझा दिया। मानो अपना सारा गुस्सा फूंक के इस झोंके के साथ उसने उड़ा दिया हो। तभी गीता ने फ्राइड कुलथ की कटोरी और मक्की की करारी सी रोटी थाली में रख कर उसके आगे टिका दी। वह पत्नी के भड़काऊ और लड़ाकू व्यवहार से पहले ही जल-भुन रहा था किंतु शांत रहने का प्रयास कर रहा था। लैंप को जोर की फूंक से बुझाने के उपरांत तो वह कुछ सहज भी हो गया था। इस बीच रूखे-सूखे भोजन की थाली गीता ने उसके आगे सरका दी। यदि वह चाहती तो थोड़ा मक्खन-दही के साथ खाना ठीक से परोस सकती थी। पुदीना, गलगल अपना होता है। चटनी बना सकती थी। हरी सब्जी छोंक सकती थी। यह सब अपने खेतों में होता है। किंतु आग में घी डालने की खसलत उसे सुसंस्कृत बनने ही नहीं देती। मानो बचपन से ही उसने अपने भावी पति को दुःखी करके परेशान करने का नियमित प्रशिक्षण ले लिया हो, क्या उसका बचपन और अविवाहित जीवन इसी प्रकार की सहेलियों के साथ कटा होगा! वह अकसर सोचता है? घर में चीज़ों और अभावों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करने में वह किसी उस्ताद से कम न थी। कमल अपने से तो सहज था किंतु जब बोलता तो लगता था कि दहाड़ रहा हो, "बेटा जा ज़रा लोटे में पानी ले आ। हाथ तो धो लूं चले में। श्रीमती जी ने तो थाली आगे सरका कर अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है। मानो मैं कोई खूंटे में बंधा ढोर हूं जो चारा सामने आते ही चपर-चपर खाने लग जाऊं।"

बच्चा इस बीच पानी ले आया था। उसे क्या मालूम कि पापा क्या कह रहे हैं। इससे उसने लेना भी क्या। उसने समझने वाली बात समझ ली थी। कमल ने हाथ धोए और खाना शुरू किया। वह जब तक खाना खा कर हटा, तब तक कड़ोती बनाना सहम करके गीता वहीं चूल्हे के पीछे आटा सने हाथों से एक गदेलू पर पसर गई। अपनी भाव-भंगिमाओं से वह ऐसा प्रदर्शित कर रही थी कि मानो उसकी तबीयत एकाएक खराब हो गई हो। या उस पर मिर्गी का दौरा पड़ गया हो। किंतु मन-ही-मन वह यह चाह रही थी कि पति देव उसे गोद में उठाएं। उसको पानी के छींटें मारें। उससे पूछें कि भागवान क्या हो गया है। कहीं दर्द-वर्द तो नहीं। लेकिन कमल ने हमेशा की तरह ही गीता को पड़ा रहने दिया। वह अब उसके नाज़-नखरों से भलीभांति अवगत हो गया था। खाना समाप्त करने के उपरांत उसने कुल्ला किया और बच्चों को लेकर अपने कमरे में चला गया।

कुछ देर बाद गीता स्वयं ही उठी और हाथ धो कर खाना खाने बैठ गई। आज का महाभारत समाप्त हो गया था।

गांव लिंगाह, डाकघर झिकनीपुल, तहसील चौपाल, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 211, मो. 0 94187 98467

कहानी

नदी के लुटेरे

◆ संदीप शर्मा

जब ज्येष्ठ की धूप उनके जिस्मों के अंदर छुपी महीन जीवनदायी खून के साथ घुल मिली पानी की बूंदों को सोखनी शुरू कर देती, तो वे बड़े खुश होते, इसलिए नहीं कि शरीर का भार खाली हो रहा है बल्कि इसलिए कि इस बार का सावन का अंधा घोड़ा उनके लिए कई नेमते लाएगा। दूसरी ओर गांव के किसान इसी जेठ की गर्मी में अपने शरीरों से सारी ऊर्जा को पसीने की बूंदों के साथ निचोड़ रहे होते।

नदी की जब सारी मछलियों को वो लियाड़े से मार चुके होते और जब पत्थरों के बीच से सारे गोदल 'लम्बी पूंछ वाली मछलियां' पानी की कमी व आग की तेज लौ से चौंधिया चुकी उनकी कोमल आंखों के कारण बाहर आती, तो वे लोहे के सख्त दराटों के प्रहार से उनकी आत्माओं को उनकी मामूली वसा से परिपूर्ण काया से अलग कर देते। फिर वे उन नासमझ मछुआरों या फिर शौकिया शिकारियों के लिए ऊर्जादायक भोजन के रूप में परिवर्तित हो जातीं। जब नदी हर ओर से सूखने लग जाती तो बगुले भी वहां से पलायन कर जाते। सिर्फ वही जलीय जीव बचते जो अपने वसापूर्ण भोजन को एक अतिरिक्त व्यंजन के रूप में किसी के परोसे जाने का दुस्वप्न पाल बैठे होते। जब ज्येष्ठ अपनी तपस से मेघ रूपी रथ के पहियों को दौड़ाने के लिए सुनियोजित कर रहा होता तो वे अपना काला मुंह करके काली ईंटें काला मुंह का खेल खेलने का प्रपंच भी करते ताकि मेघ उनकी प्रार्थना के झांसे में आकर उनके हिस्से के आर-पार इतना मेघ बरसाए कि उस मेघ रूपी दानव के पीछे भागते लश्कर के साथ सब जीवन रूपी काया के मददगार पदार्थ बहते आएं और फिर वे अपनी हिम्मत, मस्ती, स्वार्थ कलापूर्ण मेहनत के दम पर बीस-तीस फुट ऊंचे उठे बाढ़ के पानी से वो सब इकट्ठा कर सकें या लूट सकें जिससे उनके लिए कुछ महीनों का सामान इकट्ठा हो सके और जो उनकी पहचान, उनके अस्तित्व को बचा कर रख सके, जो वो करते आए हैं। वे कलापूर्ण हुनर के दम पर नदी में बाढ़ के साथ बहने वाले सामान को सही दिशा की ओर मोड़ने वाले हिम्मती मर्द हैं जिनकी तुच्छ यांत्रिक जीवन की आदतों ने उन्हें रहस्यमय इनसान बनाने का जोखिम ले लिया है। यही यांत्रिक संसार उन्हें सब मर्दो से विभिन्न दर्जा दे रहा है और उनके अस्तित्व के कणों में नए कण जोड़ रहा है ताकि वे मानस पटल के सजाए दृश्यों में अपना नाम जोड़ सकें।

वे रहस्यमय पुरुष एक अंतराल के बाद अपनी उपस्थिति से गांव के मानसिक ताने बाने में दखल देते आ रहे हैं वे किसी विशेष स्थान से नहीं आते और न ही उनकी संख्या में कमी आती है। वे स्वर्णिम दिनों की रचना कर अपने ठिकानों को लौट जाते हैं। इस बार फिर से उनका डेरा लगना शुरू हो गया है, वे अपने ऊर्जा से भरे शरीरों को गांव के किसानों के उन खेतों में धान लगाने के लिए भी झौंक देते, ताकि किसी को उनका आना खटके न। जब नदी के किनारे खाली पड़ी जमीन में उनके तंबू लग जाते तो गांव के लड़के, बुजुर्ग और अन्य तंबुओं के पास कभी- कभार मंडराना शुरू कर देते। नदी की मछलियां अब भागने की फिराक में गहरी पानी की कंधराओं में छुपने लग पड़तीं पर उन्हें ये पता नहीं कि ये हिम्मती पगलाए आदमी उन्हें ज़मीन व पानी की सात तहों से भी बाहर निकाल लेंगे।

औरतें उनके तबुंओं की ओर नहीं जातीं पर उनकी विशेष कर्मो की चर्चा एक दूसरे से जरूर करतीं, वे सभी अपनी कल्पनाओं की एक अनोखी दुनिया जरूर सजातीं जो उन्होंने उन प्रतापी मर्दो के बारे में अपने शांत व सूखे पड़े विचारहीन मस्तिष्कों में की होती। उनकी कल्पनाओं में विविधता पूर्ण लहरें होतीं। कुछ मन ही मन उन मर्दो की तुलना अपने मेहनती मर्दो से करतीं जो वर्षो से इन खेतों में जुते हुए होने के बाद कभी उन्हें गांव से बाहर का क्षितिज आज तक दिखा न पाए। कुछ उनके बारे में सोचतीं कि जो प्रतापी मर्द नदी के तीव्र वेग से भी जीवन उपयोगी चीज़ें निकाल लाते हैं वे कितने मज़ेदार व हसीन मर्द होंगे। वे अपनी स्वार्थी कल्पनाओं को भी अपने मन में सजातीं।

औरतों की नेपथ्य मानसिकता में अप्रत्याशित परिवर्तन ये मायावी लुटेरे चुपचाप किसी को बिना बताए कर चुके होते। उनका स्मरण सघन होकर उन लुटेरे मर्दो के नित्य कर्मो पर केंद्र

निर्मित करता जाता। वे किसी भी बहाने उन मर्दों की चर्चा की खुमारी की अवस्था धारण कर लेतीं। उन्हें उन दिनों सितारों में अधिक प्रकाश नज़र आता, उन्हें नीले आकाश में अधिक नील नज़र आता। उन्हें रातें अधिक स्वप्निल महसूस होतीं, उन्हें सूखती नदी एक मायावी जादूगरनी की तरह नज़र आती, उन्हें नीरस जिंदगी में ख्वाइशों की बेलों के फैलने और खिलते फूलों की अत्यधिक गंध महसूस होती। उनमें दिव्यता की मादकता को पीने की लालसा जागने लगती। वे समतल खेतों में शिखरों के उगने का आभास करतीं। उन्हें अपने कच्चे घरों के कमरों में एक रहस्यमय प्रकाश दौड़ता नज़र आता। उन्हें गांव की भूमि का हर हिस्सा रमणीय नजर आता। उन्हें ज्येष्ठ के उग्र सूर्य की प्राणदायक किरणें भी पृथ्वी के गुप्त आलिंगन में मदहोश नज़र आतीं। वे उनकी सुघड़ शक्तिशाली आकृतियों और प्रचंड इच्छा शक्ति की गुप्त भक्ति करने लगतीं। गांव के आभाविहीन सिर्फ देहाती किसान मर्दों के पास भी औरतों से भिन्न विचित्र कल्पनाएं भी होती। वे अपनी मर्दानगी की उन बहादुर व रहस्यमय मर्दों के साथ तुलना में लगे रहते। कोई सोचता, ''मैंने इसी नदी से पांच-पांच मण के पत्थर अपने मजबूत कंधों पर उठाए हैं पर क्या वे ऐसा कर सकते हैं?'' कोई सोचता कि उसने जेठ की पूरी रातें इसी नदी के किनारे शमशान के करीब बिताई हैं क्या वे ऐसा कर सकते? कुछ अपनी मर्दानगी को अपनी सहवास की शक्ति के प्रदर्शन के साथ उनके साथ कल्पना करते।

इन सब कल्पनाओं व मन की तसल्ली की बातों के बावजूद गांव के मर्द फिर भी पीछे छूट जाते। कुछ की विचित्र कल्पनाएं उन्हें शंका में डालतीं कि कहीं उनकी पत्नियां रात के स्वप्नों में उन गैर मर्दों के साथ लिप्त न हों। कइयों के साथ जब यह भ्रम उनके मन के रथ के साथ दौड़ने लगता तो वे मन ही मन उनसे नफरत करने लग पड़ते। लेकिन वे उन्हें अपने क्षेत्र से भगा नहीं सकते और फिर मज़बूरी की चादर ओढ़ कर अपने घरों के बरामदों में चुपचाप जेठ की ठंडी हवा के साथ सोए रहते। कुछ अपनी मर्दानगी का प्रदर्शन तो चुपचाप बंद कमरे में कर आते पर उनकी शंकाएं उनका पीछा नहीं छोड़तीं। वे अपनी पत्नियों के उन गैर मर्दों के साथ चर्चा से बचते, लेकिन कुछ इस चर्चा में जरूर फंसते जो सिर्फ उन्हें हताश व उनकी मूर्खता का प्रदर्शन ही करवाती।



कुछ मन ही मन उनकी शिकायत गांव के पंच से करने की आधारविहीन योजनाएं बनाते लेकिन गांव का पंच उन्हें किस आधार पर नदी से भगाएगा, इस बात पर उन्हें कोई तर्क नहीं सूझता। नदी सरकार की है वे अपनी हिम्मत से उस जोखिम पूर्ण काम को अंदाज देते हैं इसमें पंच कुछ नहीं कर सकता, इस बात पर उनके मन में उठे अर्थविहीन विचार नदी की अथाह गहराई में डूब जाते। कुछ अपने मन में उन बहादुर लुटेरों की तरह नदी की बाढ़ में से कीमती सामान निकाल लाने के स्वप्न सजाते। लेकिन नदी की लहरों का वेग और बाढ़ का प्रचण्ड रूप जब हकीकत के आइने में धुंधला सा भी उनको नज़र आता तो उनकी आंखें फिर से बंद हो जातीं और खेतों और खेतों, अपने कमजोर बच्चों, अपनी थकी हारी रोज के काम निपटाती व सिर पर गोबर उठाए खेतों की ओर दौड़ती पत्नियों व घर में बुजुर्गों के खांसने की आवाज़ों के साथ ही निम्न स्तर के सपने लेने लग पड़ते। कुछ इन सब के बीच कुछ हठ से पूर्ण रोमांचक सपने लेने से भी बाज नहीं आते।

बड़ा विचित्र समय होता यह ज्येष्ठ का महीना, इसके बाद जब मेघ अपने अंदर पानी को इकट्ठा करके उसको आसमान में बरसाने अपनी अंतिम इच्छा का उद्घोष कर देते तो पूरा गांव उन लुटेरे मर्दों के प्रदर्शन को देखने की इच्छा को और अधिक अंकुरित करने के लिए अपने खाली समय की खाद डालना शुरू कर देते। प्रदर्शन का समय जब नजदीक आ रहा होता तो भी वे लुटेरे मज़े से रात को नदी की मछलियों से कई खेल खेलते। वे इस बात की परवाह नहीं करते कि लोग उनके बारे में किस विचारधारा को अपने घरों के बाहर रखी पालकियों में सजा रहे हैं। वे अल्हड़, हिम्मती मर्द अपने ही नशे में खोए, गांव वालों से उचित दूरी बना कर रखते ताकि गांव के स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े उनकी कमजोरियों का ज़रा भी भान न पा सकें और हमेशा उनके होते हुए या फिर चले जाने के बाद भी उनसे प्रभावित रहें और अपने नीरस व थके हारे जीवन के कुछ पलों की उनके लिए चर्चा में आहूती देते रहें। उनका दबदबा,

उनका आभामंडिल व्यक्तित्व गांव की औरतों को सदा प्रभावित करता रहे वे अगर जब भी किसी गैर मर्द के बारे में सोचें तो उन हिम्मती मर्दों में से किसी एक को जरूर चुनें।

सावन का अंधा घोड़ा उस नदी के ऊपर फैले आकाश में अपने ऊपर उठाया बादलों में जकड़ा अमोध जल का भार इधर-उधर फेंकने लगा और नदी का शांत स्वभाव प्रचंड और बर्बर स्वभाव बढ़ने लगा। लुटेरों की बड़ी एवं तीक्ष्ण आंखों में चमक बढ़ने लगी। उनके तंबू बरसात के मौसम में बेसुध होने लगे पर अब तंबुओं की परवाह किसे थी। अंधे घोड़े ने एक दिन अपना सारा भार फेंक देने की जिद्द कर ली और नदी के किसी दूसरे हिस्से के किसी आकाश में बादल फूट उठे। लुटेरों ने ईश्वर की ओर मन में दुबके धन्यवाद भेजे। उम्मीद से बड़ी लहरें बाढ़ रूपी दानव की रंगरलियों में अपना आपा खो बैठीं और अपने साथ कई पेड़ और नदी के किनारे कई तरह के कीमती सामान को बहाती हुई लाने लगी। गांव के मर्द अपनी बरसातियों और कई तो अपने बोरी से लिपटे सिरों से नदी की प्रचंड लहरों में गोते लगाते लुटेरों को एकटक कोतुहल से देख रहे थे। कुछ बच्चे भी उनके शरीरों से चिपके थे।

सभी पहाड़ी के कच्चे रास्ते पर अपने-अपने हिस्से के दृश्य अपनी इंद्रियों को मुफ्त में बांटने के लिए उतावले थे। ''एक बड़ा शहतीर बहता हुआ आ रहा है।'' नदी के एक हिस्से के एक मोड़ पर खड़े बाज की दृष्टि से लहरों पर नजरें टिकाए सबसे बड़ी उम्र के लुटेरे ने चिल्लाना शुरू कर दिया, ''मोड़ खाती नदी शहतीर को किनारे से कुछ फासले पर बहाती हुई आगे निकलेगी। कूद पड़ो ! समय सही है।'' चार तैराकों ने नदी की प्रचंड लहरों में छलांग लगा दी। उनमें से कुछ शहतीर से कई फुट दूर नदी में लुप्त होते दिखाई दिए और फिर गांव के लोगों की सांसे रुक गईं। ''वे बह गए, उनका काम खत्म हो गया, प्रतापी मर्द अब फिर से यहां नहीं आएंगे।'' गांव का कोई बूढ़ा चिल्लाया, ''कोई उनकी मदद करो।'' पलक झपकते ही उनमें से दो प्रतापी शहतीर को अपने अपने मजबूत कंधों में जकड़े नजर आए और डूबे हुए तैराक फिर अपने काले सिरों के साथ नज़र आए।

गांव के लोग चिल्ला उठे, ''जय हो! जय हो! ऐसे बहादुर मर्दो की।'' चारों ने शहतीर को जकड़ लिया और उस पर सवार होकर नदी के एक किनारे तक उसे खींच लाए। गांव के कुछ युवा उनकी ओर दौड़ने को हुए तो उन्हें किसी ने रोक दिया। वे बेचारे अपनी कुछ बहादुरी को अपने अंदर दुबकने को मजबूर कर बैठे। मोड़ पर खड़े बाज की आंखों वाले लुटेरे ने फिर आवाज दी, ''शहतीरों का झुंड आ रहा है तैयार रहो।'' इस बार पांच-छः लोगों ने लहरों में प्रवेश कर दिया, वे कंधों तक पानी में दौड़ते रहे, जैसे ही शहतीर उनके कुछ फांसले से निकला वे उस पर बाज की तरह झप्पटा मारने को डूबकी लगा देते। गांव वालों की सांसे रूक जाती उनका मुंह खुला और आंखें फटी रह जातीं। उनके इतनी बरसात में भी होंठ सूख रहे थे। अद्‌भुत साहस के आभामयी नजारों से उनकी इंद्रियों के सारे रोम खुल रहे थे। कइयों की स्वप्निल इच्छाएं उनके अंदर छिपे भीरूता के बादलों को दूर भगा रही थीं। वे भी मन ही मन नदी की लहरों में गोते लगाने के दिव्य स्वप्न खुली आंखों से ले रहे थे। पर हिम्मत किसी से उधार में नहीं मिलती, ये बात शायद उन्हें पता चल चुकी है।

राह में भटके दिल के अंदर उठती लहरों में डूबे प्रतापी लुटेरे ने अपना तर्क दिया, ''मैं उससे वादा कर चुका हूं, वे मेरे अदभुत अचंभित हैरतअंगेज कारनामों से प्रभावित होकर मेरी ओर खिंची आई है, हम दोनों ने साथ रहने की कसमें खा ली हैं मैं बड़ी-बड़ी ऊनती प्रचंड लहरों से आज तक नहीं हारा, अब एक युवती की नजरों के सामने खुद को मृत नहीं घोषित कर सकता। उसका अस्तित्व अवर्णनीय रूप से मेरे शरीर के अंदर अथाह गहराई में डूब चुका है और मैं उसकी रमणीय व कोमल शरीर का गुलाम बन चुका हूं। प्यार का उपजाऊपन मैं अपने पत्थर जैसे सख्त शरीर में महसूस करने लगा हूं। मैं यू ही उसे छोड़ कर नहीं भाग सकता। मुझे वह अंधेरे की काली उलझनों में मेरी पीछे भागती दिखाई देती है। उसने मुझ जैसे अनुरक्त लुटेरे में विरद्रि पैदा कर दी है। वह मेरे प्रति उसकी प्रशंसनीय भद्रि के कारण मेरी दिल की खिड़की के लोहे के कटघरे से बंधना चाहती है।''

लहरों का प्रचंड वेग उन्हें अपने भीरू खयालों को पकने का स्वांग रचने को रोक रहा था। बाढ़ की लहरे निर्बाध गति से आगे बढ़ती जा रही थीं और अपने साथ उजड़ी दुनिया के अवशेष उठा कर शान से अपनी प्रचंडता दिखा रही थी। उसे रोकने वाले नहीं बल्कि उसके साथ बहने वाले चाहिए। टकराने वाले नहीं बल्कि उसकी कल्पना से भौतिक ख्याल चुराने वाले चाहिए। बहुत सी चीज़े दूर वेग में बहती जा रही थीं जिन्हें लुटेरे अपनी बुद्धि व चातुर्य कला से छोड़ देना नहीं चाह रहे थे। एक नया वेग लहरों ने अपनाया, पानी की गंध में कीमती सामान की गंध को सबसे माहिर लुटेरे ने महसूस कर लिया। वह फिर चिल्लाया, ''अपनी बाजुओं में फिर से जोश भर लो, कत्थे की किसी भट्टी की अंतिम यात्रा में शामिल होना है। तैयार रहो।''

एक के बाद एक कत्थे की भट्टी से उजड़े कत्था बनाने वाले खांचे नदी में तैरते नजर आए। लुटेरों ने फिर से अपने अनुभव व जुनून को नदी के प्रचंड वेग के अहसान पर छोड़ दिया। काले बादलों ने इस दृश्य को देखकर अपना मुंह खोल दिया और छम - छम बारिश बरसने लगी। कभी प्रतापी शरीर लहरों में ओझल होते,

तो कभी उनके काले सिर वाले शरीर फिर से नज़र आते तो देखने वाले दर्शकों की जान में जान आती। वे छम-छम बारिश में भी वे इन दृश्यों को देखने का मौका खोना नहीं चाहते। नदी की खरपतवार के गुच्छे, बड़े पेड़ों की जड़ों के अवशेष नदी के प्रवाह में ऐसे नाचते जैसे वे अपनी ही जिंदगी की अंतिम यात्रा में शामिल होकर जश्न मनाते हुए किसी स्वर्ग के सागर की ओर भागे जा रहे हों। लेकिन कहीं न कहीं शायद उनकी किस्मत को रोकने वाले लुटेरे जरूर उन पर स्वार्थी निगाहें टिका कर नदी के अगले किसी मोड़ पर बैठे होंगे।

शाम को लुटेरों ने अपने-अपने हिस्से का बंटवारा कर डाला, सुबह लूट के सामान को कम दाम में उड़ाने वाले खरीददारों ने सब साफ कर दिया। नदी की लहरें अब कुछ शांति का पाठ जपने की तैयारी कर रही थी। सबसे बड़े व दल के मुखिया ने सबसे कम उम्र के लुटेरे के हाथ कुछ कम माल थमाया और उसे आज ही दल छोड़ने को कहा। सबसे उम्रदराज लुटेरे ने उसके हिस्से में भी कुछ कटौती कर दी। छोटे लुटेरे के मन ने इस बंटवारे को नामंजूर कर दिया।

लुटेरों में फूट की झाड़ियां अंकुरित हो गईं जबकि नदी के किनारे की सारी खरपतवार नदी की बाढ़ के पहले वेग में ही किसी दूरस्थ इलाके में अपने लिए छांव तलाशने निकल गई थी। सब लुटेरों के काले सिरों के अंदर छिपे चतुर मस्तिष्कों में अलग-अलग विचार कौंध रहे थे। पर वे दल के मुखिया से सहमत होने के लिए विवश थे। सबसे कम उम्र के जाबांज तैराक ने अपना तंबू उखाड़ लिया। वह जाते-जाते बोला, ''अब मैं कभी हिस्सा न मागूंगा, चाहे तो अकेले ही नदी में कूदना पड़े।'' उम्रदराज जाबांज ने उसकी जिद्द को पिघलाना चाहा, उसे अधिक मेहनताना भी देना चाहा पर वह सिर्फ एक नियम के कारण नहीं माना।

उम्रदराज जाबांज ने अपने दल की एकता की दुहाई दी और अपने नियमों के जंजाल को भी समझाना चाहा। आखिर एक नियम ही उनके इस बिखराव का कारण था। नियम सबसे छोटे जाबांज ने तोड़ा था। जवानी के नशे में उसने गांव की एक युवती से गठजोड़ रात के अंधेरों में जोड़ा था और ये बात उम्रदराज जाबांज से नहीं छिपी थी। उसने चेतावनी भी दी थी, ''हमारा दल गांव की मेहरबानी पर टिका है और हम भविष्य के लिए अपने हिस्से की नदी का क्षेत्र अपने हौंसले से इन गांव वालों से उधार में मांगते आए हैं। हमें गांव की हर औरत को आदर भाव से देखना है हमें गांव के विश्वास को विश्वासगात में नहीं बदलना है हम सिर्फ यहां अपनी साहसपूर्ण अद्‌भुत कला से उन्हें आंचभित करते आए हैं और भविष्य में उनकी बस्तियों में अपनी छवि को आकाश तक ऊंचा बनाना चाहते हैं वे हमें हमेशा पूजनीय समझे, हमारी जाबांजी की तारीफ करे ना कि वे हमें विश्वासघाती समझें। तुम्हें यह प्रेम प्रपंच छोड़ना होगा, वर्ना तुम्हें दल छोड़कर अभी यहां से जाना होगा। हम यहां सिर्फ नदी का बहता सामान लूटने आते हैं दिलों में बहते प्रेम की लूट करने के लिए नहीं। हमें नदी के पत्थरों की तरह कठोर बनना होगा। नियम साफ था कि गांव के किसी इंसान से न कोई रिश्ता होगा, चाहे वे तुम्हारी बहादुरी के आगे नतमस्तक होकर तुमसे प्रभावित होकर तुम्हारे लिए अपने दिलों में प्रेम वफा के सपने सजाए।''

राह में भटके दिल के अंदर उठती लहरों में डूबे प्रतापी लुटेरे ने अपना तर्क दिया, ''मैं उससे वादा कर चुका हूं, वे मेरे अदभुत अचंभित हैरतअंगेज कारनामों से प्रभावित होकर मेरी ओर खिंची आई है, हम दोनों ने साथ रहने की कसमें खा ली हैं मैं बड़ी-बड़ी उफनती प्रचंड लहरों से आज तक नहीं हारा, अब एक युवती की नजरों के सामने खुद को मृत नहीं घोषित कर सकता। उसका अस्तित्व अवर्णनीय रूप से मेरे शरीर के अंदर अथाह गहराई में डूब चुका है और मैं उसकी रमणीय व कोमल देह का गुलाम बन चुका हूं। प्यार का उपजाऊपन मैं अपने पत्थर जैसे सख्त शरीर में महसूस करने लगा हूं। मैं यूं ही उसे छोड़ कर नहीं भाग सकता। मुझे वह अंधेरे की काली उलझनों में मेरी पीछे भागती दिखाई देती है। उसने मुझ जैसे अनुरक्त लुटेरे में विरक्ति पैदा कर दी है। वह मेरे प्रति उसकी प्रशंसनीय भक्ति के कारण मेरी दिल की खिड़की के लोहे के कटघरे से बंधना चाहती है।''

''नहीं! नहीं! हम किसी भी शर्त पर गांव के लोगों के आगे अपनी छवि को बिगाड़ नहीं सकते। तुम अपनी उत्कंठा और युवती की गुप्त प्रेम मयी आराधना को छोड़ो,'' दल के मुखिया ने अपने अंदर अपने बनाए नियम को जकड़ कर पकड़ते कहा, ''अगर यह बंधन फलता फूलता है तो भविष्य के लिए हमारा अस्तित्व मिट जाएगा, पूरा गांव जो हमारी गुप्त आराधना में मग्न रहता है, वह हमें महत्वाकांक्षी, स्वार्थी व चरित्रहीन समझेगा, हम वर्षो से अपनी छवि को बचाते आए हैं सिर्फ तुम्हारे खातिर हम अपने दल की छवी पर आंच नहीं आने दे सकते।'' लुटेरों के मुखिया ने आखिरी फरमान सुना दिया। सबसे कम उम्र के जाबांज ने अपना तंबू का सामान पीठ पर लादा और नदी के बहाव की उल्टी दिशा की ओर निकल गया।

ऊपर काले बादलों ने फिर से दस्तक देना शुरू कर दी थी। पूरा दल पानी की बहशी बूदों के साथ दुख और अशांति से भर गया। सभी मन ही मन पछता उठे कि आखिर उन्होंने अपना एक नया व सबसे कम उम्र का जाबांज साथी बीच मझदार में खो दिया है। उन में कुछ ने जब अपनी चेतना में कई तरह दृश्य उभरते देखे तो वे अपने आप को रोक नहीं पाए। आखिर उसके गुनाह की इतनी बड़ी सजा क्यों मिल रही है, क्या उसे पत्थर जैसी जिंदगी में फूल खिलाने का हम नहीं है? क्या लुटेरों के भी कोई नियम होते हैं? पर यह विचार उनके मन की तहों में ही उभरते रहे, उन्हें दल के मुखिया के कानों तक पहुंचाने की हिम्मत किसी में नहीं थी।

बरसात में भीगता छोटा पुरुषार्थी योद्धा अपने प्यार की उत्कंठा में दल से निकाल दिया गया था। अपने प्यार को पाने की मूक लालसा के अकस्मात ढेर बन जाने से उसकी आंखों की रोशनी धुंधली और गीली हो रही थी। ऊपर काले आकाश ने फिर एक बार घमण्डी रोशनी को बिजली के रूप में परिवर्तित कर नदी के ऊपर फेंका। इस तेज आवाज से उसका मन दो फाड़ हो गया। एक हिस्से ने कहा- ''रात के अंधेरों में घिरा गांव बरसात के थपेड़ों से अधमरा सा हो गया है, नवयुवती को अपने संग उड़ाकर वह नदी की उफनती लहरों से पार ले जाएगा।'' दो फाड़ हुए दूसरे मन ने कहा, ''लुटेरों का स्वाभिमान उसकी इस हरकत के बाद सदा के लिए प्रचंड नदी के वेग में बह जाएगा और उसे कई लुटेरों का दल कभी नहीं पकड़ पाएगा।'' विचित्र कल्पनाओं का जैसा पूरा ब्रह्मांड उसके मस्तिष्क में संतुलन बनाने का नया प्रयोग कर रहा था। अशांत आंखें चहुं दिशाओं को छोड़कार एक रास्ते की तलाश में लगी थीं। मन सिसक-सिसक कर रो रहा था।

वह नदी के किनारे-किनारे असंख्य झाड़-झंखाड़ को लांघता बहुत दूर निकला जा रहा था। पर उसका अतीत साया बनके उसके पीछे- पीछे दौड़ रहा था। उसके शरीर से सारा प्रताप बारिश की बूंदों में घुलकर निचुड़ चुका था, वह असंख्य ख्यालों के घेरे में फंस चुका था। उसका अस्तित्व नदी की लहरों में बहता जा रहा था।

उसने ख्वाजा पीर से मन ही मन प्रार्थना की - ''हे पीर, दिव्य देवलोक के वासी, तुम्हारा दिव्य घोड़ों का रथ इन्हीं प्रचंड लहरों पर सवार होकर निकलता है, तुम्हारी दिव्यता के गुण अभी भी इन वेगवान लहरों में समाया है, मेरे लिए कोई रास्ता दिखाओ, मैं तुम्हारी नेमतों से अपने अस्तित्व की नींव रखकर आगे बढ़ा हूं, मुझे अपनी प्रकाशमयी किरणों से मेरे मन में खुंबों की तरह उगती गहरी कंदराओं के सयाह अंधेरों को मेरे मन से भगाओ, मैं धैर्य का पुजारी रहा हूं पर मैं आज भीरुता के स्वप्नों में घिरा हूं, मुझ पर अपनी दया बक्शो। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने भी अपनी कृपा के हाथ मेरे सिर पर से उठा लिए हैं मुझ पर कृपा करो। मैं जिंदगी की एक विशाल विपत्ति में घिरा हूं। मेरा मन मुझे लहरों में आंखें मूंद कर समा जाने को कह रहा है। मेरा सब कुछ खो चुका है गोपनीय दुःख मेरे मन में कलुषित नृत्य कर रहे हैं। मैं विश्वासघात के दंश को महसूस कर रहा हूं। मैंने अपने दल और उस नवयुवती के ख्वाबों से भी विश्वासघात किया है। मैं भयावह व प्रचंड लहरों से लड़ सकता हूं पर अपने मन में संवेदनामयी छोटी लहरों के आगे भीरूता भरे इनसान के समान खड़ा महसूस कर रहा हूं।''

ख्वाजा पीर की नेमतों की झोली अभी खाली नहीं हुई थी। नदी का प्रवाह बढ़ता जा रहा था। मटमैले पानी के बीच लहरों से एक रोशनी उभरी, कोई बड़ा सा संदूक नदी के खरपतवारों में जकड़ा लहरों के बीच बहता हुआ आया। चूर-चूर हृदय वाले लंबे चौड़े सबसे छोटे लुटेरे की आंखों में रोशनी का एक बेतरतीब पुंज प्रकट हुआ। रात में नहाती नदी के बीच और इस छोटे लुटेरे के मन के बीच एक गुप्त मंत्रणा हुई। आदमी जिस कार्य में पारंगत हो उसे न करने के लिए कभी नहीं कहता।

छोटे लुटेरे ने जैसे अपने मन के दुखों के बड़े झोले को वहीं फेंका जैसे नदी में उसकी प्रेमिका उसे पुकार रही हो। उसने प्रचंड लहरों में छलांग लगा दी। अंधेरे ने उसके साथ धोखा कर दिया वह जितना हाथ पैर मारे, वही संदूक उतना ही आगे बढ़ता जाए। अकेला लुटेरा कभी लुप्त हो जाए तो कभी नदी उसे उछाल कर बाहर फेंक दे। उसे सर्वाधिक इस मुश्किल क्षणों के वेग में भी अपने लक्ष्य उस बेजान संदूक को नहीं छोड़ा। जिंदगी भर चुनौतियों से खेलने वाला लुटेरा रात के भंवर में नदी के भंवर को नहीं जान पाया और न ही उसे कोई दिशा निर्देश देना वाला था। संदूक और उसका लुटेरा बीच भंवर घूमते जा रहे थे। वह भंवर वैसा ही था जिससे यह लुटेरा निकलना चाहता था। यह प्रेम और अपने दल को धोखा देने के घटनाक्रम से पैदा हुआ भंवर था। लेकिन प्रेम के भंवर ने उसे बच निकलने का एक मौका दिया था। यहां अंधेरा और गुस्सैल नदी दोनों ने मिलकर प्रपंच रच डाला था। वह भवंर के चक्रव्यूह में कुछ पल छटपटाता रहा, वह तब तक छटपटाता रहा, जब तक वह अपना सर्वश्रेष्ठ नहीं कर पाया था। बुरा यह था कि उसके सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन का कोई दर्शक नहीं था। उसकी आंखों में धुंधली होती जा रही थी। परपरागंत परिभाषाओं को चुनौती देने वाला स्वयं को सम्बोधित तत्परता का परिचायक, असाधारण चुनौतियों का संरक्षक एक अविमुक्त युवक नदी की अनभिज्ञता के जाल में फंस गया। प्रचंड नदी का पूरा क्षितिज उसे अपनी सीमाओं में रहने का ज्ञान बांटकर उसकी जिंदगी की कुछ सांसों को रोककर उसके लिए उसकी वीरता को नेपथ्य में ले जा

एक और जहां पूरा दल इस असमय हादसे से गहरे शोक में इसकी तह तक जाने को प्रत्यनशील था, वहीं दूसरी ओर दल का मुखिया मन ही मन इस घटना को अपनी दल की परपंरा की जीत में बदलने के लिए प्रबंधन में जुटा था। उसके मन ने यह युक्ति बनाई- दल का एक सबसे छोटा व जाबांज सदस्य रात के अंधेरे में किसी अनजान चीज़ को कोई इनसानी लाश समझ कर नदी में अकेला ही परिस्थिति अनुरूप कूदा और वह भंवर में फंस कर बड़ी बहादुरी निभाते हुए, दल की प्रतिष्ठा बचाते हुए अपनी जिंदगी को अर्पित कर बैठा। दल का स्वाभीमान और जाबांजी सदा उसकी अहसान मंद रहेगी। हम अगले वर्ष फिर आंएगे यही नदी की इच्छा है और यही ख्वाजा पीर की मर्जी। संताप दिवगंत जांबाज आत्मा को भव सागर में मिलने के बीच की मुख्य बाधा है।

रहा था। सारी पारंगता पानी में डूब रही थी, पर हिम्मत वहीं की वही जिंदा थी।

वह डूबना नहीं चाहती थी। फिर हिम्मती मन ने एक शिशु की तरह जिद्द छोड़ दी और आखिरी सांस ने इस लुटेरे को अलविदा कहकर अंधेरे में पसरा कोई एक रास्ता अपनाकर अपना मुंह मोड़ लिया। उत्कंठा और वीरता का पुजारी इस जहान के उर्जामयी कणों द्वारा अवशोषित हो चुका था।

दूसरी ओर का उदास दल अभी भी अपने दल के जाबांज साथी की राह देख रहा था। दल का कोई सदस्य सुबह तड़के नदी के घटते प्रवाह को नापने निकला। नदी ने जैसे उसे आवाज दी, ''ये लो अपने साथी को, संभालो इसे मैं इसे फिर से वापिस ले आई हूं। मैंने इसकी जिद्द को चकनाचूर कर दिया है। ये अब कभी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ेगा। मैंने इसके शरीर में पश्चाताप का रस घोल दिया है, यह कभी भी तुमसे विश्वासघात नहीं करेगा और न ही तुम्हारी परपंरागत परिभाषाओं को अपनी तीव्र ध्वनियों से चुनौती देगा। मैंने इसकी वीरता के श्रेष्ठ प्रदर्शन को देख लिया है। अब यह मेरी ऊर्जा के संग जिएगा और इस ब्रह्माण्ड की अथाह लहरों में अपनी वीरता का प्रदर्शन करेगा।'' वह साथी चिल्लाया, ''नदी में इनसानी लाश तैर रही है, आओ, दौड़े आओ, ख्वाजा रहम करे, ये लाश हमारे छोटे साथी की लग रही है।'' पूरा दल भागा, कुछ ही पलों में जाबांज लुटेरा नदी के किनारे बारीक पत्थरों के बिछोने पर आराम कर रहा था। पूरे दल की आंखों में आंसुओं की झड़ी लगी हुई थी। सिर्फ एक ही सदस्य ऐसा था जिसकी आंखों में एक शुष्क रेगिस्तान फैल रहा था, वह दल का मुखिया था। उसकी आंखों में एक अजीब ही तरह की चमक थी, वह चमक उसकी किसी गुप्त जीत की ओर इशारा कर रही थी यह शायद उसके दल की प्रतिष्ठा इस भयावह हादसे के बाद और अधिक बढ़ने की जीत की चमक थी।

एक और जहां पूरा दल इस असमय हादसे से गहरे शोक में इसकी तह तक जाने को प्रत्यनशील था, वहीं दूसरी ओर दल का मुखिया मन ही मन इस घटना को अपने दल की परपंरा की जीत में बदलने के लिए प्रबंधन में जुटा था। उसके मन ने यह युक्ति बनाई- दल का एक सबसे छोटा व जांबाज सदस्य रात के अंधेरे में किसी अनजान चीज़ को कोई इनसानी लाश समझ कर नदी में अकेला ही परिस्थिति अनुरूप कूदा और वह भंवर में फंस कर बड़ी बहादुरी निभाते हुए, दल की प्रतिष्ठा बचाते हुए अपनी जिंदगी को अर्पित कर बैठा। दल का स्वाभिमान और जांबाजी सदा उसकी अहसान मंद रहेगी। हम अगले वर्ष फिर आंएगे यही नदी की इच्छा है और यही ख्वाजा पीर की मर्जी। संताप दिवगंत जांबाज आत्मा को भव सागर में मिलने के बीच की मुख्य बाधा है।

हाउस न. 618, वार्ड न. 1, कृष्णा नगर, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश-177001, मो. 0 94181 78176

शब्द-चित्र

राजेंद्र निशेश

पगडंडियां

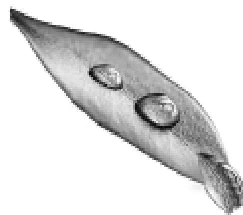
पगडंडियां
रास्ते हुआ करती हैं
टेढ़ी मेढ़ी ही सही
मंज़िल को छुआ करती हैं।



आस

फूलों का रंग ज़र्द है
कांटों को यह गुमान है
फिर भी हर सुबह
नई कली को
खिलने का अरमान है।

ओस



रात भर ओस
दूब के साथ लिपटी है
अपनी व्यथा-कथा कहती है
और हर प्रातः
फिर आने के वायदे के साथ
एक नई कहानी गढ़ती है।

अंतर

तुम उदास हो
चांद उदास दिखता है
जरा इठलाओ तो सही
चांद भी अठखेलियों का
नया संसार रचता है।

2698, सेक्टर 40-सी, चंडीगढ़-160 036

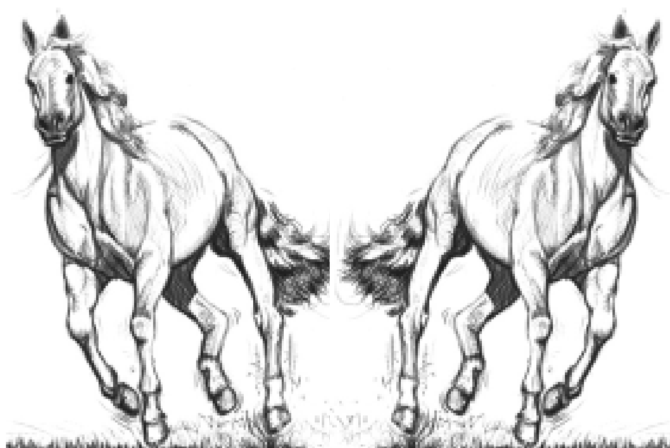
कहानी

परिस्थितियों के दाव-पेंच

◆ रोशन लाल पराशर

काफी प्रयास करने पर भी मैं अपने मित्र से संपर्क नहीं साध सका। बचपन के साथी थे हम। वैसे संतोष से मेरी पहली मुलाकात शहर के स्कूल दाखिला लेने के वक्त हुई थी। हम दोनों ने छठी से दसवीं तक की पढ़ाई साथ-साथ की। आगे संतोष ने शास्त्री की पढ़ाई करने के लिए दूसरे शिक्षण संस्थान में दाखिला ले लिया और मैं विपरीत परिस्थितिवश या यूं कहें कि सही मार्गदर्शन न मिल पाने के कारण ग्यारहवीं कक्षा तक ही पढ़ सका। हमारी मंजिलें और रास्ते अलग हो गए। पारिवारिक जिम्मेदारियों से जूझते हुए मैंने कुछ वर्षों बाद ग्रेजुएशन पत्राचार के माध्यम से कर ली।

संयोगवश, एक दिन संतोष से अचानक मुलाकात हो गई। वे शास्त्री उत्तीर्ण करके दूरदराज के जिले में स्कूल अध्यापक नियुक्त थे। एक सरकारी कार्य से मैं भी उस जिले में प्रवास पर गया था। ग्रेजुएशन करके ही मैंने सरकारी नौकरी पा ली थी जहां मुझे अधिकतर टुअर करने की बाध्यता थी। अवकाश के कारण सरकारी कार्यालय बंद था। अतः हम दोनों बड़ी देर बैठे घंटों बतियाते रहे। सुख-दुख और घर गृहस्थी के बारे बातें चलती रहीं। समय के इस लंबे अंतराल में वे संतान सुख पाते-पाते चार बच्चों के पिता बन चुके थे। मैं हैरान हुआ कि एक शिक्षित व्यक्ति जो अध्यापक हो क्या वो भी इतना गजब कर सकता है। मेरे पूछने पर कि भाई, दो संतानें होने पर भी क्या तसल्ली नहीं हुई, इस पर वे बोले, दोस्त पहले तो वह स्कूल के कार्यक्रमों में जनसंख्या नियंत्रण पर जोर-शोर से अर्थपूर्ण भाषण देकर मार्गदर्शन करता था। लेकिन पत्नी जब तीसरी दफा गर्भवती हुई तो सबसे पहले मैंने स्कूल में भाषण देना छोड़ा। मंजर तो यह हुआ कि पत्नी ने एक साथ ही दो कन्याओं को जन्म देकर धन्य कर दिया। अब क्या करें, जिम्मेदारी ढो रहा हूं और अपने किए पर पछता रहा हूं।



सरकारी नौकरी करने के लिए भी निश्चित समय निर्धारित है। प्रथम नियुक्ति के कार्य ग्रहण करते वक्त ही सेवा पंजिका में सेवानिवृत्ति तिथि भी लिख दी जाती है। संतोष और मेरी रिटायरमेंट एक या दो महीने के अंतराल में इकट्ठे ही हुई। हम निजी जिंदगी जीते-जीते गृहस्थी में रम से गए। अपने समाज के लिए चाहकर भी कुछ विशेष न कर पाए। वैसे भी जो सलाह या उपदेश हम दूसरों को देते हैं अगर उस पर स्वयं अमल करें तो गृहस्थी स्वर्ग बन जाए। मेरा परिवार सीमित रहा, फलस्वरूप मैंने अपने दोनों बच्चों बेटा-बेटी को अच्छी शिक्षा दिलवाकर मुक्ति पा ली।

एक दिन प्रातः ही मेरे मोबाइल पर तीन-चार मिस्ड कॉल आने का मुझे आभास हुआ। दिमाग पर काफी जोर डालने पर मिस्ड कॉल नंबर मेरे जहन में आ गया। अरे! यह तो शास्त्री जी का नंबर है। मैंने तुरंत काल-बैक किया और उधर उन्होंने झट से मोबाईल उठाया। अभी मैंने हैलो भी पूरी तरह न कहा था कि शास्त्री जी मुझे कुछ परेशान सी आवाज में बोलते सुनाई दिए। हां, भाई जी! नमस्कार उन्होंने धीरे से कहा। मैंने कहा कैसे हो? क्या संतोष से जिंदगी बीत रही है, जो उनका नाम था। अरे काहे का संतोष? बड़ी पसोपेश में हूं।

अम्मा ने आजकल नाक में दम कर रखा है। रोज ही सुनाती रहती है, बेटा, अब तू रिटायर भी हो गया है। मेरी 'ईच्छी' हुई

मनौती तू कब पूरी करेगा। बेटा जब तू छोटा था उस समय मैंने एक 'सुखन' की थी कि तुम दोनों भाई अच्छे से पढ़-लिख जाओगे, अच्छा कमाने-खाने लायक होंगे, तो उस खुशी में मैं छिंज करवाऊंगी। तुम्हारे पिता तो हम सभी को तेरे बचपन में ही छोड़ गए थे। मैंने तेरे बड़े भाई लेखू को कई दफा याद भी कराई पर वह तो सुनकर अनसुना कर देता है। इकट्ठे परिवार से अलग होने के उसने सौ बहाने ढूंढे। पर मेरी 'सुखन' का किसी को क्या! मैं भी इस बोझ को लेकर आसानी से मरने से रही। तुम दोनों भाई जमीन जायदाद की खातिर रोज लड़ते-भिड़ते रहते हो। बोल ना, तू कब करवाएगा मेरे नाम से छिंज। साथ वाले गांव में मेरी सहेली ने भी छिंज करवा दी। यहां मेरी तो किस्मत ही फूटी है तभी तो लखदाता कृपा नहीं कर रहा है।

पिछले कल तो हद ही हो गई, अम्मा आंगन में खड़े होकर जोर-जोर से बहस करने लगी। बस छिंज के सिवाय कुछ भी नहीं सुनना चाहती। बड़ा भाई जगह जमीन के बंटवारे से नाखुश है हालंकि उसने अपनी मर्जी के हिस्से लिए हैं। आज भी बड़ी बहस हुई वो गाली-गलौज करने लगा। मेरा गला पकड़ा तो मैं भी गुत्थमगुत्था हो गया। पड़ोसियों ने हो-हल्ला सुना तो बीच-बचाव करके छुड़ाया। अम्मा उसे कुछ नहीं कहती, मेरे पीछे छिंज रूपी लट्ठ लेकर पड़ी है। क्या करूं, तू ही बता। और हां आज तो मैं अपने ऊपर काबू न रख सका। मेरे मुंह से अचानक निकल गया, अम्मा। हम दोनों भाइयों में यह जो रोज-रोज गुत्थमगुत्था होती है ये भी तो छिंज ही है तू इससे ही मन को तसल्ली दे ले। ठीक कहा था न मैंने।

कई बार अम्मा को मनाने की कोशिश कर चुका हूं पर वो बड़ी छिंज करवाने की जिद्द पकड़े है। मैंने समझाया भी कि छिंज करवाना बड़े खर्चे का काम है, यह मेरे वश की बात नहीं है। हालांकि मैं सोचता हूं कि छोटा सा 'छंजोटू' करवा दूं। गांव के स्कूल में पढ़ने वाले छोटे-छोटे बच्चों की कुश्ती करवा दूं। थोड़ी बहुत शक्कर बांट देंगे और एक-एक जोड़ी को दस-दस रुपये देकर निपटा दूंगा। पर अम्मा तो बड़े-बड़े मल्ल-पहलवानों को अपने नाम की छिंज वाले अखाड़े में देखने की जिद्द पकड़े है। पता नहीं किससे सुन रखा है कि छिंज वाले घर में सारी-सारी ढोल-टमक बजाया जाता है फिर अगले दिन ढोली नाचते गाते अखाड़े तक जाते हैं। लखदाता पीर साक्षात होते हैं। अम्मा तो अपने 'खली' को भी बुलावा देना चाहती है। क्या करूं। अम्मा को छिंज की पड़ी है, मेरे अपने ही खर्चे पूरे नहीं हो रहे हैं। तीन-तीन बेटियों को कॉलेज की पढ़ाई करवा रहा हूं।

पिछले कल तो हद ही हो गई, अम्मा आंगन में खड़े होकर जोर-जोर से बहस करने लगी। बस छिंज के सिवाय कुछ भी नहीं सुनना चाहती। बड़ा भाई जगह जमीन के बंटवारे से नाखुश है हालंकि उसने अपनी मर्जी के हिस्से लिए हैं। आज भी बड़ी बहस हुई वो गाली-गलौज करने लगा। मेरा गला पकड़ा तो मैं भी गुत्थमगुत्था हो गया। पड़ोसियों ने हो-हल्ला सुना तो बीच-बचाव करके छुड़ाया। अम्मा उसे कुछ नहीं कहती, मेरे पीछे छिंज रूपी लट्ठ लेकर पड़ी है। क्या करूं, तू ही बता। और हां आज तो मैं अपने ऊपर काबू न रख सका। मेरे मुंह से अचानक निकल गया, अम्मा। हम दोनों भाइयों में यह जो रोज-रोज गुत्थमगुत्था होती है ये भी तो छिंज ही है तू इससे ही मन को तसल्ली दे ले। ठीक कहा था न मैंने।

अम्मा को कौन समझाए कि हमारी भावनाएं, परंपराएं और रिवाज किसी हद तक ही निभ सकते हैं। हमें दिखावे की प्रथाओं को दूर से प्रणाम कर देना चाहिए और इसी में भलाई है। ये छिंज करवाना इस समय हजारों नहीं लाखों रुपये उड़ाने का काम है। मुझ जैसे सेवानिवृत्त अध्यापक द्वारा छिंज करवाना आसन काम नहीं है। पहलवानों ने अखाड़े की मिट्टी में तो कुश्ती करते हैं लेकिन छिंज करवाने वाले की मिट्टी-प्लीद कर देते हैं।

संतोष यह सब एक ही सांस में बिना रुके कह गया। मैं भी यह सोचने के लिए मजबूर हो गया कि छिंज अगर कोई दूसरा करवाए तभी अच्छी लगती है। हमारी तो धारणा बन गई है कि लोग क्या कहेंगे। कि अच्छा कमाने वाले दो-दो बेटे बूढ़ी मां की इच्छा, 'सुक्खन' तक पूरी न कर सके। मेरे मोबाइल पर अभी भी शास्त्री जी के खांसने की आवाज सुनाई दे रही थी। मेरे कुछ जवाब न देने पर संतोष लंबी सांस भरते हुए चल छोड़ यार ...। यूं भी ये समस्या तो उसे ही निपटानी थी। अम्मा तो इक्कीसवीं सदी में जी रही है, उसके लिए तो छिंज छोटा सा काम है। भाइयों में भले ही हर रोज छिंज होती हो, अम्मा को तो हकीकत में इसका आयोजन करना है। ढोल की आवाज और अखाड़े में जुटे पहलवानों द्वारा कुश्ती के दाव-पेंच की कल्पना में, मैं खो सा गया।

पूजा निवास, तृतीय मंजिल, लोअर फागली, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 004, मो. 0 98160 54093

- *कामनाएं समुद्र की भांति अतृप्त हैं। पूर्ति का प्रयास करने पर उनका कोलाहल और बढ़ता है।*

  - स्वामी विवेकानंद

- *अवसर सूर्योदय की तरह होते हैं। यदि आप ज्यादा देर तक प्रतीक्षा करते हैं तो आप उन्हें गंवा बैठते हैं।*

  - अज्ञात

बोध कथा

समय का चक्र

◆ **राजेंद्र परदेसी**

एक गांव में एक लालची किसान रहता था। वह रात-दिन इसी प्रयास में रहता था कि किस प्रकार बिना श्रम किए ही वह धनवान बन जाए। इसी उधेड़बुन में वह अपना समय काट रहा था कि उसके देश के राजा ने एक रात में स्वप्न देखा कि उसे हर चीज पीली-पीली दिखाई पड़ रही है। सुबह होते ही राजा ने घोषणा करवा दी कि जो व्यक्ति उसके स्वप्न का अर्थ बता देगा, उसे राजकोष से एक लाख का पुरस्कार दिया जाएगा।

किसान ने जब यह घोषणा सुनी तो वह लखपति बनने का सुनहरा अवसर खोना नहीं चाहता था। वह इसी प्रयोजन से जंगल की ओर निकल गया और वहां जाकर भगवान को प्रसन्न करने के लिए ध्यान लगाकर बैठ गया। पांच-दिन बाद ही उसके सम्मुख एक वृद्ध की आत्मा प्रकट हुई और किसान को मदद करने का प्रस्ताव रखा। किसान ने उससे राजा के स्वप्न और उससे प्राप्त होने वाली पुरस्कार राशि का जिक्र किया तो वृद्ध की आत्मा बोली, 'मैं तुम्हें स्वप्न का अर्थ बता तो दूंगा लेकिन तुम्हें जो पुरस्कार राशि प्राप्त होगी उसमें से आधा मुझे दे जाओगे।'

किसान ने शर्त स्वीकार कर ली तो वृद्ध की आत्मा ने बताया कि राजा को स्वप्न में हर चीज पीली-पीली दिखाई दी, इसका अर्थ है कि इस वर्ष राज्य में भयंकर अकाल पड़ने वाला है।' किसान राजा के पास गया और स्वप्न का अर्थ बताकर एक लाख प्राप्त कर लिया तब उसके मन में बेईमानी समा गई, सोचा कि वृद्ध की आत्मा के पास नहीं जाऊंगा। वह क्या करेगी। निराश होकर वापस लौट जाएगी। वह पुरस्कार राशि लेकर सीधे घर चला गया।

कुछ समय बाद राजा ने फिर एक स्वप्न देखा। इस बार राजा को स्वप्न में हर वस्तु लाल-लाल दिखाई दे रही थी।

राजा ने दूसरे ही दिन स्वप्न का अर्थ जानने के लिए घोषणा करवा दी कि जो व्यक्ति स्वप्न का अर्थ बताएगा, उसे दो लाख का इनाम दिया जाएगा।

राजा की घोषणा सुनकर किसान बहुत पछताया कि अगर हम उस वृद्ध की आत्मा को पहले आधी राशि दे देते तो यह दो लाख तो न जाता। फिर यह सोचकर की वृद्ध की आत्मा से माफी मांग लूंगा। वह जंगल की ओर चला गया। पांच दिन तपस्या करने के बाद वृद्ध की आत्मा फिर प्रकट हुई तो किसान माफी मांगते हुए राजा के स्वप्न और उसकी पुरस्कार राशि के संबंध में बताया।

वृद्ध की आत्मा ने कहा, 'मैं तुम्हें स्वप्न का अर्थ तो बता दूंगा, लेकिन इस बार बेईमानी न करना।'

किसान ने खेद प्रकट किया तो आत्मा बोली, 'इस साल राज्य में युद्ध की स्थिति रहेगी। पड़ोसी देश का राजा, इस देश पर आक्रमण करेगा और भारी रक्तपात होगा।'

किसान राजा के पास गया और स्वप्न का अर्थ बताकर पुरस्कार राशि प्राप्त कर ली। धन प्राप्त करते ही किसान के मन में विचार उठा कि वृद्ध की आत्मा को पुरस्कार में से आधा देने से अच्छा होगा कि उसे समाप्त कर दिया जाए। इसी भाव से वह अस्त्र लेकर जंगल की ओर चल पड़ा। वृद्ध की आत्मा वहां पहले से ही उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह कुछ कहती कि उसके पहले ही किसान ने उस पर प्रहार कर दिया। वृद्ध की आत्मा तुरंत ओझल हो गई।

एक वर्ष बाद राजा ने फिर स्वप्न देखा कि उसे सारी वस्तु हरी-हरी दिख रही है। दूसरे दिन उसने घोषणा की कि इस स्वप्न का अर्थ जो व्यक्ति बता देगा, उसे चार लाख दिया जाएगा।

राजा की घोषणा सुनकर किसान बहुत पछताया और मन-ही-मन सोचने लगा कि उससे बहुत बड़ी गलती हो गई, लेकिन अब किया ही क्या जाए। अंत में उसने निश्चय किया कि इस बार जो भी पुरस्कार मिलेगा, वह सबका-सब वृद्ध की आत्मा को दे देगा, यही सोचकर किसान जंगल की ओर चल पड़ा। इस बार किसान को आश्चर्य हुआ कि वृद्ध की आत्मा पहले से ही उसकी प्रतीक्षा में खड़ी है। वृद्ध की आत्मा को देखकर किसान पश्चाताप से उसके चरणों पर गिर पड़ा और माफी मांगने लगा।

इस बार किसान को आश्चर्य हुआ कि वृद्ध की आत्मा पहले से ही उसकी प्रतीक्षा में खड़ी है। वृद्ध की आत्मा को देखकर किसान पश्चाताप से उसके चरणों पर गिर पड़ा और माफी मांगने लगा।

वृद्ध की आत्मा ने झुक कर किसान को उठाया और अपने सीने से लगाकर बोली, 'इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं है। यह समय का प्रभाव था। जब देश में अकाल पड़ा तो तुम्हारी नियत में खोट हो गया था और जब युद्ध की स्थिति आई तो उससे भी तुम मुक्त न हो सके जिसके कारण मेरे ऊपर प्रहार किया। लेकिन अब राजा को स्वप्न में हर वस्तु हरी-हरी दिखाई पड़ रही है। इसका अर्थ हुआ कि हर तरफ खुशहाली का साम्राज्य आने वाला है। इसीलिए तुम्हारे अंदर भी अच्छे विचार उठने लगे जिसका परिणाम है कि तुम बिना मांगे ही पुरस्कार की सारी राशि मुझे देने को सोच लिया।

यह समय का प्रभाव है जो मनुष्य को उसके अनुकूल ढालकर उसी के अनुरूप कार्य करवाता है।

44, शिव विहार, फरीदी नगर, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश-226 015, मो.0 94150 45584

कविता

शबनम शर्मा

मुड़ कर देखना

चलो ज़रा मुड़ते हैं आज
बीते दिनों की टोह लेते हैं
पुरानी गलियों में से गुज़रके
ज़रा सा आज रो लेते हैं
कमबख़्त रात ख़त्म ही नहीं होती
लम्बी बहुत है सुरंग सी
दीवारें सील गई हैं
हो बैठी हैं बेरंग सी
लफ़्ज़ चीख़ रहे हैं
पर क़ब्र में वो दफन हैं
आँसू थक चुके हैं
चुप से वो दिल में ही मग्न हैं
सोचा आसपास देख लूँ
किसी शख़्स को ढूँढ लूँ
फिर सोचा रहने दूँ
मेरे हिस्से की छांव है
क्यूँ ज़हर किसी को दूँ
एक छोटा सा बादल बाकी है
उससे ही आस है
नहीं तो आसमान पूरा का पूरा
मेरे ख़िलाफ़ है
कभी तो धूप खिलेगी
कभी तो सुबह होगी
इसी आस में चल रहा हूँ
इक इसी उम्मीद की ख़ातिर
दर्जनों चोले बदल रहा हूँ



अच्छा लगता है

खुद के साथ वक़्त बिताना
अच्छा लगता है
बिते पलों के गलियारों में घूम के आना
अच्छा लगता है
कभी पलकें भीगती हैं
कभी लब मुस्कुराते हैं
कभी कुछ एहसास, दिलासे दे जाते हैं
सुख-दुःख में यूं गोते खाना
अच्छा लगता है
खुद के साथ वक़्त बिताना अच्छा लगता है
कुछ यार पुराने याद आते हैं
वो लम्हे जो गुज़रे, गुदगुदाते हैं
उनमें से कुछ दोस्त अब भी पास हैं
यही काफी है, सुकून पनपता है
खुद के साथ वक़्त बिताना अच्छा लगता है
हाथ में खुशबू भरे पन्ने पकड़ना
कुछ पुराने जोड़ों में सजना सवरना
दिल को जंचता है
सोचकर मुस्कुराना की लाल रंग अभी
मुझ पर फबता है
खुद के साथ वक़्त बिताना अच्छा लगता है
नींद में बेसुध होकर सपने देखना
और खुद से बार-बार ये कहना
की जो हुआ उसका कोई मकसद रहा होगा
बुरा बीता है, कोई बात नहीं
अब आगे अच्छा होगा
आखिर सोना भी तप-तप के निखरता है
दुख सहकर ही सुख का मोल पता लगता है
साफ नए सवेरे की उम्मीद में
जीना सच्चा लगता है
खुद के साथ वक़्त बिताना अच्छा लगता है

अनमोल कुंज, पुलिस चौकी के पीछे, मेन बाजार, माजरा,
तह. पांवटा साहिब, जिला सिरमौर, हि.प्र., मो.098168 38901

कविता

वन महोत्सव

रत्न चंद निर्झर



आज हम वन महोत्सव मिलकर मनाएंगे
पृथ्वी के नंगे बदन को वृक्षों से सजाएंगे

रंगबिरंगे खग विहग गीत खुशी के गाएंगे
तेरी खुशी के स्वर में स्वर अपना मिलाएंगे

सुन ले सहपाठी रामू श्यामू आकर बातें मेरी
विद्यालय के चारों ओर फलदार वृक्ष लगाएंगे

लदेगी जब ये डाली आड़ू आम खुमानी से
तब हम सभी मिल बैठ कर मजे से खाएंगे

सुन ले तू भी मेरे देश के किसान
आंचल इस खाली जगह का फिर से लहराएंगे

फिर न कटेगी जमीन तेरी वर्षा के पानी से
वृक्षों से फिर मरुभूमि को हरा भरा बनाएंगे

वृक्ष बूंदें वर्षा की फिर से लाएंगे
पथ के थके पथिक तरुवर की छाया में
गुण तेरा अकसर गाएंगे।

कार्यालय सुपरिंटेंडेंट इंजीनियर,
थर्ड सर्कल, एचपी पीडब्ल्यूडी, सोलन,
हिमाचल प्रदेश-173 212, मो. 0 94597 73121

तोहफे

हरीश कुमार 'अमित'

कभी मिलते हैं
और दिए जाते हैं कभी
तोहफे
बड़ी ऊहापोह की-सी
रहती है स्थिति
अकसर
देने के लिए
किसी तोहफे का
चुनाव
करने में
देते वक्त तोहफा
कई बार
उठती रहती है
मन में कसक
कि
दे पाते इससे बेहतर और महंगा
तो अच्छा होता
कई बार अलबत्ता
होता है दिल बहुत भारी
तोहफा देते वक्त
बस यही सोच-सोच कर कि
अपना और अपने परिवार का
पेट काटकर
दिया जा रहा यह तोहफा
न ही देना पड़ता
तो रहता कितना अच्छा।





304, एम.एस. 4, केंद्रीय विहार, सेक्टर 56, गुड़गांव,
हरियाणा-122 011, मो. 0 98992 21107

कविता

चाय और रिश्ते

सीता राम गुप्ता

रिश्तों में चाय की
और चाय में
रिश्तों की
एक ख़ास निसबत होती है
देर से रखी
ठंडी हो गई चाय को
गरम करने की तरह
की जा सकती है
पैदा दोबारा
गरमाहट
ठंडे पड़ते जा रहे
रिश्तों में भी
हालाँकि
ठंडी हो रही चाय को
गरम करने पर
दोबारा
नहीं रहती वो बात
चाय में
बदल जाता है
स्वाद ही उसका
लेकिन यूँ ही
फेंक देना भी तो ठीक नहीं
चाय से लबालब भरी
प्याली को
इसमें चाय का भी तो
कुछ दोष नहीं
और अगर
और दूध, पत्ती व चीनी
न हों
तो मुमकिन ही नहीं
फेंकना उसे
बिल्कुल भी नहीं
लेकिन
घंटों से पड़ी
बर्फ़ सी हो चुकी
पपड़ियाई हुई
बासी चाय को
दोबारा गरम करके भी
उतारना उसे हलक से नीचे
किसी भी तरह से
न तो सही ही है
और न मुमकिन ही
नुक़सानदेह भी हो सकती है वो
हो सकता है भाए ही नहीं
और फेंकनी पड़े
ऐसे में
गरम करने की ज़हमत भी
बेकार ही तो जाएगी
उसे बर्फ़ सी ठंडी
और बेकार होने से
पहले ही
जब वो बची हो
गरम करके पीने लायक
तभी थोड़ा गरम करके
जल्दी से उसे
पी लेने में ही
समझदारी है
ज़रूरी है
रिश्तों में भी
बर्फ़ की तरह
उनके ठंडा होने से
पहले ही एक कोशिश
उनमें गरमाहट लाने की

ए.डी.-106-सी, पीतमपुरा,
दिल्ली-110034
मो. 095556 22323

आस्था व प्रकृति का सुंदर मिलन

(पृष्ठ 28 से जारी) करते-करते फिर किन्नर आकर ब्रेक लगाई। शर्मा ढाबा पर चाय पी। फिर पंडित जी ने यात्रा का विवरण पूछा। जाती बार शिमला के दर्शन करवाए थे। वापसी में वहां से सामने शिकारी देवी के दर्शन करवाए। फिर फुर्सत में आने का वायदा कर सतलुज नदी के किनारे बसे तत्तापानी की ओर प्रस्थान किया। इस सफर में ढेरों प्रश्न उत्तर बन, मस्तिष्क में चलते रहे। सतलुज पार कर अपने जाने पहचाने सुन्नी-शिमला मार्ग पर आगे बढ़े। अब तो बस शीशे से बाहर देखने की कोई रुचि बची न थी। यात्रा का आनंद तो लगभग ले लिया था। गाड़ी में भी सब प्रसन्नचित्त थे। इसी बीच सारथी ने विविध भारती का स्टेशन लगा दिया। पुराने गाने सुनकर यात्रा आगे बढ़ रही थी। कुछ पल आंखें व मुंह बंद का उन्हें भी विश्राम दिया इसी उधेड़बुन में शिमला के पास आने पर फिर गाड़ियों की कतारें, सरकते वाहन नज़र आए। हम गांव, पहाड़ी वादियों, स्वच्छ वातावरण, एक शांत जीवन को छोड़ कर वहीं शहर की समस्याओं के बीच खड़े आ खड़े हुए थे। एक यादगार यात्रा। घर के नीचे गाड़ी के खड़े होने तथा समान उतारने के साथ समाप्त हुई थी। प्रकृति के सान्निध्य में बीते पलों को याद कर उत्साहित होते रहते हैं। दूर से दिखने वाले पहाड़ों, गांवों तथा वनों के भीतर क्या छुपा है, उसका आनंद तथा अनुभूति तो वहां जाकर ही की जा सकती है। शब्दों में उन्हें बयां नहीं किया जा सकता है। यात्रा के दौरान नए अनुभवों तथा प्रकृति की विविधता को देखा, समझा जा सकता है। प्रकृति बिना कहे मौन रूप में जीवन के अनेक पाठ यात्री को पढ़ा व स्मरण करवा देती है। हममें इन पाठों को अपनाने का मादा कितना है, यह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता है। हम जैसे प्राणी तो अपने फायदे के लिए उस शांत वातावरण की तंद्रा को तोड़ने के लिए ही जाते हैं। ऐसी यात्रा का फिर मौका मिला तो शब्दों के माध्यम से फिर आपसे साझा जरूर करेंगे।

पुस्तक समीक्षा

पठनीय और संग्रहणीय लघुकथाएं

◆ डॉ. अशोक भाटिया

कथाकार राजेन्द्र यादव लिखते हैं- ''जो किताबें हमें अपने समय में नहीं ले जाती, सवालों को पैदा नहीं करती, अनुभवों की दुनिया में नहीं ले जाती और सिर्फ सूचना देती हैं, वे पुस्तकें क्या लाभ देंगी? मानवीय कमजोरियों पर लिखा साहित्य ही श्रेष्ठ होता है और वही कहानियां प्रिय लगती हैं, जो मानवीय कमजोरियों के आधार पर लिखी गई हैं।'' कहानी-साहित्य के बारे कही गई यह बात कमोबेश सारे साहित्य के बारे कही जा सकती हैं। अनुभव जब संवेदना से जुड़कर रचना में रूपांतरित होता है, तो बेहतर रचनाओं का द्वार खुलता है। इसके विपरीत, अनुभव जब सतही रूप में सूचनाएं देने का काम करता है और उसी को साहित्य माना जाने लगता है, तो समस्या वहां आती है। हिन्दी लघुकथा में दोनों प्रकार की धाराएं मिलती हैं। वैचारिक संवेदना, मानवीय धरातल की लघुकथाएं खूब मिलती हैं, जिनका मूल्यांकन होना अभी शेष है। दूसरी ओर सतही वर्णन के प्रसंगों के रूप में मिलने वाली लघुकथाओं की भरमार है। ऐसी लघुकथाओं को उठाने वाले झंडाबरदार भी कई हैं। हालांकि ऐसा प्रायः सभी विधाओं में होता है, किन्तु लघुकथा में इसकी व्याप्ति अधिक है। बहरहाल, कृष्ण चन्द्र महादेविया की लघुकथाओं पर बात करते हैं।

विगत कई वर्षो से कृष्ण चंद्र महादेविया लघुकथा-लेखन में सक्रिय हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इनकी लघुकथाएं निरंतर प्रकाशित होती रहती हैं। इनकी............लघुकथाओं का तीसरा संग्रह 'तुम्हारे लिए' नाम से प्रकाशित हो रहा है। इस संग्रह की रचनाओं की कुछ प्रवृतियां पाठकों का ध्यान खींचने में पूर्ण समर्थ हैं।

रचनाकार जब धर्म-जाति से ऊपर उठकर समाज को देखता है, तो उसकी कलम में नई ताकत का संचार होता है। इस दृष्टि से कृष्ण चंद्र महादेविया की कई लघुकथाएं आश्वस्त करती हैं। बस और नहीं, प्रहार, दुकानदारी, पिछले पहर का दर्द, मां, संवाद, तुम्हारे लिए, परिंदे, जैसी लघुकथाएं आज के समय की जरूरत हैं।

जातिगत-भेदभाव और गैर-बराबरी की बीमारी भारतीय संस्कृति की जड़ों में व्याप्त है। यह बीमारी इनसान को इनसान नहीं समझती। भारतीय समाज एक हिस्सा इस विकृति पर फूला नहीं समाता। कृष्ण चंद्र महादेविया की कई लघुकथाएं इसका प्रतिकार करती हैं, तो कहीं-कहीं रास्ता भी सुझाती हैं। 'बस और नहीं' ऐसी ही रचना है। थेपड़ा बाप-दादे से चली आ रही परंपरा के अनुसार देवता का ढोली है। रॉकी व उसका बाप देवता के रथ के आगे ढोल बजाकर बैठ गए थे। उधर देवताओं के ठेकेदार देवलुए खाना खाने बैठ गए। भूख से बेहाल रॉकी भी पंक्ति में बैठ जाता है। देवता के कारदार उस पर छू देने और अपवित्रता का लांछन लगा बाप-बेटे को अपमानित करते हैं। थेपड़ा बुड़बुड़ाता है- बच्चे की भूख पर देवता भी नहीं पसीजता। उल्टे कारदार और मौहता गाली देते हैं। अपने आप खा रहे और बच्चे समेत ढोली मुंह देख रहे हैं। कैसा न्याय है देवता का। यह एकालाप व्यवस्था पर सवाल खड़े करता है। थेपड़ा यहीं नहीं रुकता। वह ढोल को ठोकर मारकर घोषणा करता है कि वह आज के बाद ढोल नहीं बजाएगा। फिर स्वयं को कहता है- ''चल बेटा रॉकू तू ढोली नहीं बनेगा। तू खूब पढ़ेगा-लिखेगा।'' यह लघुकथा सदियों की अंधेरी सुरंग में टॉर्च से रोशनी फेंकती है।

मंदिरों में दलितों के प्रवेश के अधिकार के लिए प्रेमचंद ने 1932 में 'कर्मभूमि' उपन्यास का एक बड़ा अंश खर्च किया था, जिसमें नायक अमरकांत के नेतृत्व में यह संघर्ष किया जाता है। आज 85 वर्ष बाद भी देश के अनेक मंदिरों में दलितों के प्रवेश पर रोक लगाई जाती है। समाचार-पत्रों में ऐसी खबरें आती रहती हैं। महादेविया की 'दुकानदारी' लघुकथा इसी विषय पर लिखी गई है। सड़क पर नाजायज कब्जा कर वहां बनाए मंदिर का पुजारी एक महिला प्रोफेसर को इसलिए भीतर जाने से रोकता है कि वह दलित जाति की है। जब वह महिला रहस्योद्घाटन करती है कि मंदिर में रखी मूर्ति उसके ससुर की बनाई है, तो पुजारी से कुछ कहते नहीं बनता। महिला प्रोफेसर के शब्द देखें -

''हनुमान जी की प्रतिमा मेरे ससुर द्वारा बनाई गई है पांडे जी, पर आप जैसे दुकानदार कोई न कोई नियम गढ़ कर शताब्दियों से जन्म जाति आरक्षण का लाभ उठाना बेहतर जानते हैं।''

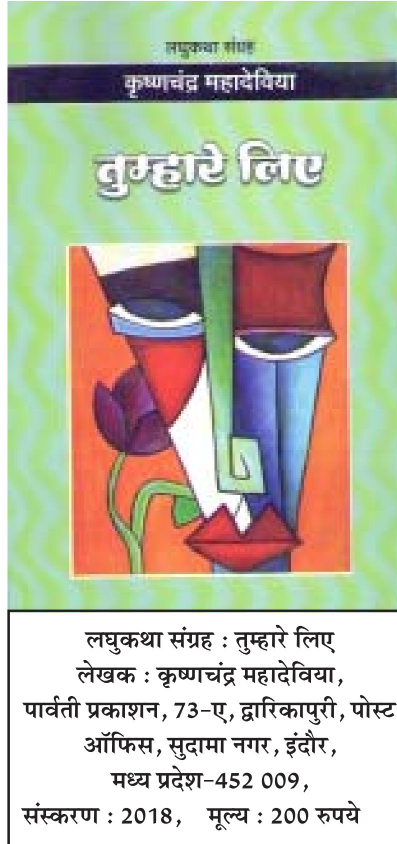
इसी प्रकार 'प्रहार' लघुकथा भी जाति-प्रथा के बहाने गैर-बराबरी के व्यवहार पर चोट करती है। गांव के रीति-रिवाज

जातिगत भेद-भाव करते हैं, लेकिन किरण उन्हें नहीं मानती। इसलिए जैसे को तैसा वाला व्यवहार करके कथित बड़ी जाति वाली स्त्रियों को अपने घर से बाहर का रास्ता दिखा देती है। चिंगारी लघु कथा भी असमानता पर तीखी चोट करती है।

कृष्ण चंद्र महादेविया हिमाचल क्षेत्र से आते हैं। पहाड़ी इलाकों में देवी-देवताओं के नाम पर अनेक और विचित्र कुप्रथाएं सदियों से पसरी पड़ी हैं, जिन पर निरन्तर कलम चलाने की जरूरत है। महादेविया की 'बे आवाज' ऐसी ही लघुकथा है। मानव की प्राकृतिक क्रियाओं में डेट आना भी शामिल है लेकिन देव-आज्ञा और प्रथा के नाम पर ऐसी स्त्रियों को पांच दिन तक गौशाला में सोने के लिए मैले बिस्तर और दुर्गन्ध मिले तो इसे आप रूढ़ि ही कह सकते हैं। इस रचना की नायिका रत्ना इस निष्ठुर प्रथा और ढकोसले के खिलाफ जूझने की ठान लेती है। लेकिन अंधेरे में एक दरिंदे द्वारा उसे नोचने से उसकी आवाज ही सदा के लिए चली जाती है। इसी भांति देवता नाराज हो जाएंगे और लोक धर्म विचित्रता लिए हैं।

भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की परम्परा लगातार बिखर रही है। इस बीच बुजुर्गों को बोझ समझा जाने लगा है। संवेदनहीनता ने दायित्वहीनता और स्वार्थ को बढ़ावा दिया है। महादेविया की दादी जैसी और पिछले पहर का दर्द लघुकथाएं इसी समस्या को उठाती हैं। 'दादी जैसी' लघुकथा एक दृश्यबंध के माध्यम से ही तार-तार होते संबंधों को उखाड़कर रख देती है। मुनमुन अपने माता-पिता से दादी के बारे में पूछती है तो बताया जाता है कि उसकी डैथ हो चुकी है। लेकिन अगले दिन कार से वृद्ध आश्रम के पास से जाते हुए मुनमुन अपनी दादी को पहचान जाती है। वह रोज घर पर दादी की तस्वीर देखती थी। लेकिन माता-पिता गाड़ी नहीं रोकते।

पिछले पहर का दर्द लघुकथा में वृद्ध दम्पति की संवेदना को वाणी दी गई है, जिससे यह महत्वपूर्ण रचना बन गई है। तीन बेटों ने मां-बाप को एक-एक महीने की पाली में बांट दिया है। जिस पर भी जिस महीने में इकतीसवां दिन होता है, उस दिन उन्हें भूखा रहना पड़ता है। यह लघुकथा उपवास नाम की लघुकथा का स्मरण करा देती है। लेकिन मानवीय संवेदना के कारण पिछले पहर का दर्द बेहतर रचना बन गई है। उधड़ते रिश्ते, प्लान और ओए लघुकथाएं भी रक्त-संबंधों में आ रहे बिखराव और उपेक्षा को रेखांकित करने वाली रचनाएं हैं।



लघुकथा संग्रह : तुम्हारे लिए
लेखक : कृष्णचंद्र महादेविया,
पार्वती प्रकाशन, 73-ए, द्वारिकापुरी, पोस्ट ऑफिस, सुदामा नगर, इंदौर, मध्य प्रदेश-452 009,
संस्करण : 2018, मूल्य : 200 रुपये

'तुम्हारे लिए', दाम्पत्य जीवन की सकारात्मक सोच वाली बेहतर लघुकथा है। पति गाय को इसलिए बेचना चाहता है कि पत्नी लंगड़ा कर चलती है। पत्नी गाय को इसलिए रखना चाहती है कि पति के दूध-प्रेम की सारी बातें उसकी सास बता चुकी है। यह लघुकथा विख्यात कहानीकार चेखव की कहानी मेजाइ का तोहफा(Gift fo the Magi) का स्मरण करा देती है। हालांकि दोनों की तुलना नहीं की जा सकती।

'खुजली' लघुकथा मध्यवर्ग के सूक्ष्म यथार्थ के एक पक्ष को उभारती है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो गया व्यक्ति दूसरे से नमस्कार पाने को बेताब रहता है, इसे मेघा कनैत के माध्यम से दिखाया गया है। उसी विषय पर इन पंक्तियों के लेखक की लघुकथा 'नमस्ते की वापसी' देखी जा सकती है।

'संवाद', 'स्टेशनरी' और 'तिलचट्टे' लघुकथाएं शासन और प्रशासन के क्षेत्र में होने वाले नियमित भ्रष्टाचार और अनियमितताओं पर लिखी गई हैं। 'संवाद' लघुकथा में एक अखबार के राज्य ब्यूरो प्रमुख महिला से एक छोटी जगह का पत्रकार सीधे बात करता है। जिला ब्यूरो प्रमुख को यह प्रोटोकॉल के खिलाफ होने के कारण बुरा लगता है। मसलन खून उपलब्ध कराने का अर्थ उस पत्रकार के संवाद इस क्षेत्र में फैली विकृतियों को उजागर करते हैं- 'संवेदना, अपनापन और मुहब्बत क्या बड़े पत्रकार ने बेच दी होती है?' तथा 'मुझे क्या पता था कि संवेदना, ममता और मातृत्व भी प्रोटोकॉल देखता है'।

'स्टेशनरी' लघुकथा में सत्तासीन पार्टी के मंडल अध्यक्ष द्वारा धौंसपट्टी से बी.डी.ओ. के दफ्तर से ढेरों सारी स्टेशनरी बगैरह ली जाती है। मंडल अध्यक्ष इसे अपना हक बताता है। ऐसी ही स्थिति 'तिलचट्टे' लघुकथा में आती है, जहां एक दफ्तर में फोन पर सूचना आती है कि मंत्री के पिता उस नगर-कोठी में आ रहें हैं। पांच-छः आदमियों के भोजन का प्रबंध करें। उस व्यक्ति द्वारा तर्क-वितर्क करने पर कहा जाता है- "हार्ड एरिया के लिए अपना बोरिया- बिस्तर बांध लो।"

इसी प्रकार प्रस्तुत संग्रह में कई लघुकथाएं ऐसी हैं, जो पाठकों के मन में सहज ही स्थान बना लेती हैं। 'महिला दिवस' में अधिकारी द्वारा कथनी और करनी के अंतर को दिखाया गया है। कोमल मन में बच्चे द्वारा बड़ों की संकीर्णता के सामने अपनी उदार सोच को उभारा गया है। बकरा लघुकथा को अपनी ऐश परस्ती

कविताएं

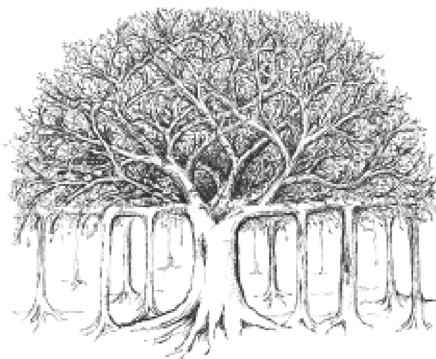
संजय वर्मा 'दृष्टि'

कैसे कैसे रिश्ते

छिन लिया आसरा
पेड़ को कटते देख
दूसरे पौधे रो रहे थे
कौन समझे इनकी पीड़ा
नेक इनसान ही समझते
उसे लगा होगा
जैसे, माता -पिता के मरने पर
रोते हैं कैसे रिश्ते

यह जानते हुए भी
खोने दे रहा है
खुद के जीने की प्राण वायु
पेड़ की खोल के रहवासी
उड़े भागे थे ऐसे
जैसे भूकंप आने पर
लोग छोड़ देते हैं मकान

थरथरा कर गिर पड़ा था पेड़
पेड़ के रिश्तेदार, मूक पशु- पक्षी
खड़े सड़क पर, बैठे मुंडेरों पर
आँखों में आँसू लिए
विचलित अस्मित भाव से
कर रहे संवेदना प्रकट
और मन ही मन में सोच रहे
क्यों छिन लिया आसरा हमसे
क्रूर इनसान ने



वृक्ष की तटस्थता

हे ईश्वर
मुझे अगले जन्म में
वृक्ष बनाना
ताकि लोगों को
औषधियां फल-फूल
और जीने की प्राणवायु दे सकूँ ।

जब भी वृक्षों को देखता हूँ
मुझे जलन सी होने लगती है
क्योंकि इंसानों में तो
दोगलई घुसपैठ कर गई है ।

इनसान-इनसान को
वहशी होकर काटने लगा है
वह वृक्षों पर भी स्वार्थ के
हाथ आजमाने लगा है ।

ईश्वर ने
तुम्हें पूजे जाने का आशीर्वाद दिया
बूढ़े होने पर तुम
इनसानों को चिताओं पर
गोदी में ले लेते हो
शायद ये तुम्हारा कर्तव्य है ।
इंसान चाहे जितने हरे
वृक्ष-परिवार उजाड़े
ऋतु तुम सदैव इनसानों को कुछ
देते ही हो ।

ऐसा ही दानवीर
मैं अगले जन्म में बनना चाहता हूँ
उब चूका हूँ
धूर्त इनसानों के बीच
स्वार्थी बहुरूपिये रूप से
लेकिन वृक्ष तुम तो आज भी तटस्थ हो
प्राणियों की सेवा करने में ।

125 शहीद भगत सिंह मार्ग
मनावर जिला धार, मध्य प्रदेश
मो. 0 98930 70756

के लिए फांसने की एक झलक दिखाई गई है। 'लक्कड़बग्घे' में एक बुजुर्ग द्वारा सड़क छाप युवकों की खबर ली गई है। 'मां' में गाय के माध्यम से मां की ममता को वाणी दी गई है। चूहे, करीमुद्दीन की वापसी, जमाई बाबू, दूध का कर्ज़, नकल, मैं लड़की हूं न, दूरी, वाउचर, आदि लघुकथाएं समाज की किसी समस्या या कमजोरी को उभारने वाली आकर्षक रचनाएं हैं।

प्रेम पर- मुलाकात और रूमाल भी आकर्षित करती है।

'हंसना मना है' लघुकथा में नकलीपन पर चोट है। जीने के लिए आवश्यक है प्रकृति प्रदत्त हंसना। 'अपना लहू', 'साथ-साथ अच्छा लगता है', 'कलाकार', साकारात्मक सोच की अच्छी लघु कथाएं हैं। इस प्रकार कृष्ण चंद्र महादेविया की ये लघुकथाएं सामाजिक ताने-बाने को खोखला करने वाली विकृतियों से संघर्ष की रचनाएं हैं। इनमें शासन-प्रशासन के क्षेत्र में फैले दोगलेपन व भ्रष्टाचार, दरकते पारिवारिक संबंध, वृद्धावस्था की उपेक्षाजन्य पीड़ा में स्वार्थपरता, आडम्बर-पाखंड, नकलीपन पर चोट, मानव मूल्यों की पक्षधरता आदि को मुखरता के साथ चित्रित किया गया गया है।

लेखक से भविष्य में और भी अच्छे, बेहतर शिल्प के लघुकथा संग्रह की आशा की जा सकती है। लघुकथा संग्रह 'तुम्हारे लिए' का मुद्रण और साज-सज्जा आकर्षक है।

1882, सैक्टर 13, अरबन इस्टेट
करनाल, हरियाणा-132001 मो. 9416152100

आखिरी पन्ना

अंधेरी गुफा व महात्मा बुद्ध

◆ विनोद

जुलाई 2018 की दो तारीखें 10 जुलाई तथा 15 जुलाई इतिहास के पन्नों में दर्ज हुईं। इन दोनों तारीखों का संबंध दुनिया के सबसे लोकप्रिय खेल फुटबाल से है। जून माह में विश्वकप फुटबाल का महाकुंभ का आगाज हुआ। विभिन्न देशों की 32 टीमों ने भाग लिया। दुनिया का ध्यान इस खेल पर गया। लाखों, करोड़ों दर्शकों ने इसे खेल स्टेडियम में तथा छोटे पर्दे से लेकर स्मार्ट फोन पर देखा व निहारा। 15 जुलाई को फ्रांस ने फुटबाल का विश्व कप जीत कर इतिहास रचा। इस वर्ष फुटबाल विश्वकप की विशेषता यह रही कि जिन टीमों पर लोगों को कुछ कर गुजरने का भरोसा था, वह बाहर हो गईं। महानतम खिलाड़ियों में शुमार अर्जेंटीना के लयोस मेसी, ब्राजील के नेमार तथा उरुग्वे के स्योरस भी अपने देश की टीम को विजय नहीं दिला सके। इससे सबक यह मिलता है कि सितारों से जीत हासिल नहीं की जा सकती बल्कि एकजुटता, कड़ी मेहनत तथा अभ्यास से लक्ष्य तथा सफलता हासिल की जा सकती है। दस जुलाई की घटना जहां हर शख्स के चेहरे पर खुशी लाई वहीं वह कुछ संदेश भी दे गई। थाइलैंड के थाम लुआंग गुफा में 23 जून, 2018 से फंसे सभी 12 फुटबाल खिलाड़ी तथा उनके 25 वर्षीय कोच इकापोल चांटा वांग, सभी बच्चों की उम्र 11 से 18 वर्ष के बीच थी, सुरक्षित बाहर निकाल लिए गए। वे सभी फुटबाल के अभ्यास के उपरांत गुफा में गए थे। तभी भारी बारिश हुई और बाढ़ आने से वे गुफा में फंस गए। चार किलोमीटर की अंधेरी सुरंग में बचते-बचते वे भीतर ही एक ऊंची चट्टान पर पहुंच गए। इस खबर पर दुनिया भर के गोताखोर तथा माहिर बच्चों को बचाने थाइलैंड पहुंचे, अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, चीन सहित कई देश मदद के लिए आगे आए और पूरी दुनिया बच्चों को बचाने के लिए उठ खड़ी हुई। यह एक अभिनव प्रयास था। और इससे भी बढ़कर इनसानियत का सर्वोच्च मोल। भारत भी पीछे नहीं रहा। यहां भी उनकी सलामती के लिए बड़े से लेकर बच्चें ने प्रार्थनाएं कीं। यह हमारी संस्कृति की महानता ही है। नौ दिन उपरांत दो ब्रिटिश गोताखोरों ने इन्हें खोजा। बचाव तथा बच्चों के अंधेरी गुफा में रहने की कहानी साहसिक ही नहीं बल्कि सभी के लिए एक संदेश है। बचाव दल के सदस्य इवान काराडजिक ने सभी बच्चों के साहस को सराहा। बाहर आने की बच्चों की यात्रा भी अभूतपूर्व थी। उन बच्चों को ऐसा काम करने को कहा गया जो आज तक किसी बच्चे ने नहीं किया। यह आश्चर्यचकित करने वाली घटना है कि बच्चे इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शांत थे। थोड़े समय के लिए भी धैर्य नहीं छोड़ा। इस अभूतपूर्व कार्य में प्रशिक्षक की भूमिका सर्वोपरि है। बच्चों की जिंदगी बचाने के लिए उसने अपना खाना बच्चों को दिया। प्रशिक्षक बनने से पहले इकाबोल चांटावांग बौद्ध संन्यासी थे। उनकी ध्यान लगाने की कला बच्चों को बचाने में कारगर सिद्ध हुई। महात्मा बुद्ध के संयम, धैर्य, साहस, निडरता तथा किसी भी परिस्थिति में स्थितप्रज्ञता बनाए रखने की उनकी शिक्षाएं काम आईं। मानो उस गुफा में प्रशिक्षक नहीं, उस रूप में महात्मा बुद्ध आए थे। प्रशिक्षक ने बच्चों में टीम भावना को उस अंधेरी गुफा में जगाए रखा। बच्चों से पत्र लिखवा कर परिजनों को भिजवाते रहे। 23 जून से 10 जुलाई तक एक अंधेरी गुफा में बच्चों द्वारा बिताए पलों को तो हम अपनी कलम से बयां नहीं कर सकते लेकिन घटना से आज की बेचैन होती युवा पीढ़ी जो अपना संयम खोकर नशे की अंधेरी गुफा में फंसती जा रही है, के लिए संदेश छिपा है। परिस्थितियां कितनी भी विपरीत और विकट क्यों न हों, कभी भी हताश नहीं होना चाहिए। सफलता के लिए संघर्ष और ठोस योजना सदैव जरूरी होती है। सबसे बड़ी बात खुद पर भरोसा कभी नहीं छोड़ें तथा अंत में सामूहिक तथा एकजुट होकर किए जाने वाले प्रयास कठिन से कठिन चुनौती को पार कर सकते हैं। 10 जुलाई को इस युवा फुटबाल टीम तथा उसके प्रशिक्षक के सकुशल लौटने पर ऐसा आभास मिला कि इस वर्ष की विश्वकप फुटबाल प्रतियोगिता थाइलैंड की इस युवा टीम ने जीती हो। आने वाली पीढ़ियां जब इस हैरतअंगेज गाथा को पढ़ेंगी, या देखेंगी तो उनके रौंगटे खड़े हो जाएंगे। हम यह कह सकते हैं कि जीवन में आई किसी भी मुसीबत के समय धैर्य, संयम, निडरता, साहस और उम्मीद के आगे जीत अवश्य संभव है।

बचाव तथा बच्चों के अंधेरी गुफा में रहने की कहानी साहसिक ही नहीं बल्कि सभी के लिए एक संदेश है। बचाव दल के सदस्य इवान काराडजिक ने सभी बच्चों के साहस को सराहा। बाहर आने की बच्चों की यात्रा भी अभूतपूर्व थी। उन बच्चों को ऐसा काम करने को कहा गया जो आज तक किसी बच्चे ने नहीं किया। यह आश्चर्यचकित करने वाली घटना है कि बच्चे इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शांत थे। थोड़े समय के लिए भी धैर्य नहीं छोड़ा। इस अभूतपूर्व कार्य में प्रशिक्षक की भूमिका सर्वोपरि है।



मुख्य मंत्री श्री जय राम ठाकुर शिमला जिले के चौपाल में आयोजित जनसभा के दौरान



मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर शिमला में 6 जिलों में कार्यान्वित होने वाली 800 करोड़ रुपये की
'वन पारिस्थितिकीय प्रबंधन एवं आजीविका' परियोजना के शुभारंभ अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए

पंजीकरण संख्या : 845/1957 जुलाई, 2018 एच.पी./79 एस.एम.एल. 2018–20



फुर्सत के क्षण

अनुपम कश्यप, निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित तथा संजीव पठानिया, नियंत्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग द्वारा हिमाचल प्रदेश सरकार के लिए राजकीय प्रेस, शिमला–171005 से मुद्रित करवाकर शिमला से प्रकाशित। सम्पादक वेद प्रकाश।

ISSN 2454-972X

हिमप्रस्थ

अगस्त–सितंबर, 2018



स्वतंत्रता दिवस की पुकार

अटल बिहारी वाजपेयी

पंद्रह अगस्त का दिन कहता–– आज़ादी अभी अधूरी है।
सपने सच होने बाकी हैं, रावी की शपथ न पूरी है।।

जिनकी लाशों पर पग धर कर आज़ादी भारत में आई।
वे अब तक हैं खानाबदोश गम की काली बदली छायी।।

कलकत्ते के फुटपाथों पर जो आंधी–पानी सहते हैं।
उनसे पूछो, पंद्रह अगस्त के बारे में क्या कहते हैं।।

हिंदू के नाते उनका दुःख सुनते यदि तुम्हें लाज आती।
तो सीमा के उस पार चलो सभ्यता जहां कुचली जाती।।

इनसान जहां बेचा जाता, ईमान खरीदा जाता है।
इस्लाम सिसकियां भरता है, डालर मन में मुस्काता है।।

भूखों को गोली नंगों को हथियार पहनाए जाते हैं।
सूखे कंठों से जेहादी नारे लगवाए जाते हैं।

लाहौर, कराची, ढाका पर मातम की है काली छाया।
पख्तूनों पर, गिलगित पर है गमगीन गुलामी का साया।

बस इसीलिए तो कहता हूं आज़ादी अभी अधूरी है।
कैसे उल्लास मनाऊं मैं? थोड़े दिन की मजबूरी है।

दिन दूर नहीं खंडित भारत को पुनः अखंड बनाएंगे।
गिलगित से गारो पर्वत तक आज़ादी पर्व मनाएंगे।।

उस स्वर्ण दिवस के लिए आज से कमर कसें बलिदान करें।
जो पाया उसमें खो न जाएं, जो खोया उसका ध्यान करें।।

(15 अगस्त, 1947 को लिखित)

ISSN : 2454-972X

हिमप्रस्थ

वर्ष : 63 अगस्त-सितंबर 2018 अंक : 5-6

प्रधान सम्पादक
अनुपम कश्यप

वरिष्ठ सम्पादक
विनोद भारद्वाज

सम्पादक
वेद प्रकाश

सहायक सम्पादक
सतपाल

उप सम्पादक
योगराज शर्मा

कम्पोजिंग एवं पृष्ठ सज्जा : **अश्वनी**

सम्पादकीय कार्यालय: हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्क : 150 रुपये, एक प्रति : 15 रुपये

रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374
Website: himachalpr.gov.in/himprastha.asp

ज्ञान सागर

यदि मानव दानव बन जाता है तो ये उसकी हार है, यदि मानव महामानव बन जाता है तो ये उसका चमत्कार है। यदि मनुष्य मानव बन जाता है तो ये उसकी जीत है। - **डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन**

इस अंक में

लेख

☞ **स्वतंत्रता दिवस पर मुख्यमंत्री का आलेख** 3
☞ **प्रथम स्वतंत्रता संग्राम : जब पहाड़ों में भड़की विद्रोह की चिंगारी**/ विनोद भारद्वाज 7
☞ **सुभाष चंद्र बोस** / नेम चंद अजनबी, 10; ☞ **भारतीय आजादी के पुरोधा क्रांतिकारी वीर सावरकर**/ प्रो. प्यार सिंह ठाकुर, 18; ☞**शस्त्र से साहित्य तक का सफर**, 21;
☞ **विप्लवी महानायक : रास बिहारी बोस**/ विनोद लखनपाल, 23
☞ **डलहौजी में पूर्ण हुई सरदार अजीत सिंह की प्रतिज्ञा**/ अशोक सरीन, 27; ☞ **पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम** / सतपाल, 29; ☞ **रानी खैरगढ़ी**/ कृष्ण कुमार नूतन, 30
☞ **वीर सेनानी भाई हिरदा राम**/ कृष्ण चंद्र महादेविया, 34; ☞ **शिव वर्मा के संस्मरणों में भगत सिंह**, 35; ☞ **क्रांतिकारी योद्धा : इंद्र पाल** / डॉ. ब्रह्म दत्त शर्मा, 38; ☞ **कोई किल्ला पठानिया खूब लड़ेया**/ रमेश चंद्र 'मस्ताना' 41; ☞ **नूरपुर रियासत के स्वदेश प्रेमी शासक**/ सौरभ 47, ☞ **जनरल जोरावर सिंह**/ योगराज शर्मा, 50; ☞ **निज से उठा व्यक्तित्व**/ बी.एस. भाटिया, 54; ☞ **राष्ट्र निर्माण की नई इबारत में अटल अभिदान**, 56;
☞ **कवि हृदय अटल जी का 'पर्वत प्रेम'**/ सुदर्शन वशिष्ठ, 58; ☞ **डॉ. राधाकृष्णन का अमूल्य उपहार**/ डॉ. उषा बंदे, 64; ☞ **भारतीय संस्कृति में गुरु महिमा**/ मंजु गुप्ता, 66;
☞ **हिमाचली वास्तुकला के विविध आयाम**/ डॉ. ललिता कौशल, 68; ☞ **शतकीय यात्रा की ओर बढ़ते पत्र-पत्रिकाओं के कदम**/ रतन चंद निर्झर, 75; ☞ **आजाद देश की आजाद बेटी**/ किक्की सिंह, 80; ☞ **सपने वे होते हैं...**/ दीपक गिरकर, 82

कहानी

☞ **गोंदली**/ रजनी शर्मा बस्तरिया, 84; ☞ **मिन्नी** / जगदीश कपूर, 86
☞ **बंद होते दरवाजे** / पूजा मेहरा, 88

लघुकथा

☞ **उफान पर नदी**/ देवराज डटवाल, 40

कविता/ग़ज़ल

☞ **नमन**/ अश्वनी कुमार, 33; ☞ **यथार्थ**/ डॉ. सुधाकर आशावादी, 46
☞ **तेरे पैरों को प्रिय**/ पंकज कश्यप लाड्डी, 53
☞ **प्यार, जम्हूरियत, इनसानियत के परोधा अटलजी**/ रमेश चंद्र शर्मा, 62
☞ **पौ फटने का इंतजार**/ समर्थ अक्षय कुमार 81
☞ **सुमित राज वशिष्ट की ग़ज़ल** 63
☞ **नहीं देखा समुद्र** राजकुमार जैन 'राजन' 67
☞ **खौफनाक अंधेरे** वंदना राणा 83
☞ **एक भारत श्रेष्ठ भारत** गणपति सिंह 'मुग्धेश' 83
☞ **शिक्षक** शबनम शर्मा 90

पुस्तक समीक्षा

☞ **संवेदनाओं का संसार** रवि कुमार सांख्यान 91
☞ **लघुकथा : परिंदों के माध्यम से एक विमर्श** बद्री सिंह भाटिया 92

आखिरी पन्ना

☞ **साहित्य का कारवां गुजर गया** विनोद 95

अपनी बात

पंद्रह अगस्त एक राष्ट्रीय पर्व है जो प्रत्येक नागरिक को आजादी के मायनों की याद तथा उन असंख्य देशभक्तों का स्मरण करवाता है, जिन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर कर हमें आजादी दिलाई। स्वाधीनता संग्राम के दौरान भारत को विदेशी दासता से मुक्त करवाना ही आजादी का सबसे बड़ा मकसद था जिसमें हर वर्ग, हर संप्रदाय ने एकजुटता दिखाई। यही भारत की संस्कृति की खूबी है और हमने अपनी इस सदियों पुरानी रिवायत को आज भी बनाए रखा है। भारत विभिन्न भाषाओं तथा संस्कृतियों का एक खूबसूरत चमन है। इसमें कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तथा गुजरात से लेकर उत्तर-पूर्वी राज्यों तक भांति-भांति के फूल खिले हैं। आजादी हासिल करने के उपरांत हमने भारत को एक समृद्ध राष्ट्र बनाने की ओर कदम बढ़ाए हैं। नतीजतन हम 72 वर्षों का सफर तय कर प्रगति की राह पर आगे बढ़ रहे हैं। इस अवधि में राष्ट्र ने अनेक कीर्तिमान स्थापित किए हैं। हिमाचल प्रदेश भी राष्ट्र की प्रगति एवं समृद्धि में अपना अमूल्य योगदान दे रहा है। हिमालय की तलहटी में बसे इस प्रदेश ने राष्ट्र की सुरक्षा में सदैव अहम भूमिका निभाई है। इसका उदाहरण है सेना व अर्द्धसैनिक बलों में हिमाचल के सपूतों की भागीदारी। राष्ट्र पर जब भी खतरे के बादल मंडराए, हिमाचल के इन वीर सपूतों ने अपने सीने पर गोलियां खाकर राष्ट्र रक्षा में सर्वोच्च बलिदान दिया है। इसी तरह राष्ट्र के आर्थिक उत्थान में प्रदेश ऊर्जा, उद्योग व वन संपदा के रूप में अभिदान दे रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमें प्रदेश को स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा दिखाई गई राह पर आगे बढ़ने की जरूरत है। इसमें युवा शक्ति की रचनात्मक सहभागिता नितांत आवश्यक है। इस दौर में समाज में व्याप्त कुरीतियों जो राष्ट्र के लिए खतरा बनी हैं, उनसे भी लड़ने की जरूरत महसूस की जा रही है। समाज को नशा-मुक्त करने तथा महिला सशक्तीकरण को प्राथमिकता देकर प्रदेश सरकार आगे बढ़ रही है। युवाओं को राष्ट्र की उन्नति में भागीदार बनाने के लिए सरकारी, निजी तथा सामुदायिक साझेदारी को बढ़ाया जा रहा है। हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री ने इस बार स्वतंत्रता दिवस पर समाज में फैल रहे नशाखोरी के कुचक्र में फंसे युवाओं को आजाद करने का संदेश देकर आजादी के बदलते मायनों की प्रासंगिकता को उजागर किया है। उन्होंने इस पावन अवसर पर युवाओं में तेजी से बढ़ रही नशे की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाकर नशामुक्त समाज के निर्माण की पुरजोर अपील की। प्रदेश सरकार राज्य में बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए युवाओं को न केवल सरकारी क्षेत्र में रोजगार प्रदान कर रही है, बल्कि उन्हें स्वरोजगार के पर्याप्त अवसर मुहैया करवाने के लिए 'मुख्यमंत्री स्वावलम्बन योजना', मुख्यमंत्री युवा आजीविका योजना तथा 'पं. दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल' जैसी अनेक योजनाएं कार्यान्वित कर युवा शक्ति को राष्ट्र निर्माण गतिविधियों में लगाने का हर संभव प्रयत्न कर रही है। नशामुक्त समाज के निर्माण में सरकारी स्तर पर किए जा रहे प्रयास तभी सफल हो सकते है यदि लोग भी इसमें स्वेच्छा से अपना सक्रिय भागीदारी निभाएं। हिमप्रस्थ विगत 63 वर्षों से प्रदेश की संस्कृति, परंपराओं का सानी रहा है। इस अंक में राष्ट्र के महान सपूतों सुभाष चंद्र बोस, वीर सावरकर, रासबिहारी बोस, अजीत सिंह, भगत सिंह के साथ हिमाचल के वीर नायकों बाबा कांशी राम, रानी खैरगढ़ी, भाई हिरदाराम, इंद्रपाल, यशपाल, जोरावर सिंह, राम सिंह पठानिया के स्वतंत्रता संग्राम में देश के प्रति समर्पण एवं कृतज्ञता बारे आज की पीढ़ी को अवगत कराने का एक प्रयास किया है। इन सभी ने किसी न किसी रूप में राष्ट्र की सेवा में अपना सर्वस्व न्योछावर किया है। इनका जीवन हम सभी के लिए प्रेरणा का स्रोत है। इसके अतिरिक्त इस अंक में हिमाचल निर्माता डॉ. यशवंत सिंह परमार के जीवन संघर्ष की गाथा तथा उनके हिमाचल निर्माण में योगदान को भी यथास्थान दिया गया है। इस बीच भारत रत्न अटल बिहारी वाजपेयी हमारे बीच नहीं रहे। उन्हें श्रद्धांजलि स्वरूप देश व प्रदेश के प्रति उनके द्वारा दिए गए समर्पण को भी रेखांकित किया गया है। शिक्षा दिवस, हिंदी दिवस पर भी सामग्री इस अंक में पाठकों की नजर की गई है।

संपादक

72वां स्वतन्त्रता दिवस

समावेशी विकास की राह पर गतिमान हिमाचल



मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर का स्वतन्त्रता दिवस पर आलेख

स्वतंत्रता दिवस के पावन अवसर पर समस्त प्रदेशवासियों को मेरी और प्रदेश सरकार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएं! 15 अगस्त का यह पावन दिवस, हम सब देशवासियों के लिए एक उल्लास का पर्व है। यह अवसर उन महान स्वतंत्रता सेनानियों और विभूतियों को स्मरण करने का भी है, जिन्होंने इस देश की स्वतंत्रता के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। इन देशभक्तों का बलिदान, हम सब देशवासियों को अपने महान देश की गर्व के साथ सेवा करने के लिए प्रेरित करता है।

यह गर्व की बात है कि हिमाचल के लोगों ने भी स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-चढ़ कर भाग लिया था। हिमाचल में हुए धामी गोली कांड, प्रजामण्डल आन्दोलन, सुकेत सत्याग्रह तथा पझौता आन्दोलन ने उस समय देश का ध्यान आकर्षित किया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के आठ माह के उपरान्त हिमाचल प्रदेश अस्तित्व में आया था। उस समय यह प्रदेश आर्थिक तंगी और आधारभूत सुविधाओं की कमी के कारण अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा था। परन्तु, मेहनतकश एवं ईमानदार पहाड़ी लोगों ने दृढ़ इच्छाशक्ति से सभी कठिनाइयों का सामना करते हुए, चुनौतियों को सुअवसरों में बदला। आज यह प्रदेश निरन्तर प्रगति के पथ पर गतिमान है।

27 दिसम्बर, 2017 को वर्तमान भाजपा सरकार के सत्ता सम्भालते ही प्रदेशवासियों में नई आशाओं एवं आकांक्षाओं की उम्मीद जगी है। प्रदेश में सुशासन और जनसेवा के एक नए युग का उदय हुआ है। प्रदेश सरकार ने भी अपने दायित्व को बखूबी निभाते हुए लोगों के विश्वास को और पुख्ता किया है।

सत्ता सम्भालते ही, हमारी सरकार ने भारतीय जनता पार्टी के 'स्वर्णिम हिमाचल दृष्टिपत्र-2017' को सरकार का नीति दस्तावेज बनाया और 'सबका साथ-सबका विकास' की मूल अवधारणा को समक्ष रखकर, कार्य आरम्भ किया। विकास कार्यों को समयबद्ध ढंग से पूरा करने की नीति निर्धारित करते हुए सभी विभागों को 100 दिन के लक्ष्य दिए गए ताकि सरकारी तंत्र को जन कल्याण के प्रति सक्रिय किया जा सके। सभी विभागों ने अच्छा प्रदर्शन करके यह सिद्ध कर दिया कि सही नेतृत्व एवं मार्गदर्शन से सब कुछ संभव है। इससे प्रदेश में कार्य संस्कृति का माहौल विकसित हुआ है और अधिकारीगण 'लीक से हटकर' सोचने लगे हैं, जिसके फलस्वरूप प्रदेश हित में, आवश्यकता के अनुसार अभिनव योजनाएं तैयार हो रही हैं।

सुशासन से जनता की सेवा, कृषकों व बागबानों की आय दोगुनी करने के लिए कृषि गतिविधियों में विविधता, युवाओं के लिए रोजगार सृजन, बेहतर कानून–व्यवस्था, सभी बेघरों को आवास सुविधा, ड्रग, खनन एवं वन माफिया पर नियंत्रण, बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं, गुणवत्ता आधारित शिक्षा, महिला सशक्तीकरण, जरूरतमंदों को सामाजिक सुरक्षा, कमजोर वर्गो का उत्थान, प्रदेशवासियों को स्वच्छ पेयजल तथा सभी पंचायतों को वाहन–योग्य सड़क से जोड़ना, हमारी सरकार के मार्गदर्शक सिद्धान्त हैं। इन्हीं प्राथमिकताओं के अनुसार, हमारी सरकार कार्य कर रही है और मुझे खुशी है कि पिछले सात महीनों में हमारे प्रयासों को सराहा गया है। हमारी सरकार ने सत्ता सम्भालते ही, महिलाओं में सुरक्षा की भावना पैदा करने, खनन व ड्रग माफिया और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने की दिशा में कारगर कदम उठाए हैं। महिलाओं की सुरक्षा के लिए 'शक्ति बटन ऐप' तथा 'गुड़िया हेल्पलाइन–1515' आरम्भ की गई है। वन माफिया, खनन माफिया तथा ड्रग माफिया के विरुद्ध सख्ती से निपटने के लिए 'होशियार सिंह हेल्पलाइन–1090' आरम्भ की गई है।

विभिन्न विभागों की योजनाओं–परियोजनाओं के कार्यो की प्रगति की ऑनलाइन समीक्षा एवं निगरानी के लिए हमने कारगर व्यवस्था की है। मुख्यमंत्री कार्यालय द्वारा 'मुख्यमंत्री डैशबोर्ड' के माध्यम से विकास योजनाओं की प्रगति की मॉनिटरिंग की जा रही है। निर्माण कार्यो की गुणवत्ता पर नजर रखने के लिए मुख्यमंत्री कार्यालय में, निर्माण गुणवत्ता निगरानी सैल गठित किया गया है। कार्यप्रणाली में पारदर्शिता एवं दक्षता लाने के उद्देश्य से अधिकतर विभागों में नागरिक सेवाएं ऑनलाइन कर दी गई हैं।

9 मार्च, 2018 को विधानसभा में प्रस्तुत अपने पहले ही बजट में हमने, आम जन के कल्याण के लिए 30 नई योजनाएं आरम्भ करने की घोषणा की थी। इन योजनाओं में से अधिकांश पर कार्य आरम्भ हो चुका है। जन मंच, हिमाचल गृहिणी सुविधा योजना तथा मुख्यमंत्री स्वावलम्बन योजना विशेष रूप से लोकप्रिय हुई हैं। जनता से सीधा संवाद स्थापित करने और उनकी समस्याओं का मौके पर समाधान करने के उद्देश्य से आरम्भ 'जन मंच' बड़ा उपयोगी एवं कारगर सिद्ध हुआ है। यह हर्ष की बात है कि यह कार्यक्रम लोगों की समस्याओं के त्वरित समाधान के साथ–साथ सरकार को फीडबैक प्रदान करने का बेहतर माध्यम साबित हो रहा है। मंत्रियों के नेतृत्व में हर माह प्रत्येक जिले के दूर–दराज क्षेत्रों में जन मंच आयोजित किए जा रहे हैं। जन मंच के दौरान समस्त ज़िला अधिकारी उपस्थित रहते हैं, जिससे जनता की शिकायतों को मौके पर निपटाने में सहायता मिल रही है। अब तक तीन जन मंच आयोजित किए जा चुके हैं, जिनमें लोगों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया है। जन मंच की प्रासंगिकता और महत्ता को देखते हुए, मैं स्वयं इस कार्यक्रम की निगरानी और समीक्षा कर रहा हूं ताकि जन मंच को और भी प्रभावी बनाया जा सके। हमारी सरकार ने महिलाओं के सशक्तीकरण और युवाओं के स्वावलम्बन की दिशा में विशेष प्रयास आरम्भ किए हैं। हमने प्रदेश की गृहिणियों को चूल्हे के धुएं से निज़ात दिलाने के लिए, हिमाचल गृहिणी सुविधा योजना आरम्भ की है। इस योजना के अन्तर्गत उन सभी पात्र परिवारों को घरेलू गैस कुनैक्शन मुफ्त में दिए जा रहे हैं, जो उज्ज्वला योजना के अंतर्गत कवर नहीं हो पाए हैं और जिनके पास अभी तक यह सुविधा उपलब्ध नहीं है। इस योजना से जहां पर्यावरण संरक्षण में सहायता मिलेगी, वहीं ग्रामीण महिलाओं को ईंधन की लकड़ी जुटाने में होने वाले कठिनाइयों से भी छुटकारा मिलेगा।

हमने युवाओं को स्वरोज़गार के अवसर उपलब्ध करवाने तथा स्थानीय उद्यम को बढ़ावा देने के उद्देश्य से मुख्यमंत्री स्वावलम्बन योजना आरम्भ की है। इस योजना के अन्तर्गत 18 वर्ष से 35 वर्ष आयु वर्ग के हिमाचली युवाओं को उद्योग स्थापित

सात महीनों की इस छोटी सी अवधि में, हमारी सरकार की एक बड़ी उपलब्धि यह रही है कि हम केन्द्र सरकार से लगभग 6310 करोड़ रुपये की छः बड़ी परियोजनाएं स्वीकृत करवाने में सफल हुए हैं। प्रदेश में ऐसा पहली बार हुआ है कि इतने कम समय में, प्रदेश को परियोजनाओं के रूप में इतनी बड़ी अतिरिक्त सहायता प्राप्त हुई है। पर्यटन विकास, बागबानी विकास, खुम्ब विकास, पेयजल संवर्धन, जल संरक्षण एवं वर्षा–जल संग्रहण तथा वन प्रबन्धन के लिए स्वीकृत ये परियोजनाएं, किसानों–बागबानों की आय दोगुनी करने, युवाओं को रोजगार उपलब्ध करवाने तथा महिलाओं के सशक्तीकरण की दिशा में वरदान सिद्ध होंगी।

प्रदेश में विकास की गति तेज करने हेतु केन्द्र सरकार से मिल रहे सहयोग के लिए, राज्य सरकार तथा प्रदेशवासी उनके आभारी हैं। हिमाचलवासी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के दिल के बहुत करीब हैं और वह इस प्रदेश की कठिनाइयों, चुनौतियों और आवश्यकताओं से भली–भांति अवगत हैं। यही कारण है कि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के कुशल नेतृत्व वाली केन्द्र सरकार से प्रदेश को उदार सहायता प्राप्त हो रही है। एम्स, बिलासपुर तथा 69 नए राष्ट्रीय राजमार्गों की स्वीकृति इसका जीवंत उदाहरण हैं।

करने के लिए 50 लाख रुपये तक की कुल परियोजना लागत में 40 लाख रुपये तक के संयंत्र तथा मशीनरी के निवेश पर 25 प्रतिशत पूंजी उपदान दिया जा रहा है, जबकि महिलाओं के लिए यह उपदान अधिकतम 30 प्रतिशत है। इस वर्ष इस योजना पर 80 करोड़ रुपये व्यय किए जाएंगे।

प्रदेश के युवाओं को रोज़गार पाने के योग्य बनाने के लिए कौशल विकास पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। प्रदेश में दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना तथा प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना चलाई जा रही है। 640 करोड़ रुपये की एक और महत्वाकांक्षी कौशल विकास योजना, एशियन विकास बैंक के सहयोग से चलाई जा रही है। इन सभी योजनाओं के अन्तर्गत प्रदेश में एक लाख से भी ज्यादा युवाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया जाएगा।

सात महीनों की इस छोटी सी अवधि में, हमारी सरकार की एक बड़ी उपलब्धि यह रही है कि हम केन्द्र सरकार से लगभग 6310 करोड़ रुपये की छः बड़ी परियोजनाएं स्वीकृत करवाने में सफल हुए हैं। प्रदेश में ऐसा पहली बार हुआ है कि इतने कम समय में, प्रदेश को परियोजनाओं के रूप में इतनी बड़ी अतिरिक्त सहायता प्राप्त हुई है। पर्यटन विकास, बागबानी विकास, खुम्ब विकास, पेयजल संवर्धन, जल संरक्षण एवं वर्षा–जल संग्रहण तथा वन प्रबन्धन के लिए स्वीकृत ये परियोजनाएं, किसानों–बागबानों की आय दोगुनी करने, युवाओं को रोजगार उपलब्ध करवाने तथा महिलाओं के सशक्तीकरण की दिशा में वरदान सिद्ध होंगी।

हमने आगामी पांच वर्षों में, प्रदेश को जैविक खेती राज्य बनाने का भी लक्ष्य रखा है। प्रदेश में रेशम उत्पादन, मधुमक्खी–पालन तथा पुष्प उत्पादन के लिए नई प्रोत्साहन योजनाएं आरम्भ की हैं। अभी हाल ही में, केन्द्र से 1688 करोड़ रुपये की बागबानी विकास परियोजना तथा 423 करोड़ रुपये की समेकित खुम्ब विकास परियोजना स्वीकृत हुई हैं। इन परियोजनाओं से प्रदेश के सभी क्षेत्रों में बागबानी विकास को एक नई दिशा मिलेगी।

इसके अलावा, प्रदेश सरकार द्वारा केन्द्र को प्रेषित 4751 करोड़ रुपये की जल संरक्षण एवं वर्षा जल संग्रहण परियोजना के प्रथम चरण में 708.87 करोड़ रुपये स्वीकृत हुए हैं, जिसे मण्डी, हमीरपुर और बिलासपुर ज़िलों के चयनित पांच विकास खण्डों में लागू किया जाएगा।

प्रदेश में विकास की गति तेज करने हेतु केन्द्र सरकार से मिल रहे सहयोग के लिए, राज्य सरकार तथा प्रदेशवासी उनके आभारी हैं। हिमाचलवासी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के दिल के बहुत करीब हैं और वह इस प्रदेश की कठिनाइयों, चुनौतियों और आवश्यकताओं से भली–भांति अवगत हैं। यही कारण है कि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के कुशल नेतृत्व वाली केन्द्र सरकार से प्रदेश को उदार सहायता प्राप्त हो रही है। एम्स, बिलासपुर तथा 69 नए राष्ट्रीय राजमार्गों की स्वीकृति इसका जीवंत उदाहरण हैं।

केन्द्र सरकार की महत्वाकांक्षी योजनाओं विशेषकर उज्ज्वला योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, जन–धन योजना, सुरक्षा बीमा योजना, मुद्रा योजना तथा प्रधानमंत्री सिंचाई योजना को प्रदेश में प्रभावी ढंग से लागू करके हम पूरा लाभ उठा रहे हैं। बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ तथा स्वच्छ भारत अभियान को भी सफलतापूर्वक चलाया जा रहा है।

प्रदेश को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने में, पर्यटन अपनी अह्म भूमिका निभा सकता है। प्रदेश में विद्यमान प्राकृतिक, साहसिक व सांस्कृतिक पर्यटन विकास की व्यापक संभावनाओं के दृष्टिगत, हमारी सरकार ने विस्तृत कार्य योजना बनाई है। 50 करोड़ रुपये की 'नई राहें–नई मंजिलें' नामक नई योजना आरम्भ की है, जिसके अन्तर्गत पर्यटकों को प्राकृतिक वैभव से भरपूर अनछुए क्षेत्रों में जाने के प्रति आकर्षित किया जा रहा है। अभी हाल ही में, केन्द्र सरकार से स्वीकृत 1892 करोड़ रुपये की महत्वाकांक्षी पर्यटन विकास परियोजना इस दिशा में वरदान सिद्ध होगी।

प्रदेश में पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए 'एयर कनेक्टिविटी' के विस्तार पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस उद्देश्य के लिए शिमला से चंडीगढ़ के बीच हेली-टैक्सी सेवा आरम्भ की है। अन्य महत्वपूर्ण पर्यटन-स्थलों के लिए ऐसी सेवाएं आरम्भ करने के प्रयास जारी हैं। उड़ान-।। योजना के अन्तर्गत प्रदेश में पांच और हेलीपैड बनाने की संभावनाओं का पता लगाने के लिए सर्वेक्षण करवाया जा चुका है। प्रदेश में अन्तरराष्ट्रीय हवाई-अड्डे के निर्माण के लिए भी प्रयास किए जा रहे हैं।

प्रदेश में बेहतर यातायात सुविधाएं उपलब्ध करवाने की दृष्टि से सड़कों के विस्तार और सुधार का व्यापक कार्य चल रहा है। सड़कों की मरम्मत के लिए अभी तक 200 करोड़ रुपये जारी किए जा चुके हैं। इस वर्ष 600 कि. मी. नई सड़कें बनाने तथा 40 नए गांवों को सड़क सुविधा से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया है। नए स्वीकृत 4312 कि. मी. लम्बे 69 राष्ट्रीय राजमार्गों में से अधिकांश राजमार्गों के लिए परामर्शदाता नियुक्त किए जा चुके हैं। प्रदेश में समाज के कमजोर वर्गों का उत्थान, हमारी सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता है। हमने सत्ता संभालते ही, इस दिशा में प्रयास आरम्भ कर दिए थे। मंत्रिमण्डल की पहली बैठक में ही, वृद्धजनों की बिना किसी आय सीमा के, सामाजिक सुरक्षा पेंशन पाने की आयु सीमा को, 80 वर्ष से घटाकर 70 वर्ष किया गया, जिससे एक लाख 30 हज़ार वृद्धजन लाभान्वित हुए हैं। इन्हें अब 1300 रुपये मासिक की दर से बढ़ी हुई सामाजिक सुरक्षा पेंशन मिल रही है। इस समय लगभग 4 लाख 47 हजार पात्र व्यक्तियों को सामाजिक सुरक्षा पेंशन प्रदान की जा रही है, जिसके लिए इस वर्ष 600 करोड़ रुपये के बजट का प्रावधान किया गया है। प्रदेश में अन्य कमजोर वर्गों के अलावा अल्पसंख्यक वर्ग के कल्याण पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस उद्देश्य से मुख्यमंत्री अल्पसंख्यक कल्याण योजना आरम्भ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत गरीब मुस्लिम परिवारों की लड़कियों के निकाह के लिए वक्फ बोर्ड के माध्यम से 25 हजार रुपये का अनुदान दिया जाएगा। प्रदेश में शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारना, एक बड़ी चुनौती है। हमारी सरकार ने इस दिशा में प्रयास आरम्भ कर दिए हैं। हाई स्कूलों तथा वरिष्ठ माध्यमिक स्कूलों में 'मल्टीमीडिया टीचिंग-यंत्रों' के माध्यम से स्मार्ट क्लास रूम विकसित किए जा रहे हैं। स्कूलों में विद्यार्थियों-शिक्षकों का अनुपात बढ़ाने के लिए कदम उठाए गए हैं। शिक्षकों की भर्तियां लगातार की जा रही हैं। प्रदेश में गुणात्मक शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से, मुख्यमंत्री आदर्श विद्या केन्द्र नामक नई योजना बनाई गई है, जिसके अन्तर्गत विधानसभा क्षेत्रों, जहां नवोदय विद्यालय अथवा एकलव्य विद्यालय नहीं हैं, चरणबद्ध ढंग से एक आदर्श आवासीय विद्यालय खोला जाएगा। प्रथम चरण में 10 आदर्श विद्यालय स्थापित किए जाएंगे। इनमें से 5 विद्यालय केवल छात्राओं के लिए खोले जाएंगे। इस वर्ष इस योजना के लिए 25 करोड़ रुपये का बजट प्रावधान किया गया है। प्रदेशवासियों को बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करवाने के लिए कारगर कदम उठाए गए हैं। चिकित्सकों और पैरा-मेडिकल स्टाफ भरने की प्रक्रिया जारी है। इस अवधि में डाक्टरों के अनेक पद भरे जा चुके हैं। अस्पतालों में जरुरतमंद मरीजों को निःशुल्क दवाइयां उपलब्ध करवाई जा रही हैं। आई.जी.एम.सी., शिमला में चौबीस घण्टे 330 जेनेरिक दवाइयां निःशुल्क उपलब्ध करवाई जा रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी बेहतर मेडिकल सुविधाएं उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से 'स्वास्थ्य में सहभागिता' नामक नई योजना आरम्भ की गई है, ताकि इस क्षेत्र में प्राइवेट सेक्टर की भागीदारी को बढ़ाया जा सके। इसके अतिरिक्त, प्रदेश में स्वास्थ्य सुविधाओं के सुधार की दिशा में अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं। मुख्यमंत्री आशीर्वाद नामक नई योजना आरम्भ की गई है, जिसके अन्तर्गत सभी नवजात शिशुओं को 1500 रुपये मूल्य की 'नव आगन्तुक' किट प्रदान की जा रही है। हमारा यह सुन्दर प्रदेश देवभूमि के अलावा, वीरभूमि भी है। प्रदेश के युवा सेना व सुरक्षा बलों में सेवा करने में गर्व महसूस करते हैं। प्रदेश के जवानों ने जरूरत पड़ने पर देश के लिए बड़ी कुर्बानियां दी हैं। इन वीरों की शौर्य गाथाएं हम सबको गौरवान्वित करती हैं और हम सब में राष्ट्र-प्रेम की भावना जागृत करती हैं। प्रदेश में सेना में शहीद हुए सैनिकों के परिवारजनों को करूणामूलक आधार पर सरकारी सेवाओं में रोज़गार प्रदान करने की तर्ज पर हमारी सरकार ने अब अर्द्ध-सैनिक बलों के शहीदों के परिवारों को भी यह सुविधा प्रदान करने का निर्णय लिया है। हमारी सरकार स्वतंत्रता सेनानियों व उनके आश्रितों के कल्याण के प्रति भी वचनबद्ध है। लम्बे संघर्ष के बाद हासिल आज़ादी को सहेज कर रखना हम सभी का कर्तव्य है। लेकिन आज देखने में आ रहा है कि हमारे कुछ युवा नशे के जाल में फंस कर पराधीन हो रहे हैं और जीवन की राह से भटक रहे हैं। आज नशामुक्त समाज के निर्माण के लिए एक आन्दोलन की आवश्यकता है। आज के इस पावन अवसर पर हमें संकल्प लेना होगा कि न नशा करेंगे, न करने देंगे। प्रदेश की उन्नति, खुशहाली और समृद्धि के लिए प्रयास करेंगे, यही हमारे सेनानियों के लिए हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

आइए! स्वतंत्रता दिवस के इस पावन अवसर पर, हम सब संकल्प लें कि प्रदेश में सामाजिक सौहार्द बनाए रखते हुए, एकजुट होकर इस प्रदेश को प्रगति के शिखर की ओर ले जाने में अपना योगदान देंगे ताकि इस प्रदेश को समावेशी एवं समग्र विकास का एक आदर्श बनाया जा सके।

आलेख

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम
जब पहाड़ों में भड़की विद्रोह की चिंगारी

◆ विनोद भारद्वाज

हमारी स्वाधीनता महान राष्ट्रीय संग्राम से मिली विजय का प्रतीक है। 1857 की क्रांति को भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम माना जाता है। अंग्रेजों के खिलाफ शुरू हुए इस विद्रोह में सैनिकों, राजाओं तथा प्रजा तीनों ने ही समान रूप से भाग लिया। बहादुर शाह जफर, नाना साहिब तथा झांसी की रानी के अदम्य साहस की परिचायक इस क्रांति ने अंग्रेजी सरकार को भारतीय जनमानस के सम्मुख घुटने टेकने के लिए मजबूर कर दिया।

कंपनी सरकार द्वारा छलकपट से राज्य विस्तार, भारतीय रियासतों को हड़पने की नीति, भारत की शोचनीय आर्थिक दशा, शिक्षित भारतीयों की उपेक्षा, कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी होने की अफवाह 1857 की क्रांति के मुख्य कारण बने।

मंगल पांडे द्वारा बंगाल के बैरकपुर में 29 मार्च, 1857 को चर्बी वाले वाले कारतूसों के प्रयोग के मना करने पर विद्रोह का सूत्रपात हुआ। मंगल पांडे को बगावत के लिए 8 अप्रैल, 1857 को फांसी की सजा हुई। यह विद्रोह शीघ्र ही दिल्ली, कानपरु, लखनऊ और झांसी आदि में फैल गया। मेरठ में 9 मई, 1857 को विद्रोह की चिंगारी फैली। देशभक्तों की टोली ने दिल्ली की ओर कूच किया तथा दिल्ली में बहादुर शाह द्वितीय को सम्राट घोषित किया। अंग्रेजों की छलकपट की नीति की बदौलत सितंबर 1857 को अंग्रेजों ने पुनः दिल्ली पर कब्जा कर लिया।

इस क्रांति में सभी समुदायों के लोगों ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर कंधे से कंधा मिलाकर देशभक्ति की अद्वितीय मिसाल कायम की।

मेरठ, कानपुर, लखनऊ, ग्वालियर में जो विदेशी दासता के प्रति विद्रोह फैला उसका प्रभाव पहाड़ों पर पड़े बिना नहीं रहा। 9मई, 1857 को मेरठ व दिल्ली से होती हुई विद्रोह की सूचना 13 मई, 1857 को शिमला पहुंची। शिमल के निकट जतोग में स्थित गोरखा रेजीमेंट जिसे नसीरी बटालियन के नाम जाना जाता था, ने जनरल का हुक्म मानने से इनकार कर दिया तथा सूबेदार भीम सिंह ने लगभग 80 सैनिकों को साथ लेकर दिल्ली की ओर कूच किया। यह सूचना जब कसौली पहुंची तो वहां भी विद्रोह भड़क उठा। सैनिकों ने अंग्रेजी खजाना लूट लिया तथा अंबाला की ओर कूच किया। कसौली में अंग्रेजी सैनिकों की संख्या अधिक होने के कारण भी भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों को भगा दिया तथा कैप्टन बलैकॉल जान बचा कर भाग गया।

तत्कालीन कसौली के सहायक कमिश्नर पी. मैक्सवैल ने इस घटना के बारे में लिखा, "फिर भी यह बड़े खेद का विषय है कि मुट्ठी भर क्रांतिकारियों ने चार गुना से भी अधिक अंग्रेजी सैनिकों के सम्मुख इस प्रकार विद्रोह के आरंभ में ही अंग्रेजी सरकार को उसके अपने ही दृढ़ गढ़ में त्रस्त कर दिया और ब्रिटिश कोष को लूटा।"

1857 की क्रांति में पहाड़ी जनता ने भी समान रूप से भाग लिया। इसके बारे में कैप्टन डी. बिज द्वारा टिप्पणी में संदर्भ मिलता है, "मैं यह केवल इसलिए लिखता हूं कि इस दूरस्थ तथा स्वभाव से शांत इलाकों में भी या तो बाहर से प्रभाव पहुंच चुका है या अन्य इलाकों के साथ इसमें भी क्रांति की वह उत्तेजित भावना जागृत हुई जो बहुत सी दशाओं में विद्रोह का प्रमुख कारण है।"

तत्कालीन कसौली के सहायक कमिश्नर पी. मैक्सवैल ने इस घटना के बारे में लिखा, "फिर भी यह बड़े खेद का विषय है कि मुट्ठी भर क्रांतिकारियों ने चार गुना से भी अधिक अंग्रेजी सैनिकों के सम्मुख इस प्रकार विद्रोह के आरंभ में ही अंग्रेजी सरकार को उसके अपने ही दृढ़ गढ़ में त्रस्त कर दिया और ब्रिटिश कोष को लूटा।" 1857 की क्रांति में पहाड़ी जनता ने भी समान रूप से भाग लिया। इसके बारे में कैप्टन डी. बिज द्वारा टिप्पणी में संदर्भ मिलता है, "मैं यह केवल इसलिए लिखता हूं कि इस दूरस्थ तथा स्वभाव से शांत इलाकों में भी या तो बाहर से प्रभाव पहुंच चुका है या अन्य इलाकों के साथ इसमें भी क्रांति की वह उत्तेजित भावना जागृत हुई जो बहुत सी दशाओं में विद्रोह का प्रमुख कारण है।"

उस समय शिमला की रियासतों में अंग्रेज अधिकारी व सेना तैनात थी। सिखों से युद्ध के कारण पहले ही इनकी स्थिति चिंताजनक थी। ऐसी स्थिति में रामपुर बुशहर, कुल्लू तथा कांगड़ा रियासतों ने विद्रोह करने का साहस दिखाया। अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त 6 नवंबर, 1815 को सनद के अनुसार रामपुर बुशहर रियासत का बहुत सा हिस्सा अंग्रेजों ने हथिया कर दूसरी रियासतों में मिला दिया था। 1857 में तत्कालीन राजा शमशेर सिंह ने उपयुक्त अवसर का लाभ उठा कर सेना को खर्च देना बंद कर दिया और उसे बाहर खदेड़ने का प्रयास किया। लॉर्ड विलियम हे, एजेंट हिल एस्टेट ने राजा के विरुद्ध सेना भेजनी चाही, किंतु साहस न कर सका और बुशहर रियासत इसका फायदा उठाकर स्वतंत्र हो गई।

कुल्लू रियासत के राजा प्रताप सिंह ने सिराज क्षेत्र में अपनी शक्ति को संगठित कर 1857 की क्रांति के समय नेगी की सहायता से विद्रोह का बिगुल बजाया। प्रताप सिंह का विद्रोह अधिक दिन न टिक सका। प्रताप सिंह व उसके साले वीर सिंह को पकड़ लिया गया। उन्हें 3 अगस्त, 1857 को धर्मशाला में फांसी की सजा दे दी गई। दिल्ली व मेरठ में विद्रोह की सूचना 14 मई, 1857 को कांगड़ा पहुंची। अंग्रेजों द्वारा कांगड़ा किले की ओर तुरंत एक पुलिस बटालियन भेज दी गई। किले में सिपाहियों तथा ग्रामीणों द्वारा अंग्रेज अफसरों की हत्या की गुप्त योजना थी, जिसे पुलिस बटालियन की तैनाती के कारण विफल कर दिया गया। इसका वृत्तांत डिप्टी कमिश्नर कांगड़ा द्वारा मेजर एडवर्ड लेक के 15 अगस्त, 1857 को लिखे पत्र में मिलता है। इसी दौरान नूरपुर में विद्रोह की ज्वाला भड़की। इसको दबाने के लिए डिप्टी कमिश्नर सहित सौ सैनिकों का दल रवाना हुआ। क्रांतिकारियों ने नदी पार करने के लिए नौकाओं की व्यवस्था की थी जिसे अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया। इस विद्रोह को दबाने के लिए राजा चंबा ने अंग्रेजों की सहायता की। अनेक सिपाही, घुड़सवार व अन्य क्रांतिकारियों को पकड़ कर अनेक यातनाएं दी गईं।

शिमला व कसौली में अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत का वृत्तांत पंजाब विद्रोह रिपोर्ट (Punjab Mutiny Report) में मिलता है। जिसे 1888-89 में प्रकाशित शिमला जिला गजेटियर के पृष्ठ 29-31 में सम्मिलित किया गया। इसके अतिरिक्त एडवर्ड जे. बक द्वारा 1925 में प्रकाशित 'शिमला पास्ट एंड प्रेजेंट' में इस घटना के अंग्रेजी वृत्तांत मिलते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय लेखक राजा भसीन की पुस्तक 'द समर कैपिटल ऑफ ब्रिटिश इंडिया' (1992), पामिला कंवर की पुस्तक 'इंपीरियल शिमला' (1989), एम.एस. आहलुवालिया की पुस्तक 'हिस्ट्री आफ हिमाचल प्रदेश' में भी 1857 के विद्रोह का वृत्तांत मिलता है।

इन सभी लेखकों ने 1857 के संदर्भों के लिए अंग्रेजी हुकूमत के रिकॉर्ड तथा ब्रिटिश लेखकों को ही आधार माना है।

इस समय शिमला से कोई भी भाषाई समाचार पत्र प्रकाशित नहीं होता था जिसमें कि इस क्रांति का उल्लेख मिल सके। परंतु यह प्रसन्नता की बात है कि 1857 की क्रांति के समय शिमला में एक ऐसे मेहमान आए हुए थे जिन्होंने अपनी आत्मकथा में इसका पूर्ण विवरण लिखा है। यह थे - महान कवि ठाकुर रवींद्र नाथ के



पिता महर्षि देवेंद्र नाथ टैगोर, जो 1857 में शिमला आए हुए थे और क्रांति के कारण 18 माह तक शिमला में रुके रहे (अप्रैल 28, 1857 से अक्तूबर 6, 1858 तक)। यह उनकी शिमला की पहली यात्रा थी। उनकी आत्मकथा 'आत्मजीवनी' 1898 में प्रथम बार कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी तथा इसका चौथा संस्करण 1962 में विश्व भारती पब्लिकेशन कलकत्ता द्वारा प्रकाशित किया गया था।

महर्षि देवेंद्र नाथ टैगोर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उन्हें शिमला इतना भाया कि उन्होंने सारा जीवन यहीं बिताने की सोची थी।

उन्होंने शिमला में 1857 की क्रांति के बारे में लिखा कि इस समय शिमला में वास करने वाले लोगों में मिली-जुली प्रतिक्रिया थी। मुसलिम समुदाय अपनी सत्ता को पुनः हासिल होने की खुशी में अत्यंत प्रसन्न थे जबकि स्थानीय पहाड़ी लोगों में ज्यादा उत्साह नहीं था। जतोग छावनी में फैले विद्रोह के दृष्टिगत पुरुष अंग्रेजों ने शहर के ऊंचे स्थानों पर अपने परिवारों सहित मोर्चे संभाले तथा सारा शिमला खाली हो गया था। अंग्रेजों ने 16 मई, 1857 को शिमला से पलायन करना आरंभ किया। सभी प्रकार की परिवहन व्यवस्था जैसे घोड़ा गाड़ी, पालकी, रिक्शों का चलना पूर्ण बंद हो गया था। अंग्रेज महिलाओं ने शिमला से भाग कर पहाड़ी राजाओं के पास शरण ली।

महर्षि देवेंद्र नाथ टैगोर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि अंग्रेजों ने शहर की रक्षा करने की बजाय दारूबाजी व महिलाओं के साथ गाने का सिलसिला शुरू किया (पृष्ठ 197 आत्म कथा - आत्मजीवनी)।

शिमला के डिप्टी कमिश्नर लॉर्ड हे ने अपने विवेक का परिचय देते हुए अकेले ही विद्रोहियों का मुकाबला किया। लॉर्ड हे ने जतोग में तैनात गोरखों का डट कर मुकाबला किया और उन्हें मदमस्त हाथियों की संज्ञा दी।

डिप्टी कमिश्नर ने अपनी टोपी उतार कर गोरखों को बार-बार सलाम किया तथा अपने मधुर व्यवहार से उन्हें शांत किया। उन्होंने भरोसा दिलाया कि वे सरकार के विश्वास पात्र बने रहेंगे और उन्हें खजाने की सुरक्षा का जिम्मा पुनः दिया गया।

शिमला में स्थित अन्य अंग्रेजों ने डिप्टी कमिश्नर के गोरखों के प्रति इस तरह के नरम व्यवहार की कटु आलोचना की। उनके अनुसार अगर डिपटी कमिश्नर न हाते तो वे विद्रोहियों को सबक सिखाते।

महर्षि देवेंद्र ने 17 मई को शिमला छोड़ने का मन बनाया। वे अपने शिमला निवास थान से कुलियों को ढूंढने निकले। उन्होंने 20 कुलियों की व्यवस्था की। उसी रात महर्षि डगशाई के लिए रवाना हुए। उन्हें डर था कि ये कुली उन्हें मार देंगे तथा उनका पहाड़ी सादे लोगों के प्रति दिमाग में पैदा हुआ भ्रम टूटा। 18 मई को एक दिन की पैदल यात्रा के बाद देवेंद्र नाथ टैगोर डगशाई पहुंचे। डगशाई में महर्षि को अंग्रेज सिपाहियों ने बंदूक की नोक पर रुकने को कहा। टैगोर डरते मन से उनकी तरह बढ़े तथा अपना परिचय दिया। जब टैगोर ने शिमला में विद्रोह की सूचना व क्रांतिकारियों के डगशाई की ओर न आने की खबर दी तो वे शांत हुए।

डगशाई में महर्षि देवेंद्र नाथ टैगोर ने स्थानीय बंगाली डाककर्मी के घर में शरण ली। कुछ दिनों से शांति की बहाली के बाद वे शिमला पुनः वापिस आ गए। उन्हें शिमला पहुंच कर अत्यंत खुशी का इजहार हुआ जब उन्होंने अपने घर में सारा सामान यथा स्थान देखा।

वे शिमला में एक वर्ष तक रहे तथा विजय दशमी के दिन 16 अक्तूबर, 1858 को शिमला से प्रस्थान किया।

कलकत्ता की अपनी वापिसी यात्रा में देवेंद्र नाथ टैगोर कानपुर तक किश्ती व घोड़ा गाड़ी में गए तथा वहां से आगे की यात्रा स्टीमर द्वारा पूरी की।

महर्षि देवेंद्र नाथ टैगोर की आत्मकथा में शिमला में 1857 के गदर के अलावा और भी अनेक महत्त्वपूर्ण वृत्तांत मिलते हैं। जब महर्षि 9 जनवरी, 1857 को अंबाला-लाहौर-अमृतसर-शिमला की यात्रा पर थे तो उन्होंने दिल्ली में यमुना नदी के किनारे लोगों के बड़े हुजूम में बूढ़े व्यक्ति को पतंग उड़ाते देखा। वे और कोई नहीं बल्कि दिल्ली का आखिरी मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर था, जो शक्तिहीन, दायित्वहीन अंग्रेजों पर आश्रित था और पतंगबाजी पर अपना समय काट रहा था। 20 माह बाद जब महर्षि देवेंद्र नाथ टैगोर शिमला से कलकत्ते की वापिसी यात्रा पर थे तो उन्होंने कानपुर में यमुना के तट पर ऐसा ही दृश्य देखा। उस समय भी वहां लोगों का भारी हुजूम था। इस समय मात्र फर्क इतना था कि सुलतान बूढ़ा व दुःखी था तथा उस वक्त अंग्रेजी हुकूमत उसे शाही कैदी के रूप में रंगून ले जा रही थी।

मैदानों व पहाड़ों की वादियों में 1857 की क्रांति की जो ज्वाला भड़की थी उसी ने आगे चलकर विकराल स्वतंत्रता संग्राम का रूप लेकर भारत को अंग्रेजी दासता से मुक्त करवाया। 1857 से 1948 तक का सफर हमें उन वीर भारतीयों की कुर्बानियों की याद दिलाता है जिनकी बदौलत आज हम स्वतंत्रता के सुखों का लाभ उठा रहे हैं। अंत में हम अपने श्रद्धा सुमन के रूप में यह कह सकते हैं :

'अपनी आजादी को
हम हरगिज मिटा सकते नहीं
सर कटा सकते हैं,
लेकिन सर झुका सकते नहीं।'

दयाल हाउस, संजौली, शिमला-171 006,
मो. 94181 58987

सुभाष चंद्र बोस

"...स्वाधीनता के इस पवित्र युद्ध को अपनी अंतिम सांस तक जारी रखूंगा"

◆ नेम चन्द 'अजनबी'

"**...नेताजी सुभाष चन्द्र बोस,** नाम से ही उस सिंह गर्जना का स्मरण हो आता है, जिसने ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को हिला दिया था।"

-रामा स्वामी, वेंकटरामन, भारत के राष्ट्रपति (1988)

वर्ष 1897- महारानी विक्टोरिया अपने शासन काल की डायमण्ड जुबली मनाने में व्यस्त । वर्ष 1897- भारत देश धर्मसंसद में भारतीय धर्म, संस्कृति पर प्रवचन देकर अपने महान योगी स्वामी विवेकानन्द की शिकागो से स्वदेश लौटने की तैयारियों में व्यस्त।

23 जनवरी, 1897, शनिवार, दोपहर एक बजे, कटक के एक छोटे से शहर में जानकी नाथ बोस और प्रभावती बोस अपने घर एक शिशु के जन्म की खुशियाँ मनाने में व्यस्त। नाम करण किया गया-सुभाष चन्द्र। यह बालक अपने माता पिता का छठा पुत्र और नौवीं सन्तान था।

उस समय कोई भी नहीं जानता था कि यह विलक्षण बुद्धि का मालिक और इतना होनहार है कि आगे चल कर इसकी सिंह गर्जना से समस्त विश्व के साम्राज्यवादियों की नींवें हिल जाएंगी। बचपन से ही सुभाष में विरोधी विचार-धारा व वैराग्य का समन्वय था। 1902 में 5 वर्ष की आयु में सुभाष को कटक के मिशनरी स्कूल में दाखिल करा दिया गया। सुभाष के ही शब्दों में- "मैं नहीं जानता कि और बच्चे क्या महसूस करते हैं परन्तु मुझे स्कूल जाने की बात सुनकर बहुत खुशी हुई।"

जनवरी, 1909 में सुभाष चन्द्र बोस ने इस अंग्रेजी स्कूल के हेडमास्टर के साथ हाथ मिलाया और कटक के भारतीय स्कूल में प्रवेश ले लिया। इस समय स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं का अध्ययन करते हुए सुभाष में वैराग्य भावना पनपने लगी। स्वामी विवेकानन्द आर स्वामी रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं से प्रभावित होकर 1913 में मित्रों की एक टोली के साथ वह घर से भाग निकले। ऋषिकेश, हरिद्वार, बनारस, मथुरा, गया, आदि स्थानों पर घूमते रहे। फिर कुछ समय पश्चात् घर वापस चले गये। सुभाष के ही शब्दों में - "जब भी मेरा मन उदास दुःखी होता उस समय विवेकानन्द की शिक्षाएँ मेरा मार्गदर्शन करतीं।

सन् 1913 ई. में सुभाष ने दसवीं की परीक्षा पूरी युनिवर्सिटी से द्वितीय स्थान पर पास की और उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कलकत्ता के प्रेजिडेन्सी कालेज में दाखला लिया। 1916 ई. में एक शिक्षक ऑटन ने कुछ विद्यार्थियों को पीटा। इस पर सुभाष चन्द्र बोस ने कॉलेज में हड़ताल करवा दी। प्रधानाचार्य से भी समाधान करने के लिए मिले, मगर, प्रधानाचार्य ने ऑटन का ही पक्ष लिया। इस पर सुभाष की विरोधी भावना उग्र हो गई और उन्होंने ऑटन की पिटाई कर दी। कॉलेज बन्द हो गया। प्रिन्सीपल महोदय ने सुभाष को कॉलेज से निकाल दिया। सुभाष ने उसका धन्यवाद किया और कॉलेज परिसर से बाहर निकल गये।

प्रेजिडेन्सी कॉलेज से विदायी के बाद सुभाष ने एक अन्य कॉलेज में प्रवेश लिया। स्कॉटिश चर्च कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करते हुए सुभाष चन्द्र बोस ने सन् 1919 में बी.ए. पास किया। अपने विद्यार्थी जीवन में सुभाष सदैव सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया करते थे। अग्रेजी और हिन्दी भाषा पर भी उनका पूर्ण अधिकार था। अंग्रेजी व हिन्दी के भाषणों, धाराप्रवाह वक्तव्यों में वे कहीं भी बंगला उच्चारण का आभास नहीं होने देते थे। राजनीति , दर्शन और इतिहास उनके प्रिय विषय थे। सुभाष की विलक्षण शैक्षणिक प्रतिभा को देखते हुए उन्हें आई.सी.एस. की परीक्षा के लिये इंग्लैण्ड भेज दिया गया। सन् 1920 में उन्होंने आई.सी.एस. की परीक्षा चौथे स्थान पर पास की। यहाँ भी उनकी अंग्रेजों के प्रति विद्रोही भावना अपना असर दिखा गई। आई. सी. एस. की परीक्षा के प्रश्न पत्र में एक पंक्ति को लेकर उन्होंने प्रश्न पत्र परीक्षा हाल में ही फाड़ डाला था। प्रश्न अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में अनुवाद का था- ट्रांसलेट द फॉलविंग लईन इन टू मॉडर्न इण्डियन लैंग्वेज : "इण्डियन सोलजरज आर जनरली डिसऑनेस्ट"- भारतीय सैनिक प्रायः बेईमान होते हैं।

सन् 1921 में आई.सी.एस. से त्यागपत्र देकर वह भारत लौट आये। महात्मा गान्धी से मिलकर कांग्रेस में शामिल हो गये। कांग्रेस में शामिल होने के साथ ही उनके क्रांतिकारी जीवन की शुरुआत हो गई। जेलों में जाना शुरू हो गया। लगातार जेलों में रहने के कारण सुभाष का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। टी.बी. की

जब आजाद हिन्द सेना कोहिमा की तरफ बढ़ रही थी तभी उसका मनोबल तोड़ने की शत्रु ने एक चाल चली। शत्रु सेना ने आज़ाद हिन्द फौज के शिविरों के आस-पास कुछ पर्चे गिरा दिए जिनमें लिखा था, "भारत की राष्ट्र सेना के सिपाहियो ! तुम्हारे पास न तो हथियार है, न दवाइयाँ और न ही राशन है। तुम जानवरों की तरह घास खा रहे हो। हमारे पास आओ, हम तुम्हें बढ़िया खाना, कपड़े, चिकित्सा, ऊँची तनख्वाह तथा पुरस्कार देंगे तुम पत्थर दिल क्यों हो गए हो ? तुम्हारे बच्चे तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं...." इस पर क्रान्तिकारी सैनिकों की प्रतिक्रिया थी, "बढ़िया भोजन खाने और अंग्रेजों के गुलाम बनकर अपने बच्चों से मिलने की बजाय, हम जंगली जानवरों की तरह घास पर निर्भर रहना तथा स्वतंत्र मनुष्य की भांति जीना अधिक पसन्द करेंगे।"



बीमारी के कारण इलाज के लिए सुभाष को यूरोप जाना पड़ा। अंग्रेजों ने उनकी भारत वापसी पर प्रतिबंध लगा दिया। यूरोप में रहकर भी उन्होंने वहाँ रह रहे भारतीयों को संगठित कर उन्हें भारतीय स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाते रहे।

भारत में चलाये जा रहे स्वतन्त्रता आन्दोलन के समाचार सुभाष को यूरोप में मिलते रहते थे। ये समाचार सुभाष चन्द्र बोस को स्वदेश वापसी के लिये प्रेरित करते रहते थे। अन्त में सुभाष अंग्रेजों द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध को तोड़ते हुए अप्रैल, 1936 में भारत लौट आए। अग्रेजों ने आते ही उन्हें गिरफ्तार कर कारावास में डाल दिया।

1937 में स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से उन्हें पेरोल पर रिहा कर दिया गया। 25 अप्रैल, 1937 को सुभाष स्वास्थ्य लाभ के लिये डलहौजी पधारे। सुभाष चन्द्र बोस यहाँ 'केन्बस विला' में अपने इंग्लैण्ड के सहपाठी डॉ. धर्मवीर के साथ पाँच महीने रहे। यहाँ रहते हुए उन्होंने अनेक लेख लिखे। उनका माडर्न रिव्यू में छपा लेख जापान की सुदूर पूर्व में भूमिका बहुत प्रसिद्ध हुआ। यहाँ स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने के बाद सुभाष 7 अक्तूबर, 1937 को कलकत्ता लौट गए।

सन् 1938 में हरिपुर कांग्रेस अधिवेशन में सुभाष को 41 वर्ष की आयु में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष चुना गया। उनके अध्यक्ष चुने जाने पर बधाई देते हुए रवीन्द्र नाथ टैगोर ने उन्हें 'नेताजी' कह कर सम्बोधित किया। इसी के साथ सुभाष चंद्र बोस 'नेताजी' के नाम से विख्यात हुए। यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि हरिपुर कांग्रेस अधिवेशन के समय सुभाष चन्द्र बोस यूरोप में थे और अपने अध्यक्ष चुने जाने का समाचार सुनते ही स्वदेश लौट आये। सन् 1939 में त्रिपुरा अधिवेशन में नेताजी ने महात्मा गांधी दारा समर्पित उम्मीदवार डॉ. पट्टाभि सीता रामैया को बहुत अन्तर से हराकर अध्यक्ष पद जीत लिया। परन्तु महात्मा गांधी का अपने प्रति विपरीत व्यवहार देखकर व इस खयाल से कि संस्था में उनकी वजह से कोई विघटन न हो तो उन्होंने त्याग पत्र दे दिया।

वर्ष 1940 का भारत, नेताजी उन दिनों कलकत्ता की प्रेसीडेन्सी जेल में बन्द थे। द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हो चुका था। भारतीय जनता भी साम्राज्यवादियों की दासता से मुक्ति पाने के लिये छटपटा रही थी। नेताजी जेल में बैठे-बैठे देश की आज़ादी के उपाय सोचते रहते । अनेक देशों के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास का उन्होंने अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि बिना सशस्त्र क्रान्ति के भारत की मुक्ति संभव नहीं है। इस सशस्त्र क्रान्ति के लिये विदेशी सहायता की आवश्यकता थी। तीसरे दशक में नेता जी ने यूरोप यात्रा के समय इटालियन नेता मुसोलिनी से भी भेंट की थी। मुसोलिनी नेताजी के क्रान्तिकारी विचारों से बहुत प्रसन्न हुए। चेकोस्लावाकिया, फ्रान्स, स्विटरज़रलैंड, पोलैंड, आस्ट्रिया आदि देशों में जाकर उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के पक्ष में प्रचार किया।

हॉलबेल आन्दोलन के कारण नेताजी जेल में बन्द थे और देश के दुश्मन महायुद्ध में बुरी तरह पिट रहे थे। हिटलर की सेनाएँ पश्चिमी यूरोप को तेजी से रौंद रही थीं। किसी तरह कैद से मुक्ति पाने के लिये नेताजी ने एक शांतिमय चाल चलकर 29 नवम्बर, 1940 को आमरण अनशन शुरू करके घोषणा की कि अब वे शहीद हो जाना चाहते हैं। नेताजी की चाल काम कर गई । अंग्रेज़

सरकार डर गई कि यदि नेता जी की मृत्यु हिरासत में ही हो गई तो देश में एक जबरदस्त तूफान पैदा हो जायेगा, इसलिए 5 दिसम्बर, 1940 को अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें रिहा करके उनके ही घर में नज़रबन्द कर दिया। उनके घर को सरकारी पहरेदार दिन-रात घेरे रहते और गुप्तचर कड़ी निगरानी रखते।

जेल से रिहा होने के बाद से ही नेताजी ने लोगों से मिलना-जुलना बन्द कर दिया, केवल उनके अति विश्वस्त सम्बंधी ही उनसे मिल सकते थे। नेताजी ने पूजा-पाठ शुरू कर दिया, दाढ़ी-मूंछें काफी बढ़ा लीं। किसी को भी इसका आभास तक नहीं हुआ। भोजन की थाली भी दरवाजे के पर्दे के पास रखकर एक लकड़ी की सहायता से अन्दर खिसका दी जाती थी। आम जनता में यह अफवाह फैल गई कि नेताजी को इस संसार से विरक्ति हो गई है तथा वे अब सन्यास लेने वाले हैं। 16 जनवरी की आधी रात को नेताजी ने एक ढीला पायजामा गहरे भूरे रंग की लम्बी शेरवानी सिर पर काली फैज कैप पहने, आँखों पर काला चश्मा चढ़ाया, मातृभूमि को नमस्कार किया और रात के अँधेरे में खो गये। 26 जनवरी को नेताजी के परिजनों ने उन्हें लापता घोषित कर दिया। पूरे विश्व में नेताजी के लापता होने का समाचार आग की तरह फैल गया। अंग्रेजी प्रशासन में खलबली मच गई।

उधर नेताजी अफगानिस्तान, रूस होते हुए जर्मनी पहुँचे। नेताजी जर्मनों से सहयोग के लिए निरन्तर बातचीत करते रहे। दूसरी तरफ नाजी बड़ी ही खामोशी से नेताजी को अपना हथियार बनाने की तैयारी कर रहे थे। जब जर्मन सरकार ने नेता ज्ञापनों पर आना-कानी करनी शुरू की तो नेताजी ने नाजी सरकार को दिया “मैं अपने देश की खातिर अपने जीवन को खतरे में डालकर जी, जाणूरा बहुत कुशल हैं, इराके बावजूद मैं उनसे बचकर निकलने में सफल तुम्हारे गेस्टापा (जर्मनी जासूसों) से भी बचकर निकल सकता हूँ।”

नेताजी की दो टूक बातें सुनकर जर्मन सरकार कुछ दवी और उन्होंने ने सारी शर्ते मान ली। 2 नवम्बर, 1914 को नेताजी ने बर्लिन में आजाद हिन्द में स्थापना की। जर्मनी सरकार ने फ्री इण्डिया सेन्टर को भारतीय दूतावास के प्रदान की। नेताजी को स्वतन्त्र राष्ट्र के अध्यक्ष का स्तर दिया गया । भूमिगत ही थे। कुछ दिनों के बाद जब संसार ने बर्लिन स्थित ‘आजाद हिन्द’ से सिंह गर्जना सुनी तो सब अवाक रह गये। नेताजी बराबर अपने देशवासियों सरकार के साथ निर्णायक लड़ाई लड़ने का आह्वान करते रहे। उन्होंने शीघ्र है - रेडियो स्टेशन खोले । एक ‘आज़ाद’ हिन्द नाम के अखबार को भी रोमन लिपि में पल कराया। नेताजी ने 3700 भारतीयों की सुशिक्षित सेना का गठन किया। इसका नाम आज़ाद हिन्द फौज’ रखा।

जर्मन के रूस पर आक्रमण ने नेताजी को सतर्क कर दिया। उन्होंने तुरन्त 29 मई 1942 को एडोल्फ हिटलर से उसके मुख्यालय पर भेंट की। भेटवार्ता के दौरान नेताजी जर्मन नेता की नेकनीयती पर शक पैदा हो गया। उधर जापान के युद्ध में कद जाने के नेताजी को पूर्व जाने की इच्छा हुई। नेताजी ने हिटलर को बताया कि वे पूर्वी-एशिया में जाकर भारत का मुक्ति-संग्राम छेड़ना चाहते हैं। हिटलर ने अपने सैन्य अधिकारियों को नेताजी की जापान यात्रा के प्रबन्ध करने के निर्देश दिये। हिटलर के निर्देशानुसार 8 फरवरी 1943 को जर्मन प्रशासन ने पनडुब्बी से नेताजी को जापान की ओर भेज दिया। जापान की पनडुब्बी में नेताजी को मौजम्बीक चैनल में मैडागास्कर के दक्षिण-पश्चिम से 400 समुद्री मील दक्षिण में स्थानान्तरित कर दिया गया। क्योंकि जर्मन पनडुब्बी ईंधन के अभाव के कारण आगे नहीं जा सकती थी।

6 मई, 1943 को पनडुब्बी सुमात्रा के उत्तर में सेना अधिकारियों के साथ करनल यामा मो ती विशेष रूप से नेताजी का स्वागत करने के लिए उपस्थित थे। नेताजी सबांग में पाँच दिन तक रहे तथा 13 मई, 1943 को टोकियो पहँचे, जहाँ जापान सरकार ने उन्हें भव्य इम्पीरियल होटल में ठहराया। नेताजी ने कुछ दिनों तक जापान के वरिष्ठ सेना अधिकारियों, राजनयिकों तथा बुद्धिजीवियों से भेंट की। 10 जून, 1943 को नेताजी ने जापान के प्रधानमंत्री जनरल तोजो से भेंट की। नेताजी की दूरदर्शितापूर्ण व्यावहारिक योजनाओं की जानकारी पाकर जनरल तोजो चकित रह गए तथा उनकी स्पष्ट रणनीति से अपना सहमति व्यक्त कर दी। 12 जून को इम्पीरियम होटल में ही इंडियन इंडिपेन्डेन्स लीग के नेता रास बिहारी बोस मिले जो 1915 में ही भारत से जापान आ गए थे। उन्होंने जापान की मुक्ति के लिए इंडियन इंडिपेंडेन्स लीग की स्थापना की थी। इस संस्था की तरह भारतीय राष्ट्रीय सेना भी गठित की थी। रास बिहारी बोस अब बूढ़े हो चुके थे और वे चाहते थे कि इस सेना का नेतृत्व भारत का कोई ऐसा युवा नेता करे जो भारतीय जनता में लोकप्रिय हो तथा सशस्त्र संघर्ष का कुशलतापूर्वक नेतृत्व कर सके। इस दृष्टि से उनके सामने केवल एक ही नाम था - नेताजी सुभाष चन्द्र बोस।

घंटे की बातचीत के बाद जब रास बिहारी बोस ने इम्पीरियल होटल से प्रस्थान किया वे स्वयं को हल्का-फुल्का अनुभव कर रहे थे, मानो कोई भारी बोझ उनके कंधों पर से उतर गया हो।

एक सप्ताह बाद नेताजी ने भारतवर्ष के नाम अपना पहला संदेश टोकियो रेडियो से प्रसारित किया- “जो लोग वास्तव में आज़ादी चाहते हैं, उन्हें उसके लिए पूरी ताकत से लड़ना चाहिए और अपने खून से उसकी कीमत चुकानी चाहिए।”[3] दिन बाद उन्होंने भारत वासियों को फिर सम्बोधित किया और वे टोकियो रेडियो से बार-बार भारतवासियों को सम्बोधित करते रहे। एक अन्य सन्देश में उन्होंने कहा- “भारत को स्वतंत्र कराने का कार्य हमारा है... और केवल हमारा। यह उत्तरदायित्व हम किसी और

पर नहीं डालेंगे, क्योंकि यह बात हमारे राष्ट्रीय सम्मान के विरुद्ध होगी।"

2 जलाई, 1943 को नेताजी सिंगापुर पहुँचे। उनके साथ रास बिहारी बोस, जापानी करनल यामा मोतो और कुछ अन्य जापानी अफसर थे। नेताजी की अगवानी के लिए छः भारतीय नागरिक, जापानी सेना के अधिकारी और आज़ाद हिन्द फौज के अफसर उपस्थित थे। नेताजी के आगमन का समाचार सिंगापुर में आग की तरह फैल गया हजारों कण्ठों से 'नेताजी जिन्दाबाद' के नारे फूट रहे थे। चीनी, जापानी, मलेशियन जो इसका अर्थ भी नहीं समझ रहे थे, उनके मुख से स्वतः ही निकल रहा था - नेताजी ज़िन्दाबाद! नेताजी ने उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित करते हुए कहा, "मित्रो ! स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष करने का समय आ गया है, इसलिए मैंने अस्थायी आज़ाद हिन्द सरकार की स्थापना का निर्णय लिया है... हमारा शुत्र केवल दृढ़ और सबल ही नहीं है वह अत्याचारी भी है।.... सर्वशक्तिमान ब्रिटिश साम्राज्य अब अतीत की वस्तु बन गया है, वह काल के गाल में समा गया है!.... मेरे साथियो ! मेरे सैनिको । अब आपका रणघोष होना चाहिए - 'दिल्ली चलो ! दिल्ली चलो !' मैं नहीं कह सकता कि आजादी की इस लड़ाई के बाद हममें से कितने व्यक्ति जीवित बचेंगे, लेकिन मैं कह सकता हूँ कि अंततोगत्वा विजय तो हमारी ही होगी और हमारा काम तब तक समाप्त नहीं होगा, जब तक हमारे सैनिक अंग्रेज़ी साम्राज्य की दूसरी कब्रगाह, दिल्ली के लाल किले के प्रांगण में विजय की परेड नहीं कर लेते।"

21 अक्तूबर, 1943 को नेताजी ने सिंगापुर में आज़ाद हिन्द सरकार का गठन किया। नेताजी राष्ट्राध्यक्ष, प्रधानमंत्री, युद्ध मंत्री, विदेश मंत्री तथा आज़ाद हिन्द फौज के सर्वोच्च सेनापति बने। रास बिहारी बोस को सर्वोच्च सलाहकार का पद दिया गया। नेताजी ने अत्यंत भावुक होकर शपथ पढ़नी शुरू की -

ईश्वर के नाम पर मैं यह शपथ ग्रहण करता हूँ कि मैं सुभाष चन्द्र बोस भारत तथा अपने 38 करोड़ देशवासियों को स्वतंत्र कराने के लिए स्वाधीनता के इस पवित्र युद्ध को अपनी अन्तिम सांस तक जारी रखूंगा। मैं सदैव भारत का सेवक रहूँगा और अपने 38 करोड़ भाइयों और बहनों की भलाई को अपना परम कर्तव्य समझूंगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी भारत की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अपने रक्त की अन्तिम बूंद भी बहाने के लिए सदैव तत्पर रहूँगा।"

25 अक्तूबर, 1943 को आज़ाद हिन्द सरकार ने ब्रिटेन और इसे युद्ध की घोषणा कर दी। एक पखवाड़े के अन्दर नौ देशों जापान, वर्मा राष्ट्रवादी चीन (नॉन किंग सरकार), मंचुको, इटली, थाइलैंड और कि सरकार को मान्यता दे दी। आयरलैंड के राष्ट्रपति यामन डी वेलरा ने नेता, हिन्द सरकार के गठन पर बधाई दी। आज़ाद हिन्द फौज ने जापान की सहायता के कर दिया। नेताजी धन संग्रह अभियान में जुट गए प्रवासी भारतीयों ने भी उनको सहयोग दिया। अनेक नागरिकों ने अपना सर्वस्व दान कर दिया और आजाद हिन्द फौज में भर्ती हो गए। सिंगापुर में नेता जी को सोने से तोला गया। नेताजी ने जब-जब भारतीयों से अपील की उन पर रुपये-पैसे की वर्षा हो जाती। रंगून के एक व्यापारी ने करोड़ से अधिक रुपये की सम्पूर्ण सम्पत्ति आजाद हिन्द सरकार को दे दी। नेताजी ने मालाएँ नीलाम कर दीं। एक बार मलाया में उनकी छोटी-सी माला की अन्तिम बोली 5 लाख डॉलर लगी थी। इस प्रकार नेताजी ने जगह-जगह जा कर अनेक प्रकार से आजाद हिंद फौज के लिए धन एकत्रित किया।

अन्डमान-निकोबार द्वीप समूह के आज़ाद हिन्द सरकार के अधिकार क्षेत्र में आ जाने पर नेताजी ने 29 दिसम्बर को द्वीपों का

2 जलाई, 1943 को नेताजी सिंगापुर पहुँचे। उनके साथ रास बिहारी बोस, जापानी करनल यामा मोतो और कुछ अन्य जापानी अफसर थे। नेताजी की अगवानी के लिए छ भारतीय नागरिक, जापानी सेना के अधिकारी और आज़ाद हिन्द फौज के अफ़सर उपस्थित थे। नेताजी के आगमन का समाचार सिंगापुर में आग की तरह फैल गया हजारों कण्ठों से 'नेताजी जिन्दाबाद' के नारे फूट रहे थे। चीनी, जापानी, मलेशियन जो इसका अर्थ भी नहीं समझ रहे थे, उनके मुख से स्वतः ही निकल रहा था – नेताजी ज़िन्दाबाद! नेताजी ने उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित करते हुए कहा, "मित्रो ! स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष करने का समय आ गया है, इसलिए मैंने अस्थायी आज़ाद हिन्द सरकार की स्थापना का निर्णय लिया है... हमारा शुत्र केवल दृढ़ और सबल ही नहीं है वह अत्याचारी भी है।.... सर्वशक्तिमान ब्रिटिश साम्राज्य अब अतीत की वस्तु बन गया है, वह काल के गाल में समा गया है!.... मेरे साथियो ! मेरे सैनिको । अब आपका रणघोष होना चाहिए – 'दिल्ली चलो ! दिल्ली चलो !' मैं नहीं कह सकता कि आजादी की इस लड़ाई के बाद हम में से कितने व्यक्ति। जीवित बचेंगे, लेकिन मैं कह सकता हूँ कि अंततोगत्वा विजय तो हमारी ही होगी और हमारा काम तब तक समाप्त नहीं होगा, जब तक हमारे सैनिक अंग्रेज़ी साम्राज्य की दूसरी कब्रगाह, दिल्ली के लाल किले के प्रांगण में विजय की परेड नहीं कर लेते।"

भ्रमण करने के दौरान इस द्वीप समूह का नाम बदल कर 'शहीद तथा स्वराज द्वीप समूह' रख दिया। ले. कर्नल ए.जी.लोंग नाथन को नेताजी ने द्वीप समूह का चीफ कमीशनर नियुक्त कर दिया। सन् 1944 के प्रथम सप्ताह में नेता जी ने आज़ाद हिन्द सरकार, फौज तथा लीग का मुख्यालय रंगून में स्थापित कर दिया तथा सिंगापुर में केवल एक उप मुख्यालय रह गया। आज़ाद हिन्द फौज बर्मा पहुँच गई, जिसके अधिकारी जापानी अधिकारियों के साथ संयुक्त रणनीति तैयार करने में जुट गए। 7 जनवरी को टोकियो ने युद्ध आरम्भ करने का संकेत दे दिया। 'ऑपरेशन यू' के अनुसार आजाद हिन्द फौज ने अपनी स्थिति ले ली। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। आजाद हिन्द फौज कलादान घाटी, पलेटवा घाटी तथा डलेटमें में ब्रिटिश फौजों को रौंदती हुई भारत भूमि की ओर बढ़ने लगी। जब आजाद हिन्द सेना कोहिमा की तरफ बढ़ रही थी तभी उसका मनोबल तोड़ने की शत्रु ने एक चाल चली। शत्रु सेना ने आज़ाद हिन्द फौज के शिविरों के आस-पास कुछ पर्चे गिरा दिए जिनमें लिखा था, "भारत की राष्ट्र सेना के सिपाहियो ! तुम्हारे पास न तो हथियार है, न दवाइयाँ और न ही राशन है। तुम जानवरों की तरह घास खा रहे हो। हमारे पास आओ, हम तुम्हें बढ़िया खाना, कपड़े, चिकित्सा, ऊँची तनख्वाह तथा पुरस्कार देंगे तुम पत्थर दिल क्यों हो गए हो ? तुम्हारे बच्चे तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं...." इस पर क्रान्तिकारी सैनिकों की प्रतिक्रिया थी, "बढ़िया भोजन खाने और अंग्रेजों के गुलाम बनकर अपने बच्चों से मिलने की बजाय, हम जंगली जानवरों की तरह घास पर निर्भर रहना तथा स्वतंत्र मनुष्य की भांति जीना अधिक पसन्द करेंगे।"

लेकिन आजाद हिन्द फौज की सफलता अधिक समय तक जारी न रह सकी। राशन तथा दवाइयों की आपूर्ति बिलकुल असम्भव हो गई थी, जिसका प्रमुख कारण मानसून का आरम्भ हो जाना था। दूसरे, जापान भी जगह-जगह हार रहा था। विश्व निर्णायक मोड़ लेने लगा था। साइपान द्वीप, दिलबर्ट द्वीप समूह अमरीका के में गया। न्यू जार्जिया में भी जापान पराजित हो गया। अकेले इम्फाल अभियान जापान के लगभग एक लाख सैनिक युद्ध में काम आए। इसमें से 20 हजार सैनिक तो भूख से ही मर गए थे। आज़ाद हिंद फौज के भी 4 हजार सैनिकों में से 1500 सैनिक भोजन के अभाव से ही मर गए। भारत-बर्मा मोर्चों पर शत्रु सेना अधिकाधिक आक्रामक होती जा रही थी और वर्मा की पराजय के लक्षण साफ दिखाई देने लगे थे। जापानी तेजी से बर्मा खाली करने लगे। मई, 1945 में रंगनू का पतन हो गया, इसी समय जर्मनी ने भी आत्म समर्पण कर दिया। नेताजी ने अप्रैल के अंतिम सप्ताह में ही अपना मुख्यालय रंगून से बेंकाक बदल दिया था। 6 को हिरोशिमा और 9 अगस्त को नागासाकी पर परमाणु बम गिरा कर अमेरिका ने जापान की कमर तोड़ दी। 15 अगस्त, 1945 को टोकियो रेडियो द्वारा आत्मसमर्पण की घोषणा के साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध लगभग समाप्त हो गया। जापान द्वारा आत्मसमर्प की घोषणा ने नेताजी को विवश कर दिया था कि इससे पहले कि अंग्रेज उन्हें गिरफ्तार करें, आजादी की लड़ाई को जारी रखने के लिए वे किसी उपयुक्त स्थान पर चले जाएं। 16 अगस्त, 1945 को नेताजी ने बैंकाक में अपने मंत्रिमण्डल तथा आजाद हिन्द फौज के सहयोगियों के साथ भावी योजनाओं पर विचार -विमर्श किया। विचार-विमर्श पर यह निष्कर्ष निकला कि नेताजी को किसी सुरक्षित स्थान पर जाकर भूमिगत हो जाना चाहिए। जापानी जनरल एस. ई. सोदा, जो उस दिन विचार-विमर्श के समय मौजूद थे के अनुसार, "उनका उद्देश्य रूस जाना था और रूस की सहायता से स्वतंत्रता आंदोलन जारी रखना था। उनके मिशन का यही लक्ष्य था। 17 अगस्त की सुबह 7 बजे नेताजी अपने साथियों के साथ साइगोन रवाना हुए। 18 अगस्त को ताई पेई में कथित विमान दुर्घटना के बाद नेताजी भूमिगत हो गए।" हम उन्हें क्या कह कर पुकारें ? उन जैसा व्यक्ति ही शताब्दी पुरुष हो सकता है।

- जनरल तोजो, जापान के प्रधानमंत्री (10 जून, 1943)

हि. प्र. सचिवालय, शिक्षा अनुभाग, 402ए, शिमला-2,
मो. 0 94180 33783

— — — — —

सुभाष के सुभाषित

देशप्रेम

आज मैं भी एक वर्ष से अपने प्यारे देश से दूर हूं और इस बात का अनुभव कर रहा हूँ कि मेरी जन्मभूमि मेरे लिए कितनी प्रिय है। वह मेरे लिए कितनी मधुर और सुन्दर बन गई है। आज सोचता हूँ सम्भवतः मैंने जीवन में उसे उतना प्यार कभी नहीं किया और यदि उस स्वार्गादपि गरीयसी जन्मभूमि के लिए कष्ट सहन करना पड़ता है तो वह मेरे लिए आनन्द का विषय क्यों नहीं होगा? आज देश से बाहर हूँ, देश से दूर हूँ परन्तु मन सदा वहीं रहता है। और इसमें मुझे कितना आनन्द अनुभव होता है !

- भाभी श्रीमती विभावती बसु को पत्र (16-12-1925)

देश-विभाजन का विरोध

हमने संयुक्त और स्वतन्त्र भारत के निर्माण का प्रस्ताव किया है। इसलिए उसके विभाजन और उसे टुकड़ों में काटने के सभी प्रयत्नों का विरोध करेंगे हम अनुभव करते हैं कि देश का

विभाजन उसे आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से नष्ट कर देगा।

-बर्मा से प्रसारण (12-9-1944)

स्वतन्त्रता आन्दोलन

आधुनिक भारत की मुक्त आत्मा अपने को क्रियाशीलता में व्यक्त करना चाहती थी परन्तु एक ओर राज्य के द्वारा और दूसरी ओर समाज के द्वारा स्वयं को शृंखलाओं में आबद्ध पाती थी तब भारतीय लोगों की राजनैतिक और सामाजिक मुक्ति के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन के लिए भी हमारी धरती उतनी ही उपजाऊ थी, जितना कि आन्दोलन आधुनिक भारत के नवनिर्माण और पुनर्जागरण के लिए।

-फ्रास रोड्स, पृ. 202

स्वतन्त्रता अनिवार्य

हमारे शासकों और हमारे स्वयं नियुक्त सलाहकारों की प्रतिदिन यह भाषाण देने की आदत बन गई है कि हम स्वराज्य के लिए अयोग्य हैं। कुछ कहते हैं कि स्वतन्त्र हो सकने से पहले हमें और अधिक शिक्षित होना चाहिए। दूसरे विचार प्रकट करते हैं कि सामाजिक सुधारों को राजनैतिक सुधारों के आगे-आगे चलना चाहिए; फिर अन्य तर्क देते हैं कि औद्योगिक विकास के बिना भारत स्वराज्य के योग्य नहीं हो सकता। इन वक्तव्यों में से कोई भी सत्य नहीं है। वस्तुतः यह कहना अधिक ठीक होगा कि राजनीतिक स्वतन्त्रता के बिना, ऐसी शक्ति के बिना, जिससे हम अपने भाग्य को रूप दे सकें न तो हम अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा दे सकते हैं, न सामाजिक सुधार अथवा औद्योगिक विकास कर सकते हैं।

-महाराष्ट्र प्रान्तीय कान्फ्रेंस पूना में अध्यक्षीय भाषण (3-5-1928)

स्वाधीनता का लक्ष्य

यदि आप दासता की मनोवृत्ति पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो आप अपने देशवासियों को पूर्ण स्वराज्य के लिए उत्साहित करके ही ऐसा कर सकते हैं। मैं तो इससे भी आगे बढ़कर कहता हूँ कि यदि यह भी मान लिया जाए कि हम अपनी इच्छाओं व आशाओं को कार्यरूप में परिणत नहीं कर पाएँगे तो भी इस पावन सन्देश को ईमानदारी से मात्र प्रसारित करने तथा अपने देशवासियों के सम्मुख स्वाधीनता के लक्ष्य को रखने में हम एक नयी पीढ़ी का सृजन कर सकेंगे।

- कलकत्ता अधिवेशन में भाषण (दिसम्बर, 1928)

राजनीति

राजनीति की धारा शनैः-शनैः जिस प्रकार पंकिल होती जा रही है, उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि कम-से-कम थोड़े दिन के लिए तो राजनीति से देश का को लाभ नहीं होगा। सत्य और त्याग के आदर्श राजनीति के क्षेत्र में जितनी जल्दी लोप हो जाते हैं, राजनीति की कार्यशक्ति का उतनी ही शीघ्रता से ह्रास होता है। राजनीतिक आन्दोलन रूपी सरिता की धारा कभी स्वच्छ रहती है तो कभी पंकिल; सभी देशों में ऐसा होता है।

-श्री हरिचरण बागची को पत्र (1926)

विद्यार्थी और राजनीति

यदि भारत में विद्यार्थी सक्रिय राजनीति में भाग नहीं लेंगे तो हम अपने राजनीतिक कार्यकत्ताओं की भर्ती कहाँ से करेंगे और हम उन्हें प्रशिक्षित कहाँ करेंगे? इसके अतिरिक्त यह स्वीकार करना होगा कि राजनीति में भाग लेना चरित्र और पौरूष के विकास के लिए आवश्यक है।

क्रिया-विहीन विचार चरित्र-निर्माण के लिए पर्याप्त नहीं है और इसी कारण से स्वस्थ क्रिया-कलाप राजनीतिक, सामाजिक अथवा कलात्मक-में भाग लेना चरित्र के विकास के लिए आवश्यक है। विश्वविद्यालयों को केवल किताबी कीड़े,स्वर्णपदक विजेता और कार्यालय लिपिक उत्पन्न नहीं करने हैं, वरन् ऐसे चरित्रवान व्यक्ति उत्पन्न करने हैं जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपने देश के लिए महानता को प्राप्त करके यश अर्जित करें।

-स्टूडेंट कान्फ्रेंस लाहौर में अध्यक्षीय भाषण (19-10-1929) सिद्धान्त।

मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि हमारे सामूहिक जीवन के आधार का निर्माण करने वाले सिद्धान्त न्याय, समानता, स्वतंत्रता अनुशासन और प्रेम हैं। इसलिए, समानता को निरापद करने के लिए हमें सभी प्रकार के बंधन-सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक छोड़ देने चाहिए और हमें पूर्णतया स्वतंत्र हो जाना चाहिए।

-आल इंडिया नौजवान भारत सभा, कराची में अध्यक्षीय भाषण (28-3-1931)

धर्मान्धता

धर्मान्धता सांस्कृतिक आत्मीयता के मार्ग में सबसे बड़ा कांटा है और धर्मान्धता को दूर करने के लिए निरपेक्ष एवं वैज्ञानिक शिक्षा से अधिक उपयुक्त और कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार की शिक्षा एक अन्य प्रकार से भी उपयोगी है, इससे आर्थिक चेतना के विकास में सहायता मिलती है। आर्थिक चेतना का प्रभात धर्मान्धता के अन्धकार का विनाशक है।

-महाराष्ट्र प्रांतीय कान्फ्रेंस पूना के अध्यक्षीय पद से भाषण. (3-5-1928)

भारतीय राष्ट्रवाद

वह स्वार्थी और आक्रामक है। इसे सांस्कृतिक क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीयता के विकास में बाधक समझा जाता है। इस विषय में मेरा कहना है कि भारतीय राष्ट्रवाद न तो संकुचित है, न स्वार्थी और न आक्रामक। यह मानवजाति के उच्चादर्शों-सत्यं शिवं,सुदंरम्-से प्रेरणा ग्रहण करता है। भारतीय राष्ट्रवाद सत्यता,

ईमानदारी,मानवता और सेवा एवं त्याग की भावना की शिक्षा देता है।

-महाराष्ट्र प्रान्तीय कान्फ्रेंस पूना में अध्यक्षीय भाषण (3-5-1928)

भारतीय संस्कृति

मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो आधुनिकता के जोश में अपने अतीत के गौरव को भूल जाते हैं। हमें भूतकाल को अपना आधार बनाना है। भारत की अपनी संस्कृति है, जिसे उसे अपनी सुनिश्चित धाराओं में विकसित करते जाना है। हमारे पास विश्व को देने के लिए दर्शन, साहित्य, कला और विज्ञान में बहुत कुछ नया है और उसकी ओर सारा संसार टकटकी लगाए हुए है। एक शब्द में कहूँ तो हमें नये-पुराने का मेल करना है। हमारे कुछ अच्छे विचारक और कार्यकर्ता इस महत्वपूर्ण कार्य में पहले से ही लगे हुए हैं। हमें एक ओर पुनः वेदों पर जाने वाली प्रवृत्ति और दूसरी आरे आधुनिक यूरोप के फैशन और अर्थहीन परिवर्तन के लिए नकल करने वाली प्रवृत्ति का मुकाबला करना है।

-अखिल भारतीय युवक सम्मेलन कलकत्ता में भाषण (28-12-1928)

अध्ययन एवं मनन

किसी कार्य में सफलता अथवा असफलता से जो अहंकार एवं निराशा मिलती है, उनका उन्मूलन करके, मनुष्य को संयत बनाने के लिए, अध्ययन एवं मनन ही एकमात्र उपाय अपनाने के लिए, अध्ययन एवं मनन ही एकमात्र उपाय है। मनुष्य में तभी आन्तरिक अनुशासन आ सकता है। आन्तरिक संयम न होने पर बाह्य संयम स्थायी नहीं हो सकता। नियमित व्यायाम से जिस प्रकार शरीर का विकास होता है ठीक उसी प्रकार नियमित साधना से सद्वृत्तियों का उद्भव और वासनाओं का नाश होता है।

-श्री हरिचरण बागची को पत्र (1926) बाबू संस्कृति

वर्तमान युग में भगवान ने कुछ ऐसी नयी चीज़ उत्पन्न की है जो पिछले युगों में नहीं थी। यह नई सृष्टि है बाबू की। हम सब बाबुओं की जमात में शामिल हैं। भगवान ने हमें एक जोड़ी पांव दिए हैं, लेकिन हम चालीस-पैंतालीस मील पैदल नहीं चल सकते हैं, क्योंकि हम बाबू हैं। हमें एक जोड़ी मजबूत हाथ मिले हैं, लेकिन हम हाथों से काम नहीं लेना चाहते क्योंकि हम बाबू हैं। भगवान ने हमें अच्छा-खासा शरीर दिया है, लेकिन सोचते हैं कि शारीरिक श्रम केवल निम्न जातियों को ही शोभा देता हैं क्योंकि हम बाबू वर्ग के हैं। हर तरह के काम के लिए हम नौकर को चीख-पुकार मचाते हैं। और स्वयं हाथ-पांव नहीं हिला सकते क्योंकि आखिर हम बाबूजी हैं। हालाँकि हमारा जन्म एक गरीब देश में हुआ है, लेकिन हम गरीबी नहीं सह सकते क्योंकि हम बाबू हैं, इसलिए सर्दी से हम इतने भयभीत रहते हैं कि अपने आपको ढकने के लिए हम मोटे-से-मोटे लिहाफ तैयार कराते हैं। हर जगह हम बाबू के रूप में बन-उन कर निकलते हैं, क्योंकि आखिर हम बाबू ही तो हैं।

-माता प्रभावतीदेवी को पत्र (1912-13) प्रकृति अगर किसी की आत्मा को सांत्वना देने और दुर्बल क्षणों में प्रेरणा का बल प्रदान करने के लिए प्रकृति न हो तो मैं सोचता हूँ कि मनुष्य जीवन में प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर सकता। जब तक प्रकृति हमारी सहचरी न हो और हमारा मार्गदर्शन न करे, तब तक जीवन किसी मरुस्थल में निष्कासन का शाप भोगने वाला बन जाता है, उसकी ताज़गी समाप्त हो जाती है, वह निष्क्रिय बन जाता है और जीवन का शुक्ल पक्ष धुंधलाने लगता है।

-भाई शरच्चद्र बोस को पत्र (11-10-1912)

प्राकृतिक सौंदर्य के साथ अपने हृदय को एकाकार करना, मन को संयत करके प्रकृति की भाषा समझने का प्रयास करना, कष्टसाध्य अवश्य है, परन्तु सामान्य रूप से यदि कोई यह कर सके तो उसका हृदय आनन्द से ओतप्रोत हो जाएगा।

श्रीमती विभावती वसु को पत्र (1927) बाल शिक्षा

वर्तमान समय में भारत में जो लोग बाल शिक्षा की समस्या का समाधान करना चाहते हैं, उन्हें यह देखना होगा कि वे कौन से प्रतिकूल तत्त्व हैं जो आज बच्चे की मानसिकता को प्रभावित कर रहे हैं। साथ ही यह भी देखना आवश्यक होगा कि वे कौन सी लोरियाँ हैं, जिन्हें गाकर आज माताएँ, मामियाँ, काकियाँ या नर्से बच्चों को सुलाती हैं अथवा वे कौन से उपाय हैं, जिनसे किसी अनिच्छुक शिशु को राजी करके खाना खिलाया जाता है। अक्सर बच्चा इन दोनों मामलों में डर के कारण ही कुछ करता है। बंगाल में एक सबसे अधिक लोकप्रिय लोरी में आधी रात के बाद बर्गी या पिंडारी लुटेरों के गिरोह का भयावह वर्णन किया जाता है। निःसन्देह यह किसी अधमूदें बच्चे को सुलाने का बहुत प्रिय तरीका नहीं है।

-आत्मकथा, अध्याय-5

पहाड़

पहाड़ पर शारीरिक श्रम बहुत बढ़ जाता है। हृदय को पावन करने वाली शांति मिलती है। पर्वतों के शांतिपूर्ण एकांतवास में जीवन स्वप्नवत् लगता है। पर्वतों के निकट फैलता हुआ कुहासे का आवरण किसी सुंदर कविता के स्वप्निल आवरण के समान प्रतीत होता है।

-मित्र हेमन्तकुमार सरकार को पत्र (27-10-1975)

खुशामद।

मैंने जीवन में कभी किसी की खुशामद नहीं की। दूसरों को अच्छी लगने वाली बातें बनाना मुझे नहीं आता। अपने नेता के जीवन-काल में जब सब लोग उनको सन्तुष्ट करने के लिए उनकी मनचाही बातें किया करते थे तब भी मैं अप्रिय सत्य कहकर उनसे लड़ता रहता था।

-पत्रावली, पृ. 235

अपने विषय में

जिसने अंग्रेजी राजनीतिज्ञों के साथ और उनके विरुद्ध आजीवन काम किया है वह संसार के अन्य किसी राजनीतिज्ञ से धोखा नहीं खा सकता। अगर अंग्रेजी राजनीतिज्ञ मुझे फुसलाने अथवा मजबूर करने में असफल हुए हैं तो कोई भी अन्य राजनीतिज्ञ वैसा करने में सफल नहीं हो सकता। जिस अंग्रेज सरकार ने मुझे लम्बे अर्से तक जेल में रखा और तरह-तरह की शारीरिक तथा अन्य यातनाएँ पहुँचाई, वही जब मुझे पस्त नहीं कर सकीं तो कोई अन्य सत्ता ऐसा करने की कैसे उम्मीद रख सकती है ? मैंने कभी ऐसा कोई काम नहीं किया है, जिससे मेरे देश के गौरव, आत्मसम्मान अथवा देशहित को ठेस पहुँची हो।

-गांधी जी को संदेश (6-7-1944)

मेरी यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि जीवन की सच्चाई को कायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि पूर्णाहुति के लिए निरन्तर तैयार रहा जाए। जीवन के प्रभात में हृदय में इस प्रार्थना को लेकर कर्मक्षेत्र में पदार्पण किया था- "हे प्रभो, जिसे जीवन में कोई उद्देश्य दो, उसे उसको पूरा करने की शक्ति भी दो !" भविष्य की बात मैं नहीं जानता। परन्तु अभी तक भगवान उस प्रार्थना को निभाते आ रहे हैं। इसी कारण मैं बहुत सुखी हूँ। कभी-कभी तो सोचता हूँ कि मेरे समान सुखी व्यक्ति इस जगत् में और कितने हैं?

-पत्रवली. पृ. 230।

मैं किराये का सैनिक नहीं हूं। सहज में ही कहीं आत्मसमर्पण नहीं करता। परन्तु जहाँ करता हूँ वहाँ से सरलता से लौटता भी नहीं। मेरे त्याग और मेरी उदारता पर आपका सदैव अधिकार रहेगा। आप उसका उपयोग करें या न करें यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। इस समय मुझे अपना मार्ग स्वयं ही निश्चित करना पड़ेगा। वह मार्ग मुझे कहाँ ले जाएगा यह मैं अभी तक निश्चित नहीं कर पाया हूँ।

-पत्रावली, पृ. 266

गांधी

गांधी कुछ अर्थों में, एक जटिल व्यक्तित्व हैं। गांधी के दो पक्ष हैं-गांधी एक राजनीतिक नेता के रूप में और गांधी एक दार्शनिक के रूप में। हम उनका अनुसरण एक राजनीतिक नेता की हैसियत से करते रहे हैं परन्तु हमने उनके दर्शन को स्वीकार नहीं किया है।

-टोकियो विश्वविद्यालय के छात्रों को संबोधन, नवम्बर, 1944 –

गांधी और टैगोर

टैगोर और गांधी दोनों ही आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के विरुद्ध हैं। परन्तु संस्कृति के क्षेत्र में उनके विचार समान नहीं हैं। जहाँ तक चिन्तन, कला और संस्कृति का सम्बन्ध है, टैगोर विदेशी प्रभाव को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। उनका विश्वास है कि संस्कृति के क्षेत्र में भारत और शेष विश्व के बीच पूर्ण सहयोग होना चाहिए और पारस्परिक आदान-प्रदान भी होना चाहिए। हमें किसी अन्य राष्ट्र की संस्कृति, कला अथवा विचारों का विरोधी नहीं होना चाहिए। संस्कृति के क्षेत्र में जहाँ टैगोर भारत और शेष विश्व के बीच पूर्ण सहयोग की हिमायत करते हैं वहाँ गांधी का सामान्य रवैया विदेशी प्रभाव के प्रति विरोध का

-टोकियो विश्वविद्यालय के छात्रों को सम्बोधन, नवम्बर, 1944

स्वामी विवेकानन्द

मैं उस समय मुश्किल से पन्द्रह वर्ष का था जब विवेकानन्द ने मेरे जीवन में प्रवेश किया। इसके परिणाम स्वरूप मेरे भीतर एक उथल-पुथल मच गई, एक क्राान्ति घटित हुई। स्वामी जी को समझने में तो मुझे काफी समय लगा लेकिन कुछ बातों की छाप मेरे मन में शुरू से ही ऐसी पड़ी कि कभी मिटाए नहीं मिट सकी। विवेकानन्द अपने चित्रों में और अपने उपदेशों के जरिये मुझे एक पूर्ण विकसित व्यक्तित्व लगे। मैंने उनकी कृतियों में उन अनेक प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर पाए, जो मेरे मन में उस समय घुमड़े रहे थे या जो अस्पष्ट थे और बाद में स्पष्ट होकर सामने आए।

–आत्मकथा, अध्याय पांच भाषा

जहाँ तक सामान्य भाषा का सम्बंध है, मैं यह सोचने को बाध्य हूँ कि हिन्दी और उर्दू के मध्य किया जाने वाला अंतर कृत्रिम है। सबसे अधिक स्वाभाविक बोलचाल की भाषा इन दोनों के मिश्रण से बनेगी, जैसी कि भारत के अधिकांश भाग में प्रतिदिन बोली जाती है और यह सामान्य भाषा नागरी अथवा उर्दू किसी भी लिपि में लिखी जा सकती है।

-हरिपुरा कांग्रेस में अध्यक्षीय भाषण (19-2-1938) भाषा असमर्थ है क्योंकि वह विचारों को आधा-अधूरा ही प्रकट कर पाती है। मेरी कामना है कि मनुष्य उसे और पूर्ण बना सके क्योंकि अभी वह बेचारी इतनी लंगड़ी है।

–भाई शरच्चद्र बोस को पत्र (1–10–1912)

कला और संगीत।

कला और उसके आनन्द को दरिद्रतम व्यक्ति के लिए भी बोधगम्य बनाना पड़ेगा। संगीत की विशिष्टता तो एक संकुचित सीमा में अवश्य रहेगी परन्तु उसे जनसाधारण के उपभोग के योग्य भी बनाना पड़ेगा। विशिष्ट साधनों के अभाव से, जैसे संगीत का आदर्श नष्ट हो जाता है, वैसे ही जनसाधारण के लिए सुलभ न होने पर भी कला और जीवन का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। मेरे विचार से तो कला लोकसंगीत और लोकनृत्य के द्वारा ही जीवन से संयुक्त है।

-श्री दिलीपकुमार राय के नाम पत्र (9-10-1925)

आलेख

भारतीय आजादी के पुरोधा क्रांतिकारी वीर सावरकर

◆ प्रो. प्यार सिंह ठाकुर



वीर सावरकर ऐसे भारत का सपना संजोए थे जो अखण्ड भारत हो और राष्ट्र-एकता उसकी आत्मा। विनायक दामोदर सावरकर को भारतीय वीर सावरकर कहकर पुकारते थे। वीर सावरकर एक महान क्रान्तिकारी योद्धा थे जिनके हृदय में भारत और भारतीय समाज के प्रति गहरा प्रेम था। उनके दर्शन में हिन्दुत्व की बात व हिन्दू राष्ट्र से तात्पर्य संकीर्ण साम्प्रदायिक विचारों से नहीं था। वे ऐसे विचारों से ऊपर उठे हुए थे और हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रेम एवं सौजन्य का वातावरण देखना चाहते थे। उनके अनुसार भारतीय वह है, जो सिन्धु नदी से समुद्र तक रचा-बसा है, जिसमें, राष्ट्र एकता, वैदिक संस्कृति, भारतीय सभ्यता और संस्कृति और विभिन्न संस्कृतियों पर गर्व हो।

वीर सावरकर भारतवर्ष की आज़ादी के आन्दोलन के दौरान पहले प्रचण्ड राष्ट्रवादी, क्रान्तिकारी थे जिन्होंने राष्ट्रवाद की भावना और अखण्ड भारत की स्थापना पर बल दिया।

वीर सावरकर ने कहा था कि भारत-राष्ट्र का वास्तविक विकास तभी सम्भव है जब सभी संगठित हों, परस्पर एक सूत्र में बंधे हों। सभी में भारत-राष्ट्र के हितों की रक्षा की भावना हों, उत्तरदायित्व की भावना का विकास विकसित हो और सभी में बन्धुत्व तथा विश्वास की भावना जागृत हो। तभी भारत-राष्ट्र की नींव मजबूत होगी। वीर सावरकर का विश्वास था कि राष्ट्र-एकता पहली शर्त है जो एकता की भावना का संचार करती है। अतः एक भारतीय-राष्ट्रवादी के मन में सिन्धू से ब्रहापुत्र तक और हिमालय से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भौगौलिक प्रान्त के प्रति प्यार व अनुराग होना चाहिए।

विनायक दामोदार सावरकर का जन्म 28 मई, 1883 को भागूर बम्बई में हुआ था और 26 फरवरी, 1966 को 83 साल की उम्र में देहान्त हुआ। इनके प्रारंभिक जीवन पर प्रकाश डालें तो उनका जीवन संघर्षमयी गाथाओं से परिपूर्ण जीवन है। सन् 1901 में सावरकर ने फग्यूर्सन कॉलेज पूना में प्रवेश लिया। वे अपने विद्यार्थी-काल से ही एक प्रभावशाली वक्ता के रूप में उभर कर आए और जल्द ही ख्याति अर्जित की और 'मित्र मेला' नामक क्रान्तिकारी दल संगठित किया जिसका नाम बाद में 'अभिनव भारत' रख दिया गया। सन् 1905 में जब स्वदेशी आन्दोलन जोर पकड़ रहा था तो वीर सावरकर ने पूना में विदेशी कपड़ों की होली जलाई और अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों से ब्रिटिश सरकार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। सन् 1905 में स्नातक की डिग्री हासिल करने के उपरांत 1906 से 1910 तक वीर सावरकर ने इंग्लैण्ड में उच्च शिक्षा ग्रहण की। इंग्लैण्ड में 'इण्डिया हाऊस' में डेरा जमाकर शीघ्र ही सावरकर ने वहां रहने वाले भारतीय छात्रों में क्रान्तिकारी भावनाएं भर दीं। अतः वीर सावरकर ने इण्डिया हाऊस लंदन की भारतीय क्रान्ति का एक गढ़ बना लिया था।

जब भगत सिंह ने प्रथम स्वातंत्र्य समरगंथ का गुप्त रूप से कराया प्रकाशन

सरदार भगत सिंह तथा सुखदेव जब लाहौर के नेशनल कॉलेज में पढ़ते थे तब वे जहां भाई परमानंद जी के निकट संपर्क में आने के बाद क्रांति पथ के राही बने। वहीं वीर सावरकर द्वारा लिखित 1857 का प्रथम स्वातंत्र्य ग्रंथ ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया। उसी ग्रंथ से प्रेरणा लेकर उन्होंने 1857 की क्रांति की तरह देश में सशस्त्र क्रांति का बीड़ा उठाया। देश में जाने-माने राष्ट्र भक्त, स्वतंत्रता सेनानी तथा काशी विद्यापीठ में शिक्षाविद राजा राम शास्त्री को लाला लाजपतराय जी ने लाहौर के द्वारकादास पुस्तकालय का प्रबंधक नियुक्त किया था। उनके अनुसार सरदार भगत सिंह, सुखदेव क्रांति की प्रेरणा देने वाली पुस्तकों की तलाश में पुस्तकालय जाते थे।

वीर सावरकर की पुस्तक ने भगत सिंह को बहुत अधिक प्रभावित किया था। यह पुस्तक अंग्रेजों द्वारा जब्त कर ली गई थी। भगत सिंह ने इस पुस्तक को कहीं से प्राप्त किया। भगत सिंह ने दिन रात लगाकर इस पुस्तक को पुनः दो खंडों में प्रकाशित करवाया। प्रत्येक खंड की कीमत आठ आना रखी गई। फिर गुप्त रूप से उसे बेचने का प्रबंध किया।

सावरकर ने 8 मई, 1908 को इण्डिया हाऊस लंदन में 1857 का स्वतन्त्रता दिवस मनाया। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि 1857 का आन्दोलन अंग्रेजों के विरुद्ध कोरा विद्रोह नहीं था बल्कि यह तो भारतवर्ष की स्वाधीनता का संघर्ष था। इस स्वाधीनता संघर्ष को सिद्ध करने के लिए वीर सावरकर ने '1857 का स्वाधीनता संग्राम' नामक पुस्तक भी लिखी जिसे ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था। वीर सावरकर को क्रान्तिकारी और आतंकवादी गतिविधियों के आरोप में मार्च 1910 में लदंन में ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। जब सावरकर को पकड़कर भारत लाया जा रहा था तो वे जलयान से समुद्र में कूद पड़े और बच निकले, परन्तु फिर ब्रिटिश सरकार ने फ्रॉस की भूमि में उन्हें गिरफ्तार कर भारत लाया और दो अभियोगों के जुर्म में उन्हें पृथक-पृथक आजीवन कारावास का दण्ड मिला।

सावरकर को पचास वर्ष अंग्रेजों के कैद खाने में बिताने थे। यह एक अजीबो-गरीब कारावास का दण्ड मिला था। 1923 में वीर सावरकर को ब्रिटिश सरकार द्वारा दण्ड देकर अण्डमान से लाकर रत्नागिरि जेल में बन्द कर दिया गया था। उन्हें अण्डमान और रत्नागिरि जेलों में अंग्रेजी हुकुमत की यातनाएँ झेलनी पड़ी। 1923 के बाद 1937 में बम्बई में कांग्रेस-मंत्रिमण्डल बना तब जमनादास मेहता के प्रयत्नों से वीर सावरकर को 10 मई, 1937 को जेल से रिहा कर दिया। जेल से रिहा होने के बाद भी वीर सावरकर ने आजादी के लिए संघर्ष जारी रखते हुए क्रान्तिकारी तिलक के लोकतांत्रिक स्वराज दल में शामिल हो गए और इसके पश्चात सावरकर ने हिन्दू महासभा की सदस्यता स्वीकार कर ली। सावरकर के लोकतांत्रिक कार्यों व आन्दोलन को देखकर इन्हें दिसम्बर, 1937 में अहमदाबाद अधिवेशन में हिन्दू महासभा का प्रधान चुन लिया गया। अपने तीन वर्षों के कार्यकाल के दौरान सावरकर ने भारतीयों में राष्ट्रवाद और एकता की भावना का संचार व संप्रेषण करने के लिए कड़ा परिश्रम किया। यह वीर सावरकर का सौभाग्य था कि वे भारत की आजादी देखने को जीवित रहे, लेकिन अपनी मातृभूमि भारतवर्ष के दो टुकड़े देखकर आहत हुए थे। 26 फरवरी, 1966 को 83 साल की उम्र में इस महान देशभक्त व क्रान्तिकारी भारत माता के सपूत का देहान्त हो गया। उनके नश्वर शरीर का देहावसान अवश्य हो गया, लेकिन उनके बलिदानों से भारत देश की वर्तमान और भावी मानवीय नस्लें राष्ट्र-प्रेम के लिए बलिदान के लिए अविरल प्रेरणा लेती रहेंगी।

वीर सावरकर ने भारत राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता पर बल दिया था और इसे स्वीकार भी किया था। सावरकार भारत राष्ट्र पुनरुत्थान और सांस्कृतिक श्रेष्ठता के भक्त थे और इसमें विश्वास भी रखते थे। उन्होंने भारतीयों को संगठित करने और उनमें राष्ट्रवाद की भावना भरने का अथक प्रयास किया जिसके लिए उन्हें अपना यौवन जेल में बीतना पड़ा और जो यातनाएँ उन्होंने जेल में सही उनको शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनका दर्शन 'संगठन में शक्ति' का था जिसका प्रचार उन्होंने जन-मानस में भरने का भरसक प्रयास किया। वीर सावरकर ने कहा था कि भारत-राष्ट्र का वास्तविक विकास तभी सम्भव है जब सभी संगठित हों, परस्पर एक सूत्र में बंधे हों। सभी में भारत-राष्ट्र के हितों की रक्षा की भावना हों, उत्तरदायित्व की भावना का विकास विकसित हो और सभी में बन्धुत्व तथा विश्वास की भावना जागृत हो। तभी भारत -राष्ट्र की नींव मजबूत होगी। वीर सावरकर का विश्वास था कि राष्ट्र-एकता पहली शर्त है जो एकता की भावना का संचार करती है। अतः एक भारतीय-राष्ट्रवादी के मन में सिन्धू से ब्रहापुत्र तक और हिमालय से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भौगौलिक प्रान्त के प्रति प्यार व अनुराग होना चाहिए।

वीर सावरकर के कहने का तात्पर्य साम्प्रदायिकता से नहीं था जिसमें हिन्दू-मुस्लिम के हितों का टकराव हो। भारत-भूमि में बसने वाले सभी भारतीय हैं, उनकी पहचान हिन्द से है, हिन्द-राष्ट्र से है, जो हिन्द से विपरीत है वह न तो हिन्दू है न मुस्लमान, वह राष्ट्र विरोधी तत्व है जिसे हिन्द राष्ट्र में रहने का अधिकार नहीं है। दूसरा दर्शन यह था कि जिस व्यक्ति को भारतीय-सभ्यता और

संस्कृति पर तन-मन-धन से गर्व है वही भारतीय है। उन्होंने यह भी कहा था कि राष्ट्रीयता के लिए केवल सामान्य प्रदेश का होना ही आवश्यक नहीं है बल्कि प्रजातीय, भाषाई, धार्मिक व संस्कृति तथा अन्य प्रकार की एकता का होना भी अनिवार्य है। यदि जनता पर प्रादेशिक राष्ट्रीयता थोपी जाए जैसा कि कई देशों में किया गया, तो वे देश व राष्ट्र कभी भी जीवित नहीं रहे । वीर सावरकर के अनुसार भारतीयता वह वस्तु व विश्वास है, वह दर्शन है जिसे कभी खोया नहीं जा सकता। इस भारतीय-धरा पर भारतीय में सदियों से जो विशेषताएँ और प्रजातांत्रिक तत्व विकसित हो चुके हैं उनके आधार पर यह कह सकते हैं और जाति खो देने के बाद भी वह भारतीयता नष्ट नहीं हो सकती। वीर सावरकर ने मुस्लिम-सांम्प्रदायिकता से पीड़ित होकर कहा था कि मुसलमान और अंग्रेज व इसाई भारत को उस तरह प्रेम नहीं कर सकते जिस तरह हिन्दू प्रेम करते हैं। इस कथन से सावरकर के हृदय में मुस्लिमों के प्रति कोई घृणा नहीं थी। वे हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रेम और सहिष्णुता का वातावरण देखना चाहते थे । लेकिन ब्रिटिश हुकूमत और कुछ भारत- राष्ट्रवादीता से हीन मुसलमानों की मिलीभगत से मुस्लिम सांम्प्रदायिकता को बल मिला।

वीर सावरकर ने भारतीयता और राष्ट्रवाद के मध्य किसी प्रकार का फर्क नहीं समझा। वे यह मानते थे कि भारत-भक्त हुए बिना भारतीय नाम सार्थक ही नहीं हो सकता। भारतवर्ष भारतीय की पितृभूमि है कर्म भूमि है और पुण्यभूमि भी है। इसलिए विदेशी ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए राष्ट्रीय संघर्ष में सबसे आगे भारतीय को ही आना होगा। फिर भी सावरकर ने अपने भारतीय दर्शन में किसी प्रकार की सांम्प्रदायिक संकीर्णता को कोई स्थान नहीं दिया था। उन्होंने हिन्दुओं में व्याप्त अस्पृश्यता का कठोर विरोध किया। वीर सावरकर ने हिन्दू मन्दिरों में अनुसूचित जाति के प्रवेश का समर्थन करते हुए कहा था कि जिसे अपवित्र किया जा सके वह ईश्वर नहीं है। वे कहते थे कि जब लोग बिल्लियों और कुत्तों से प्यार कर सकतें हैं तो हम एक मनुष्य के स्पर्श से कैसे अपवित्र हो सकते हैं। इस प्रकार का व्यवहार हिन्दुत्व के लिए ठीक नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानवता जाति पर कलंक का धब्बा है। ऐसे व्यवहार से राष्ट्रवादी प्रभावित होता है और एकता और प्रेम में कमी प्रकट होती है।

वीर सावरकर मिश्रित विद्यालयों की स्थापना पर बल देते थे ताकि सबको एक समान शिक्षा ग्रहण कर सके। उन्होंने महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले में ऐसे मिश्रित विद्यालयों की स्थापना की थी। वीर सावरकर सच्चे देश-भक्त, राष्ट्रवादी न थे। उन्हें अपने देश भारतवर्ष से अगाध प्रेम था, भारत माता के लिए सब कुछ दांव पर लगाकर उन्होने आजादी की अलख जगाए रखी। वे किसी भी कीमत पर भारत का विभाजन नहीं होना देना चाहते थे। परन्तु वीर सावरकार को भारत और भारत की जनता के साथ विश्वासघात सहन नहीं था। वे चरित्र से गिरे लोगों को कभी सहन नहीं करते थे, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय, जाति से थे। वीर सावरकर का संपूर्ण जीवन देश की एकता-अखंडता के लिए समर्पित रहा। वे एक सच्चे राष्ट्रभक्त थे तथा देश की एकता व अखंडता के लिए उनका संदेश आज भी प्रासंगिक है।

गाँव बनाल, डा. बरोटी,
तह. धर्मपुर, जिला मण्डी, हि.प्र. 175040
मोबाइल नं. 98175-51904

वीर सावरकर ने भारत राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता पर बल दिया था और इसे स्वीकार भी किया था। सावरकार भारत राष्ट्र पुनरुत्थान और सांस्कृतिक श्रेष्ठता के भक्त थे और इसमें विश्वास भी रखते थे। उन्होंने भारतीयों को संगठित करने और उनमें राष्ट्रवाद की भावना भरने का अथक प्रयास किया जिसके लिए उन्हें अपना यौवन जेल में बीतना पड़ा और जो यातनाएँ उन्होंने जेल में सही उनको शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनका दर्शन 'संगठन में शक्ति' का था जिसका प्रचार उन्होंने जन-मानस में भरने का भरसक प्रयास किया। वीर सावरकर ने कहा था कि भारत-राष्ट्र का वास्तविक विकास तभी सम्भव है जब सभी संगठित हों, परस्पर एक सूत्र में बंधे हों। सभी में भारत-राष्ट्र के हितों की रक्षा की भावना हों, उत्तरदायित्व की भावना का विकास विकसित हो और सभी में बन्धुत्व तथा विश्वास की भावना जागृत हो। तभी भारत -राष्ट्र की नींव मजबूत होगी। वीर सावरकर का विश्वास था कि राष्ट्र-एकता पहली शर्त है जो एकता की भावना का संचार करती है। अत: एक भारतीय-राष्ट्रवादी के मन में सिन्धू से ब्रहापुत्र तक और हिमालय से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भौगौलिक प्रान्त के प्रति प्यार व अनुराग होना चाहिए।

क्रांतिकारी यशपाल

शस्त्र से साहित्य तक का सफर



भारत के स्वाधीनता संघर्ष में स्वतंत्रता सेनानियों के साथ अनेक लेखकों ने भी अपनी लेखनी से योगदान दिया। यशपाल एकमात्र ऐसे लेखक थे जिन्होंने देश के क्रांतिकारी आंदोलन में सक्रियता से भूमिका निभाई और जब साहित्य की दुनिया में कदम रखा तो केवल साहित्य के प्रति ही समर्पित हो गए।

यशपाल का जन्म 3 दिसंबर 1903 को पंजाब के फिरोजपुर छावनी में हुआ था। यशपाल के पूर्वज कांगड़ा जिले के. ..... के निवासी थे। आरंभिक शिक्षा फिरोजपुर में हुई और उच्च शिक्षा लाहौर में पाई।

किशोरावस्था और युवावस्था के संधिकाल में यशपाल कांग्रेस द्वारा चलाए गए स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित हुए। महात्मा गांधी ने जब चौरा-चौरी कांड के बाद असहयोग आंदोलन वापिस लिया तो राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित अनेक युवा गांधी जी के इस रणनीतिक कदम से असहमत हो गए। यशपाल भी ऐसे ही युवाओं में से एक थे। इसी दौर में लाहौर में लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित नेशनल कॉलेज में कुछ युवा एक दूसरे के संपर्क में आए। ये थे- भगत सिंह, भगवती चरण वोहरा, राजगुरु व यशपाल। सबकी आंखों में देश को आजाद देखने का सपना था। सभी को क्रांति की राह ही इस सपने को साकार करने की राह नजर आई। सब क्रांति की इस राह पर चल दिए। इसी दौरान 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना' का जन्म हुआ, जो केवल पंजाब तक ही सीमित न थी। संगठन का मूल उद्देश्य- देश को विदेशी दासता से आजाद करवाना था। सबके हाथों में बुलेट व बम थे।

देशभर में क्रांतिकारी एकजुट हुए। देश में जगह-जगह बम के धमाके होने लगे। एसेंबली में बम विस्फोट हुआ और भगत सिंह सहित अनेक क्रांतिकारियों ने गिरफ्तारी दी। इसी गिरफ्तारी के साथ सशस्त्र क्रांति को आघत पहुंचा। वर्ष 1930 में भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु को अंग्रेजों ने फांसी की सजा सुनाई। अगले वर्ष इलाहाबाद में महान क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद शहीद हो गए। अब भूमिगत रहकर यशपाल ने 'हिंदुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना' का नेतृत्व संभाला। लेकिन भूमिगत रहकर बहुत अरसे तक सशस्त्र क्रांति का आंदोलन जारी रखना संभव नहीं हुआ। 23 जनवरी, 1932 में यशपाल को इलाहाबाद से गिरफ्तार किया गया। यशपाल पर मुकदमा चला और चौदह वर्ष यानी आजन्म कारावास की सजा सुनाई गई। अंग्रेजों की यातनाओं से अनेक क्रांतिकारी शहीद हुए और अनेक क्रांतिकारियों को जेलों में डाल दिया गया। क्रांतिकारी आंदोलन धीरे-धीरे शिथिल पड़ गया।

यशपाल ने क्रांतिकारी जीवन के अनुभवों, इस आंदोलन की संपूर्ण व्यथा उन्होंने अपनी आत्मकथा 'सिंहावलोकन' जो तीन खंडों में प्रकाशित हुई, में किया है।

यशपाल ने लिखा, "विदेशी हुकूमत की जंजीरों में बंधे हुए किसी भी देश के लोगों के मन में मुक्ति के लिए छटपटाहट होना कोई अस्वाभाविक या चकित करने वाली बात नहीं। यह छटपटाहट क्रांति की स्थितियां पैदा करती है और इसी के साथ मुक्ति आंदोलनों को बेलगाम बनाती है।"

बहरहाल, आजन्म कारावास के बावजूद छह साल बाद मार्च 1938 में यशपाल की रिहाई हो गई। लेकर गवर्नर ने उन्हें 'खतरनाक' घोषित करके पंजाब प्रांत में उनके प्रवेश पर रोक लगा दी। अतः रिहाई के बाद वे लखनऊ में बस गए और मृत्युपर्यंत वहीं रहे।

यहां रहकर इस महान क्रांतिकारी ने शस्त्र से लेकर साहित्य का लंबा सफर तय किया। यूं तो उनके लेखन की शुरुआत जेल जाने के कुछ पहले ही आरंभ हो गई थी। जेल की कोठरी में

चिंतन-मनन करते हुए यशपाल विधिवत साहित्य रचना करने लगे। अपने पहले निबंध संग्रह पिंजड़े की उड़ान की अधिकांश रचनाएं उन्होंने जेल में ही लिखी थीं।

आचार्य नरेंद्र देव ने यशपाल के आरंभिक लेखन में सिद्धांतों की शिलाओं, आत्म-विस्मृत समाज को जगाने और समाज के करवट न बदलने पर कलम की नोक समाज के शरीर में गड़ा देने का जो जिक्र किया है, वह यशपाल के संपूर्ण लेखन के संदर्भ में भी प्रासंगिक है।

यशपाल के लेखन में विविधता है। उन्होंने बड़ी संख्या में निबंध लिखे- न्याय का संघर्ष, मार्क्सवाद, गांधीवाद की शव परीक्षा, चक्कर क्लब, बात-बात में बात, देखा, सोचा, समझा, रामराज्य की कथा तथा जग मुजरा आदि।

वर्ष 1938 में जेल से छूटने के उपरांत मासिक पत्रिका विप्लव का स्वयं ही प्रकाशन व संपादन किया। 1940 में विप्लव के उर्दू संस्करण बागी की शुरुआत की। 1941 में विप्लव में लिखे एक लेख के लिए उन्हें गिरफ्तार किया गया। जेल से छूटने के बाद उन्होंने विप्लव को विप्लवी ट्रैक्ट के नाम से निकाला। पुनः गिरफ्तारी हुई। विप्लवी ट्रैक्ट व बागी को बंद करना पड़ा। स्वतंत्रता के बाद विप्लव को पुनः आरंभ किया गया लेकिन शीघ्र ही उसे भी बंद करना पड़ा।

यशपाल ने एक नाटक नशे-नशे की बात भी लिखा। 1951 में इसका निर्देशन व मंचन भी किया। पुस्तक रूप में यह नाटक 1952 में प्रकाशित हुआ। विदेशी यात्राओं के संस्मरणों पर तीन पुस्तकें - लोहे की दीवार के दोनों ओर, राहबीती और स्वर्गोद्यान : बिना सांप।

यशपाल में कहानीकार बनने के अंकुर बाल्यकाल में ही फूटने लगे थे। पहली कहानी 'अंगूठी' उन्होंने गुरुकुल में पढ़ते हुए वहीं की हस्तलिखित पत्रिका हंस के लिए लिखी थी लेकिन वे 'मक्रील' को पहली कहानी मानते थे।

उनकी एक कहानी जीवन के अंतिम दिनों में लिखी हुई कहीन 'लैंडशेड' है जो नाजी जर्मनी की पृष्ठभूमि पर केंद्रित है।

उनका पहला उपन्यास दादा कामरेड 1941 में प्रकाशित हुआ। जिसके बाद उन्होंने देशद्रोही (1943), दिव्या (1945), पार्टी कामरेड (1946), अमिता (1956), झूठा सच्च (1958) पहला भाग वतन और देश, झूठा सच (1960), दूसरा भाग, देश का भविष्य, बारह घंटे (1963), अप्सरा का शाप (1965), क्यों फंसे (1968) और मेरी तेरी उसकी बात (1974)।

यशपाल को मेरी तेरी उसकी बात के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

एक क्रांतिकारी, देशभक्त के नाते उन्होंने देश को आजादी दिलावाने का साहस दिखाया। जेल में व बाहर आकर अपनी लेखनी से समाज की तस्वीर को आमजन के सामने लाए। देश की आजादी तथा साहित्य को नई ऊंचाइयों पर ले जाने में उनका योगदान एक सच्चे देशभक्त का रहा है। 5 दिसंबर 1963 को यशपाल के साठवें जन्म दिवस के अवसर पर इलाहाबाद में आयोजित एक भव्य समारोह में महादेवी वर्मा ने जो शब्द कहे, वे इस महान विभूति के संपूर्ण जीवन का निचोड है - 'जब दूसरे साहित्यकार सरस्वती के मंदिर में बैठे आराधना कर रहे थे, यशपाल किसी तहखाने में बैठे बम बना रहे थे। और जब सबसे अंत में यशपाल सरस्वती के मंदिर में आए, तब सरस्वती ने सबसे अधिक ध्यान उन्हीं की ओर दिया।'

संदर्भ

आजकल साहित्य और संस्कृति मासिक पत्रिका, सितंबर, 2008
हिमोत्कर्ष अक्तूबर-दिसंबर, 2007

एक क्रांतिकारी, देशभक्त के नाते उन्होंने देश को आजादी दिलावाने का साहस दिखाया। जेल में व बाहर आकर अपनी लेखनी से समाज की तस्वीर को आमजन के सामने लाए। देश की आजादी तथा साहित्य को नई ऊंचाइयों पर ले जाने में उनका योगदान एक सच्चे देशभक्त का रहा है। 5 दिसंबर 1963 को यशपाल के साठवें जन्म दिवस के अवसर पर इलाहाबाद में आयोजित एक भव्य समारोह में महादेवी वर्मा ने जो शब्द कहे, वे इस महान विभूति के संपूर्ण जीवन का निचोड़ है – 'जब दूसरे साहित्यकार सरस्वती के मंदिर में बैठे आराधना कर रहे थे, यशपाल किसी तहखाने में बैठे बम बना रहे थे। और जब सबसे अंत में यशपाल सरस्वती के मंदिर में आए, तब सरस्वती ने सबसे अधिक ध्यान उन्हीं की ओर दिया।'

आलेख

विप्लवी महानायक : रास बिहारी बोस

◆ विनोद लखनपाल

बीसवीं सदी के प्रथम दशक में अंग्रेजों ने भारत के जनसाधारण का विश्वास जीतने के लिए इस देश की प्राचीनतम राजधानी इन्द्रप्रस्थ अर्थात् वर्तमान समय की दिल्ली को नई राजधानी बनाकर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने का कूटनीतिक निश्चय किया। उल्लेखनीय है कि सुरक्षा की दृष्टि से कलकत्ता असुरक्षित एवं खतरनाक हो रहा था, वहीं बंगाल विभाजन का निर्णय वापस लेने के कारण सरकार अपनी हार छिपाने के लिए बंगालियों से कुछ छीनना भी चाहती थी ताकि उनमें जीत की भावना न आये।

दिसम्बर 1912 को इंग्लैंड के सम्राट जार्ज पंचम ने साम्राज्ञी मेरी के साथ दिल्ली में प्रवेश किया। किसी भी ब्रिटिश सम्राट की यह प्रथम भारत यात्रा थी। मंत्रिमण्डल इस यात्रा को स्वीकृति देने में हिचक रहा था मगर जहाँ जार्ज पंचम इसलिए आने को लालायित था कि वह स्वयं उपस्थित होकर अपनी प्रजा में आज्ञाकारिता की भावना बढ़ा सके वहाँ वायसराय लार्ड हार्डिंग दरबार करा कर अपना नाम लिटन और कर्जन की सूची में जोड़ना चाहता था।

12 दिसम्बर को किंग्सवे कैम्प के निकट 80 हजार व्यक्तियों की उपस्थिति में शाही दरबार लगा। सम्राट ने अपने संक्षिप्त भाषण में राजधानी कलकत्ता से दिल्ली लाने की घोषणा की। बाद में लालकिले से सम्राट व साम्राज्ञी ने शाही पोशाक में जनता को दर्शन दिए। इस अवसर पर नई राजधानी का शिलान्यास भी किया गया। बाद में जब नई दिल्ली बनी तो वह पत्थर हटाकर दूसरी जगह लगा दिया गया। दिल्ली वासियों के हर्ष का पारावार न था जबकि कलकत्ता वालों की नाराज़गी का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वहाँ से प्रकाशित होने वाले पत्र 'स्टेटसमैन' के एक सम्पादकीय का शीर्षक था, 'हार्डिंग वापस जाओ।'

बंगाल का क्रान्तिकारी दल जो कलकत्ता में सक्रिय था ने अंग्रेज सरकार से बदला लेने का दृढ़ संकल्प लिया। इधर प्रशासन और राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र दिल्ली बना तो क्रान्तिकारियों ने भी इस महानगरी को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बना लिया और उपयुक्त अवसर की आतुरता से प्रतीक्षा करने लगे। क्रान्तिकारियों की उम्मीद बर आई, नई राजधानी की प्रथम वर्षगांठ के उपलक्ष्य में आयोजित होने वाले उत्सव के रूप में सुअवसर मिला। क्रान्तिकारियों को किसी भी शर्त पर यह स्वीकार्य न था कि वायसराय बिना किसी हंगामे/ धूम-धड़ाके के राजधानी में प्रवेश करे, वे तो इस समय महान शक्ति प्रदर्शन के सुअवसर पर अपने ही ढंग से धमाके कर सलामी देना चाहते थे। योजना की रूपरेखा कुछ ऐसी थी कि हाथी की अम्मारी (हौदे) पर दूल्हे की तरह तनकर बैठने वाले हार्डिंग की बोटी-बोटी उसी तरह आकाश में उड़ा दी जाए जैसे इसी दिल्ली में पचपन बरस पहले 1857 में क्रान्तिकारियों को तोपों के मुँह से बांधकर उड़ाया गया था। इस साहसिक एवं जोखिम भरी योजना के प्रेरणा स्रोत एवं सूत्रधार थे विप्लवी रास बिहारी बोस जो इसको कार्यान्वित करने के उद्देश्य से 20 दिसम्बर को ही दिल्ली आ चुके थे।

वर्ष 1912 के दिसम्बर मास की 23 तारीख दिन सोमवार, चांदनी चौक में जलूस की पूरी तैयारियां थीं। मुख्य मार्ग के दाईं तरफ आधी सड़क को खाली रखा गया था जबकि बाईं तरफ आधी सड़क के दोनों ओर तख्ते लगाकर बैठने का प्रबन्ध किया गया था। वायसराय पुरानी दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर सपत्नीक उतरा। दिल्ली नगरपालिका की ओर से वायसराय को मान-पत्र दिया गया।

तत्पश्चात लार्ड हार्डिंग और उसकी पत्नी को एक विशालकाय हाथी जिस पर रेशम की झूलें (हाथी-घोड़े आदि की पीठ पर सजावट के लिए डाला जाने वाला कपड़ा) पड़ी होने के अतिरिक्त, कलाबत्तू (रेशम के धागे पर लपेटा हुआ सोने या चांदी का तार) की डोरियां और चांदी का हौदा जिस पर सोने का काम था पीछे चंवर डुलाता सेवक और एक अर्दली (छाता बरदार) था तथा पीछे की ओर अनेक सजे-धजे हाथी थे। बाजे-गाजे के साथ जलूस चला जिसमें विभिन्न रजवाड़ों से आई रंग-बिरंगी चमकदार वर्दियां पहने सैनिकों की टुकड़ियां थीं। हर तरपफ चाक-चौबंद चौकसी, कड़ा बन्दोबस्त, पुलिस की निगरानी तिस पर ब्रिटिश पलटनों का पहरा। रास्ते के दोनों ओर पुलिस और सेना के जवान सावधान मुद्रा में तन कर खड़े थे।

जलूस टाऊन हाल की तरपफ से मुड़ कर चांदनी चौक में प्रविष्ट हुआ तो वहाँ की रौनक देखते ही बनती थी। जहाँ तक

नज़र जाती थी मकानों की छतें और छज्जे देखने वालों से पटे पड़े थे, ग़रज यह कि हर तरफ नरमुण्डों का सैलाब। वायसराय वाला हाथी जैसे ही मोती बाज़ार के सामने कटरा धूलिया में पंजाब नेशनल बैंक के पास पहुँचा तो सिगरेट के चौथाई पाऊंड वाले छोटे डिब्बे के आकार की कोई वस्तु किसी ओर से हौदे की तरफ फेंकी गई और एक कान-फाड़ ज़ोरदार धमाका बहुत दूर तक सुनाई दिया। वातावरण में चारों तरफ धुआँ था। वायसराय के पीछे खड़ा बलरामपुर रियासत का सेवक (छाता बरदार) महाबीर सिंह जिस के चीथड़े उड़ गए थे मरकर उलटा लटक गया था। हुआ यह कि हार्डिंग के भाग्य से बम उसके सामने न फट कर उसके आसन के पीछे फटा जिसके कारण भारी-भरकम हौदे का पिछला भाग जिस पर चांदी की मोटी चादर थी, उड़ गया। वायसराय को हुए 6 घावों में से दाहिने कन्धे पर चार इंच लम्बा घाव भी था जिसके नीचे से हड्डी निकल आई थी। कुछ होश आया तो जैसे-तैसे कुछ बैठने का प्रयत्न करते हुए जुलूस को आगे बढ़ने के लिए कहा मगर तभी सिर झूल गया और बेहोश हो गया। घायल हार्डिंग और लेडी हार्डिंग को मोटर द्वारा उनके निवास स्थान पर पहुँचा दिया गया। व्यवधान के बाद जलूस का कार्यक्रम पिफर शुरू हुआ, वायसराय लार्ड हार्डिंग के स्थान पर वायसराय की परिषद् के वरिष्ठ सदस्य सर जी. फ्रलीटवुड विलसन को हौदे में बिठाया गया। परन्तु वह पहले सी उमंग मस्ती और तड़क-भड़क नदारद थी क्योंकि बम के धमाके ने सरकारी उत्साह की हवा निकाल दी थी और जनसाधारण दहल उठा था।

विस्फोट होते ही पलक झपकने भर में पुलिस, सेना के जवानों और खुफिया पुलिस ने घटना स्थल के आसपास के समूचे क्षेत्र की घेराबंदी करके जो जहाँ था उसे वहीं रोक दिया। घंटों चली गहन पूछताछ, जांच- पड़ताल और बयान के बाद ही लोगों को छोड़ा गया। भयंकर बमचख और भगदड़ का माहौल, बम किसने फेंका और कैसे पफेंका, पुलिस को इस बारे में कुछ भी ठोस पता न चल पाया। इस घटना के लगभग 6 माह पश्चात 17 मई 1913 को क्रान्तिकारियों द्वारा लाहौर के लारेंस गार्डन के निकट किए गए एक बम विस्फोट में जिमखाना क्लब का चपरासी मारा गया जबकि निशाने पर बंगाल में क्रूरता हेतु कुख्यात पुलिस अधिकारी गॉर्डन था। पुलिस कलकत्ता में राजा बाजार बम केस की जांच कर रही थी कि सर्कुलर रोड पर एक कमरे की तलाशी में विप्लवी शशांक शेखर हाजरा उर्फ अमृत लाल हाजरा, चन्द्रशेखर डे, शारदा चरण गुह और दिनेशचन्द्र सेन के साथ-साथ सिगरेट टिन से बने बम के ऊपरी खोल, कलैम्प और चक्के भी मिले। इसी कमरे से दिल्ली के अवध बिहारी का नाम- पता भी मिला। बाद में बम परीक्षण विशेषज्ञ टर्नर की जांच का परिणाम यह था कि दिल्ली में वायसराय पर फेंका गया बम लाहौर में लारेंस गार्डन में फटा बम और बंगाल में राजा बाजार (कलकत्ता), मिदनापुर, मेमन सिंह, भद्रेश्वर और डलहौजी स्कवायर में फटे बम सिगरेट टिन के डिब्बों में ही बने थे जो यह प्रमाणित करते थे कि इन सबकी निर्माण विधि एक ही स्थान से सम्बद्ध है। उधर दिल्ली में जब अवध बिहारी के घर की तलाशी ली गई तो 'लिबर्टी' नामक पेम्फलेटों के अतिरिक्त एम. एस. उपर्फ दीनानाथ का पता चला। दीनानाथ और मास्टर अमीर चन्द के दत्तक पुत्र सुलतान चन्द ने मुखबिर बनकर सारा भेद खोल दिया। विप्लवी रास बिहारी बोस सूत्रधार थे और बसन्त कुमार बिश्वास ने बम फेंकने में भाग लिया था। बसन्त कुमार बिश्वास, मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी और भाई बाल मुकुन्द को फांसी जबकि लाला हनुमन्त सहाय और बलराज भल्ला को सात-सात वर्ष की काले पानी की सजा हुई। इस सारे मुकद्दमे में 203 गवाहियां हुईं।

भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष की अग्रिम पंक्ति के क्रान्तिकारियों में विप्लवी रास बिहारी बोस ही एकमात्र ऐसा व्यक्तित्व है जिसे ब्रिटिश सरकार का पुलिस बल भारत एवं विदेश में गिरफ्तार अथवा एक दिन के लिए भी हवालात में रखने में बुरी तरह असफल रहा। गिने-चुने शीर्ष विप्लवी ही रास बिहारी बोस को रासूदा अथवा दादा कहा करते थे जबकि अन्यों के लिए वह 'सतीन्द्र चन्द्र' या 'फैट्टी बाबू' ही थे। रास बिहारी बोस जो हमारे इस लेख के नायक हैं, के पिता का नाम विनोद कुमार बोस था जो शिमला स्थित सरकारी प्रिंटिंग प्रेस में लिपिक थे। आपका (रासूदास) जन्म 25 मई, 1886 को अपने मामा के घर बंगाल के हुगली ज़िला में भद्रेश्वर के समीप पलाति विधतीर नामक गाँव में हुआ था। बाल्यावस्था से ही रास बिहारी मनमाने ढंग से काम करने वाले एवं उद्दंड स्वभाव के थे। पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगता था पर कुश्ती-लठैती का शौक था। बड़ा होने पर अंग्रेजी सेना में भर्ती होने के लिए दो बार गए लेकिन बंगाली होने के कारण दोनों बार भर्ती नहीं किया गया। आपने पढ़ाई छोड़ दी तो



आपकी माता आपको शिमला ले गई जहां पिताश्री के कारण सरकारी प्रिंटिंग प्रेस में कापी-होल्डर की नौकरी मिल गई लेकिन अक्खड़ स्वभाव के कारण शीघ्र ही इस्तीफा देने की नौबत आ गई तो कसौली स्थित पाश्चियर इंस्टीच्यूट में नौकरी कर ली। बाद में वर्ष 1906 में फारेस्ट रिसर्च इंस्टीच्यूट देहरादून में लिपिक के पद पर लग गए। असाधारण जीवट के धनी थे विप्लवी रासूदा यह सच्चाई उद्घाटित होती है रौलट कमेटी की रिपोर्ट के इस कथन से- 'रास बिहारी देहरादून के वन विभाग में सरकारी नौकरी करने के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर विभाग में भी काम कर रहे थे। यहाँ तक कि जब बम फेंके जाने से वायसराय लार्ड हार्डिंग घायल हो गए और उन्हें उपचार के लिए देहरादून ले जाया गया तो उनकी सुरक्षार्थ जो प्रबन्ध खुफिया पुलिस का किया गया उस व्यवस्था में एक नाम रास बिहारी बोस का भी था जो सबकी आंखों में धूल झोंक कर समर्पण एवं निष्ठाभाव से देश के प्रति अपना कर्तव्य निभा रहे थे।' परन्तु बाद में जब देखा कि मामला बहुत तूल पकड़ चुका है तो यह विचार कर कि कहीं भेद न खुल जाए रासूदा एकाएक ही बिना किसी को कुछ कहे गायब हो गए।

हार्डिंग बम केस से फरार चल रहे रास बिहारी बोस वर्ष 1914 के प्रारम्भिक महीनों में से किसी महीने बनारस में प्रकट हुए और मिसिर का पोखरा क्षेत्र के एक मकान में रहे। बाद में एक माह से भी अधिक समय तक मदपुरा स्थित स्वनामधन्य क्रान्तिवीर शचीन्द्रनाथ सन्याल के मकान में रहे। रासूदा के लगभग एक वर्ष के बनारस प्रवास के दौरान शचीन्द्र नाथ सान्याल उनके दाहिने हाथ बन गए थे। शचीन्द्र अपनी पुस्तक 'बन्दी जीवन' में लिखते हैं, 'उनके संसर्ग में मैंने जो आनन्द पाया था उसे मैं भूल नहीं सकता। इतने अरसे में मैंने उनको शायद कभी भी दुखी नहीं देखा। हाँ, जिस दिन दिल्ली षड्यन्त्र के मुकद्दमें के फैसले के अनुसार चार व्यक्तियों को पफाँसी का हुक्म हुआ उस दिन एकान्त में उनको अश्रुपात करते देखा था। रासूदा जितने दिन काशी में रहे उतने दिन मैंने भारतवर्ष के भिन्न- भिन्न स्थानों के लोगों को उनसे मिलते देखा था। राजपूताना, पंजाब और दिल्ली से लेकर सुदूर पूर्व बंगाल तक के लोग उनके पास आते थे। वह जब तक काशी में रहे तब तक संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) तथा पंजाब के भिन्न-भिन्न स्थानों में विप्लव केन्द्रों की स्थापना में लगे रहे।'

असाधारण जीवट के धनी थे विप्लवी रासूदा यह सच्चाई उद्घाटित होती है रौलट कमेटी की रिपोर्ट के इस कथन से- 'रास बिहारी देहरादून के वन विभाग में सरकारी नौकरी करने के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर विभाग में भी काम कर रहे थे। यहाँ तक कि जब बम फेंके जाने से वायसराय लार्ड हार्डिंग घायल हो गए और उन्हें उपचार के लिए देहरादून ले जाया गया तो उनकी सुरक्षार्थ जो प्रबन्ध खुफिया पुलिस का किया गया उस व्यवस्था में एक नाम रास बिहारी बोस का भी था जो सबकी आंखों में धूल झोंक कर समर्पण एवं निष्ठाभाव से देश के प्रति अपना कर्तव्य निभा रहे थे।' परन्तु बाद में जब देखा कि मामला बहुत तूल पकड़ चुका है तो यह विचार कर कि कहीं भेद न खुल जाए रासूदा एकाएक ही बिना किसी को कुछ कहे गायब हो गए।

पुलिस की बढ़ती निगरानी के चलते रासूदा चौक मुहल्ले में कोतवाली के निकट एक गुप्त स्थान में रहने लगे। पुलिस ने गिरफ्तारी पर इनाम घोषित किया और चित्र भी काफी प्रसारित किए, लेकिन असफल रही। क्रान्तिकारी संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के कुछ क्षेत्रों विशेषकर बनारस का बहुजातीय नगर होने के कारण उसका उपयोग बंगाल में बने बमों के अस्थायी डिपो, मिलने के स्थान तथा छिपकर रहने के उपयुक्त नगर के रूप में करते थे। 13 नवम्बर 1914 को सायं सात बजे रासूदा अपने घर में बंगाल से आए बमों में से एक की जांच कर रहे थे कि वह धमाके के साथ फट गया। शचीन्द्र की आंख में जबकि आपके बायें हाथ और पांव में गम्भीर चोट लगी। रासूदा के रसोइये के अतिरिक्त सभी क्रान्तिकारी चले गये, आपने एक सदस्य के घर रात काटी। अगले दिन आपने बंगाली टोला के मकान में रहना शुरु कर दिया।

अमेरिका के सान फ्रांसिस्को में गठित गदरपार्टी के बहुत से कार्यकर्ता वर्ष 1914 में पंजाब आ चुके थे जिनका उद्देश्य भारत में सशस्त्र क्रान्ति करना था। रासूदा ने अपने दाहिने हाथ शचीन्द्र नाथ सान्याल को बनारस, पूना के विष्णु गणेश पिंगले को मेरठ, करतार सिंह सराभा को पंजाब और नलिनी सेन मुखर्जी को जबलपुर में संगठन और संचालन के लिए नियुक्त किया और आप स्वयं लाहौर चले गए। सभी क्रान्ति केन्द्रों और सैनिक छावनियों में गुप्त सन्देश द्वारा सूचित कर दिया गया कि वर्ष 1915 के फरवरी मास की 21 तारीख रविवार को महाक्रान्ति की प्रचण्ड ज्वाला जलेगी। हतभाग्य से पहले मूला सिंह और पिफर किरपाल सिंह नामक एक सरकारी जासूस जो सबकी आंखों में धूल झोंक कर दल का सदस्य बना हुआ था के कारण महाक्रान्ति की तिथि सरकार को पता चल गई। शचीन्द्र सान्याल 'बन्दी जीवन' में लिखते हैं- 'इसमें सन्देह नहीं कि सभी बड़े-बड़े आन्दोलनों में सच्चरित्र पुरुषों के साथ-साथ नरपिशाच भी घुस पड़ते हैं। यह आन्दोलनों का दोष नहीं है, हमारे मनुष्य चरित्र का दोष है। शायद लेनिन ने भी कहा था कि प्रत्येक सच्चे बोलशेविक के साथ कम से कम 39 बदमाश और 60 मूर्ख उनके दल में मिल गए थे।' यद्यपि रासूदा ने तिथि बदल कर 19 फरवरी कर दी तथापि उससे पहले ही तेजी से गिरफ्तारियां होने लगीं। महाक्रान्ति की निर्धारित तिथि से पूर्व क्रान्तिकारियों पर छापे और गिरफ्तारियों से क्रान्ति की कमर टूट गई। देशद्रोही एवं

विश्वासघातक किरपाल सिंह के दुष्कर्म ने देश के भाग्य का घटनाचक्र क्रान्तिवीरों व विप्लवियों के दमन, गिरफ्तारियों, काला पानी तथा फाँसियों के काले क्षितिज की ओर बलात् धकेल दिया था। रास बिहारी बोस जो उस समय लाहौर में थे इस अप्रत्याशित विफलता से बहुत निराश हो चुके थे। रासूदा भेष बदलने में बहुत कुशल थे, उन्होंने पंजाबी कपड़े पहने तो किसी पंजाबी लाला की तरह दिखने लगे। बाद में आप क्रान्तिवीर करतार सिंह सराभा के साथ लाहौर रेलवे स्टेशन गए। सराभा ने टिकट खरीदा और आप सुरक्षित बनारस के लिए रवाना हो गए।

शचीन्द्र नाथ सान्याल 'बन्दी जीवन' में लिखते हैं- 'दिल्ली षड्यन्त्र के मामले के बाद रासूदा को पकड़ा देने के लिए साढ़े सात हजार रुपये इनाम की घोषणा की गई थी, उसके एक वर्ष बाद लाहौर षड्यन्त्र के मामले में रास बिहारी का कीर्तिकलाप प्रकाशित हुआ। इसके फलस्वरूप पंजाब सरकार ने उन्हें पकड़ा देने के लिए और अढ़ाई हजार रुपया देने की घोषणा की, अर्थात् उन्हें पकड़ा देने के लिए सब मिलाकर दस हजार रुपया इनाम था और बनारस षड्यन्त्र मामले के बाद संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट ने अढ़ाई हजार इनाम और बढ़ा दिया। तब उन्हें पकड़ा देने का कुल पुरस्कार साढ़े बारह हजार रुपये तक जा पहुँचा। इन सब कारणों से हमने निश्चय किया कि रासूदा को इस बार भारत के बाहर भेजना ही होगा।' रास बिहारी बोस पहले विदेश जाने के विचार से सहमत नहीं थे परन्तु अन्ततः साथियों के अनुरोध को टाल नहीं सके। संयोग से उन्हीं दिनों श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के जापान जाने सम्बन्धी समाचार अखबारों में छपे थे, रासूदा ने स्वयं को पी.एन. टैगोर के नाम से अधिकारियों के साथ बातचीत करते हुए ऐसा प्रदर्शित किया कि वे श्री टैगोर के ही परिवार के हैं और उनकी यात्रा के प्रबन्ध के सिलसिले में जापान जा रहे हैं। उल्लेखनीय है कि पी. एन. टैगोर अर्थात् प्रफुल्ल नाथ टैगोर नाम के श्री टैगोर के एक सम्बन्धी देहरादून के पास एक गांव में रहते थे। इस प्रकार पी.एन. टैगोर के नाम से जापान के लिए नकली पासपोर्ट बनवाकर टिकट खरीदा और किसी को रंचमात्र भी सन्देह नहीं हुआ। जाने से चार दिन पूर्व कलकत्ता की एक कलकलपूर्ण बस्ती में रहने के बाद एक दिन श्रीयुत नगेन्द्रनाथ दत्त उपर्फ गिरिजा बाबू और शचीन्द्र नाथ सान्याल रासूदा को खिदिरपुर के 6 नम्बर डेक पर खड़े जापानी जहाज 'सानुकी मारु' पर चढ़ा आए। यह 12 मई 1915 की बात है जबकि शचीन्द्र नाथ सान्याल ने 'बन्दीजीवन' में स्मृतिभ्रम के कारण अप्रैल 1915 लिखा है। उल्लेखनीय है कि उस समय विप्लवी रास बिहारी बोस को पकड़ने के लिए रखी गई इनाम राशि बढ़ाकर एक लाख रुपये की जा चुकी थी।

रासूदा जापान पहुंच कर अंग्रेजों के भय से मुक्त थे ऐसा न था कि वहां भी अंग्रेज सरकार के जासूस थे। ब्रिटिश सरकार ने जापान की सरकार से आपको पकड़ कर उन्हें सौंप देने को कहा। कुछेक उदारमना एवं सहृदय जापानियों की निस्वार्थ सहायता से आप सात वर्ष तक इधर-उधर छिपते रहे इस बीच 17 बार मकान बदला। अन्ततः एक जापानी लड़की से विवाह करके जापान की नागरिकता प्राप्त कर ली। उत्तर भारत की समस्त भाषाओं के ज्ञाता होने के साथ-साथ आप जापानी अच्छी तरह बोलते और लिखते थे।

संभवतया इस बात का बहुत कम लोगों को पता है कि रासूदा ने जापानी भाषा में 'एशियाई क्रान्ति की व्यापक घड़ियां', 'दलित भारत', 'भारत की पुकार', 'भारत का दुखभरा इतिहास', 'क्रान्ति के मध्य भारत', 'आजादी के लिए संघर्ष', 'भगवदगीता', 'रामायण', 'बोस की अपील' आदि कुल 16 पुस्तकें लिखी थी। आपने वर्ष 1924 में टोकियो में 'इंडियन इंडीपेंड्स लीग की स्थापना की और जापान सरकार को इस बात का विश्वास दिलाने में सफल रहे कि उसके ब्रिटिश विरोधी अभियान में सभी भारतवासी जापान का साथ देंगे। दिसम्बर 1941 में आपने जनरल मोहन सिंह के सहयोग से जापान में आज़ाद हिन्द फौज की स्थापना की थी जिसका मुख्य सेनापति का पद आपने 4 जुलाई 1943 को सुभाषचन्द्र बोस को यह कहते हुए सौंप दिया- 'मैं बूढ़ा हो गया हूँ...यह एक मुझ से भी जवान व्यक्ति का काम है, और सुभाषचन्द्र बोस सौभाग्य से भारत में जो कुछ भी श्रेष्ठ है उसका प्रतिनिधित्व करते हैं।' तत्पश्चात इंडियन इंडिपेंडेस लीग के सभापति पद से त्यागपत्र देकर सुभाषचन्द्र बोस को नियुक्त किया। रासूदा जो अस्थायी आज़ाद हिन्द सरकार के सर्वोच्च परामर्शदाता थे, ने अपने संघर्षपूर्ण जीवन के तत्वज्ञान के सारभूत को 25 अप्रैल 1942 को अंग्रेजी के प्रसि(कवि राबर्ट ब्राउनिंग रचित कविता '-प्रासपिके' की निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया था'-

"I was ever a fighter,
So-one fight more
The best and the last!"
'मैं निरन्तर एक योद्धा था
अतः एक युद्ध और सर्वोत्तम और चरम।' 21 जनवरी 1945 को आपने जापान की भूमि पर ही अन्तिम श्वास ली जिसके वह नागरिक बन चुके थे। जापान राजमहल से भेजे हुए विशेष वाहन पर आपका पार्थिव शरीर ले जाया गया और अशासकीय परन्तु विशिष्ट व्यक्ति हेतु उपयुक्त एवं अपेक्षित सबसे उच्च सम्मान के साथ अन्त्येष्टि की गई। भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष के महान विप्लवी रास बिहारी बोस की जीवन अवधि जो लगभग साढ़े अट्ठावन वर्ष थी में एक अनूठी अनुरूपता ध्यान में आती है कि आपके जीवन का पूर्वार्द्ध भारत में और उत्तरार्द्ध जापान में बीता। जीवन के अन्तिम क्षणों तक भारत की स्वतन्त्रता हेतु संघर्ष करते रहे और संघर्ष करते हुए ही इस संसार से विदा हो गए।

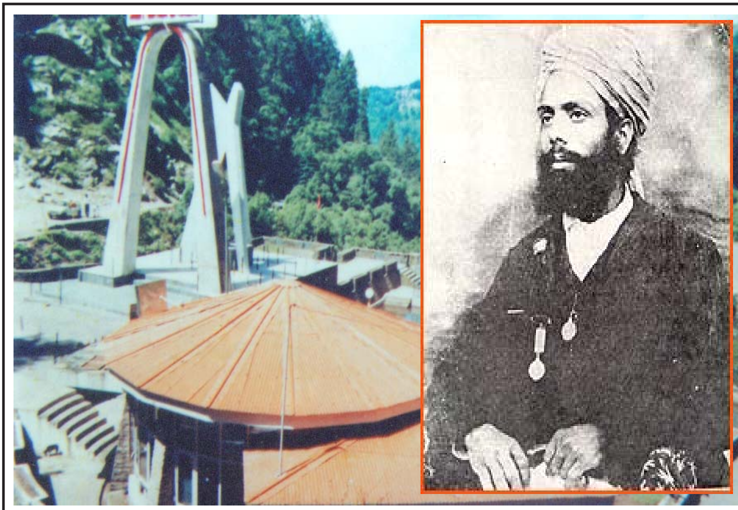
(गिरिराज 8-14 अगस्त, 2012 से साभार)

आलेख

डलहौजी में पूर्ण हुई सरदार अजीत सिंह की प्रतिज्ञा

◆ अशोक सरीन

हिमाचल प्रदेश में डलहौजी खूबसूरत पर्यटन स्थल है। हरियाली का पर्याय यह शहर वर्ष भर सैलानियों से भरा रहता है। यहां सतधारा, पंचपुला, काला टोप, बकरोता की पहाड़ियां, डायनकुंड आदि प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं। डलहौजी घूमने आया सैलानी इन दर्शनीय स्थलों का आनन्द उठाने के अतिरिक्त महान स्वतन्त्रता सेनानी सरदार अजीत सिंह जो भगत सिंह के चाचा लगते थे की समाधि पर श्रद्धासुमन अर्पित करना नहीं भूलता, जिन्होंने अपना सारा जीवन देश की आजादी के लिए न्योछावर कर दिया था। सरदार अजीत सिंह का जन्म 3 पफरवरी, 1881 को जिला जालन्धर के गांव खटकन कला में पिता अर्जुन सिंह और माता जयकौर के घर हुआ था। उन्होंने डीएवी कॉलेज लाहौर से अपनी शिक्षा के साथ-साथ अपने स्वतन्त्र भारत के स्वप्न को लेकर अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों को सक्रिय रखा। सरदार अजीत सिंह अंग्रेजों की आंख की किरकिरी थे। उनकी गतिविधियों पर अंकुश लगाने की नीयत से अंग्रेजों ने उन्हें रंगून जेल में बंद कर दिया। वहां भी उन्होंने अपनी गतिविधियां जारी रखीं।



उन्होंने 40 वर्षों तक ईरान, इटली, ब्राजील आदि देशों में भारत की सेवा की। 40 वर्षों तक देश से बाहर रहने के बाद सन् 1946 में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें स्वदेश बुला लिया। उन्होंने ठहरने के लिए डलहौजी को पसंद किया और वे यहां 'स्प्रिंग हाउस' में रहे।

सरदार अजीत सिंह स्वतन्त्र भारत की भूमि में अपना शरीर त्यागना चाहते थे। इसे चमत्कार ही कहा जायेगा कि विभाजन कमेटी के सदस्यों ने पूरी शक्ति लगाकर जिला गुरदासपुर को पाकिस्तान में शामिल होने से बचा लिया। इस ऐतिहासिक निर्णय में पंडित जवाहर लाल नेहरू, लौह पुरुष सरदार पटेल, न्यायमूर्ति मेहर चंद महाजन जैसे व्यक्तियों की अहम् भूमिका रही।

डलहौजी वासियों को 14 अगस्त, 1947 की वह सुबह आज भी याद होगी, जब इस शहर के गांधी चौक में पाकिस्तान का ध्वज लहरा रहा था और बलोच सेना यहां की सत्ता संभाल चुकी थी। उस समय महान स्वतन्त्रता सेनानी सरदार अजीत सिंह 'स्प्रिंग हाउस' में अपनी जीवन की अंतिम सांसें गिन रहे थे। उन्हें भारत के बंटवारे का गहरा दुःख था। वे नहीं चाहते थे कि वह ऐसे स्थान पर अपने प्राण त्यागें, जो भूमि स्वतन्त्र भारत की न हो। विभाजन कमेटी के सदस्यों ने सरदार अजीत सिंह की अंतिम इच्छा पूरी कर जिला गुरदासपुर को पाकिस्तान में शामिल न होने दिया।

दिन भर मृत्यु एवं जीवन के संघर्ष के बीच रात्रि ठीक बारह बजे जब रेडियो पर समाचार आया कि जिला गुरदासपुर भारत का ही अंग रहेगा, जब सरकार अजीत सिंह ने यह कहते हुए प्राण त्याग दिये कि 'आखिर मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई, मैं आजाद भारत की धरती पर अपने प्राण त्याग रहा हूं।' डलहौजी के पंचपुला में उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया। वहां उनकी स्मृति में एक भव्य स्मारक का निर्माण करवाया गया है। स्थानीय लोग व पर्यटक आज भी इस महान स्वतन्त्रता सेनानी को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं।

प्रथम नवम्बर 1966 को पंजाब राज्य पुनर्गठन से पूर्व जब कुल्लू पंजाब के तत्कालीन जिला कांगड़ा का एक भाग था, लेखक विभागीय ड्रामा इकाई के साथ पहली बार धर्मशाला (ज़िला

कांगड़ा) से ड्रामा शो देने के लिए मनाली से आगे रोहतांग दर्रे के उस समय के आधर शिविर (बेस कैम्प) राहला गए थे। बाद में नवम्बर 1965 से जनवरी 1967 के अपने कुल्लू प्रवास के बीच भी एकाध बार कोठी और राहला तक जाने का अवसर मिला था। वर्ष 1975 में मेरा तबादला ऊना से प्रदेश के जनजातीय ज़िले लाहौल के मुख्यालय केलंग हो गया। इस जनजातीय जिले की पूर्वी सीमा तिब्बत से लगती है जबकि उत्तर दिशा में जम्मू कश्मीर का लद्दाख ज़िला पड़ता है और पश्चिमी एवं दक्षिणी सीमाओं पर चम्बा और कुल्लू ज़िले तथा दक्षिणी पूर्वी सीमा पर प्रदेश का किनौर लगता है।

मनाली-लेह राष्ट्रीय राजमार्ग 21 जो विश्व में सबसे ऊँचा है, पर लाहौल-स्पीति के मुख्यालय केलंग जो समुद्र तल से 10500 फुट की ऊँचाई पर स्थित है, की ओर जाने वाले को रास्ते में धरती के सीने पर गर्व से तने रोहतांग दर्रे जो समुद्र तल से 13050 पफुट ऊँचा है को पार करना पड़ता है। रोहतांग (लाशों का ढेर) दर्रे को पार कर नीचे चन्द्रा नदी के किनारे बसे कोकसर जो घाटी का सबसे ठंडा स्थान है, पहुँचता है। वहाँ से चन्द्रा नदी पार करके बाईं तरपफ वाली सड़क पर सिस्सु, गोंदला, तांदी और वहाँ से दायीं ओर भागा नदी के किनारे बीलिंग होते हुए केलंग पहुँचता है। 23 अगस्त 1975 की प्रातः कुल्लू से मनाली की यात्रा के बाद मैं भी वहाँ से हिमाचल पथ परिवहन निगम की सुबह 7 बजे केलंग जाने वाली बस पर सवार हो गया। मनाली से केलंग तक के 122 कि. मी. लम्बे सफर को 11 घंटे से कुछ अध्कि समय लगा। शाम के छह बजने को थे जब मैं कुली से सामान उठवाकर कार्यालय का एक सहकर्मी श्री पेम्बा वहाँ आ गए जो मुझे अपने साथ अपने घर ले गए।

थकाऊ और उबाऊ यात्रा के कारण खाना खाते ही मैं निद्रा देवी की गोद में समा गया। अगले दिन 24 अगस्त रविवार नहा-धो, खाना आदि खाकर बाद दोपहर दो बजे के लगभग मैं श्री पेम्बा के साथ अपने उच्च अधिकारी श्री के. एल. वैद्य से मिलने के लिए घर से निकला। थोड़ी ही दूर गए थे कि रास्ते पर दाईं ओर बने एक छोटे से पार्क में पत्थर से बने आधर स्तम्भ पर लगी अर्ध प्रतिमा पर मेरी नजर पड़ी। मैंने अपने सहकर्मी से पूछा तो उसने बताया, 'सर! रास बिहारी बोस की मूर्ति है।' मैं हक्का-बक्का रह गया- स्वनामधन्य महान विप्लवी रास बिहारी बोस जो सूत्रधार था वायसराय लार्ड हार्डिंग पर 23 दिसम्बर 1912 को बम फेंकने का, जिसने दिसम्बर 1941 में जापान में आजाद हिन्द पफौज की स्थापना की थी, उसकी प्रतिमा हिमाचल प्रदेश के सुदूर जनजातीय क्षेत्र में, क्या सम्बन्ध था उस महान विभूति और इस क्षेत्र का जैसे प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए मेरे पैर उस और मुड़ गए। आधार स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख को मैं बड़ी हैरत से देख और पढ़ रहा था-

'मैं सैनिक था, सैनिक के नाते एक युद्ध और, अंतिम और सर्वोत्तम।'

विप्लवी महानायक रास बिहारी बोस (25 मई, 1886-21 जनवरी, 1945)

बाद में स्थानीय लोगों से बातचीत में पता चला कि महान विप्लवी कब आए और कहाँ ठहरे बारे खोज और मूर्ति स्थापित करने का श्रेय डिप्टी कमिश्नर श्री एम.एस. मुखर्जी आई.ए.एस. जो 15 अक्तूबर 1966 से 30 जून 1969 तक यहाँ रहे, को जाता है। वर्ष 1913 में अपने केलंग प्रवास के दौरान रास बिहारी केलंग के नम्बरदार टुकटुक के घर पर ठहरे थे। प्रतिमा स्थापित करने हेतु पांच सदस्यीय समिति बनाई गई थी जिसमें डिप्टी कमिश्नर श्री मुखर्जी के अतिरिक्त लै. कर्नल पिरथी चन्द महावीर चक्र विजेता कैप्टन भीम चन्द, वीरचक्र विजेता (दो बार), स्व. श्री ठाकुर देवी सिंह और स्व. श्री निहाल चन्द थे। कलकत्ता के विख्यात मूर्तिकार सुनील कुमार द्वारा बनाई गई प्रतिमा का तत्कालीन राजस्व मन्त्री श्री लाल चन्द प्रार्थी द्वारा 15 अगस्त 1969 को अनावरण किया गया था। दिसम्बर 1912 लार्ड हार्डिंग पर बम फेंके जाने के बाद से पफरार रास बिहारी बोस वर्ष 1914 के किसी शुरुआती महीने में इलाहाबाद में प्रकट हुए थे। बीच की अवधि में वह कहाँ रहे यह एक अनसुलझा रहस्य था जो अब सुलझ गया था।

केलंग में मकान की तलाश में लगभग दो माह इधर-उधर भटकने के बाद सौभाग्य से कुछ ऐसा संयोग हुआ कि जो मिला वह नम्बरदार टुकटुक के पुत्र तेनज़िन द्वारा पुराने मकान के जीर्णो(ार के बाद बनाया गया मकान था। श्री तेनज़िन का निधन वर्ष 1970 के आसपास हो चुका था परन्तु उनकी धर्मपत्नी श्रीमती पलजूम (निधन वर्ष 2007 में) से जब मेरी बातचीत श्रद्धेय श्री बोस बारे हुई तो उन्होंने मुझे बताया कि वह एक संन्यासी के रूप में उनके ससुर के पास ठहरे थे जाने से पूर्व वह एक लोटा, एक कमंडलु और एक छड़ी छोड़ गए थे जो मकान के जीर्णोद्धार के समय मलवे में ही कहीं दब गई। न व्यक्तित्व की महानता और न ही उन द्वारा छोड़ी गई अनमोल वस्तुओं के महत्त्व बारे कुछ ज्ञान था' मुझे भाग्यशाली को लगभग पौने दो वर्ष उस घर में रहने का सुअवसर मिला।

केलंग में रास बिहारी बोस के आगमन के सौ वर्ष पूर्ण होने वाले हैं। इस स्थान पर उनके कदम से हिमाचल की धरा भी गौरवान्वित हुई है।

अब समय आ गया है कि उनकी स्मृति में आगामी वर्ष एक यादगार समारोह आयोजित कर इस महान विभूति को श्रद्धांजलि प्रकट की जा सके। इससे केलंग को स्वतन्त्रता के राष्ट्रीय मानचित्र पर एक अलग पहचान मिलेगी।

(गिरिराज 8-14 अगस्त, 2012 से साभार)

आलेख

पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम के लेखन से कांप उठती थी अंग्रेज सरकार

◆ सतपाल



क्रांतिकारी गीतों, तरानों ने भारतीयों में आजादी का जोश भरा। भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव ने लाहौर जेल में फांसी के तख्ते की ओर बढ़ते हुए अपने लबों से वे तराने गाये जिन्होंने देशवासियों में नया जोश भरा।

'दिल से न निकलेगी मरकर भी वतन की उल्फत
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आएगी।'

इन देशभक्तों की शहादत पर देशभर में आक्रोश फैला। इन राष्ट्र भक्तों की कुर्बानियां अनेकों के लिए प्रेरणा स्रोत बनी। गीत तथा तरानों ने देशवासियों का मनोबल बढ़ाया तथा राष्ट्र भक्ति की नई चेतना जगाई। पहाड़ के निवासियों को भी इन घटनाओं तथा स्वतंत्रता आंदोलन ने प्रेरित किया। 11 जुलाई, 1882 को कांगड़ा जिले के डाडासीबा में लखनु शाह तथा माता रेवती के घर जन्में कांशीराम के मानस पटल पर भी भगत सिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को मिली फांसी ने गहरा प्रभाव डाला। वे इन राष्ट्र भक्तों की फांसी से इतने व्यथित हुए कि आजादी मिलने तक काले वस्त्र धारण करने का प्रण ले लिया। इस प्रतिज्ञा से वे स्याहपोश जनरैल कहलाए। देश स्वतंत्रता सेनानियों का ऋणी है, जिन्होंने अपना सर्वस्व हम सभी के लिए न्योछावर किया। स्वतंत्रता सेनानी कांशीराम ने 13 वर्ष की आयु में अपने माता-पिता को खो दिया। 1905 में कांगड़ा घाटी में आए भूकम्प ने उनके मन पर गहरा प्रभाव डाला। इस त्रासदी में बेसहारा व असहाय लोगों की मदद में उन्होंने सक्रिय भूमिका निभाई।

1919 में जलियांवाला हत्याकांड के उपरान्त उनके भीतर का कवि हृदय जागृत हुआ। उन्होंने महात्मा गांधी के संदेश को अपनी कविताओं व गीतों के माध्यम से पहाड़ी भाषा में प्रसारित किया। पहाड़ी कविताओं और छंदों के माध्यम से ब्रिटिश राज के विरुद्ध देशभक्ति का संदेश फैलाने के लिए 11 बार जेल गये और जीवन के 9 वर्ष जेल में बिताए।

1920 में पहली बार जेल गये। लाला लाजपतराय, लाल हरदपाल, सरदार अजीत सिंह और मौलवी बरकतउल्ला के सम्पर्क में आने के उपरान्त उनके जीवन का लक्ष्य ही बदल गया। 11 नवम्बर, 1922 को जेल से रिहाई मिली लेकिन कविता लिखना नहीं छोड़ा। उनका साहित्य के प्रति प्रेम तथा लेखन के माध्यम से लोगों को अंग्रेजों की यातनाओं का बखान करना निरन्तर जारी रहा। जलियांवाला हत्याकाण्ड के उपरान्त उन्होंने महात्मा गांधी के संदेश को कविताओं तथा गीतों के माध्यम से पहाड़ी भाषा में जन-जन तक पहुंचाया। 1934 में देश की महान कवियित्री एवं स्वतंत्रता सेनानी सरोजनी नायडू ने उन्हें बुलबुल-ए-पहाड़ का खिताब दिया। 1937 में 'पंडित जवाहर लाल नेहरू ने होशियारपुर के गढ़ीवाला में आयोजित कांग्रेस की सभा में नवाजा। उन्हें पहाड़ी गांधी की उपाधि से नवाजा। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने उनके नाम पर डाक टिकट जारी किया। यह डाक टिकट पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम के राष्ट्र के प्रति सेवाओं का सम्मान था। वे लम्बे अरसे तक देश की आजादी के लिए लड़ते रहे। अपनी कविताओं से उन्होंने पहाड़ के निवासियों को जागरूक किया। जब स्वतंत्रता आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था तो 15 अक्तूबर, 1943 को उन्होंने अन्तिम सांस ली। वे भारत को स्वतंत्र होते देख नहीं सके लेकिन उन जैसे देशभक्तों की कुर्बानियों का ही नतीजा है कि देश 15 अगस्त, 1947 को आजाद हुआ। आज की युवा शक्ति तथा आने वाली पीढ़ियों को पहाड़ी गांधी के स्वतंत्रता आन्दोलन में दिए गये योगदान को तरोताजा रखने के लिए सरकार ने उनकी 135वीं जयन्ती पर उनके पैतृक आवास का अधिग्रहण करने का निर्णय लिया है। इस घर के संरक्षण तथा उनकी स्मृति में बनने वाली स्मारक हम सभी को राष्ट्रभक्ति की याद तथा देश सेवा के प्रति सदैव समर्पित रहने का संदेश देगा। वर्तमान प्रदेश सरकार का यह प्रयास सराहनीय है जिसकी प्रशंसा प्रदेश में ही नहीं बल्कि देशभर में हुई है। इस वर्ष स्वतंत्रता दिवस पर हिमाचल प्रदेश सरकार का स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति सम्मान तथा उनकी सेवाओं को अधिमान देने के लिए यह स्मारक एक तोहफा है।

0 82192 12907

आलेख

रानी खैरगढ़ी
एक निडर स्वतंत्रता सेनानी

◆ कृष्ण कुमार नूतन

देश की आजादी के लिए, मानवीय मूल्यों के लिए जिन लोगों ने संघर्ष किया, उन पर हर भारतीय को नाज है। अंग्रेजी हुकूमत ने तो उन्हें गद्दार कहकर एकाध पंक्ति में ही उनका इतिहास समाप्त कर दिया। उस समय के अधिकांश प्रामाणिक दस्तावेज सब नष्ट कर दिए। हजारों देशभक्तों की तरह रानी खैरगढ़ी का इतिहास भी गुमनामी के अंधेरे में धकेल दिया गया। ऐतिहासिक प्रमाण न होने के कारण कोई इतिहास नहीं माना जाता। इतिहास प्रमाण चाहता है और जिस इतिहास के सब प्रमाण नष्ट कर दिए जाएं, उसे कैसे खोजा जाए।



पंजाब के पहाड़ी राजाओं का इतिहास जो दो खंडों में है। इनके लेखक हैं जे. हत्वीशन तथा जे.पी. ए. वोगल। इसका प्रथम संस्करण सन् 1933 में प्रकाशित हुआ था। क्योंकि यह अंग्रेज लेखकों द्वारा लिखित तथा बर्तानिया सरकार द्वारा प्रकाशित है। इसमें मंडी राज्य के इतिहास पर बहुत पृष्ठ भरे हुए हैं। पर उसमें रानी खैरगढ़ी पर एक भी शब्द नहीं है। यहां तक लाहौर बम कांड और गदर पार्टी का भी कोई संकेत नहीं है। मंडी राज्य का इतिहास-लेखक प्रो. मनमोहन एम.ए.। प्रथम बार टाइम्स प्रेस लाहौर से सन् 1930 में छपा। इस इतिहास के पृष्ठ 140 में रानी खैरगढ़ी पर केवल एक पंक्ति है कि रानी खैरगढ़ी ने बालक जोगिंदर सिंह को गोदीपुत्र लिया। जो बाद में मंडी राज्य का राजा बना।

इस एक पंक्ति में इतना तो स्पष्ट होता है कि रानी खैरगढ़ी मंडी के किसी राजा की रानी जरूरी थी। जिसके कोई संतान नहीं थी तभी उसने जोगिंदर सिंह को गोदीपुत्र लिया। वैसे इतिहास में अधिकतर राजाओं के ही नाम आए हैं। कहीं रानियों के नाम भी आए हैं। पर यह सबको मालूम है कि रानी खैरगढ़ी राजा भवानीसेन की रानी थी। इसलिए रानी खैरगढ़ी का इतिहास जानने के लिए भवानीसेन का इतिहास जानना होगा। राजा भवानीसेन राजा विजयसेन के पुत्र थे। उनका जन्म सन् 1883 में हुआ था। राजा विजयसेन की मृत्यु 1903 में हुई थी। अतः सन् 1903 में 20 वर्ष की अवस्था में राजा भवानीसेन ने मंडी राज्य का सिंहासन संभाला। राजा भवानीसेन के विवाहों के वर्णन में लिखा है कि राजा विजयसेन अपने जीवन में ही भवानीसेन का विवाह सुकेत राज्य के मियां सूरतसिंह की दोनों बेटियों से करा गए थे। उनमें एक विवाह के तुरंत बाद मर गई थी दूसरी जीवित थी। 1907 में राज्य प्राप्त के 4 वर्ष बाद राजा भवानीसेन ने एक और शादी की। पर किसके साथ, इसका भी इतिहास में कोई स्पष्टीकरण नहीं है। अतः रानी खैरगढ़ी से ही भवानीसेन ने शादी की इतना भी स्पष्ट करने का इतिहासकार ने कष्ट नहीं किया। क्या कारण रहे होंगे? क्या मजबूरियां रही होंगी? पर फिर भी यह सर्वविदित है कि रानी खैरगढ़ी राजा भवानीसिंह की तीसरी पत्नी थी। राजा भवानीसेन पहाड़ी राजाओं में देखने में सबसे सुंदर था। बचपन में बाप द्वारा कराई गई शादी से वह प्रसन्न नहीं था। अतः राजा की इच्छा पर उत्तर प्रदेश के खैरगढ़ रियासत की राजकुमारी से रिश्ता तय हुआ। खैरगढ़ी का नाम ललिता कुमारी था। वह विवाह सन् 1907 में हुआ जबकि भवानीसेन की आयु 24 वर्ष और ललिता कुमारी अर्थात् रानी खैरगढ़ी की आयु केवल 16 वर्ष थी।

बहुत सी पहाड़ी रियासतें जैसे कुल्लू और कांगड़ा सीधी अंग्रेजी हुकूमत के अंतर्गत आ चुकी थीं। वैसे मंडी राज्य भी 1845 अंग्रेजों के संरक्षण में था। राजा का राज तो था पर उसे चलाते थे अंग्रेजों के एजेंट। वैसे ही मंडी राज्य का सारा कार्य करते थे मिस्टर कारवेट, मिस्टर गार्डनवाकर। वह राजा भवानीसेन को शराब के नशे में धुत रखते थे। पर रानी खैरगढ़ी उनके रास्ते का रोड़ा बनी हुई थी।

वह हालांकि ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी। न ही उसकी इतनी ज्यादा आयु थी। पर उसे हर कार्य में इन अंग्रेज एजेंटों की दखलंदाजी खटकती थी। वह राजा भवानीसेन को बुरी संगत से बचाने का प्रयत्न करती थी। स्वयं राजकाज के काम में हिस्सा लेती थी। वह परदा नहीं करती थी। घोड़े पर बैठकर सारे शहर का चक्कर लगाती थी। लोगों की शिकायतें सुनती थी और स्वयं फैसले करती थी। उसकी इस प्रकार की दखलंदाजी से अंग्रेज एजेंट बहुत नाराज थे। जब राजा भवानीसेन ने भी उनको स्पष्ट कह दिया कि हमारी गैरजाहरी में हमारी रानी राज्य का काम संभालेगी तो सुपरिंटेंडेंट गार्डनवाकर आगबबूला हो गए, पर कुछ कर नहीं सकते थे। अतः उन लोगों ने शराब के नशे में राजा को धीमा जहर (स्लो प्वायजन) देना प्रारंभ कर दिया। जिससे फरवरी, 1912 को राजा भवानीसेन की मृत्यु हो गई। अभी उनकी आयु केवल 29 वर्ष की थी।

खैरगढ़ी चालाक अंग्रेजों की चाल को समझ गई। पर करे तो क्या? राजा भवानीसेन का कोई पुत्र नहीं था। अतः मंडी रियासत को भी कुल्लू और कांगड़ा की तरह सीधे अंग्रेज हुकूमत के अधीन करने की सिफारिश भेज दी गई। मुंशी बृजलाल को रानी खैरगढ़ी जानती थी। वह तथा उपाध्याय जयदेव राजा के पास आते रहते थे। मुंशी बृजलाल ने रानी खैरगढ़ी के संपर्क बने हुए थे। वह उन वृद्ध और कानून के अनुभवी बृजलाल से सलाह-मशवरा करती रहती थी। मुंशी बृजलाल ने रानी खैरगढ़ी को सलाह दी कि वह किसी को अपना गोदीपुत्र घोषित करके उसे राज्य का उत्तराधिकारी बना दे। फिर वह अंग्रेजों से भी कानूनी लड़ाई लड़ लेंगे। मुंशी बृजलाल के कहने पर रानी खैरगढ़ी ने मियां किशन सिंह के लड़के जोगिंदर सिंह को गोदीपुत्र ले लिया। उसी दिन जोगिंदर सिंह को मंडी राज्य का उत्तराधिकारी भी घोषित कर दिया। उस समय जोगिंदर सिंह की आयु केवल आठ वर्ष छः महीने थी। वह स्कूल में पढ़ रहा था।

गार्डनवाकर उस घोषणा से बहुत सिटपिटाया पर मंडी पर मंडी रियासत की फौज जोगिंदर सिंह के पिता मियां किशन सिंह के कमांड में थी। गार्डनवाकर उस रस्म-अदायगी को रोक न सका। गोदीपुत्र लेने का अधिकार राजाओं की परंपरा में है इस तर्क को अंग्रेजी हुकूमत काट न सकी। रानी खैरगढ़ी मंडी राज्य को अंग्रेजों की गहरी साजिश से बचाने में सफल रही। पर अंग्रेजों के एजेंट जो इस रियासत के कामकाज चलाने के लिए नियुक्त थे, वह खैरगढ़ी की सब चालें नाकामयाब करने में प्रयत्नशील थे।

28 अप्रैल सन् 1913 को रानी खैरगढ़ी का गोदीपुत्र जोगिंदर सिंह विधिवत मंडी की राजगद्दी का उत्तराधिकारी घोषित किया गया। खैरगढ़ी को राजमाता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पर मिस्टर गार्डनवाकर तथा जी.एफ. स्ट्रीकलैंड जो उस समय मंडी रियासत के सुपरिंटेंडेंट तथा वजीर के रूप में बर्तानिया सरकार की ओर से नियुक्त थे। उनको यह सब अपनी पराजय-सा लग रहा था। वह रानी खैरगढ़ी को हर प्रकार से नीचा दिखाना चाहते थे क्योंकि राजा भवानीसेन के समय जब राज्य की बागडोर उसके हाथ में थी तो वह उनके साथ साधारण नौकरों जैसा व्यवहार करती थी।

उस समय के एक प्रत्यक्षदर्शी ने बताया कि वर्तमान चांदनी जो सेरी बाजार में बनी है जहां राज्य का खुला दरबार लगता था। उस स्थान पर रानी खैरगढ़ी द्वारा बालक जोगिंदर सिंह को मंडी की राजगद्दी का उत्तराधिकारी घोषित करने के लिए एक सार्वजनिक समारोह किया गया था।

उस समय के एक प्रत्यक्षदर्शी ने बताया कि वर्तमान चांदनी जो सेरी बाजार में बनी है जहां राज्य का खुला दरबार लगता था। उस स्थान पर रानी खैरगढ़ी द्वारा बालक जोगिंदर सिंह को मंडी की राजगद्दी का उत्तराधिकारी घोषित करने के लिए एक सार्वजनिक समारोह किया गया था। हर बार अंग्रेजों के एजेंट इस ताक में रहते थे कि किस प्रकार अब रानी खैरगढ़ी को किसी जाल में फंसाया जाए। रानी खैरगढ़ी अपने राज्य में अंग्रेज एजेंटों की दखलंदाजी सहने को तैयार नहीं थी। हालांकि वह ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी। पर लगता है इतिहास में उसकी गहरी रुचि थी।

हर बार अंग्रेजों के एजेंट इस ताक में रहते थे कि किस प्रकार अब रानी खैरगढ़ी को किसी जाल में फंसाया जाए। और इधर रानी खैरगढ़ी अपने राज्य में अंग्रेज एजेंटों की दखलंदाजी सहने को तैयार नहीं थी। हालांकि वह ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी। पर लगता है इतिहास में उसकी गहरी रुचि थी।

इधर अपना देश 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को भूला नहीं था। देश को अंग्रेजों के चंगुल से आजाद कराने के लिए देश के नौजवान तड़प रहे थे। कई योजनाएं बन रही थीं। सन् 1868 में नामधारी सिखों के कूका आंदोलन ने क्रांति की उस दबी चिनगारी को फिर प्रज्वलित किया। 16 अक्तूबर, 1905 को लॉर्ड कर्जन द्वारा बंगाल के टुकड़ने करने की घोषणा से बंगाल में अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत की आग भड़क उठी। बंगाल के नौजवान एक बार फिर 1857 की भांति अंग्रेजों से टकराने के लिए भारतीय फौज और हथियारों का सहारा ढूंढ रहे थे।

पंजाब के कुछ नौजवान नौकरियों की तलाश में अमेरिका, कनाडा आदि स्थानों में गए थे, वहां लाला हरदयाल, भाई परमानंद आदि ने युगांतर आश्रम में गदर पार्टी की स्थापना की थी। जो भारतवर्ष को आजाद कराने के लिए कई योजनाओं को स्वरूप दे रहे थे। अप्रैल 1913 को विधिवत गदर पार्टी का चुनाव किया गया जिसमें सोहन सिंह माखाना, प्रधान; लाला हरदयाल, जनरल

सेक्रेटरी, पं. कोशी राम, कोषाध्यक्ष आदि पदाधिकारी चुने गए थे।

मंडी राज्य से भी भाई हरदेव नौकरी की तलाश में विदेश गए थे। अमेरिका में हरदयाल के संपर्क में आने से गदर पार्टी के सदस्य बन गए थे। बाद में हरदेव का ही नाम स्वामी कृष्णानंद पड़ा। स्वामी कृष्णानंद और मंडी के भाई हिरदाराम भी गदर पार्टी के प्रमुख कार्यकर्ता थे। इनके जिम्मे मंडी के राजघराने से सहायता की प्राप्ति तथा डोगरा रेजीमेंट को अंग्रेजों के विरुद्ध करके गदर पार्टी में लान था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि रानी खैरगढ़ी का संबंध इसी गदर पार्टी से था। जो अपनी पूरी शक्ति के साथ देश को अंग्रेजी दासता से मुक्ति दिलाने के लिए प्रयत्नशील था।

प्रो. मनमोहन द्वारा लिखित मंडी राज्य के इतिहास, पृष्ठ 144 पर वे लिखते हैं। मंडी राज्य षड्यंत्र केस -- जो मंडी राज्य षड्यंत्र केस के रूप में जाना जाता है। पर इस केस का सीधा संबंध पंजाब तथा उसके आस-पास के क्षेत्र के क्रांतिकारी आंदोलन से था जो सन् 1914-15 में हुआ। पंजाब की खुफिया विभाग की सूचना के अनुसार यह सूचना दी गई कि मंडी राज्य में गदर पार्टी के कार्यकर्ता गतिशील हैं। खोज की गई। दिसंबर, 1914 से जून, 1915 में ये षड्यंत्रकारी इस प्रयत्न में थे। उनका उद्देश्य सुपरिंटेंडेंट तथा स्टेट के दूसरे ऑफिसरों को मारना, स्टेट के खजाने को लूटकर सब पैसा तथा हथियार पंजाब के ग्रुप को पहुंचाने का था। पर वह पंजाब गुप्तचर विभाग की सूचना पर पकड़े गए। उन पर मुकदमा चला। सुनवाई के बाद मियां जवाहर सिंह को फांसी की सजा तथा शेष को 14 साल की सजा दी गई। कुल पांच व्यक्तियों को सजा हुई।

यह सब मनमोहन द्वारा लिखित इतिहास में लिखा है। इतिहास की इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि मंडी स्टेट में गदरपार्टी का विशेष संगठन कार्यरत था। पर मंडी स्टेट में गदरपार्टी के संगठन, उनमें कार्य करने वालों की सूची और कार्यपद्धति की सूचना इस इतिहास में नहीं मिलती। इतना तो स्पष्ट होता है कि जहां 7 महीने, दिसंबर 1914 से जून, 1915 तक क्रांतिकारी कार्य कर रहे हों। वह कोई छोटा कार्य नहीं हो सकता। इसमें मियां जवाहर सिंह के अतिरिक्त और चार व्यक्ति कौन थे? किसको क्या-क्या सजा मिली? कौन-कौन सी धारा उन पर लगी? कैसा-कैसा केस चला?

पर इतिहास इतना तो माना है कि उस समय मंडी स्टेट के सुपरिंटेंडेंट मिस्टर गार्डनवाकर और जी.एफ. स्ट्रीकलैंड को मारने की योजना थी। तथा मार्च 1915 को मिस्टर एमरसन सुपरिंटेंडेंट बनकर आए थे या उसको मारने की योजना थी। इसमें गदर पार्टी वालों का क्या हित था। उनको तो अपनी पार्टी के कार्य के लिए पैसा और हथियार चाहिए थे। स्पष्ट है कि रानी खैरगढ़ी ऐसा चाहती थी इसलिए इस षड्यंत्र में उसी का हाथ था। इतिहास पृष्ठ 143 के अनुसार लिखा है कि वह ऐतिहासिक तथ्य की कुछ फाइलें देखना चाहते थे। पर मिस्टर एमरसन ने उनको बताया कि मंडी स्टेट के न्यायालयों और दफ्तरों में 10 जनवरी, 1906 को रात के समय भयंकर आग लगी थी जिसमें सब कुछ स्वाहा हो गया। वह पिछला कोई भी रिकार्ड दिखाने में असमर्थ हैं।

भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा नवंबर, 1985 में प्रकाशित हिमाचल के स्वतंत्रता सेनानी इतिहास के अनुसार, 'गदर पार्टी' के कुछ सदस्य जिन्होंने पंजाब में अपनी गतिविधि चला रखी थी, मंडी सुकेत में थे। उन्होंने 'गदर की गूंज', 'गदर संदेश', 'एलानेजंग' आदि के अंश लोगों को पढ़कर सुनाए तथा अपने प्रभाव में लिया। मियां जवाहर सिंह तथा रानी खैरगढ़ी इनके संपर्क में आए और इन्हें आर्थिक रूप में सहायता दी। इस क्रांति में मंडी के भाई हिरदाराम ने उल्लेखनीय भाग लिया। रासबिहारी बोस, डॉ. मथरा सिंह, करतार सिंह, भाई परमानंद आदि के विश्वासपात्र बनकर इन्होंने अमृतसर, लाहौर आदि स्थानों में गदर पार्टी में सक्रिय कार्य किया। सन् 1914 तथा 1915 में क्रांतिकारियों की बैठकें हुईं तथा मंडी राज्य के सुपरिंटेंडेंट तथा वजीर को मारने, खजाना लूटने, व्यास का पुल उड़ाने, मंडी सुकेत को हथियाने की योजना बनी, किंतु नागचला डकैती के अलावा वे कुछ करने में सफल नहीं हो पाए। पांच व्यक्तियों को बंदी बनाया गया। रानी खैरगढ़ी को मंडी से निष्कासित कर दिया गया।

इन पंक्तियों से तो स्पष्ट होता है कि यह मंडी-सुकेत स्टेटों को अंग्रेजों से हथियाना चाहती थी। यह तो अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ ऐलाने-जंग था। गदर पार्टी के भाई हिरदाराम जो इसी केस में 14 वर्ष अंडमान जेल में काटकर आए थे। लेखक ने रानी खैरगढ़ी के जीवन के बारे में पूछा। उन्होंने इस बात की पुष्टि की कि रानी खैरगढ़ी ने ही मंडी में सारी योजना बनाई थी।

रास बिहारी बोस तथा गदर पार्टी के सदस्यों को उसी ने मंडी स्टेट में बुलाया था। मंडी में ही सनयारगढ़ी का जंगल मंडी के साथ ही लगता है। इसी जंगल में गदर पार्टी के रासबिहारी बोस ने बम बनाए थे। धन की सारी व्यवस्था रानी खैरगढ़ी करती थी। पर हमारी ही पार्टी के एक गद्दार ने सारा भेद खोल दिया था। उसमें खैरगढ़ी को जिलावतन कर दिया गया था।

इसके बाद रानी खैरगढ़ी कहां गईं मुझे मालूम नहीं क्योंकि मुझे अंडमान भेज दिया गया था। जब मैं वहां से छूटकर आया था। उस समय तक रानी खैरगढ़ी मर चुकी थी।

इसके बाद गदर पार्टी से संबंधित स्वामी कृष्णानंद जी ने लेखक को बताया कि रानी लाहौर बम कांड से तो मेरा संबंध नहीं था। पर मैं गदर पार्टी का सदस्य था। उस समय मैं शंघाई, हांगकांग में, वहीं गदर पार्टी का काम करता था। 4 अगस्त, 1914 को इंग्लैंड और जर्मन के विरुद्ध विश्व युद्ध छिड़ गया। मुझे उस समय भारतीय सेना विशेषकर, कांगड़ा की डोगरा रेजिमेंट में बगावत पैदा करने के लिए भेजा गया था। भाई हिरदाराम के

कविता

नमन

स्वाधीनता के लिए
सर पर बांधे कफन
जिन्होंने अपना सब किया अर्पण
तोड़ पराधीनता के बंधन
सौंप दिया हमें प्यारा वतन
ज्ञात अज्ञात जाने पहचाने
उन वीरों को हमारा नमन
तैनात रात दिन
सीमा प्रहरी को नमन
जनसेवियों को नमन
परोपकारी को नमन
कोटि कोटि नमन !



ऐसी चले मदमस्त पवन
चहुं दिशा हो चैनोअमन
बरसें घुमड़ घुमड़ मेघ घन
मिटे सबकी हृदय तपन
घुलमिल जाएं सब एक रंग
आए न ऐसा शब्द अधर
जो पैदा करे भीतर चुभन
जलाए तन बदन
भीगे न किसी के नयन
हो न चेहरे पर शिकन !!

ऐसा हो चलन....
न हो मूल्यों का पतन
और
मर्यादाओं का हनन
ऐसी लागे लगन
इक दूसरे के सुख दुख में मगन !!!

अहम् की आहुतियां डाल
ऐसा करें बड़ा हवन
निर्मल हृदय सोच नूतन
विचारों का सृजन
बुराइयों का शमन
सद्‌भावनाओं की कदर
सबका हो मान सम्मान
मिले स्नेह अभिनंदन
तिरंगा चूमे सदा गगन
खिलखिल जाए भारत चमन !! !!

– अश्वनी कुमार
मो. 0 94180 85095

साथ-साथ मेरे वारंट थे। पर मैं भेष तथा नाम बदलकर सिंध में कार्यरत रहा तथा इतना तो जानता हूं कि रानी खैरगढ़ी के बारे में जो भाई हिरदाराम ने बताया बस इतना ही मुझे मालूम है।

नारायण, भानजा मुंशी बृजलाल ने इसके बारे में बहुत जानकारी दी। वह मियां किसनसिंह के यहां काम करते थे जो उस समय मंडी स्टेट की फौज के कमांडर थे।

राजा जोगिंदर सिंह जिसे रानी खैरगढ़ी गोदीपुत्र लिया था। उनका भी यही कहना था कि जब रानी खैरगढ़ी को जिलावतन का आदेश मिला था। मैं उस समय बहुत छोटा था। अतः उस समय की सही घटना का तो ज्ञान नहीं? पर इतना स्पष्ट पता चल गया था कि रानी साहिबा खैरगढ़ी को जिलावतन किया गया है।

उन्होंने बताया कि जब मैं लाहौर से अपनी पढ़ाई समाप्त करके आ रहा था। रास्ते में मुझे मुंशी बृजलाल मिले। उन्होंने मुझे सारी घटना बताई। मैं मुंशी बृजलाल को ही अपना पिता समझता था क्योंकि मैं उनके ही घर में रहता था। उनकी गोद में पला था। यह भी पता था कि उन्होंने ही मुझे गोदीपुत्र बनाने के लिए खैरगढ़ी को राजी किया था। मैंने उनकी सजा कम कराई। और उनको मंडी वापलस ले आया था। उसके बाद रानी खैरगढ़ी के बारे में मेरी जिज्ञासा बढ़ी। राजा जोगिंदर सेन ने बताया कि मुंशी बृजलाल के साथ रानी खैरगढ़ी का पत्र-व्यवहार था। वही एक बार मुझे इनसे मिलाने के लिए ले गए थे। राजा साहब ने बताया कि वह रानी खैरगढ़ी की सजा कम करवाकर 1943 में मंडी ले आए थे। पर अकस्मात् निमोनिया के कारण उनकी हरनाला जोगिंदर नगर में ही मृत्यु हो गई थी।

90/8, शक्ति कुटीर, बाजार भूतनाथ, मंडी,
हिमाचल प्रदेश-175 001

(इतिहास साक्षी है पुस्तक से साभार)

आलेख

वीर सेनानी भाई हिरदा राम

◆ कृष्ण चंद्र महादेविया



गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए हिमाचल वासी भी किसी से उन्नीस नहीं रहे हैं। हिमाचलियों ने एक तरफ अंग्रजों के पिट्ठू देशी राजाओं से व दूसरे सीधे अंग्रेजों से टकर ली। तरह-तरह के अत्याचार सहकर भी हिमाचल के आजादी के मतवाले अपनी राह से नहीं डिगे। परिणामतः 15 अगस्त 1947 को हिन्दोस्तान से अंग्रेजी हुकूमत खत्म हुई।

अंग्रेजों से टकराने वाले इन्हीं वीरों में से एक देश भक्त थे। श्री हिरदा राम जी। इनका जन्म मण्डी में 28 नवम्बर 1885 में एक सुनार परिवार में हुआ था। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण वे उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाये किन्तु स्वाध्याय, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा निरंतर मानसिक विकास किया। भारत के क्रांतिकारियों की गदर पार्टी के अखबारों 'गदर की गूंज' ऐलाने जंग, हिन्दुस्तान हमारा है, नीम हकीम खतरा ए जान, लैंड एण्ड लिबर्टी, आदि अखबारों-पुस्तकों ने इनमें आजादी कि चिन्गारी पैदा कर दी। सान फ्रांसिस्को अमेरिका से लौटे श्री हरदेव जो बाद में स्वामी कृष्णा नंद के नाम से मशहूर हुए ने इन्हें आजादी के अर्थ को समझाया तो उन्होनें गदर पार्टी में शामिल होने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

गदर आंदोलन के प्रमुख प्रेरक और क्रांतिकारी लाला हरदयाल थे। पंडित परमानंद, पण्डित जगत राम, पृथ्वी सिंह, भाई कोर सिंह जैसे देशभक्तों ने सन् 1915 में सिंगापुर में ब्रिटिश भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया था। ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, रूस, जर्मनी आदि कई देशों ने गदर पार्टी की गूंज सुनी जाती थी। भारतव ा के क्रांतिकारी संसार के लिए आदर्श बनते जा रहे थे। श्री हिरदा राम को श्री हरदेव ने अमृसर भिजवाया जहां वे क्रांतिकारियों में शामिल हो गए। और बम बनाने का काम सीखा। क्रांतिकारियों में श्री हिरदा राम अत्यंत लोक प्रिय हुए। क्रांतिकारी रास बिहारी बोस, भाई परमानंद, करतार सिंह सराभा, जैसे क्रांतिकारी इस हिमाचली पुत्र का बहुत सम्मान करते थे। अमृतसर के अतिरिक्त लुधियाना, लाहौर आदि में इन्होंने बम बनाए। अन्य क्रांतिकारियों की खोज के साथ अंग्रेजी पुलिस इन के भी पीछे पड़ गई। किसी गद्दार के कारण अंग्रेजों को बम बनाने के गुप्त अड्डों का पता चल गया। फरवरी सन् 1915 को भाई हिरदा राम पकड़ लिए गए। उस वक्त मण्डी रियासत के धार टिब्बा में श्री जवाहर सिंह तथा अन्य द्वारा बम बनाए जाते थे। श्री साधु राम उन बमों को क्रांतिकारियों के पास पहुंचाते थे। मण्डी की रानी ललिता उन्हें धन से सहायता करती थी। छापे पड़ने पर ये क्रांतिकारी भी गिरफ्तार हुए। 30 जुलाई सन् 1915 को चौदह गवाहों के बयान पर इन्हें मृत्यु दण्ड की सजा सुनाई गई। इनकी पत्नी की अपील पर मृत्यु दण्ड उम्रकैद में बदल दी गई। और इन्हें खतरनाक सेलुलर जेल अण्डेमान भेज दिया गया। क्रूर यातनाओं के लिए यह जेल कुख्यात थी। यहीं वीर सावरकर से इनका सम्पर्क हुआ और उनकी विचारधारा मानने लगे।

सन् 1929 में उम्र कैद काटकर घर आए तो मण्डी रियासत की पुलिस पीछे पड़ी रहने लगी। बाद में अंग्रेजों और देशी राजाओं के खिलाफ जो भी आन्दोलन हुए उन वीरों ने भाई हिरदाराम से प्रेरणा प्राप्त की। मण्डी रियासत के स्वामी पूर्णानंद और सुकेत रियासत के श्री रत्न सिंह उन्हीं में से थे। जेल से रिहा होने के बाद हिरदा राम आजादी का मंत्र युवकों में फूंकते रहे। अन्ततः देश आजाद हुआ। 21 अगस्त 1965 को शिमला में श्री हिरदा राम सदा के लिए अमर्त्यभुवन को चले गए। ऐसे अमर सेनानियों पर समस्त देशवासियों को गर्व है। धन्य है भारत मां के ऐसे सुपुत्र।

डाकघर महादेव, सुन्दरनगर, जिला मण्डी, हिमाचल प्रदेश-175018, मो. 0 86791 56455

शिव वर्मा के संस्मरणों में भगत सिंह

भारत की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले महान क्रांतिकारी असाधारण रूप से क्षमतावान लोग थे। वे भी आज की पीढ़ी तथा आने वाली पीढ़ियों के लिए अपने विचार हमें दे गए हैं। उनके लिखे पत्र, पुस्तकें हमारे गौरवमय इतिहास का उल्लेख करती है। उनके साथियों ने भी जेल से छूटने के उपरांत इन महान शख्सीयतों पर संस्मरण लिखे।

ऐसे ही भगत सिंह के साथ थे शिव वर्मा, जब भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव को फांसी दी गई, तब क्रांतिकारी शिव वर्मा को आजीवन कारावास की सजा हुई। 22 फरवरी, 1946 तक जेल में रहे। उनके 25 वर्ष जेल में बीते। उन्होंने अपने संस्मरणों में भगत सिंह के बारे में लिखा है। हम भगत सिंह के विचार पाठकों से साझा कर रहे हैं।



वाणी और लेखनी के धनी

प्रचार के दो मुख्य साधन हैं, वाणी तथा लेखनी। भगत सिंह का दोनों पर समान अधिकार था। आमने-सामने की बातचीत में कुशल होने के साथ ही वह अच्छा वक्ता भी था। नौजवानों तथा विद्यार्थियों के बीच मैजिक लैण्टर्न पर उसके भाषण तो विशेष रूप से लोकप्रिय थे और कलम का धनी तो वह था ही। हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और अंग्रेजी पर उसका समान अधिकार था। उन दिनों कामरेड सोहन सिंह 'जोश' अमृतसर में 'कीर्ति' नाम से गुरमुखी तथा उर्दू में एक मासिक पत्रिका निकालते थे। भगत सिंह उसमें नियमित रूप से लिखता था। विभिन्न नामों से कीर्ति' में क्रान्तिकारी शहीदों की जो जीवनियां प्रकाशित हुईं थी उनमें से अधिकांश भगत सिंह की ही कलम की देन थीं। अंग्रेजी में लिखे हुए उसके लेख, अदालती वक्तव्य, पत्र, पर्चे आदि उसकी सशक्त शैली के प्रमाण हैं। नौजवान भारत सभा' के घोषणा पत्र का अंग्रेजी मसविदा भगवतीचरण ने भगत सिंह के साथ मिलकर 1928 में तैयार किया था। भाषा, शैली तथा देश के उस समय के राजनैतिक स्तर को देखते हुए विचारों की परिपक्वता की दृष्टि से उस घोषणापत्र का आज भी एक ऐतिहासिक महत्व है। असेम्बली में बम फेंकने के बाद पकड़े जाने पर अदालत में उसने जो बयान दिया था वह तो उसी समय एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का दस्तावेज बन गया था।

उसे पढ़ने-लिखने का भी बेहद शौक था। वह जब भी कानपुर आता तो अपने साथ दो-चार पुस्तकें अवश्य लाता था। बाद में फरार जीवन में जब उसके साथ रहने का अवसर मिला तो देखा कि पिस्तौल और पुस्तक का उसका चौबीस घंटे का साथ था। मुझे ऐसा एक अवसर याद नहीं पड़ता जब मैंने उसके पास कोई न कोई पुस्तक न देखी हो।

1923-24 में भगत सिंह के पिता उसका विवाह करने पर तुल गए थे। पिता की जिद से बचने के लिए वह भाग कर कानपुर चला आया। कुछ दिन दिल्ली भी रहा। उन दिनों उसकी स्थिति अधिक खराब थी, फिर भी उसने किताबों का साथ नहीं छोड़ा।

भगत सिंह को सौंदर्य, संगीत तथा कला से भी बेहद प्यार था। आगरा केंद्र पर जब कभी सुखदेव आ जाता तो दोनों राजनीति, साहित्य और कला के बारे में खूब बातें करते और एक-दूसरे में खो जाते थे।

आजादी का अर्थ

भगत सिंह ने हमें आजादी का मतलब बताया। उससे पहले क्रांतिकारियों का उद्देश्य था मात्र देश की आजादी। लेकिन

आजादी का अभिप्राय क्या है? क्या अंग्रेज वायसराय को हटाकर उसके स्थान पर किसी भी भारतीय को रख देने से आजादी की समस्या का समाधान हो जाएगा? क्या समाज में अधिक असमानता और उस पर आधारित मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के बरकरार हैं । आजादी का उपभोग कर सकेंगे? आजादी के बाद की सरकार की और भावी समाज की रूपरेखा क्या होगी आदि प्रश्नों को सरदार भगत सिंह ने क्रान्तिकारियों के बीच उठाया। उसका कहना था कि? राजनैतिक आजादी की लड़ाई लक्ष्य की ओर केवल पहला कदम है और अगर हम वहीं पर जाकर रुक गए तो हमारा अभियान अधूरा ही रहा। सामाजिक एवं आर्थिक आजादी के अभाव में राजनैतिक आजादी न बहुमत द्वारा थोड़े से व्यक्तियों को चुनने की ही आजादी होगी। जगह-जगह की पार्टियों का संगठन किया। बंगाल से अनुशीलन, जब से गदर पार्टी और यू. पी. से प्रजातन्त्र संघ इन सब के सहयोग से भगत सिंह देशव्यापी संगठन कायम करना चाहता था। दिल्ली मीटिंग का नेतृत्व सिंह ने ही किया और उसके सुझाव पर समाजवाद को दल का घोषित लक्ष्य स्वीकार कर हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ को बदलकर हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ कर दिया गया।

भारत की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले महान क्रांतिकारी असाधारण रूप से क्षमतावान लोग थे। वे भी आज की पीढ़ी तथा आने वाली पीढ़ियों के लिए अपने विचार हमें दे गए हैं। उनके लिखे पत्र, पुस्तकें हमारे गौरवमय इतिहास का उल्लेख करती है। उनके साथियों ने भी जेल से छूटने के उपरांत इन महान शख्सीयतों पर संस्मरण लिखे। ऐसे ही भगत सिंह के साथ थे शिव कुमार, जब भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव को फांसी दी गई, तब क्रांतिकारी शिव वर्मा को आजीवन कारावास की सजा हुई। 22 फरवरी, 1946 तक जेल में रहे। उनके 25 वर्ष जेल में बीते। उन्होंने अपने संस्मरणों में भगत सिंह के बारे में लिखा है। हम भगत सिंह के विचार पाठकों से साझा कर रहे हैं।

भगत सिंह और साथियों ने बम बनाने का कारखाना स्थापित करने का निश्चय किया। धन की आवश्यकता के कारण लाहौर के पंजाब नेशनल बैंक को लूटने की योजना बनाई गई परन्तु योजना सफल होने से पहले ही साइमन कमीशन का विरोध करते हुए लाला लाजपतराय आहत हुए और उनका देहान्त हो गया। इस घटना से सारे देश में क्रोध की लहर दौड़ गई। चारों ओर क्षोभ का वातावरण फैल गया। बदले की भावना सारे देश में छा गई और ठीक एक महीने बाद भगत सिंह और राजगुरु ने लाहौर पुलिस के केन्द्रीय दफ्तर से निकलते हुए साण्डर्स (डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस) को गोली मार दी। इस काम में, जयगोपाल और चन्द्रशेखर आजाद ने सहायता की और दोनों को भागने में मदद की। साण्डर्स को मारकर लालाजी की मृत्यु का बदला ले लिया गया। इस घटना से प्रायः सभी लोगों को बड़ी राहत मिली और इस दल की सुरक्षा के लिये कांग्रेसी नेताओं ने चिन्ता व्यक्त की।

मनुष्य जीवन को पवित्र समझा : राष्ट्र के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये लाला जी के हत्यारे को मारना आवश्यक है- यह प्रस्ताव भगत सिंह का ही था। फिर भी साण्डर्स की हत्या के बाद कई दिनों तक उसका मन बड़ा उद्वेलित सा रहा। वह क्रांतिकारी था किन्तु रक्त का प्यासा न था। उसका उद्देश्य तो समस्त मानवता को सुखी बनाना था और इस नाते मनुष्य मात्र के प्राणों से मोह भी स्वाभाविक था। क्रान्तिकारी हत्यारे नहीं थे, वे मानवता के पुजारी थे, इस सम्बन्ध में दिल्ली असेम्बली पर बम फेंकने के बाद जो पर्चे बांटे गए उनमें कहा था .... 'हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति और स्वतंत्रता का अवसर मिल सके। हम इन्सान का खून बहाने की अपनी विवशता पर दुःखी हैं। परन्तु क्रान्ति द्वारा सबको समान स्वतंत्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण समाप्त कर देने के लिए क्रान्ति में कुछ न कुछ रक्तपात अनिवार्य है। लेकिन मानवता को प्यार करने में हम किसी से पीछे नहीं हैं।

हाईकोर्ट के सामने क्रान्ति की परिभाषा देते हुए भगत सिंह ने कहा - 'क्रान्ति संसार का नियम है, वह मानवीय प्रगति का रहस्य हैं, क्रान्ति का उद्देश्य कुछ व्यक्तियों का रक्तपात नहीं, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की प्रथा को समाप्त कर इस देश के लिए आत्म-निर्णय का अधिकार प्राप्त करना है।

शरीर कांटा हो गया : 10 जुलाई 1926 को जब हमारा केस आरम्भ हुआ तो भगत सिंह भूख हड़ताल पर था। उसे असेम्बली केस में आजीवन कारावास की सजा हो चुकी थी और अब राज के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने के अभियोग में हमारे साथ उस पर दुबारा केस चलना था। खाना छोड़े उसे एक महीने से ऊपर हो चुका था फिर भी वह अदालत में आया। उसे देखकर सबकी आंखों में आंसू आ गये। वह हमारा पहले वाला भगत सिंह नहीं था, जिसका खूबसूरत, स्वस्थ एवं बलिष्ठ शरीर हमारे बीच चर्चा का विषय बना रहता था। निरन्तर जेल यातनाओं और लम्बी भूख-हड़ताल ने उसके बलिष्ठ शरीर को कांटा बना दिया था। उस सबके बाद भी उसने 'अदालत के सामने हमारी सफाई नीति क्या होनी चाहिए' पर बहस में भाग लिया और निर्णायक की भूमिका अदा की। उसका कहना था कि गिरफ्तारी के बाद सब कुछ समाप्त नहीं हो गया है। उसने कहा 'जो लोग छूट सकते हैं उन्हें छुड़ाने का पूरा प्रयास करते

हुए हमें अपने केस को एक राजनैतिक उद्देश्य से राजनैतिक ढंग से लड़ना चाहिए।' वह अदालत को क्रान्तिकारी आदर्श के प्रचार के साधन के रूप में इस्तेमाल करने का पक्षपाती था। साथ ही वह यह भी चाहता था कि हम लोग अदालत में तथा जेलों में राजनैतिक बन्दियों के अधिकार के लिए अनवरत संघर्ष करें।

सरदार की इन बातों का सभी साथियों ने समर्थन किया। बाकी साथियों ने भी भगत सिंह और दत्त द्वारा उठाई गई मांग के लिए भूख हड़ताल आरम्भ कर दी। वह भूख हड़ताल 63 दिन तक चली। अन्त में फैसले का दिन भी आ गया। भगत सिंह को फांसी की सजा होगी इसके लिए हम पहले ही तैयार थे। फिर भी उसे सुनकर मेरे सिर में चक्कर आ गया। कल तक जो अनुमान था वह यथार्थ बनकर सामने आ रहा था।

अंतिम भेट : सजा के बाद हमें भी बोस्टल जेल से हटाकर केन्द्रीय कारागार में कर दिया गया। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु नये हातों में थे और हम लोग पुराने में। एक रात अचानक हमारी कोठरियों के ताले खुले और हमसे चलने के लिए कहा गया। जेल का बड़ा दरोगा अपने दलबल के साथ हमें लेकर फाटक की ओर चला। कुछ दूर जाकर उसने पूछा, 'अपने साथियों से मिलोगे? उदारता के लिए धन्यवाद पाकर उसने हमें उनकी कोठरियों के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया।

जिन्दगी में दोबारा यह साथी देखने को नहीं मिलेंगे। इस विचार से सबके चेहरे उदास थे। उनसे अन्तिम विदाई लेकर जब हम लोग चलने लगे तो हममें से एक ने भगत सिंह से पूछा, 'सरदार, तुम मरने जा रहे हो। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हें इसका अफसोस तो नहीं है?' प्रश्न सुनकर पहले तो सरदार ठहाका मार कर हंसा फिर गम्भीर होकर बोला, 'क्रान्ति के मार्ग पर कदम रखते समय मैंने सोचा था कि यदि मैं अपना जीवन देकर देश के कोने-कोने तक 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा पहुंचा सका तो मैं समझूंगा कि मुझे अपने जीवन का मूल्य मिल गया। आज फांसी की इस कोठरी में लोहे की सींखचों के पीछे बैठकर भी मैं करोड़ों देशवासियों के कण्ठों से उठती हुई उस नारे की हुंकार सुन सकता हूं। मुझे यह विश्वास है कि मेरा यह नारा स्वाधीनता संग्राम की चालक शक्ति के रूप में साम्राज्यवादियों पर अन्त तक प्रहार करता रहेगा।' फिर कुछ रुक कर अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट के बीच उसने आहिस्ते से कहा, 'और इतनी छोटी जिन्दगी का इससे अधिक मूल्य हो भी क्या सकता है ?'

मैं सबसे पीछे था। विदाई लेते समय मेरी आंखों में आंसू आ गये। मुझे रोते देखकर उसने कहा, 'भावुक बनने का समय अभी नहीं आया है। मैं तो कुछ ही दिनों में सारे झंझटों से छुटकारा पा जाऊंगा, लेकिन तुम लोगों को लम्बा सफर करना पड़ेगा। मुझे विश्वास है उत्तरदायित्व के भारी बोझ के बावजूद इस लम्बे अभियान में तुम थकोगे नहीं, परास्त नहीं होंगे और हार मानकर रास्ते में बैठ नहीं जाओगे। 'यह कहकर उसने सींखचों के अन्दर से हाथ बढ़ाकर मेरा हाथ पकड़ लिया। सरदार से वह हमारी आखिरी मुलाकात थी।

और फिर 23 मार्च 1931 को सन्ध्या समय-सरकार ने उनसे सांस लेने का अधिकार छीनकर अपनी प्रतिहिंसा की प्यास बुझा ली। अन्याय और शोषण के विरुद्ध विद्रोह करने वाले तीन और तरुणों की जिन्दगियां जल्लाद के फन्दों ने समाप्त कर दीं।

जिन्दगी में दोबारा यह साथी देखने को नहीं मिलेंगे इस विचार से सबके चेहरे उदास थे। उनसे अन्तिम विदाई लेकर जब हम लोग चलने लगे तो हममें से एक ने भगत सिंह से पूछा, 'सरदार, तुम मरने जा रहे हो। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हें इसका अफसोस तो नहीं है?' प्रश्न सुनकर पहले तो सरदार ठहाका मार कर हंसा फिर गम्भीर होकर बोला, 'क्रान्ति के मार्ग पर कदम रखते समय मैंने सोचा था कि यदि मैं अपना जीवन देकर देश के कोने-कोने तक 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा पहुंचा सका तो मैं समझेंगा कि मुझे अपने जीवन का मूल्य मिल गया। आज फांसी की इस कोठरी में लोहे की सींखचों के पीछे बैठकर भी मैं करोड़ों देशवासियों के कण्ठों से उठती हुई उस नारे की हुंकार सुन सकता हूं। मुझे यह विश्वास है कि मेरा यह नारा स्वाधीनता संग्राम की चालक शक्ति के रूप में साम्राज्यवादियों पर अन्त तक प्रहार करता रहेगा।' फिर कुछ रुक कर अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट के बीच उसने आहिस्ते से कहा, 'और इतनी छोटी जिन्दगी का इससे अधिक मूल्य हो भी क्या सकता है ?'

आलेख

क्रांतिकारी योद्धा : इंद्रपाल

◆ डॉ. ब्रह्म दत्त शर्मा

पंडित इंद्रपाल का जन्म 5 अप्रैल, 1905 को कांगड़ा जिले के नादौन में पं. हरिराय के घर हुआ। उस वक्त यह क्षेत्र पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों के तहत आता था। इंद्रपाल के जन्म पर कांगड़ा का भीषण भूकंप आया, जिससे इंद्रपाल के परिवार को भी कठिनाई के दौर से गुजरना पड़ा। इंद्रपाल के पिता, पूजा-पाठ तथा पंडिताई कर अपना गुजर-बसर करते थे। वे गांव के आस-पास होने वाले मेलों में भी छोटी-मोटी दुकान लगाया करते थे ताकि अपने परिवार का गुजारा कर सकें। इंद्रपाल का बचपन का नाम मंगत राम था। इंद्रपाल की मां धार्मिक प्रकृति वाली थीं। वे गांव के देवालय में तुलसी रामायण का पाठ करती थीं तथा सत्संग का भी आयोजन करने में अग्रणी रहती थीं। पंडित परिवार ने घर के आंगन में शिवलिंग की स्थापना तथा बेल का वृक्ष लगाया हुआ था। मां की मृत्यु होने पर घर पर पहाड़ गिर गया। उस वक्त छोटा भाई भगत राम अठारह माह का था। जबकि बहन कमला देवी का विवाह बाल्यकाल में कर दिया था। बहन ने ही 18 माह के भाई को पाल पोस कर बड़ा किया।

इंद्रपाल के जन्म से पूर्व दो बच्चे पैदा हुए थे जिनकी मृत्यु होने के कारण उसके जन्म पर उसे लालन-पालन के लिए गांव की एक घिरथ परिवार को सौंपा गया। बड़ा होने पर उसे घर लाया गया तथा स्कूल भेजा गया। इंद्रपाल बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि का था। उसने देहरा गोपीपुर से मिडल की परीक्षा पास की। उस वक्त जिला कांगड़ा से मात्र चार छात्रों को ही छात्रवृत्ति मिलती थी। इंद्रपाल भी छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाले चार छात्रों में से एक थे। मिडल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इंद्रपाल बनी में अध्यापक भी रहे। उन्होंने चौकी तथा बैनी-बाधी में भी पढ़ाया। शिक्षक की नौकरी छोड़ कर इंद्रपाल गुप्त रूप से कहीं चले गए जिस बारे परिवार तथा साथियों को चार वर्ष तक कुछ ज्ञान न हुआ।

वे कांगड़ा से लाहौर आ गए। जहां एक घर में नौकरी की। उसके साथ हलवाई की दुकान पर नौकरी की। बाद में वे एक कातिब मास्टर नंद लाल के शिष्य बन गए।

क़ातिब का कार्य सीख कर एक समाचार पत्र में नौकरी की। वर्ष 1925 में रावलपिंडी की सनातन धर्म सभा के आग्रह पर उर्दू साप्ताहिक 'सुदर्शन चक्र' से संबद्ध हुए और रावलपिंडी में रहने लगा।

वे दिन भर कार्य करते और शाम को लंबी पैदल यात्रा पर जाते और रात को घर लौटते। उनकी यह दिनचर्या सर्द ऋतु में भी जारी रहती जब लोग घरों से निकलना पसंद नहीं करते थे। वे एक यात्री की तरह रहना पसंद करते थे। वे सादा जीवन जीते तथा धन संचय के विरोधी थे। वे गरीबों में धन को बांटने में आदी थे। वे अपने साथियों को समानता की दृष्टि से देखते थे तथा उनकी खुशी तथा गम में शरीक होते थे। उनमें सच्चाई, कर्तव्य परायणता तथा आदर्श जीवन जीने का मादा कूट-कूट कर भरा था, जिसे उन्होंने अपनी मां के आदर्शों से ग्रहण किया था।

वे रावलपिंडी से लाहौर आ गए तथा वहां उर्दू दैनिक पत्र भीष्म से जुड़े। कुछ देर तो कार्य ठीक चला लेकिन प्रबंधन द्वारा अपने श्रमिकों को वेतन न देने पर प्रबंधन के खिलाफ आंदोलन छेड़ा। आंदोलन सफल हुआ तथा प्रबंधन को श्रमिकों की मांगों को सहर्ष स्वीकार करना पड़ा।

इस आंदोलन से पहाड़ का युवा, श्रमिकों का नेता बन गया। उस समय उर्दू पत्रों में संवाददाताओं की दयनीय स्थिति थी। उसने भीष्म के संवाददाताओं का संघ बनाया तथा प्रबंधकों से लेखकों को उसकी लेखकीय क्षमता के अनुरूप वेतन देने पर मजबूर किया। उसने अन्य साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रों में भी इसे लागू करने की आवाज उठाई और सफलता हासिल की।

उस वक्त इंद्रपाल राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित हुए। वे भगत सिंह द्वारा गठित नौजवान भारत सभा के जलसों तथा सत्रों में भाग लेने लगे। इंद्रपाल की बहन कमला लाहौर में रहती थीं तथा उसके पति पंजाब सचिवालय में अनुवादक के पद पर तैनात थे। उसी दौरान उन्हें पिता के निधन का समाचार मिला। वे 1928 में अपने पैतृक गांव आए तथा दोनों भाइयों दीना नाथ व भगत राम को लाहौर ले आए और स्कूल में भर्ती करवाया।

उस वक्त स्वतंत्रता आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था। लाहौर में अंग्रेजों की बर्बरता के दृश्यों से इंद्रपाल का मन दहल उठता था तथा मन में अंग्रेजों से बदला लेने की ललक जगी।

इंद्रपाल ने मंजिलें आजादी पुस्तक तथा कुछ पुस्तिकाएं प्रकाशित की और उन्हें आम जन में बांटा।

यशपाल जो उस वक्त एक महान लेखक थे। वे लाहौर में इंद्रपाल से भेंट करने जाया करते थे। वे महान क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद तथा भगत सिंह के संगठन 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' में जुड़ गए। यशपाल इस संगठन के लिए धन एकत्रित करने जाते तथा इंद्रपाल उनका इस कार्य में सहयोग करते। उन्होंने यशपाल से आग्रह किया कि वे उन्हें स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रियता से भाग लेने का मौका दें।

एक दिन यशपाल ने इंद्रपाल से दिल्ली चलने को कहा। लेकिन उसे चेताया कि जिस कार्य के लिए वे जा रहे हैं, उसमें उनके छोटे भाइयों को नुकसान हो सकता है।

इंद्रपाल ने उत्तर दिया कि वे मातृभूमि के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हैं। वे क्रांतिकारी विचारधारा को नहीं छोड़ेंगे, चाहे उन्हें अपने भाइयों का भविष्य ही दाव पर क्यों न लगाना पड़े। उसने अपने दोस्त को भाइयों का खयाल रखने को कहा और आश्वासन मिलने पर दिल्ली रवाना हो गया।

इंद्रपाल ने दिल्ली में आकर अपना हुलिया बदला। वे एक साधू के वेश में दिल्ली के तुगलकाबाद किले के पास बदरपुर में रहने लगे। वे दिन में हिरण की खाल पर बैठते। शरीर पर भस्म लगाते। वे वहां रहकर अपने साथियों के साथ तत्कालीन वायसराय लॉर्ड इर्विन की गाड़ी को बम से उड़ाने की योजना बना रहे थे। इंद्रपाल को इस योजना का कार्य सौंपा गया क्योंकि वे हर कार्य को करने में दक्ष होते थे।

दिल्ली में उनके पास ग्रामीणों का तांता लगा रहता था। वे उनके प्रवचन सुनते तथा वे लोगों को विभूत देकर उनके कष्टों का निवारण का ज्ञान देते।

वे उस स्थान पर लगभग पंजचालीस दिनों तक रहे। अपनी योजना के अनुसार यशपाल ने घटना से एक दिन पूर्व दो बम, बिजली की तारें तथा कुछ अन्य विस्फोटक सामग्री लाकर दी। क्रांतिकारियों ने 27 अक्तूबर, 1929 द्वारा भारतीयों को अधिक अधिकार देने के आश्वासन से क्रांतिकारियों ने अपनी योजना को टाल दिया।

23 दिसंबर, 1929 को दिल्ली किले के पास यशपाल, इंद्रपाल, भगवती चरण तथा लेख राम जाट एकत्रित हुए ताकि रेल पटरी को बम से उड़ाया जा सके जिसमें मथुरा से वायसराय, दिल्ली की ओर आ रहे थे। क्रांतिकारियों की योजना विफल हुई। हालांकि दो फुट पटरी उड़ गई। ट्रेन में दीप चंद घायल हुआ लेकिन वायसराय बच गए। वायसराय को इस घटना की खबर दिल्ली पहुंच कर लगी।

इंद्रपाल, अगले दिन लाहौर पहुंच गए। वहां उनकी बहन ने इंद्रपाल की शादी करवाने का प्रस्ताव रखा। उसने पहले इनकार किया लेकिन परिवार के दबाव में उसे विवाह करना पड़ा। विवाह उपरांत वे क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़े रहे। क्रांतिकारियों ने एक अन्य योजना बनाई जिसके तहत सरदार भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दास को जेल से छुड़ाना था। इस कार्य के लिए इंद्रपाल को चुना गया। इस योजना के लिए महान क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद अनेक बार लाहौर आए और इंद्रपाल के पास रुके। भगत सिंह व उनके साथियों को एसेंबली में बम फेंकने के जुर्म में लाहौर सैंट्रल जेल में रखा हुआ था। उन पर सांडरस की हत्या का भी आरोप था। सांडरस हत्या के अन्य आरापियों को लाहौर की दूसरी जेल में रख गया था। क्रांतिकारियों ने योजना बनाई कि जब भगत सिंह व साथियों को जेल से ले जाया जा रहा होगा तो वे हमला कर उन्हें छुड़वा लेंगे। लेकिन इस योजना से पहले बम बनाते वक्त क्रांतिकारी भगवती चरण के हाथ में बम फट गया और वे 28 मई, 1930 को शहीद हो गए। क्रांतिकारियों की योजना असफल हुई और क्रांतिकारी लाहौर छोड़कर चले गए।

अंग्रेजों ने क्रांतिकारियों को हिरासत में लेने के लिए गुप्तचरों को तैनात किया। पुलिस ने 26 अगस्त, 1930 को इंद्रपाल तथा 40 क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया। अंग्रेजों ने क्रांतिकारियों

उस वक्त इंद्रपाल राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित हुए। वे भगत सिंह द्वारा गठित नौजवान भारत सभा के जलसों तथा सत्रों में भाग लेने लगे। इंद्रपाल की बहन कमला लाहौर में रहती थीं तथा उसके पति पंजाब सचिवालय में अनुवादक के पद पर तैनात थे। उसी दौरान उन्हें पिता के निधान का समाचार मिला। वे 1928 में अपने पैतृक गांव आए तथा दोनों भाइयों दीना नाथ व भगत राम को लाहौर ले आए और स्कूल में भर्ती करवाया। उस वक्त स्वतंत्रता आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था। लाहौर में अंग्रेजों की बर्बरता के दृश्यों से इंद्रपाल का मन दहल उठता था तथा मन में अंग्रेजों से बदला लेने की ललक जगी। इंद्रपाल ने मंजिलें आजादी पुस्तक तथा कुछ पुस्तिकाएं प्रकाशित की और उन्हें आम जन में बांटा।

लघुकथा

उफान पर नदी

देवराज डटवाल

सरिता और साहिल को व्हाट्सअप पर चैटिंग करते दो महीने हो चुके थे। साहिल जब-तब उसे मिलने को कहता लेकिन सरिता 'फिर कभी' का बहाना लगाकर टाल जाती लेकिन आज साहिल ने सरिता से आखिर मिलने का समय ले ही लिया। सरिता ने भी ढेर सारी शर्तें उसके समक्ष रख दी थी," देखिए, आप मुझसे एक उचित दूरी बनाए रखेंगे और हाँ ... हम कहीं सार्वजनिक जगह पर ही मिलेंगे।"

साहिल को उसकी शर्तें मंजूर थी लेकिन इसके साथ ही उसने उसे अपनी बाइक पर चलने को राजी कर लिया ।

दोनों बाइक पर बैठे बतियाते हुए खुशी खुशी चलते जा रहे थे। न कोई मंजिल थी न ठिकाना बस चलते ही जा रहे थे।

सफर कटने के साथ-साथ दोनों के बीच की दूरी भी घटती गई व वे लगभग एक दूसरे से चिपक कर ही बैठे थे।

कल कल करती सरिता निरन्तर बहती जा रही थी। वे आकर एक पार्क में रुक गये।

"चलो सरिता उस ओर बैठते हैं", साहिल ने फूलों की ओट की तरफ इशारा करते हुए कहा।

दोनों बाँहों में बाहें डाले उस तरफ चल दिये।

पलभर में ही बरसाती बादल झमाझम बरसने लगे और नदी में उफान आ गया। नदी अब अपने तटबंधों को तोड़ने पर आमादा थी। दोनों अपनी सुधबुध भूल चुके थे। एकाएक साहिल उठा," सरिता, उठो अब देर हो चुकी है। चलो, अब घर जल्दी।"

रा व मा पा सुखार तहसील नूरपुर
जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176051
मो. 0 78072 71358

को कठोर यातनाएं दीं। पुलिस ने इंद्रपाल को सरकारी गवाह बनाने के लिए दबाव बनाया। उसकी पत्नी तथा ससुर पर दबाव डाला गया।

उसने अपने साथियों को छुड़ाने के लिए सरकारी गवाह बनने की पेशकश पुलिस से की। इस पर पुलिस वाले प्रसन्न हो गए। लेकिन उसने क्रांतिकारी साथियों को आघात पहुंचा। लेकिन ट्रिब्यूनल के समक्ष इंद्रपाल ने अलग ही बयान दिया और कहा कि जिन्होंने इस घटना को अंजाम दिया है वे तो पहले ही फरार हो गए हैं। उसके बाद इस कार्य से उसके साथी तो छूट गए लेकिन उसे पुलिस की यातनाएं सहनी पड़ीं। इंद्रपाल का मामला व बयान छह माह तक चला। उसने घटना की व्याख्या तो की लेकिन क्रांतिकारियों ने नाम बदल दिए। लेकिन इस मुकदमे के दौरान सरकारी वकील ने उसे फंसाने की बहुत कोशिश की लेकिन इंद्रपाल की याद्दाश्त, सूझबूझ से वे अपने बयानों पर कायम रहा।

इंद्रपाल के बयान के उपरांत सरदार गुलाब सिंह तथा उसके भाई अमरीक सिंह को मृत्युदंड के स्थान पर उम्रकैद की सजा हुई। इंद्रपाल द्वारा स्वयं जुर्म कबूलने पर उसे 20 साल की सजा हुई। उसे कड़ी सुरक्षा तथा कोठरी में रखा गया। उसने जेल में रहते हुए कैदियों पर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई। अनशन किया। उसकी सेहत दिन प्रति दिन बिगड़ती गई। इसी दौरान इंद्रपाल को अधरंग का दौरा पड़ा। डाक्टरों के दल ने इंद्रपाल के स्वास्थ्य को देखते हुए रिहाई की सिफारिश की। इंद्रपाल की पत्नी जगदेश्वरी देवी ने महात्मा गांधी को अपने पति की रिहाई के लिए पत्र लिखा। मृत्युशैया पर पड़े इंद्रपाल को जेल से रिहा किया गया। लेकिन पत्नी की सेवा तथा दृढ़ इच्छा शक्ति से वह ठीक हो गए। लाहौर में तिबिया कॉलेज के प्रधानाचार्य हकीम मोहम्मद हसन कुरैशी ने इंद्रपाल का उपचार किया। स्वस्थ होने पर इंद्रपाल वीर भारत के संपादक मंडल से जुड़े।

देश का बंटवारा होने पर वे कांगड़ा जिले के नादौन आ गए। वहां रहकर उन्होंने पुस्तक लिखी जिसमें दहेज प्रथा तथा समाज में फैली कुरीतियों का बखान किया। सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध सह उनका एक स्वतंत्रता सेनानी जैसा कार्य था।

कुछ वक्त अपने पैतृक निवास स्थान पर रहने के उपरांत वे दिल्ली आ गए। 30 जनवरी, 1948 को गांधी जी की हत्या पर उन्हें गहरा आघात पहुंचा। उन्हें फिर पक्षाघात का दौरा पड़ा। वे एक माह तक इरविन अस्पताल में उपचाराधीन रहे। 23 अप्रैल 1948 को उनका देहांत हो गया। पहाड़ के इस सूरमा ने हर भारतीय का सर गर्व से ऊंचा किया। वे जीवन भर मातृभूमि की सेवा के लिए जीया। आजाद भारत में सांस ली। लेकिन आजादी के उपहारों का लुत्फ न ले सका। एक निडर, जांबाज योद्धा सा जीवन व्यतीत किया। एक साधारण परिवार से संबंधित इंद्रपाल आज भी समाज के लिए प्रेरणास्रोत बने हैं।

(**अनुवाद : विवेक शर्मा, मो. 0 98171 14806**)

संदर्भ

Saga of A Revolutionary Hero Pt. Inder Pal a freedom fighter written by Dr. Bhraham Dutt Sharma and translated by Dr. Vinod Chopra Smaj Dham Prakashan Mehatpur, Himachal Pradesh

आलेख

कोई किल्ला पठाणिया खूब लड़ेया

◆ रमेश चंद्र 'मस्ताना'

भारतवर्ष को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करवाने के लिए कई सपूत-शूरवीरों ने अपनी जान की बाजी लगाकर अथवा प्राण हथेली पर रखकर जो-जो अथक प्रयास किए तथा असहनीय यातनाएं झेलीं, वह सभी इतिहास के पन्नों में स्वर्ण-अक्षरों के साथ आज भी शोभायमान हो रही हैं। सन् 1857 के व्यापक प्रयासों को भले ही बीसवीं सदीके छठे-सातवें दशक तक कुछ-एक तथाकथित अंग्रेजी इतिहासकारों अथवा अंग्रेजों के लाडले व्यक्तियों के द्वारा एक गदर अथवा विद्रोह के गलत नाम से व्याख्यायित किया जाता रहा है परंतु सच्चे अर्थों में यह स्वाधीनता संग्राम का वह प्रथम विस्फोट अथवा एक विशाल ज्वाला थी, जिसका असफल प्रयास देश के नौजवानों अथवा सैनिकों ने किया था। सन् 1857 की यह क्रांति भारत माता की स्वतंत्रता हेतु वह प्रथम प्रयास या संग्राम था, जिसकी पृष्ठभूमि में उससे भी बहुत पहले की वह चिंगारियां शामिल थीं, जो धीरे-धीरे देश के विभिन्न भागों में सुलग रही थीं और अंग्रेज जिनसे भयभीत व परेशान भी थे तथा उनको अपने सत्ता के दल-बल से दबाने-कुचलने का भी हरसंभव प्रयास कर रहे थे। पूर्व की इन चिंगारियों को एक विस्फोटक ज्वाला का रूप प्रदान करने में हिमाचल प्रदेश के (तत्कालीन नूरपुर रियासत) वासा नामक गांव के वजीर परिवार से संबंध रखने वाले अदम्य साहसी व वीर सपूत राम सिंह पठानिया का नाम प्रमुखता के साथ लिया जाता है। दस अप्रैल सन् 1824 ई. में नूरपुर रियासत के वजीर शाम सिंह पठानिया और इंदौरी देवी के घर पर राम सिंह पठानिया का जन्म हुआ था। शाम सिंह पठानिया नूरपुर रियासत के राजा वीर सिंह 1846 ई. में स्वर्ग सिधारे, उस समय उनके बेटे जसवंत सिंह की आयु मात्र लगभग दस वर्ष की थी। उसी समय क्योंकि पंजाब के शासक महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के उपरांत सिखों और अंग्रेजों में युद्ध छिड़ गया और इस लड़ाई के उपरांत सतलुज एवं रावी नदियों के बीच का क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन आ गया। मार्च 1846 में अंग्रेजों की इस जीत के उपरांत लाहौर में हुई संधि के अनुसार कांगड़ा क्षेत्र की समस्त रियासतों के साथ-साथ कुल्लू, लाहौल-स्पीति, मंडी, सुकेत और चंबा अंग्रेजी सरकार के अधीन हो गए। बाद में अंग्रेजों ने शिमला के शासकों की तर्ज पर मंडी, सुकेत व चंबा के राजाओं को तो राज्य लौटा कर स्वायत्तता प्रदान कर दी परंतु कांगड़ा, कुल्लू और लाहौल स्पीति की समस्त रियासतों पर अपना प्रभुत्व व अधिकार और भी मजबूत करना प्रारंभ कर दिया। इसी मध्य अंग्रेजों ने नूरपुर रियासत के नाबालिग राजा जसवंत सिंह को उत्तराधिकारी मानने से इनकार कर दिया और लाहौर के अंग्रेजी गवर्नर जनरल के एजेंट सर हेनरी लारेंस ने इस सिलसिले में नूरपुर आकर जसवंत सिंह को बीस हजार रुपये वार्षिक पेंशन के निर्धारण की घोषणा करके उन्हें नूरपुर रियासत छोड़ने की शर्त रखी।

इस शर्त पर जब रियासत के लोगों ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए इसका विरोध किया तो हेनरी लारेंस ने चिढ़कर जैसे ही बीस हजार को कम करके पांच हजार ही देने की घोषणा की, उसी समय रामसिंह का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुंच गया और क्रोध व आवेश के कारण उनकी आंखों में विरोध की ज्वाला का खून उतर आया। उस समय क्योंकि नूरपुर रियासत की वार्षिक आय ही लगभग आठ-दस लाख से कम नहीं थी और साथ में नाबालिग राजा के निष्कासन की शर्त थी, इसलिए राम सिंह ने अंग्रेजी हुकूमत से लोहा लेने और उनसे दो-दो हाथ करने की प्रतिज्ञा कर ली। राम सिंह पठानिया ने जम्मू क्षेत्र की पहाड़ियों से अंग्रेजों के विरुद्ध विचारधारा रखने वाले युवकों के साथ-साथ अपनी रियासत के युवकों की लगभग पांच-सौ जवानों की सेना का गठन किया और कांगड़ा के राजा प्रबोध चंद, जसवां के राजा उमेदचंद एवं उसके पुत्र जय सिंह, दातारपुर के राजा जगत चंद, ऊना के सिख गुरु बाबा बिक्रमा सिंह बेदी और गुलेर के राजा शमशेर सिंह आदि से भी सहयोग की अपील की। अपनी पूरी तैयारी के साथ राम सिंह पठानिया ने 14 अगस्त 1848 को रात्रि के समय शाहपुर- कंडी दुर्ग पर हल्ला बोल दिया। इस अचानक के युद्ध में कई अंग्रेज सैनिक मारे गए और जो बच गए वह अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुए। इस बात की खबर ज्योंही आग की तरह फैली राम सिंह पठानिया को बधाई देने वालों का तांता लग गया और पंद्रह अगस्त को प्रातः ही राम सिंह पठानिया ने दुर्ग पर अधिकार जमा कर अपना झंडा फहरा किया। इसी के साथ-साथ

ढोल बजा कर यह मुनादी करवा दी कि सिख महाराज दिलीप सिंह सर्वोच्च शक्ति हैं और आज से अंग्रेजी हुकूमत नूरपुर रियासत से खत्म कर दी गई है। आज से नूरपुर रियासत के राजा जसवंत सिंह हैं और मैं (राम सिंह पठानिया) उसका वजीर हूं। वास्तव में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पंद्रह अगस्त 1848 को शाहपुर कंडी के दुर्ग पर किया गया कब्जा और ध्वजारोहण, राजा जसवंत सिंह की ताजपोशी और राम सिंह पठानिया की वजीर के रूप में स्व-घोषणा भारतवर्ष की स्वतंत्रता की प्रथम सफल जंग और उपलब्धि कही जा सकती है।

शाहपुर-कंडी के दुर्ग पर कब्जे की सफलता से जहां नूरपुर रियासत और जम्मू के क्षेत्रों में प्रसन्नता की लहर छा गई, वहां जिन-जिन रियासतों के राजाओं ने राम सिंह के आग्रह को स्वीकार कर सहायता प्रदान की थी, उनके उत्साह में भी वृद्धि होने लगी। दुर्भाग्यवश यह प्रसन्नता ज्यादा दिन तक नहीं टिक सकी और कुछ दिनों के उपरांत ही कमिश्नर हेनरी लारेंस और कांगड़ा के डिप्टी कमिश्नर बार्नस अपने फौजी दस्तों के साथ शाहपुर-कंडी पहुंचे और आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण कुछ दिन चला परंतु दुर्ग के भीतर रसद की कमी हो जाने के कारण राम सिंह पठानिया को यह दुर्ग छोड़ना पड़ा। रातोरात भाग करके मऊ-कोट के जंगलों से राम सिंह पठानियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध छापामार लड़ाई प्रारंभ कर दी और सिख सेना के जत्थों तथा गोला-बारूद के बल पर वजीर राम सिंह पठानिया ने पुनः अंग्रेजी सेना को वहां से भगाकर एक बार पुनः दुर्ग पर कब्जा कर लिया। वजीर राम सिंह पठानिया की इस शूरवीरता और विजय का ही यह प्रभाव हुआ कि कांगड़ा दुर्ग में तैनात अंग्रेजी सेना डर के मारे पठानकोट की ओर भाग खड़ी हुई। जसवां के राजा उमेद सिंह, दातारपुर के राजा जगत सिंह और ऊना के सिख गुरु बाबा बिक्रमा सिंह बेदी ने दातारपुर से रोपड़ तक संपूर्ण घाटी में विद्रोह की आग को भड़काते हुए अपनी-अपनी रियासतों की अंग्रेजों से मुक्ति तथा आज़ादी की घोषणा कर दी। कांगड़ा के कटोच राजा प्रमोद चंद ने अपनी सेना के साथ अपने पूर्वजों के किले सुजानपुर-टिहरा पहुंचकर इक्कीस तोपों की सलामी के साथ क्षेत्र के लोगों को यह बता दिया कि उनका राजा पुनः स्थापित हो गया है और उन्होंने अपना ताज पहन लिया था। इस घटना के उपरांत यहां तक कहा जाता है कि रियाह के दुर्ग पर कब्जा करने पर कांगड़ा के डिप्टी कमिश्नर बार्नस ने एक दूत के माध्यम से दुर्ग को खाली करने का संदेश भिजवाया। उत्साहित राजा प्रमोद चंद ने उस दूत के सिर का मुंडन करवा दिया और वापिस यह संदेश भेजा कि अंग्रेजों की भलाई इसी में है कि वह पूरे त्रिगर्त प्रदेश को तुरंत खाली कर दें।

जनवरी, 1849 में वजीर राम सिंह पठानिया ने एक बार फिर से अंग्रेजों से विद्रोह करते हुए सिख सेना की दो रेजीमेंटों का साथ पाकर शाहपुर-कंडी से उत्तर-पूर्व की ओर 'डल्ले की धार' पर मोर्चा संभाला। अंग्रेजों को जब इसका पता चला तो कमिश्नर लारेंस ने जनरल व्हीलर के नेतृत्व में एक सेना की टुकड़ी भेजकर 'कुमणी-रे-पैल' नामक स्थान पर पड़ाव डाला और युद्ध करते हुए वजीर राम सिंह पठानिया को तीन ओर से घेर लिया। राम सिंह पठानिया ने इतना होने पर भी साहस नहीं छोड़ा और अपनी चंडी तलवार से शत्रुओं को मारता-काटता चला गया। इसी बीच पीछे से अंग्रेजी सेना की एक और टुकड़ी आने से अंग्रेजों का हौसला बढ़ गया और उन्हें विजय की आशा दिखलाई देने लगी। इसी बीच महारानी विक्टोरिया के संबंधी और तत्कालीन प्रधानमंत्री सर राबर्ट पील का भतीजा ले. जॉन पील अति उत्साहित होकर तथा विजय की अभिलाषा में पुरस्कार प्राप्त करने की लालसा के साथ राम सिंह पठानिया के पास ज्योति वार करने के लिए पहुंचा तो पठानिया ने अपनी तलवार के वार से जॉन पील और उसके चार साथियों को मौत के घाट उतार दिया। आज भी डल्ले की धार पर

जनवरी, 1849 में वजीर राम सिंह पठानिया ने एक बार फिर से अंग्रेजों से विद्रोह करते हुए सिख सेना की दो रेजीमेंटों का साथ पाकर शाहपुर-कंडी से उत्तर-पूर्व की ओर 'डल्ले की धार' पर मोर्चा संभाला। अंग्रेजों को जब इसका पता चला तो कमिश्नर लारेंस ने जनरल व्हीलर के नेतृत्व में एक सेना की टुकड़ी भेजकर 'कुमणी-रे-पैल' नामक स्थान पर पड़ाव डाला और युद्ध करते हुए वजीर राम सिंह पठानिया को तीन ओर से घेर लिया। राम सिंह पठानिया ने इतना होने पर भी साहस नहीं छोड़ा और अपनी चंडी तलवार से शत्रुओं को मारता-काटता चला गया। इसी बीच पीछे से अंग्रेजी सेना की एक और टुकड़ी आने से अंग्रेजों का हौसला बढ़ गया और उन्हें विजय की आशा दिखलाई देने लगी। इसी बीच महारानी विक्टोरिया के संबंधी और तत्कालीन प्रधानमंत्री सर राबर्ट पील का भतीजा ले. जॉन पील अति उत्साहित होकर तथा विजय की अभिलाषा में पुरस्कार प्राप्त करने की लालसा के साथ राम सिंह पठानिया के पास ज्योति वार करने के लिए पहुंचा तो पठानिया ने अपनी तलवार के वार से जॉन पील और उसके चार साथियों को मौत के घाट उतार दिया। आज भी डल्ले की धार पर जॉन पील की कब्र पर एक शिलालेख में इस घटना की ऐतिहासिकता के साथ-साथ राम सिंह पठानिया की वीरता एवं शौर्य का उल्लेख मिलता है।

जॉन पील की कब्र पर एक शिलालेख में इस घटना की ऐतिहासिकता के साथ-साथ राम सिंह पठानिया की वीरता एवं शौर्य का उल्लेख मिलता है।

1849 ई. में हुए इस भयंकर युद्ध में वीर सपूत राम सिंह पठानिया आर पार की लड़ाई लड़ते हुए शत्रु सैनिकों को मार काटकर अपने घोड़े पर सवार होकर जख्मी होते हुए भी अपने आपको बचाते हुए कांगड़ा तक पहुंचे और छिपकर अपनी खोई हुई शक्ति एवं घावों के भरने का इंतजार करने लगे। यह एक भारी और दुखद सच्चाई है कि शूरवीर रणक्षेत्र में शत्रुओं को तो पहचान लेता है और उनका मुकाबला भी डटकर कर लेता है परंतु आस्तीन में छिपे गद्दारों अथवा देशद्रोहियों को पहचानना मुश्किल होता है और कई बार ऐसे किसी दुश्मन बने दोस्त से बचना मुश्किल हो जाता है। कहा जाता है कि ऐसे ही एक देशद्रोही और अंग्रेजों के 'पिट्ठू' बने व्यक्ति ने विश्वासघात करते हुए वजीर राम सिंह पठानिया के विषय की सारी बातों का भेद अंग्रेजों को दे दिया और उन्हें उस समय पकड़वा दिया, जब वह एकांतचित्त हो आंखें बंद करके पूजा में लीन बैठे हुए थे। सैनिकों के आने की ज्योंही उनके पास आहट हुई तो उनकी आध्यात्मिक तंद्रा टूट गई। उस समय क्योंकि राम सिंह पठानिया बिलकुल निहत्थे थे, इसलिए अंग्रेज सैनिकों ने उनहें बंदी बनाने का प्रयास किया। इस पर भी पठानिया ने हार नहीं मानी और उनका डटकर मुकाबला करते हुए पूजा के लोटे के वारों से ही कई अंग्रेज सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया परंतु फिर भी अंग्रेज सैनिक उन्हें बंदी बनाने में सफल हो गए।

बंदी बनाने के उपरांत राम सिंह पठानिया पर एक सैनिक अदालत में मुकद्दमा चलाया गया और उन्हें आजीवन कारावास की सजा काले पानी (अंडेमान-निकोबार में) के रूप में मिली। इसके उपरांत इन्हें सिंगापुर की जेल में रखा गया और यह कहा जाता है कि इन्हें जेल में अंग्रेजों के द्वारा तरह-तरह की असहनीय यातनाएं दी गईं परंतु भारत माता के इस वीर सपूत ने न तो अंग्रेजों के आगे हार मानी, न उनके आगे झुके और न ही उनसे कोई क्षमा याचना ही की। रणभूमि में दुश्मनों के हत्थे न चढ़ने वाला यह वीर सपूत अपने ही तथाकथित दुश्मन के हाथों और नापाक चाल से हार गया और यातनाएं सहता हुआ अंततः 11 नवंबर 1849 को मात्र 25-26 वर्ष की अल्पावस्था में ही अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए समर्पित होता हुआ अमर हो कर इतिहास पुरुष बन गया। इस वीर सपूत ने अपने जीवन का एक-एक क्षण मासनो मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अर्पित किया हुआ था और यह भी कहा जाता है कि वह जेल के अंदर भी अपने इसी प्रण को दोहराता था कि जब भी अंग्रेज सरकार उसे छोड़ेगी, वह स्वतंत्रता के लिए तब तक लड़ता रहेगा जब तक उसके शरीर में प्राण रहेंगे। वजीर राम सिंह पठानिया की वीरता से परिपूर्ण इतिहास इसलिए भी महत्त्वपूर्ण एवं स्वर्ण-अक्षरों में लिखा जाने योग्य है क्योंकि इस सपूत ने उस समय आजादी की जंग की लौ जगाई थी, जब न तो इतने साधन थे और न ही लोग इतने संगठित थे।

वजीर राम सिंह पठानिया की शूरवीरता को इतिहास के पन्नों से निकाल कर यदि जन-जन तक पहुंचाने का काम किया है तो उस अनजान लोक गायक अथवा रचनाकार, जिसने राम सिंह पठानिया की अदम्य शूरवीरता को एक 'वार- के रूप में 'झेड़े' की तरह रचा और मारू अथवा जंग ताल से स्वरबद्ध जोशीले अंदाज आज भी कभी-कभार देखा-सुना जा सकता है। राम सिंह पठानिया की 'वार' के कुछ रूप अलग-अलग संख्या में मिलते हुए कुछ विद्वानों के द्वारा संकलित किए गए हैं। इन अलग-अलग रूपों में केवल आकार की भिन्नता ही आई है और कुछ घटनाओं के जमा-घटाव अथवा प्रविष्ट अंशों के कारण कथानक की लंबाई कम-ज्यादा अवश्य हुई है परंतु उनमें व्याप्त गंभीरता, लय व ताल, वीर व रौद्र रस का जोशीला रूप-स्वरूप सभी में एक समान ही है। इस एक ही 'वार' के अलग-अलग रूपों में से केवल दो 'वारें', एक लंबी और एक छोटी, यहां पर उद्धृत कर रहा हूं :

घर सिआमें दे रामसिंघ जम्मेया
जम्मेया बड़ा अवतारी
जिसदा नाम रखेया मार जंग
जिन्नी रक्खी रजपूतां दी लाज
बेटा वजीर दा खूब लड़ेया।
लिख परवाना कंपणी भेजदी
गोरयां नाल ना छेड़
फरंगी है बुरी बला
तैकि रखेगी पिंजरें पा
बेटा वजीर दा खूब लड़ेया।
लिख परवाना रामसिंघ भेजदा
मैं लड़ना गोरयां नाल
अकेला पठाणियां खूब लड़ेया।
दूर कलकत्ते दीयां फौजां चढ़ीयां
बासे दा चढ़या वजीर
सुल्याली़ ते चढ़ेया साहब
जब विच पै गेई लड़ाई
अकेला पठाणियां खूब लड़ेया।
न्हाई धोई राजा पूजा पर बैहन्दा
बाह्मणे चुगली लाई
पूजा पर दित्ता पकड़ाई
बेटा वजीर दा खूब लड़ेया।
डल्ले दीया धारां डफले बजदे
पलटणी कड़के तंबूर लोको
अकेला पठाणियां खूब लड़ेया।
लिख परवाना कम्पणी भेजदी

गोरयां नाल न छेड़ राजा
जम्मदे नै पकड़ी तलवार राजा
दाईया बापा अंग्रेजां दे नाल राज।
लिख परकना भुली की भेजया
सद्देआ दास कोतवाल राजा
सद्देआ जंगी पडवाल राजा
सद्देआ तारा सिंघ साहबे राजा
सद्देआ न्हंगी धनोटिया राजा
धनोटिए नै लिखया जवाब राजा
सद्देआ अमर सिंह मिनहास राजा
जिस दे घोड़े देगल़ हार राजा
अमर सिंघें सूतरी लेई तलवार राजा
चलो मिलीए अंग्रेजे दे नाल राजा
रखणी धर्म चंदे दी आन राजा
पलटणा मारियां चार राजा
लहुआं दे बगदे नाल़ राजा।
हुण डेरा कूच करेया राजा
डेरा नागा बाड़ी पाया राजा
उत्थे बाह्मण रसोई की लाया राजा
कस्स कपड़ा ढाका पर जुआन राजा
वजीर हुण तू कुतां ओ जा राजा।
मेतों थोड़ा देया ले जाओ इनाम राजा
लकों सूतरी लेई तलवार राजा
उस बन्ही लेई ढाका ते जुआन राजा
उत्थे सपाहियां की हुक्म कराया राजा
डेरा शाहपुरे दे अंदर लाया राजा।

फरंगी है बुरी बला
तै की रखेगा पिंजरैं पा
तेरा घर-बार करेगा नीलाम
बेटा वजीर दा खूब लड़ेया।
लिख परवाना रामसिंघ भेजदा
मैं लड़ना फरंगिए नाल
मेरा दाईआ अंग्रेजां दे नाल
मैं जीणा दिहाड़े चार
बेटा वजीर दां खूब लड़ेया।
लिख परवाना मामेआं जो भेजदा
सद्देआ दास कोतवाल
सद्देआ अमर सिंह मिनहास
जिन्ने सूतरी लेई तलवार
मैं परखणी फौजां दे नाल
मेरी कैसी चलदी तलवार।

खाई मरोड़ा फिर राम सिंघ चढ़ेया
हत्थ पकड़ी तलवार
जेढ़ी करदी है मारोमार
मैं परखणी है फौजां दे नाल
अकेला पठाणियां खूब लड़ेया।
न्हाई धोई राजा पूजा घर बैहंदा
फिर बाह्मणे चुगली लाई
फिर चोरीआ दिता फड़ाई
घर सिआमें दे रामसिंघ जम्मेया
जम्मेया बड़ा अवतारी राजा।
जरनैल करनैल चढ़ी आया राजा
आउंदेयां ढिंडोरा पिटाया राजा
रामसिंघ दिओ पकड़ाए राजा
दो हजार रुपिया इनाम राजा
जोरामसिंघ दए पकड़ाए राजा।
तेरे बाह्मणे दगा कमाया राजा
पूजा बैठदा पकड़ाया राजा
विचप सुखपाले दे पाया राजा
नूरपुर शहिर की आया राजा
बाले दे तल पर बिठाया वजीर राजा।
इक दौड़दा हरकारा चला आया राजा
सिआमिया भेरा चुहर कड़ाही विच पाया राजा
बादशाह कन्नै तू जोरा लाया
अंगेज है बड़ा बादशाह राजा
जेहड़ा रखदा पिंजरें पा राजा
मेरे मिसराई नै दगा कमाया राजा।
भाई गोपाल सिंह मिलणे की आया राजा
सक्के भाई नै दगा कमाया राजा
भाईचारा दिंदा मदत राजा
जींदा लैंदा कौण मेरा नां राजा
मरदां दे बोल रैहंदे मरदां नाल राजा।
ओथे सिपाहियां की हुकम कराया राजा
लुट्टी लो शाहपुरे दा शहर राजा
डल्ले दीया धारा डफले बजदे
कुम्हणी खड़के तंबूर राजा
तेरी खबर गई हजूर राजा।
मलमल साहब चढ़ी आया राजा
आउंदेयां हल्ला कराया राजा
मलमल साहब दे हत्थे की तीर लाया
हत्थे दा कीता नाश राजा।
मलमल दा भाई चंडी साहब चढ़ेया
उस आउंदिया नै फट चलाया राजा

फट ढाला पर बचाया राजा
फट साहब दे सिर पर बेहया राजा
ओहदा देह दिल्ली चुकाया राजा।
देई करी ढाल दा अड़िका
हारे दे नाल अड़काया राजा
फरंगी है बड़ा बादशाह राजा
अंग्रेज है बड़ा बादशाह राजा
घर-बार करांदा नीलाम राजा
जींदेआं नहीं देंदा जाण राजा
अमरसिंघ आखदा
मैं जीणा दिहाड़े चार राजा
लड़दे माइयां दे पुत्तर राजा
रामसिंहा पठाणियां जोर लड़ेया।

(महेंद्र सिंह रंधावा द्वारा संकलित एवं हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा प्रकाशित छः मासिक पत्रिका हिमभारती के जुलाई-दिसंबर 2009 के अंक 133 से साभार)

राम सिंह पठानिया की इस 'वार' के संबंध में यह कहा गया है कि यह 'वार' वजीर रामसिंह की गिरफ्तारी के बाद लिखी गई लगती है। यह भी कहा गया है कि यह 'वार' नूरपुर के दो अबदालों जट्टू और बिल्लू ने गाई थी। इस 'वार' को कुल्लू के असिस्टेंट कमिनश्र जे.एफ. मिच्चल के द्वारा लोक गायकों के द्वारा सुनाए जाने पर लिखे जाने की बात कही गई है। इस 'वार' की शब्दावली में क्योंकि हिमाचली-कांगड़ी बोली की प्रधानता रही है और क्योंकि रियासती जमाने तथा अविभाजित पंजाब का ही हिस्सा नूरपुर होने के कारण पंजाबी के शब्दों का भी प्रयोग बहुतायत में हुआ है परंतु शायद लिखित रूप देने वाले विद्वान पूर्ण रूप से हिमाचली-कांगड़ी से परिचित न होने के कारण कई शब्दों को वह मूल रूप की भावना के साथ पकड़ नहीं पाए हैं। इसलिए कई शब्दों के न अर्थ समझ में आते हैं और न ही उनका भाव ही स्पष्ट हो पाता है।

इसी प्रकार राम सिंह पठानिया की 'वार' का एक और रूप जो उपरोक्त 'वार' से काफी छोटा है, वह भी डॉ. गौतम शर्मा व्यथित के कथनानुसार एम.एस. रंधावा के आदेश पर ही तत्कालीन विकास खंड अधिकारी कैलाश नाथ राणा ने नूरपुर के अबदलों के मुख से सुन कर लिखित रूप दिया था और वर्ष 1971 में श्रुति प्रकाश वशिष्ठ, संपादक, हरियाणा संवाद, लोक संपर्क विभाग, हरियाणा से उसी कागज पर मूल रूप में लिखा हुआ मिला था। इसके बीच हिमाचली-कांगड़ी का मूल विशिष्ट रूप देखने को मिलता है और क्योंकि यह 'वार' भी लोक गायकों के मुंह से सुन कर ही लिखी गई है परंतु इसके लिपिबद्ध करने वाले विद्वान को क्यों कि हिमाचली-कांगड़ी का पूरा आभास और बोलने लिखने का ज्ञान था, इसलिए इसकी भाषा एवं भाव संबंधी मूल भावना तदनुरूप ही बनी हुई दिखाई देती है :

श्याम सिंहे दे घर राम सिंह जमेयां
बड़ा होया अवतारी राजा
जमदें फड़ी तलवार राजा
लड़दा बांहीं दे जोर राजा
जिन्हें पलटणा बढियां चार राजा
कोई किल्ला पठाणियां जोर लड़या
जोर लड़या, भई जोर लड़या
ढाल तलुआर तेरी कीलणियां झुलदी
लड़या बांही दे जोर लोको
हाडीं-कांठीं तोपां गड्डियां
कन्नै गड्डी भरमाड़ लोको
गबै गड्डी भरमाड़ लोको
ओ जेहड़ी करदी मारो-मार लोको
करी, कोई किल्ला पठाणियां जोर लड़या
जोर लड़या, जोर लड़या, खूब लड़या
कोई किल्ला पठाणियां जोर लड़या।
भई, टोपें-टोपें दारू बंडे
लप्पां कनें बंडे तीर लोको
डले दीया धारा डफले बजदे
बौहृडा बजे तंबूर लोको
अज नेड़े तां कल दूर लोको
करी, भई किल्ला पठाणियां जोर लड़या
जोर लड़या, जोर लड़या, खूब लड़ेया
भई, किल्ला पठाणियां जोर लड़या।
लिखी परवानेयां भाईचारे जो भेजदा
लिखी परवानेयां राजेयां जो भेजदा
मिंजो कने दैणी मदाद लोको
नूरपुर बौहृड लैणे छुड़ाई लोको
भई, किल्ला पठाणियां जोर लड़ेया
जोर लड़या, जोर लड़या, खूब लड़ेया
भई, किल्ला पठाणियां जोर लड़या।
भाईचारे बी दित्ता जवाब लोको
राजे बी दित्ता जवाब लोको
करी राम सिंह पठाणियां जोर लड़या
श्याम सिंहे दे घर राम सिंह जमेया
बड़ा होया अवतारी लोको
भई, किल्ला पठाणियां जोर लड़या
भई, किल्ला पठाणियां खूब लड़या।

इस 'वार' में जहां कथ्य की मूल भावना दिखाई देती है, वहां भाषा की दृष्टि से भी यह पूर्णतया मौलिक रूप में सांस्कृतिक लगती है। राम सिंह पठानियां की शूरवीरता, अदम्य उत्साह के

वर्णन के साथ-साथ अकेले ही अंग्रेजों से जूझने के पूर्ण प्रतीक और बिंब उभरते हुए दिखाई देते हैं। इस 'वार' को एक नृत्य वाटिका के रूप में पूरे मारू संगीत के माध्यम से कांगड़ा लोक साहित्य परिषद के विभिन्न स्थानों पर आयोजित समारोहों में लोक संपर्क विभाग कांगड़ा के नाट्य अनुभाग के कर्मचारियों - कमल हमीरपुरी, सतीश कुमार, किशोर शर्मा, ब्रह्मचारी जी आदि-आदि के प्रयासों से मंच पर अभिनीत होते भी मैंने देखा है। उनके अभिनय एवं संगीत से यह नृत्य नाटिका कुछ समय के लिए इतना जोश व आवेश भर देती थी कि दर्शक कुछ समय के लिए ढाल व तलवार चलाते राम सिंह पठानिया को साक्षात अनुभव करने लगते थे। इसी कथानक के ऊपर आधारित एक नाटक की रचना डॉ. गौतम शर्मा व्यथित ने की है - 'डफ के ताल पर' शीर्षक से। इस नाटक का मंचन भी स्कूली छात्रों के द्वारा राजमंदिर नेरटी के ग्रामीण कला निष्पादन मंच पर किया जा चुका है।

वजीर राम सिंह पठानिया की इस शौर्यपूर्ण वीर गाथात्मक 'वार' को गाने-सुनाने का श्रेय जहां अबदालों/बढालों को दिया जाता रहा है, वहां वर्तमान में डॉ. एम.एस. रंधावा, डॉ. गौतम शर्मा व्यथित के साथ-साथ संसार चंद प्रभाकर एवं हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी के प्रयास भी इस व्यक्तित्व को जीवंत बनाने में उल्लेखनीय रहे हैं। वर्तमान में मीडिया के बढ़ते प्रभाव के कारण इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के यू-ट्यूब पर भी राम सिंह पठानिया के वास्तविक एवं 'वार' को भी गेय रूप में दिखानेका प्रयास किया गया है परंतु उस गेय शैली में आधुनिकता के साथ-साथ भाषायी स्वरूप में भी वह मौलिकता एवं यथार्थता नहीं आ पाई है, जो किसी हिमाचली कांगड़ी लोक गायक के कलकंठ से निसृत अथवा कांगड़ा के लोक कलाकारों की अभिनय शैली में सहज रूप में दिखाई अथवा सुनाई देती है। इसलिए इस संदर्भ में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं अत्यावश्यक यह है कि कांगड़ा के मूल कलाकारों से ही इस 'वार' का गायन एवं अभिनय करवाकर उसका फिल्मांकन कर दस्तावेजीकरण होना चाहिए। यदि कोई बाहरी व्यक्ति इसको लिख करके प्रस्तुत करना भी चाहे तो उच्चारण में शब्दों की वह मूल भावना कदापि नहीं आएगी। मंच के ऊपर अभिनय में भी पूरी लय व ताल तथा हावभाव तभी आ पाएंगे जब लोक कलाकार भाषा-बोली से परिचित होता हुआ अभिनय कला में पारंगत होगा। इस संदर्भ में डॉ. गौतम शर्मा व्यथित अथवा कमल हमीरपुरी आदि से निर्देशन लेकर युवा लोक कलाकारों से इसका अभिनय करवाकर फिल्मांकन कर लेना चाहिए ताकि भविष्य के लिए इस 'वार' की मौलिकता भाषा, शैली एवं अभिनय की दृष्टि से सार्थक बनी रहे।

मस्त- कुटीर, नेरटी, पत्रालय नेरटी, द्वारा रैत, तहसील शाहरपुर, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176 208, मो. 0 94180 58914

कविता

यथार्थ

- डॉ. सुधाकर आशावादी

मैंने सदैव ही बाँचा है
तुम्हारा घनात्मक पक्ष।
आँखों में समेटी है
तुम्हारे व्यक्तित्व की
धवल ज्योत्स्ना।
तुम्हारे अंधेर पक्ष को
कभी स्वीकार नहीं सका मैं।

क्योंकि-
मुझे नफरत है
अमावस के घुप्प अंधेरों से।
मुझे सदैव अच्छी लगती है
शरद पूनों की धवल चाँदनी
और नेह लुटाता चाँद पूनों का।

तुम हो कि -
मुझमें केवल अमावस ही ढूँढती हो
तुम जानती हो
अमावस और पूर्णिमा
कभी साथ नहीं बैठ सकती
नहीं बतिया सकती अपने सुख दुःख।

न तुम पूर्णमासी हो
और न मैं अमावस
यथार्थ तुम भी जानती हो
और मैं भी।

- शास्त्री भवन , ब्रहमपुरी, मेरठ-250002
मोबा- 0 97583 41282

ऐतिहासिक संदर्भ

नूरपुर रियासत के स्वदेश प्रेमी शासक

◆ सौरभ

पुरातन नूरपुर राज्य उत्तर में चंबा, पूर्व में कांगड़ा तथा गुलेर, दक्षिण में पंजाब, पश्चिम में रावी नदी की सीमाओं से घिरा हुआ था। पठानकोट, कांगड़ा की नूरपुर तहसील, शाहपुर-कंडी, रावी नदी की ओर जम्मू का लखनपुर इसी राज्य में था। इस राज्य का केंद्र पठानकोट था जिसका नाम कभी प्रतिष्ठानपुर था। प्रतिष्ठान अर्थात् दृढ़ता से स्थापित स्थान। उत्तर पश्चिम फ्रंटियर के पठानों से जोड़ने पर इसे नगरकोट, स्यालकोट, की भांति पठानकोट भी माना जाता है।

प्राचीन समय में नूरपुर औदुम्बर गण का एक भाग था। इस क्षेत्र में औदुम्बरों की मुद्राएं भी मिली हैं। औदुम्बर गण कुषाणों के अधीन रहा। यशोवर्मन की शक्ति क्षीण होने पर यह क्षेत्र त्रिगर्त के अधीन आ गया। अलबरूनी ने जालंधर की राजधानी 'दाहमला' लिखी है, नूरपुर को पुराने समय में 'धमेड़ी' कहते थे। सन् 1070 में महमूद गजनवी के वंशज इब्राहीम ने धमेड़ी की पहाड़ी पर स्थित दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस समय तक जालंधर की राजधानी नगरकोट आ चुकी थी। जब इब्राहीम का अधिकार धमेड़ी से समाप्त हुआ तो स्थानीय राजा ने स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर लिया।

नूरपुर राज्य की स्थापना की सही तिथि ज्ञात नहीं है। त्रिगर्त की विभिन्न शाखाओं में नूरपुर का पहला स्थान आता है। नूरपुर में लगभग तीस शासक हुए। अंतिम शासक वीर सिंह की मृत्यु 1846 में हुई। अतः राज्य की स्थापना लगभग सन् 1095 मेंहुई होगी जैसा कि कनिंघम ने माना है। कनिंघम जब नूरपुर आया तो राजवंश संबंधी दस्तावेज मुस्लिम तथा सिख लड़ाइयों के कारण नष्ट हो चुके थे किन्तु उसे 95 वर्षीय वृद्ध ब्राह्मण से जिसका नाम देवी सिंह था, पर्याप्त सूचना मिली। इसके साथ मियांरघुनाथ सिंह, जो राजवंश की रे शाखा से थे, के पास भी कुछ जानकारी थी जो उतनी सही नहीं थी।

नूरपुर के शासक 'पठानिए' कहलाते थे। नूरपुर के शासकों का अधिकार आरंभ में पठानकोट पर रहा होगा। अतः वे पठानिए कहलाए। पंजाब तथा मैदानों के लिए पठानकोट एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है क्योंकि यह पहाड़ के आधार पर रावी तथा व्यास के बीच स्थित है। व्यापार के दृष्टि से तथा पहाड़ों की ओर आने के लिए यह महत्वपूर्ण पड़ाव रहा है। तभी इस स्थान पर कई पुरातन सिक्के प्राप्त हुए हैं। यूनानी, मुस्लिम, कांगड़ा या नगरकोट सभी राजाओं के सिक्के यहां मिले हैं। कश्मीर के राजाओं के केवल दो सिक्के मिले हैं, जैसा कि कनिंघम ने लिखा है। ईसवी के आरंभ के छः सिक्के बहुत महत्वपूर्ण हैं जो यहां से मिले हैं। ये सिक्के चौकोर तथा लंबे आकार के तांबे के हैं जिनमें सामने मंदिर है तथा पीछे हाथी है। मंदिर के अलावास्वास्तिक चिन्ह तथा नाग है। हाथी के साथ वृक्ष है जिसके साथ औदुम्बर वृक्ष है। इसी कारण इस गण का नाम औदुम्बर पड़ा। नूरपुर का नाम धमेड़ी या धर्मेडी कब पड़ा, यह ज्ञात नहीं है। कहा जाता है, जहांगीर ने अपनी बेगम नूरजहां के नाम पर इसका नाम नूरपुर रखा।

पाणिनी के अनुसार जिस क्षेत्र में औदुम्बर वृक्ष होते हैं, वह औदुम्बर है। नूरपुर में औदुम्बर वृक्ष बहुतायत में है। महाभारत में भी औदुम्बर गण का उल्लेख आता है। प्रो. रेपसन ने लिखा है कि औदुम्बरों का देश पंजाब में स्थित था जहां पुरातन ब्राह्मी खरोष्ठी लिपि का प्रयोग होता था। गुरदासपुर में कुछ सिक्के मिले हैं जिन पर यूनानी प्रभाव है।

अतः पुरातन औदुम्बर में पठानकोट तथा नूरपुर के क्षेत्र थे। राजधानी प्रतिष्ठान थी जहां धराघोष का राज्य था। धराघोष के सिक्कों का काल रेपसन के अनुसार 100 ई. है। अकबर के समय तक इसे धमेड़ी कहा गया, जहांगीर ने नूरपुर बनाया।

औदुम्बरों से लेकर नूरपुर बनने तक इतिहास अंधकारमय है। धमेड़ी का किला इब्राहिम के आने तथा राजा बासु के पहले से रहा होगा। राजा वासु (1580-1613) ने इस किले का जीर्णोद्धार किया।

नूरपुर का किला पठानकोट से नूरपुर आते हुए सामने दिखता है। खड़ी पहाड़ी के ऊपर किला तथा शहर है। किले में एक मंदिर है जिसे राजा बासु द्वारा बनाया बताया जाता है। एक ठाकुरद्वारा है जो राजा जगत सिंह के पौत्र मांधाता ने बनाया।

मंदिर पूरी तरह दब चुका था जिसे सन् 1886 में सी.जे. रोगर्ज़, पंजाब के पुरातात्विक सर्वेयर ने खोजा। इस मंदिर का आधार ही बचा था जो हिंदू मुगल शैली में है। यह संभवतः 1618 में सूरज मल के समय गिराया गया। ठाकुरद्वारे में कृष्ण की काले संगमरमर की प्रतिमा है। पठानकोट का किला सन् 1849 में गिराया गया जिसकी ईंटे माधोपुर में बड़ी दोआब नहर बनाने में इस्तेमाल की गई। कनिंघम के अनुसार बड़े आकार की ये ईंटे बहुत पुरानी थीं।

नूरपुर तथा पठानकोट के चन्द्रवंशी राजाओं में राजा बख्त मल, जो अकबर का समकालीन था, तक का इतिहास अटकलों

से भरा है। इसके बाद मुस्लिम इतिहासकारों ने यहां के शासकों पर प्रकाश डाला है। कनिंघम तथा मियां रघुनाथ सिंह की राजाओं की सूचियां भिन्न-भिन्न हैं। कनिंघम द्वारा वृद्ध ब्राह्मण देवी सिंह से बनाई सूची अधिक सही है। कनिंघम ने एक राजा को बीस या पच्चीस वर्ष देकर 1095 ई. इस राजवंश की आधार तिथि निर्धारित की है।

आईने-अकबरी, तुजुक-ए-जहांगीरी, बादशाहनामा सब में, पठानकोट को पठान ही कहा गया है। यद्यपि यह पूर्णतया संदेहास्पद है तथापि जीतपाल (1095) के बाद ये तेरह राजा हुए- क्षेत्रपाल, सुखिन पाल, जगत पाल, रामपाल, गोपाल पाल, अर्जन पाल, वर्ष पाल, जतन पाल, विदर्धपाल, जघानपाल, किरत पाल, कखो पाल, जशपाल। इनके बाद बख्त मल या भक्त मल (1513-58) जब राजा के साथ 'पाल' से 'मल' नाम के साथ लगना शुरू हुआ। सन् 1526 में बाबर के समय यह राज्य मुगल सल्तनत के अधीन आ गया किन्तु जब शेरशाह सूरी ने हुमाऊं को भगा दिया तो बख्त मल ने सूर वंश के साथ वफादारी निभाई। राजा जगत सिंह (1619-1646) को 300 का मनसब देकर बंगाल भेजा गया। सूरजमल के विद्रोह पर उसे बंगाल से बुलाया गया। जल्दबाजी में उसे बादशाह ने 1000 मनसब बख्शी। 500 घोड़े, राजा की उपाधि के साथ 20,000 रुपए नकद, जवाहरातों जड़ी तलवार, एक घोड़ा तथा एक हाथी दिया गया। उसे राय-राईयां के पास भेजा गया जो कांगड़ा किला जीतने के लिए भेजा गया था।

किस्सा नूरपुर के नामकरण का

कांगड़ा किला जीतने के बाद (नवंबर 1620) संभवतः जगत सिंह नूरपुर रहने लगा। सन् 1622 के बसंत में जहांगीर कांगड़ाघाटी में आया। वह सीबा होकर आया और नूरपुर पठानकोट होकर लौटा। नूरजहां धमेड़ी की प्राकृतिक सुंदरता से इतनी प्रभावित हुई कि उसने वहां अपने लिए महल बनाने का आदेश दिया। जहांगीर ने अपने कोष से इस कार्य के लिए एक लाख रुपए दिये। महल का काम भी आरंभ कर दिया गया जिससे जगत सिंह का माथा ठनका। वह नहीं चाहता था कि महल यहां बने। अतः जगत सिंह ने ऐसे आदमियों को काम पर लगाया जिन्हें गले में गिल्लड (घेंगे) थे। कांगड़ा, नूरपुर क्षेत्र में कई आदमियों को गिल्लड़ थे। एक बार जब नूरजहां महल के कार्य का निरीक्षण करने गई तो कुरूप मजदूरों को देख परेशान हो गई। उसे बताया गया कि नूरपुर की जलवायु के कारण यहां यह बीमारी सबको हो जाती है। नूरजहां ने वहां महल बनाने का विचार छोड़ दिया। जब जहांगीर नूरपुर आया तो जगत सिंह ने उसके सम्मान में धमेड़ी का नाम नूर-उद-दीन जहांगीर के नाम पर नूरपुर रख दिया।

नूरपुर के राजाओं ने मुगलों के लिए बड़ी लड़ाइयां लड़ीं और उनके लिए इलाके जीते। ये राजा सदा मुगल सेना में अग्रणी रहे। जगत सिंह ने उत्तर पश्चिम अभियान में बदख ां को जीता और उजबेकों को छक्के छुड़ाए। जगत सिंह का पुत्र राजरूप कंधार तथा इरान में लड़ता रहा। किन्तु मौका मिलते ही इन राजाओं ने मुगलों के विद्रोह में कभी कसर नहीं रखी।

स्वाभिमानी राजा वीर सिंह (1789-1846) द्वारा विद्रोह

वीर सिंह के गद्दी संभालने की तिथि निश्चित नहीं है। कनिंघम ने इसे 1805 कहा है जबकि 'चीफ्ज एंड फेमिलीज ऑफ नोट इन द पंजाब' में यह तिथि 1789 है। वीर सिंह यहां का अंतिम शासक सिद्ध हुआ। कांगड़ा में गोरखों के आक्रमण तक यहां सब ठीक-ठाक रहा होगा। कांगड़ा किले पर चार वर्ष के घेराव के बाद संसार चंद ने रणजीत सिंह से सहायता ली और 1809 में रणजीत सिंह ने पहाड़ों की ओर रूख किया और गोरखा सेना भगाई। कांगड़ा किला तथा 66 गांव रणजीत सिंह के अधीन हुए। सन् 1812 में रणजीत सिंह दीनानगर में आया और नूरपुर को 40,000 रुपये देने के लिए कहा गया।

सन् 1815 में रणजीत सिंह ने सियालकोट में अपने अधीन सभी राजाओं का एक सम्मेलन किया। नूरपुर तथा जसवां के राजा वहां उपस्थित नहीं हुए अतः उन्हें इतना जुर्माना किया गया कि जिसे वह भर न सकें। जसवां के राजा ने चुपचाप अपना राज्य छोड़ दिया और जागीर स्वीकार की। वीर सिंह ने अपना सब कुछ गिरवी रख दिया, राजघराने की मूर्तियां, सोने-चांदी के बर्तन भी बेच डाले। किन्तु जुर्माना पूरा न हुआ। अतः रणजीत सिंह ने लाहौर से सिख सेना को भेजा। वीर सिंह नहीं माना। उसे जागीर देने की पेशकश की गई। वह रातोरात भाग कर चंबा चला गया। सेना के लोग ब्रिटिश इलाके में भाग गए। सन् 1816 में वह काबुल निर्वासित अमीर शाहशुजा के साथ लुधियाना में रहकर रणजीत सिंह के खिलाफ षड्यंत्र करता रहा। सिखों ने इस बात की शिकायत अंग्रेजों से की अतः वह अर्की चला गया और दस वर्ष वहां रहा। सन् 1826 में वह वेश बदल कर पुनः नूरपुर पहुंचा। प्रजा जमा हुई। किले को घेर लिया गया। लाहौर को बड़ी सेना आने पर वह फिर चंबा चला गया। वीर सिंह की पत्नी चंबा के राजा चढ़त सिंह की बहन थी। राजा चंबा ने डर कर उसे सिखों को सौंप दिया। सिखों ने उसे सात वर्ष अमृतसर गोबिंदगढ़ किले में कैद रखा।

वीर सिंह को सात वर्ष तक बंदी बनाए रखा गया। चंबा के राजा के हस्तक्षेप पर अंततः 85000 रुपये देकर वीर सिंह को मुक्ति मिली। रणजीत ने उसे रावी के किनारे कठलोट में बारह हजार रुपए की जागीर देनी चाही। वीर सिंह ने मना कर दिया।जम्मू के राजा ध्यान सिंह, जो रणजीत सिंह का प्रधानमंत्री था के माध्यम से 25000 की जागीर देनी चाही। वीर सिंह ने इसे लेने से भी मना कर दिया। वीर सिंह डमटाल में रहने लगा। रानी अपने पुत्र को लिए चंबा रहती थी।

बारनेस ने लिखा हैः "ध्यान सिंह के पास महाराजा द्वारा हस्ताक्षरित एक सनद थी, इसे देने से पहले वह चाहता था कि वीर

सिंह उसे 'जैदेवा' कहे। किन्तु वीर सिंह ने ऐसा नहीं किया।''

बिगने जून 1835 में नूरपुर आया और फिर चंबा से वापसी पर सन् 1839 में बिगने ने वीरसिंह के बारे में बहुत कुछ कहा।

बिगने ने लिखा है : ''मैं बेचारे वीर सिंह को चंबा में मिला और शहर के दक्षिण में एक बड़ी बिल्डिंग में देखा। उसके प्रत्येक वाक्य में अपने राज्य को वापिस लेने की तीव्र इच्छा थी। उसने अपने दुर्भाग्य की कहानी कही और मेरी सहायता चाही यद्यपि मैंने उसे बार-बार दिलासा दिया कि मैं न तो राजा का सेवक था न ईस्ट इंडिया कंपनी का।''

सन् 1845 में सिख सेना की अंग्रेजों से हार पर वीर सिंह ने पुनः विद्रोह का बिगुल बजाया और नूरपुर किले को घेर लिया। किन्तु वह वृद्ध हो चुका था। वीर सिंह वृद्धावस्था में नूरपुर किले की दीवारों के पास राज्य के लिए संघर्ष करता हुआ मर गया। उसने अन्य राजाओं की तरह वजीफा या जागीर नहीं स्वीकारी।

वीर सेनानी राम सिंह पठानिया

राम सिंह पठानिया नूरपुर के इतिहास में वीर सेनानी हुआ जिसने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सन् 1849 में लड़ाई लड़ी। कांगड़ा के चंद्रभान की भांति राम सिंह पठानिया के किस्से और गाथा आज भी गाई जाती है। राम सिंह पठानिया राजा वीर सिंह का वजीर था।

प्रथम सिख युद्ध के बाद सतलुज से सिंध तक सारा पहाड़ी क्षेत्र अंग्रेजों के पास चला गया। सतलुज से रावी के मध्य का क्षेत्र अपने अधिकार में रखा गया और जम्मू क मीर महाराजा गुलाब सिंह को बेचा गया। सन् 1848 में पहाड़ी राजाओं ने विद्रोह किया जिसमें वीर सिंह के पुत्र जसवंत सिंह तथा वजीर राम सिंह ने भाग लिया।

वीर सिंह की मृत्यु के समय उसका पुत्र जसवंत सिंह अव्यस्क था। वह मात्र दस व्र्रा का था। वजीर राम सिंह ने जम्मू से सेना एकत्रित की और रावी पार कर शाहपुर किले पर कब्जा कर लिया। उसने जसवंत सिंह को राजा और स्वयं को वजीर घोषित कर दिया। होि यार पुर से ब्रिटिश सेना के आगमन पर राम सिंह तथा साथियों ने किला खाली कर दिया और नूरपुर के जंगलों में मोर्चा बनाया। हमले में राम सिंह गुजरात भाग गया। जनवरी 1849 में वह पुनः वापिस आया। उसके साथ दो सिख सेनाएं थी। उसने शाहपुर के उत्तरपूर्व में डले की धार में मोर्चा बनाया। यहां स्थिति सुदृढ़ थी। अतः ब्रिगेडियर व्हीलर के साथ सेना भेजी गई। लड़ाई में दोनों ओर नुकसान हुआ। सर रोबर्ट पॉल के भतीजे सहित दो युवा अंग्रेजी अफसर मारे गए। राम सिंह शीघ्र ही कांगड़ा में पकड़ा गया। कहा जाता है एक ब्राह्मण ने, जिसे वह मित्र समझता था, सोने के लालच में उसे पकड़वा दिया। सिंगापुर में राम सिंह की मृत्यु हो गई। राम सिंह की बहादुरी की गाथाएं आज भी गायी जाती हैं जिसने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए।

कर्नल फ्रांसिस का कथन

''जब 1848 में बलवा हुआ तो गद्दी से हटाए गए राजा के वजीर के बेटे राम सिंह ने जम्मू के पहाड़ से कुछ साहसी लोग जमा किए और रावी पार करके शाहपुर के खाली किले में प्रवेश कर लिया। इस रात आसपास के लोग बधाई देने आए और ढोल बजा कर मुनादी कराई गई कि अंग्रेजों के शासन समाप्त हो गए हैं। अब दलीप सिंह (महाराजा रणजीत सिंह का पुत्र) बादशाह है। जसवंत नूरपुर का राजा है और राम सिंह उसका वजीर हो गया। जब यह समाचार होशियारपुर पहुंचा तो थोड़ी सीसेना तुरंत भेजी गई जिसने आते ही किले को घेर लिया। इस फुर्ती और तैयारी को देख कर विद्रोही भयभीत हुए और रात के समय यहां से भाग कर नूरपुर के निकट एक पहाड़ी शृंखला पर जहां घना जंगल था, जा जमे। थोड़े समय बाद कमिश्नर जॉन लारेंस और डिप्टी कमिश्नर बारनेस साब सहायता लेकर आ पहुंचे और उस स्थान पर जहां विद्रोही ठहरे थे, आक्रमण किया।

राम सिंह के पांव उखड़ गए और उसने भाग कर रसूल जो सिखों की छावनी में था, में शरण ली। उसके पहाड़ पर काबिज रहने के दिनों में आसपास के गांवों से चार सौ आदमियों के लगभग उसके साथ आकर मिल गए थे जिनमें कुछ तो उसके अपने देश के राजपूत थे और अधिकतर लोग बेकार और निकम्मे आदमी थे जिन्हें सम्मिलित होने से कोई हानि नहीं पहुंचती थी।

जनवरी 1849 में राम सिंह ने शेर सिंह से कह सुन कर 500 सिपाहियों की दो सिख पलटने लीं और उन्हें साथ लेकर एक बार फिर पहाड़ पर चढ़ाई की और डेले की चोटियों पर जा जमा। उधर से सवार और प्यादों की फौज जनरल व्हीलर की कमान में उन पर आक्रमण करने हेतु भेजी गई। विद्रोही उस स्थान से भगा दिए गए और उनके बहुत से आदमी मारे गए मगर साथ ही अंग्रेजी फौज को भी हानि हुई। राम सिंह को गिरफ्तार कर के सिंगापुर भेजा गया। जसवंत सिंह की आयु उस समय केवल दस वर्ष की थी अतः यह जो कुछ हुआ उसका उत्तरदायी वह नहीं ठहराया जा सकता था।'

फ्रांसिस मैसी ने अंग्रेज सेना की चुस्ती फुर्ती का तो उल्लेख किया, प्रधानमंत्री के भतीजे तथा युवा अंग्रेज अधिकारियों के राम सिंह के हाथों मरने का जिक्र नहीं किया। राम सिंह के साथ साहसी लोग भी बताए तो बेकार और निकम्मे लोग भी। तथापि 'बलवा' कहने के बाबजूद उसने घटना को सच्चाई से बखाना। राम सिंह को गिरफ्तार कर देश निकाला की सजा दी गई और सिंगापुर भेज दिया गया। जसवंत सिंह उस समय दो वर्ष का था अतः उसे बेकसूर समझा गया।''

'अभिनंदन' कृष्ण निवास लोअर पंथा घाटी,
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171009,

आलेख

जनरल जोरावर सिंह हिमालय का नेपोलियन

◆ योगराज शर्मा

जनरल जोरावर सिंह का नाम दुनिया के महान सैन्य कमांडरों में शुमार है। वे एक सैनिक के रूप में एक महान योद्धा, कुशल प्रशासक, वीर, साहसी तथा दूरदर्शी व्यक्तित्व के रूप में जाने जाते हैं। वे महाराजा रणजीत सिंह के अधीन जागीरदार जम्मू में राजा गुलाब सिंह के वजीर थे।

जोरावर सिंह का जन्म 14 अप्रैल, 1784 को चंदोरिया राजपूत परिवार जो चंद्रवंशी राजपूत से संबंधित थे, में हरजे सिंह ठाकुर के घर जिला हमीरपुर में नदौन क्षेत्र के गांव अंसरा में हुआ। कुछ इतिहासकार उनके नाम के साथ कहलूरिया उपनाम भी लगाते हैं क्योंकि उनके पिता कहलूर रियासत के दरबारी थे।

बचपन से ही जोरावर सिंह साहसी तथा झगड़ालू थे। परिवार में हुए एक भूमि विवाद के उपरांत वे घर छोड़कर हरिद्वार चले गए और फिर वापिस न आए। एक दिन जोरावर सिंह जम्मू के डोडा जिले के गलिया के जागीरदार राणा जसवंत सिंह के शिविर में रोजगार प्राप्त करने चला गया जो हरिद्वार धार्मिक यात्रा पर आए थे। राणा जसवंत सिंह को युवक जोरावर पर दया आई और उसे अपना सेवक बना दिया। राणा उसे लेकर किश्तवाड़ आ गया जहां उसे तीरंदाजी तथा तलवार, घुड़सवारी का प्रशिक्षण दिया गया। वे वहां एक योगी के संपर्क में आया तथा महाकाली का अनन्य भक्त बन गया। तदोपरांत वे रयासी में किलेदार का सैनिक बन गया।

एक अन्य वृतांत के अनुसार जोरावर सिंह हरिद्वार से लाहौर गया और वहां महाराजा रणजीत सिंह की सेना में भर्ती हो गया। लेकिन यहां पर सैनिक के रूप में उसकी सिख अधिकारी से चिलम पीने की बात पर झड़प हो गई और अधिकारी इस झड़प में मारा गया। वे वहां से भाग कर कांगड़ा की पहाड़ियों में आ गया और कुछ वक्त राजा संसार चंद की सेना में नौकरी की। सिखों द्वारा उसकी पहचान होने पर वह जम्मू भाग गया और राजा गुलाब सिंह की सेना में भर्ती हो गया।

सेना में रहते हुए गुलाब सिंह ने इस शूरवीर के गुणों को पहचाना तथा उसे रयासी दुर्ग जो भीमगढ़ के नाम से जाना जाता है, के निर्माण का कार्य सौंपा। तदोपरांत उसे उसका प्रशासक नियुक्त किया। वर्ष 1820 में जोरावर सिंह को वज़ीर की उपाधि दी गई और जब किश्तवाड़ पर कब्जा हुआ तो उसे किश्तवाड़ का गवर्नर नियुक्त किया गया।

जोरावर सिंह के अनवरत प्रयासों से, उसने किश्तवाड़ में अपनी सेना को उच्च कोटि का प्रशिक्षण दिया और उन्हें ऊंचे तथा ठंडे वातावरण में युद्ध कौशल का प्रशिक्षण देकर दक्ष बनाया। इन प्रयासों से किश्तवाड़ एक प्रमुख सैन्य छावनी बनी तथा जोरावर सिंह के प्रयासों से हिमाचल के अंदरूनी क्षेत्रों में अभियानों के लिए यह एक मुख्य स्थान उभरा। वह हिंदुस्तान का एक प्रमुख सैन्य नीतिकार बना। किश्तवाड़ से होकर उसने लद्दाख, बल्तिस्तान तथा तिब्बत तक सैन्य अभियानों का नेतृत्व किया और अपना नाम सैन्य युद्ध कौशल के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में दर्ज करवाया।

जोरावर सिंह के एक महान शूरवीर तथा नीतिकार के बारे इतिहासकार के.एम. पणिक्कर के शब्दों में, "वे एक निर्भीक, कमांडर था, जिसका प्रमाण उसके लद्दाख तथा बल्तिस्तान के सफल अभियानों से मिलता है। वे कुशल राजनीतिक क्षमता से भी भरपूर थे। उस द्वारा नए जीते गए प्रांतों में की गई व्यवस्था इसका जीता जागता उदाहरण है। लद्दाख तथा बल्तिस्तान की बर्फ से ढकी चोटियां जो समुद्रतल से 15 हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित है जहां हवा ही इतनी कम है कि मैदानों में रहने वालों को सांस लेने में कठिनाई होने लगती है वहां एक दो बार नहीं, बल्कि छह सैन्य अभियानों पर जाना एक आश्चर्यजनक उपलब्धि है। इन प्रांतों को जीत कर उन्हें एक शांतिपूर्वक क्षेत्र बनाना इसका उदाहरण भारत के इतिहास में बिरला ही मिलता है। इस महान योद्धा की महानता भारतीय इतिहास में एक महानतम योद्धा के रूप में चमकेगी।"

लद्दाख विजय

लद्दाख दुनिया का सबसे ऊंचे आवासीय क्षेत्रों में से एक है। इसका कोई भी क्षेत्र नौ हजार फुट की ऊंचाई से कम नहीं है। जोरावर सिंह के मन में इस क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाने का

विचार आया। ये क्षेत्र बौद्ध धर्म के अनुयायियों की स्थली तथा लद्दाख को वे चंद्रमा की भूमि के नाम से पुकारते थे। यहां के रीति रिवाज, बौद्ध मठ प्राचीन एवं दुनिया भर में ख्याति प्राप्त है। यहां से बल्तिस्तान, पश्चिमी तिब्बत भी नजदीक ही पड़ते थे।

मध्य काल के दौरान दिल्ली के सुल्तान तथा कश्मीर के राजाओं ने लद्दाख तथा बल्तिस्तान पर कब्जा करने का प्रयास किया। उन्हें कुछ सफलता तो मिली लेकिन वे स्थायी तौर पर यहां कब्जा न कर सके। लद्दाख पर कब्जा करने का अभियान जोरावर सिंह ने वर्ष 1834 में आरंभ किया। जोरावर सिंह अंग्रेजों की चालों से भी भलीभांति अवगत था इसलिए उसने महाराजा रणजीत सिंह से एक अभियान की स्वीकृति ली।

उस वक्त लद्दाख का राजा ग्यालपो से तिब्बत के राजा ग्यापो चो नाराज चल रहा था। उसने गुप्त रूप से जोरावर सिंह को लद्दाख पर आक्रमण करने को कहा। जोरावर सिंह ने इस सुनहरे अवसर को भांप कर किश्तवाड़ होते हुए अपने पांच हजार सैनिकों के साथ लद्दाख पर चढ़ाई की और पूरीग प्रांत पहुंच गया।

प्रथम लद्दाखी प्रमुख बाकरा सिस का डोगरा सेना से सामना हुआ। उसने लेह में अपने राजा को इस अभियान की जानकारी दी। वह बहादुरी से लड़ा लेकिन युद्ध भूमि में वह मारा गया। 16 अगस्त 1834 को दोरजी नामग्याल के नेतृत्व में लद्दाखी सेना का युद्ध डोगरा सेना के साथ शंकू में हुआ। वे पराजित हुए और सूस का संपूर्ण प्रांत डोगरों के अधीन आ गया। जोरावर सिंह ने जमींदारों को बहाल किया और राजस्व सुधार लागू किया। उसने वहां एक छोटा दुर्ग 'किला' सूरू कुरसी का निर्माण करवाया। इसके बाद डोगरा सेना ने सूड पर कब्जा किया। लद्दाखी सेना के चीफ को सैनिकों के साथ नज़रबंद कर दिया गया।

सर्द ऋतु के आगमन से पहले उसने अपने दूतों को लेह भेजा ताकि बातचीत हो सके। लद्दाखी सेनानायक भी संधि करने का इच्छुक था। इसके लिए जोरावर सिंह ने 15 हजार रुपये की मांग की। लेकिन बातचीत विफल हुई। लद्दाखी सेना ने बनखा कहलोन के नेतृत्व में डोगरा सेना पर पीछे से हमला कर दिया। अनेक डोगर सैनिकों को बंदी बना दिया गया और उनको बांध कर नदी में बहा दिया गया। इस स्थिति की गंभीरता को देखते हुए जोरावर सिंह ने सर्द ऋतु में थाई सुल्तान किले को छोड़ दिया। अप्रैल 1835 तक लद्दाखी सेना ने अपनी सेना बढ़ा कर 22000 सैनिक कर दी। जोरावर सिंह ने लद्दाखी सेना पर हमला बोल दिया। उन्हें परास्त किया। वे अपने पांच हजार सैनिकों के साथ लेह पहुंचा। लद्दाखी राजा ने 50 हजार रुपये जुर्माना तथा बीस हजार रुपये सालाना देने का वायदा किया। यह संधि ज्यादा देर न चली और लद्दाख के क्षेत्र में विद्रोह फैल गया। जब जोरावर सिंह को ज्ञात हुआ तो वे सीधे रास्ते से लेह दस दिन में पहुंच गया। उसने लेह में दुर्ग व छावनी बनाई और वहां तीन हजार डोगरा सैनिकों की तैनाती की। इस दौरान लेह में राजा ने विद्रोह किया। 1840 में वे पुनः लेह गया और लद्दाख को जम्मू की रियासत से मिला दिया।

तेस्पान डब्ल्यू.डी. सकाबपा जो वर्ष 1930 से1950 तक तिब्बती वित्त सचिव रहे, ने अपनी पुस्तक 'तिब्बत-एक राजनीतिक इतिहास' में लिखा है कि इस युद्ध में तीन हजार सिख सैनिक मारे गए थे। सात हजार सिख सैनिक तथा दो लद्दाखी मंत्रियों को युद्धबंदी बनाया गया। कुछ सैनिक भाग खड़े हुए। जो कैदी अपने वतन जाना चाहते थे, उन्हें जाने दिया गया। इनमें से दो तिहाई सैनिकों ने तिब्बत में रहने का फैसला किया। सिख सैनिकों को तिब्बत में दक्षिण में बसाया गया और उन्होंने स्थानीय तिब्बती बालाओं से विवाह किया। उन्होंने तिब्बत में खुमानी, सेब, अंगूर तथा आड़ू उगाना आरंभ किया।

बल्तिस्तान का अभियान

जोरावर सिंह का बल्तिस्तान का अभियान साहसिक, शौर्य तथा एक सशक्त नेतृत्व का उदाहरण माना जाता है। यह अभियान ऊंची दुर्गम पर्वत माला से होकर गुजरा जहां की ऊंचाई 18 हजार फुट से लेकर 20 हजार फुट तक है।

जोरावर सिंह की मंशा बल्तिस्तान पर कब्जा करने की थी। उसे बल्ति परिवार में झगड़े होने पर एक सुनहरा मौका मिला। लेह से अपने पहले अभियान के दौरान उससे संपर्क में सूरू का राजा मोहम्मद शाह, जो बल्तिस्तान के सुल्तान का बड़ा बेटा था, ने अपने पिता के विरुद्ध सहायता का अनुरोध किया। सुल्तान बड़े बेटे को छोड़ कर छोटे युवराज को बल्तिस्तान का शासक बनाना चाहता था। जोरावर सिंह ने उसे दो वर्ष पनाह दी और उसे लद्दाख के वजीर का कार्य सौंपा। बल्तिस्तान का सुल्तान अपने बड़े पुत्र को जोरावर सिंह के कब्जे से जबरदस्ती छुड़ा कर ले गया। इस घटना के उपरांत डोगरा सेना को बल्तिस्तान पर हमला करने का मौका मिल गया। 1839 में सात हजार लद्दाखी सेना जिसकी कमान कहलो बंगूपा के हाथ थी तथा जोरावर सिंह ने तीन हजार डोगरा सैनिकों के साथ बल्तिस्तान पर चढ़ाई की। वे मरोल तथा कारमग होता हुआ कारगिल पहुंचा। बल्तिस्तान के राजा ने 20 हजार सैनिकों को भेज डोगरा सेना को रोकने के लिए भेजा। बीस दिन तक डोगरा सैनिक इंडस नदी को पार न कर पाए। इसी दौरान सर्दियां आ गईं। सैनिकों में अधिक ठंड तथा खाद्य सामग्री की उपलब्धता न होने से मायूसी छा गई। इस अवस्था में अभियान को 15 दिन के लिए रोका गया। डोगरा सेना के कर्नल बस्ती राम को तरकीब सूझी तथा उसने इंडस नदी पर बर्फ का पुल बनाया और 40 सैनिकों के साथ नदी को पार कर लिया। देखते ही देखते संपूर्ण डोगरा सेना नदी पार कर गई। 13 फरवरी 1840 को थोमोखान

में भीषण युद्ध हुआ। बल्ति सेना को भारी नुकसान हुआ। जीत के बाद सेना ने बल्ति राजा की राजधानी स्कारदू की ओर मार्च किया। राजा अहमद शाह ने अपने आपको खारपोचे दुर्ग में बंद कर लिया।

जोरावर सिंह द्वारा स्कारदू दुर्ग पर कब्जा करना एक असाधारण सैन्य अभियान था जो उसके सैन्य कौशल को दर्शाता है। 15 दिन तक किले को घेर कर रखा गया। तदोपरांत किले पर चढ़ाई कर राजा को मारा गया। उसके बड़े पुत्र मोहम्मद शाह को बल्तिस्तान का राजा बनाया गया। 1840 की गर्मियों में बल्तिस्तान की संपूर्ण घाटी पर जोरावर सिंह का कब्जा हो गया तथा उसे जम्मू रियासत का हिस्सा बनाया गया। इस तरह बल्तिस्तान, लद्दाख का संपूर्ण क्षेत्र जम्मू के अधीन आ गया।

तिब्बत पर अतिक्रमण

जोरावर सिंह का सबसे महत्त्वाकांक्षी सैन्य अभियान तिब्बत के पश्चिमी क्षेत्र पर हमला था। जो नागरिस या नारिस के नाम से जाना जाता था औरा लद्दाख का पूर्वी क्षेत्र कहलाता था।

राजा गुलाब सिंह ने कुछ राजनयिक मजबूरियों के साथ जोरावर सिंह को तिब्बत पर अभियान के आदेश दिए। जून 1841 को जोरावर सिंह ने पश्चिमी तिब्बत की चौकियों पर अपने पांच हजार सैनिकों को तैनात किया। जोरावर सिंह की सेना में जम्मू के डोगरा, किश्तवाड़, बल्ती तथा लद्दाखी सैनिक थे। जोरावर सिंह ने अपने अभियान की रूपरेखा मयूम दर्रे के पश्चिम तक संपूर्ण क्षेत्र को अधीन करने की रूपरेखा बनाई। उसने तिब्बत में तीन ओर से अभियान चलाया। तीन हजार डोगरा सैनिकों के साथ वह तिब्बत के रूडक प्रांत में दाखिल हुआ तथा 5 जून, 1841 को इसे जीत लिया। तदोपरांत गारटू, जो पश्चिम तिब्बत के प्रांत का मुख्यालय था, पर कब्जा कर लिया। तिब्बत के गवर्नर ने नेपाल सीमा के पास शरण ली।

तिब्बती सेना ने चारों ओर से इकट्ठा होकर डोगरा सेना पर हमला बोला। लेकिन उन्हें पराजय हाथ लगी। डोगरा सेना ने कर्नल बस्ती राम के नेतृत्व में तकलाकोट पर कब्जा किया। वहां दुर्ग का निर्माण व छावनी बनाई जहां 500 सैनिकों की तैनाती की गई।

डोगरा सेना द्वारा पश्चिम तिब्बत पर कब्जा के उपरांत तिब्बती जनरल कैलान सरकांग के नेतृत्व में दस हजार सैनिकों की फौज को ल्हासा से भेजा गया। इसी दौरान जोरावर सिंह को तिब्बती सेना के आने की खबर मिली तथा उसने शांति का प्रस्ताव रखा। लेकिन तिब्बती सेना को उसकी शर्तें नामंजूर हुईं। वार्ता विफल होने के बाद तिब्बती सेना ने जनरल पिशी के नेतृत्व में डोगरा सेना पर 9 नवंबर 1841 को हमला बोल दिया। जोरावर सिंह तीन हजार सैनिकों के साथ कारदूंग पहुंचा ताकि वे बस्ती राम के नेतृत्व में लड़ रही सेना से मिल सके। लेकिन यह न हो सका क्योंकि सर्द ऋतु में भारी बर्फबारी से सारे रास्ते बंद पड़ गए। 10 दिसंबर 1841 को जोरावर सिंह का सामना तो-यू में तिब्बती सेना से हुआ। यहां दोनों सेनाओं के मध्य भीषण युद्ध हुआ। जोरावर सिंह के कंधे पर गोली लगी और वह घोड़े से गिर गया। तिब्बती घुड़सवार सैनिक ने इस योद्धा पर वार किया और उसका धड़ कलम कर दिया। इस तरह यह योद्धा जो लद्दाख व बल्तिस्तान में शूरवीर के नाम से जाना जाता था, बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हुआ।

जोरावर सिंह की वीरता तथा अदम्य साहस से प्रभावित होकर तिब्बतियों ने तो-यू नामक स्थान पर उसकी समाधि बनाई जिसे 'सिंह का छोरतन' कहा जाता है।

जोरावर सिंह की मृत्यु होने पर उसके सैनिक तितर-बितर हो गए। अधिकांश को मार दिया गया या बंदी बनाया गया। कर्नल बस्ती राम ने ची-तांग दुर्ग पर 20 दिन तक कब्जा करके रखा तथा 240 सैनिकों के साथ अल्मोड़ा आ गया। प्रथम जनवरी 1841 को डोगरा सेना का तिब्बत पर अधिपत्य समाप्त हो गया।

डोगरा सेना की हार का एक मुख्य कारण अत्यधिक ठंड तथा बर्फ थी। एलैग्जैंडर कनिंघम के अनुसार, "जोरावर सिंह के सैनिकों को बहुत ही प्रतिकूल परिस्थिति में लड़ना पड़ा।" लड़ाई का मैदान समुद्रतल से 15 हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित था। युद्ध का समय सर्द ऋतु तथा जब तापमान दिन में भी जमाव बिंदु से नीचे चला जाता है। मैदानों के सैनिकों को इस स्थिति में लड़ना तथा रात काटना बहुत ही मुश्किल होता था। इस भीषण ठंड में

जोरावर सिंह हालांकि पढ़ा-लिखा न था लेकिन उसमें सैन्य, प्रशासनिक दक्षता सर्वोपरि थी। जोरावर सिंह ने एक साधारण जीवन जिया तथा वेतनभोगी ही रहा। उसने कभी अभियानों से पैसा अर्जित नहीं किया। वह अभियानों में प्राप्त एक-एक पैसे को खजाने में जमा करवाता था। वह अपनी जीत का समाचार नहीं भेजता था जबकि राजा गुलाब सिंह को इसकी जानकारी अन्य जानकारों से मिलती थी। एक बार गुलाब सिंह ने उससे उसके लिए कुछ मांगने को कहा तो उसने दो चीजें मांगीं, 'एक, खाने के लिए भोजन और पहनने के लिए कपड़े। उसके सैनिकों द्वारा लूटने की एक भी घटना का उल्लेख नहीं मिलता। ऐसा करने पर सख्त सजा का प्रावधान था।

अनेक सैनिकों के हाथ-पैर ठंड के कारण गल गए थे। अंतिम दिन आधे सैनिक हथियार पकड़ने की स्थिति में भी न थे।

एक अन्य कारण में 'डोगरा सेना में लद्दाखी तथा बल्ति सैनिक तिब्बती सेना से मिल गए। इस पलायन के सूत्रधार ब्रिटिश थे जो डोगरा सेना की हार का कारण बना।'

हिमालय के उत्तुंग शिखर पर एक योद्धा का सैन्य अभियान इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया है।"

जोरावर सिंह हालांकि पढ़ा-लिखा न था लेकिन उसमें सैन्य, प्रशासनिक दक्षता सर्वोपरि थी। जोरावर सिंह ने एक साधारण जीवन जिया तथा वेतनभोगी ही रहा। उसने कभी अभियानों से पैसा अर्जित नहीं किया। वह अभियानों में प्राप्त एक-एक पैसे को खजाने में जमा करवाता था। वह अपनी जीत का समाचार नहीं भेजता था जबकि राजा गुलाब सिंह को इसकी जानकारी अन्य जानकारों से मिलती थी।

एक बार गुलाब सिंह ने उससे उसके लिए कुछ मांगने को कहा तो उसने दो चीजें मांगीं, "एक, खाने के लिए भोजन और पहनने के लिए कपड़े। उसके सैनिकों द्वारा लूटने की एक भी घटना का उल्लेख नहीं मिलता। ऐसा करने पर सख्त सजा का प्रावधान था।

जोरावर सिंह में मानवता कूट-कूटकर भरी थी। वह विजय के उपरांत न तो धार्मिक स्थलों को तबाह करता और न ही लोगों को धर्म परिवर्तन के लिए कहता। जोरावर सिंह का नाम आज विश्व के महान सेना नायकों में लिया जाता है, जिनमें नेपोलियन, एलैग्जेंडर महान प्रमुख हैं। नेपोलियन ने फ्रांस से इटली पर अभियान के दौरान एल्प्स पर्वत को लांघा था। एलैग्जेंडर ने दुनिया जीतने के लिए लंबा अभियान किया था। उसी तरह जोरावर सिंह ने हिमालय को पार कर तिब्बत, लद्दाख, बल्तिस्तान पर कब्जा किया। भारत की सीमाओं का विस्तार किया। वह एक अदम्य सेना नायक था। लद्दाख क्षेत्र में अभी भी जोरावर सिंह के साहस की गाथा गाई जाती है।

मो. 0 94181 72686

संदर्भ :

1. A Legandry Hero , General Zorawar Singh, Dr. Braham Dutt Sharma
2. Thirty years in search ofGeneral Zorawar Singh, Amandeep Singh, July 19, 2017, Amandeep Blog
3. राकेश कुमार शर्मा, महान योद्धा जनरल जोरावर सिंह

कविता

तेरे पैरों को प्रिय

पंकज कश्यप 'लाड्डी'

तेरे पैरों को प्रिय,
किस पथ की तलाश है?
सरिता को देखा तुमने,
बहती जो निष्भाव है !

अचलता की प्रेरणा
यह पर्वत कहाँ लेते हैं;
कौन सूरज को
उगने की सलाह देते हैं?
नभ में रहना तारों का
ही तो स्वभाव है -
तेरे पैरों को प्रिय,
किस पथ की तलाश है ?



किसके कहने पर
बहती है समीर यहां,
किसके बहलाने पर
घटता बढ़ता है चन्द्रमा
प्रकृति के बेहिसाब का भी
कोई तो हिसाब है-
तेरे पैरों को प्रिय,
किस पथ की तलाश है?

कितने फूल वन-उपवन में
रोज खिलते हैं,
कितने रूपों में मेघ
बनते और बिगड़ते हैं
किस प्रेरणा का इन पर
पड़ा प्रभाव है-
तेरे पैरों को प्रिये,
किस पथ की तलाश है ?

Village Dak PO Dahab
Tehsil Nurpur District Kangra, HP-176051
Mob : 0 88941 06750

हिमाचल निर्माता

निज से ऊपर उठा व्यक्तित्व

◆ बी. एस. भाटिया



यह संसार एक मंच है जहां आदमी अपना अभिनय कर चला जाता है। पर्दा गिरता है और उसी मंच पर दूसरा व्यक्ति अभिनय करने लगता है। अभिनय चूंकि एक कला है इसलिए अभिनयकार के कौशल को उसकी कला के अनुसार सराहा जाता है तथा उसी के अनुरूप स्मरण रखा जाता है। इस संसार रूपी मंच पर कई कलाकार ऐसे भी हुए जिनकी याद पीढ़ी-दर-पीढ़ी आज भी जिंदा है। उनके कृत्य सदैव स्मरण किए जाते हैं। उन्होंने समाज को एक दिशा दी। उन्होंने अपने सारे स्वार्थो को त्याग कर एक नए इतिहास की रचना की। हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जनपद के चनाहल्ग गांव में 4 अगस्त, 1906 को जन्में यशवंत सिंह परमार पर यह बात सत्य चरितार्थ होती। बालक यशवंत कालांतर में हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. यशवंत सिंह परमार के नाम से विख्यात हुए। आज इन्हें और इनके कार्यो को कौन नहीं जानता? आज जिस विशाल हिमाचल में हम रह रहे हैं यह उन्हीं के प्रयासों की देन है। उन्हीं के प्रयासों से आज यह राज्य एक पूर्ण राज्य है।

उन्होंने अपने जीवन में संघर्ष ही पाया जो जीवनोपर्यंत जारी रहा। शिक्षा काल में ही उनमें नेतृत्व के गुण उभरने लगे थे। अपनी शिक्षा समाप्त कर वे सिरमौर रियासत में जिला सत्र न्यायाधीश के पद पर नियुक्त हुए। इस पद पर वे 1937 से 1941 तक रहे। एक मुकद्दमे में विवादास्पद फैसला देने पर उन्हें जिलावतन सहन करना पड़ा। वे आजादी की जंग में शामिल हो गए। अंग्रेजों की तानाशाही और पहाड़ों में व्याप्त राजशाही से त्रस्त जनता को मुक्त कराने का बीड़ा उठा वे आगे बढ़ते गए। भारत आजाद हुआ, हिमाचल बना और डॉ. यशवंत सिंह परमार इसके प्रथम मुख्य मंत्री बने। 30 पहाड़ी रियासतों के विलय के बाद उभर कर आए हिमाचल में विकास का सफर शून्य से आरंभ हुआ और आज यह प्रदेश प्रगति के पथ पर निरंतर अग्रसर है। डॉ. परमार ने अपने मुख्यमंत्रित्व काल में बागबानी, विद्युत और सड़क निर्माण को प्राथमिकता दी। उन्होंने जर्मनी द्वारा उपयोग में लाई जा रही त्रिमुखी वन खेती की नीति को हिमाचल में अपनाकर कृषि, वन तथा बागबानी विकास की लहर पैदा की।

डॉ. परमार की विचारधारा में पहाड़ों में गरीबी की व्यापकता के पीछे सड़कों का अभाव तथा आवागमन के न्यूनतम साधन थे। इसलिए उन्होंने सड़कों के निर्माण को महत्त्व दिया और सर्वप्रथम प्रत्येक जिला तथा उपमंडल को सड़कों से जोड़ने का बीड़ा उठाया।

पहाड़ी लोगों को बड़ी हेय दृष्टि से देखा जाता था। उन्होंने इस स्थिति से उबारने के लिए अनेक प्रयास किए। उन्होंने कहा था कि पहाड़ी लोगों को बुद्धू तथा मुंडू कहा जाता है, यहां के पहरावे पर हंसी उठाई जाती है इसलिए हमें अपने जीवन स्तर को ऊचा करना है। इसी के तहत उन्होंने शिक्षा कार्यक्रम को विस्तार दिया तथा वे अनेक गोष्ठियों, सम्मेलनों, सभाओं आदि में यहां के प्रमुख पहरावे लोइया तथा टोपी पहन कर जाते। लोग उन्हें अचरज से देखते। पूरी सभा में अकेले दिखने वाले परमार के बारे में सभी जानने को लालायित हो उठते।

आज उनका यह पहरावा विशेषकर हिमाचली टोपी विश्व स्तर पर हिमाचल की पहचान को इंगित करती है। यहां आने वाला

प्रत्येक पर्यटक याद्दाश्तस्वरूप हिमाचली टोपी खरीदना नहीं भूलता। बागबानी विकास उनका एक और पहलू रहा। उन्होंने सत्यानंद स्टोक्स द्वारा हिमाचल में लाए सेब के मूल्य को समझा और यहां के किसानों को बाग लगाने के लिए प्रेरित किया। हिमाचल अपने देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी सेब और आलू के उत्पादन के लिए जाना जाने लगा।

डॉ. परमार के मन में इस प्रदेश को एक जगमगाता प्रदेश देखने की इच्छा थी। वे कहा करते थे कि हिमाचल की नदियों में सोना बहता है। इससे हम और अधिक धन कमा सकते हैं। प्रत्येक गांव में बिजली पहुंचेगी। उनका यह सपना अपने जीवनकाल में तो पूरा नहीं हो पाया मगर कालांतर में यह पूरा हुआ। आज प्रदेश का प्रत्येक गांव बिजली की आपूर्ति से जगमगा रहा है। यहां आज 27436 मेगावाट विद्युत उत्पादन की क्षमता चिन्हित की गई है जिसमें से 10547 मेगावाट का दोहन कर लिया गया है।

वर्ष 1966 में डॉ. परमार ने अथक प्रयास करके इसे एक विशाल हिमाचल बनाया। पहली नवंबर, 1966 को पंजाब प्रांत के कुछ पहाड़ी क्षेत्रों को हिमाचल में विलय किया गया। विशाल हिमाचल बनने से यह सुविधा सुलभ हो गई कि अब चंबा जिले को पंजाब से न होकर अपनी ही भूमि से जाना संभव हो गया।

डॉ. परमार ने कभी भी संकुचित और आत्मकेंद्रित होकर नहीं सोचा। उन्होंने कहा था कि किसानों को अधिक उत्पादन और अपने जीवन स्तर को ऊंचा करने के लिए त्रिमुखी वन खेती को ही अपनाना चाहिए। इस नई व्यवस्था में उन्होंने कृषि, पशुपालन तथा बागबानी को भी शामिल किया। उन्होंने कहा कि किसानों को ऐसे पेड़-पौधे लगाने चाहिए जो उन्हें इमारती लकड़ी के साथ-साथ चारा भी प्रदान करें। लूसिनिया, रूबीनिया जैसे विदेशी पौधे उन्होंने यहां लाकर किसानों को भेंट किए।

डॉ. परमार की एक विशेषता और थी जो उनकी लोकप्रियता का भी सबब बनी। वे जहां जाते वहीं के से बन जाते। यहां के प्राचीन खान-पकवान उन्होंने अनेक भोजों में शामिल करवाए। वे गांवों में विशेष भोजन की बजाय मक्की और साग को श्रेष्ठ मानते थे। मेले और उत्सवों में लोकानुरंजन के आयोजन विशेषकर नृत्यों में शामिल होकर प्रायः भूल जाते थे कि वे मुख्यमंत्री भी हैं।

लोगों की मनोभावना को पढ़ना उनकी कला थी। वे जानते थे कि अमुक समय में हमारी जनता की क्या मंशा है? यही कारण था कि जब चहूं ओर परिवार नियोजन कार्यक्रम का विरोध हो रहा था, इस प्रदेश में लक्ष्यों से अधिक कार्य हो रहा था। एक सभा में उन्होंने कहा था कि परिवार नियोजन सरकार का नहीं जनता का कार्यक्रम है। यहां की भौगोलिक स्थिति के दृष्टिगत उन्हें अपने परिवार को सीमित करना चाहिए। वे दृढ़ संकल्प व्यक्ति थे जो ठान लेते कर लेते थे। हिमाचल को 1971 में पूर्ण राज्यत्व का दर्जा दिलाने के बाद वे विकास यात्रा पर आगे बढ़े। उन्होंने प्रदेश के दुर्गम-से-दुर्गम स्थल की यात्रा की। वहां की स्थितियों और समस्याओं को समझा और तदनुरूप योजनाएं परिकल्पित कीं। अथक आगे बढ़ते गए। अभी और भी बहुत कुछ करना चाहते थे, मगर उम्र ने भी अपना रूप दिखाना आरंभ कर दिया था।

28 जनवरी, 1977 को उन्होंने स्वेच्छा से मुख्यमंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया। त्याग पत्र के तुरंत बाद वे जिला मंडी की सुकेत घाटी में चले गए जहां उन्होंने लगभग 30 वर्ष पूर्व प्रजामंडल आंदोलन के माध्यम से वर्तमान हिमाचल की नींव रखी थी। वर्ष 1977 में डॉ. परमार लोकसभा चुनाव के सिलसिले में उत्तर प्रदेश में कार्यरत थे कि कर्ण प्रयाग स्थान पर एक कार दुर्घटना में बुरी तरह घायल हो गए। उनके मस्तिष्क में चोटें आईं थीं। उपरांत वे ठीक से स्वास्थ्य लाभ नहीं कर पाए और 2 मई, 1981 को अपनी इहलीला समाप्त कर गए। वे आज हमारे बीच नहीं हैं, मगर यह हिमाचल जहां हम खुले रूप से कुलांचे भर सकते हैं, यह आकार और उचित दर्जा उनके प्रयत्नों का प्रतिफल है। बेशक इस संघर्ष में वे अकेले नहीं थे। मगर उन्होंने इस प्राप्ति के लिए प्रदेश की छोटी-से-छोटी इकाई को संगठित किया और उसे सक्रिय किया। वे अपने निज से ऊपर उठ कर प्रदेश को एक आदर्श, समृद्ध राज्य बनाते रहे। उनके सपने आज फलीभूत हो रहे हैं।

मो. 0 94184 78878

पहाड़ों की पीड़ा का डॉक्टर

सर्दियों में जब पहाड़ बर्फ से दब जाते हैं और लोग घरों में कातते-बुनते, खाते-पीते, किस्से-कहानियां सुनते-सुनाते वक्त गुजारते हैं, उनमें पहाड़ी जनजीवन के दुःख-दर्द से जूझते डॉ. यशवंत सिंह परमार के किस्से भी शामिल हैं। रियासतों की बेठ खत्म करने और भोले-भाले लोगों में जागरण की भावना पैदा करने के लिए डॉ. परमार का अपने साथियों के साथ पिट्ठू और डंडा लिए गांव-गांव पहुंचना और पीने के लिए छाछ मांगने के बहाने बैठकर बगावत की धुन छेड़ देना जैसी बातें आज भी बुजुर्ग बड़े चाव से सुनाते हैं। कहते हैं जब डॉ. परमार पहले पहल गांव आए तो नंबरदार ने धाह (लंबी आवाज़) लगाकर आर-पार के गांव से लोगों को बुलाया। पगडंडियों से चढ़ते-उतरते लोगों की भीड़ जम गई। कुछ को मंजों पर उठाकर भी लाया गया। कई मर्द-औरतों ने नब्ज़ दिखाने के लिए अपने बाजू एक साथ आगे किए। यह देखकर अपनी सहज आवाज़ में डॉ. परमार ने जवाब में कहा, "अरे भाई, मैं वो डॉक्टर नहीं हूं, जो आप लोगों की बीमारी का इलाज कर सकूं।" लोगों की समझ से बाहर था कि यह कैसा डॉक्टर है। आखिर उस डॉक्टर ने पहाड़ी लोगों की पीड़ा का जो इलाज किया आज वह किसी से भी छिपा नहीं है।

अभिभावक का छोड़ कर चले जाना



कृतज्ञ प्रदेशवासियों की ओर से राज्यपाल आचार्य देवव्रत व मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर ने नई दिल्ली में पूर्व प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी को पुष्प अर्पित कर श्रद्धांजलि देते हुए।

राष्ट्र निर्माण की नई इबारत में अटल अभिदान

विराट व स्नेहिल व्यक्तित्व के धनी श्री अटल बिहारी वाजपेयी के अवसान से सम्पूर्ण भूमण्डल शोकाकुल हुआ। 16 अगस्त, 2018 को भारत मां का सपूत इस दुनिया को छोड़ कर चला गया। एक महान राजनीतिज्ञ, प्रखर वक्ता, उच्च कोटि के संवेदनशील कवि एवं पत्रकार, दार्शनिक व आदर्श देशभक्त व हर दिल अजीज शख्सीयत के जाने से देश के साथ- साथ हिमाचल प्रदेश के हर नागरिक को भी गहरा दुःख पहुंचा है। उनकी शख्सीयत एक अटल आदर्शों पर खड़ी नज़र वाली है। वे दृढ़ निर्णय लेने वाले शख्स थे। उनकी राजनैतिक समझ तथा दूरदर्शिता का ही नतीजा है कि आज वे सशक्त राष्ट्र के सशक्त नेताओं की श्रेणी में खड़े नज़र आते हैं।

वे राजनीति से ऊपर उठकर बात करने वाले नेता थे। आज की युवा पीढ़ी को तो उनके विचारों को सुनने का शायद ही मौका मिला हो लेकिन साठ व सतर के दशक में पैदा हुए हर शख्स को जब भी अटल जी के आने का आभास होता तो उनके कदम स्वयं ही उनकी सभा की ओर बढ़ जाते। उनके मुख से निकला एक एक शब्द राष्ट्र प्रेम, राष्ट्र भक्ति, राष्ट्र निर्माण तथा भारत को एक सशक्त राष्ट्र बनाने की परिभाषा को व्याख्यायित करता नज़र आता था। साहित्यिक गोष्ठियों तथा कवि सम्मेलनों में उनकी कविताएं हर श्रोता में जैसे राष्ट्रीयता की भावना जगा देतीं, वहीं वे इसके माध्यम से अपने जीवन के आदर्शों को भी समाज के सामने रखते थे।

15 अगस्त, 1947 को अटल जी द्वारा लिखी कविता 'स्वतंत्रता दिवस की पुकार' का एक एक शब्द उनके दर्शन को दर्शाता है।

पंद्रह अगस्त का दिन कहता,/ आजादी अभी अधूरी है।
सपने सच होने बाकी हैं,/ रावी की शपथ न पूरी है...

उस स्वर्ण दिवस के लिए आज से/ कमर कसें बलिदान करें।
जो पाया उसमें खो न जाएं,/जो खोया उसका ध्यान करें।।

हिमाचल के साथ अटल जी का खासा रिश्ता-नाता रहा। वे हिमाचल की सुन्दरतम वादियों से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मनाली के समीप प्रीणी में अपना घर बनाया और वह हिमाचल को अपना दूसरा घर मानते थे। वे यहां छुट्टियां मनाने हर साल आते थे। उन्होंने यहां घर के प्रांगण में सेब के बागीचे में बैठ कर अनेक कालजयी कृतियों की रचना की है। घर के साथ उन्होंने मन्दिर भी बनवाए। हिमाचल को लेकर अटल जी ने अनेक कविताएं भी लिखीं, जिसमें नदियां, झरने जंगल, किन्नरियों का देश/.... दोनों हाथ पसारे बुलाती हमें मनाली प्रमुख हैं।

देश के प्रधानमंत्री रहते हुए उन्होंने हिमाचल को अनेक तोहफे दिए।

वर्ष 2002 हिमाचल के लिए यादगार वर्ष है। जब प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने जून-जुलई माह में 10 दिन मनाली (प्रीणी) में प्रकृति की गोद में बिताए। इस दौरान वे एक दिन लाहौल स्पीति जिला मुख्यालय केलंग तथा एक दिन मण्डी व बिलासपुर जिले की सीमा पर स्थापित होने वाली आठ सौ मेगावाट की कोल बांध जलविद्युत परियोजना की आधारशिला रखने कांगू गांव गये। पांच जून, 2000 को वाजपेयी ने सासे (बाहंग) में विश्व पर्यावरण दिवस मनाया। यह सौभाग्य ही है कि उनके साथ उस वक्त वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने भी पौधरोपण किया था। गरीब बच्चों को स्वेटर दान दिए।

कोलबांध परियोजना का शिलान्यास

5 जून, 2000 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 800 मैगावाट की कोलबांध परियोजना का शिलान्यास बिलासपुर जिले के कांगू में किया। उन्होंने कहा कि विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर कोल बांध जल विद्युत परियोजना संसार के लिए एक तोहफा है क्योंकि जल विद्युत दोहन से प्रदूषण नहीं होता। आज यह परियोजना पूर्ण होकर देश की ऊर्जा जरूरतों को पूरा कर रही है। अटल बिहारी वाजपेयी ने जिसका नींव पत्थर रखा, वह आज हजारों घरों को रोशन तथा राष्ट्र के आर्थिक उत्थान में योगदान दे रहा है।

पार्वती परियोजना का शिलान्यास

दिसम्बर, 1999 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 2051 मेगावाट की पार्वती जल विद्युत परियोजना का शिलान्यास कुल्लू से 41 किलोमीटर दूर सैंज कस्बे में एशिया की दूसरी सबसे बड़ी परियोजना का शिलान्यास किया। वही राज्य के लिए 400 करोड़ रुपये के आर्थिक पैकेज की घोषणा भी की। इस मौके पर भी वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी भी उपस्थित थे।

रोहतांग सुरंग का सपना

3 जून, 2000 का दिन हिमाचल के गौरवमयी इतिहास में एक स्वर्णिम दिन है। क्योंकि इस दिन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने लाहौल स्पीति जिले के मुख्यालय केलंग में रोहतांग सुरंग बनाने की घोषणा की। उन्होंने एक भारी जनसमूह को सम्बोधित करते हुए कहा था कि राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण इस सुरंग के निर्माण से जहां जनजातीय जिला हर मौसम में शेष भारत से जुड़ा रह सकेगा, वहीं लेह-लद्दाख को सैन्य सामग्री भेजने के लिए भी वैकल्पिक मार्ग की व्यवस्था होगी।

इन पलों के साक्षी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी भी थे, जो उस समय भाजपा के राष्ट्रीय महामंत्री भी थे। आज यह सुरंग के दोनों छोर आपस में मिल गये हैं तथा लगभग 80 प्रतिशत कार्य पूर्ण हो चुका है। आगामी वर्ष इसे देश को समर्पित कर दिया जाएगा। मुख्यमंत्री श्री जयराम ठाकुर ने गत जुलाई माह में रोहतांग सुरंग के निर्माण कार्यों की समीक्षा की और वे सुरंग से होते हुए लाहौल पहुंचे। उन्होंने कहा कि अटल बिहारी वाजपेयी जी का सपना साकार हो गया है तथा उन्होंने उनके निधन पर इस बात का दुख प्रकट किया कि वे अपनी आंखों से इसे देख नहीं पाए जबकि हिमाचल प्रदेश सरकार इस रोहतांग सुरंग का नामकरण अटल बिहारी वाजपेयी जी के नाम पर करने जा रही है।

औद्योगिक विकास का तोहफा

वर्ष 2002 में सोलन दौरे के दौरान प्रधान मंत्री श्री वाजपेयी के समक्ष हिमाचल प्रदेश को औद्योगिक पैकेज देने की मांग उठी थी और अटल जी के प्रयासों से वर्ष 2003 में हिमाचल को विशेष पैकेज मिला। इस पैकेज के बल पर हिमाचल ने औद्योगिक विकास की नई इबारत लिखी। उन्होंने राज्य के विकास के लिए भी करोड़ों रुपये के आर्थिक पैकेज दिए।

प्रधान मंत्री ग्राम सड़क योजना

अटल बिहारी वाजपेयी की सोच वाली योजना 'प्रधान मंत्री ग्राम सड़क योजना' से हिमाचल में गांव-गांव तक सड़कों के निर्माण का रास्ता प्रशस्त हुआ। इससे गांवों में आर्थिक विकास के नए युग का सूत्रपात हुआ।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी हर हिमाचली के दुःख दर्द को समझते थे। उनसे भेंट करने वालों से वे हिमाचल के बारे में जानकारी लेते रहते थे। वर्ष 1995 में व्यास नदी में आई बाढ़ से वे बहुत आहत हुए थे। वे स्वयं कुल्लू आए थे और गांवों का दौरा कर लोगों के दुःख-दर्द को जाना था। उन्होंने कुल्लू से व्यास के बाएं तट से लेकर मनाली तक जगह-जगह कई किलोमीटर पैदल चल लोगों के दुख-दर्द को जाना तथा उन्हें गले लगाकर संवेदनाएं प्रकट की थीं। यही कारण है कि कुल्लू मनाली के हर शख्स के मन में वे बसते हैं। उनके जाने का गम सब ओर है। उनके प्रति स्नेह तथा प्रेम तथा अपने के खो जाने का गम इस बात से झलकता है कि उनके निधन का समाचार सुन कर अटल के गांव प्रीणी में चूल्हे तक नहीं जले। ग्रामवासियों ने ही नहीं बल्कि संपूर्ण प्रदेश ने अपना अभिभावक, प्रीणी के बच्चों ने मामा को खो दिया।

हिमाचल में समृद्धि, उन्नति तथा प्रगति की की ठोस नींव रखने में श्री अटल जी का महान योगदान रहा है जिसके लिए प्रदेश का हर नागरिक उनका सदैव ऋणी रहेगा। आज वे हमें छोड़ कर चले गए लेकिन वे मन में बसे रहेंगे।

(लेखक हिमप्रस्थ के वरिष्ठ संपादक हैं)

आलेख

कवि हृदय अटल जी का 'पर्वत प्रेम'

◆ सुदर्शन वशिष्ठ

कवि हृदय भारत रत्न अटल जी, सौम्य सौहार्द की प्रतिमूर्ति, ऐसा सादगीपूर्ण किंतु विराट व्यक्तित्व सदियों बाद पैदा होता है। एक प्रभावशाली, उदारवादी, शालीन और सर्वमान्य नेता के रूप में प्रतिष्ठापित अटल जी ने ग़ज़ब का आकर्षण लिए जीवन जीया। सन् 1992 में इन्हें पद्मभूषण से नवाजा गया, 1993 में डी. लिट की उपाधि तो 2015 में भारत रत्न। वे एक कुशल राजनीतिज्ञ और प्रशासक के साथ ही भाषाविद्, कवि, पत्रकार व लेखक के रूप में जाने जाते हैं। काल के कपाल पर लिखने और मिटने की ताकत उनके सीने में थी। उनका दिल, देश के लिए धड़कता था। इसलिए हार व जीत से वे विचलित नहीं होते थे। उनका एक एक शब्द, आदर्श था, है और रहेगा। एक ओजस्वी कवि के रूप में उनकी पहचान रही। कविताओं को लेकर उन्होंने कहा था, 'मेरी कविता जंग का एलान है। पराजय की प्रस्ताव नहीं। वह हारे हुए सिपाही का नैराश्य निनाद नहीं, जूझते योद्धा का जय संकल्प है। वह निराशा का स्वर नहीं, आत्म विश्वास का जयघोष है। उनकी कविता का संकलन 'मेरी इक्यावन कविताएं' खूब चर्चित रहा, जिसमें 'हार नहीं मानूंगा, रार नहीं ठानूंगा' खास चर्चा में रही। **पहाड़ से प्रेम :** अटल जी का पहाड़ प्रेम जगजाहिर है। बहुत पहले वे जगतसुख में एक किराए के मकान में रहे। संभवतः 1995 में ज़मीन खरीदी और प्रीणी को एकांत वास के लिए चुन कर अढ़ाई मंजिल का घर बनाया। ये घर ब्यास के बाएं किनारे सड़क से दिखता है। घर के आसपास सेब का बागीचा है, धान के खेत हैं। इनके घर में स्थानीय लोगों का तांता लगा रहता था। गर्मियों में वे यहां रहते और पूरा प्रधानमंत्री कार्यालय यहीं से संचालित होता। उपायुक्त व अन्य अधिकारी घर से ठीक ऊपर एक होटल में रहते। अटल जी को कुल्लू के लाल चावल, राजमाह, सिड्डू और ट्राउट मछली बहुत पसंद थी। वे स्थानीय स्कूल में जा कर बच्चों को अपनी कविताएं भी सुनाया करते थे। वे बागीचे में बैठ कर कविताएं लिखते थे। वहां बहुत समय तक आने जाने और रहने से कई स्थानीय लोग उनके मित्र बन गए जिनमें टशी दावा एक थे। आवास बनने से पूर्व भी वे मनाली आते रहे। उनकी प्रसिद्ध कविता 'ऊंचाई' मनाली के सर्किट हाउस में लिखी कविता है। पर्वत को उन्होंने केवल सौंदर्य वर्णन के लिए नहीं चुना बल्कि जीवन की निर्मम सच्चाइयों के लिए एक बिंब के रूप में प्रयोग किया। 'ऊंचाई' कविता एक उत्कृष्ट रचना है जिसमें पहाड़ के माध्यम से अनेक बातें कही गई हैं :

ऐसी ऊंचाई जिसका स्पर्श पानी को पत्थर कर दे
ऐसी ऊंचाई जिसका दरस हीन भाव भर दे
अभिनंदन की अधिकारी है
आरोहियों के लिए आमंत्रण है
उस पर झण्डे गाड़े जा सकते हैं
किंतु कोई गौरेया वहां नीड़ नहीं बना सकती
न कोई थका मांदा बटोही उसकी छांव में
पलक झपका सकता है
सच्चाई यह कि केवल ऊंचाई ही काफी नहीं होती
सब से अलग परिवेश में पृथक अपनों से कटा कटा
शून्य में अकेला खड़ा होना
पहाड़ की महानता नहीं, मजबूरी है।
ऊंचाई और गहराई में आकाश पाताल की दूरी है।

अटलजी का काव्य संकलन 'मेरी इक्यावन कविताएं' किताब घर प्रकाशन से छपा जो बहुत चर्चित रहा। इसी प्रकाशन से मेरी पुस्तकें भी छपीं हैं। प्रकाशन के स्वामी सत्यव्रतजी ने बताया कि उनका यह संग्रह सम्भवतः नागपुर के एक समारोह में रखा गया जहां यह हाथोहाथ बिक गया।

अटलजी गम्भीर बीमार भी रहे। जीवन के अंतिम दिनों में वे बहुत अशक्त और विवश हो गए थे। यह भी संयोग ही कहा जाएगा कि अटलजी की कविताओं में 'मौत' या 'काल' का उल्लेख बार–बार आता है :

मौत खड़ी थी सर पर
इसी इंतजार में थी
ना झुकेगा ध्वज मेरा
15 अगस्त के मौके पर
तू ठहर इंतजार कर
लहराने दे बुलंद इसे
मैं एक दिन और लड़ूंगा
मौत तेरे से
मंजूर नहीं है कभी मुझे
झुके तिरंगा स्वतन्त्रता के मौके पर।

एक और कविता देखिए :


तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी का लाहौल स्पीति दौरे के दौरान स्थानीय लोग स्वागत करते हुए। (फाइल चित्र)

आदमी मौत को जानता है पर
मानता नहीं।
आदमी ईश्वर को
मानता है पर
जानता नहीं।
जिस दिन आदमी
मौत को मान लेगा
उस दिन आदमी
ईश्वर को जान लेगा।

प्रदेश के भाषा-संस्कृति विभाग में सेवारत रहते हुए ख़ाकसार को उनको समर्पित कवि सम्मेलनों के संचालन का अवसर प्राप्त हुआ। ये कवि सम्मेलन मनाली में हुए; सम्भवतः दो बार पर्वतारोहण खेल संस्थान में और तीसरी बार सेना के सभागार में। ऐसा बहुत कम होता है कि देश के प्रधानमन्त्री के साथ इतना समय और इतनी बार सान्निध्य मिले।

अपने घर प्रीणी में वे प्रायः अवकाश पाने ही आते थे। गर्मियों के आगमन के दौरान हिमाचल सरकार की ओर से कवि सम्मेलन किया जाना तय होता था जिसकी स्वीकृति वे सहर्ष देते थे।

यहां रहते हुए ही उन्होंने नग्गर की रोरिक आर्ट गैलरी के लिए उस समय एक करोड़ का अनुदान भारत सरकार से दिलाया। यहीं रहते हुये उन्हें रोहतांग से सुरंग निकालने की सूझी क्योंकि करगिल युद्ध के समय सेना को रोहतांग होते हुए वहां पहुंचने में बहुत समय लगता था।

जब पहली बार पर्वतारोहण संस्थान में संचालन के लिए उपस्थित हुआ तो मन में घबराहट थी। प्रधान मन्त्री को कैसे संबोधित किया जाएगा, कवियों को कैसे आमन्त्रित किया जाएगा, समारोह कैसा रहेगा आदि-आदि। पहले मुख्यमन्त्री, राज्यपाल और महामहिम राष्ट्रपति तक के कार्यक्रम संचालित किए थे किंतु प्रधान मन्त्री के साथ यह पहला आयोजन था। आयोजन से पूर्व इसकी रुपरेखा, कवियों का चयन लोक सम्पर्क विभाग के निदेशक बलराम शर्मा जी के साथ तत्कालीन मुख्यमन्त्री प्रेमकुमार धूमल द्वारा एक बैठक में किया गया। क्योंकि भाषा विभाग के निदेशक श्री के.आर. भारती उस समय आंख के आप्रेशन के कारण चण्डीगढ़ में थे अतः उपनिदेशक के नाते मुझ पर ये जिम्मेवारी आन पड़ी। विभाग के सचिव श्री अजय प्रसाद बहुत कड़क थे जिनसे सब भयाक्रांत रहते थे। उन्होंने मुझे बुला कर कहा कि तुम वहां जाओगे और आयोजन ठीकठाक रहना चाहिए।

पर्वतारोहण संस्थान में हुए उस सम्मेलन में सबसे पहले मैंने केशव को कविता पढ़ने के लिए आमंत्रित किया। अटलजी बिना कोई जल्दबाजी दिखाए बड़े ही धैर्य से सबको सुनते रहे। अंत में मैंने भी मौका देख अपनी ''अतिथि और औरतें'' कविता सुनाई जिसे मैं एक सीरियस कविता समझता था किंतु श्रोताओं ने इसका मजा एक हास्य कविता की तरह लिया।

अंतिम सम्मेलन के समय यहां कांग्रेस सरकार थी मगर सम्मेलन उसी जोशोखरोश के साथ किया गया। उस समय संस्कृति सचिव अशोक ठाकुर थे और सम्मेलन में जाने के मेरे ही आदेश हुए।

इस बार सम्मेलन मनाली के समीप सेना के सभागार में हुआ। मेरे लिए यह बड़ा कठिन था कि मैं अकेला मंच में खड़ा होऊं, एक कवि का उसकी अनुपस्थित में परिचय दूं फिर उसे बुला कर पढ़वाऊं। ख़ैर, इस कठिन परीक्षा में गुजरा। मंच पर अकेले खड़े हो प्रधानमन्त्री सहित सब का स्वागत अभिवादन किया और प्रधान मन्त्री की हवा में इजाजत लेते हुए सम्मेलन आरम्भ करवाया। हालांकि स्टेज से लाइट्स की वजह से मुझे कुछ नज़र नहीं आ रहा था। अब एक कवि आता, पढ़ कर चला जाता। फिर दूसरा आता। अतः मैंने साहस कह कुछ मजाकिया लहजे में अपनी कविता भी सुना डाली। अब इतनी दूर से मैं अटलजी से कविता के लिए कैसे अनुरोध करता जबकि वे मुझ साफ़-साफ़ नज़र नहीं आ रहे थे। ये तो शुक्र हुआ कि किसी पत्रकार ने अटल जी से कविताएं सुनने का अनुरोध कर दिया।

माहौल जमा नहीं अतः वहीं बैठे-बैठे उन्होंने थोड़ा ही काव्य पाठ किया। मुझे कुछ पता नहीं चला कविताएं कैसी गई, लोगों ने उन्हें सराहा भी या नहीं। हां, जब बाहर निकले तो संस्कृति सचिव ने मेरी पीठ थपथपाई और 'वेल डन' बोला।

वह यादगार सम्मेलन

छः जून 2000 को पर्वतारोहण संस्थान में हुआ वह सम्मेलन यादगार था। सम्मेलन में अटलजी ने जो कविताएं सुनाईं, वे संयोग से काल या मृत्यु पर थीं। यह कवि सम्मेलन तत्कालीन मुख्यमंत्री प्रेमकुमार धूमल के निर्देशन पर हुआ था जिस में तत्कालीन राज्यपाल विष्णुकांत शास्त्री की गरिमामय उपस्थिति ने चार चांद लगा दिए। उन्होंने प्रदेश के मंदिरों में पुनश्चर्या कार्यक्रम चलाया था। अतः हम लोगों से बहुत जुड़ गए थे। विष्णुकांतजी स्वंय भी कवि व विद्वान साहित्यकार थे।

सम्मेलन में प्रदेश के कवियों के कविता पाठ को अटलजी ने बड़े धैर्य से सुना। उन्होंने कोई जल्दबाजी नहीं दिखाई। पूरा समय बैठे रहे। ऐसा सभी सम्मेलनों में हुआ।



प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी लाहौल स्पीति के ठोलंग गांव के अपने परम मित्र टशी दावा के साथ। (फाइल चित्र)

अपने काव्य पाठ से पहले उन्होंने यह उद्‌गार रखे :

''राजनीति और कविता साथ-साथ नहीं चल सकते। राजनीति में आने से विघ्न पैदा हो गया। सरकार में यह भी सुनना पड़ता है कि सरकार कुछ नहीं कर रही है। शिकायत उचित भी हो सकती है, उचित नहीं भी हो सकती। लेकिन कविता के लिए माहौल बिगाड़ देती है। देखिए सात आठ दिन से मनाली में हूं। पहले मनाली आ कर कुछ कविताएं लिख चुका हूं लेकिन इस बार कविताएं लिखना सम्भव नहीं हुआ। लंका में क्या हो रहा है, इसकी चिंता है। हमारे मित्र जो हरियाणा से गए हैं और फिजी में बसे हैं, उन पर क्या गुजर रही है, यह बात मन को कचोटती है।''

कविता पाठ का प्रारम्भ उन्होंने ''ऊंचाई'' कविता से किया जो अटलजी की बहुत ही प्रसिद्ध कविताओं में है :

''ऊंचे पहाड़ पर पेड़ नहीं लगते
पौधे नहीं उगते, न घास जमती है
जमती है सिर्फ बर्फ
जो कफ़न की तरह सफेद और मौत की तरह ठण्डी होती है।
....जो जितना ऊंचा, उतना ही एकाकी होता है
हर भार को वह स्वंय ही ढोता है
चेहरे पर मुसकान चिपका, मन ही मन रोता है।
जरूरी है कि ऊंचाई के साथ विस्तार भी हो
जिससे मनुष्य ठूंठ की तरह खड़ा न रहे।

इसी कविता की ये प्रसिद्ध पंक्तियां हैंः

''धरती को बौनों की नहीं, ऊंचे कद के इंसानों की जरूरत है
किंतु इतने ऊंचे भी नहीं कि
पांव तले दूब ही न जमे
कोई कांटा न चुभे, कोई कली न खिले।
मेरे प्रभु! मुझे इतनी ऊंचाई कभी मत देना
गैरों को गले न लगा सकूं
इतनी रुखाई कभी मत देना।''

इसके बाद ओस की बूंदे पर कविता सुनाई :

''हरि हरि धूप पर ओस की बूंदें
अभी थीं, अभी नहीं हैं।''

अंतिम कविता से पहले अटलजी ने कहा :'' एक बार मैं बहुत बीमार हो गया था, तब एक कविता लिखी थीः **''मौत से ठन गई''**

''जूझने का मेरा तो इरादा न था
मोड़ पर मिलेगी, इसका वादा न था
रास्ता रोक कर वो खड़ी हो गई
यह लगा ज़िंदगी से बड़ी हो गई
मौत की उम्र क्या दो पल भी नहीं
ज़िंदगी सिलसिला आजकल का नहीं
मैं जी भर जिया, मैं मन से मरूं
लौट कर आऊंगा, कूच से क्यों डरूं!
तू दबे पांव चोरी छिपे न आ
सामने वार कर मुझे आजमा।

''मौत की उम्र क्या दो पल भी नहीं'', किताब में **'दो पल''** के बजाए **''तीन पल'** छप गया था जिस पर वे हंस कर बोले, प्रकाशक ने दो पल का तीन पल कर दिया। **एक पल और मिल गया तो मैं क्यों कर मरूंगा!**

जब मोदीजी ने कविता सुनाई

इस समारोह में वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी भी उपस्थित थे। सम्भवतः उन दिनों हिमाचल भाजपा के प्रभारी थे। अटलजी की इस कविता को सुन मोदी जी एकदम से उठ मंच पर आ गए और ओजभरा भावपूर्ण भाषण दिया।

मोदीजी ने कहा :

''धूमलजी जब मेरा स्वागत कर रहे थे तो उन्होंने कहा कविता सुनानी पड़ेगी। वाजपेयीजी ने भी कहा, हां, भई छोड़ेंगे नहीं। लेकिन जिस कविता को अटलजी ने अभी कहा, मैं अपने आप को रोक नहीं

पाया और मैं सामने से ऊपर चला आया। 23 नवंबर 1989 को धर्मयुग में मैंने यह कविता पढ़ी थी। अटलजी ने अस्पताल में यह कविता लिखी थी। दूसरे दिन उनका मेजर आप्रेशन होने वाला था। न्यूयार्क में बिस्तर पर थे और उस कविता को मैंने 23 नवंबर को पढ़ा था। मैं तब राजनीति में नहीं था। कल्पना नहीं थी कि अटलजी के इतना करीब जाने का सौभाग्य प्राप्त होगा। एक श्रद्धा थी। उस कविता ने मुझे रुलाया था। दो दिन तक मैं रोता रहा। और मन के अंदर जो व्यथा पैदा हुई थी उसने कविता का रूप धारण किया था। मेरी मातृभाषा गुजराती है। जो भाव मेरे मन में उठे थे उसमें दर्द भी था, आक्रोश भी था। अटलजी के मुंह से मौत बात...मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। और उस कविता के संदर्भ में, 89 में गुजराती की एक मैगेजीन में मेरे भाव छपे थे...गुजराती में हैं, आप समझ पाएंगे, मैं यहां कहना चाहता हूं:

''मातृभूमि ना सेवा मा समर्पित
एक जीवन पुष्प
भावावस्था मा बात कहि दे छे
जिंदगी ना दस्तावेज।''

यह एक लम्बी कविता थी। इसके बाद अपने ओज और विद्वतापूर्ण भाषण में मोदी जी ने कहा कि मौत का मनन भला कैसे हो! मौत का मनन ज़िदगी की प्रेरणा कैसे बन सकता है! जीवन में तो धीर-व्रत का स्मरण ही शोभा देता है। अटलजी की कविता के शब्द मैंने लिए हैं: 'टूट सकता है मगर झुक नहीं सकता' का जयनाद करने वाला आज मौत की बात क्यों कर रहा है! आप तो वीरव्रती परंपरा के अंग हैं।

मोदीजी गीता के श्लोकों का उल्लेख करते हुए नचिकेता का स्मरण कराया जिसने मौत क्या है, यह प्रश्न पूछा और मौत के सामने जा खड़ा हुआ। उन्होंने कहा, हम स्मरण करें विशाल राज्य, सुंदर पत्नी को छोड़ कर परिवाजक बन गए उस बुद्ध का। हम स्मरण करें मां को छोड़ कर भगवा ध्वज लेकर उस आदिशंकर का; हम मौत का स्मरण क्यों करें! दधीची, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, राणा सांगा, महाराणा प्रताप, शिवाजी, लक्ष्मीबाई से गुरु गोबिंद सिंह, रानी लक्ष्मीबाई तक के उदाहरण देते हुए कहा कि न जानें कितनी ही गाथाएं हमारे सामने हैं, हम भला मौत का स्मरण क्यों करें! रामकृष्ण परमहंस, महर्षि रमण के होते हुए आप भला मौत का मनन कैसे का सकते हैं! अटलजी ! आपके मुंह से मौत की बात अच्छी नहीं लगी। लगभग बारह साल बाद मैंने अपने उद्गार आपके सामने रखे हैं।

'अभिनंदन' कृष्ण निवास लोअर पंथा घाटी, शिमला-171009, मो. 0 94180 85595

सदानीरा नदियों में समाई अटल की अस्थियां

भारत रत्न एवं पूर्व प्रधान मंत्री स्व. श्री अटल बिहारी वाजपेयी की अस्थियों को समूचे देश की भांति हिमाचल प्रदेश की पांच सदानीरा नदियों में विधि-विधान के साथ प्रवाहित किया गया। मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर सहित प्रदेश के चार दिग्गज नेताओं सर्वश्री जे.पी. नड्डा, शांता कुमार व प्रेम कुमार धूमल ने पूर्व प्रधान मंत्री की अस्थियों को प्रवाहित किया। ब्यास नदी के आंचल में अस्थि विसर्जन से पूर्व मुख्य मंत्री ने मनाली स्थित अटल बिहारी वाजपेयी पर्वतारोहण संस्थान के सभागार में आयोजित सर्वधर्म प्रार्थना सभा में कहा कि अटल जी ने अपना संपूर्ण जीवन मूल्यों व आदर्शों पर ही जिया। उनके विराट व्यक्तित्व के कारण ही समाज में सर्वदलीय व सर्वसमाज में उनकी स्वीकार्यता रही। राजनेता से लेकर साहित्यकार व समाज सेव से लेकर प्रधान मंत्री के रूप में उनका अविस्मरणीय योगदान देश सदैव याद रखेगा।

सांसद एवं पूर्व मुख्यमंत्री श्री शांता कुमार ने चंबा जिले में बहने वाली रावी नदी में अटल जी की अस्थियां विसर्जित कीं। इस दौरान शांत कुमार ने कहा कि वाजपेयी अपने आपमें एक विचार थे। उनके विचारों को अपनाना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री जगत प्रकाश नड्डा ने पांवटा साहिब में यमुना नदी में अटल बिहारी वाजपेयी की अस्थियों को प्रवाहित किया जबकि पूर्व मुख्यमंत्री श्री प्रेम कुमार धूमल ने तत्तापानी के समीप सतलुज नदी में प्रवाहित किया।

अटल बिहारी वाजपेयी की अस्थियां विसर्जित करने के कार्यक्रम से पूर्व शिमला में सर्वदलीय प्रार्थना सभा आयोजित की गई थी जिसमें विभिन्न दलों के नेताओं ने अटल बिहारी वाजपेयी को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। यह पहला मौका था जब प्रदेश के तीन पूर्व मुख्यमंत्री, विधायक दल के समस्त नेता, मुख्यमंत्री और राज्यपाल एक साथ एकत्र हुए। शीर्ष नेताओं ने इस अवसर कहा कि अटल बिहारी वाजपेयी हिमाचल की यादों में सदैव बने रहेंगे।

लाहौल-स्पीति जिले में बहने वाली चंद्र और भागा नदी के संगम स्थल तांदी में भाजपा प्रदेशाध्यक्ष सतपाल सत्ती ने हिंदू और बौद्ध धर्मों के मंत्रोच्चारण के बीच अटल बिहारी वाजपेयी की अस्थियां विसर्जित कीं। कृषि मंत्री श्री राम लाल मारकंडा निर्माणाधीन रोहतांग टनल होते हुए तांदी पहुंचे थे। इस दौरान स्थानीय लोगों की भारी भीड़ ने उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित किए। उन्हें श्रद्धांजलि देने के लिए देशभर में विभिन्न कार्यक्रम भी आयोजित किए गए। उल्लेखनीय है कि केंद्र सरकार ने पूर्व प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी की अस्थियां देश भर की सौ नदियों में विसर्जित की हैं।

कविता

प्यार, जम्हूरियत, इनसानियत के परोधा

अटल जी !



रमेश चंद्र शर्मा

बेपनाह ग़म, आंखों में डूबता हुआ
भी निकल रहा है आंसू बनकर !
जनसाधारण ने जिसे अपनों की
तरह चाहा, प्यार किया, उसके बिना
दुःख की टीस नसों को भी
बींधने लगी है!
ओ राजनीति के अजातशत्रु
मानवीय संवेदनाओं के पारखी
अटल बिहारी वाजपेयी जी
भारत के मार्गदर्शक ध्रुव !
क्यों गए, क्या सचमुच मन से
मरने की तुम्हारी इच्छा पूरी हुई?
आपकी तो मृत्यु से 'ठन' गई थी!
अब एक ही आशा है, कि आप ने कहा
था, कि 'लौट कर आऊंगा, मैं कूच से
क्यों डरू!' ओ, सियासत के
शलाका पुरुष, जन सेवक हितैषी!
तुम्हें श्रद्धांजलि देना ही क्यों
हमारी नियति बनी?
आपके अनुयायी रो रहे देखो तो सही
भारत के दिल और दिमाग के भी, ...
प्रधान मंत्री जी, देश की विविधापूर्ण
संस्कृति के ज्ञाता, निर्बल के सखा!

आपने प्रण किया, विश्वास दिया
कि, 'जंग न होने देंगे!'
बस के सफर में पाकिस्तान की यात्रा
का वह संदेश, कौन निभाएगा?
न जाने कब, क्या कभी हो जाएगा?
सोई हुई रात भी जाग जाएगी!
स्थिति नाजुक हो जाएगी!
आपने तो अमन के लिए ही --
कारगिल में विजय पाई, परमाणू बम
का परीक्षण भी किया !
आज तो दिल से दिमाग से
पक्ष पक्ष है विपक्ष विपक्ष है
आपने तो इंदिरा गांधी की
सराहना भी की थी!
पहले पंडित जवाहर लाल नेहरू जी -
ने, आपके लिए पी.एम. बनने की
भविष्यवाणी की थी
आप विपक्ष में बैठे हुए भी
उनके विरोधी नहीं थे।
आपको आती नहीं थी घृणा!
इन दिनों ग़रीबी, बेबसी की
झुलसती धूप में, ज़रूरत है
आपके साये की, ओ कल्पतरु!
पुनर्जन्म लीजिए, लौट आइए -
ऐसा न हो कि यही दुहराते दुहराते
चिता न दहकने लगे उम्मीदों की !!

रिटायर्ड आई.ए.एस., टकसाल हाउस, छोटा शिमला,
शिमला-171 002, दूरभाष : 0177 262 1199

ग़ज़ल : सुमित राज वशिष्ट

(एक)

मैं कहाँ शहर में भटक गया, मुझे जंगलों की तलाश थी,
कभी बादलों, कभी पर्वतों, कभी बारिशों की तलाश थी।

मेरे दिन गुज़र के गुज़र गए, हर रात कटने को कट गयी,
मगर आ न पाये वो लम्हे, मुझे जिन लम्हों की तलाश थी।

मैं जो महफ़िलों के ख़िलाफ़ था, बस दश्त मेरा लिहाफ़ था,
कभी धूप थी, कभी बारिशें, इन्हीं मौसमों की तलाश थी।

जहाँ जात हो, न ही धर्म हो, बस जूझता हुआ कर्म हो,
जहाँ टूट जाएँ सब हदें, मुझे उन हदों की तलाश थी।

मुझे तोड़ दे या तराश दे, मुझे कोई एक लिबास दे,
तेरी उँगलियों में हों जुंबिशें, इन्हीं जुम्बिशों की तलाश थी।

कभी फूल बन के न खिल सकूँ, कभी दीप बन के न जल सकूँ,
मुझे तीरगी की थीं चाहतें, मुझे ख़ल्वतों की तलाश थी।

कोई पास आ के मुकर गया, कोई दूर से ही गुज़र गया,
मैं मज़ार था तेरे प्यार का, तेरी सुबकियों की तलाश थी।

मैं गुनाह हूँ, मैं शिकार हूँ, मैं चराग हूँ या किताब हूँ,
ऐ 'राज' कोई भी नाम दे, इन्हीं बंदिशों की तलाश थी।

(दो)

मेरी उम्मीद से कुछ ज़्यादा संभल जाती है,
ज़िन्दगी मेरी पनाहों से फिसल जाती है।

काम पे जाऊं तो अहबाब ख़फ़ा हो जाये,
और अगर घर पे रहूँ जेब दहल जाती है।

रोज़ उठता है धुआँ घर के किसी कोने से,
रोज़ तस्वीर मेरे घर की बदल जाती है।

वक्त मिलता नहीं और वक्त गुज़र जाता है,
वक्त के साथ हरेक सांस पिघल जाती है।

रोज़ बढ़ती है मेरी ओर इक नयी तोहमत,
रोज़ कागज़ पे नयी एक ग़ज़ल जाती है.

बातों बातों में वो लम्हे खरीद लेते हैं,
बात समझाने में पर एक नसल जाती है।

(तीन)

दर्द जब खुद बयान हो जाये,
सारी मुश्किल असान हो जाये।

अपनी अपनी सलीब ले आओ,
आओ इक इम्तहान हो जाये।

एक जब तू न पास हो मेरे,
सारी बस्ती वीरान हो जाये।

शुक्र है हम भी हैं ज़माने में,
वर्ना मस्जिद दुकान हो जाये।

ऐन मुमकिन है तेरी दुनिया में,
धूल उड़े, मकान हो जाये।

'राज' के ग़म का हल निकल जाये,
तू अगर निगहेबान हो जाये।

(चार)

पींठ पे सूरज था पर दीवार पे साया न था,
इस तरह पहले कभी तो बुत मेरा टूटा न था।

हाथ में पत्थर लिये मुझ पर लपकता था हुजूम,
था बहुत तनहा मगर मैं इस कदर तनहा न था।

मौत यारो एकजुट है इस जहाँ में आजकल,
हाये कैसा हो गया, पहले जहाँ ऐसा न था।

राम थे सब उस स्वयंवर में औ' मैं तनहा कमां,
एक भी ऐसा नहीं जिसने मुझे तोड़ा न था।

मैं कलम था, मैं ज़बां था, और मैं शमशीर था,
दांव सब मेरे थे लेकिन एक भी मौका न था।

डर गया पतझड़ का मौसम ज़र्फ़ उसका देखकर,
एक पत्ता था शजर पे, और शजर सूखा न था।

मैं ख़ला में गुम हुआ तो बच गया मेरा वुजूद,
'राज' मेरे पास वरना अब कोई चारा न था।

नारायण कुंज, लोअर दुदलि, शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171003, मो. 0 70187 03170

आलेख



डॉ. राधाकृष्णन का अमूल्य उपहार
भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान

◆ डॉ. उषा बंदे

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला इतिहास व भूगोल में एक अहम स्थान रखता है। एक समय था जब भारत के वाइसराय यहीं से राजनीति की बागडोर संभालते थे। देश की स्वतंत्रता से संबंधित कई महत्त्वपूर्ण निर्णय इसी इमारत की दीवारों के भीतर हुए हैं। आज भी यहां के 'आगंतुक कक्ष' में स्वतंत्रता- पूर्व के कई चित्र दीवारों पर टंगे देखे जा सकते हैं। तब यह इमारत व परिसर क्रमशः 'वाइसरीगल लॉज' एवं 'वाइसरीगल इस्टेट' के नाम से जाना जाता था।

स्वतंत्रता उपरांत आज़ाद भारत के राष्ट्रपति यहां गर्मियों में कुछ दिनों के प्रवास पर आने लगे। तब इसका नाम पड़ा राष्ट्रपति निवास। परंतु 20 अक्तूबर, 1965 को राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने यह संपूर्ण परिसर शिक्षा के लिए समर्पित किया और तभी से यहां भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान की स्थापना हुई। इस भव्य इमारत के द्वार देश के शिक्षा-विदों के लिए खुल गए और साहित्य, दर्शन शास्त्र, धर्म एवं सामाजिक विज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर उच्च स्तर का अध्ययन व अनुसंधान यहां होने लगे। इस परिसर के सुंदर लॉन, बाग-बगीचे, पेड़-पौधे शिक्षाविदों तथा विद्वानों के मन को मोह लेते हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इस लुभावने वातावरण में और निखार आता है।

स्वयं एक उच्च कोटि के विद्वान थे डॉ. राधाकृष्णन। वह अपने को एक शिक्षक ही मानते थे और आजीवन शिक्षा के प्रति उदार दृष्टिकोण रहा था उनका। राष्ट्रपति निवास, शिमला को उच्च अध्ययन के लिए खोलने के पीछे भी उनका उद्‌देश्य था अध्ययन को बढ़ावा देना ताकि समर्पित शिक्षकगण शिक्षा का प्रसार भी समर्पण भावना से करें। लोकतंत्र के लिए शिक्षा व शिक्षित जनता की आवश्यकता को पूरी तरह समझने वाले हमारे महामहिम राष्ट्रपति ने यह निर्णय बहुत गहराई तक सोच कर ही लिया था। वैसे भी शिक्षा को कभी उन्होंने केवल पुस्तक-ज्ञान नहीं माना था। उन्होंने स्वयं भारतीय दर्शन शास्त्र का गहन अध्ययन किया था और शिक्षा के नैतिक उत्थान महत्व जानते थे। तभी भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान में सृजनात्मक विचारधारा, अनुसंधान एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अध्ययन पर विशेष जोर दिया गया है।

इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ एडवांस स्टडीज़ अर्थात् भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान में अध्ययनरत विद्वान आमतौर पर 'फेलो' होते हैं। यह 'फेलोशिप' कम से कम तीन महीने और अधिक से अधिक एक वर्ष की अवधि के लिए दी जाती है। परन्तु कई बार अध्ययन क्षेत्र विस्तृत होने के कारण यदि कार्य पूरा न हो सके - तो अवधि बढ़ाई भी जा सकती है। वैसे तो 'फेलो' अपने कार्य में एवं अनुसंधान में तत्परता से स्वाध्याय में ही जुटे होते हैं किन्तु अन्य विद्वानों के साथ भी आदान-प्रदान कर क्षेत्र विस्तृत करने के उद्देश्य से साप्ताहिक गोष्ठियां, सेमिनार आदि का आयोजन किया जाता है। अपने विषय से हटकर अन्य विषयों पर विचार व प्रगाढ़ अध्ययन जानने-सुनने का यह एक सुनहरा अवसर होता है और

यहां कार्यरत सभी 'फेलो' इन गोष्ठियों में भाग लेने का मौका चूकते नहीं। वैसे तो 'फेलो' का चयन एक उच्च स्तरीय चयन समिति ही करती है। परन्तु राष्ट्रीय स्तर के लेखक एवं विद्वानों को बिना आवेदन के भी चयन करके निमंत्रित किया जाता है। यहां 'नामिनेट' हुए महान लेखक/लेखिकाओं में स्व. प्रभाकर माचवे, श्री भीष्म साहनी, श्रीमती कृष्णा सेवती एवं राजी सेठ जैसे ख्यातनाम व्यक्ति रहे हैं।

संस्थान के परिसर में श्री भीष्म साहनी से बातचीत करना अपने आप में एक सुखद अनुभव रहा है। 1990 के दशक के मध्य की बात है। उन दिनों मैं भी संस्थान में एक प्रोजेक्ट पर काम कर रही थी। श्री भीष्म साहनी और श्रीमती शीला साहनी से इस दौरान कई बार बातचीत हो जाती थी। उन दिनों वह औरंगजेब के जीवन पर आधारित एक पुस्तक लिख रहे थे। संस्थान के विषय में प्रश्न पूछने पर उन्होंने कहा था कि 'यह एक अमूल्य स्थान है- शांति, स्वच्छ एवं सुंदर। दिल्ली की भीड़ से दूर, इस शांत वातावरण में बैठकर लिखना सुंदर अनुभव है।'

'क्या पुस्तकालय में आपको अपने काम की पूरी पुस्तकें मिल जाती हैं?' मैंने पूछा।

'पुस्तकालय समृद्ध है। पर मेरा काम आलोचनात्मक नहीं है, सृजनात्मक है। अतः मुझे कभी-कभार ही तथ्यों की जानकारी लेनी हो तभी आवश्यकता पड़ती है पुस्तकालय की। अधिकतर समय मैं अपनी स्टडी में ही लिखता हूं।'

इसी परिसर में श्रीमती कृष्णा सोबती से मुलाकात हुई। सेमिनार में नारी स्वतंत्रता पर उनके विचार सुने। चर्चा सुनी और लगा कि सचमुच इस परिसर को उच्च अध्ययन के लिए समर्पित कर राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा जगत को अनमोल उपहार दिया है। भारत के अन्य भागों से आए कई प्राध्यापकों व आलोचकों के कार्यों को भी जानने का मौका यहां मिलता है। दक्षिण से आईं एक प्रोफेसर वहां की नारी-संतों पर विशेष खोज कर रही थी जबकि महाराष्ट्र से आए श्री तुलपुले महानुभाव संतों पर पुस्तकें लिख रहे थे। भारत के विभिन्न प्रांतों का शिमला में हुआ यह समन्वय हर एक व्यक्ति के लिए लाभप्रद होता है इसमें संशय नहीं।

उच्च अध्ययन में रिसर्च के अलावा सेमिनार, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठियों का विशेष महत्व होता है। इसी को ध्यान में रखते हुए संस्थान हर वर्ष गोष्ठियों का आयोजन करता है। विदेश से आए कई विद्वान संस्थान की बाहरी सुन्दरता व अंदरूनी सम्पन्नता से प्रभावित हुए बगैर नहीं रहते।

संस्थान में 'फेलोशिप' के अतिरिक्त 'इंटरयुनिवर्सिटी एसोसिएटशिप' का भी प्रबन्ध है। यह सुविधा प्राध्यापकों को अनुसंधान के लिए तीन महीनों के लिए दी जाती है। विभिन्न विश्वविद्यालयों से आए कई प्राध्यापक यहां रहकर पढ़ते हैं, लिखते हैं तथा सामग्री फोटोस्टेट करके साथ ले जाते हैं ताकि बचा हुआ काम अपने-अपने घर जाकर पूर्ण किया जा सके। बाहर से आए 'फेलोज' के लिए यहां सुन्दर निवास स्थान हैं। छोटी-छोटी यूरोपियन स्टाइल कॉटेजेज, भव्य अतिथि गृह जिसका पुराना एतिहासिक नाम है 'आब्जरवेटरी हाऊस'। यहीं पर मेस अर्थात् खाने की व्यवस्था है। खाना बहुत अच्छा एवं सस्ती कीमत पर उपलब्ध होता है। रहने व खाने की व्यवस्था के साथ-साथ 'फेलोज' को फोटो कापी की व्यवस्था का लाभ मिलता है, कागज आदि स्टेशनरी चीजें और कम्प्यूटर एवं सेक्रेटेरियल व अध्ययन के लिए आवश्यक सारी सुविधाएं यहां उपलब्ध हैं। अब तो संस्थान इंटरनेट से जुड़ गया है। संस्थान का पुस्तकालय भी अपने आप में एक सुन्दर व सम्पन्न स्थान है। ऊपरी विशाल हॉल में करीने से रखी विविध पत्रिकाएं देखने को मिल सकती हैं। यहीं कम्प्यूटर भी हैं जिनका उपयोग विद्वान करते हैं। हॉल से नीचे सीढ़ियां जाती हैं जो तहखाने तक आपको ले जाएंगी। यहां एक मंजिल पर तो विविध विषयों की पुस्तकें हैं जैसे समाज शास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र आदि तो और निचली मंजिल में रखी हैं पुरानी पत्रिकाएं तथा अनुसंधान के रिकार्ड। यहां हिमाचल प्रदेश पर भी काफी अच्छी सामग्री उपलब्ध है। पुस्तकालय में हर वर्ष निकलने वाली नई से नई पुस्तकें क्रय की जाती हैं। साथ ही संस्थान स्वयं भी स्तरीय पुस्तकें प्रकाशित करता है। इसका अपना प्रिंटिंग प्रेस है तथा यहां कार्यरत 'फेलो' के अनुसंधान की पुस्तकें संस्थान छापता है। संस्थान के प्रकाशन उच्च स्तरीय होते हैं--प्रिंटिंग के लिहाज से और सामग्री के लिहाज से भी। पुस्तकों की कीमत भी कम होती है जिससे पुस्तक प्रेमी या विविध विषयों में काम कर रहे छात्र इन्हें आसानी से खरीद सकते हैं।

इस समय संस्थान में लगभग दस विषयों पर गहन अध्ययन की सुविधा है। इनमें तुलनात्मक साहित्य, दर्शन, तुलनात्मक दर्शन शास्त्र एवं धर्म, शिक्षा, संस्कृति एवं कला, पर्यावरण- सामाजिक एवं प्राकृतिक, भारतीय सभ्यता, आधुनिक भारत की समस्याएं खासकर राष्ट्रीय एकता एवं समन्वय आदि हैं। प्रकाशन के क्षेत्र में संस्थान ने लगभग दो सौ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। संस्थान की द्विवार्षिक पत्रिका 'स्टडीज इन ह्यूमनिटीज एंड सोशल साइंसेज' एक स्तरीय प्रकाशन है। 'समरहिल' नामक अन्य समीक्षात्मक पत्र भी यहां से छपता है। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान को सैलानियों के लिए भी खोला गया है। भारत के इतिहास की झलक के साथ-साथ आधुनिक भारत में चल रहे शिक्षा सम्बन्धी अनुसंधान को देख सैलानी इस संस्थान को सराहे बगैर नहीं रहते।

'विद्ययाऽमृतमश्नुते'। सचमुच विद्या अमरत्व देती है। डॉ. राधाकृष्णन का यह उपहार उनके नाम के साथ-साथ हमें 'अमृत' पिला रहा है, इसमें शक नहीं। यह संस्थान शिमला का गौरव है।

वैक्सलो, लोअर कैथू, शिमला-3

शिक्षक दिवस

भारतीय संस्कृति में गुरु महिमा

◆ मंजु गुप्ता

शिक्षक, गुरु, अध्यापक, आचार्य आदि गुरु के पर्यायवाची शब्द हैं। अगर हम गुरु का शाब्दिक अर्थ करें गु का अर्थ है अंधकार और रु का अर्थ है प्रकाश यानी जो इंसान हमें अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की और ले जाए वही हमारा गुरु हुआ। जो शिक्षण के द्वारा हमारे जीवन का सच्चा हितैषी बन के मार्ग दर्शन करता है। गुरु जो लघु नहीं है और लघु को गुरु बनाता है। भारतीय संस्कृति पर दृष्टिपात करें तो शिक्षण दो प्रकार का होता है।

1) अंतःशिक्षण 2) बाह्य शिक्षण

अंत:शिक्षण द्वारा बुद्धि , स्मृति, मेधा एवं प्रज्ञा के ज्ञान चक्षु खुलते हैं। बच्चा माँ के गर्भ से संस्कार सीखने लगता है और जन्म लेते ही माँ-पिता के गतिविधियों, क्रियाकलापों के संस्कार उसमें पड़ने लगते हैं। बचपन में पड़े संस्कार जिंदगी भर साथ चलते हैं। जो हमारी आत्मोन्नति मूलक होते हैं। हमारा चारित्रिक विकास करता है। इसलिए बच्चे की पहली पाठशाला और गुरु माँ होती है। माँ अहं से दूर रहकर अपनी संतान के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देती है।

बाह्य शिक्षण : संत, महापुरुषों की जीवनी पढ़कर, उनके प्रवचनों को सुनकर, विद्यालयों में जाकर शिक्षा ग्रहण करना आदि। शिक्षा का उद्देश्य हमारा संस्कार करना है। विद्यार्थियों के पूर्ण विकास में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। बचपन ही जीवन की आधारशिला होती है। उन्हें सीखने का अवसर स्कूल, घर, परिवेश से ही मिलता है। छात्रों की विविध प्रतिभाओं को निखारने, प्रोत्साहन देना काम गुरु ही करता है।

अतः अध्यापक बच्चों का भविष्य निर्माण कर राष्ट्र निर्माता बन जाता है, क्योंकि राष्ट्र निर्माण में गुरु की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जिंदगी भर जो भी हमें सिखाए वे सब ही हमारे गुरु ही होते हैं। अध्यापक को यूँ भी परिभाषित कर सकते हैं मेरे अनुसार -

अ से अध्यापक है होता
सृजनाकार-सा स्वर-व्यंजन सिखाता
ध्या से ध्यान - साधना करवाता
धर्म - नैतिकता का पाठ पढ़ाता।
प से पूर्णता का प्रतीक बन के
सही दिशा ज्ञान है सिखाता
क से कर्ता, कर्म, क्रिया, कारक बनके
व्याकरण ज्ञान सिखलाता।
शब्द, व्याकरण के मेल से बनता वाक्य
सिखा के बौद्धिक ज्ञान संसार
करे भविष्य को साकार
अध्यापक की महिमा अपरम्पार
करती 'मंजु' कोटि-कोटि नमस्कार।

कबीर ज्ञान का उजाला देने वाले गुरु को कुम्हार की उपमा देते हुए कहते हैं -

गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, गढ़-गढ़ी काढ़े खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर मारे चोट।

गुरु को ईश से बड़ा माना है, गुरु की महिमा, उपकारों को कबीर भी नहीं भुला पाते हैं वे कहते हैं -

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाँय।
बलिहारी गुरु आपणे, गोविंद दियो मिलाय ।

अतः सदियों से संसार ने गुरु को पूजनीय माना है। शिक्षक ही बच्चों को यानी उन्हें डॉक्टर, वकील, शिक्षक, वैज्ञानिक आदि बनाके उनका भविष्य टिकाऊ बनाता है।

डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन महान दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, विचारक, शिक्षाविद, संस्कृति के संवाहक, शिक्षक, राजनयिक और 1962 में हमारे देश के राष्ट्रपति थे। तब ही कुछ छात्रों ने उनके जन्मदिवस 5 सितम्बर को मनाने का प्रस्ताव रखा। तब उन्होंने अपने मनोभाव व्यक्त किए कि मेरे जन्मदिवस को मेरे अध्यापन, शिक्षण के प्रति समर्पण के रूप में सभी शिक्षकों के सम्मान के खातिर 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाया जाए। तब से भारत में शिक्षा के प्रति जागरुकता, चेतना जगाने में गुरु की समाज में विशेष भूमिका होने के कारण इस दिन को मनाया जाता है।

भारत के सभी विद्यालयों, कॉलेज, विश्वविद्यालय में शिक्षक दिवस बड़े उत्साह-उमंग के साथ मनाते है। छात्र अपने शिक्षकों को ग्रीटिंग कार्ड, फूल, गुलदस्ते, बुके, उपहार दे कर, शुभकामनाएं, बधाई देते हुए आभार, धन्यवाद देता है। विद्यालयों में विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम के संग छात्र शिक्षक बनके बच्चों को पढ़ाने का आनंद लेते हैं और जगह-जगह सार्वजनिक कार्यक्रम भी होते हैं।

इसी दिन राज्य सरकार अपने-अपने राज्यों से चुने 'आदर्श शिक्षकों' को पुरस्कारों से सम्मानित भी करती है। अब तो छात्र अपने गुरुओं को सोशल मीडिया की भूमिका होने के कारण फेस बुक, ट्वीटर, व्हट्स एप, वीडियो, ऑनलाइन बात करके आदि से शुभकामनाएं संदेश दे के कृतज्ञता प्रकट करते हैं ।

डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन विश्व को एक विद्यालय मनाते थे। शिक्षा, संस्कारों से मानव मस्तिष्क को परिष्कृत, सुसंस्कृत और सदुपयोगी बना के समाज का पुनरुत्थान कर सकते हैं। विश्व को एक परिवार मनाते हुए विश्व शांति को ध्येय मानते हुए ब्रिटेन के एडिनबरा विश्वविद्यालय में उनका वक्तव्य था - "मानव को एक होना चाहिए। मानव जाति का संपूर्ण लक्ष्य मानव जाति की मुक्ति तभी सम्भव है जब देशों की नीतियों के आधार पुरे विश्व शान्ति की स्थापना का प्रयत्न हो।" वे अपने अध्यापन काल में छात्रों से नैतिक मूल्यों को अपनाने के लिए जोर देते थे। छोटा-बड़ा हर कोई भी इन मूल्यों से जुड़ सकता है।

गुरुओं को सम्मान देने के लिए विश्व के विभिन्न देशों में अलग-अलग तारीखों पर शिक्षक दिवस मनाया जाता है। 'विश्व शिक्षक दिवस ' 5 अक्तूबर 1964 से मनाया जा रहा है।

गुरु की महत्ता दर्शाते हुए कबीर ने कहा है -

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिए ते गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।

अंत में सच्चे गुरु-शिष्य के रिश्ता समुद्र की लहरों-सा है जो शिष्य को गंतव्य की ओर ले जाता है। छात्रों का गुरुओं द्वारा ही सर्वांगीण, समग्र विकास होता है। शिक्षक दिवस पर सभी शिक्षकों को मेरे द्वारा लिखित यह गीत समर्पित है -

कर्णधार

अभिराम-अभिराम हम जग के प्रतिमान हैं
देश के कर्णधार हम देश के अभिमान हैं।

कलियों की-फूलों की हम तो मुस्कान हैं
आसमान के परिंदों की हम तो उड़ान हैं।
आँधियों से लड़ने की राह हम बताते
जन-मन को मीठी लगे हमारी जुबान है।

अभिराम-अभिराम हम जग के प्रतिमान हैं
देश के कर्णधार हम देश के अभिमान हैं।

जिंदगियों को तराशना है काम हमारा
चमका दें घटा में सूरज प्यारा-प्यारा
महका के जीवन की बगिया और जहान
मौसम के बदलने के हम मधुर गान हैं।

अभिराम-अभिराम हम जग के प्रतिमान हैं
देश के कर्णधार हम देश के अभिमान हैं।

जहां भी तुम रहोगे हम याद आएँगे
अँधेरे रास्ते में दीपक जलाएंगे
जिन्दगी संभालते हैं हम कर्णधार हैं
बुलंदियों को छूने की हम सौपान हैं।

19 द्वारका प्लाट-31
सेक्टर-9, वाशी, नवी मुंबई-400 703
दूरभाष : 0 9339 60213

कविता

नहीं देखा समुद्र

राजकुमार जैन 'राजन'

नहीं देखा मैंने समुद्र
लेकिन महसूस करता हूं
उसकी गर्जन अपने भीतर

छूता है जब कोई मोती
मेने मन के चेहरे को
लहरें उठा कर फेंक देती है
कुछ अस्फुट फेनिल झाग
सीपियां खुल कर बिखर जाती हैं
और सारे संदर्भ
मुझे अर्थ पूर्ण उपलब्धियों के साथ
जोड़ जाते हैं



कैसा लगता है
तूफान के बाद खामोश समुद्र
जो आत्मा पहले निस्वर बोल चुकी है
हमारी हथेलियों में
कर्म की निश्चित संभावनाएं
उसकी पूर्ति हमारी आवश्यकता को
प्रमाणित करती है।
नहीं देखा समुद्र कभी
फिर भी महसूस करता हूं
उसे अपने भीतर बजता हुआ।

चित्रा प्रकाशन, आकोला, चितौड़गढ़,
राजस्थान-312 205, मो. 0 98282 19919

शोध

हिमाचली वास्तुकला के विविध आयाम

◆ डॉ. ललिता कौशल

वास्तु शब्द संस्कृत के 'बस' धातु से बना है, जिसका अर्थ है निवास करना और वास्तु का अर्थ होता है, वह भवन जिसमें व्यक्ति निवास करते हैं। हीगल के अनुसार, 'वास्तुकला बाह्य कला है। उसका उद्देश्य बाह्य निर्जीव प्रकृति को ऐसा रूप-आकार प्रदान करना है, जिससे वह मस्तिष्क से कलात्मक वस्तु जगत के रूप में सम्बद्ध हो जाए। उसके उपादान जड़ पदार्थ हैं, जैसे कि पत्थर, ईंट, चूना आदि। उसका आकार निर्जीव प्रकृति का आकार है, किन्तु वह सम्मति के बौद्धिक सम्बन्ध के अनुसार व्यवस्थित रहता है। उसे बाह्य कला कहा जाता है, क्योंकि उसकी निर्मितियां आत्म ाक्ति से बाहर ही रहती हैं। वे उसे मूर्त रूप नहीं दे पातीं।

वास्तु के कलात्मक रूप को वास्तुकला कहते हैं। वास्तुकला रूप प्रधान होती है-नगर, प्रासाद, मंदिर, देहरे, स्तम्भ, गोम्पा, स्तूप, उद्यान, वापिका, कूप आदि के निर्माण इसमें शामिल हैं। विशम्बर प्रसाद का कथन है कि भवनों का विन्यास, अभिकलन और रचना की कला वास्तुकला कहलाती है। बदलती हुई रुचियों के अनुसार, बदलते हुए समय और बदलती हुई तकनीकों के द्वारा मनुष्यों की आवश्यकताएं पूरी करने योग्य सभी प्रकार के भवनों आदि का उचित विधियों द्वारा निर्माण करने की कला, विज्ञान और तकनीक का मिश्रण वास्तुकला की परिभाषा में शामिल है। उनके अनुसार 'वास्तुकला' ललित कला की वह शाखा है, जिसका उद्देश्य औद्योगिकी के सहयोग से ऐसे भवन का निर्माण करना है, जो उपयोगिता की दृष्टि से उत्तम हों, जिनके पास-पड़ोस सुसंस्कृत हों, सुरुचि वालों के लिए अत्यंत प्रिय हो, सौन्दर्य भावना के पोषक हों और उन्हें आनन्द दे सकें। अर्थात् वास्तुकला किसी स्थान को मानव के लिए वास और उपयोग योग्य बनाने की कला है।[2] हिमाचल प्रदेश में लोक-कलाओं की सम्पन्न परम्परा रही है। यहां मन्दिरों, गढ़ों, किलों, पुराने भवनों, महलों, जागीरदारी घरों आदि में पत्थर तथा लकड़ी पर हुए कलात्मक कार्य आज भी देखने को मिलते हैं।

असल में वास्तुकला में विभिन्न ललित कलाओं का संयोजन होता है। चित्र, मूर्ति भित्ति चित्र, थन्का, प्रस्तर कला, काष्ठ कला तथा मृदा कला के लिए भी प्रारम्भ में वास्तु की ही आवश्यकता होती है। ये सभी कलाएं किसी भी तरह के भवन निर्माण में ही उपयोग में लायी जाती हैं। प्रस्तर कला और काष्ठ कला तो भवन निर्माण के अंग होते हैं, जबकि इनकी रचना भव्य और सुरुचिपूर्ण भवनों की साज-सज्जा के लिए ही की जाती है। इसीलिए वास्तुकला को सभी ललित कलाओं का आधारक माना जाता है। इस वास्तुकला के अन्तर्गत अनके महत्वपूर्ण निर्माण आते हैं। वैसे तो एक छोटे से छोटी कुटिया या गरीब का घर भी दीवारों, स्तम्भों और छत्त आदि को मिलाकर किसी वास्तु विधान के तहत ही निर्मित होता है, लेकिन वास्तु कला के प्रमुख उदाहरण मंदिर, देहरे, महल, किले, विशेष भवन, पारम्परिक गृह तथा वापिका आदि माने जा सकते हैं। इनके निर्माण में वास्तु के पारम्परिक विधानों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

इन विधानों को लेकर एक पूरा वास्तुशास्त्र भारतीय परम्परा में उपलब्ध है। वास्तुशास्त्र के अनुसार निर्माण स्थल और भवन में प्रवेश आदि का भी विशेष ध्यान रखा जाता है। इस वास्तुशास्त्र का लोक विधान भी हमारी निर्माण विरासत में उपलब्ध होता है। यही कारण है कि हिमाचल प्रदेश के मंदिर, महल, किले और गृह शेष भारत के वास्तु विधान से अलग दिखाई देते हैं। इसे हम 'पहाड़ी वास्तु' भी कह सकते हैं।

पहाड़ी वास्तुकला में निष्णात यहां के विरासती कारीगर ही रहे हैं, जो तथाकथित दलित वर्गों से ही सम्बन्ध रखते हैं। इनमें बाढ़ी (बढ़ई), मिस्त्री, लोहार आदि गिनाये जा सकते हैं। ये कारीगर ही पत्थर और लकड़ी का काम कलात्मक रूप में करते हैं और उपयोग के विभिन्न कक्षों के आकार-प्रकार का नियोजन भी करते हैं। मंदिर, महल और सामान्य गृह के निर्माण की अलग-अलग विशेषताएं रहती हैं, जिनके आधार पर ये भिन्न-भिन्न रूपाकारों में निर्मित होते हैं और दूर से ही अपनी अलग पहचान के साथ दिखाई देते हैं। इन निर्माणों के वर्णन से इनके स्वरूप पर भी प्रकाश पड़ सकेगा।

मंदिर और देहरे

किसी भी देवी-देवता का अपना पवित्र स्थान होता है, जो देव स्थल के रूप में माना जाता है। उस स्थान पर देवता का प्रमुख मंदिर निर्मित होता है। प्रजा क्षेत्र के विस्तार और आर्थिक समृद्धि के अनुसार ही देवी-देवता का मंदिर निर्मित होता है। जिस क्षेत्र के लोग समृद्ध होते हैं, वे अपने घर भी अच्छे और सुन्दर बनाते हैं। इसी तरह उस क्षेत्र के देवता का मंदिर भी दूर से ही भव्य और कलात्मक दिखाई देता है। हिमाचल प्रदेश में प्रायः देखने में आता है कि जिस इलाके में कृषि और आगवानी के लिए सीधे और उपजाऊ खेत होते हैं, वहां के गांवों में अच्छे घर और विशाल मंदिर निर्मित होते हैं। उल्लेखनीय है कि किसी भी कलात्मक देवालय के निर्माण के लिए पर्याप्त पूंजी, अच्छे कारीगरों और शिल्पियों की आवश्यकता रहती है। जिस क्षेत्र के लोग विरासती तौर पर समृद्ध रहे हैं, उन्होंने अच्छे कारीगर भी अपने क्षेत्र में सदियों से बसाये हुए हैं।

मंदिर का निर्माण हर दृष्टि से लोगों के आवासीय घरों से बेहतर होता है। इसलिए अधिकांश मंदिरों की चिनाई में तराशे गए मजबूत पत्थरों का उपयोग होता है। इसी चिनाई में लकड़ी के बीम कुछ इस तरह से लगाये जाते हैं, जिससे चारों कोनों में काष्ठ की चिनाई आ जाती है। इस चिनाई को काठकुणी चिनाई कहा जाता है। इसमें चारों कोने काष्ठ के बन जाते हैं और दीवारों में काष्ठ की शहतीरों के बीच तराशे हुए पत्थर दिखाई देते हैं। इस चिनाई में किसी तरह के प्रस्तर की जरूरत नहीं रहती। इसी तरह पहाड़ के पारम्परिक मंदिरों की ढलवां छतें स्लेट से निर्मित की जाती हैं और छत की शिखा पर लकड़ी का कुरड (पेड़ का लम्बा तना) स्थापित किया जाता है। ये मंदिर प्रायः तीन या चार मंजिल के होते हैं। हिमाचल के कुछ निचले क्षेत्रों में एक या दो मंजिल के मंदिर भी पाये जाते हैं, क्योंकि वहां बहुमंजिला निर्माण के लिए इमारती लकड़ी नहीं मिल पाती। ऊपरी पहाड़ी क्षेत्रों के मंदिरों के मुख्य द्वार विशेष तौर से काष्ठ तथा धातु की कला से सज्जित होते हैं। इसके साथ ही मंदिरों की सीढ़ियां भी कलात्मक बनाई जाती हैं। छत के नीचे चारों ओर तख्तों की झालरों में कलात्मक सजावट की जाती है। इसमें काष्ठ निर्मित छड़ियां जोड़ी जाती हैं, जो बहुत सुन्दर दिखाई देती हैं।

मुख्य मंदिर के अतिरिक्त देवता के गांव में लघु मंदिर भी निर्मित होते हैं, जिनमें क्षेत्र की यात्रा या उत्सव आदि के दौरान देवता कुछ समय के लिए आवास करते हैं। इन लघु मंदिरों को 'देहरे' कहा जाता है। कई जगह पत्थरों की चिनाई करके देव स्थान के प्रतीक के रूप में गुमटियां निर्मित की जाती हैं, जो तराशे गए सुन्दर पत्थरों की होती हैं। इनमें छोटा आला बनाकर देव मूर्ति स्थापित की जाती हैं और 'गुमटी' के शिखर पर ध्वजा टांग दी जाती है। इन सभी मंदिरों, देहरों और गुमटियों आदि के निर्माण में दलित कारीगरों का विशेष योगदान रहता है। ये कारीगर देवताओं के विरासती शिल्पी होते हैं। खानदानी कारीगरों द्वारा निर्मित पहाड़ी शैली के ऊंचे मंदिर किन्नौर, शिमला, सिरमौर, कुल्लू तथा मंडी आदि जिलों में पाए जाते हैं।

जिला किन्नौर में साधारण मंदिर भी कलात्मक वास्तुकला की झलक देते हैं। शिमला, सिरमौर तथा कुल्लू के मंदिर के साथ एक भंडार-गृह अवश्य होता है। लकड़ी से निर्मित ये भंडार-गृह भी अपने में अलग शिल्प लिए हुए होता है। जिला कुल्लू के मनाली में हिडिम्बा देवी मंदिर भी काष्ठकला के लिए प्रसिद्ध है। इसका मुख्य द्वार काष्ठ अलंकरण का अनूठा उदाहरण है। पुराने समय में जबकि वैज्ञानिक उपकरणों का पूर्ण अभाव था। ऊंचे स्थानों पर विशाल दैत्यकार दुर्ग बनाना सरल नहीं था। स्थानीय वास्तुकारों द्वारा निर्मित विभिन्न भवन तथा मंदिर निर्माण कला के सुन्दर उदाहरण हैं। इनकी दीवारों पर प्रस्तर एवं काष्ठ नक्काशी के भी अनेक नमूने प्रस्तुत किए गए हैं। बैजनाथ का शिव मंदिर प्रस्तर निर्माण का जीवंत साक्ष्य है तथा मसरूर का कृष्ण मंदिर एक ही चट्टान को काटकर बनाया गया है। ये वास्तुकला के अद्भुत नमूने हैं। इस तरह स्थानीय प्रतिभा एवं कुशलता का योग पहाड़ी वास्तुकला को अनुपम बनाता है।

कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना, लाहुल-स्पीति, चम्बा तथा बिलासपुर के मंदिर कम मंजिलों के और अधिकतर पत्थर से निर्मित होते हैं। पत्थर का कार्य करने वाले तथा इन भवनों और मंदिरों को बनाने, संवारने वाले शिल्पियों को स्थानीय भाषा में 'बटैहड़े' कहा जाता है। इन क्षेत्रों में अब कंकरीट की सामग्री से भी नये मंदिरों का निर्माण हो रहा है। मंदिर निर्माण की पारम्परिक शैलियों में विरासती कारीगर ही पूरे प्रदेश में कार्य करते हैं। विडम्बना यह भी है कि इनके द्वारा निर्मित इन मंदिरों का शुद्धिकरण होने के बाद अनेक स्थानों पर इनमें निर्माता शिल्पियों का प्रवेश वर्जित हो जाता है। यह लगभग उसी तरह की परम्परा है, जैसे सामंती काल में विलक्षण प्रतिभाशाली कलाकार जब कोई कलात्मक निर्माण कर लेता था तो उसके हाथ काट दिए जाते थे। हमारे प्रदेश में इनके द्वारा निर्मित मंदिरों में जब उच्चवर्गीय लोगों द्वारा उन्हीं का ही प्रवेश वर्जित कर दिया जाता है तो उन्हें कैसे महसूस होता होगा, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

मंदिर का निर्माण हर क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक वातावरण पर निर्भर रहता है। हिमाचल प्रदेश के मंदिरों का निर्माण निम्नलिखित शैलियों में हुआ है :-

किशोरी लाल वैद्य के अनुसार हिमाचल प्रदेश में कुल लगभग 600 मंदिर हैं। इनमें विशिष्ट आकार की संरचनाएं लगभग 2000 हैं। उन्होंने स्थापत्य की दृष्टि से इन मंदिरों को प्रमुख रूप से ग्यारह वर्गों में विभाजित किया है- 1. शिखर (नागर शैली), 2. पैगौड़ा (मेरु) शैली, 3. गुम्बद शैली, 4. पिरामिड शैली, 5. ढलवा छत, 6. समतल छत, 7. मीनार शैली, 8. बौद्ध विहार/गोम्पा, 9. गुहा शैली,

10. देशण तथा 11. मिश्रित शैली। ये सभी शैलियां अपना स्वरूप लिये हुए हैं। इनकी विशेषताओं के अनुरूप ही इनकी पहचान बनी है।[3]

1. शिखर शैली मंदिर

हिमाचल के मध्य क्षेत्रों में जहां वर्षा अधिक होती है, शिखर शैली के मंदिरों का निर्माण हुआ है, जिससे वर्षा का पानी सीधा नीचे जमीन पर गिरे और मंदिर को किसी तरह की हानि न पहुंचे। शिखर शैली में आठवीं से तेरहवीं सदी तक के मन्दिर आज भी पुरातात्विक धरोहर के रूप में मौजूद हैं। ये शास्त्रीय शैली के मंदिर हैं। ऐसे मंदिर पहाड़ों में प्रायः गढ़े हुए पत्थरों से बने हैं, जबकि मैदानों के मंदिरों में ईंटों का प्रयोग हुआ है। हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिला के बजौरा में विश्वेश्वर महादेव का मंदिर आठ-नवीं शताब्दी में शिखर शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। कुल्लू के शिखर शैली के अन्य मंदिरों में गौरी-शंकर मंदिर जगतसुख, दलाश और नगर; शिव मंदिर निरमंड; महादेव मंदिर मणिकर्ण तथा शौंर भी प्रसिद्ध हैं। कांगड़ा जिला का बैजनाथ मंदिर, वज्रेश्वरी, ज्वालामुखी, बिलासपुर में रंगनाथ, चम्बा में चंपावती, वज्रेश्वरी, हरिराय, लक्ष्मीनारायण, हमीरपुर में गौरीशंकर, सुजानपुर टीहरा, ऊंबिकेश्वर हरिपुर, मंडी में त्रिलोक नाथ, पंचवक्त्र भूतनाथ, अर्द्ध-नारीश्वर आदि शिखर शैली के प्रसिद्ध मंदिर हैं। जिला चम्बा के भरमौर में मणिमहेश मंदिर पत्थरों से निर्मित शिखर शैली का सबसे बड़ा मंदिर है। भरमौर का नृसिंह मंदिर भी शिखर शैली का है। बैजनाथ के विख्यात शिव वैद्यनाथ के मंदिर (नवीं शती) का निर्माण कांगड़ा के दो शिल्पी नमका और ठोडुक ने किया है। सामू नामक शिल्पी ने इस मंदिर की परियोजना बनाई थी।[4] जिला शिमला के नीरथ गांव में सूर्य मंदिर (10-11वीं शती) भी इसी शैली का है। सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में इस मंदिर का पुनर्निर्माण हुआ है।

महामृत्युंजय मंदिर मंडी में भी परम्परागत उत्तर भारतीय शिखर शैली की अनेक विशिष्टताएं स्पष्ट लक्षित होती हैं। मंडी जिला में शिखर शैली में निर्मित छोटे मंदिर पर्याप्त संख्या में विद्यमान हैं। पिपलू महादेव का शिखर शैली में बना छोटा-सा सुन्दर मंदिर है। सीमांत क्षेत्र लाहुल में त्रिलोकनाथ मंदिर चन्द्रभागा नदी के तट पर निर्मित शिखर शैली का मंदिर है। यह मंदिर हिन्दू तथा बौद्ध दोनों धर्मो के लोगों के लिए विशेष श्रद्धा स्थल है।

2. बहुछतीय मंदिर (पैगोडा)

भारतीय वाङ्मय में पैगोडा का पर्यायवाची शब्द 'स्तूप' है। पैगोडा शब्द की व्युत्पत्ति इसी से प्रतीत होती है। एशिया के अधिकांश देश, विशेषतया जहां बौद्ध धर्म का प्रचलन रहा है, वहां स्थापत्य के क्षेत्र में बैगोडा शैली का व्यापक परिचय मिलता है। ऐसे देशों में भारत और उसके उत्तर पश्चिम में स्थित कंधार (अफगानिस्तान) से लेकर उत्तर-पूर्व में तिब्बत, नेपाल, भूटान, चीन, जापान, कोरिया तथा दक्षिण-पूर्व में श्रीलंका, बर्मा, थाईलैण्ड, बाली द्वीप जैसे देशभूमि भी पैगोडा शैली की ऐतिहासिक धरोहर को संजोए हुए हैं।[5]

इस शैली के मंदिरों को हिमाचल प्रदेश में विशेष महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार के मंदिरों की संरचनाएं उन सभी पर्वतीय क्षेत्रों में होती हैं, जहां स्थानीय जंगलों में आस-पास देवदार पाया जाता है। यह वृक्ष लगभग पांच हजार से आठ हजार तक की ऊंचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में पाया जाता है। मंदिर स्थापत्य की इस शैली को विदेशी लेखकों ने पैगोडा शैली का नाम दिया है। स्थानीय भाषा में इसे मेरू शैली या बहुछतीय मंदिर कहा जाता है। ये प्रायः काष्ठ और प्रस्तर के मंदिर हैं। इनकी दीवारें पत्थरों की तथा छतें लकड़ी की बनी होती हैं। दीवारों में भी पत्थरों की कुछ चिनाई के बाद बराबर दूरी पर लकड़ी के मोटे शहतीर डाले जाते हैं।

पैगोडा शैली का आधार खण्ड सामान्यता वर्गाकार होता है और इसका निर्माण एक चबूतरे पर किया जाता है। इस प्रकार के देव मंदिरों में ग्राम देवता की मूर्ति धरातल खण्ड में ही स्थापित रहती है। इस खण्ड में चारों ओर के बरामदे का प्रयोग परिक्रमा पथ के लिए किया जाता है। आधार खण्ड के ऊपर जो दो-तीन अथवा अधिक तल निर्मित होते हैं, उनका आकार ऊपर की ओर उठते हुए क्रमशः संकुचित होता जाता है।[6] इनमें एक या दो खण्ड ही प्रयोग हेतु रहते हैं, जबकि अन्य खण्डों को मंदिर का शिखर ऊंचा करने के लिए ही बनाया जाता है। वास्तव में सामान्य घरों से मंदिर की लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई बढ़ाने की लोक भावना रहती है और विशेष आकर्षक बनाने के लिए प्रस्तर और काष्ठ का कलात्मक काम किया जाता है।

इन मंदिरों की विशिष्टता बहुछतीय निर्माण की है। ये छतें एक के ऊपर दूसरी बनी होती हैं और हर दूसरी छत पहली छत के घेरे से कुछ कम होती है। अन्तिम छत स्तूपाकार-शिखर की बनती है। ये सभी छतें चारों ओर से ढलानदार होती हैं। बर्फीले क्षेत्र में इस तरह के बहुछतीय शैली के मंदिरों का निर्माण लाभदायक होता है। 'त्रिजुगी नारायण', दियार, जिला कुल्लू का बहुछतीय मंदिर सबसे पुराना माना जाता है।[7] लोकप्रियता और दर्शकों की भीड़ के आधार पर 'हिडिम्बा देवी' मनाली का पैगोडा शैली का मंदिर सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस मंदिर की ढलानदार चार छते हैं, जो देवदार वृक्ष के तख्तों की बनी हैं। अन्तिम छत शंकुनुमा वर्तुलाकार है। कुल्लू की सैंज घाटी के शौर गांव में 'धारा देहुरा' का मंदिर भी इसी शैली में निर्मित है इसकी पांच छतें हैं। कुल्लू जिला के अन्य पैगोडा शैली के मंदिरों में नग्गर नामक स्थान में त्रिपुरा सुंदरी (नगर), आदि ब्रह्मा मंदिर (खोखण), दियार में त्रियुगी नारायण मंदिर भी प्रसिद्ध हैं।

मंडी जिला में बहुछतीय शैली के मंदिरों में पराशर ऋषि देव मंदिर (पराशर), ब्रह्मा मंदिर (ढीरी), कामाख्या देवी कामाक्षा मंदिर

(काओ), गौरी शंकर (ममेल) बौद्ध मंदिर (रिवालसर), नवनिर्मित भीमाकाली मंदिर (मंडी) तथा आदिब्रह्मा (टीहरा) उल्लेखनीय हैं। शिमला जिला में हाटकोटी का हाटेश्वरी मंदिर, शिव मंदिर, शिदेउल मंदिर, मानन का मानणेश्वर मंदिर, जुब्बल का शिव मंदिर, कोट का कोटेश्वर महादेव मंदिर, सराजी का चालदा महासू मंदिर आदि भी इसी शैली में निर्मित हैं। किन्नौर जिला में निचार में उषा देवी मंदिर, रकछम का भगवती मंदिर, चगाओं का महेश्वर मंदिर, सुंगरा का महेश्वर मंदिर, सांगला का बारिंग नाग मंदिर आदि पैगोडा शैली के प्रसिद्ध मंदिर हैं।

3. ढलावां छतीय मंदिर

हिमाचल प्रदेश के पहाड़ों की भौगोलिक तथा प्राकृतिक स्थिति के कारण अधिकतर मंदिरों का निर्माण ढलानदार छतों वाली शैली में होता है। ये मंदिर प्रस्तर और काष्ठ के बने होते हैं। जिला शिमला में ढलावां छत वाले मंदिरों में श्रीगुल देवता का चूढ़धार का मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। लाहुल-स्पीति जिला के उदयपुर का मृकुला देवी मंदिर, चम्बा में भरमौर का लक्षणा देवी मंदिर, साहु गांव का चन्द्रशेखर मंदिर आदि ढलवां छतीय शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कुल्लू जिला में संध्या देवी मंदिर और जगतसुख मंदिर इसी शैली में बने हैं। इन मंदिरों की छतें पत्थरों की स्लेटों से ढकी हुई हैं और शिखर पर लकड़ी का नासा बिछाया गया है, जिसे स्थानीय भाषा में 'बदोर' कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुल्लू जिला के निरमंड गांव में अम्बिका देवी, लक्ष्मी-नारायण तथा परशुराम के मंदिर उल्लेखनीय हैं। बहणा महादेव आदि मंदिर भी ढलवां छतीय शैली के लिए प्रसिद्ध हैं। जिला मंडी में माहूँनाग और कमरूनाग के ढलवां छतों वाले मंदिरों में भी अच्छी चित्रकारी देखने को मिलती है।

गुंबदाकार मंदिर

मुगल काल में जिन मंदिरों का नव-निर्माण हुआ, उनके आकार में उत्तरी भारत की शिखर शैली कम दृष्टि गोचर होती है। उस दौर में किसी हद तक मस्जिदों की तर्ज पर गुंबद शैली का अनुकरण भी किया गया है। इस सन्दर्भ में यह कहना उचित होगा कि गुंबद शैली भारत के मंदिर स्थापत्य के इतिहास में मस्जिदों की अपेक्षा बहुत पुरानी है। बौद्ध वास्तुशैली में गुंबदनुमा संरचना के प्राचीन साक्ष्य अभी भी दर्शनीय हैं। हिमाचल प्रदेश के भू-भाग में गुंबदों का प्रचलन रियासतों के जमाने में तब हुआ, जब भारत पर इस्लाम धर्मी शासक सत्ता में थे। इन मंदिरों में गुंबदों का निर्माण इस आशय से भी किया गया ताकि इन्हें बाह्य आक्रांताओं से सुरक्षित रखा जा सके।[8]

गुंबद शैली के मंदिरों में देवल अधिकतर ऊंची चौकी पर निर्मित होती है। मुख्य मंदिर के चारों ओर दीवार का निर्माण भी किया जाता है। गर्भ गृह की बाहरी भीत्ति व पिछले भाग में मूर्तियुक्त आले रखे जाते हैं। मंडी में प्रायः सभी शिव मंदिरों के प्रांगण में खड़े हुए नंदी की मूर्ति गर्भ गृह के द्वार के सामने आयताकार चबूतरे पर स्थापित की गई है। गुंबद शैली के शिवालयों में मुख्य रूप से योनियुक्त शिवलिंग स्थापित है।

इस शैली के मंदिर हिमाचल प्रदेश में अधिक नहीं हैं। पंजाब से लगते क्षेत्रों में इस शैली के मंदिर हैं। ऊना, बिलासपुर, नूरपुर आदि क्षेत्रों में गुंबदाकार मंदिरों का निर्माण हुआ है। बिलासपुर में शणमुखेश्वर, गेहड़वीं और उसके आस-पास के मंदिर गुंबदाकार शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इस शैली के मंदिरों की छत गोलाईदार होती है। जिला कांगड़ा में ज्वालामुखी का मंदिर भी गुंबदाकार शैली का बना है।

जिला चम्बा के पांगी क्षेत्र में बहुत से मंदिर स्थानीय कारीगरों द्वारा स्थानिक पहाड़ी शैली में निर्मित हैं। इनमें लुज का शीतला माता मंदिर, क्वासनाग मंदिर, मिंधला वासिनी चामुंडा मंदिर आदि प्रमुख हैं। चम्बा के छतराड़ी गांव में आदि शक्ति का मंदिर वास्तुकला का विशिष्ट उदाहरण है। इस मंदिर का निर्माण गुग्गा ने किया था। जनश्रुति के अनुसार गुग्गा ने रणहू कोठी के राणा का अनुपम महल भी बनाया था। राणा ने उस शिल्पी का एक हाथ काट दिया था। बावजूद इसके उस शिल्पी ने एक हाथ से ही छतराड़ी का मंदिर बनाया जो लकड़ी की नक्काशी के लिए प्रसिद्ध है। इसी तरह लाहुल में मृकुला देवी मंदिर के विषय में भी कहा जाता है कि यह मंदिर उसी कारीगर ने निर्मित किया था, जिसने मनाली में हिडिम्बा देवी मंदिर का निर्माण किया था। जनश्रुति है कि कुल्लू के तत्कालीन शासक ने हिडिम्बा मंदिर के निर्माण के पश्चात् शिल्पकार का दायां हाथ काट दिया था, जिससे वह अन्यत्र इस प्रकार का शिल्प कौशल न दिखा सके। लेकिन वह कारीगर अपनी कला में इतना दक्ष था कि उसने अपने बायें हाथ से ही मृकुला देवी मंदिर का निर्माण कर लिया। इससे सिद्ध होता है कि ये पारम्परिक शिल्पी वास्तुकला में किस तरह से निष्णात रहे हैं।

चट्टान-तराश मंदिर

हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा से लगभग 40 कि.मी. की दूरी पर मसरूर गांव का विलक्षण मंदिर भूरि-भूरि चट्टानों को तराश कर बनाया गया है, इसीलिए यह रॉक कट टैम्पल कहलाता है। विशाल चट्टान को काट कर मंदिर के भीतरी तथा बाहरी आकार बनाए गये हैं। चट्टानों तथा प्राकृतिक गुफाओं को तराश कर मंदिर एवं दीर्घाओं के रूप भारत के अजन्ता, एलोरा और भीम-वेटका आदि स्थानों में अद्‌भुत कौशल से तराशे गए हैं। इसी परम्परा में मसरूर का यह मंदिर हिमाचल प्रदेश में अनूठा है।

इस मंदिर में राम, लक्ष्मण और सीता की भव्य मूर्तियां हैं। मंदिर की चट्टानी दीवारों पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश के अतिरिक्त अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियां उकेरी गई हैं। इस मंदिर के वास्तु ि ाल्प को देखकर प्रतीत होता है कि इसका निर्माण

किसी कलाप्रेमी राजा के द्वारा अनेक शिल्पियों से करवाया गया होगा। इस मंदिर में पन्द्रह चट्टानी गुंबद हैं, जिन तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां निर्मित हैं।

गृह

पहाड़ की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए आवास निर्माण विशेष महत्व रखता है। शीत-बहुल क्षेत्रों में परम्परा से ऐसे घरों का निर्माण होता रहा है, जो सर्दियों की ठंड और बरसात की वर्षा से सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं। ऐसे घरों के निर्माण में लकड़ी का इस्तेमाल अधिक होता रहा है और दीवारों तथा छत के लिए स्थानिक पत्थरों का प्रयोग किया जाता है। इस वास्तुकला की मुख्य विशेषता यह है कि लकड़ी और पत्थर के प्रयोग में गारा या सीमेंट नहीं लगाया जाता। ईंट और सीमेंट का इस वास्तुकला में कोई स्थान नहीं रहता है। इस वास्तु में लकड़ी के खांचे की प्रमुखता रहती है, जिसे दीवारों के लिए चारों ओर से मजबूती से कस दिया जाता है। इस शिकंजे में कील भी लकड़ी की ही लगाई जाती है। चारों कोने लकड़ी से कसे होने से यह ढांचा सैंकड़ों वर्षों तक नहीं हिलता। इसमें बाहर मिट्टी पोती जाती है। इस प्रकार की चिनाई को 'धज्जी चिनाई' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त जो क्षेत्र अधिक ठंडे होते हैं, वहां दरवाजों तथा खिड़कियों के आकार भी छोटे रखे जाते हैं ताकि ठंड से बचाव हो सके। कुल्लू, मंडी, सिरमौर तथा शिमला के ऊपरी भागों में इस तरह के पुराने बने घर पाये जाते हैं।

पहाड़ी वास्तुकला के गृह यहां के पर्यावरण और उपयोगिता के अनुसार निर्मित होते हैं। इनमें प्रायः तीन मंजिलें होती हैं। सबसे निचली यानी धरातल मंजिल पशुओं को रखने के लिए कम ऊंचाई की बनाई जाती है, इसे प्रायः 'ओबरा' कहा जाता है। बीच की मंजिल अन्न भंडारण तथा कृषि की उपयोगिता की वस्तुओं को रखने के लिए निर्मित की जाती है। इसलिए इसमें दरवाजे कम और पक्के बनाये जाते हैं। इस मंजिल में ऊपर वाली तीसरी मंजिल के कमरों में भीतर से उतरने के लिए सीढ़ी रखी जाती है। बीच की इस मंजिल को बोलीगत भिन्नता के आधार पर पांड, फौड़ या भंडार आदि कहा जाता है। सबसे ऊपर की मंजिल आवासीय होती है। इसमें लकड़ी के फर्श वाले खुले बरामदे और लकड़ी के दिलों से सजी दीवारों के साथ नीचे-ऊपर लकड़ी के तख्तों के फर्श और उलटान विशेष कारीगरी से बनाये जाते हैं। ये कक्ष सर्दियों की ठंड से बचाव के लिए विशेष उपयोगी होते हैं। लकड़ी के अधिकाधिक प्रयोग से ये गृह सर्दियों में गर्म और गर्मियों में ठंडे रहते हैं, क्योंकि काठ के तख्तों में ठंड और गर्मी का बाहरी प्रभाव रुक जाता है। निचले इलाकों में जहां इमारती लकड़ी कम पायी जाती है, उन क्षेत्रों में पुराने घर एक या दो मंजिल के बनाये जाते रहे हैं।

पारम्परिक घरों के मुख्य द्वारों, स्तम्भों या शहतीरों और बरामदों के अग्रभागों में काठकलाकृतियों में आकृतियां उकेरी जाती थीं। कांगड़ा, चम्बा, कुल्लू, शिमला, मंडी आदि क्षेत्रों में पुराने खानदानी घरों में ये कला-कार्य आज भी देखने को मिलते हैं। घर के द्वार पर गणेश की मूर्ति बनाने का प्रचलन भी रहा है।

भौगोलिक विविधता के रहते हिमाचल प्रदेश में गृह निर्माण भी कई प्रकार का होता रहा है। इसलिए स्थानिक कारीगर ही इस निर्माण शिल्प के माहिर हुआ करते हैं। कुछ निचले क्षेत्रों में पत्थर और लकड़ी के बजाय घर की दीवारें मिट्टी को कूटकर भी बनायी जाती हैं। ये दीवारें मौसम को अनुकूल बनाने की दृष्टि से बहुत उपयोगी रहती है। इन्हें टपकते पानी से बचाना पड़ता है, इसीलिए हिमाचल प्रदेश की प्रायः सभी इमारतों की छतें ढलानदार रहती हैं। ये छतें स्लेट, लकड़ी के तख्तों या बांस के डंडों से बनायी जाती हैं।

वातावरण की दृष्टि से जनजातीय जिला लाहुल-स्पीति के घर बिलकुल अलग तरह से निर्मित होते हैं। इन घरों की दीवारें पत्थर और मिट्टी के गारे से निर्मित होती हैं। शीत वायु से बचाव के लिए खिड़कियां तथा दरवाजे कम तथा छोटे आकार के बनाये जाते हैं। लाहुल-स्पीति में वर्षा नहीं के बराबर होती है और प्रायः बर्फ ही गिरती है। इसलिए यहां के घरों और गोम्पाओं (मठों) की छतें सपाट होती हैं। दीवारों पर लकड़ी की कड़ियां और टहनियां बिछाकर उस पर मिट्टी डाल दी जाती है। इस तरह के घर बर्फानी क्षेत्र में गर्म रहते हैं। इनकी छतों के ऊपर से बर्फ साथ-साथ हटा दी जाती है। पुराने घर सपाट छतों वाले होने के कारण लाहुल के गांव दूर से डिब्बों के समूह की तरह दिखाई देते हैं।

जिला किन्नौर के आवासीय घरों की निर्माण शैली भी मैदानी क्षेत्रों से भिन्न है। ऊपरी किन्नौर के अधिकतर घर सपाट छत वाले होते हैं तथा निचले क्षेत्र के ढलवां छत वाले हैं। यहां हर घर की नींव पत्थरों की ही बनाई जाती है। निर्माण सामग्री में पत्थर, लकड़ी, मिट्टी, पक्की ईंटों आदि का प्रयोग होता है। यहां के पारम्परिक कारीगर आज भी पक्की ईंटों का प्रयोग बहुत कम करते हैं। लकड़ी, पत्थर और मिट्टी का अधिक प्रयोग होता है। इस क्षेत्र में तखते लगाकर, मिट्टी भरकर उसे कूटकर दीवारें खड़ी करने की प्रथा आज तक कायम है। यह निर्माण विधि भूकम्प के लिए अति सुरक्षित है।

जनजातीय क्षेत्र भरमौर और पांगी में ठंड के कारण घर अधिक ऊंचे नहीं बनाये जाते। भरमौर में प्रायः दो या तीन मंजिलों के घर बनाये जाते हैं। नीचे की मंजिल में पशु रखे जाते हैं, कुछ लोग भेड़-बकरियों को भी इसी पशुशाला में तन (आधी छत) बनाकर रखते हैं। गद्दी लोग ओबरे से ऊपर की मंजिल को ओबरी या मड़ैह कहते हैं। इन घरों में बरामदा भी होता है, जिसे बिह कहा जाता है। ओबरी एक खुला कमरा होता है, जिसमें सभी परिवार के सदस्य रहते हैं। ओबरी से पशुशाला के लिए अन्दर से प्रवेश द्वार रखा जाता है, जिसे चोभु कहा जाता है। सबसे ऊपर

तीसरी मंजिल को बौड़ कहा जाता है। रसोई के लिए बौड़ को प्रयोग में लाया जाता है। इस तरह के घर यहां के पारम्परिक शिल्पियों द्वारा ही निर्मित किये जाते हैं।

पंगवाल लोगों के घर भी प्रायः दो मंजिल के होते हैं। चिनाई के लिए साधारण पत्थरों का प्रयोग किया जाता है। इसमें मिट्टी और गारे का प्रयोग भी होता है। छत पर मिट्टी बिछाई जाती है। उसे पीटकर खूब समतल और मजबूत बना दिया जाता है, जिससे पानी अन्दर न जा सके। इस तरह छतें सपाट होती हैं। छतों को मजबूत रखने के लिए देवदार के लम्बे शहतीरों का प्रयोग किया जाता है। यहां के लोग अधिक सर्दी में निचली मंजिल में रहते हैं। यहां कमरा इतना बड़ा बनाया जाता है कि इसमें घर के सभी सदस्य रह सकें और दूसरी ओर पशु रह सकें। जिस भाग में पशु रहते हैं, उसे आघल कहा जाता है। निचले बड़े कमरे को कोठ कहा जाता है। यहां भोट जनजातीय लोगों के घर भी पंगवालों की तरह ही होते हैं। पांगी में शिप्पी (बढ़ई) जाति के लोग भवन निर्माण की कला में सिद्धहस्त रहे हैं।

हिमाचल प्रदेश में वास्तु विधान की यह विविधता परम्परागत रही है। हर घाटी में जनजीवन अलग-थलग रहने के कारण वहां का खान-पान, रहन-सहन भी भिन्न हुआ करता था। जहां तक सामुदायिक इमारतों, मंदिरों आदि धार्मिक स्थलों तथा आवास गृहों के निर्माण विधान में विविधता का प्रश्न है, इसके दो प्रमुख कारण हैं- पहला यह कि जलवायु की दृष्टि से हिमाचल प्रदेश में क्षेत्रीय स्तर पर भिन्नता पाई जाती है। इस कारण गृह निर्माण भी अलग तरह से होता है। दूसरा महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय तथ्य है कि जिस क्षेत्र में गृह निर्माण के लिए लकड़ी, पत्थर, गारे आदि की जैसी सामग्री उपलब्ध होती थी, उस पर निर्भर करते हुए वहां की इमारतें भी निर्मित होती रही हैं। उदाहरण के लिए जिस क्षेत्र में छत डालने के लिए बड़े आकार की पत्थर की स्लेटें उपलब्ध होती थीं, वहां बड़ी स्लेटें कड़ियों के ऊपर डालकर छत का निर्माण होता रहा, जहां छोटी और पतली स्लेटें निकट की खान से मिल जाती थीं, वहां घनी लकड़ियां डालकर इन स्लेटों से छतें बुनी जाती रहीं। सामग्री की उपलब्धता के आधार पर ही पत्थर, लकड़ी और मिट्टी आदि के उपयोग से भी निर्माण की सूरत विभिन्न क्षेत्रों में बदल जाती है।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिमाचल प्रदेश में व्यापक रूप से सड़कों का निर्माण होने से गृह निर्माण की सामग्री भी दूसरे और दूरस्थ स्थानों से लाई जा रही है। स्थानीय पत्थर की जगह अब राजस्थान की खानों के बहुविध पत्थरों का प्रयोग होने लगा है। छतों के लिए धातु की चादरें बहुतायत में प्रयोग हो रही हैं। खिड़कियों तथा दरवाजों के आकार बड़े हो गये हैं और शीशों का इस्तेमाल भरपूर हो रहा है। इन बातों से यह स्पष्ट होता है कि हिमाचल प्रदेश का पारम्परिक वास्तु विधान पीछे छूट रहा है और नए निर्माण ठंडे तथा गर्म इलाकों में एक जैसे होने लगे हैं। नए निर्माणों में जलवायु और मौसम की अनुकूलता के बजाय देखने के लिए शानदार इमारत बनाने पर जोर है। लाहुल-स्पीति जैसे शीत-मरु क्षेत्र में भी टीन की छतें और सीमेंट की दीवारें बनाई जा रही हैं। इस तरह के नए निर्माण के लिए बिहार, राजस्थान, नेपाल आदि क्षेत्रों से व्यवसायी मिस्त्री आते हैं। लेकिन हिमाचल प्रदेश में आज भी इन नए किस्म के गृह निर्माण का कार्य अधिकांश दलित जातीय लोग ही करते हैं क्योंकि इन लोगों के पास लकड़ी और पत्थर आदि के काम का परम्परागत हुनर रहा है।

राजमहल और किले

हिमाचल प्रदेश में वास्तुकला की दृष्टि से जहां देव-मंदिरों और इनसे जुड़े परिसरों को विशेष कलात्मक रूप से निर्मित किया जाता रहा है, वहीं राजमहलों और किलों आदि का निर्माण भी कई कारणों से उल्लेखनीय है। रियासती राज्य के आकार और समृद्धि के अनुसार ही राजमहलों का विस्तार भी देखने को मिलता है। जिन राज्यों के शासक राजा हुए, उनके महल सबसे बड़े पाये जाते हैं। इनमें चम्बा, जुब्बल, रामपुर, मंडी, नूरपुर और नाहन आदि के महल उल्लेखनीय हैं। इसके बाद राणा और ठाकुर शासक आते हैं, जिनके राज्य अपेक्षाकृत छोटे रहे हैं। इनके महल भी छोटे पाये जाते हैं। कई राजमहलों के भीतर ही अनेक मंदिर भी निर्मित हैं।

हिमाचल प्रदेश के राजमहल यहां की वास्तुकला की विविधता दर्शाने वाले हैं। जिस तरह जलवायु और स्थानिक निर्माण सामग्री की उपलब्धता के आधार पर मंदिर वास्तु में क्षेत्रों के आधार पर विविधता पायी जाती है, उसी तरह राजमहल भी अपने क्षेत्र विशेष की वास्तु छवि विविधता के आधार में लकड़ी तथा प्रस्तर का उपयोग और द्वारों तथा छतों के आकार-प्रकार की विशेष भूमिका रहती हैं। वास्तुकला के स्थानीय कारीगर पारम्परिक स्थानिक तौर पर उपलब्ध निर्माण सामग्री से ही अपने हुनर का पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकास करते रहे हैं, इसलिए शिमला तथा किन्नौर के महलों और मंदिरों से कुल्लू, मण्डी और सिरमौर के महल तथा मंदिर भिन्नता लिए होते हैं, जबकि कांगड़ा और चम्बा के निर्माण इनसे भी अलग दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए जुब्बल, रामपुर सराहन के महलों की छतों तथा द्वारों का आकार-प्रकार देवदार की लकड़ी और बड़े आकार के स्लेट-पत्थरों पर निर्भर करता है, जबकि निचले क्षेत्रों के महलों के निर्माण में पत्थर तथा छोटे स्लेटों का प्रयोग अधिक होता है इस तरह के निर्माण पारम्परिक कारीगर ही स्थानिक पहचान के साथ कर सकते हैं।

इन राजमहलों के अतिरिक्त शासकों द्वारा विभिन्न स्थानों पर किलों का निर्माण भी करवाया गया है। युद्ध आदि के भय की स्थिति में शासक परिवार अपने सेवकों सहित इन किलों में चले जाते थे, क्योंकि ये किले सुरक्षा की दृष्टि से खास तौर से निर्मित

होते थे। इन किलों का निर्माण ऐसे टीलों और पहाड़ की चोटियों पर किया गया है, जहां शत्रु आसानी से नहीं पहुंच पाते तथा किले के भीतर से ही उन पर हमला भी आसानी से किया जा सकता है। हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिला में नूरपुर, कोटला, हरिपुर, तारागढ़, कांगड़ा किला, लाहुल में गोधला, किन्नौर में कामरू, मूरंग, लबरंग, कुल्लू में नगर तथा चैणी कोठी, मंडी में पांगणा तथा कमलाह, गोरखा किला मलावण आज तक अवशेष रूप में हैं। सोलन में त्योंण, सरियुन, रत्नपुर, कोट कहलूर, फतेगढ़, बसेह, बछरेटु, छजियारा ये आठ किले हैं। हिमाचल प्रदेश के अधिकां ा किले सुरक्षा की दृटि से प्रस्तर निर्मित हैं। जाहिर है इन किलों का निर्माण तत्कालीन प्रस्तर कारीगरों ने किया है।

दुर्ग वास्तव में शासक की शक्ति का पर्याय होता है। आज के वैज्ञानिक दौर में अस्त-शस्त्रों का इस कदर विकास हुआ है कि दुर्गों की प्रासंगिकता नहीं रह गई। लेकिन अपने समय में इन दुर्गों में ही शासकों की सेनाएं सुरक्षित रहती थीं और दुर्ग पर कब्जा कर लेने से ही विजय हासिल होती थी। स्थान विशेष का चयन करके ये दुर्ग सुरक्षा तथा प्रहार दोनों दृष्टियों से उपयोगी निर्मित किये जाते थे। दुर्गों को निर्मित करने वाले कारीगर युद्ध नीति के भी माहिर होते थे।

राजमहलों और किलों के निर्माण में प्रस्तर और काष्ठ का काम दलित कारीगर ही करते रहे हैं। राजभय से ये कारीगर अपनी कला और शिल्प का भरपूर प्रदर्शन करते थे और इसके लिए इन्हें पुरस्कृत भी किया जाता था। रियासती समय के कारीगर घरानों के ये शिल्पी परिवार आज भी पाये जाते हैं और इस कला को काफी हद तक बचाये हुए हैं।

जल-स्थान

अतीत में जल की सुविधा के लिए पहाड़ के लोग नदी-नालों, झरनों और बहते पानी पर निर्मित नालू से लेकर कुओं और बावडियों पर निर्भर करते थे। इनमें नदियों के किनारे लोगों के उपयोग हेतु विशेष घाटों का निर्माण किया जाता था। ये घाट प्रस्तर-शिलाओं से निर्मित किए जाते थे। बहते पानी में पत्थर और लकड़ी के नालू लगाए जाते थे। घाटों और जल के नालू का निर्माण कारीगरों द्वारा कलात्मक रूप में किया जाता था। पत्थर और लकड़ी के नालू सिंहमुखी बनाये जाते थे। इसके लिए पत्थर और लकड़ी को मूर्त रूप देने वाले विरासती शिल्पी दलित जातीय होते थे।

जल ग्रहण स्थलों में कुएं और बावड़ी का निर्माण विशेष अभिरुचि के साथ पक्का और सुन्दर होता था। कुएं गहराई के जल को प्राप्त करने के लिए निर्मित होते थे। इसलिए इनका निर्माण तराशे हुए पक्के पत्थरों को गोलाई में चिनकर किया जाता था। लेकिन वापिका का निर्माण जल स्थानों में सबसे आकर्षक होता रहा है। जल की गहराई तक चार कोनों से पत्थर की सीढ़ियां उतारी जाती हैं और ऊपर से नीचे तक ये सीढ़ियां क्रमशः छोटी होती जाती हैं, क्योंकि चौकोर वापिका ऊपर से विस्तृत स्थान घेरती हैं और सबसे नीचे के स्तर पर इसका चतुर्भुज छोटा हो जाता है। इसलिए वापिका के निर्माण में चारों कोनों में पत्थरों का जोड़ बैठाना कारीगर की कुशलता की अपेक्षा रखता है। इस कारीगरी में दलित जातीय मिस्त्री परम्परा से निष्णात रहे हैं। वापिका के आसपास पनिहारिनों के बैठने तथा जल के बर्तन रखने के लिए भी शिला निर्मित विशेष पायदान बनाये जाते हैं। वापिका के जल को साफ-सुथरा रखने के लिए तीन तरफ से चिनाई करके दीवारों के ऊपर ढलवां छत भी पत्थर की स्लेटों या लकड़ी के तख्तों से सुन्दर आकार में निर्मित की जाती है। कई स्थानों पर वापिका के ऊपर यह निर्माण छोटे मंदिर या देहरे की तरह कलापूर्ण होता है। मंदिरों की तरह ही इन वापिकाओं का निर्माण दलित कारीगरों द्वारा किया जाता रहा है और बाद में स्वर्णों के लिए निर्मित वापिकाओं से दलितों को जल भरने की मनाही होती थी।

ट्रीनिटी हॉऊस, कैलस्टन इस्टेट,
शिमला-171001

संदर्भ

1. डॉ. गोमती प्रसाद, 'लोकरंजन', चौमासा, जुलाई-अक्तूबर, 1996, पृ. 19
2. सरन सक्सेना, कला सिद्धांत और परम्परा, साकेत प्रिंटिंग प्रैस बरेली, 1989, पृ. 18
3. डॉ. तुलसी रमण, (सं0), हिमाचल का कला वैभव, हिमाचल अकादमी, शिमला, पृ. 103
4. पद्म चंद कश्यप, हिमाचल प्रदेश ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन, दिल्ली, पृ. 147
5. किशोरी लाल वैद्य, हिमाचल का मंदिर वास्तु शिल्प, हिमाचल का कला वैभव, सं. तुलसी रमण, हिमाचल अकादमी, शिमला, पृ. 111
6. यथोपरि, पृ. 112
7. मौलूराम ठाकुर, हिमाचल की लोक कलाएं और आस्थाएं, दिल्ली, पृ. 72
8. किशोरी लाल वैद्य, हिमाचल का मंदिर वास्तु शिल्प, हिमाचल का कला वैभव, सं. तुलसी रमण, हिमाचल अकादमी शिमला, पृ. 114-15

हिंदी दिवस पर

शतकीय यात्रा की ओर बढ़ते हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के कदम

◆ रतन चंद निर्झर

किसी भी भाषा के संरक्षण व संबर्धन में रचित साहित्य की अहम भूमिका रहती है। भाषा की समृद्धता का परिचय उस भाषा के साहित्य में रचित विपुल भंडार से मिलता है। विश्व में हिंदी भाषा की उत्तरोत्तर प्रगति हिंदी प्रेमियों के लिए सुखद संकेत है। विश्व की तीन प्रमुख भाषाओं अंग्रेजी व चीनी के उपरांत हिंदी भाषा को दर्जा मिलना केंद्र सरकार की इस भाषा के प्रति वचनबद्धता को दर्शाता है। राष्ट्रभाषा हिंदी ने जहां एक और स्वतंत्रता से पूर्व देश में एकता, अखंडता व राष्ट्र प्रेम की भावना को जागृत करने में अमूल्य योगदान दिया वहां आजादी के उपरांत राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने में भी सकारात्मक कार्य किया है। इस भाषा को समृद्ध बनाने में जहां एक और राष्ट्रीय कर्णधारों ने उत्तर से दक्षिण व पूर्व से पश्चिम तक फैलाने में सक्रिय योगदान दिया वहां हिंदी भाषा के प्रखर चिंतकों मनीषियों व विद्वानों ने हिंदी साहित्य को अपनी अमूल्य कृतियों से समृद्ध किया है। साहित्य की अमूमन दो विधाएं हैं लिखित व अलिखित। लिखित साहित्य में पुस्तकें पत्र-पत्रिकाएं निहित रहती है।

हिंदी साहित्य की इस धारा को अविरल प्रवाहित करने में 18वीं सदी से लेकर आज तक निरन्तर कार्य चलता रहा है। विशेषता आज भी इस तरह की कुछ पत्र-पत्रिकाएं निरंतर अपनी प्रकाशन यात्रा का क्रम बनाए हुए हैं। शानदार 50 वर्ष पूर्ण कर शताब्दी की ओर बढ़ रही है। अपने सौ साल की इस स्वर्णिम यात्रा में कई आयाम स्थापित किए हैं। हिंदी पत्रकारिता की यह विकास यात्रा कोलकाता से 30 मई 1826 को उदंत मार्तंड से प्रारंभ होती है। वर्ष 1826 में फरवरी 16 को तत्कालीन सरकार ने युगल किशोर शुक्ल को पत्र संचालन का लाइसेंस जारी किया था। 10 मई 1829 को बंगदूत, अजून 1834 को प्रजा मित्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। पहला दैनिक समाचार पत्र होने का सम्मान वर्ष 1854 में सुधा वर्षा को जाता है। यह दैनिक बड़ा बाजार कोलकाता से प्रकाशित होता था व इस के संपादक थे बाबू महेंद्र सेन। वर्ष 1854 के बाद 1872 का काल पत्रकारिता के दूसरे चरण के रूप में जाना जाता है। इस काल के दौरान कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका, हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण, हिंदुस्तान, भारत मित्र, सार सुधानिधि व उचित वक्त पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ। भारत मित्र के 14वें अंक के मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित रहता था "जयेस्तु सत्यनिष्ठाना मेषु् सर्व मनोरथः " 15वें अंक के मुखपृष्ठ पर यह वाक्य उद्धृत हुआ। शगुन खनित्र विचित्र अती खोले सब के चित्र शोधे नर चरित्र भद्द भारत मित्र पवित्र। इसी काल के दौरान देश में महिला पत्रकारिता में पत्र पत्रिकाओं के रूप में प्रयास किए गए। बालबोधिनी, सुगृहिणी, अबला हितकारी, भारत भगिनी, रहस्य चंद्रिका, प्रिय हितकारक।, वनिता हितैषी, कन्या कौमुदी, महिला मनोरमा, स्त्री दर्पण, गृह लक्ष्मी, दीदी इत्यादि महिला उपयोगी पत्रिकाएं प्रकाशन में आईं। जिनका उस समय की चर्चित महिला विदुषी बहनों द्वारा संपादन किया गया। 19वीं सदी हिंदी पत्रिकाओं के नवजागरण का काल कहा जा सकता है। 1868 से उन्नीस सौ का युग भारतेंदु युग के काल से जाना जाता है। इस काल के दौरान सुधा, ब्राह्मण, प्रदीप, सरस्वती चांद, निबंध नवनीत , चित्र मयजगत, मर्यादा, इंदु, जागरण, हंस, इंदु, गृहलक्ष्मी, विशाल भारत, माधुरी, प्रभा, वीणा, जैसी चर्चित पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इन पत्रिकाओं ने हिंदी साहित्य के विपुल भंडार को समृद्ध किया। 1901से 1910 का काल गदाधर युग, 1911 से 1932 का काल सत्यदेव परिव्राजक, 1935 से 1952 का कालखंड राहुल सांकृत्यायन युग व 1953 से 2000 का काल स्वतंत्र उत्तरोत्तर युग के नाम से जाना जाता है ।

वर्ष 1953 में आगरा से साप्ताहिक बुद्धि प्रकाश व सैनिक समाचार प्रकाशित होने लगा। इसी काल के दौरान बालक कौमुदी, मधुकर, नया समाज तरुण जैसी चर्चित पत्रिकाओं का प्रकाशन भी प्रारंभ हुआ। चांद का फांसी अंक एक दस्तावेज अंक रहा। जिसे अंग्रेजों ने जब्त कर इस पर प्रतिबंध लगा दिया था। अपने होशो हवास यानी साहित्य से जब मेरा रिश्ता जुड़ा उस समय साप्ताहिक हिंदुस्तान, रविवार, सारिका, धर्मयुग, दिनमान पत्रिका से विद्यार्थी काल से लेकर प्रकाशन बन्द होने तक इन से निरंतर

रिश्ता जुड़ा रहा यद्यपि इन लोकप्रिय पत्रिकाओं की यात्रा 50 वर्ष से पहले अवरुद्ध हो गई पर करीब चार साढ़े चार दशक की सफल यात्रा में अमिट मील पत्थर स्थापित कर गई। सबसे पहले साप्ताहिक हिंदुस्तान की बात करते हैं। 2 अक्तूबर 1950 को साप्ताहिक हिंदुस्तान की नींव रखने वाले थे देवदास गांधी और संपादन का दायित्व संभाला बांके बिहारी भटनागर ने। जिन्होंने लगभग 11 वर्ष तक संपादक का दायित्व संभाला। फिर बागडोर सौंपी गोविंद प्रसाद केजरीवाल को। सबसे लंबी यात्रा के सारथी रहे मनोहर श्याम जोशी। जिन्होंने दिसंबर 1967 से लेकर अक्तूबर 1982 तक संपादक का दायित्व बखूबी निभाया। फिर कमान संभाली श्रीमती शीला झुनझुनवाला ने 1986 तक। 1986 से 1988 तक राजेंद्र अवस्थी व 1988 से दिसंबर 1992 तक साप्ताहिक हिंदुस्तान की महिला संपादक रहीं श्रीमती मृणाल पांडेय। शुरुआती कीमत रही तीन आने जो अंतिम पड़ाव तक 6.50 पर प्रति कॉपी तक जा पहुंची। मनोहर श्याम जोशी के संपादन काल को साप्ताहिक हिंदुस्तान का एक यादगार काल के रूप में याद रखा जाएगा।

वर्ष 1992 में 42 साल के सफर के बाद साप्ताहिक हिंदुस्तान का प्रकाशन बंद हो गया। 42 साल के इस लंबे सफर में साप्ताहिक हिंदुस्तान में पाठकों को विविध विषयों से जुड़ी सामग्री उपलब्ध करवाई। कई संग्रहणीय अंक पाठकों को दिए। साहित्य की प्रचार सामग्री से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। हिंदी भाषा की दूसरी चर्चित पत्रिका रही धर्मयुग। मुंबई की बैंनेट कॉल मैन एंड कंपनी ने 8 अक्तूबर 1950 को इसे प्रारंभ किया। इस के आरंभिक संपादक रहे सत्यकाम विद्यालंकार, इलाचंद्र जोशी, हेम चंद जोशी, पर सबसे सफल संपादक काल रहा वर्ष 1968 से लेकर 1987 तक धर्मवीर भारती का। धर्मवीर भारती धर्म युग के पूरक रहे। धर्मयुग को ऊंचाइयों तक ले जाने में उनकी अहम भूमिका रही। इनके संपादन काल में बांग्लादेश विशेषांक, मारीशस विशेषांक, होली व फाल्गुनी उपहार विशेषांक को आज भी उनके उत्कृष्ट प्रकाशन सामग्री के लिए याद किया जाता है। धर्मवीर भारती के संपादन में अंतिम अंक 29 नवंबर से 5 दिसंबर 1987 क्रिकेट विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ। इस अंक में मृदुला गर्ग की कहानी और मालती जोशी के उपन्यास की किस्त प्रकाशित थी। 1992 में गणेश मंत्री, 1996 तक विश्वनाथ ने इस के संपादक का दायित्व निभाया। मई 1995 में यह मासिक पत्र हो गया और 1996 में धर्मयुग पत्रिका पाठकों से अलविदा हो गई। फरवरी 1965 में दिनमान आरंभ हुआ और संपादक थे सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय जिन्होंने 1969 तक संपादन किया। बाद में संपादक रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी, कन्हैयालाल नंदन व सतीश झा। 1986 में यह पत्रिका साप्ताहिक हो गई व अतिथि सम्पादन की परिपाटी आरंभ हुई। अतिथि सम्पादक रहे घनश्याम पंकज व कमलापति त्रिपाठी। दिनमान का वर्ष 1956 में चर्चित साहित्य विशेषांक रहा। अन्य चर्चित पत्रिका जो काल कलवित हुई, उनमें है रविवार। वर्ष 1977 में इसका प्रकाशन कोलकाता से आरंभ हुआ एमजे अकबर, सुरेंद्र प्रताप सिह और उदयन शर्मा इस के संपादक रहे। 12 साल के बाद 1989 में इसका प्रकाशन बंद हो गया। रविवार ने भी पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। सारिका विशुद्ध साहित्य को समर्पित पत्रिका रही इसके प्रमुख संपादक रहे मोहन राकेश, कमलेश्वर , रमेश बतरा इत्यादि ।

वर्ष 1900 से 2000 तक इस सौ साल को दो काल खंडों में विभाजित किया जा सकता है। 1947 तक पूर्वार्ध व 1947 से 2000 तक का उत्तरार्ध स्वतंत्रता पूर्व पत्र-पत्रिकाओं का प्रमुख उद्देश्य रहा पत्रकारिता के माध्यम से देश में नवजागरण कर देश की जनता को जागृत करना, ब्रिटिश हुकूमत की जनविरोधी नीतियों की खिलाफत करना, व देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्ति दिलाना।



वर्ष 1947 के पश्चात का समय हमारे देश भारत के लिए एक नई राह प्रशस्त करना था। राष्ट्र कई चुनौतियां व संकटों के दौर से गुजर रहा था। आजादी के बाद का समय प्रगति का युग कहा जा सकता है। साहित्य के स्वरूप में भी बदलाव आया। हिंदी पत्रकारिता के इस सदी के सफर में कुछ पत्रिकाओं की यात्रा लड़खड़ा गई और साधनों के अभाव में दम तोड़ गई पर फिर भी कुछ एक पत्रिकाओं का सफर अभी भी अनवरत जारी है। निरंतर 100 सालों की ओर कदमताल करते हुए आगे बढ़ती जा रही है। निम्न पत्र पत्रिकाओं के योगदान को कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। शतकीय यात्रा की ओर अग्रसर पत्रिकाओं में अग्रणीय है देश के घर घर में पढ़ी जाने वाली धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत पत्रिका कल्याण। सही मायने में मानव

जगत का कल्याण करने वाली कल्याण पत्रिका निरंतर जनमानस में भी धर्म व अध्यात्म की गंगा प्रभावित कर रही है। यह पिछले 92 सालों से निरंतर गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशित हो रही है। मोटे अक्षरों में प्रकाशित सामग्री कम पढ़े लिखे ग्रामीणों में मानवीय मूल्यों का प्रचार-प्रसार करने में जुटी है। इस पत्रिका के संस्थापकों में मारवाड़ी समाज के धनाढ्य परिवारों की एक सार्थक व शाश्वत सोच रही है। 1922 में गोरखपुर में गीता प्रेस की स्थापना हो चुकी थी तथा जय दयाल गोयंदका, सेठ जमुनालाल बजाज, घनश्याम दास बिड़ला के सार्थक प्रयासों से कल्याण का पहला अंक कोलकाता से 1926 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद इसका प्रकाशन गोरखपुर से होने लगा। इस समय कल्याण की दो लाख से अधिक प्रतियां प्रकाशित होती है। वर्तमान में राधेश्याम खेमका संपादक का दायित्व निभा रहे हैं। आदि संपादक के रूप में भाई श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार की अविस्मरणीय संपादकीय सहयोग कल्याण की शतकीय यात्रा का मील पत्थर है। कल्याण का दूसरा नाम हनुमान प्रसाद पोद्दार है। सामान्य अंक के साथ-साथ कल्याण का सालाना विशेषांक घर-घर में विद्यमान रहता है। इसके कई विशेषांकों के कई संस्करणों को पाठकों के अनुरोध पर पुनः प्रकाशित किया जाता रहा है। वर्ष 2015 में सेवा भाव विशेषांक, गंगा विशेषांक प्रकाशित किया गया है।

कल्याण पत्रिका गीताप्रेस गोरखपुर के पूरे भारत में ग्रामीण समाज में कई धार्मिक पुस्तकों को प्रकाशित कर सस्ते मूल्य पर उपलब्ध करवा कर धर्म अध्यात्म की गंगा प्रवाहित करने में अहम योगदान दिया है और गोरखपुर शहर को एक नई पहचान दी। कल्याण की शतकीय प्रकाशन यात्रा निर्बाध चलती रहेगी ऐसी उम्मीद है। धार्मिक स्थलों के प्रचार-प्रसार में कल्याण का अमूल्य योगदान है।

भारत के अलावा विदेशों में भी कल्याण का पाठक वर्ग विद्यमान है। कल्याण के पश्चात निरंतर प्रकाशित होने वाली पत्रिका नाम आता है इंदौर से प्रकाशित मासिक पत्रिका वीणा। वास्तव में वीणा की झंकार 1927 से निरंतर गूंज रही है। श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य इंदौर ने हिंदी भाषा का हिंदी साहित्य के मूल्यों को समाज तक पहुंचाने के उद्देश्य से इस पत्रिका का प्रकाशन अक्तूबर 1927 में प्रारंभ किया था। पहले संपादक हुए पंडित अंबिका प्रसाद त्रिपाठी। जहां एक ओर इस पत्रिका के 91 साल के सफर के सफलतापूर्वक संचालन में महामना मदन मोहन मालवीय, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, काका कालेकर, भारत रत्न भगवानदास जैसे महापुरुषों, प्रख्यात चिंतकों का वरदहस्त रहा वही तत्कालीन हिंदी भाषा के प्रमुख स्तंभों में चर्चित लेखकों जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, हरिवंश राय बच्चन, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. नागेंद्र, डॉ. गुलाब राय, महान कथा शिल्पी व उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद, अज्ञेय, निबंधकार आलोचक वृंदावनलाल वर्मा, रामकुमार वर्मा, ब डॉ. शिवमंगल सुमन, अटल बिहारी बाजपेयी इत्यादि ने अपना निरंतर साहित्यिक योगदान दिया।

आज तक 17 मनीषी विद्वानों ने संपादकीय दायित्व निभाया जिनमें पंडित अंबिका प्रसाद त्रिपाठी, पंडित कालिका प्रसाद दीक्षित, रामभरोसे तिवारी, पंडित कमला प्रसाद मिश्र, शांति प्रिय द्विवेदी, प्रयाग नारायण संगम, सौभाग्यवती चन्द्र रानी सिंह, राय बहादुर डॉ. सुदर्शन पंडित, गोपी वल्लभ उपाध्याय, रामानंद श्रीवास्तव , परमेश्वर दत्त शर्मा, मोहन उपाध्याय, अतीत प्रसाद जैन, डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन, डॉ. श्याम सुंदर व्यास, डॉ. नेमी चंद जैन, डॉ. राजेन्द्र मिस्र, डॉ. विनायक पांडेय व वर्तमान में सम्पादक राकेश शर्मा शामिल हैं। इनके कुशल संपादन में 31 विशेष संग्रहणीय विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम मैनेजर थे पंडित दामोदर दास त्रिवेदी। मुखपृष्ठ पर वीणा हस्ते सरस्वती का लोगो रहता है । सालाना सदस्यता शुल्क 300 एवं आजीवन सहायता राशि 3000 रुपये है। संपादकीय लेख, कविता, कहानी, संस्मरण, ललित निबंध, पुस्तक समीक्षा, साहित्य अमृत, समिति समाचार युक्त सामग्री पत्रिका में शामिल रहती है। विविध सामग्री में यात्रा वृतांत, ज्योतिष, पर्व-त्योहार, एकांकी, नाटक विधा से संबंधित सामग्री पाठकों के लिए उपलब्ध रहती है। शब्द ब्रह्म झंकृत वीणा हे वीणापाणि समर्पित, जिसके नवसुर लय ताल छंद से तुम्हीं सदा हो अर्चित। शिवेतरक्षति लक्ष्य लिए यह नित्यप्रति रहे अलंकृत, दो वर बीणे यह भारती को फिर करें विश्व में चर्चित। काफी समय तक मुख्य पृष्ठ पर छपता रहा वर्तमान में इसके मुखपृष्ठ पर परिवर्तन किया गया है। वीणा पत्रिका की यह झंकृत वाणी निरंतर सत्य पथ पर झंकृत होती रहे, ऐसी उम्मीद बांधी जा सकती है।

1956 में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के द्वारा भारतीय विद्या भवन की स्थापना की गई। इस संस्था में 1952 में श्री गोपाल नेवटिया के संपादन में नवनीत पत्रिका का जन्म हुआ। रतनलाल जोशी, नारायण दत्त, वीरेंद्र कुमार जैन, गिरिजा शंकर त्रिवेदी एवं कुमार प्रशांत ने वर्ष 2006 तक बखूबी संपादन किया। पिछले 66 सालों से इस का निरंतर प्रकाशन हो रहा है। बीच में कुछ वर्ष प्रकाशन में व्यवधान आया। 2006 में नवनीत नए कलेवर में सामने आई। गिरिजा शंकर त्रिवेदी ने सालों तक इसका प्रतिष्ठित संपादन किया। पुस्तकालयों में अभी भी नवनीत की पुरानी फाइलें देखी जा सकती हैं। हिंदी साहित्य की विविध विधाओं की सामग्री नवनीत में रहती है। कहानी, कविता आलेखों से सुसज्जित पत्रिका माखन की उपमा को सार्थक करती है। वर्तमान में इसकी प्रकाशन यात्रा विश्वनाथ सचदेव के सम्पादन में भवन नवनीत के नाम से निकल रही है । जनवरी 2016 में पत्र

लेखन की विलुप्त परम्परा को पुनजीर्वित करने के उद्देश्य से चिट्ठी आई है विशेषांक निकाला गया जिसका हिंदी जगत में स्वागत किया गया। इसका सालाना शुल्क 300 रुपये है। हिंदी साहित्य की चर्चित पत्रिका हंस के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। मुंशी प्रेमचंद द्वारा 1930 में संचालित हंस की स्थगित उड़ान को वर्ष 1986 में राजेन्द्र यादव ने पंख दिए और हंस की उड़ान उनके देहावसान के बाद आज भी जारी है। प्रेमचंद के समय अंग्रेजों ने हंस के प्रकाशन पर रोक लगा कर इसे जब्त कर लिया था । राजेंद्र यादव ने भी अपने संपादन में हंस को नई पहचान दी है व कई चर्चित विशेषांक भी प्रकाशित किए हैं । प्रगतिशील कथा मासिक पत्रिका हंस का प्रकाशन वर्तमान में अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली द्वारा संजय सहाय व संगम पांडेय के संपादन में हो रहा है। मूलतया कहानी को समर्पित हंस का हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में बराबर का योगदान बना रहा है ।

वर्ष 1945 में प्रकाशन विभाग द्वारा संचालित व प्रकाशित मासिक पत्रिका आज कल के साहित्यिक योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। पिछले 74 सालों से निरंतर प्रकाशित होने वाली हिंदी भाषीय पत्रिका ने हिंदी भाषा के साहित्य को समृद्ध एवं संरक्षित करने में सक्रिय योगदान दिया। 60 साल पूर्ण होने पर आजकल ने अपनी इस विकास यात्रा पर विशेषांक निकालकर प्रकाश डाला था। लोक संगीत व लोक गीतों के संग्रहक देवेंद्र सत्यार्थी ने कुछ साल इस का संपादन किया व अविस्मरणीय संग्रहणीय विशेषांक पाठकों को दिए । वर्तमान में राकेश रेणु वरिष्ठ सम्पादक फरहत प्रवीण संपादक का दायित्व निभा रहे हैं सालाना सदस्यता शुल्क 230 रुपये है। कहानी, कविता, गीत, गजल, समीक्षा के अलावा हिंदी साहित्य के विविध पक्षों पर आलेख समाहित रहते हैं । लोक संस्कृति के विविध रंगों का चित्रण आलेखों से पढ़ने को मिलता रहता है। मई 2003 दिसंबर 2008 के अंक देवेंद्र सत्यार्थी पर केंद्रित है। इसके अलावा आजकल द्वारा हिंदी के प्रमुख विद्वानों पर कई केंद्रीय अंक में प्रकाशित किए गए हैं । मेरी हम उम्र पत्रिका कादम्बनी की चर्चा किए बिना कैसे रह सकता हूं वर्ष 1968 में हिंदुस्तान टाइम्स प्राइवेट लिमिटेड द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिका में 58 साल के सफर में रंग रूप आकार में कई परिवर्तन किए। रामानंद जोशी संस्थापक संपादक के रूप में रहे। कभी छोटे साइज में तो कभी बड़े साइज में इसने अपनी यात्रा में रचना संपादकों के परिवर्तन के साथ-साथ फेरबदल किए। राजेंद्र अवस्थी ने विशेष अवसरों पर केंद्रित अंक निकाले दिवाली तंत्र-मंत्र विशेषांक को भुलाया नहीं जा सकता। कादंबिनी पत्रिका के द्वारा हर वर्ष गर्मियों में यात्रा विशेष सामग्री केंद्रित अंक प्रकाशित किए जा रहे हैं।

वर्तमान में शशि शेखर का प्रथम वचन प्रथम दृष्टया पठनीय संपादकीय आगे की सामग्री पढ़ने से पहले आकृष्ट करता है । सितंबर 2015 का अंक वर्ष 1965 के भारत-पाक युद्ध की विभीषिका पर विस्तृत सामग्री समेटे हुए हैं। भारतीय सेना के वीर जवानों द्वारा अपने खून से लिखे बहादुरी के किस्से से रूबरू करवाती है 50 पृष्ठ पर केंद्रित है कहानी कविता लेख के अलावा पहला कदम, कादंबनी क्लब, किताबें, मतांतर, व्यंग्य, हंसी, दिल्लगी, ज्ञानकोश, एलोपैथी, आयुर्वेद माइंड, खेल भविष्य व अंतिम पृष्ठ पर इव्वार रब्बी का शब्द विवेचन स्थायी स्तंभ है। वर्ष 1965 में ही दिल्ली से जाहन्वी पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। 53 साल का सफर पूर्ण करने के बाद शतक यात्रा की ओर अग्रसर जाहन्वी भारतीय मूल्यों की पोषकता का संदेश देती भाव जागृत करने का कार्य कर रही है। हिंदू धर्म की समर्थक मूल्य से परिपूर्ण पत्रिका में संस्कार का संदेश, कहानियों के अलावा विशेष लेख, संस्कृत लेख, परिवार के साथ साथ व्यंजन, स्वास्थ्य कविता के रूप में पाठकों की रुचि के मुताबिक उपलब्ध करवाती है। इस पत्रिका द्वारा विभिन्न विषयों को लेकर विशेषांक प्रकाशित किए जाते रहे। हिंदू समाज में व्याप्त रूढ़ियों कुरीतियों एवं धर्म में व्याप्त बुराइयों का पर्दाफाश करने वाली जाहन्वी के विपरीत धारा व विचारों की पोषक पत्रिका सरिता की शतकीय यात्रा भी निरंतर कदमताल करती नजर आती है । सरिता पहले कभी मूलतः कहानी पत्रिका हुआ करती थी पाक्षिक पत्रिका सरिता की विकास यात्रा में संस्थापक विश्वनाथ की अथक मेहनत नहीं रहे कई अदालतों में मुकदमेबाजी की विजय यात्रा ने इन्हें सफलता प्रदान की वर्तमान में इनके संपादन की कमान परेश नाथ के हाथों में है। घर घर में अपनी धाक जमाने वाली सरिता पत्रिका विशेषता महिलाओं की एक अटूट साथी रही। भावों की सरिता निरंतर प्रवाहित हो रही है समय-समय पर निकलने वाले विभिन्न विषयों पर बड़ी मांग रही खासकर बुनाई विशेषांक पर्यटन विशेषांक की बेसब्री से महिलाएं प्रतीक्षा करती रहती हैं। आपके पत्र, सरिता प्रवाह, खरी-खोटी बच्चों के मुख से पासा पलट गया यह भी खूब रही, सफर सुहाना, अनजाना, नए

कल्याण पत्रिका गीताप्रेस गोरखपुर के पूरे भारत में ग्रामीण समाज में कई धार्मिक पुस्तकों को प्रकाशित कर सस्ते मूल्य पर उपलब्ध करवा कर धर्म अध्यात्म की गंगा प्रवाहित करने में अहम योगदान दिया है और गोरखपुर शहर को एक नई पहचान दी। कल्याण की शतकीय प्रकाशन यात्रा निर्बाध चलती रहेगी ऐसी उम्मीद है। धार्मिक स्थलों के प्रचार-प्रसार में कल्याण का अमूल्य योगदान है।

पकवान, बिंब प्रतिबिंब, चंचल छाया, गाने कैसे कैसे रिश्ते स्तंभ रहते हैं। दिल्ली प्रेस की पत्रिका सरिता ने भी हिंदी साहित्य की सरिता में अपनी सहित्यिक जलराशि के रूप में सक्रिय योगदान दिया है। राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर से प्रकाशित साहित्य को समर्पित मासिक पत्रिका मधुमती ने भी अपने प्रकाशन के 58 साल पूर्ण कर लिए व सौ साल की ओर अग्रसर है। इसमे 80 प्रतिशत रचनाएं राजस्थान के साहित्यकारों की होती हैं जो प्रादेशिक स्तर के साहित्य को राष्ट्रीय पर लाने के लिए एक सार्थक कदम है।

प्रादेशिक साहित्यकारों के अलावा देश के अन्य भागों से आई साहित्यिक सामग्री को भी समुचित स्थान दिया जाता है। आलेख, कविता कहानी, गीत, गजल, व्यंग, हास्य प्रहसन, अनुवाद शब्द चित्र, लघु कथाएं, बाल जगत, शोध लेख के अलावा पुस्तक समीक्षा स्तंभ के अंतर्गत पुस्तकों की समीक्षा की जाती है। साहित्यिक समाचार तो नियमित रूप से होते ही हैं हिंदी साहित्य के विपुल भंडार को समृद्ध करने में भी मधुमति अपना सहयोग प्रदान कर रही है। जेएंडके कल्चरल अकादमी द्वारा तीन भाषाओं में शीराजा पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। डोगरी, पंजाबी के अलावा शीराजा हिंदी का नाम भी बड़े अदब के साथ लिया जा सकता है। इसने भी अपने प्रकाशन के 53 साल पूरे कर लिए हैं। पिछले 53 साल की यात्रा में इसने अब तक 243 अंक निकाले हैं। डॉ रत्न बसोत्रा आजकल इसके संपादक हैं। विगत में इस पत्रिका ने कान्फ्रेंस अंक व लघुकथा व बाल साहित्य विशेषांक प्रकाशित किये हैं। शीराजा के माध्यम से जम्मू-कश्मीर प्रांत में हिंदी साहित्य की दशा और दिशा के निरंतर दर्शन होते रहते हैं। शीराजा द्वारा समय-समय पर जेएंडके अकादमी के माध्यम से सेमिनारों व गोष्ठियों का आयोजन किया जाता रहा है। वर्ष 1950 से बिहार की राजधानी पटना से साहित्यिक पत्रिका नई धारा मासिक का निरंतर प्रकाशन किया जा रहा है जिसकी शुरुआत राधिका रमन सिंह के संरक्षण में हुई थी।

वर्तमान में इसके प्रधान संपादक डॉ. प्रमथ राज सिंह व सम्पादक डॉ. शिव नारायण हैं। आचार्य शिव पूजन सहाय, राम वृक्ष बेनपुरी व उदयराज सिंह भी इसके सम्पादन से जुड़े रहे।

हिमाचल प्रदेश लोक संपर्क विभाग की मासिक पत्रिका हिमप्रस्थ का जिक्र भी करना नितांत आवश्यक है जिसने अभी इसी साल 63 साल की यात्रा पूर्ण की है 1955 में रामदयाल नीरज, सत्येन शर्मा, जिया सिद्दीकी, खेमराज गुप्त सागर, रतन सिंह हिमेश के संयुक्त प्रयास से प्रारंभ हुई हिमप्रस्थ पत्रिका कई पड़ावों से गुजरती हुई आज उच्चकोटि के मुकाम तक पहुंची है। अपने इस छह दशक की यात्रा के दौरान ही हिमप्रस्थ ने कई यादगार अंक पाठकों को दिए हैं। 1960-70 के दशक में राहुल सांकृत्यायन के शोध परक आलेखों ने हिमाचल के इतिहास संस्कृति और विकासात्मक पक्षों को उजागर किया जिसका इसमे कड़ीवार प्रकाशन किया गया। चंबा सहस्राब्दी अंक, कहानी विशेषांक के साथ साथ शिमला, मंडी, कुल्लू, ऊना, सोलन जिला विशेषांकों के अलावा बाल विशेषांक व मार्च 2018 में हास्य व्यंग्य विशेषांक प्रकाशित किये गए हैं। शोध परक इस पत्रिका ने राज्य व देश स्तर पर शोधार्थी विद्यार्थियों को भी सहायक सामग्री उपलब्ध करवाई है । हिमप्रस्थ पत्रिका का नाम राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। किशोरी लाल वैद्य, रंजीत राणा, ठाकुर दत्त शर्मा आलोक, संजय शर्मा, बद्री सिंह भाटिया के बाद वर्तमान में इस पत्रिका के वरिष्ठ संपादक विनोद भारद्वाज अग्रणी भूमिका में हैं व संपादक का दायित्व वेद प्रकाश संभाल रहे हैं। निकट भविष्य में इस पत्रिका द्वारा अक्तूबर 2018 में महात्मा गांधी की 150 वर्षगांठ पर तथा लघु कथा व सिरमौर तथा बिलासपुर जनपद पर विशेषांक निकाले जाने की योजना है। इसमें हिंदी साहित्य के प्रमुख लेखकों के उपन्यास धारावाहिक रूप से भी प्रकाशित हुए हैं। 25 पैसे की कीमत से प्रारंभ होने वाली मासिक पत्रिका का वर्तमान में सालाना शुल्क 150 रुपये है। इन पत्रिकाओं के इलावा और जो पत्रिकाएं 50वीं सालगिरह की ओर अग्रसर है उनमें साहित्य अमृत, हरिगंधा, जागृति, पंजाब सौरभ, शुभ तारिका, गगनांचल, इंद्रप्रस्थ भारती, वागर्थ, समकालीन भारतीय साहित्य, ज्ञानोदय, मनोहर कहानियां, मनोरमा, सत्यकथा व उत्तर प्रदेश भी शामिल हैं।

निकट भविष्य में हिमप्रस्थ पत्रिका द्वारा अक्तूबर 2018 में महात्मा गांधी की 150 वर्षगांठ पर तथा लघु कथा व सिरमौर तथा बिलासपुर जनपद पर विशेषांक निकाले जाने की योजना है। इसमें हिंदी साहित्य के प्रमुख लेखकों के उपन्यास धारावाहिक रूप से भी प्रकाशित हुए हैं। 25 पैसे की कीमत से प्रारंभ होने वाली मासिक पत्रिका का वर्तमान में सालाना शुल्क 150 रुपये है।

अर्धशतकीय यात्रा से पूर्व दम तोड़ने वाली साहित्यिक पत्रिकाओं में समाज कल्याण, सारंगा स्वर, गंगा इत्यादि शामिल हैं। अपनी यात्रा को जारी की गई पत्रिकाओं की श्रेणी में कुरुक्षेत्र, सैनिक समाचार, भारतीय रेल पुष्प गंधा कथा देश, कथानक, वर्तमान साहित्य, पल प्रतिपल, पहल, वसुधा, बुलंद प्रभा, लमही, आकार, साखी, समाज धर्म, अलाव, इंद्रप्रस्थ भारती, गगनांचल, अक्षर पर्व, इस्पात भारती, खनन भारती, इरावती, सेतु, पर्वतराग, गिरिराज, समकालीन सृजन इत्यादि पत्रिकाएं उल्लेखनीय हैं और अपने साहित्यिक योगदान से हिंदी भाषा को समृद्ध करने में अपना योगदान दे रही है जिसे विस्मृत नहीं किया जा सकता ।

मकान नंबर 211, रौड़ा सेक्टर 2 बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश-174001, मो. 0 94597 73121

आलेख

आजाद देश की आजाद बेटी

◆ किक्की सिंह

मैं एक आजाद देश की आजाद बेटी हूं । मेरे सोचने-समझने की शक्ति, विचार एवं भावनाएं संपूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं इसलिए मैं किसी भी चीज के केवल नकारात्मक पहलू को ही देखकर विचलित नहीं होती बल्कि उस चीज का सकारात्मक पहलू देखकर खुश होने की इच्छा और शक्ति भी रखती हूं। बीते वक्त के साथ मैंने अपने आप को और भी अधिक विकसित और सशक्त कर लिया है। मैंने सभी परंपराओं और कुरीतियों की दीवार तोड़कर नई सोच और नई दिशा को स्थापित करने की पहल की है। पहले जब मेरा जन्म हुआ करता था तो मेरे पैदा होने के साथ ही मेरे माता-पिता मेरी शादी के लिए पैसा इकट्ठा करना शुरू कर देते थे, ताकि मेरी शादी के वक्त वह दहेज के तराजू में मेरी खुशियों को पैसों से तोल कर खरीद सकें। आज के इस आधुनिक और शिक्षा से ओतप्रोत समाज के संगत के कारण मेरे माता-पिता के मानसिकता का विकास तो जरूर हुआ है, लेकिन आज भी उनकी अर्धविकसित सोच दहेज के इर्द-गिर्द ही घूमती रहती है। मेरे जन्म के बाद पैसे तो वह आज भी जमा करते हैं, लेकिन अब उनका उपयोग मुझे शिक्षित करने के लिए होता है ताकि मेरी शादी के वक्त लड़के वालों को मेरी काबिलियत और आय दिखाकर दहेज प्रथा से बचा जा सके। देखा जाए तो बेटियां आज धरती पर से चांद तक का सफर तय करके आ गई। लेकिन मां-बाप की सोच है कि दहेज की बात से आगे बढ़ती ही नहीं। क्या बेटी के शिक्षित होने का उद्देश्य और फायदा मात्र दहेज प्रथा से मुक्ति पाना ही है ? क्यों उन्होंने अपनी सोच को इतना सीमित रखा है ? यह दोनों कभी मेरे नजरिए से बेटी के शिक्षित होने के लाभ को क्यों नहीं देखते हैं ? वह यह समझने की कोशिश क्यों नहीं करते हैं कि अगर मैं शिक्षित हो जाऊं तो मुझे पिता के बाद अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए पति के सामने हाथ फैलाना नहीं पड़ेगा। मुझ पर घरेलू हिंसा करने से पहले मेरे ससुराल वाले सौ बार सोचेंगे। कोई मेरे अधिकारों का हनन नहीं कर पाएगा। अगर कहीं दुर्भाग्यवश किसी कारण मेरा मेरे पति से तलाक भी हो जाए तो मुझे अपना और अपने बच्चों का पेट पालने के लिए पति द्वारा दिए गए गुजारे भत्ते का मोहताज नहीं होना पड़ेगा। सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात तो यह है कि अगर कहीं बुढ़ापे में मेरे माता-पिता को मेरे भाई से वह उचित मान-सम्मान ना मिले जिसकी उम्मीद उन्होंने की थी तो मैं खुद उनके बुढ़ापे की लाठी बन उनके बुढ़ापे को वह सभी सुख-सुविधाएं, सहारा और मान-सम्मान दूं जिसके वह हकदार हैं। मैं 21वीं सदी की वह लड़की हूं जिसने कलयुग को कलहों से मुक्त करने का जिम्मा अपने सर ले लिया है। मैं कलयुग कि वह बेटी और बहू हूं जिसने अपनी मां और सास को झाड़ू-पोछे और चूल्हा-चौके की चारदीवारी से आजादी दिला कर जीने का एक नया मौका और मकसद दिया है। आज वह उम्र के इस पड़ाव पर कलम, डायरी और माइक पकड़कर दुनिया के सामने सफलता की एक नई मिसाल कायम कर रही हैं। महिलाओं की पूरी जिंदगी घर गृहस्थी को संभालते, चूल्हा-चौका करते, बच्चों को संभालते उनकी जरूरतों को पूरा करते, अपनी छोटी-छोटी खुशियों का गला घोटने हुए निकल जाती है और जब उनका बुढ़ापा आता है तो वह अपनों की भीड़ में तनहाई के पिंजरे में कैद होकर घूमती रहती है। लेकिन मैं आज का परिवर्तन हूं। मैंने मां-सास के बीच खड़ी भेदभाव अर्थात दोहरी नजरिये की दीवार तोड़ दी है।मैंने जन्म देने वाली और शादी के बाद मुझे बहू की जगह बेटी समझने वाली मां को एक बराबर मान सम्मान, इज्जत और प्यार दिया है। मैंने अपने माता-पिता और सास-ससुर को कभी भी ललचाई हुई नजरों से नहीं देखा और ना ही कभी अपने हमसफ़र को उन्हें उन नजरों से देखने दिया। मैंने कभी भी जिम्मेदारियों से बचने के कारण अपने सास-ससुर और माता-पिता को अपने साथ अपने घर में रखने में आनाकानी नहीं की बल्कि कई बार दोनों परिवारों के चारों सदस्यों को एक साथ एक छत के नीचे रखकर एक नई मिसाल पेश की और इन सभी के आशीर्वाद तथा दुआओं की पात्र बनी। आज की इस भागदौड़ भरी जिंदगी में मुझे सुकून के दो पल भी नहीं मिलते हैं कि मैं अपने बच्चों के साथ बैठ कर बातें कर सकूं। स्कूल से आने के बाद वह अपना समय कैसे बिताते हैं ? क्या-क्या करते हैं ? ऐसी कई बातें समय की कमी के कारण मैं कई बार नहीं जान पाती हूं। मेरे बच्चे कैसे संगति में जा रहे हैं? अपने वक्त का सदुपयोग कर रहे हैं या फिर दुरुपयोग? यह सभी बातें मेरे लिए

जानना बहुत ही जरूरी है। कहीं मेरे बच्चे किसी बड़ी मुसीबत से झूठ तो नहीं रहे हैं ? इन सबके अलावा सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात तो यह है कि सही वक्त में मेरे बच्चों के अंदर संस्कारों का सृजन हो भी रहा है कि नहीं ? लेकिन आज मैं इन सभी प्रकार की चिंताओं से मुक्त हूं। आज मेरे बच्चे स्कूल से लेकर मोहल्ले तक सबसे अलग नजर आते हैं क्योंकि उनमें संस्कार प्रचुर मात्रा में है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मेरे घर और बच्चों की बागडोर मेरे घर के बड़ों के हाथों में है। जिसके पास कई वर्षो का तजुर्बा है ।

मैंने मुसीबतों के वक्त चेहरे पर चार हाथ का घूंघट डाल कर भागना नहीं सीखा है बल्कि उस का डटकर सामना करना सीखा है। मैं कलयुग की काली हूं। जो स्वयं ही दुश्मनों का काल लाने के लिए प्राप्त हूं। मैंने कराटे सीखकर अपनी सुरक्षा का जिम्मा अपने हाथों में ले लिया है। मैं एकांत रास्तों पर से गुजरते वक्त हिचकिचाती नहीं क्योंकि मैं पर्स में अपने साथ ब्लैक पेपर स्प्रे और लाल मिर्च पाउडर जैसे घरेलू हथियार लेकर घूमती हूं। एकांत रास्तों पर से गुजरते वक्त मेरे परिवार का कोई भी एक सदस्य मेरे साथ फोन पर बना रहता है जिससे उस रास्ते पर गुजरने के दौरान अगर मेरे साथ कोई भी घटना घटित हो तो मेरे परिवार वाले इस बात की सूचना पुलिस तक तुरंत पहुंचा सके। वक्त के साथ मैंने अपने आप में बहुत परिवर्तन किया है और अपने अंदर छिपी हिम्मत को बढ़ावा दिया है।

सैकड़ों बार इन्हीं छेड़छाड़, दुर्व्यवहार और बलात्कार के डर के कारण मुझसे घर से दूर जाकर अच्छी शिक्षा और काबिलियत दिखाने का मौका छीन लिया जाता है और वक्त से पहले ही मेरे हाथ पीले करके मुझे एक खूंटे से दूसरे खूंटे में बांध दिया जाता है। बेटी के ख्वाबों को ख्वाब ही रखकर क्या उसकी शादी करवा देना ही हर अपराध को रोकने का एक मात्र समाधान है ? अगर ऐसा ही है तो क्यों विवाहित महिलाएं भी बलात्कार का शिकार बन जाती हैं। कई बार हम पूरी जिंदगी जिस अनहोनी से बचने की कोशिश करते हैं जीवन के अंत में उस अनहोनी का शिकार बन ही जाते हैं। मुसीबतों से मुंह छुपा कर भागना और यह स्वांग करना कि हमने मुसीबतों से छुटकारा पा लिया है यह हमारी सबसे बड़ी भूल है। मुसीबतों से मुंह छुपा कर भागने से अच्छा है कि हम उसका डटकर हिम्मत के साथ सामना करे ताकि वह हम पर हावी होने के बजाय घुटने टेकने पर मजबूर हो जाए। मैंने कभी भी इन सभी अनहोनी को अपनी सफलता के रास्ते का पत्थर बनने नहीं दिया।

H-E-C colony Qrs no D.T. 1740 Dhurwa,
Ranchi, Jharkhand-834004
Mob: 0 79038 65802

कविता

पौ फटने का इंतजार

समर्थ अक्षय कुमार



हर पहर मैं किसी के लिए मरता हूँ,
शब-ए-गम की स्याही से लिखता हूँ,
वक्त के कोरे सफों पे खुद मिलता हूँ,
तुम्हे ज़माने से अपना रिश्ता बताता हूँ।

यह सांसों की डोर किस्तों में जीता हूँ,
लड़खड़ाते कदमों से जीवन नींव रखता हूँ,
कभी तो मैं वसल की आग से जलता हूँ,
कही मैं जड़ बनके चेतन से मिलता हूँ।

साय-ए-गर्दिश में जीवंत उम्मीद रखता हूँ,
पर किसी शाम जब मैं मर जाता हूँ,
उस एक रात अपने रिश्ते निभाता हूँ,
मृत पड़ा पौ फटने का इन्तज़ार करता हूँ,
वह कई रोते-बिलखते चेहरों को देखता हूँ।

तब आग से अंतिम सेज़ को सजाता हूँ,
वहीं इस रूप-रंग महल को जलाता हूँ,
वहीं कई कही-अनकही बातें सुनता हूँ,
'समर्थ' उस दिन ज़माना-ए-राख बहाता हूँ।

गांव व डाकघर स्यूल, तहसील डाडा सीबा, जिला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश-177 112, मो. 0 94188 96459

आलेख

सपने वे होते हैं जो रात में सोने नहीं देते

◆ दीपक गिरकर

भारत रत्न डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम कहते थे कि सपने वो नहीं होते जो रात को सोते समय नींद में आये, सपने वे होते है जो रात में सोने नहीं देते। वे हमेशा सभी से कहते रहते थे कि सपने देखो और हमेशा ऊँचे सपने देखो। सपने तब तक देखते रहो जब तक कि वे पूरे न हो जाए। उनकी कड़ी मेहनत, आसमान छू लेने वाली उनकी लगन और ऊँचे सपने देखने के कारण ही वे इतने महान व्यक्ति बने। डॉ. कलाम ने हमारे देश को एक विकसित देश बनाने का सपना देखा था जिसके लिए उन्होंने कहा था। आपके सपने के सच हो सकने के पहले आपको सपना देखना है। उनके अनुसार देश की असली संपत्ति युवा है इसी वजह से वे हमेशा युवाओं को प्रोत्साहित और प्रेरित करते रहते थे। सपने देखने से व्यक्ति की इच्छाशक्ति दृढ़ होती है। इच्छाशक्ति ही मुसीबतों से लड़ने में मदद करती है। लोग आपके सपनों का तब तक मजाक उड़ाते रहेंगे जब तक आप अपने सपने को हक़ीकत में नहीं बदल देते। सपनों को पूरा करने के लिए दिन रात मेहनत करनी पड़ती है। हर सफलता का मार्ग सपना देखने से ही प्रारंभ होता है। नेपोलियन बोनापार्ट के शब्दकोष में असंभव शब्द ही नहीं था। हमें यदि जीवन में अपना सपना पूरा करना है तो असंभव शब्द को अपने मस्तिष्क से निकाल फेंकना होगा। तथ्य बताते है कि जो भी हम सोचते है और सपने देखते हैं उसे अपने जीवन में पा सकते हैं। हमारे सपने हमारी वास्तविकता बन जाते है। पाउलो कोल्हो ने कहा था, जब आपका दिल वास्तव में कुछ चाहता है तो पूरा ब्रह्मांड आपको उस लक्ष्य को हासिल करने में मदद करता हैं। अपने सपनों को पाने के लिए आपको उन पर विश्वास करना चाहिए। आकर्षण का सिद्धांत गुरूत्वाकर्षण के सिद्धांत की तरह ही काम करता हैं। अवचेतन मन में जो सपने होते है वे सच हो जाते है। सपने पूरे करने के लिए प्रेरित रहना ज़रूरी है। संकल्प शक्ति को दृढ़ बनाकर हम विकट-से-विकट परिस्थिति में भी सफलता प्राप्त करके अपने सपने को पूरा कर सकते हैं। अपनी अदम्य इच्छा शक्ति के आधार पर एक बीमारी के चलते ढाई साल की उम्र में ही अंधी, बहरी, गूंगी हो गई हेलेन केलर ने अपने सपने को कठिन परिश्रम के आधार पर साकार करके जो मुकाम हासिल किया वह अकल्पनीय है। हेलेन केलर का हर सपना रंगीन था और उनकी कल्पना स्वर्णिम थी। 22 वर्षों तक अकेले एक व्यक्ति ने केवल छेनी और हथोड़े से ही एक बहुत बड़े पहाड़ को धराशाही कर दिया और शहर व अपने गाँव गहलोर के बीच की दूरी को 70 किलोमीटर से मात्र 15 किलोमीटर के रास्ते में परिवर्तित कर दिया था, वह प्रबल इच्छाशक्ति व अपने सपने को साकार करने वाला ग़रीब दशरथ मांझी है। 1959 में उसकी पत्नी का निधन इसलिए हो गया था क्योंकि वह अपनी बीमार पत्नी को लेकर अपने गाँव से शहर समय पर नहीं पहुँच पाया था। यदि किसी व्यक्ति में ऊँचे सपने, दृढ़ संकल्प, अदम्य इच्छाशक्ति, कर्तव्य कर्म में ईमानदारी व निष्ठा, सच्ची लगन हो तो सुविधा व आवश्यकताओं का अभाव भी उसे लक्ष्य पाने से रोक नहीं सकते है। लगातार असफलताओं के बावजूद भी अपने सपने को साकार करके सफलता प्राप्त करने का जो अनुपम उदाहरण अब्राहम लिंकन ने अपने जीवन में प्रस्तुत किया है वह काफ़ी प्रेरणादायी हैं। कई चुनाव हारने के बाद 52 साल की उम्र में वे अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गए। थामस अल्वा एडीसन ने अपने सपने को साकार करने के लिए एक हज़ार बार असफल होने के बाद भी हार नहीं मानी और बल्ब का अविष्कार किया। क्रिकेटर युवराज सिंह जिनका सपना ही देश के लिए क्रिकेट खेलना था वे कैंसर होने के बावजूद भी उस बीमारी को हराकर दोबारा क्रिकेट के मैदान में डट गए। अभी नहीं तो कभी नहीं इस मंत्र को ध्यान में रखते हुए अपने सपने के अनुसार लक्ष्य को प्राप्त करने का सही समय है। अभी से सपने को पूरा करने के लिए अपने लक्ष्यों को टालना नहीं चाहिए। सपने साकार करने के लिए मुश्किलों से मुँह न मोड़े, उनका ईमानदारी से सामना करें। सकारात्मक नज़रिया रखते हुए अपने अंदर आत्मविश्वास जगाए रखे व खुद पर पूरा विश्वास रखे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सकारात्मक तपस्या से सपनों को साकार किया जा सकता हैं। बच्चों और युवाओं को अपने सपने साकार करने के लिए महापुरुषों का जीवन चरित्र पढ़कर, उनसे प्रेरणा लेकर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना होगा।

सपने साकार करने के लिए मुश्किलों से मुँह न मोड़े, उनका ईमानदारी से सामना करें. सकारात्मक नज़रिया रखते हुए अपने अंदर आत्मविश्वास जगाए रखे व खुद पर पूरा विश्वास रखे. वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सकारात्मक तपस्या से सपनों को साकार किया जा सकता हैं। बच्चों और युवाओं को अपने सपने साकार करने के लिए महापुरुषों का जीवन चरित्र पढ़कर, उनसे प्रेरणा लेकर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना होगा।

28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर - 452016, मोबाइल : 9425067036

कविता

खौफनाक अंधेरे

– वंदना राणा

शहीदों की शहादत का सुनो
क्या इनाम हो गया है
अपने ही देश में नाम
उनका गुमनाम हो गया है।

अपने लहू से सींचा यह गुलशन
कांटों का जंगल हो गया है
देखते-देखते आंगन खुशियों
का, वीरान हो गया है।

बेकारी, बेरोजगारी भूख-प्यास
रोज तन-मन जलाती है
गुस्सा, तनाव और नशाखोरी से
दिशाहीन इनसान हो गया है।

हो गए हम उस देश के वासी
गंगा जहां मैली हो गई है हमसे



नदियों के धारों को रोकने वाला
इनसान यहां भगवान हो गया है।

कागज के फूलों से घर
अपने सजा लिए हैं हमने
कहां से महकेगी फिर खुशबू
जब से घर अपना मकान हो गया है।

रिश्ते बनते हैं, फिर टूट जाते हैं
दो कम चलते साथ छूट जाते हैं
राह गुजरते अपनों से यहां
अपना अनजान हो गया है।

हम बदले हैं या जमाना बदला है
वक्त हाथों से रेत सा फिसला है
बहुत खौफनाक अंधेरे हैं, सफर
जिंदगी का कितना सुनसान हो गया है।

कहा दिल ने बहुत डरते और डराते हो
मैंने कहा डर नहीं हकीकत है यह
कब, कहां, कौन किसको दबो ले
भेड़िये से भी खूंखार यहां इनसान हो गया है।

सैट 3, टाईप-3, कैंडल लॉज, लौंगवुड,
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 001

गीत

एक भारत श्रेष्ठ भारत

– गणपति सिंह 'मुग्धेश'

जिसने बंधुत्व अमन का, सब को पैगाम दिया है
एक भारत श्रेष्ठ भारत, कहती तमाम दुनिया है।

मिलजुल के रहना सीखा, प्रिय हिंदुस्तान में सदा
संस्कृति महान ऐसी, जीवन सुख मान दिया है।

जन हिंदू हो या सिख हो या मुसलमान ईसाई
अधिकार तो संविधान ने, समान हर शख्स दिया है।

बहु जाति धर्म पंथों का, प्रेम-घर देश है मेरा
अनेक रसों का एक रस, बनाय पीयूष दिया है।

इसने पूरी दुनिया को, एक परिवार ही माना
अतिथि देव समान जाना, आदर नित सिद्ध किया है।

अब यह ज्ञान विज्ञान में, प्रगति करता ही जा रहा
शक्ति और शांति केंद्र बन, हरेक दिल जीत लिया है।

सदियों से विश्वगुरु रहा, फिर बन जाएगा जरूर
वेद पुराण उपनिषद् से, जग का उद्धार किया है।
एक भारत श्रेष्ठ भारत, कहती तमाम दुनिया है।

सेदरिया-ब्यावर, राजस्थान-305 901,
मो. 0 94607 08360

कहानी

गोंदली

◆ **रजनी शर्मा बस्तरिया**

'गोंदली' ही नाम था उसका स्थानीय भाषा में गोंदली प्याज को कहा जाता है। कमर झुक चली थी। अब लाठी ही उसका सरपरस्त था। त्वचा पर जाने कितने कच्चे-पक्के, मीठे कड़वे अनुभवों के फेरे थे....। मांस ने हड्डियों का साथ छोड़ दिया था।... वक्ष के लोलक पेशीविहीन हो चले थे ।... पर काम आज भी दुरुस्त... बस्तर की वादियों में दूर पदचाप से भी पहचान जाती थी कि कौन आ रहा है ? क्या हो रहा है?

गोंदली की आंखों में सारा कल आंखों में तैरने लगा। आज तो गोंचा (रथयात्रा) थी। 'मोरटपाल' से पूरे का पूरा गांव लगभग जगदलपुर की ओर कूच कर रहा था। साल भर से प्रतीक्षा रहती थी। रथयात्रा में तुपकी (बांस से बना बंदूक नुमा यंत्र, लेका लेकी (लड़का, लड़की) की ठिठोलियां, बोबो (पकवान), चूड़ी, फुंदरी, सल्फी (मद्ध) बजरिया पान, फन्नसकुआ (पका कटहल) और ना जाने क्या-क्या नहीं होता था। पूरा बाजार गमकता था, सोंधी मिट्टी की खुशबू, फन्नसकुआ, सल्फी का काकटेल का सुरूर बस्तर के आदिवासियों के सिर चढ़कर बोलता था।

'गोंदली' सचमुच पर्तदार थी। जीवन के कितने रंगों की परतों से उसकी व्यक्तित्व ढका था। घर में आज्ञाकुमारी, सखियों के बीच लठ्ठकुमारी, जंगल में महुआ बीनते समय निडर कुमारी, गन्ने के खेतों में लोकगीत गुनगुनाते समय गीत कुमारी, सल्फी पीकर शेर कुमारी, और सिरफिरों से उलझने वाली सबक कुमारी। इतने सारे व्यक्तित्व की परतें थीं जो समयानुसार सामने आती रहती थी।

सहेलियों की टोली के साथ वह झूले में बैठने को अपनी पारी का इंतजार कर रही थी। अचानक झूले वाले वे झूला रोका, गोंदली, फूलो, और दो सहेलियां झूले में बैठ चुकी थी। झूले की आवाज 'किरकोंय... किरीच', ...किरकोंय किरीच की आवाज के साथ अपनी रफ्तार ही पकड़ी थी कि एक पेंगुर (जंगली फल का बीज) तुपकी (बांस का बंदूक नुमा यंत्र) से चल कर गोंदली के पीठ पर चट से आ लगा। गोंदली ने तिलमिला कर देखा आया गो (मां रे) चार लेका (लड़कों) का ग्रुप हंस रहा था। गोंदली का पारा सातवें आसमान पर आ पहुंचा। जैसे ही झूला रुका उसने इंट का जवाब पत्थर से देने वाले अंदाज से तथाकथित शूटर 'आयतु' को तुपकी से शूट कर दिया। आयतू अवाक, बांहों की मछलियाँ, वृषभ स्कंधा फड़फड़ा उठी। ये लेकी तुइ काये काजे मोके मारलिस। (तुमने मुझे क्यों मारा) ''जानुआँय जानुआँय तूचो ढंगनाच के, उल्टा चाटू ने डोंगा घाटू'' (चोरी ऊपर सीना जोरी)।

जब गोंदली ने अपना खोसा (जुड़ा) कसा तो बात बढ़ते देख उसकी सहेलियों ने उसे वहां से हटाना उचित समझा...। अचानक आयतू और उसकी टोली से गोंदली का आमना सामना पुनः फीते वाली दुकान पर हो गया...। गोंदली ने आयतू को खा लेने वाली नजरों से देखा और वहाँ से हट जाना ही उचित समझा....। सांझ होने से पहले ही अपने गांव लौटने की जल्दी थी गोंदली को। आखिर बीस कोस पैदल लौटना था...। जगदलपुर से वापस मोटरपाल की संकरी पक्की सड़क जिस पर सिर्फ मोटरों, ट्रकों, गाड़ियों की आवाजाही होती थी। सड़क के दोनों किनारे धूल से अटे पड़े थे। धुल था कि टेलकम पाउडर ऐसा लगता था जैसे कि विधाता ने आसमान वाली छलनी से छान कर नीचे धरती पर धूल विसरित की हो। उन पर चलते सभी बस्तरिया लाठी टेकते बुजुर्ग, नौनिहाल, माताओं के कंधे पर टंगे कपड़े के झूले से झांकते निश्छल, निश्चित, उनींदे नवजात, बस्तर की सुडौल, मेहनतकश बालायें। बस्तर में त्योहारों पर लगभग गांवों का पूरा हुजुम शहर की ओर कूच कर जाता है, साथ ही सामूहिक वापसी भी...। गोंदली के मुंह से लोकगीत झर रहा था। सहेलियां भी साथ दिये जा रही थी।

घर पहुंच कर बाड़ी में मटके के पानी से अपना हाथ मुंह धोकर गोंदली ने झोपड़ी में प्रवेश विद्या- चिमनी जलाई और रात के खाने की तैयारी करने लगी। हांडी से चिगड़ी मछली (छोटी मछली) और भात ही बनेगा... । अगली सुबह जब वह दातून व महुआ इकट्ठा करने जंगल जा रही थी कि, झाड़ियों पर किसी की पदचाप सुन कर गोंदली व उसका दल चौंका...। वहां तो आयतु व अन्य लड़कों का भी हुजुम पहले से मौजूद था। गोंदली ने खुद को समझाया। हूँ... जंगल तो सबका है। आया होगा, दातुन, पत्तल, लकड़ी, मोर पंख इकट्ठा करने...। आखिर गांव में नाट जात्रा परब, स्थानीय नाटक पर्व का मंचन जो होने वाला था। समय बीतता गया...। गांव के कोतवाल ने मुनादी करवा दी थी कि आज रात को नाटक का मंचन होने वाला है। पूरे गाँव में गहमा गहमी थी। तेतर रुख (इमली के वृक्ष) के नीचे नाटक मंचन की व्यवस्था की गई थी। आसपास के दस गांवों की भीड़ आ चुकी थी। सल्फी लांदे, बजरिया पान, धूल, पसीने की गंध से मिल कर

अनोखा तिलस्म बिखरा जा रहा था। बच्चों की टोलियों की धमा चौकड़ी, बस्तर बालाओं का उत्साह, आस-पास के पंच, सरपंच, लाठी टेकते बुजुर्ग और दूसरे गांव से आये नौजवान जो नाटक कम बस्तर बालाओं के दर्शन का नयन लाभ लेते दिखाई दे रहे थे।

गोंदली ने चट पीली साड़ी, घुटने के ऊपर तक बांध रखी थी। रंग-बिरंगे फीते से अपना खोपा (जूड़ा) कसकर बांधा था। ककनी (कंगन) को तालाब पार जाकर इमली से सी-सी के उच्चारण के साथ मांज.... मांज कर चमकाया था। गोंदली का रूप कैसा सुंदर निखर आया था। वह नाटक देखने खड़ी हुई थी कि किसी से टकराई। बाजू में देखा तो आयतू खड़ा था। उसने कनिखयों से आयतू को देखा। साफे में जंगली पक्षी के पंख खोंचे, भुजाओं की मछलियां, तांबई त्वचा, उस पर पसीने के बूंदे, और उसके पूरे वजूद में पसरी बेफिक्री, निश्चितता, बेपरवाही ने गोंदली को पलटने की इजाजत दे दी। संप्रेषणहीन संवाद दोनों के बीच स्थापित हो चुका था। आदिवासी समाज में जहाँ स्वयं वर चुनने का अधिकार वहां की महिलाओं को मिलता है। वहीं चूड़ी पिंधानी (चूड़ी पहनाने) याने की विधवा पुर्नविवाह की शानदार प्रथा भी रही है। तथाकथित सभ्य समाज के मुंह करारा तमाचा जड़ते हुए यह सुनियोजित षड्यंत्र के तहत घोषित घोषणा कि आदिवासी समाज बहुत पिछड़ा हुआ होता है। आदिवासी समाज कितना उन्नत है यह सभ्य समाज भला क्या जाने? विवाह के बाद समय जाने कैसे पंख लगा कर उड़ता गया। गोंदली की कर्मठता ने आयतु को और भी आलसी तथा अधिक लापरवाह बना दिया था। दो बच्चों के प्रति उदासीन और साथ ही उसकी हरकतें भी संदिग्ध हो चली थी। अजीब सी खुमारी में आयतू दिन भर डूबा रहता था। गोंदली काम की मार से दोहरी हो चली थी। घर का काम, जंगल से वनोपज इकट्ठा करना और पति के रहते बच्चों की एकल परवरिश करते-करते उसने इसे ही अपनी नियती मान लिया था। आज गोंदली का मन दिन भर से अनमना था...। आयतु पिछले दो दिन से गायब था। घर नहीं आया था। अचानक रात को चर्र-चर्र की आवाज से उसका कलेजा धक हुआ। पेड़ों के तने से बाड़ी का गेट हटते ही रात के अंधेरे में चार पांच सिर दिखाई दिये। उन्होंने सबसे आगे आयतु को खड़ा किया हुआ था। लाल फीता, मिलिट्री कपड़े, हाथों में रायफल थामे वह चीखा। लेका मन के मैं लेगूआँय। (बच्चों को मैं ले जा रहा हूँ) क्या-? गोंदली स्तब्ध। खून से सींचे पुत्रों को उसका निकम्मा पति कैसे ले जा सकता है भला। वह शेरनी सी दहाड़ी। तुके किरिया आसे (तुझे कसम है) अगर तूने मेरे बच्चों को छुआ पर कहाँ आयतु के चार साथी दूसरे गांव कूच कर चले थे और आयतु जो नशे का आदी हो चला था, बच्चों को खींचे जा रहा था। गोंदली गिड़गिड़ाये जा रही थी। आज तक उसने अपने निकम्मे पति से कोई आशा नहीं की थी। पर आयतू के सर पर तो खून ही सवार हो गया था। उसने बच्चों को झोपड़ी में बंद कर दिया। सारे कपड़े, अनाज, गाय कोठा में नशे में धुत्त आयतू ने आग लगा दी। गोंदली पेड़ से बंधी चीख, चिल्ला रही थी। पूरे गांव में इतने शोर के बाद भी सन्नाटा पसरा हुआ था। कहर की इंतेहा तो तब हुई जब गोंदली को तथाकथित नशे के लिये पैसे न देने के एवज में आयतू ने खुद का घर स्वाहा कर दिया। खुद को बंधन से आजाद कराने तक गोंदली के साथ अनर्थ हो चुका था।

आयतु जो नशे का आदी हो चला था, बच्चों को खींचे जा रहा था। गोंदली गिड़गिड़ाये जा रही थी। आज तक उसने अपने निकम्मे पति से कोई आशा नहीं की थी। पर आयतू के सर पर तो खून ही सवार हो गया था। उसने बच्चों को झोपडी में बंद कर दिया। सारे कपड़े, अनाज, गाय कोठा में नशे में धुत्त आयतू ने आग लगा दी। गोंदली पेड़ से बंधी चीख, चिल्ला रही थी। पूरे गांव में इतने शोर के बाद भी सन्नाटा पसरा हुआ था। कहर की इंतेहा तो तब हुई जब गोंदली को तथाकथित नशे के लिये पैसे न देने के एवज में आयतू ने खुद का घर स्वाहा कर दिया। खुद को बंधन से आजाद कराने तक गोंदली के साथ अनर्थ हो चुका था।

गोंदली के दोनों पुत्रों की जीते जी चिता जल रही थी। धुत्त आयतु उफ्फ...। इसके बाद का दृश्य तो पूरे गाँव में देखा। गोंदली रणचण्डी सी बनी आहत, घायल शेरनी सी आयतू पर टूट पड़ी। तेतर सूटी (इमली की छड़ी) से दनादन अपने तथाकथित पति को ताबड़तोड़ आंसुओं के साथ पीटे जा रही थी। 'न जाने स्त्रियां चाहे वे किसी भी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हों, क्या विवशता रहती होगी? ईंट का जवाब पत्थर से न दे पाने के पीछे कौन सी मजबूरी रहती होगी। मुझे आज तक यह समझ नहीं आया कि गोंदली ने उस हत्यारे पति को उस अवस्था में जब वह बेसुध था। उस चिता में क्यों नहीं ढकेला। 'गोंदली' यथा नाम तथा गुण वाले स्वाभाविक प्रतिउत्पन्न प्रतिकार के प्रतीक स्वरूप कोड़े बरसाते जा रही थी और एक-एक कर गहने उतारते जा रही थी। पहली पर्त उसने अपनी कलाइयों की चूड़ियां तोड़ी, दूसरी पर्त...., कान का खिनवाँ, तीसरी पर्त... बाजू के नागमोहरी, चौथी पर्त... खोपा (जुड़ा)। सारे पर्तो से अनावृत होकर उसने पूरे गांव के सामने घोषणा की 'ऐ मोचो मनुख नी आय' (यह आज से मेरा पति नहीं है। गोंदली ने सारे 'सधवा' के पर्त को निकाल फेंका और अपने पति के जीते-जी 'विधवा' की उपाधि ग्रहण कर सारे गांव के सामने अपने पति का श्राद्ध किया। पूरे गांव को उसने मृत्यु भोज दिया। और बन गई स्वयंविधवा... गोंदली।

देशबंधु प्रेस के सामने, सोनिया कुंज 116, नगर निगम कालोनी, रायपुर (छ.ग.), मो. - 0 93018 36811

कहानी

मिन्नी

◆ जगदीश कपूर

बच्चों का मन बहुत ही कोमल और संवेदनशील होता है / इनकी कोई प्यारी वस्तु या खिलौना कहीं खो जाये तो एकदम उदास और दुखी हो जाते हैं / मिलते ही सब कुछ भूल खिलखिला उठते हैं /

अपने परिवार में आनन्द और ख़ुशी का संचार होता रहे इसके लिए बच्चों को अच्छे संस्कार दें, और इनकी इच्छाओं के प्रति संवेदनशील होकर इनका सम्मान करें /

बच्चे परमात्मा की सुंदरतम और मूल्यवान देन होते हैं / नन्हे बच्चों के संग घुल मिल कर हम हमेशा अवसाद और तनाव से दूर रह कर आनन्दमय जीवन जी सकते हैं /

क्या आपको अपना बचपन याद है ? बच्चों के साथ बच्चा बन कर देखो न ! उनके कोमल मन को टटोलो, उनके साथ खेलो, उनकी रुचि की बातें करो, कोई छोटी सी जिद उनकी है तो उसे पूरा करो /आपको अपना बचपन फिर से जीने का अवसर मिल जाएगा और यह नैसर्गिक आनन्द आपके रोम रोम को पुलकित कर देगा /

खैर मैं भी कहाँ खो गया बचपन में / मैं तो आपको बात बताने वाला था मिन्नी की / मेरी पोती नन्ही वान्या की सबसे प्यारी सहेली हमजोली की /जागती साथ सोती साथ , उठती बैठती साथ-साथ भोजन करती और दादा के संग खेलने का भी उसका बराबर का हक़ रहता / बस स्कूल नहीं जा पाती , क्योंकि मेम उसे साथ लाने के लिए इनकार करती / वैसे कभी कभार वह स्कूल बैग में छुप कर जा भी आती / वान्या अभी नर्सरी में पढ़ती है / स्कूल जाती बार मिन्नी को दादा के पास संभाल जाती / " दादा इसे दान्तना मत, छ्कूल छे आते ही मैं इछे छम्भाल लूंगी, " तुतलाकर मुझे हिदायत दे जाती/ स्कूल से आते ही भोजन कर मिन्नी के साथ खेलते खेलते सो जाती / उठने के बाद होम वर्क करते समय भी मिन्नी उसका पीछा न छोड़ती /

मैं जानता था अगर मिन्नी नहीं मिली तो वान्या को स्कूल भेजना अब टेढी खीर है /उसके बाल मन में क्या क्या बातें आई होंगी आप कल्पना कर सकते हैं / पापा ने भी बहुत समझाया, तुम स्कूल चली जाओ, हम मिन्नी को ढूंढ लेंगे / परन्तु वान्या का मन तो मिन्नी के लिए बेकल था / उसकी दादी ने भी बहुत मनाने की कोशिश की के बेटा खिलौना ही तो है हम बाज़ार से खरीद कर और ले आयेंगे, तुम अभी स्कूल चली जाओ / परन्तु वान्या कहाँ मान

वैसे तो खिलौनों का बहुत बड़ा पिटारा है वान्या के पास, जो हमेशा दादा दादी के कमरे में रहता / यहाँ उसे कोई रोकने टोकने वाला नहीं / " आओ दादा थोली देल के लिए खेल लेते हैं ,“ और पिटारा बिखर जाता पूरे बिस्तर पर / फिर मिन्नी को साथ ले कर न जाने क्या क्या कल्पनाएँ होती , वान्या और उसकी मिन्नी कई किस्म के चरित्र निभाते, कभी मां बेटी का कभी डाक्टर मरीज़ का और कभी मैम और स्टूडेंट का /

परन्तु आज सुबह-सुबह ही कुछ गड़बड़ हो गई थी /वान्या जब सो कर उठी मिन्नी उसके साथ नहीं थी / रात को साथ ही तो सोई थी ,! सिरहाना कम्बल सब उलट पलट कर देखे, परन्तु मिन्नी का कोई अता पता न था / " दादा जी मिन्नी कहाँ गई ? कहीं दादी तो साथ नहीं ले गई होगी ?“ वान्या ने मुझे आवाज़ लजाई / वान्या रात को अपने मम्मी पापा के पास सोई थी, वैसे अक्सर हमारे पास ही सो जाती है / " अले नहीं बेता, लात को अपने छाथ ही तो ले गए थे आप, “ मैंने भी उसी की भाषा में तुतलाकर जवाब दिया / रुआंसे हो कर कहा ,“ दादू मिन्नी नहीं मिल लही है ,मैंने मम्मा छे भी पूछा , वो भी गुच्छा कल लही हैं , मेली मिन्नी ढूँढो न दादा, नहीं तो मैं छकूल नहीं जाउंगी ,“/

मैं जानता था अगर मिन्नी नहीं मिली तो वान्या को स्कूल भेजना अब टेढी खीर है /उसके बाल मन में क्या क्या बातें आई होंगी आप कल्पना कर सकते हैं / पापा ने भी बहुत समझाया, तुम स्कूल चली जाओ, हम मिन्नी को ढून्ढ लेंगे / परन्तु वान्या का मन तो मिन्नी के लिए बेकल था / उसकी दादी ने भी बहुत मनाने की कोशिश की के बेटा खिलौना ही तो है हम बाज़ार से खरीद कर और ले आयेंगे, तुम अभी स्कूल चली जाओ / परन्तु वान्या कहाँ माने, " नहीं दादी , मुझे तो मेली मिन्नी ही चाहिये /“ उसने रुआंसा मुंह बना कर कहा, " मैं पापा के साथ दिल्ली एयल्पोत छे

लाइ थी, दादा वैछी मिन्नी अब नहीं मिलेगी, मुझे तो मेली मिन्नी ही चाहिए ⁄" आंसू आ कर वान्या की आँखों में अटक अटक गए थे, और मेरा भी मन कच्चा कच्चा सा हो रहा था ⁄ न जाने कब एक आंसू मेरी आँखों के कोर से ढलक गया, मैं रोक नहीं पाया ⁄

वान्या सच कह रही थी, मिन्नी वास्तव में बहुत ही सुंदर सॉफ्ट टॉय है, जिसे पिछली बार जब ये लोग जयपुर गए थे, हवाई अड्डे की शॉप से खरीद कर लाये थे ⁄ तब से आज तक वान्या ने मिन्नी को कभी भी अपने से अलग नहीं होने दिया था ⁄ मिन्नी वाल्ट डिज्नी के कार्टून चरित्र मिक्की और मिन्नी माउस वाली मिन्नी है ⁄ मेरे बेटा और बहु यानी वान्या के मम्मी और पापा अपने अपने काम से चले गए ⁄वान्या को उसकी दादी ने समझा बुझा कर स्कूल भेज दिया, " जब तुम स्कूल से आओगी मिन्नी तुम्हें जरूर मिल जायेगी " ⁄ अनमनी सी वान्या स्कूल चली गई ⁄ स्कूल से आते ही फिर वही सवाल, " दादा मिन्नी मिल गई क्या ? " मैं चुप ⁄ हम पति पत्नी ने घर का कोना कोना छान मारा था, हर अलमारी, शेल्फ कपडे धोने की मशीन तक में ढूंढ लिया, परन्तु मिन्नी का कोई अता पता न था ⁄ गई तो कहाँ गई होगी ! कौन उसे उठा ले गया ⁄ रात को तो उस के साथ थी ⁄रजाई और कम्बल के तह तक पलट डाले ⁄ बहू अपने क्लिनिक जा चुकी थी ⁄सवेरे हडबडाहट में उससे भी ज्यादा पूछ ताछ नहीं कर पाए ⁄वह अपना फोन भी घर पर ही भूल गई थी ⁄बेटा भी सवेरे ही अस्पताल चला गया था ⁄ इनको पता होता है इसके दादा दादी सब मैनेज कर लेंगे ⁄ फोन घर पर ही भूल गई थी अन्यथा बहू से दुबारा पूछ लेता ⁄ जब दादा दादी के संस्कार और भरपूर प्यार बच्चों को मिले तो माता पिता बेफिक्र हो कर अपनी दिनचर्या निपटा लेते हैं ⁄ मिन्नी नहीं मिली और वान्या बहुत उदास थी ⁄मैंने उसका स्कूल बैग टटोला, आज उसने स्कूल के काम में भी बहुत गलतियाँ की थी ⁄ लंच ज्यों का त्यों था और फ्रूट बॉक्स भरा का भरा ⁄ स्कूल से आ कर न तो भोजन किया और न ही दूध पीया ⁄रो रो कर फिर से तंग करने लगी ⁄कोई भी प्रलोभन काम न आया ⁄बस एक ही सवाल एक ही रट, "दादा मिन्नी कहाँ गई, मेली मिन्नी ढूंढ के लाओ "⁄ उस की रुलाई देख कर मेरा भी मन विचलित होने लगा ⁄ऐसा लगा की मैं भी अभी रो पडूंगा, परन्तु मैं मजबूर था ⁄ आखिर झूठ का सहारा लेना पड़ा,

बेता, तुम्हारी मम्मी का फोन आया था न, मिन्नी आज उनके साथ क्लिनिक गई है , शाम को आ जाएगी ⁄" मैंने बच्ची को गोदी में उठा कर समझाया ⁄ " सच दादा , आपने पहले क्यों नहीं बताया ? आ जाएगी न शाम को दादा ? "बालमन इस आश्वासन से संतुष्ट हो गया ⁄ उसने हलके से मेरे गाल चूम लिए और नन्ही बाहें गले से लिपटा दीं ⁄ " हाँ हाँ पुत्तलू जलूल आ जाएगी ⁄ " अब एक हलकी सी ख़ुशी उसके चेहरे पर थी ⁄

मुझे विश्वास था शायद बहु ने मिन्नी को कहीं रख दिया होगा , ज़रूर मिल जायेगी ⁄

'बेता, अब तुम दूध पी लो औल मेले पाछ छो जाओ, मैं तुम्हें लोली भी छूनाऊंगा "⁄

आखिर थक हार कर वान्या मेरी बगल में सो गई⁄ शाम को बहु जब घर पहुंची, आते ही वान्या ने पूछा, " मम्मा आप मिन्नी को अपने छाथ क्यों ले गए थे , दादा ने बताया वह आपके छाथ क्लिनिक गई है "⁄ नहीं तो बेटा मैं क्यों ले जाउंगी उसे ', बहु ने उसके सर पर हाथ फेर कर कहा ⁄ उसे क्या पता मैंने वान्या से झूठ कहा है ⁄ " आप झूथ बोल लही हैं , मुझे मेली मिन्नी दिखाओ ! '

मैंने बहू को किनारे ले जा कर सारी बात समझाई ⁄ " पापा मिन्नी को तो मैंने इसके जागने से पहले ही मैले कपड़ों के बैग में रख दिया था, धोने के लिए ⁄ मैं चुपके से न उठाती तो यह इसे कभी धोने न देती , सवेरे हड़बड़ाहट में बताना भूल गई और अपना मोबाइल भी यहीं रह गया ⁄'

खैर मेरी जान में जान आई ⁄ बस येही एक बैग खंगाला नहीं था ⁄ मैं वान्या को साथ ले कर कुर्सी पर बैठ गया ⁄उसके कान के पीछे चुपके से कहा, " अले बेता मम्मा ने जान बूझ कल मिन्नी को कही छुपा लक्खा है, अभी ले कल आ जाएगी ' बहू जल्दी से मिन्नी को वाश रूम से बाहर ले कर आ गई ⁄ मिलते ही वान्या ने मिन्नी को ऐसे भींचा, जैसे सच में किसी का खोया बच्चा मिल गया हो ⁄

" मेली मिन्नी ----मेली मिन्नी दादा, मिल गई, दादी, मिल गई , मेली मिन्नी मिल गई ⁄'

बच्ची की प्रसन्नता का ठिकाना न था ⁄ मैं भी आनन्द विभोर हो रहा था ⁄ दादी ने वान्या को गोद में उठा लिया था ⁄ कुर्सी पर बैठे बैठे पल भर के लिए मेरी आँख लग गई ⁄ नन्हे हाथों ने मेरे चेहरे को थपथपाया , " दादा ...ओ दादा जी, मैंने अपना होम वल्क कल लिया " ⁄

पता भी नहीं चला वान्या ने कब अपना होम वर्क कर लिया था ⁄

215/11, टारना हिल, मंडी, हिमाचल प्रदेश

कहानी

बंद होते दरवाजे

◆ पूजा मेहरा

मोनिका ने अपने पति मदन लाल को बहुत बार समझाने की कोशिश की कि उसे तिलक सिंह का घर पर आना-जाना बिलकुल भी पसंद नहीं है। लेकिन उसका पति बिलकुल भी यह मानने को तैयार नहीं था कि उसकी संगति का प्रभाव उनके बेटे रोहित पर पड़ता जा रहा है। अब वह भी वैसा ही व्यवहार करने लगा है जैसा कि तिलक सिंह का था। वह हमेशा अपने पति को समझाती थी कि धीरे-धीरे जब इसका प्रभाव रोहित के कोमल हृदय पर जम गया, तब उसे उखाड़ फेंकना कठिन हो जाएगा। इस बात को लेकर मोनिका और उसके पति में नोक-झोंक भी होनी शुरू हो गई। इस छोटे से परिवार में तिलक राज को लेकर मियां-बीवी में झगड़े तक की नौबत आ चुकी है। मां तो मां है। वह अपने बेटे की हरकतों पर बारीकी से नजर रखे है। यही वजह है जो अपने पति को बता कर एक चेतावनी दे रही है ताकि सतर्क हुआ जा सके।

मोनिका तिलक सिंह का घर पर आना-जाना बंद करना चाहती थी। लेकिन मदन लाल का कहना था कि वह उसका बचपन का दोस्त है। नेक दिल इनसान है। मैं उसे बचपन से देखता आ रहा हूं। उसके मन में हमारे परिवार के प्रति कोई खोट नज़र नहीं आता है। वह अब बदल चुका है और हमें उसे समाज की मुख्यधारा में लौट आने में मदद करनी चाहिए। अगर वह सुधरना चाहता ही है, तब हम भी क्यों न उसकी मदद करें? तिलक सिंह अब रोहित को अपने घर तक ले जाता था जो गांव से कोई दस कोस के फासले पर था। अब चाहे तिलक सिंह ने चोरी करना छोड़ दिया था। वह बदल चुका था। पर लोग अभी भी उसपर भरोसा नहीं करते थे। जिन लोगों के घरों में उसने चोरियां की थीं, वे लोग तो उसकी शक्ल तक न देखना चाहते थे। रोहित जब भी तिलक सिंह के साथ जाता तो वह उसको अपने द्वारा की गई वारदातों की कहानियां सुनाता था। चोरी करने के बारे तरकीबें बतलाता। उसकी इन बातों में दिलचस्पी बढ़ती जा रही थी। जब भी वह इन्हें सुनता, बड़े ध्यान से सुनता। सुनाई गई ये कहानियां-किस्से उसके बाल-मन में गहरे उतरते चले गए। यह सब वह अपने दोस्तों को बताता। उनकी भी इन बातों में दिलचस्पी बढ़ने लगी थी।

दिन बीते, महीने बीते और वर्ष भी। रोहित अब दसवीं कक्षा में पढ़ने लगा था। कक्षा में किसी का पैन तो कभी किसी के पैसे गायब होने लगे। रोहित का अड़ोस-पड़ोस चीख उठा। कभी किसी का बर्तन, कभी किसी की घड़ी गुम हो जाती। अब रोहित ने शराब का सेवन करना भी शुरू कर दिया था। प्रत्येक शाम गांव के छः-सात छोकरे उसके साथ हो लेते। रोहित चोरी के माल से दोस्तों संग गुलछर्रे उड़ाता। एक दिन गांव के पांच-सात व्यक्तियों ने आकर मदन लाल से उसके बेटे की करतूतों का बखान क्या किया, वह उनसे उलझ पड़ा। उनकी शिकायतों पर ध्यान न देकर अपने बेटे पर विश्वास जता उसकी निर्दोषता साबित कर, उन सबकी कही बातों की अनदेखी करने की कोशिश की।

तभी उन्हीं में से एक ने यह धमकी तक दे डाली, "अगर तुम अपने बेटे को संभाल नहीं पा रहे हो, तो ऐसा न हो कि हमें इसकी शिकायत लेकर पुलिस-थाना तक जाना पड़ जाए। ऐसे में गांव का माहौल बिगड़ता जा रहा है। पर तुम हो कि किसी की सुनते ही नहीं। हम तुम्हें आगाह करते हैं। नहीं तो बाद में पछताना पड़ सकता है।"

एक दिन रोहित अपने पिता से कहने लगा, 'पिता जी मुझे रास्ते में चलते हुए लोग चोर कहकर बुलाते हैं।' यह बात सुनकर मदन लाल आग-बबूला हो कहने लगा, 'उनकी ऐसी हिम्मत। देख लूंगा मैं इन सबको। तू बेफिक्र रह।'

इन बातों को सुनकर मां ने कहा, 'पहले अपने बेटे की आदतों को तो जांच लो। सारे का सारा गांव ही झूठा नहीं हो सकता।' पत्नी की बातें सुनकर मदन लाल बोले, 'जा तू भी उनके साथ मिल जा और साथ में उन सबके साथ अपने बेटे के खिलाफ थाने में जाकर रपट लिखा दे।'

पति द्वारा उसकी बातों पर ध्यान देने पर रुआंसी होकर बोली, 'अभी भी समय है संभाल लो, वरना बाद में पछताना न पड़े।' गांव की महिलाएं मुझसे आकर कहने लगी हैं।

मगर मदल लाल ने आंखें होते हुए भी गांधारी सी पट्टी बांध

रखी थी।

अपने बाप की शह पाकर रोहित की हिम्मत और भी बढ़ती चली गई। वह और उसके सहपाठी दोस्त मोबाइल से चिपके रहते। चोरी-डकैती की खबरें देखते-सुनते रहते। उनके इरादे नेक न रहे थे। उनका बालपन बड़ी-बड़ी तरकीबें सोचने लगा था। छोटी-छोटी वारदातों से उनकी गुलछर्रे उड़ाने के लिए कम थीं। इस बीच उनमें नशे की लत भी लग गई। अब वे बिगड़ते जा रहे थे। यह आदत उनकी दिनचर्या में शुमार होती चली गई। जब उन्हें पैसों की कमी महसूस हुई, तब उन्होंने एक योजना बना डाली।

रोहित बहाना बनाकर कुछ दिन के लिए तिलक सिंह के घर जाने के लिए घर से निकला। इस तरह इन दिनों रोहित ने जो युक्तियां और काम तिलक सिंह से सीखे थे, उन्हें वह आजमाना चाहता था। उसने दोस्तों के साथ मिलकर पड़ोस के गांव के एक मंदिर से मूर्ति चुराने की योजना बना डाली। इस योजना में एक रात वे कामयाब भी हो गए। रातोरात वे इसे लेकर बड़े शहर पहुंचे। उसे बेचकर दूसरे दिन गांव वापिस आ गए। गांव में इस चोरी को लेकर होहल्ला मचा था। तरह-तरह की बातें हो रही थीं। जब मूर्ति कहीं भी नहीं मिली, तो गांववालों ने थाने में रपट लिखवा दी। तहकीकात शुरू हुई। जांच चलती रही।



एक सुबह दरवाजे पर दस्तक हुई। घर को चारों ओर से पुलिस ने घेर लिया। सभी जब हड़बड़ाहट से बाहर निकले। थानेदार ने रोहित के नाम वारंट होने की बात कही, तो मदन लाल के पांव तले जमीन खिसक गई। आंखों के आगे अंधेरा छा गया। चेहरा पीला पड़ गया। उन्हें कुछ न सूझ रहा था कि अब क्या करे या न करे।

रोहित और उसके दोस्तों को सजा के तौर पर बाल सुधार जेल भेज दिया गया। इस बदनामी का मदन लाल की सेहत पर नकारात्मक असर हुआ और वह बीमारी की हालत में चल भी बसा। मगर तिलक राज एक दोस्त का फर्ज निभाता रहा। उस घर से नाता न तोड़ कर मां-बेटी की मदद करता रहा। रोहित से मिलने जाता रहा। और उसे सही रास्ते पर लाने की भरपूर कोशिशें करता रहा। उसपर लगातार अपनी निगाह रखी। जेल से छूटने पर उसे घर वापिस लाने के भी प्रयास किए। लेकिन वह यह कह कर मना कर देता कि अब वह किस मुंह से गांव-घर जा पाएगा।

इस बीच घर की सारी स्थितियां बदल गईं। लोगों के बीच दोनों मां-बेटी का उठना-बैठना मुश्किल हो गया। तरह-तरह की बातें सुनने को मिलतीं। पर, वे सब चुपचाप सहन कर लेतीं। बेबस और लाचार थीं। रोहित उन दोनों को ये दिन भी दिखाएगा, मालूम न था। घर से उनका निकलना मुश्किल हो गया। वे दोनों मां-बेटी गुमसुम सी घर में पड़ी रहतीं। उनसे हमदर्दी रखने वाली गांव की महिलाएं चुपचाप उनसे मिल भी जातीं। उन्हें रोहित के बारे में बतातीं जो वे अकसर सुनती आ रही होतीं कि तुम दोनों घर में पड़ी रहती है, घर से निकलती नहीं। सुबह-शाम चुपके से अपना काम निपटा कर घर में बंद हो जाती हो। बाहर क्या-कुछ हो रहा है, इस बारे तुम्हें नहीं मालूम। इस तरह दुनियादारी नहीं चलती। पर वे मां-बेटी अपनी देहरी से बाहर नहीं निकलीं, तो नहीं निकलीं। वे महिलाएं बता जातीं कि रोहित बहुत बिगड़ हो चुका है। उसने लोगों को आते-जाते तंग करना शुरू कर दिया है। डराता-धमकाता है। लोगों का जीना हराम हो गया है। गांव से बाहर निकलना मुश्किल हो चुका है।

एक रात दरवाजे की 'खटखट' ने उनकी नींद में खलल डाला। मोनिका ने घबराते हुए दरवाजा खोला। रोहित को देखकर कुछ क्षण के लिए उसके चेहरे पर खुशी दिखी, पर तुरंत ही चेहरे के हावभाव बदल गए। वह अंदर आना चाहता था, लेकिन लाख मिन्नतें करने के बाद भी मोनिका ने उसे घर के अंदर आने न दिया। वह चुपचाप वहां से उलटे पांव लौट गया। उसके जाते ही वह सुबक-सुबक कर रोने लगी। बबली भी उसके गले लिपट कर रोने लगी। दोनों काफी देर तक इसी अवस्था में एक दूसरे को दिलासा देती रहीं।

बबली बोली, 'मां, तुम रोहित को घर के अंदर आने देती। बड़े दिनों बाद आया था। उसे हमारी याद आती होगी।'

'नहीं, अब उससे हमारा कोई रिश्ता नहीं। जो अपनी हरकतों से बाज न आया। हमारी बदनामी करवाई। इसी गम में बाप चल बसा। उसके लिए इस घर के दरवाजे हमेशा के लिए बंद हो चुके हैं।'

'तब भी मां, तुम इतनी निष्ठुर मत बनो। हो सकता है उसे

कविता

शिक्षक

– शबनम शर्मा

इतना आसान नहीं है
शिक्षक बनना
उतरना पड़ता है
हर हृदय, हर मस्तिष्क
की उन छोटी-छोटी नसों में,
जो दिल से होकर दिमाग
तक जाती, और जीवन का
सच्चा मोल बताती।
बनाती हर बच्चे को
इक प्यारा सा इन्सान
जो, अपना हर किरदार
सही पथ पर, सही समय
पर निभा सके।



शिक्षक, सिर्फ शिक्षक नहीं होता,
वह एक मित्र है, भाई है,
माँ है, बाप है,
वर्तमान है, भविष्य है
रक्षक है, भक्षक है
क्यूंकि शिक्षक का कहा
एक- एक शब्द
उसके बच्चों के लिये
भगवान का शब्द होता है,
त्यागना होता है
अपना सर्वस्व
और उड़ेलनी है
अपनी हर खुशी
जनहित में।

अनमोल कुंज, पुलिस चैकी के पीछे, मेन बाजार, माजरा, तह. पांवटा साहिब, जिला सिरमौर, हि. प्र. मो. 098168 38909

अब पश्चाताप हो रहा हो। अपनी गलतियों से सीख लिया हो। उसको उसके अपराध के लिए सजा भी मिल चुकी है। फिर भी वह तुम्हारा बेटा है। उसे एक बार सुधरने का मौका तो देती।'

'नहीं, अब कोई मौका नहीं। बहुत समझाया था उसे। पर उसने हमारी एक न सुनी। हमें लोगों की बातों को सुनने के लिए मजबूर कर दिया। हमारी इज्जत हमारी पहचान को मिट्टी में मिला दिया।'

एक दूसरे से लिपटी-रोती रहीं। उन्हें मालूम ही नहीं हुआ कि कब रात गुजर गई।

सुबह तिलक सिंह उनसे मिलने आया था। उसे, उनसे बातचीत के दौरान मालूम हुआ कि कल रात को रोहित आया था। तब उसने कहा, 'भाभी इस तरह की निष्ठुरता एक मां को शोभा नहीं देती। मां अपने बच्चों के लिए कभी ऐसी नहीं हो सकती। आप यकीन करो, वह सुधर जाएगा और अपनी जिंदगी नए सिरे से शुरू करेगा। वह अच्छा बच्चा है। मैं विश्वास दिलाता हूं, उसे माफ कर दो।'

मोनिका बोली, 'एक मां मन से उसे माफ कर सकती है। हम मां-बेटी पर कितनी ही मुसीबतें आएं, झेल लेंगी लेकिन इस कलंक के साथ जी न पाएंगी।' यह कालिमा हमारे चेहरों पर पुत गई है। जिसके निकलने का उपाय नहीं है।

इस बीच वहां खामोशी पसर गई।

तिलक सिंह की नजरों में रोहित का चेहरा घूमता रहा। अपने दोस्त मदन लाल का चेहरा भी नजर आया। उसने उसे सुधारने के लिए पत्नी, आस-पड़ोस, समाज और न जाने, किस-किस से दुश्मनी मोल ले ली थी। लेकिन उसने भी दोस्त के विश्वास को बनाए रखा। उसकी उम्मीदों को कभी गिरने नहीं दिया। खरा सोना बनकर दिखाया। लेकिन रोहित... तूने क्या कर दिखाया, बेटा। उस भले और नेक इनसान को न समझ पाया। एक बाप के सपनों का गला घोंट दिया।

वह चुपचाप उठा। उसके कदम धीरे-धीरे उस घर से बाहर जाने के लिए उठते चले गए। ये उठते कदम उसे कहां ले जाएंगे, उसे भी मालूम नहीं। क्या ये कदम घर के चिराग के कदमों के साथ मिलकर वापिस मुड़ पाएंगे?

पत्नी श्री संदीप कुमार, नजदीक राजकीय कन्या वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला, जवाली, तहसील जवाली, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176 023

समीक्षा

संवेदनाओं का संसार

◆ रवि कुमार सांख्यान

मानव जीवन में संवेदना एक ऐसा शब्द है, जिसका अर्थ अनुभूति, सहानुभूति है। यह मानव को एक हौसला तथा सहारा प्रदान कर जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। इस मशीनी युग में संवेदना तथा संवेदनाओं की कमी खलती जा रही है। हम किसी के दुःख में कष्ट में अपनी संवेदनाएं प्रकट करने की जहमत ही नहीं उठाते हैं। बस एक बात सुनने को जरूर मिल जाती है। वक्त ही ऐसा हो गया है। लेकिन आज के युग में भी कलम से मानवीय संवेदनाओं का संकलन हो रहा है। श्याम लाल शर्मा की कलम से संवेदनाएं कहानी संग्रह प्रकाश में आया है। इनकी कहानियों में अलौकिक दिव्य अनुभूति व जीवन की पाठशाला के गूढ़ रहस्यों का कहानी के श्रेण्य से अनूठा सम्मिश्रण स्थापित हुआ प्रतीत होता है। अनेक साहित्यप्रेमी संस्थाओं से सम्मानित कहानीकार साहित्य धारा में बहने और पथभ्रष्ट होने के कई मकड़जालों की उलझन से बचाव करने का एक सार्थक प्रयास है। गांव से दूर शहर की चकाचौंध में भी उनकी कहानियों में मानवीय संवेदनाओं के बीजारोपण का समुचित ध्येय छुपा है जो सत्यम् शिवम् सुंदरम् व विश्वकल्याण के ध्येय में एक सोपान है। प्राक्कथन में लेखक ने सकारात्मक सांस्कृतिक व आर्यवर्त की आध्यात्मिक सोच के निमित्त दिया गया शीर्षक 'संवेदनाएं' समुचित सामयिक प्रतीत होता है। कहानी संग्रह में कुल 25 कहानियां पाठक को बार-बार पढ़ने को आतुर करती हैं। कहानी संग्रह की प्रथम कहानी में जहां संसार के सभी प्राणियों के दुःखी होने का बड़े ही विचित्र सरल रोचक सुपाठ्य तरीके से पेश किया है। महात्मा के मन मंदिर में उनकी शिष्या मधुरिमा की डॉगी 'बॉब' के प्रति संवेदना देखकर अन्य ग्रामीणों के मन में भले ही गुरु कृपा प्राप्त करने की होड़ स्वरूप तीव्र प्रतिसंवेदनाओं का हिलोर लेना मंत्रमुग्ध करता है। भूतकाल व वर्तमान काल के प्राणियों में सामंजस्य बिठाना व तार्किक, आध्यात्मिक संतुष्टि घर-परिवार को मकान बनाने से रोकती प्रतीत होती है। 'अभिशाप' कहानी में दूध न देने पर गाय का तिरस्कार जहां एक ओर सुंदरी की बीमारी का कारण माना जाने लगा, वहीं दूसरी ओर बाबू राम की हड्डियों में फ्रैक्चर को भी बहू-बेटी द्वारा अबोध गाय के प्रति किए दुव्यर्वहार का परिणाम मानना उनकी तात्कालिक सामयिक विवशता बन जाती है। 'मुक्ति' कहानी में 'जिस तन लागे सो तन जाने' को चरितार्थ होता बताया गया है। 'उलझाते उत्तर' में बच्चों की तार्किक सोच का अंडर ऐस्टीमेट दादा के उत्तरों से नौनिहाल के अबोध मन की दीवारों पर विरोधाभास पैदा करता प्रतीत होता है। 'माथे की लकीरों' में लालची सोच गीतासार की कर्मप्रधान अवधारणा का सूचक है। 'मीडिया में भिखारी' वर्तमान संदर्भ में भी सटीक सामयिक टिप्पणी है जो सामाजिक शून्य व्यक्ति के सपनों को भी पंख लगा सकती है। 'असली ताकत' कहानी में पंडित सत्यजीत और शेरसिंह के माध्यम से अच्छाई व बुराई के बीच जारी बारहमासी युद्ध का मानो वर्णन ही सच्चाई की अंतिम जीत दर्शाता प्रतीत होता है। अन्य कहानियों में लेखक ने विवेकशील, धैर्यवान, बुजुर्गों की गूढ़ सीख, ईश, का सर्वशक्तिमान रूप आदि विषयों को मूल में रखकर दो पीढ़ियों के बाशिंदों के बीच व्याप्त वैचारिक मतभेद को पाटते हुए वर्तमान पीढ़ी के साथ नैतिक मूल्यों व संवेदनाओं की छतरी ओढ़कर भवसागर पार करने का समुचित प्रयास जैसा कठिन कार्य करने का दिवास्वप्न साकार किया है। उनकी प्रत्येक कहानी पाठक को अपनी दिनचर्या में दिखी घटनाचक्र की जीवटता का पर्याय लगती है। सचमुच पाठक का हाल चाल पूछना 'संवेदनाएं' कहानी संग्रह का ध्येय है। लेखक के श्रम व पुस्तक की साज-सज्जा बेजोड़ शब्दचयन व लोकभाषा मुहावरों के समुचित प्रयोग से कहानी संग्रह को चार चांद लगे हैं। समीक्षक को आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि पाठक इस कहानी संग्रह 'संवेदनाएं' को अवश्यमेव पसंद करेंगे।

मैहरीं, डा. नाल्टी तहसील घुमारवीं, जिला बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश-174 026, मो. 0 98174 04571

कहानी संग्रह : संवेदनाएं, लेखक : श्याम लाल शर्मा
प्रकाशक : नोशन प्रेस, चेन्नई, मूल्य : 235 रुपये, पृष्ठ 187

समीक्षा

लघुकथा - परिंदों के माध्यम से एक विमर्श

◆ बद्री सिंह भाटिया

वर्तमान समय में लघुकथा साहित्य समाज में एक अहम स्थान बना कर उभरी है। अपने उभार के साथ अनेक लेखक इस विधा को सुगम मान कलम चलाने लगे हैं। इससे लघुकथा के सम्प्रेषण, प्रभावान्विति पर प्रचुर मात्र में प्रभाव पड़ा है। लघु मायने छोटा। यानी छोटे आकार की रचना। यह मान रचनाकार अपने भाव प्रकट कर रहे हैं। इसका संज्ञान लघुकथा के उन रचनाकारों ने लिया जो इस विधा को एक पहचान दिला आगे बढ़ें हैं। यूँ तो लघुकथा कालाँतर से वार्ता और पत्रिकाओं के कोनों का विषय रही है। यह खाली जगह भी भरती रही और पाठकों की संवेदनाओं को भी झकझोरती रही। अंग्रेजी में कहें तो 'फीलर' एण्ड 'फिल्लर'। हरियाणा में लघुकथा का काफी बोलबाला है। पंजाब में यह मिनी कहानी के नाम से विख्यात है। परंतु आज इसे किसी क्षेत्र विशेष की सीमाओं में नही बाँधा जा सकता।

सम्प्रेषण के क्षेत्र में सोशल मीडिया ने रचनाकारों का काफी ध्यान खींचा है। अभिव्यक्ति के लिए यह एक आसान सा मंच भी है। यदि देखा जाए तो इसने रचनाकारों की प्रकाशन की क्षुधा का काफी हद तक शमन किया है। अब कौन रहे किसी बढ़िया साहित्यिक पत्रिका की प्रतीक्षा में कि वह रचना स्वीकृत करे और फिर प्रकाशित भी। इस प्रक्रिया में काफी समय लग जाता है। और तब तक क्या पता किस पाठक का मन करे कि चलो, एक कार्ड डाल देते हैं। सोशल मीडिया में तो इधर रचना अपलोड की उधर प्रतिक्रियाएँ आरम्भ। लाइक, नाइस, गुड, कीप इट अप्प जैसे शब्द रचनाकार को आश्वस्त करने को काफी होते हैं। इससे रचनाकार तो प्रसन्न हुआ मगर लघुकथा के पारखियों की त्योरियां भी उभरने लगी। ''ये क्या लिख रहे हैं?'' वे गाहे-बगाहे कहने लगे हैं कि भई यह एक शास्त्रबद्ध प्रक्रिया है।

सम्भवतया भोपाल में इसी भाव के दृष्टिगत सोशल मीडिया पर एक ग्रुप का गठन हुआ-''लघुकथा के परिंदे''। इसी तत्त्वावधान में विगत वर्ष एक संवाद स्थापित हुआ। यह संवाद लघुकथा के नए रचनाकरों और सुप्रसिद्ध लघुकथा लेखक, विचारक डा. अशोक भाटिया के बीच हुआ। घंटो चली एक लम्बी बातचीत। अनेक जिज्ञासाएँ जो रचनाकार लघुकथा लेखन में महसूस करते थे, चर्चा का विषय बनी।

चर्चा समाप्त हुई तो यह विचार आया कि सम्भवतया कुछ अव्यक्त सा रह गया है जो उन परिंदों को बताया जाना चाहिए जो इस विधा में अपने बैट लिए मैदान में उतरे हैं। डा. भाटिया ने बड़े मनोयोग से ''परिंदे पूछते हैं'' शीर्षक से एक पुस्तक तैयार की और पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर दी है। पुस्तक लघुकथा शोध केन्द्र भोपाल द्वारा प्रकाशित है। लघुकथा विमर्श की यह पहली पुस्तक भी है। पुस्तक के आरम्भ में लघुकथा शोध संस्थान से जुड़ी लघुकथा की सशक्त हस्ताक्षर कांता राय ने इस पुस्तक को निकालने की संकल्पना पर अपने विचार प्रकट किए हैं। साथ ही लघुकथा शोध संस्थान की संस्थापिका डा. मालती महावर बसंत ने भी संकलन की भूमिका में अपने संकल्प को दोहराया है। उनकी लघुकथा के प्रति लगन से सिर नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सकता।

इस पुस्तक को डा. अशोक भाटिया ने प्रश्नों और साहित्य के तत्वों और रचनाकारों की जिज्ञासाओं के अनुरूप विभिन्न खण्डों में विभक्त किया है। उनकी जिज्ञासाओं का शमन करते हुए उन्होंने प्रतिष्ठित रचनाकारों की प्रतिनिधि लघुकथाओं से भी सुसज्जित किया है।

लघुकथा के बारे में पहला सवाल आता है कि इसमें क्या शब्द संख्या का कोई प्रतिबंध है। यह सवाल रवि प्रभाकर, सविता गुप्ता और नेहा नाहटा ने पूछा है। इस सवाल के प्रत्युत्तर में डा. अशोक भाटिया लिखते हैं कि लघुकथा एक आयामी होती है। यह अपने उद्देश्य तक शीघ्र पहुँचती है। उन्होंने रमेश बतरा और ख़लील ज़िब्रान की रचनाओं के उदाहरण देकर समझाया है कि लघुकथा कैसी हो। रमेश बतरा की कहानी में कुल 31 शब्द हैं और ख़लील ज़िब्रान की लघुकथा में 38 शब्द हैं। उन्होंने कहा है कि छोटे आकार का एक साँचा नए लेखकों के मन में बन गया है जो गलत है तथा सृजन का शत्रु है। लघुकथा यदि विषय की मांग के अनुसार लम्बी हो रही है तो उसे जानबूझकर छोटा मत करें (पृष्ठ 22) इस संदर्भ में उन्होंने हिन्दी कथाकार रविंद्र वर्मा की लघुकथा 'घर का छठा सदस्य' और स्पैनिश के कथाकार सर्गी पेमीस की लघु कथा 'आखिरी स्टेशन' का जितेंद्र भाटिया द्वारा किया अनुवाद पाठकों के लिए पुस्तक में दिया है।

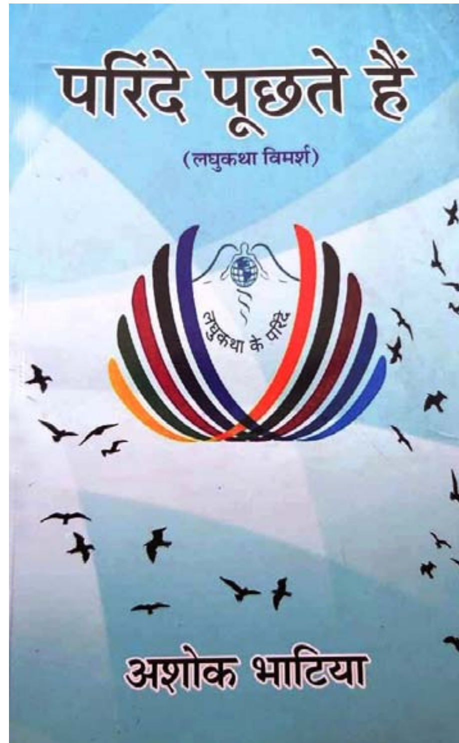
लघुकथा के बारे में एक अन्य अहम प्रश्न यह उठा कि लघुकथा और लघु कहानी में अंतर क्यों है? कहने के लिए अलग विधा की जरूरत क्यों पड़ी? इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में डा. अशोक भाटिया ने एक अध्याय लघुकथा, मिनी कहानी, लघु कहानी और कहानी के तहत जिज्ञासुओं के सवालों के जवाब में दिया है। उन्होंने कहा है कि साहित्य में नए रूप, नए यथार्थ को बेहतर ढंग से अभिव्यक्ति देने के कारण यह अवस्थिति बनी है। जैसे काव्य के बाद गद्य का उद्भव और विकास हुआ। उसमें समय-समय पर विभिन्न विधाएँ जुड़ती गईं। आठवें दशक में युवा वर्ग अपने आक्रोश को व्यक्त करने के लिए आधार तलाश रहा था। लघुकथा के रूप में उसे वह आधार मिल गया। अब कथा और लघुकथा के बीच या लघुकथा और लघु कहानी के बीच भटकने की जरूरत नहीं है।

कपिल शास्त्री द्वारा पूछे एक प्रश्न कि हल्की-फुल्की या भारी-भरकम लघु कथाएँ क्या है? ...क्या हम इसमें हंसी-खुशी के चुटीले क्षण भी इसमें सम्मिलित कर सकते हैं? उनके उत्तर में उन्होंने कहा है कि लेखक की अपनी एक शैली होती है। यह अध्ययन से ज्यादा पता चलेगा। यूँ हल्का-फुल्का लेखन कम ही देखने में आया है। जहाँ कहीं ये मिलती भी हैं, उन्हें नज़रांदाज करने की प्रवृत्ति अधिक है। लघुकथा में सदैव विसंगतियाँ ही उभारी जाएँ ऐसा भी नहीं है। रचना में प्रेम, स्नेह, वात्सल्य बचपन की उमंग हर प्रकार के चित्र हो सकते हैं। उन्होंने अपनी बात की पुष्टता में हरिशंकर परसाई और विष्णु नागर की लघु कथाओं के उदाहरण दिए हैं।

एक और अहम प्रश्न यह उठाया गया कि क्या आत्म कथा या सत्यकथा लघुकथा नहीं बन सकती। डा. भाटिया ने कहा है कि कोई भी सत्य कथा लघुकथा के शिल्प के आधार पर नहीं घटती। सत्यकथा में न तो जरूरी रचनात्मक कल्पना शामिल की जा सकती है और न ही लघुकथा के अनुसार सत्यकथा से कोई अंश काटा जा सकता है। उन्होंने बताया है कि रचनाकार को लेखन के साथ पठन-पाठन और मनन कर विश्लेषण भी करना चाहिए। वह देखे समझे कि अमुक रचनाकार ने वह रचना क्यों और कैसे लिखी। इस बारे में प्रेमचंद की कफन कहानी को देखा जा सकता है। कफन का यथार्थ घटित नहीं है मगर उसे दिखाया ऐसा गया है।

साहित्य में आत्मकथा, जीवनी और संस्मरण ये तीनों विधाएं सिर्फ यथार्थ का उल्लेख करती हैं। शेष सभी विधाओं में कल्पना का प्रयोग होता ही है। 'प्रेमचन्द ने लिखा है कि 'काल्पनिक यथार्थ भी होता है।' डा. अशोक भाटिया ने ऋता शेखर, मधु और उमा भदौरिया के प्रश्न का समाधान करते यह विचार दिया है। वे कहते हैं कि लेखक को रचनाकार कहा जाता है। रचना सृजन करने के लिए कल्पना की उड़ान भरना बड़ा ही उपयोगी होता है।

यह सही भी है। जिस समस्या अथवा यथार्थ को एक रचनाकार देखता है, महसूस करता और उसकी पीड़ा से सराबोर होता है तो उसे अभिव्यक्ति देने के लिए उसे एक संसार निर्मित करना होता है जो उस संदर्भ से मेल खाता हो। यह केवल और केवल कल्पना से ही किया जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में उन्होंने हरिशंकर परसाई की लघुकथा 'संस्कृति' और बलराम अग्रवाल की लघुकथा 'नदी को बचाना है' को पुस्तक में देकर अपना मंतव्य स्पष्ट किया है।



अनेक परिंदों ने लघुकथा की विषय वस्तु को लेकर सवाल उठाए हैं। जैसे जो भाव कविता में प्रकट हो सकते हैं, उन्हें लघुकथा में कैसे समाया जा सकता है कि वे उन्हीं विसंगतियों पर लिखते हैं जो यथार्थ हों न कि सत्य। लेकिन ऐसी विसंगतियाँ जो मानव संवेदनाओं को झकझोर देती हैं, उसे वे क्यों नहीं लिख सकते? यह भी कि लघुकथा की फ्रेम मे रखने के लिए एक ही विषय पर कुछ लोग एक ही तरीके से लिखते हैं, नया कुछ नहीं...। डॉ. भाटिया ने इस पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि एक ही विषय पर हर विधा में नहीं लिखा जा सकता। यदि ऐसा होता तो नई-नई विधाओं का जन्म ही नहीं हुआ होता। एक ही विषय पर लिखना गलत नहीं, विषय के सूक्ष्म आयाम हर रचना में उद्घाटित होते रहने चाहिए। उन्होंने अपने मत को स्पष्ट करते हुए असगर वजाहत की एक ही शीर्षक के तहत दस लघुकथाओं का समावेश किया है।

कुछ रचनाकारों ने लघुकथा के पात्रों की संख्या, नामकरण और चरित्र को लेकर अपनी जिज्ञासाएँ प्रकट की हैं। इनमें रवि प्रभाकर, डा. कुमार संभव जोशी, सीमा भाटिया, नेहा नाहटा, पूनम झा, अरविना गहलोत, डॉ. लता अग्रवाल आदि हैं। इन जिज्ञासाओं में शैली को लेकर भी सवाल है। कि क्या पात्रहीन लघुकथा भी

लिखी जा सकती है। इन सवालों को समेटते हुए डा. भाटिया ने कहा है कि यह जानना जरूरी है कि किसी पात्र के संपूर्ण चरित्र का वर्णन न करके लघु कथा में उसकी किसी एक प्रवृत्ति को उभारा जाता है। पात्रों की संख्या का निर्वहन जरूरी है। यह प्रयोग भी हो सकता है। यह लघुकथा की माँग पर भी निर्भर करता है। जहाँ तक 'मैं' शैली में अथवा प्रथम पुरूष में रचना करने का सवाल है वह हो सकता है। रचनाओं में आत्मकथा और संस्मरणों के अंश कई बार आ जाते हैं मगर उन्हें कथा शैली में पिरोया हुआ होता है इसलिए वे अलग नहीं दिखते। लघुकथा निर्वहन के लिए शैली रचना की माँग के अनुरूप होनी चाहिए। संवाद शैली के बारे में डा. भाटिया ने बताया है कि संवाद शैली को नाटकीय शैली भी कहते हैं क्योंकि नाटक में भी सिर्फ संवाद होते हैं। संवाद शैली में लघुकथा लिखी जा सकती है।

कुछ परिंदों ने लघुकथा में संदेश और सकारात्मक अंत के बारे में भी सवाल पूछे हैं। इन सवालों का उत्तर उन्होंने यह दिया है कि सीधे-साधे संदेश देने की बजाए यदि कलात्मक ढंग अपनाएँगे तो पाठक पर उसका असर जरूर पड़ेगा। उन्होंने अपना मत 'हरभजन खेमकरनी' की लघुकथा 'नजर और नजर' एवं डा. श्याम सुदर दीप्ति की लघुकथा 'हद' के साथ कुछ और कथाओं का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है।

यह सवाल भी रचनाकारों ने उठाया है कि रचना किसके लिए की जाती है? पाठक या वरिष्ठ साहित्यकारों के लिए। यह भी कि पाठकों की टिप्पणियों से प्रभावित नहीं होना चाहिए। यह भी कि पाठक कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ देते हैं। इस प्रकार की जिज्ञासाओं का शमन करते हुए डा. भाटिया ने लिखा है कि लघुकथा और पाठक के संबंध को लेकर बहुत जिज्ञासा व्यक्त की गई है।...साहित्य समाज के लिए लिखा जाता है। उसका केंद्र मनुष्य है, उसके सुख-दुःख हैं उसके संघर्ष, परेशानियाँ, आशा-निराशा, समस्याएँ-समाधान आदि हैं। इसलिए जब साधरण पाठक उसे पढ़ता है तो वो उसमें यही कुछ ढूँढता है। पाना चाहता है। मोटे तौर पर यह कि रचना पाठक के लिए लिखी जाती है। वरिष्ठ साहित्यकार भी पहले पाठक ही होते हैं। उन्होंने लिखा है कि पाठकों के कमेंट्स से मुग्ध नहीं होना चाहिए।

कुछ रचनाकारों ने लघु कथा का शीर्षक रचना बनाम विधा, लघुकथा लिखने की प्रक्रिया, लघुकथा में लेखकीय प्रवेश, हू-ब-हू लिखना, लेखन में स्वतंत्रता बनाम मर्यादा, लघुकथा में व्यंजना आदि मुद्दों पर भी रचनाकारों द्वारा पूछे विभिन्न प्रश्नों का निराकरण किया है।

लघुकथा में कालदोष एक अहम मुद्दा रहा है। जब इसका विधान तैयार हुआ तो सुधीजनों ने रचना के काल को भी सीमा में बाँधा। इस विषय पर विभिन्न परिंदों ने सवाल पूछे हैं। इन सवालों के प्रत्युत्तर में डा. अशोक भाटिया ने कहा है कि रचनाकार को लघु कथा लिखते समय पहले कालखंड के बारे नहीं, बल्कि रचना के विषय, उसके प्रस्तुतिकरण, उसके कथ्य (उद्देश्य) के बारे में सोचना चाहिए। जब रचना एक उद्देश्य को लेकर लिखी जाएगी तब कालखंड दोष का काई मतलब नहीं रह जाएगा।

लघुकथा की भाषा को लेकर भी कुछ परिंदों ने सवाल पूछे हैं। इनका शमन करते हुए डा. अशोक भाटिया ने लिखा है कि रचना की भाषा के कई पक्ष हैं। जिस क्षेत्र विशेष से रचना संबंधित है, उस क्षेत्र के शब्द तो आएँगे ही और आने भी चाहिए। रचना को सहज और जीवंत बनाएँ। तत्सम शब्दों के बारे में उन्होंने बताया है कि तत्सम शब्द तो कमोबेश आएँगे ही। सभी तत्सम शब्द कठिन नहीं होते। भाषा को लेकर उन्होंने चित्र मुद्‌दगल की कहानी 'मिट्‌टी' और पल्लवी त्रिवेदी की कथा 'पति परमेश्वर' को पुस्तक में संकलित किया है।

इस प्रकार वर्तमान समय में जब कोई भी किसी रचनाकार को उसकी गलतियाँ, लिखने के तरीके, उद्देश्य और भाषा, शैली के बारे में कोई नहीं बताता था, आज उन सीमाओं को लाँघते हुए लघुकथा के परिंदे समूह का यह प्रयास एक कोर्स के रूप में हुआ जो बहुत ही सराहनीय है और 'परिंदे पूछते हैं' शीर्षक से उन सभी जिज्ञासाओं को एक जगह संकलित कर न केवल उन रचनाकारों का लाभ हुआ है बल्कि नए रचनाकारों के लिए भी एक दिशा सूचक पुस्तक बनकर सामने आई है।

कहा जा सकता है कि लघुकथा शोध केंद्र, भोपाल द्वारा प्रकाशित लघुकथा विमर्श की यह पहली पुस्तक पाठकों और विचारकों द्वारा सराही जाएगी। ऐसी कामना भी है।

गांव ग्याणा, डाकखाना मांगू, तहसील अर्की, जिला सोलन,
हिमाचल प्रदेश-171 102, मो. 0 98051 99422

पुस्तक : परिंदे पूछते हैं
लेखक : डा. अशोक भाटिया,
प्रकाशक : लघुकथा शोध केंद्र, भोपाल,
मूल्य : 100.00 पेपर बैक

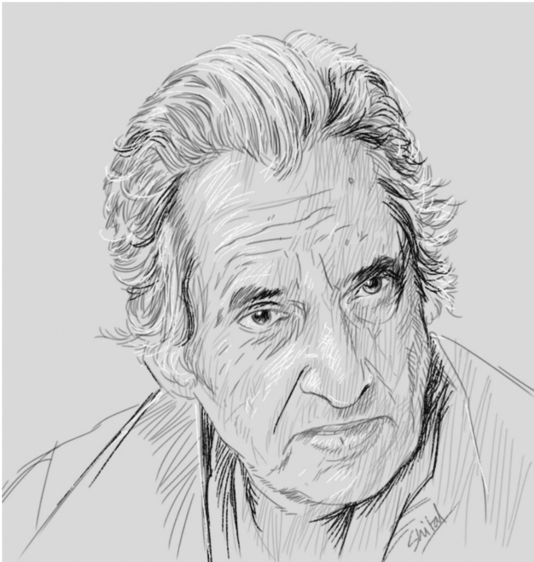
आखिरी पन्ना

साहित्य का 'कारवां गुजर गया'

◆ विनोद

हिंदुस्तान ने इस अवधि में चार महान साहित्यकारों को खोया है। इनमें मशहूर गीतकार कवि गोपाल दास सक्सेना 'नीरज', भारतीय मूल के महान लेखक बी.एस. नायपाल, उच्चकोटि के मूर्धन्य कवि एवं साहित्यकार श्री अटल बिहारी वाजपेयी व शीर्ष पत्रकार व लेखक कुलदीप नैयर। चारों ही शख्सीयतों ने अपनी कलम के दम पर आम जन की भावनाओं को उजागर किया।

महफिलों और मंचों की शमा रोशन करने वाले मशहूर गीतकार और पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित कवि गोपालदास सक्सेना 'नीरज' को कभी शोहरत की हसरत नहीं रही। उनकी ख्वाहिश थी तो बस इतनी कि जब जिंदगी दामन छुड़ाए तो उनके लबों पर कोई नया नगमा हो, कोई नई कविता हो।



उनकी बेहद लोकप्रिय रचनाओं में 'कारवां गुजर गया' रही। स्वप्न झरे फूल से/मीत चुभे शूल से/लुट गए सिंगार सभी बाग के बबूल से/और हम खड़े-खड़े बहार देखते रहे। कारवां गुजर गया/ गुबार देखते रहे।

उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के पुरवाली गांव में 4 जनवरी, 1925 को जन्मे गोपाल दास नीरज को हिंदी के उन कवियों में शुमार किया जाता है जिन्होंने मंच पर कविता को नई पहचान दिलवाई। वे पहले शख्स हैं जिन्हें शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भारत सरकार ने दो-दो बार सम्मानित किया। 1991 में पद्‌मश्री और 2007 में पद्‌म विभूषण पुरस्कार प्रदान किया गया। 1994 में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने 'यशभारती पुरस्कार' प्रदान किया। गोपाल दास नीरज को विश्व उर्दू पुरस्कार से भी नवाजा गया था।

वे कुछ समय तक मेरठ कॉलेज में प्रवक्ता के पद पर भी रहे। कवि सम्मेलनों में लोकप्रियता मिलने पर फिल्मी गीत लिखने का निमंत्रण मिला। उन्होंने बंबई को अपना ठिकाना बनाया। उनका दिल मुंबई में न लगा व वापिस अलीगढ़ आ गए। उनकी प्रमुख कृतयों में 'दर्द दिया है' (1956), आसावरी (1963), मुक्तकी (1958), कारवां गुजर गया (1964), लिख-लिख भेजती पाती (पत्र संकलन), पंत कला, काव्य और दर्शन (आलोचना) शामिल हैं। 1970 के दशक में लगातार तीन वर्षों तक उन्हें सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिए फिल्म फेयर पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

आज वे हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनके गीत उन्हें सदैव जिंदा रखेंगे।

नीरज कविता का एक पूरा युग थे। उनके गीतों में जीवन का दुख दर्द, खुशी तथा जीने का मकसद भरा पड़ा मिलता है।

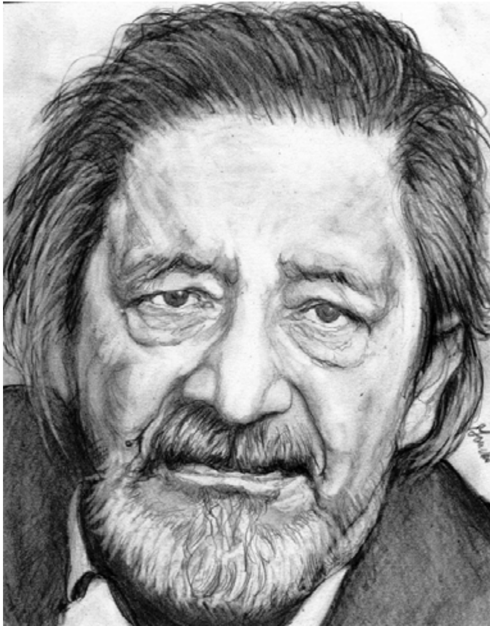
वहीं दुनिया के महान साहित्यकारों में शुमान भारतीय मूल के साहित्यकार वी. एस. नायपाल के निधन से भी साहित्य जगत ने एक सितारा खोया है। उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के गोरखपुर से त्रिनिदाद में गन्ना मजदूरी का कार्य करनने गए थे।

अपनी लेखनी से यथार्थ को सामने लाने का मादा रखने वाले साहित्य के नोबेल पुरस्कार विजेता नायपाल ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद की क्रूरताओं के तीसरी दुनिया पर पड़े असर को आमजन के समक्ष रखा।

त्रिनिदाद में जन्मे नायपाल बचपन से ही लेखक के रूप में प्रसिद्ध होना चाहते थे। लेखन का कार्य उन्होंने डायरी लिखने से आरंभ किया। 1950 में उन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। ऑक्सफोर्ड में चार साल पढ़ाई करने के बाद

उन्होंने लेखन को ही अपना कॅरियर चुना। उनकी पहली पुस्तक 'द मिस्टिक मैसर' वर्ष 1951 में प्रकाशित हुई। उनका सबसे चर्चित उपन्यास 'ए हाउस फॉर मिस्टर बिस्वास' रहा। उन्होंने 30 पुस्तकें लिखीं। नायपाल को वर्ष 1971 में बुकर प्राइज और वर्ष 2001 में साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

16 अगस्त, 2018 को सायं 5 बज कर 5 मिनट पर देश के महान सुपूत, एक उच्चकोटि के राजनेता के साथ प्रखर कवि ने नई दिल्ली में अंतिम सांस ली। उनकी वाणी पर विराम लगने के चंद मिनट उपरांत ही रेडियो, दूरदर्शन, निजी चैनलों, सोशल मीडिया पर उनके मन से निकले शब्द गूंजने लगे। उनकी पुस्तक 'मेरी इक्यावन कविताएं' ब्रह्मांड में गूंजने लगीं। वाजपेयी जी को रचनाशीलता एवं रसास्वाद के गुण विरासत में मिले थे। पिता कृष्ण बिहारी वाजपेयी ग्वालियर रियासत में अपने वक्त के जाने-माने कवि थे। पारिवारिक वातावरण साहित्यिक एवं काव्यमय होने के कारण उनकी रगों में काव्य रस अनवरत घूमता रहा। उनकी



सर्वप्रथम कविता 'ताजमहल' थी। राजनीति के साथ-साथ समष्टि एवं राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा उनके काव्य संसार में झलकती है। उनके संघर्षमय जीवन, परिवर्तनशील परिस्थितियों, राष्ट्रव्यापी आंदोलनों आदि अनेक आयामों के प्रभाव उनके काव्य संसार का हिस्सा बना। हिमाचल की सुंदर वादियों कुल्लू-मनाली में भी उनहोंने अनेक कालजयी कृतियों का सृजन किया। 'ऊंचाई' कविता अटल जी की प्रसिद्ध कविताओं में एक है। उनका हिमाचल से विशेष लगाव था। मनाली में कवि सम्मेलनों में वे रंग



भर देते थे। अटल जी के जाने से साहित्य जगत में जो रिक्ति हुई है, उसे भर पाना नामुमकिन नजर आता है। बेशक वे संसार को छोड़कर चले गए हैं लेकिन वे अपनी कृतियों, कविताओं से सदैव जिंदा रहेंगे।

अंत में पत्रकारिता जगत का एक तारा कुलदीप नैयर जो भारत के विभाजन पर उदय हुआ था, का देहावसान से पत्रकारिता तथा साहित्यिक जगत में शोक की लहर दौड़ी। उन्होंने अपनी आंखों से देश में विभाजन की विभीषिका को देखा था। दिल्ली आकर पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम रखा। निर्भीक पत्रकारिता को जीवन का आदर्श बनाया। खबरों के भीतर ही खबर निकालना उनका जुनून रहा। वे यू.एनआई, स्टेटसमैन तथा इंडियन एक्सप्रैस से जुड़े। वे राजदूत तथा सांसद भी रहे। उनकी पहली पुस्तक ठमजूममद जीम स्पदमे चर्चित पुस्तकों में एक है। इसी शीर्षक से वे समाचार पत्रों में भी लिखते रहे। मानवीय अधिकारों की रक्षा के प्रति उन्होंने सदैव लिखा तथा वे इसके हिमायती रहे। उन्होंने 14 व 15 अगस्त को प्रतिवर्ष बाघा सीमा पर मोमबत्ती जलाने का कार्यक्रम आरंभ किया। वे आखिरी सांस तक हिंदुस्तान तथा पाकिस्तान के मध्य दूरियां घटाने के हिमायती रहे। एक जुनूनी पत्रकार, साहित्यकार का जाना यह उम्मीद छोड़ कर गया है कि एक दिन विभिन्न समुदायों तथा भारत पाक के मध्य नफरत की दीवार जरूर मिटेगी।

संसार से चार महान शख्सीयतों का अवसान पर हर शख्स दुखी है लेकिन वे सभी अपने आदर्शों, अटल प्रतिबद्धताओं तथा जीवन में नया करने की हसरत के लिए सदैव समाज का मार्गदर्शन करेंगे। हिमप्रस्थ की ओर से सभी को शत शत नमन।

000



मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर कांगड़ा जिले के इंदौरा में राज्य स्तरीय स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर परेड की सलामी लेते हुए



मुख्यमंत्री श्री जय राम ठाकुर स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर लोक निर्माण विभाग में कार्यरत बेलदार स्व. गुलाब सिंह की धर्मपत्नी को उनके द्वारा सरकारी सेवा के दौरान कर्तव्यनिष्ठा के लिए हिमाचल गौरव पुरस्कार प्रदान करते हुए।



मनाली के समीप प्रीणी गांव में अटल बिहारी वाजपेयी का आशियाना (लाल छत)

अनुपम कश्यप, निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित तथा संजीव पठानिया, नियंत्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग द्वारा हिमाचल प्रदेश सरकार के लिए राजकीय प्रेस, शिमला–171005 से मुद्रित करवाकर शिमला से प्रकाशित। सम्पादक वेद प्रकाश।

ISSN 2454-972X

हिमप्रस्थ

अक्तूबर, 2018



150वीं गांधी जयंती






गांधी से महात्मा तक की यात्रा

ISSN : 2454-972X

हिमप्रस्थ

वर्ष : 63 अक्तूबर 2018 अंक : 7

सम्पादकीय कार्यालय: हि. प्र. प्रिंटिंग प्रेस परिसर, घोड़ा चौकी, शिमला-5

वार्षिक शुल्क : 150 रुपये, एक प्रति : 15 रुपये

E-Mail : himprasthahp@gmail.com
Tell: 0177 2633145, 2830374
Website: himachalpr.gov.in/himprastha.asp

ज्ञान सागर

मेरा धर्म सत्य और अहिंसा पर आधारित है। सत्य मेरा भगवान है। अहिंसा उसे पाने का साधन।

– महात्मा गांधी

इस अंक में

लेख

☞ पहाड़ों पर महात्मा के कदम — विनोद भारद्वाज — 6
☞ शिमला यात्रा — 10
☞ शिमला के ऐतिहासिक ईदगाह मैदान में... — 13
☞ बेगार प्रथा पर गांधी के विचार — 15
☞ गांधीजी के शब्दों में शिमला — 17
☞ एक विदेशी का गांधीमय होना — 18
☞ महात्मा गांधी, सैम्यूल स्टोक्स और भारतीय राष्ट्रीयता — 23
☞ जब माल रोड पर आई महात्मा की कार — 26
☞ शिमला ने मनाया महात्मा गांधी को गोलमेज सम्मेलन में लंदन जाने के लिए — दयाशंकर शुक्ल सागर — 28
☞ शिमला के ऐतिहासिक रिज मैदान पर गांधी का सार्वजनिक सभा में उद्बोधन — 34
☞ विभीषिका से बचाने का प्रयास 'द शिमला विजिट' — 37
☞ साम्राज्यवाद व सामंतशाही के खिलाफ जन आंदोलन — एस.आर. हरनोट — 39
☞ महात्मा गांधी की लेखनी से : धामी कांड से सबक — 46
☞ विश्व शांति व आजादी — 47
☞ सोलन में गांधी का आगमन व स्मृतियां — रत्न चंद निर्झर — 49
☞ शिमला की प्रार्थना सभाओं में महात्मा के उद्गार — 51
☞ महात्मा गांधी का आखिरी शिमला दौरा — 54
☞ शिमला के भवन जहां पड़े महात्मा के चरण — योग राज शर्मा — 59
☞ स्वामी कृष्णानंद और गांधी — अश्वनी कुमार — 64
☞ पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम — आचार्य भगवान देव 'चैतन्य' — 66
☞ पहाड़ में महात्मा का सच्च अनुयायी गोपाल दत्त शर्मा — कुलदीप चंदेल — 69
☞ एक सच्चे गांधीवादी महाशय तीर्थ राम — विवेक शर्मा — 72
☞ स्वराज की लौ जगाते सुखदयाल — सुरेंद्र कुमार सेन — 73
☞ गांधी और मैं — श्रीनिवास जोशी — 75
☞ महात्मा की मुस्कान — 78
☞ जब गांधी ने आमजन से माफी मांगी — आर.एन. शर्मा — 79
☞ गांधी व राजकुमारी अमृत कौर — 80
☞ वटवृक्ष की शाखाएं जो पेड़ बनीं — 82

लोकगीतों में धरती गाती है, पहाड़ गाते हैं, नदियां गाती हैं, फसलें गाती हैं, उत्सव और मेले, ऋतुएं और परंपराएं गाती हैं।

– महात्मा गांधी

गांधी की चंपारन पाठशाला	गिरिराज किशोर	89
बापू होने की यात्रा		93
महात्मा गांधी की अहिंसा नीति : एक पुनरावलोकन	डॉ. मनीष शर्मा	94
गांधी और टैगोर असहमति की निष्पाप दृढ़ता	सूरज पालीवाल	100
पटेल बिन गांधी अधूरे	डॉ. आभा चौहान खिमटा	106
पाठक से लेखक बनने का सफर		111
राष्ट्रभाषा हिंदी व बापू		114
भारतीय अंग्रेजी साहित्य और महात्मा गांधी	डॉ. उषा बंदे	118

आपकी मान्यताएं आपके विचार बन जाते हैं, आपके विचार आपके शब्द बन जाते हैं, आपके शब्द आपके कार्य बन जाते हैं, आपके कार्य आपकी आदत, आपकी आदतें आपके मूल्य बन जाते हैं, आपके मूल्य आपकी नियति बन जाते हैं।

– महात्मा गांधी

एक राष्ट्र की संस्कृति उसमें रहने वाले लोगों के दिलों में और आत्मा में रहती है।

– महात्मा गांधी

गांधी दर्शन और नारी	डॉ. संगीताश्री	120
जलियांवाला स्मारक स्थापना में गांधी का योगदान		123
गांधी और स्वच्छता	अपूर्व त्रिखा	125
युवाओं के लिए गांधी शिक्षा		126
दो अक्तूबर और महात्मा गांधी		128
सिर्फ एक दिन बापू से हुई अलग...		130
जिसकी तपस्या से हिली ब्रिटिश हुकूमत		131
शिमला की शान : महात्मा गांधी की प्रतिमा		132
आखिरी पन्ना		135
पुस्तक संदर्भ सूची		136

अपनी बात

सत्य, अहिंसा और नैतिक मूल्यों के प्रतिमान राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रति दुनिया के महान वैज्ञानिक एवं दार्शनिक एल्बर्ट आइंस्टीन के शब्द - आने वाली पीढ़ियां मुश्किल से यकीन कर पाएंगी कि कभी हाड़-मांस से पूर्ण कोई ऐसा था जो इस धरती पर चला था।" उनके ये शब्द पढ़-सुन कर आज की पीढ़ी भी स्तब्ध रह जाती है और सोचने पर मजबूर होती है कि इस दुबले-पतले व्यक्ति ने दुनिया की शक्तिशाली ताकत को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया था। आज संपूर्ण विश्व एक ऐसे दौर से गुजर रहा है जहां लोगों को पर्यावरण में बदलाव, अशांति, गंदगी, अराजकता जैसी समस्याओं से जूझना पड़ रहा है और हर कोई आगे बढ़ने की होड़ में लगा हुआ है। विध्वंस के कगार पर बैठे विश्व और आपाधापी भरे सामाजिक जीवन के लिए उनके द्वारा उपयुक्त सत्य और अहिंसा के सिद्धांत संजीवनी नजर आते हैं।

2 अक्तूबर, 1869 को जन्में मोहनदास कर्मचंद गांधी ने जीवन की अंतिम सांस तक दुनिया को नया संदेश ही दिया। सही मायनों में गांधी जी का संपूर्ण जीवन ही संदेश है। उन्होंने अपना जीवन एक कर्मयोगी की तरह बिताया। सुकरात ने अपने विचारों, ईसा मसीह ने अपनी आस्था तथा गांधी ने अपने आदर्शों, उसूलों के लिए मृत्यु का वरण किया। लेकिन यह सत्य है कि ऐसी महान आत्माएं अपने आदर्शों, विचारों से सदैव जिंदा रहती हैं और पग-पग पर समाज का मार्गदर्शन करती रहती हैं।

वर्ष 1893 से 1914 तक दक्षिण अफ्रीका में रह कर गांधीजी ने अंग्रेजों की दासता तथा उनके घोर अत्याचारों के विरुद्ध अहिंसक संघर्ष शुरू किया। बाईस वर्ष उपरांत 1915 में भारत लौट कर देश को बारीकी से जाना पहचाना। सत्याग्रह के हथियार के साथ असहयोग, सविनय अवज्ञा तथा अहिंसा के आदर्शों को अपनाकर स्वराज के लिए एक लंबा संघर्ष किया। उनके संघर्ष का ही प्रतिफल था कि 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ। उनका संपूर्ण जीवन देश-दुनिया तथा मानवता की भलाई के लिए ही समर्पित रहा। वे हिंदुस्तान के ही नहीं, बल्कि दुनिया के महानतम इनसानों में से एक थे। उन्हें मुल्क तथा दुनिया में घट रही सभी घटनाओं का बोध रहता था। हर एक खत का जवाब देना वह अपना फर्ज़ समझते थे। नियमों तथा उसूलों पर चलने वाले वे वाकई एक आम इनसान नहीं बल्कि महात्मा थे। वे इस धरा पर विचरण करने वाले एक उपग्रही से कम न थे। सदैव ही उन्होंने सादगी का जीवन जीया। उनकी लड़ाई एक ओर भारत की गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा, महिला सशक्तीकरण, अस्पृश्यता, स्वच्छता, ग्राम स्वराज के सपने को साकार करने की रही, वहीं दूसरी ओर अंग्रेजों से भारत को बिना खून खराबे के आजादी दिलवाने की थीं, वे एक निडर सिपाही की तरह आगे बढ़ते गए। सत्य के प्रयोग को जीवन का हिस्सा बनाया। हम सभी भारतवासी, दुनिया के साथ इस वर्ष 2 अक्तूबर के गांधीजी की 150वीं जयंती मनाने जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2007 से गांधी जी के विश्वशांति के संदेश को अधिमान देते हुए गांधी जयंती को अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस मनाने की घोषणा की थी। हिमप्रस्थ पत्रिका भी गांधीजी के आदर्शों तथा विचारों को इस विशेषांक के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाने का प्रयास कर रहा है।

हालांकि गांधी जी का जीवन सरल तथा आदर्शवादी रहा है, लेकिन उसपर लिखना उतना ही कठिन जान पड़ता है। आज की पीढ़ी तो गांधी जी के आदर्शों को पढ़ कर ही उनके व्यक्तित्व को जान सकती है लेकिन हम आभारी हैं कुछ महानुभावों के, जिन्हें गांधीजी के दर्शन करने का मौका मिला और हम उनसे लेख प्राप्त करने में भी कामयाब हुए। महान गांधीवादी एवं 'प्रथम गिरमिटिया' के लेखक गिरिराज किशोर का

लेख हमें प्राप्त हुआ। गांधीजी के शिमला प्रवास के दौरान वरिष्ठ साहित्यकार श्रीनिवास जोशी ने शिमला में प्रार्थना सभा में गांधी जी के दर्शन किए। वहीं वरिष्ठ आई.एस. अधिकारी आर.सी. शर्मा युवाकाल में गांधी जी के दर्शन कर पाए। हम आभारी हैं डॉ. सूरज पालीवाल के गांधी व टैगोर तथा डॉ. दयाशंकर शुक्ल सागर के लेख महात्मा की गोलमेज सम्मेलन व शिमला लेख के जो पाठकों को गांधीजी के जीवन के नए अध्यायों से अवगत करवाएंगे। इस विशेषांक में हम महात्मा गांधी की वर्ष 1921 से 1946 के दौरान शिमला प्रवास की तथ्यपरक जानकारियां आपसे साझा कर रहे हैं। वर्ष 1921 में पहाड़ों पर गांधी जी के कदमों से यहां की वादियों में स्वराज की अनुगूंज हुई। गांधीजी के विचारों को यहां की भोली-भाली जनता को जानने का मौका मिला। पहाड़ों में रियासतों के खिलाफ चल रहे जन आंदोलनों को गति मिली। बेगार प्रथा की समाप्ति हुई। धामी गोलीकांड की गूंज देशभर ने सुनी। इन यात्राओं से गांधीजी को पहाड़ की दुश्वारियों तथा कठिनाइयों के बारे में जानने का मौका मिला। उन्होंने शिमला सहित उस वक्त, शिमला में निवासियों की समस्याओं को जाना और उस पर लिखा।

भारत को 15 अगस्त, 1947 को मिली आजादी से वे तो प्रसन्न थे लेकिन देश के विभाजन तथा समाज में फैली कटुता, हिंसा, अशांति से आहत भी हुए। आजाद भारत को गांधी मात्र पांच माह ही देख सके। लेकिन गांधी जी के आदर्शों पर आगे बढ़ते हुए दक्षिण अफ्रीका के महान नेता व भारत रत्न नेल्सन मंडेला ने देश को आजाद करवाया। रंगभेद की नीति अपनाने वाले अंग्रेजों को सत्ता स्थानीय लोगों को लौटानी पड़ी। अमेरिका में गांधीजी के सच्चे अनुयायी मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने रंगभेद के खिलाफ संघर्ष किया और विजय हासिल की।

मोहन दास कर्मचंद गांधी से महात्मा, बापू तथा राष्ट्रपिता बनी इस महान शख्सीयत से भारत का दुनिया में मान तथा सम्मान बढ़ा है। हर भारतीय को गर्व है कि गांधीजी, भारत की धरती पर जन्में और दुनिया के समक्ष सत्य, अहिंसा का एक सशक्त हथियार दिया। देश में 2 अक्तूबर, 2014 से लागू महत्त्वाकांक्षी स्वच्छता कार्यक्रम राष्ट्रपिता के आदर्शों पर आधारित है। चार वर्षों में यह कार्यक्रम देश में एक जन आंदोलन बना है। देश वर्ष 2019 तक संपूर्ण रूप से खुले में शौचमुक्त बनने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तेजी से आगे बढ़ रहा है। हिमाचल पूर्ण स्वच्छ राज्य बनने वाला देश का दूसरा राज्य बना है। हिमाचल भी गांधीजी के आदर्शों को अपनाकर ग्राम स्वराज व समावेशी व सर्वत्र विकास को केंद्र में रखकर आगे बढ़ रहा है।

दुनिया में शांति एवं स्थिरता के लिए गांधीजी को देखा जा रहा है। गांधी जी ने कहा था, “अगर आप दुनिया में वास्तविक शांति चाहते हैं और यदि हमें युद्ध के खिलाफ संघर्ष जारी रखना है, तो हमें बच्चों के माध्यम से इसकी शुरुआत करनी होगी।” दुनिया में शांति, स्थिरता के लिए गांधीजी के आदर्शों का पालन करने की नितांत आवश्यकता है। वहीं धरती पर मानव जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने में पर्यावरण संरक्षण व स्वच्छता को हर व्यक्ति को अपने जीवन का हिस्सा बनाना होगा। हमें पाठकों से उम्मीद रहेगी कि वे इस अंक का आकलन कर हमें अपनी प्रतिक्रिया डाक या ई-मेल से जरूर भेजेंगे हम ताकि यह जान सकें कि हम अपने प्रयास में कितने सफल हुए हैं। आओ प्रण लें कि हम एक खुशहाल राष्ट्र बनाने में गांधी जी के आदर्शों को जीवन का अंग बनाएंगे। यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

वरिष्ठ संपादक

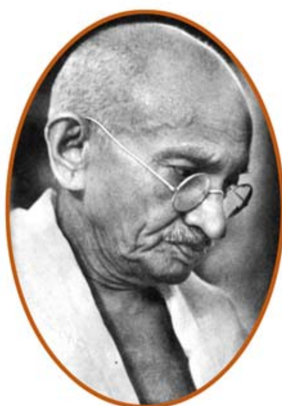
सत्य व अहिंसा के पुजारी

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

150वीं जयंती पर विशेषांक

जब शांत वादियों में बही स्वराज की बयार

◆ विनोद भारद्वाज



12 मई 1921 को प्रथम आगमन

12-15 मई 1921 शिमला प्रवास

भारत के गौरवमय इतिहास में 9 जनवरी 1915 की तारीख एक यादगार तारीख है। इस दिन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से इंग्लैंड होते हुए बंबई (अब मुंबई) शहर में एस.एस. अरेविया जहाज से उतरे थे। इस तिथि की अहमियत को बनाए रखने के लिए इस दिन हर वर्ष 'प्रवासी भारतीय दिवस' का आयोजन किया जाता है।

मोहन दास कर्मचंद गांधी ने 22 वर्ष तक दक्षिण अफ्रीका में रहकर सत्य, अहिंसा के हथियार को अपनाकर एक लंबा संघर्ष किया। उनका यह संघर्ष अंग्रेजों की रंगभेद की नीति के खिलाफ तथा दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजी हुकूमत द्वारा प्रवासी भारतीयों के विरुद्ध बनाए गए कानूनों, नियमों तथा उन पर किए जा रहे अत्याचारों के विरुद्ध था। वे इसमें सफल हुए। गांधी जी ने इस प्रवास के दौरान दक्षिण अफ्रीका में भारत से गए विभिन्न समुदायों, धर्मों, भाषाओं के नागरिकों को एकजुट कर एक मंच पर ला खड़ा किया।

गांधीजी के स्वदेश लौटने से पूर्व उस वक्त के समाचार पत्रों के माध्यम से उनके संघर्ष तथा प्रयासों का बखान संपूर्ण दुनिया में हो चुका था। महात्मा गांधी ने अफ्रीका में रहते हुए सत्याग्रह के उस अस्त्र का आविष्कार किया, वही उनकी शक्ति तथा सत्य का हथियार बना। जब उन्होंने भारत की धरती पर कदम रखा तो वे भारतीय जनमानस में एक राष्ट्रीय नेतृत्व की छवि बना चुके थे। वे भारत में आकर सुधार की प्रक्रिया को बढ़ाना चाहते थे। लेकिन गांधीजी ने गोपाल कृष्ण गोखले जिन्हें गांधीजी अपना राजनैतिक गुरु मानते थे, की सलाह को माना और कुछ समय तक भारतवासियों की दशा-दिशा का आभास करने के लिए भारत भ्रमण का निर्णय लिया। भारत की आम जनता की स्थिति को निहार कर गांधी जी ने एक साधारण भारतीय का पहरावा धोती तथा चप्पल पहनने शुरू किए। सर्दी होने पर मात्र एक शॉल को ही ओढ़ा। पतला गद्दा बिछाया। जीवन पर्यंत यही उनकी वेशभूषा तथा सादगी रही। इसी वर्ष उन्होंने अहमदाबाद में फिनिक्स के आदर्श को सामने रखकर साबरमती आश्रम की स्थापना की तथा कठोर नैतिक अनुशासन का पालन कर स्वतंत्रता आंदोलन को नई दिशा दी।

गांधीजी ने भारत भ्रमण के दौरान आम लोगों की कठिनाइयों, समस्याओं को जाना, सभाओं को संबोधित कर अपने विचारों को लोगों के सामने रखा। अंग्रेजी सरकार के नुमाइंदों को पत्र लिखे। पत्राचार को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाया। अंग्रेजी सरकार को विभिन्न मुद्दों पर पत्रों, वक्तव्यों तथा जन सभाओं के माध्यम से चेताया।

चंपारन का संघर्ष भी ब्रिटिश न्याय भावना के प्रति उनकी इसी आस्था से अनुप्राणित था।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का प्रथम दौरा वायसराय के साथ वार्ता में कामयाब रहा या नहीं इसका उल्लेख तो इतिहास से गांधीजी के वक्तव्यों से स्पष्ट है लेकिन ये पहाड़ों में एक नई जागृति लेकर आया। भोले-भाले लोगों में राष्ट्रीयता, स्वराज की भावना जागृत हुई। पहाड़ों में बेगार प्रथा का अंत हुआ। शिमला नगर निगम में पार्षदों का चुनाव होने लगा तथा मनोनयन की प्रथा बंद हुई। सही मायनों में गांधीजी का दौरा एक नई क्रांति लेकर आया। शांत पहाड़ों में भी स्वराज की बयार बहने लगी।

यह एक मानवतावादी कार्य था, राजनीतिक आंदोलन नहीं। उन्हें सरकार की ओर से चंपारन जिला छोड़ देने का आदेश दिया गया, लेकिन उन्होंने उसकी अवज्ञा की और 17 अप्रैल, 1916 को अदालत में एक बयान देकर अपने देश में पहली बार सविनय अवज्ञा के नैतिक आधार की परिभाषा दी। गांधी के प्रयासों से अंग्रेजों को कानून बदलना पड़ा। उन्होंने 22 मार्च, 1918 को खेड़ा सत्याग्रह का नेतृत्व किया। वर्ष 1919 में रोलेट एक्ट तथा जलियांवाला कांड के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने इस संघर्ष में सदैव सत्य, अहिंसा के शस्त्र को अपनाया। वे अब तक भारत के लोगों की समस्याओं से रू-ब-रू हो चुके थे। उनके पहरावे से एक आम भारतीय का अक्स नज़र आने लगा था। इन पांच वर्षों में वे भारतीय जनमानस में एक जन नायक बन गए थे। हालांकि हिंसा से स्वतंत्रता हासिल करने वाले वीरों की आलोचना के शिकार भी हुए थे। लेकिन शहरों से लेकर गांवों तक, मैदानों से लेकर पहाड़ों तक गांधी के विचारों का अनुसरण करने वाले तथा उनके कहे मार्ग पर चलने वालों की कमी न थी।

उस वक्त अंग्रेजों ने शिमला को अपनी ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाया था। सात माह सरकार शिमला की पहाड़ियों से चलती थी। अंग्रेजों का राज शिमला स्थित वायसरीगल लॉज (वर्तमान उच्च अध्ययन संस्थान) से चलता था।

वर्ष 1864 में अंग्रेजों ने शिमला शहर को सुव्यवस्थित ढंग से निर्मित करने का फैसला लिया। धीरे-धीरे शहर बसता गया। सुविधाएं जुटीं। आबादी बढ़ी। वर्ष 1921 में अंग्रेजों ने इसके विकास तथा अपनी सुविधाओं के लिए अनेक भवन, सड़कों तथा जन सुविधाओं का निर्माण करवाया।

1903 में रेल मार्ग भी बनाया। वर्ष 1921 में महात्मा गांधी पहली बार शिमला आए। पहली बार शिमला आए। उस वक्त यह एक सुंदर तथा स्वच्छ व शांत स्थल था। शिमला तक पहुंचने के लिए सड़क मार्ग कालका, धर्मपुर, सोलन, कंडाघाट होकर आता था जबकि रेल कालका से होकर धर्मपुर, सोलन, कंडाघाट से होकर आती थी। शिमला का विस्तार एवं विकास रेल के पहुंचने से बढ़ा था। गांधीजी के प्रवास के दौरान कैनेडी हाउस, वायसरीगल लॉज, गिरजाघर, गेयटी थियेटर, बैटनी कैसल, गार्टन कैसल, यू.एस. क्लब, माल रोड, लोअर बाजार, एलर्जली भवन सहित अनेक भवन मौजूद थे, जो आज भी शहर की शान व पहचान हैं। आवाजाही के लिए शहर की अंदरूनी सड़कों पर हाथ से खेंचने वाले रिक्शा चलते थे। शहर के प्रमुख स्थल माल रोड तथा आसपास वायसराय, सेना प्रमुख व पंजाब के गवर्नर के वाहन को आने की ही अनुमति प्राप्त थी।



1921 समरहिल रेलवे स्टेशन का दृश्य

प्रथम बार शिमला आगमन पर महात्मा गांधी समरहिल स्टेशन पर उतरे थे।

महात्मा गांधी का शिमला आगमन

बारह मई 1921 को जब राष्ट्रपिता महात्मा गांधी कालका-शिमला रेल मार्ग से होते हुए तत्कालीन वायसराय लॉर्ड रिडिंग से भेंट करने समरहिल स्टेशन पर गाड़ी से उतरे तो उनके स्वागत में भारतीयों का एक बड़ा हुजूम वहां उपस्थित था। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी कस्तूरबा, मौलाना मुहम्मद अली, शौक अली, लाला लाजपत राय, पं. मदन मोहन मालवीय, लाला दुनी चंद अंबालवी आदि राष्ट्रीय नेता भी शिमला आए थे।

आज गांधीजी के शिमला की भूमि पर पड़े कदमों को बताने वाला कोई है नहीं लेकिन उस वक्त के समाचार पत्रों में वे दृश्य आज भी चलचित्र के माफिक सचित्र प्रतीत होते हैं।

19 मई, 1921 को 'शिमला टाइम्स अखबार' में प्रकाशित समाचार में स्पष्ट होता है :-

"सुबह से ही गांधीजी के स्वागत की तैयारियां आरंभ हो गई थीं। उनके आगमन से पूर्व शहर को फूलों से सजा दिया गया था। लोगों में खुशी और उमंग का वातावरण अपनी चरम सीमा तक था।"

इसका उल्लेख वायसराय की पत्नी ने भी किया -

"अधिक स्कूली बच्चों ने स्कूल न जाकर समरहिल के रास्ते में बापू के दर्शन करने को गए। इस हर्षोल्लास के उत्सव में भाग लिया। गांधी के आगमन पर शहरवासियों में उत्सुकता थी जबकि अंग्रेजों में भय था।"

महात्मा गांधी का स्वागत जिला कांग्रेस समिति के अध्यक्ष चौधरी दीवान चंद तथा युवा कांग्रेस कार्यकर्ता श्री अमर चंद सूद ने किया। अमर चंद सूद के शब्दों में :

"एक दुबला, पतला आदमी, उसकी शारीरिक संरचना को देखकर, उनकी शक्ति तथा तितिक्षा झूठ सी लगती है तभी उनकी मेरी पीठ पर पड़ी थपकी से मैं लड़खड़ा सा गया और आश्चर्यचकित रह गया कि क्या मैं शक्तिशाली हूं।"

गांधीजी के आगमन पर पहाड़ 'महात्मा गांधी की जय', 'भारत माता की जय' और 'वंदेमातरम्' के नारों से गुंजायमान हुए।

महात्मा गांधी अपनी प्रथम शिमला यात्रा के दौरान शिमला के उपनगर चक्कर जो बालूगंज के समीप है, में स्थित शांति कुटीर भवन में रहे थे। सन् 1903 में वैदिक-शब्दार्थ-कोष तैयार करने के उद्देश्य से इस भवन में संस्थान की स्थापना स्व. स्वामी विश्वेश्वरानंद तथा स्व. स्वामी नित्यानंद ने की थी। आज यह एक घनी आबादी वाला क्षेत्र तथा शांति कुटीर (तब शांत कुटी) जर्जर हालत में है।

गांधीजी ने अपने पांच दिन के प्रवास के दौरान जब भी शांत कुटी (वर्तमान में शांति कुटीर) से बाहर कदम रखा, लोगों का सैलाब उनके दर्शनों के लिए उनके पीछे-पीछे सदैव चलता रहा।

गांधीजी 13 मई को जब वायसराय लॉर्ड रीडिंग से वायसरीगल लॉज (वर्तमान भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान) में भेंट करने के लिए गए तो लोगों का हुजूम वायसरीगल भवन के मुख्य द्वार तक गया तथा संपूर्ण वातावरण 'बेताज बादशाह की जय' के उद्घोष से गुंजायमान हुआ। इसका उल्लेख दुर्गा दास द्वारा लिखित पुस्तक, 'Indian from Congress to Nehru' में मिलता है। 14 मई 1921 को वायसराय से भेंट के दौरान अली बंधुओं पर बातचीत हुई। गांधीजी की वायसराय से हुई भेंट का

शिमला आगमन व अभिनंदन

शिमला स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजों के खिलाफ हुए आंदोलनों का साक्षी रहा है। शिमला में अधिकांशतः अंग्रेज अधिकारी तथा भारतीय कर्मचारी रहते थे। इन पदों पर मध्यवर्गीय परिवार के सदस्य तैनात रहते थे। वे अपनी गुजर-बसर के लिए सरकारी पदों पर तैनात होने के लिए लालायित रहते थे। स्थानीय राजनीतिक संगठन, अपनी बात को इन वर्गों तक पहुंचाने का प्रयास करते थे। राजनीतिक संगठन सायंकालीन गंज बाजार (एडवर्ड गंज बाजार) में राजनीतिक बैठकें करने को प्राथमिकता देते थे ताकि वे कार्यालय से लोअर बाजार तथा गंज बाजार होकर जब गुजरे तो उनका ध्यान ब्रिटिश हकूमत के जुल्मों की ओर आकर्षित किया सके। यह बहुत ही कम बार हुआ जब अंग्रेज हकूमत के तहत कार्य करने वाले क्लर्कों (कर्मियों) ने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया।

महात्मा गांधी जब वर्ष 1921 में पहली बार शिमला आए तो उस दिन कार्य दिवस था तथा गांधीजी के अभिनंदन समारोह में भारतीय सरकारी कर्मी (क्लर्क) भाग न ले सके। अंग्रेजी अखबार 'द ट्रिब्यून' में अगले दिन प्रकाशित हुआ कि "यह बहुत ही खेद का विषय है कि महात्मा गांधी का रविवार या किसी अन्य अवकाश वाले दिन शिमला आगमन न हुआ जब शिमला में कार्यरत क्लर्क उनके स्वागत में आयोजित समारोह में भाग ले सकते थे।" इसके बाद स्थानीय राजनेताओं तथा संगठनों ने सबक लिया कि भविष्य में होने वाली बैठकों तथा अभिनंदन समारोहों का आयोजन रविवार या सप्ताह अंत में किया जाए।

हालांकि सरकारी कर्मचारियों के समूह को इस बात की जानकारी थी कि देश में बदलाव की लहर दौड़ रही है। लेकिन उनके लिए किसी राजनीतिक पार्टी की सदस्यता या पक्ष लेना घातक होता था। लेकिन यह सच था कि शिमला में कोई भी बैठक, सरकारी कर्मचारियों के बिना सफल नहीं हो सकती थी।





महात्मा गांधी शिमला प्रवास के दौरान रिक्शा में सवार होकर वायसरीगल लॉज जाते हुए

उल्लेख उन्होंने शिमला की सार्वजनिक सभा में दिए गए भाषण (पृष्ठ 13) में स्पष्ट है।

शिमला प्रवास के दौरान गांधीजी ने वायसराय से भेंट के अलावा अनेक अन्य कार्यक्रमों में भी भाग लिया। 14 मई, 1921 को गांधीजी ने लोअर बाजार में आर्य समाज सभागार जहां आज बालिकाओं का विद्यालय (वरिष्ठ माध्यमिक आर्य कन्या विद्यालय) है, में शिमला की महिलाओं को संबोधित किया था। इस दौरान महिलाओं ने गांधीजी को धनराशि तथा गहने 'तिलक स्वराज कोष' के लिए भेंट किए थे। उस वक्त संपूर्ण लोअर बाजार को फूलों से सजाया गया था। सम्मेलन के उपरांत गांधीजी लोअर बाजार से होते हुए जलूस के साथ लाल मोहन लाल के निवास स्थान पर गए। वहां गांधीजी के लिए जलपान की व्यवस्था की गई थी। इसका संपूर्ण उल्लेख 16 मई, 1921 की पायनियर समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ था।

15 मई, 1921, शिमला के इतिहास में एक यादगार तारीख है। उस दिन रविवार प्रातः गांधीजी ने ईदगाह मैदान (वर्तमान लक्कड़ बाजार बस अड्डे के नीचे रुलदू भट्टा में) एकत्रित 15 हजार लोगों की भीड़ को संबोधित किया था। रविवार होने के कारण जलसे में बड़ी संख्या में सरकारी कर्मचारियों ने भाग लिया था। इस जलसे की खासियत यह थी कि इसमें शिमला के समीपवर्ती गांवों के लोग भी भारी संख्या में गांधीजी के दर्शन तथा उनके विचार सुनने आए थे।

उस वक्त के दस्तावेजों तथा वक्तव्यों से उजागर होता है कि गांधीजी के प्रथम शिमला प्रवास से पहाड़ों के जनमानस में राजनीतिक व राष्ट्रीय चेतना का आगाज हुआ था। दुर्गा दास द्वारा लिखित पुस्तक 'इंडिया फ्रॉम कर्जन टू नेहरू' में लिखित है कि शिमला ने इस दौरान 'प्रथम प्रमुख जन आंदोलन' को महसूस किया था।

गांधीजी को शिमला के तत्कालीन वायसराय रीडिंग ने दिसंबर 1921 में प्रिंस ऑफ वैलज़ की प्रस्तावित हिंदुस्तान यात्रा से पूर्व एक सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाने के लिए आमंत्रित किया था। इस यात्रा में गांधीजी के साथ पंडित मदन मोहन मालवीय तथा पंजाब केसरी लाला लाजपत राय भी आए थे। उन्होंने शिमला में स्वराज का संदेश देने तथा 'तिलक स्वराज कोष' के लिए धन एकत्रित करने का कार्य किया।

इस दौरान महात्मा गांधी ने ईदगाह सहित अन्य बैठकों में पहाड़ी जनमानस का अहिंसा, बलिदान, हिंदू-मुस्लिम एकता, स्वराज तथा स्वतंत्रता के प्रतीक चरखे का संदेश दिया। लाला लाजपतराय ने अंग्रेजों की पंजाब तथा भारत में दमनकारी नीतियों से लोगों को रूबरू करवाया।

यह पहला मौका था जब शिमला तथा आसपास के भोलेभाले निवासियों को राष्ट्रीय नेताओं के विचारों तथा राष्ट्रीय विचारधारा सहित स्वतंत्रता के मायनों का बोध हुआ था।

1921 से पूर्व शिमला में अंग्रेजों द्वारा अपने राजा के जन्मदिवस की धूमधाम से मनाने की रिवायत थी। इन आयोजनों का मूल उद्देश्य अंग्रेजी सल्तनत को बनाए रखने तथा अंग्रेजी राजशाही के प्रति कर्तव्य निष्ठा को बनाए रखना होता था।

गांधीजी की शिमला यात्रा से पहाड़ी लोगों में राष्ट्र की विचारधारा, गांधीजी के आदर्शों, स्वतंत्रता आंदोलन के मायने को देखने व सुनने का सुनहरा (शेष पृष्ठ 134 पर)

शिमला यात्रा

"अपनी आजादी की लड़ाई में हमें तो सारी दुनिया को साथ रखना है, हम तो सभी की सद्‌भावनाएं चाहते हैं। हम दावा करते हैं कि हमारा पक्ष सोलह आने न्याय पर आधारित है। कुछ चीजें हैं जिन्हें हम चाहते हैं कि अंग्रेज हमारे सुपुर्द कर दें। इसके लिए आपस में चर्चा करने और एक दूसरे को समझने की जरूरत है। दुनिया वालों की राय को अपने पक्ष में करने के लिए असहयोग ही सबसे कारगर तरीका है। जब तक हम विरोध और सहयोग करते रहे, तब तक दुनिया की समझ में नहीं आया कि हम क्यों हैं और क्या चाहते हैं।"

बहुत से लोग पूछ रहे हैं कि मैं महामहिम वायसराय से क्यों मिला। कुछ पूछते हैं कि असहयोग के सूत्रधार को वायसराय से क्यों मिलना चाहिए और यह तो सभी जानना चाहते हैं कि मुलाकात का नतीजा क्या रहा। असहयोगियों के बारे में यह कड़ी छानबीन मुझे पसंद आई; दूसरों का हो या न हो पर असहयोगियों का चरित्र तो निस्संदेह सती सावित्री की तरह निष्कलंक होना चाहिए। असहयोग का मतलब है आत्मनिर्भरता - अपने-आप पर भरोसा। हम स्वयं स्वराज्य स्थापित करना चाहते हैं; दूसरों से मांग कर नहीं लेना चाहते। फिर किसी भी वायसराय के पास जाने की क्या जरूरत है? यह बात अपने आपमें बहुत अच्छी है। अगर मैं किसी से स्वराज्य मांगने जाऊं तो बेशक अपने पक्ष का अच्छा नुमाइंदा नहीं माना जाऊंगा। फिर मैंने तो यहां तक कहने का दुस्साहस किया है कि भगवान भी हमें स्वराज्य नहीं दे सकता। उसे तो हमें खुद ही हासिल करना होगा। स्वराज्य तो चीज ही ऐसी है जिसे कोई दे नहीं सकता।

लेकिन अपनी आजादी की लड़ाई में हमें तो सारी दुनिया को साथ रखना है, हम तो सभी की सद्‌भावनाएं चाहते हैं। हम दावा करते हैं कि हमारा पक्ष सोलह आने न्याय पर आधारित है। कुछ चीजें हैं जिन्हें हम चाहते हैं कि अंग्रेज हमारे सुपुर्द कर दें। इसके लिए आपस में चर्चा करने और एक दूसरे को समझने की जरूरत है। दुनिया वालों की राय को अपने पक्ष में करने के लिए असहयोग ही सबसे कारगर तरीका है। जब तक हम विरोध और सहयोग करते रहे, तब तक दुनिया की समझ में नहीं आया कि हम क्यों हैं और क्या चाहते हैं। किसी समय बंगाल-केसरी के नाम से प्रसिद्ध सुरेंद्रनाथ बनर्जी शुरू के दिनों में उन अंग्रेजों की बात सुनाया करते थे, जो अकसर पूछा करते थे कि अगर हालत वाकई उतनी ही खराब है जितनी आप बताते हैं तो भारत में कितनों के सिर फूटे हैं। पक्के अंग्रेज के सोचने-समझने का बस यही तरीका होता था। और अंग्रेज ही क्यों दुनिया भी तो निस्संदेह यही पूछ रही है कि अगर हालत वाकई इतनी खराब है तो तुम इस बुरी तरह अपना शोषण और अपमान करने वाली सरकार से सहयोग क्यों करते हो? हम भले ही पूरी ताकत से अमल न कर पाए हों लेकिन अब दुनिया हमारी बात समझने लगी है। अब दुनिया जानना चाहती है कि हमारी तकलीफ क्या है। वायसराय महोदय एक बड़ी ताकत के नुमाइंदे हैं। वे यह जानना चाहते थे कि मैं, जो सहयोग को अपना परम धर्म समझता था, असहयोगी क्यों हो गया हूं। या तो सरकार की समझ में कहीं कोई गलती होनी चाहिए या फिर मैंने ही कोई गलती की होगी।

इसलिए वायसराय महोदय ने मालवीय जी महाराज से और एन्ड्रयूज साहब से भी यह ख्वाहिश जाहिर की कि वे मुझसे मिलना और मेरे विचारों को समझना चाहते हैं। मैं मालवीय जी से मिलने गया, क्योंकि वे मुझसे मिलना चाहते थे। मैं उनकी इतनी इज्जत करता हूं और कभी यह गवारा नहीं करूंगा कि वे खुद चल कर मुझसे मिलने के लिए आएं, चाहे वे स्वस्थ ही हों। फिर इस बार तो वे इतने कमजोर थे कि यात्रा कर ही नहीं सकते थे। इसलिए उनसे मिलने जाना मैंने अपना कर्तव्य समझा। वायसराय से उनकी जो बात हुई उसका सार जानने के बाद मैं तुरंत मुलाकात के लिए राजी हो गया। अगर वायसराय मेरे विचारों को जानना चाहते हैं तो उनसे मुलाकात का समय मांगने के लिए उनकी ओर से पहल किए जाने की मैंने कोई जरूरत नहीं समझी। वायसराय से

मुलाकात का समय मांगने के बारे में इतने विस्तार से लिखने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि असहयोग के अर्थ और उसकी मर्यादाओं का मैं खुलासा कर देना चाहता हूं।

असहयोग आदमियों के नहीं बल्कि तरीकों के खिलाफ है। वह गवर्नरों के नहीं बल्कि जिस तरीके से वे हुकूमत करते हैं, उसके खिलाफ है। असहयोग की नींव घृणा पर नहीं रखी गई है; वह अगर प्रेम पर नहीं किंतु न्याय पर तो आधारित है ही। ग्लैडस्टन ने बुरे कामों और बुरे तरीकों के बारे में काफी कड़े शब्दों का इस्तेमाल किया तो उन पर अविनय का आरोप लगाया गया। तब अपनी सफाई में उन्होंने कहा था कि जैसे उनके कारनामे हैं उनको अगर मैं वैसा ही न बताता तो अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाता, मगर इसका यह मतलब नहीं कि जो कुछ मैंने उनके कारनामों के बारे में कहा है वह उन पर व्यक्तिगत रूप से भी लागू होता है। तरुणाई में जब मैंने उनकी यह दलील सुनी तो वह मेरी समझ में नहीं आई थी। अब इतने बरसों के तजुर्बे के बाद और उस पर अमल करके मैंने जाना कि उन्होंने कितना सच कहा था। मैं जानता हूं कि मेरे कुछ बहुत ही सच्चे दोस्तों ने ऐसे काम भी किए हैं जिनका बिलकुल समर्थन नहीं किया जा सकता। श्री वी.एस. श्रीनिवास शास्त्रियर-जैसे सच्चे आदमी बहुत ही थोड़े होंगे, मगर उनके काम मुझे हैरानी में डालने वाले होते हैं। उनका ऐसा विश्वास हो गया है कि मैं हिंदुस्तान को रसातल की ओर लिए जा रहा हूं, लेकिन इससे मुझ पर उनका स्नेह कम हो गया हो, ऐसा मैं नहीं मानता।

और मैं समझता हूं कि असहयोग के इस महान आंदोलन में मेरी ही तरह हजारों लोगों को यह बात समझा दी है कि हम, लोगों के कामों और व्यवस्थाओं पर आक्षेप करते हैं न कि व्यक्तियों पर। वैसा तो हमें कदापि नहीं करना चाहिए। हम खुद अपूर्ण हैं, हममें खामियां हैं, इसलिए दूसरों के साथ हमें नरमी से पेश आना चाहिए और किसी के इरादों पर शुबहा करने की जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

इसलिए वायसराय महोदय से मुलाकात का मौका आते ही मैं तुरंत उनसे मिलने चला गया और उन्हें बताया कि हमारा आंदोलन धर्मपरक है जिसका उद्देश्य भारतीय राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, आतंकवाद और गोरी जाति की प्रभुता को मिटाना है।

पाठकों के लिए व्यर्थ का कौतूहल अच्छा नहीं। अखबारों के तथाकथित समाचारों पर उन्हें विश्वास नहीं करना चाहिए। वायसराय महोदय और मेरे बीच जो बातें हुईं उनके ब्योरे में जाने की जरूरत नहीं। अच्छा हो कि उसपर पर्दा पड़ा रहने दिया जाए। लेकिन मैं पाठकों को इतना विश्वास जरूर दिलाता हूं कि मैंने अपनी सामर्थ्यभर वायसराय महोदय को हमारे तीनों दावों - खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य की बात समझाई और उन्हें असहयोग का मूल कारण भी बताया। उन्होंने मेरी बात को धैर्य, विनम्रता और ध्यान से सुना। मैंने उन्हें जो उचित है, वह करने के लिए उत्सुक पाया। हमने आज की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्याओं के बारे में दिल खोल कर चर्चा की। हमने अहिंसा के बारे में भी चर्चा की और यह हम दोनों की समान रुचि और आस्था का विषय निकला। इसके बारे में मैं फिर कभी विस्तार से लिखूंगा।

हम दोनों ने एक-दूसरे को समझा, इससे अधिक भी मुलाकात में कुछ था, यह मैं नहीं कह सकता। मगर एक दूसरे को समझ लेना भी अपने आपमें काफी बड़ा लाभ है; ऐसा मैं मानता हूं और कुछ लोग इसमें मुझसे जरूर सहमत होंगे। और अगर इस तरह देखा जाए तो यह मुलाकात बहुत कामयाब रही।

लेकिन इतने लंबे बहस-मुबाहसे के बाद इस बात में मेरा विश्वास पहले से ज्यादा दृढ़ हुआ है कि हमारी मुक्ति खुद अपने ही प्रयत्नों पर निर्भर करती है। वायसराय महोदय हमारी मदद कर सकते हैं और बाधा भी पहुंचा सकते हैं। यों मैं उनसे मदद की ही उम्मीद करता हूं।

मतलब यह कि हमें दूने जोश के साथ अपना कार्यक्रम पूरा करने में जुट जाना चाहिए। कार्यक्रम स्पष्ट ही यह है : (1) अस्पृश्यता का निवारण, (2) शराबखोरी के अभिशाप को मिटाना, (3) चरखे का अनवरत प्रचार और विदेशी कपड़े के संपूर्ण बहिष्कार की सीमा तक खादी का निरंतर उत्पादन, (4) कांग्रेस में सदस्यों की भर्ती और (5) तिलक स्वराज-कोष के लिए चंदा इकट्ठा करना।

हिंदू-मुस्लिम एकता को मजबूत करने तथा अहिंसा का और अधिक वातावरण तैयार करने के लिए अब उतने जोरदार प्रचार की आवश्यकता नहीं रही।

अस्पृश्यता-निवारण को मैंने सबसे ऊपर रखा है, क्योंकि इस मामले में मुझे कुछ ढिलाई दिखाई देती है। हिंदू असहयोगियों को इस ओर से उदासीन नहीं रहना चाहिए। खिलाफत के मामले में जो अन्याय हुआ है उसे हम मिटा सकते हैं, लेकिन राष्ट्र रूपी शरीर के हिंदू अवयवों में भिदे हुए अस्पृश्यता के जहर के रहते हम

शिमला यात्रा

वायसराय और गांधी जी के मध्य हुई मुलाकातों का मुख्य भाग उस वार्तालाप में बीता जो भारत में फैले असंतोष से संबंधित था और जिसमें पंजाब में उपद्रव, खिलाफत आंदोलन, जनता का आम हालात ये चीजें शामिल थीं। गांधीजी ने वायसराय के सम्मुख स्वराज की कोई योजना पेश नहीं की थी और न उक्त मुलाकात में ऐसी किसी योजना पर बातचीत ही हुई थी।

यंग इंडिया

4-9-1921

शिमला स्थित आर्य समाज मंदिर का सभागार जहां 14 मई, 1921 को महात्मा गांधी ने महिलाओं को किया था संबोधित



गांधीजी 11 मई को इलाहाबाद से रवाना होकर 12 मई को शिमला पहुंचे थे। 13 मई को दोपहर के समय वायसराय से भेंट की। 14 मई को प्रातःकाल वायसराय से पुनः भेंट। गांधीजी के सम्मान में जलूस निकाला गया और स्वागत समारोह का आयोजन हुआ। इसी दिन आर्य समाज मंदिर लोअर बाजार में सार्वजनिक सभा में भाषण महिलाओं की सभा में स्वदेशी अपनाने और तिलक-स्वराज कोष के लिए खुले दिल से चंदा देने का अनुरोध किया। सभा में उन्हें महिलाओं द्वारा धन-आभूषण भेंट किए गए।

स्वराज्य की अपनी मंजिल तक कभी भी नहीं पहुंच सकते। अगर हम भारत की आबादी के पांचवें हिस्से को निरंतर दबाव रहें और राष्ट्रीय संस्कृति के अमृत-फल से उन्हें वंचित किए रहें तो स्वराज्य का कोई मतलब नहीं रह जाता। शुद्धीकरण के इस महान आंदोलन में हम भगवान का सहारा खोजते हैं, उसकी सहायता की याचना करते हैं लेकिन उसी के जिन जनों को, मानवी अधिकारों की सबसे अधिक जरूरत है, उन्हें उक्त अधिकार देने से इनकार करते हैं। स्वयं क्रूर बने रहकर दूसरों की क्रूरता से अपने त्राण की दुहाई हम प्रभु के आगे दे ही कैसे सकते हैं?

शराबबंदी को मैंने दूसरे नंबर पर रखा है, और मैं ऐसा महसूस करता हूं कि भगवान ने बिन मांगे ही हमारे लिए यह आंदोलन तैयार कर दिया है। इसको लेकर काफी हंगामा मच गया है और इस आंदोलन के हिंसक रूप धारण कर लेने का अंदेशा भी कम नहीं है। लेकिन जब तक यह सरकार शराब की दुकानों को खुला रखने पर आमादा है तब तक हमें रात-दिन एक करके गलत रास्ते पर चलने वाले अपने भाइयों को समझाना होगा कि वे शराब से अपना मुंह गंदा न करें।

चरखे को तीसरे नंबर पर रखा गया है, हालांकि मेरे तईं तो वह अस्पृश्यता-निवारण और शराब-बंदी जितना ही महत्त्वपूर्ण है। अगर हम इस वर्ष विदेशी कपड़े का कारगर ढंग से बहिष्कार कर सके तो उसका मतलब यह होगा कि स्वराज्य की स्थापना के लिए आवश्यक लगन, अध्यवसाय, एकाग्रता, तत्परता और राष्ट्रीयता की भावना हममें प्रचुर मात्रा में मौजूद है।

(अंग्रेजी से, यंग इंडिया, 25-5-1921)

महात्मा के मुखारविंद से

शिमला के ईदगाह मैदान में 15 मई 1921 को ऐतिहासिक जलसा

गांधीजी ने ईदगाह के मैदान में आयोजित एक सभा में भाषण दिया जिसमें लगभग पंद्रह हजार लोग उपस्थित थे। उनसे प्रार्थना की गई कि वे शिमला आने का उद्देश्य और वायसराय के साथ हुई बातचीत का परिणाम बताएं। गांधी जी का यह भाषण आज के 16 मई के अंक में और बॉम्बे क्रॉनिकल के 17 और 19 मई के अंकों में तथा नवजीवन के 29-5-1921 के अंक में प्रकाशित हुआ था। सार्वजनिक सभा का विवरण बॉम्बे क्रॉनिकल और नवजीवन के विवरणों से मिलाकर लिया गया है।

यहां आने के संबंध में मुझे यह कहना है कि पंडित मदनमोहन मालवीय ने मेरे पास एक तार भेजा था जिसमें उन्होंने लिखा था, "आप शिमला आएं। अगर आप न आएंगे तो स्वास्थ्य खराब होते हुए भी मुझे आपको लिवाने के लिए आपके पास आना पड़ेगा।" तार पहुंचने के बाद ही मुझे पंडित जी की चिट्ठी मिली जिसमें उन्होंने लिखा था कि अगर आप अपने असहयोगी दल की सारी बात वायसराय लॉर्ड रीडिंग के सामने रखने के लिए उनसे मिलना चाहते हों तो आप उनसे मिल सकते हैं। मुझे अपनी बात किसी सरकारी अधिकारी के सम्मुख रखने में कोई बुराई नहीं दिखी।

इसलिए जब मैं शिमला पहुंचा तब मैंने वायसराय ने इस आशय की एक चिट्ठी भेजी कि मैं आपसे मुलाकात करना चाहता हूं। वायसराय मुलाकात करना तुरंत मंजूर कर लिया और जब मैं उनसे मिला तब उन्होंने मेरी बातों को काफी देर तक धैर्य और सौजन्य के साथ सुना। किंतु मैं यह नहीं कह सकता कि मेरी यह भेंट, कितनी सफल या असफल हुई। मैंने वायसराय को बतलाया कि हमारा दल क्या चाहता है और उन्होंने भी शासन की कठिनाइयां ब्योरेवार बताईं। हमारी यह भेंट सफल भी कही जा सकती है और असफल भी।

... (मुझे) कहना यह है कि सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि कांग्रेस, सिख लीग और खिलाफत समिति के सम्मेलन में गंभीरतापूर्वक जो निश्चय किए गए हैं उन पर लोग किस हद तक अमल करते हैं।

इस समय तो मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि जब तक हमारा आंदोलन शांतिमय है और जब तक हममें आत्मत्याग का भाव मौजूद है और हम इन्हीं के बल पर अपने देश के प्रति न्याय प्राप्त करना चाहते हैं, तब तक संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो हमें इसी बरस के भीतर-भीतर स्वराज्य लेने से रोक सके। हम लोग संसार को यह दिखला देना चाहते हैं कि हमारा उद्देश्य न्याय प्राप्त करना है। हमारी समस्या केवल उसी हालत में सुलझ सकती है जब भारत के प्रति न्याय किया जाए, किसी दूसरे उपाय से नहीं। मैं चाहता हूं कि सब लोग उन लोगों की तरह बरताव करें जिन्होंने कि ननकाना साहब में अपने पवित्र उद्देश्य की खातिर अपने प्राण न्योछावर किए हैं, न कि महंत नारायण दास की तरह जो दूसरों की जान लेने पर तुला हुआ था। जब हममें अहिंसा और आत्मत्याग की भावना आ जाएगी तब आधुनिक अस्त्र-शस्त्र भी हमारी स्वतंत्रता में बाधक नहीं हो सकेंगे।

हमको बार-बार यह सुनाकर डराया जाता है कि अंग्रेजों के चले जाने पर हमारे देश पर अफगान लोग आक्रमण कर देंगे। किंतु जब तक मैं जीवित हूं तब तक मैं इस देश के किसी भी भाग पर किसी विदेशी का प्रभुत्व नहीं होने दूंगा। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक भारतीय मुसलमान के भावों के बारे में कोई संदेह न करें। मैं चाहता हूं कि सब धर्मों के लोग मिलकर स्वतंत्रता के संघर्ष में उनका साथ दें।

उन्होंने सफलता के लिए आवश्यक तीन बुनियादी बातों की विस्तार से चर्चा की और कहा :

पहली बात यह है कि हम अपने दिलों से भय निकाल दें; हिंदू, मुसलमानों और पठानों तथा मुसलमान हिंदुओं से भय न करें

और एक दूसरे पर अविश्वास न करें। अफगानों का भय एक झूठा हौआ है। मैं अफगानों के स्वभाव को बहुत दिनों से जानता हूं। उनमें चाहे जितनी भी कमजोरियां हों किंतु वे खुदा से डरने वाले लोग हैं। मुझे विश्वास है कि वे भारत पर हमला करने की बात कभी नहीं सोचेंगे। दूसरी ओर मैं स्वतंत्रता की लड़ाई में मदद देने के लिए अफगानों को कभी न बुलाऊंगा। इसके विपरीत यदि अफगानों ने हम पर हमला किया तो मैं उनके विरुद्ध भी दृढ़ता के साथ असहयोग करूंगा और जीते-जी मातृभूमि की एक अंगुल-भर जमीन पर कब्जा न होने दूंगा।

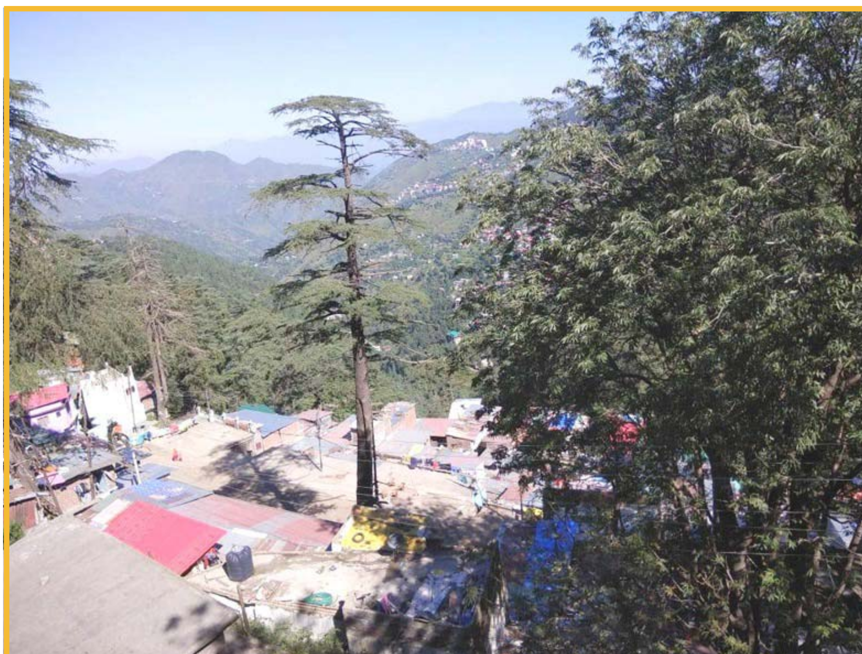
मैं आपसे फिर कहता हूं कि हिंदुओं और मुसलमानों के लिए अपने-अपने मन में से पारस्परिक अविश्वास को निकालना अत्यंत आवश्यक है। अब मैं दूसरी बुनियादी बात पर आता हूं। वह है हिंदू-मुस्लिम एकता। हमने आपस में जो समझौता किया है वह कोई सौदेबाजी की भावना से प्रेरित होकर नहीं किया। हिंदू मुसलमानों के मामलों में इसलिए साथ देते हैं कि वे ऐसा करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं और जानते हैं कि भलाई से भलाई ही पैदा होती है। इसलिए उनका मुसलमानों को गोवध बंद करने के लिए विवश करना घातक होगा। इस संबंध में केवल वे ही दोषी नहीं हैं, फिर गोरक्षा का प्रश्न जोर-जबरदस्ती कभी तय होने वाला नहीं हैं। मुसलमानों का मुक्त हृदय से विश्वास करने और उनको जी खोलकर सहयोग देने से अंत में हर चीज मिल जाएगी। इस्लाम का आधार मलमनसाहत है और यदि वह इसे छोड़ देगा तो वह टिक नहीं सकता।

तीसरी बुनियादी बात, जो सबसे महत्त्वपूर्ण भी है, अहिंसा है। इस संबंध में मैं सिखों से सविनय अनुरोध करता हूं कि वे लक्ष्मण सिंह और दलीप सिंह का अनुकरण करें, जिन्होंने महंत नारायण दास से लड़ने में समर्थ होने पर भी हिंसा का प्रयोग नहीं किया।

मेरी अंतिम बात है स्वदेशी। यद्यपि वकीलों और छात्रों से अदालतें और स्कूल छोड़ने का अनुरोध करना मैं कभी बंद नहीं करूंगा, फिर भी वे इस पर अमल न करें तो उसका हमारे संघर्ष पर कोई प्रभाव न पड़ेगा बशर्ते कि हम विदेशी माल का बहिष्कार पूरा कर दें। पूर्ण स्वदेशी का अर्थ ही स्वराज्य है।

अंत में गांधी जी ने कहा कि स्वराज्य की प्राप्ति निर्भयता, आत्म त्याग की भावना, अहिंसा, हिंदू-मुस्लिम ऐक्य और चरखे के अपनाने पर निर्भर है।

आज, 16-5-1921



15 मई, 1921 को महात्मा गांधी के शिमला प्रवास के दौरान उन्होंने ईदगाह मैदान में 15000 से अधिक लोगों की जनसभा को संबोधित किया था। वर्तमान में ईदगाह मैदान का चित्र

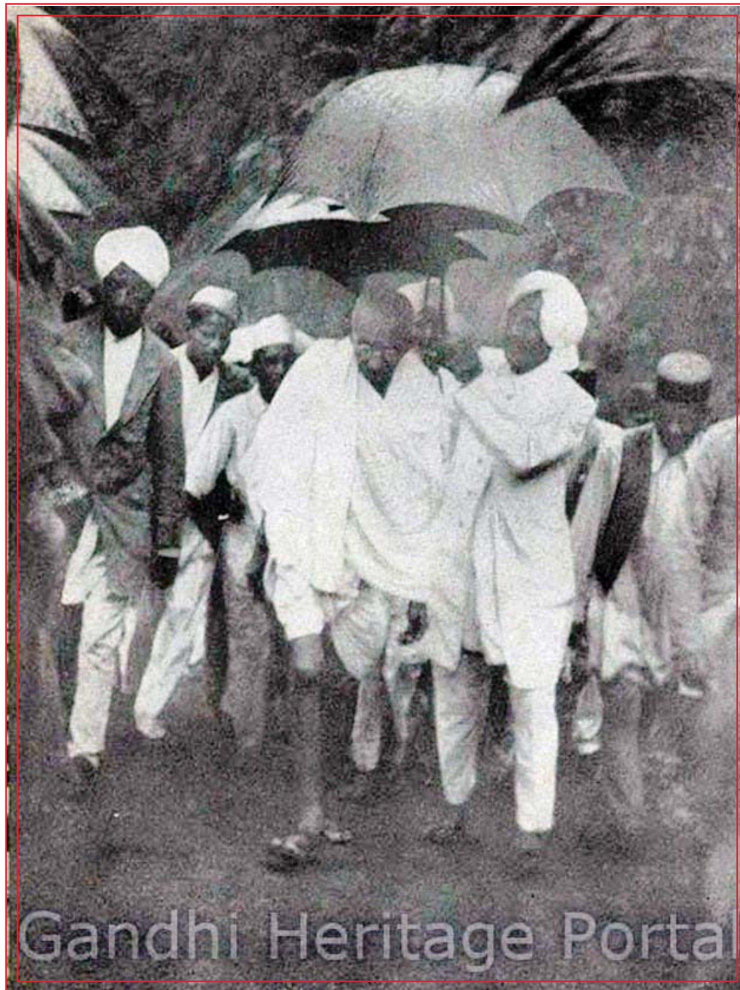
तारीखी जगह

ईदगाह कालोनी निवासी मो. जमील सिद्दीकी ने बताया कि महात्मा गांधी का वर्ष 1921 में ईदगाह के मैदान में कदम पड़ना एक तारीखी जगह बना है। वे इस मैदान में जब आए थे तो उनका 15 हजार से अधिक लोगों ने ख़ैरमक़दन किया था तथा इस मैदान को इसलिए मुकर्रर किया था क्योंकि शिमला में उस वक्त अंग्रेजों की हुकूमत ने उन्हें जलसा करने के लिए शहर की कोई और जगह नहीं दी गई थी। इस जलसे में शिमला के निवासियों के अलावा आसपास के गांव के लोगों ने पहली बार महात्मा गांधी के विचारों को सुना। हिमाचल प्रदेश सरकार को इस स्थान किया अहमियत समझते हुए इसका विकास करना चाहिए।

बेगार प्रथा पर गांधी के विचार

शिमला की छाया

यह बात बिलकुल साफ है कि असहयोग आंदोलन न ब्रिटिश विरोधी है और न इसाई-विरोधी, लेकिन यदि इसका प्रमाण ही चाहिए तो श्री स्टोक्स का उदाहरण हमारे सामने है। वे अंग्रेज हैं और भारत में बस गए हैं वे कट्टर इसाई हैं। उन्होंने अपना सर्वस्व बेगारी की कुप्रथा को दूर करने में लगा दिया है। ये श्री स्टोकस पक्के असहयोगी और कांग्रेसी हैं। मेरे विचार में मेरा यह कहना ठीक है कि वे धीरे-धीरे विचारपूर्वक उसके अनुयायी बने हैं। श्री स्टोक्स सरकार से जितना संघर्ष कर रहे हैं, उतना कोई भारतीय भी नहीं कर रहा है। वे पर्वतीय लोगों के सच्चे मार्गदर्शक, दार्शनिक और मित्र बन गए हैं। पाठकों को यह जानना चाहिए कि बेगार शिमला में ही, कहा जाए तो वायसराय की नाक के बिलकुल नीचे, चल रही है; और लॉर्ड रीडिंग फिर भी इस बुराई को दूर करने में असमर्थ हैं। मुझे इस बात में संदेह नहीं कि उनके मन में इसे दूर करने की पर्याप्त इच्छा तो है, पर वे जिला अधिकारियों और अन्य अधिकारियों को अपनी इच्छा के मुताबिक नहीं चला पाते। कुछ अधिकारी इतने निर्लज्ज हैं कि यदि वे ब्रिटिश सरकार के सीधे प्रशासन में रहने वाले प्रदेशों में मनमानी नहीं कर पाते हैं तो देशी रियासतों द्वारा करा लेते हैं शिमला के पास के पहाड़ी भागों में छोटी-छोटी देशी रियासतें हैं जिनमें ब्रिटिश अधिकारी ही सर्वशक्तिमान होता है। वह अपने अधिकार क्षेत्र में वायसराय से भी अधिक शक्ति-संपन्न होता है। वह रियासतों से अपनी इच्छा के अनुसार काम करवा सकता है, और इतने पर भी कह सकता है कि उन रियासतों के कामों में उसका कोई हाथ नहीं है। प्रतिपालक अधिकरण (कोर्ट ऑफ वाड्स) के अंतर्गत एक ऐसी रियासत है जहां शिमला के उप-आयुक्त (डिप्टी कमिश्नर) के इशारे पर बेगार आंदोलन को दबाने का प्रयत्न चल रहा है। मेरे एक पारसी मित्र ने मेरी बात को सुधारते हुए ठीक ही कहा है कि यह समस्या ब्रिटिश शासन के समय से नहीं, आदिकाल से मानव इतिहास के आरंभ से ही चली आ रही है। और दमन करने वालों का विशेष प्रिय तरीका यही है कि आंदोलन के मुख्य-मुख्य व्यक्तियों को जनता के बीच से हटा दिया जाए। जड़ पर ही कुठाराघात होना



वर्ष 1931 में शिमला प्रवास के दौरान महात्मा गांधी स्थानीय लोगों के साथ

चाहिए और इसीलिए गरीब पर्वतीय लोगों के सबसे अधिक कार्यक्षम और सुसंस्कृत व्यक्ति कपूर सिंह को बंद कर दिया गया है। सबूत किस ढंग से इकट्ठा किया गया था, इसका एक विशद वर्णन इस प्रकार है :

जनता को पूरी तौर पर आतंकित कर दिया गया था। शिमला से पुलिस बुलाई गई और कई लोग गिरफ्तार कर लिए गए। सभी लोगों को मशीनगनों से उड़ाने और कालापानी भेज देने की धमकियां देकर डराया गया... ऐसे वातावरण में मुकदमे के लिए सबूत इकट्ठा किया गया है।

इसके पंजाब के मार्शल लॉ के दिनों की याद हो आती है।

पर्वतीय लोगों को अपने विश्वसनीय नेता पर किए गए इस अत्याचार के विषय में बुरा लगना स्वाभाविक है। आशा है कि जब तक उनके नेता को छोड़ नहीं दिया जाएगा तब तक वे श्री स्टोक्स के नेतृत्व में चलकर किसी भी तरह की बेगार करने से दृढ़तापूर्वक इनकार कर देंगे; फिर उसके लिए उनको पूरे पैसे भी क्यों न मिलें? उन्हें कमजोर नहीं पड़ना चाहिए, बल्कि एक संकल्प करके स्वयं ही अधिकारियों के क्रोध का सामना करने के लिए डट जाना चाहिए और अपने नेता के समान जेल की सजा का सामना करना चाहिए।

बेगार कायम रखने के लिए यह हठ क्यों किया जाता है? अधिकारियों की सत्ता, शान और सुविधा के लिए। और इसलिए कि अधिकारियों का काम बेगार से ही चलता है। बेगार के बिना वे हिमायल के जंगलों में शिकार नहीं खेल सकते। यदि बेगार बंद हो गई होती तो ड्यूक को पहाड़ी किलों में शिकार के लिए नहीं ले जाया जा सकता था। यदि इसे लुत्फ माना जाए तो शेरों और भोले-भाले जानवरों के शिकार करने का लुत्फ उठाने के लिए हजारों अनिच्छुक गांव वालों के परिश्रम के बल पर वहां तक एक नया रास्ता तैयार कराना पड़ा था। यदि पशुओं के पास हमारी समझ में आने लायक वाणी होती तो वे अपना पक्ष ऐसे शब्दों में प्रस्तुत करते कि मानवता स्तब्ध रह जाती। जो जंगली जानवर हमें परेशान करने आते हैं, उनको मारने की बात तो मैं समझ सकता हूं, पर मनुष्य की रक्त-पिपासा शांत करने के लिए किए जाने वाले आयोजनों पर बहुत पैसा लुटाने के पक्ष में जो तर्क दिए जाते हैं, उनमें से कोई भी मुझे ठीक नहीं जंचता। यदि बेगार-प्रथा न होती तो अधिकारियों या पर्यटकों के मनोरंजन के लिए शिकार के आयोजन भी न हो पाते। मुझे भारतीय राजाओं के रीति-रिवाज और महाभारत के दृष्टांत बतलाने की कोई जरूरत नहीं है। जिन दृष्टातों या रीति-रिवाजों को मैं ठीक नहीं समझता या जिनका नैतिक आधार पर समर्थन नहीं कर सकता, मैं उनका दास बनने के लिए तैयार नहीं हूं।

(अंग्रेजी से, यंग इंडिया, 21-7-1921)

पत्र : सी.एफ. एन्ड्रयूज को

बंबई
18 जुलाई (1921)
प्रिय चार्ली,

यदि तुमको पत्र न लिखना कर्त्तव्य की उपेक्षा करना कहा जा सकता है तो मैं कर्त्तव्य की उपेक्षा करने का दोषी हूं। तुम्हारी आत्मा तो सदा ही मेरे साथ रहती है। मैं समझता था कि तुम शिमला में हो। मैंने स्टोक्स की[1] खुली चिट्ठी नहीं देखी। लेकिन इस हफ्ते के 'यंग इंडिया' में बेगार और स्त्रियों की स्थिति के संबंध में अग्रलेख रहेंगे। मैंने इस मामले में बंगाल के नाम तुम्हारे संदेश के बारे में विचार व्यक्त किए हैं।

जल्दी अच्छे हो जाओ। गुरुदेव के प्रति मेरा प्रेम निवेदन करना और उनके स्वास्थ्य के बारे में मुझे लिखना।

सस्नेह,
तुम्हारा,
मोहन

1. सैम्युल स्टोक्स, सार्वजनिक कार्यकर्ता और गांधी जी के सहयोगी।

गांधी का संदेश शिमला-पहाड़ियों की जनता के नाम

15 अगस्त, 1921
भाइयो,

मुंशी कपूर सिंह और उनके साथी आपके लिए कष्ट भोग रहे हैं। उनका उद्देश्य है कि आप उन सब अन्यायों से बचें जो आप बहुत दिनों से भोग रहे हैं। क्या आप अपने इन साथियों के लिए कोई यत्न करेंगे? मुझे विश्वास है कि जब तक आपके साथी जेल में हैं आप सरकार और रियासत को बेगार न देंगे। इस मामले में श्री स्टोक्स का कहना आपको मानना चाहिए। आप कोई उपद्रव न करें। जब तक आपके भाई जेलखाने में हैं आप अपने दिल से क्रोध हटा दें। आपके लिए तकलीफ उठाना और जेल जाना अच्छा है पर किसी अफसर को बेगार नहीं देना चाहिए। याद रखिए यदि इस अवसर पर आप पीछे हटे तो आप अपनी दासता और दृढ़ करेंगे और सदा के लिए दास बने रहेंगे। इस बारे में मैं पूरी तरह आपके साथ हूं।

आज, 27-8-1921

गांधीजी के शब्दों में शिमला

पांच सौवीं मंजिल



बीसवीं शताब्दी के आरंभ में शिमला का एक दृश्य

मैंने शिमला का नाम सुना था, उसे देखा न था। देखने की इच्छा होती थी लेकिन जाते हुए भय होता था। मुझे ऐसा लगा करता था कि शिमला में मैं खो जाऊंगा। शिमले में मैं अकेला व्यक्ति ही जंगली के सामन दिखाई दूंगा, मुझे ऐसा भी प्रतीत होता।

अब शिमला देखा। मैं अभी भारतभूषण पंडित मालवीय जी से मिलकर आया हूं; उनकी छत्रछाया में हूं। मकान का नाम 'शांत कुटी' है और यहां आसपास मेरे अपने साथी हैं। जलवायु सुंदर है। प्रकृति ने अपना सौंदर्य बिखरा देने में कुछ उठा नहीं रखा है। ये पहाड़ हिमाचल के अंग हैं। मुझे बाहरी वातावरण से तनिक भी शांति नहीं मिलती; और अगर मेरी (मानसिक) शांति का आधार बाहर के वातावरण पर ही निर्भर करता हो तो मुझे यहां से भाग जाना पड़ेगा अथवा मैं पागल हो जाऊंगा।

इस नगर का नाम शिमला माता के नाम पर पड़ा है। ठीक उसी तरह जिस तरह बंबई का मुंबा देवी और कलकत्ता का काली के नाम पर पड़ा है। या तो ये तीनों देवियां पाषाण-हृदया हैं अथवा उनके उपासक उन्हें भूल गए हैं। काली के मंदिर का विचार करता हूं तो भय लगता है। इसे मंदिर ही कैसे कहा जा सकता है। वहां प्रतिदिन अक्षरशः रक्त की नदी बहती है। वहां धर्म के नाम पर जिन हजारों बकरों की बलि दी जाती है, वे ईश्वर के दरबार में कैसी फरियाद करते होंगे, इसकी किसे खबर है? काली माता में कितना धीरज है? क्या वही यह राक्षसी भोग मांगती है? भोग चढ़ाने वाले उसे बदनाम करते हैं।

बंबई में भी कम अत्याचार नहीं होते। लेकिन वहां धर्म के नाम पर ऐसी हत्या नहीं होती। शेयर बाजार में जाने वाले, घुड़दौड़ में पानी की तरह रुपया बहाने वाले लोग पाखंड को पाखंड के नाम से ही पहचानते हैं, अपनी दुर्बलता को स्वीकार करते हैं। बंबई के कसाईखानों में जो कत्ल होता है वह पेट की खातिर होता है, धर्म के नाम पर नहीं। इस जानकारी के कारण बंबई में रहना असह्य नहीं जान पड़ता।

लेकिन शिमला? दिल्ली को हिंदुस्तान की गुलामी की निशानी नहीं कहा जा सकता। असली राजधानी दिल्ली नहीं है; शासकों का असली गढ़ तो शिमला है। शिमला की नगरपालिका ने माननीय वायसराय महादेय को बताया कि अधिकारी वर्ग शिमला पहाड़ की शांति और उसकी ठंडक में प्रतिवर्ष अपनी 'पॉलीसी' राज्यनीति गढ़ता है। यह राज्यनीति कैसी है, इसका हमने 1919 की गर्मियों में जी-भरकर अनुभव किया। इस

राजनीति के ताप का माप हिंदुस्तान के गरम-से-गरम भाग से ज्यादा है। शिमला देख लेने के बाद भी मेरे इन विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। शिमला पर राशि-राशि पैसा खर्च किया जाता है। मेरे जैसे अभिमानी को भी यहां नीचा देखना पड़ा। शिमला में घोड़े अथवा रिक्शे की सवारी मिलती है। दक्षिण अफ्रीका में मैं कभी रिक्शे पर नहीं बैठा लेकिन मेरी कमजोरी ने यहां मुझे उस पर बैठने के लिए विवश कर दिया। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, सभी रिक्शे में बैठते हैं। मोटर चलाना मना है; जो उचित भी है। घोड़ागाड़ी सिर्फ वायसराय महोदय को एक-दो अन्य अधिकारी ही इस्तेमाल कर सकते हैं; यह भी ठीक लगता है। यहां की सड़कें संकरी हैं। ऊंचे पहाड़ों पर बनाई गई सड़कें संकरी ही होती हैं। इन सड़कों पर गाड़ियों का आवागमन बहुत नहीं हो सकता। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि रिक्शा यहां इतनी आम सवारी हो गई है, मानो गाड़ी में जुतना हमारा सहज धर्म हो। रिक्शा ले जाने वाले भाइयों से मैंने पूछा, "तुम यह धंधा क्यों करते हो?" जवाब मिला, "पेट तो भरना है न?" यह जवाब अपने में पूरा नहीं है सो मैं जानता हूं। और फिर ये शौक की वजह से जानवर बनते हैं, ऐसा तो कदापि नहीं कहा जा सकता। मेरी शिकायत तो यह है कि हम खुद ही मनुष्य को जानवर बनाते हैं। फिर अगर हम साम्राज्य के बैल बने हुए हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

रिक्शा का उपयोग सिर्फ अंग्रेज ही करते हों सो नहीं बल्कि जितने मुक्त-भाव से वे उसका उपयोग करते हैं, उतने ही मुक्त-भाव से हम भी करते हैं। दूसरों को बैल बनाने में योग देकर हम स्वयं भी बैल बन गए हैं। एक रिक्शा पीछे चार व्यक्ति होते हैं। इनमें से तीन को प्रति मास 18 रुपये और चौथे को उनका अगुआ होने के कारण बीस रुपये मिलते हैं। रास्ते में इतना उतार-चढ़ाव होता है कि चार व्यक्ति होने के बावजूद वे हांफ उठते हैं। यह भी सौभाग्य की बात है कि रिक्शे की बनावट कुछ ऐसी होती है कि उसमें एक ही व्यक्ति बैठ सकता है।

शिमला 7,500 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। यदि लोग इतनी ऊंचाई पर से चलने वाले राजकाज का अर्थ समझ लें तो यह साम्राज्य क्या है, इसका उन्हें पता चल जाए। बंबई के सारे व्यापारी अगर सबसे ऊपरी मंजिल पर बैठ कर व्यापार करें तो ग्राहकों का क्या हाल होगा? चौथी मंजिल लगभग 60 फुट ऊंची होगी। हिंदुस्तान का व्यापार चलाने वाले इस सरकार रूपी व्यापारी के तीस करोड़ ग्राहकों को साठ फुट के बदले साढ़े सात हजार फुट ऊंचे जाना पड़ता है। बंबई का व्यापार चौथी मंजिल से नहीं चल सकता, सो हम जानते हैं। "हिंदुस्तान का व्यापार पांच सौवीं मंजिल पर चलता है।" फिर अगर हिंदुस्तान भूखा मरता है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? शिमला नगर की तलहटी में तीन करोड़ बच्चे भूख से बिलबिलाते रहते हैं; हमें इसमें अब कुछ आश्चर्य की बात नहीं जान पड़नी चाहिए। "जब तक साम्राज्य और हमारे बीच पांच सौ मंजिल का अंतर है तब तक उस अंतर को बनाए रखने के लिए डायरशाही को अवश्य चलना चाहिए।"

स्वराज्य का कारोबार भी अगर उसी मंजिल से चलाया जाए तो वह स्वराज्य नहीं हो सकता।

लेकिन कोई समझदार व्यक्ति कहेगा कि मैंने ठीक ठाक तुलना नहीं की है। भले ही सेठ 7,500 फुट की ऊंचाई पर रहे लेकिन वह अपने गुमाश्ते को, पटवारी को, पटेल को और मामलतदार को तो जमीन पर ही रखता है। यदि सेठ अपने खर्च से पांच सौवीं मंजिल पर रहता हो तो इस दलील में कुछ सच्चाई हो सकती है, लेकिन सेठ तो वहां ग्राहक के खर्च पर रहता है। सेठ वहां रहने का खर्च लेता है और अपना लाभ भी लेता है। ऐसे व्यापारी के ग्राहकों का दिवाला निकल जाए, वे भिखारी बन जाएं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

यह तो बहंगी में गंगाजल ले जाने से भी ज्यादा महंगा हुआ। गंगाजल की बहंगी रामेश्वरम तक जाती थी। एक लुटिया-भर गंगाजल का दाम देने वाला ही जानता है कि वह गंगाजल महंगा था अथवा सस्ता।

लोटा भर पानी इस्तेमाल करने में आती है शर्म

शिमले में बहुत ज्यादा आबादी हो गई है। सारे घर भर गए हैं। महंगाई तो होगी ही। पानी भी दो-एक हजार फुट नीचे से आता है। लोटा भर पानी इस्तेमाल करते हुए भी शर्म आती है। जहां हम रहते हैं, वहां पानी तो मिल जाता है, पर हमें दिन भर ही उसकी जरूरत पड़ती है इसलिए पानी भरने वाले को बहुत श्रम उठाना पड़ता है। शिमले के आसपास झरने नहीं हैं। स्वराज्य प्राप्त करने का अर्थ यह हुआ कि सरकार को पांच सौवीं मंजिल से नीचे जमीन पर लाना और अपने तथा उसके बीच स्वाभाविकता पैदा करना- फिर भले ही वह ब्रिटिश सरकार हो अथवा देशी। भेद काले-गोरे का नहीं है, भेद ऊंच-नीच का है। ब्राह्मण वह है जो सफाई कर्ता की सेवा करे, वह नहीं जो सफाई कर्ता के कंधों पर सवारी करे। जो जनता और अपने बीच पांच सौ मंजिलों का अंतर रखता है वह राजा नहीं है। कर्मों से हम सुखी अथवा दुःखी, राजा अथवा रंक होकर जन्म लेते हैं। सुखी पुरुषार्थ करके दुखियों के दुःख को टालता है, राजा पुरुषार्थ करके रंक को अपने समान बनाने का प्रयत्न करता है अर्थात् स्वयं राजा होते हुए भी जान-बूझकर रंक बनता है। ईश्वर दासानुदास बनकर ऐश्वर्य प्राप्त करता है, पतित को पावन करके स्वयं पूजनीय बनता है। शिमला में मुझे ठीक इसका उलटा दिखाई दिया और मेरा हृदय रो उठा।

(गुजराती से) नवजीवन, 22-5-1921

एक विदेशी का गांधीमय होना

स्टोक्स को महात्मा गांधी तथा अन्य वरिष्ठ नेताओं के साथ रहकर इस बात का आभास हो गया था कि पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों को स्वदेशी आंदोलन से कैसे लाभ पहुंच सकता है और उन्हें बेगार की दुख-तकलीफों से कैसे निजात दिलाई जा सकती है। तत्कालीन पहाड़ी लोग इतने गरीब थे कि कपड़े खरीदने पर भी उनपर आर्थिक कठिनाई आन पड़ती थी। उस वक्त, किसी भी किसान परिवार के पास खेती का पूर्णरूपेण कार्य न होता था। उनके पास खेती किसानी के बाद बहुत अधिक समय बच जाता था। ऐसे में परिवार के पास अपनी जरूरत का सूत व ऊन कातने का बहुत वक्त रहता था। स्टोक्स ने इस बात पर विचार किया। वे गांधी जी के सूत कातने के कार्यक्रम को पहाड़ी इलाकों में लागू कर कपड़ों की उपलब्धता की एक बड़ी जरूरत को पूर्ण कर सकते हैं।

तदोपरांत, कोटगढ़ में स्टोक्स परिवार ने अपने 'हारमोनी हॉल' निवास में विदेशी कपड़ों की होली जलाई। घर के प्रांगण में लकड़ी के गट्ठे एकत्रित किए गए। घर की अलमारियों, बक्सों से विदेशी कपड़े, साड़ियां, सेना की वर्दी एकत्रित कर आग के हवाले कर दी। उस वक्त स्टोक्स के बड़े पुत्र प्रेम चंद जो आठ वर्ष के थे, ने अग्नि प्रज्वलित की। स्टोक्स ने उस वक्त कहा कि गांधीजी के विचारों में यह एक पवित्र अग्नि है। इस अग्नि में घर के सभी बहुमूल्य तथा भावप्रणय वस्तुएं होम कर दी गईं। बच्चों की दादी द्वारा अमेरिका से भेजे गए हाथ से बुने स्वेटर भी जला दिए गए। लेकिन अमेरिका से आए, एक गांधीवादी को तो गांधीजी के आदर्शों को अंगीकार करना था।

गौरतलब है कि अमेरिका से आए एक नागरिक कैसे गांधी जी के संपर्क में आए और एक विदेशी वे भी अमेरिका नागरिक का गांधीमय होना आश्चर्यजनक लगता है। स्टोक्स सर्वप्रथम सोलन जिले के सुबाथू में वर्ष 1904 में 22 वर्ष की आयु में आए थे। वे यहां वर्ष 1870 में कुष्ठ रोगी केंद्र लुधियाना मिशन (अमेरिकन प्रिसरवेयरियन चर्च) में सेवा करने आए थे। तदोपरांत वे 1905 में कांगड़ा में आए भूकंप के पीड़ितों की सहायता के लिए गए और फिर कोटगढ़ में बस गए। उन्होंने कोटगढ़ को अपनी कर्मभूमि बनाया। वर्ष 1916 में वहां सेब का पहला बागीचा लगाया। वहां रह कर लोगों की व्यथा को देखा। बेगार प्रथा के विरुद्ध आंदोलन किया और पहाड़ों से बेगार प्रथा के उन्मूलन में अग्रणी भूमिका निभाई। गांधीजी से संपर्क में आने से पहले वे देश में प्रमुख पत्रों में भारत की आजादी तथा पहाड़ों की समस्याओं बारे लेख लिखकर राष्ट्रीय स्तर पर अपनी दस्तक दे चुके थे। इस कार्य में उनका सहयोग एंड्रयूज ने भी किया था। वर्ष 1920 में स्टोक्स तथा तत्कालीन सरकार में बेगार प्रथा को लेकर सीधा संघर्ष शुरू हो गया था। सितंबर 1920

पहाड़ी लोगों का पक्का मित्र

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक अमेरिकी नागरिक का योगदान भी आता है। उसका नाम सैम्यूल इवानस स्टोक्स था जो अमेरिका के फिलाडेलफिया के एक समृद्धतम परिवार से था। उसका जन्म 16 अगस्त, 1882 को हुआ तथा वह भारत में समाज सेवा विशेषकर कुष्ठ रोगियों की सेवा के लिए 26 फरवरी, 1904 को आया तथा शिमला हिल्स में सुबाथू में कुष्ठ रोगियों के लिए खोले गए संस्थान में पहुंचे। अभी उसने वहां काम ही संभाला था, उसी वक्त 1905 का भूकंप आ गया। वे वहां भूकंप पीडितों की सेवा करने चला गया। कांगड़ा से लौटने के उपरांत वे शिमला हिल्स के कोटगढ़ आ गए जिसे उसने अपने शेष जीवन की कर्मस्थली बनाया। वहां उसने स्थानीय बालिका से विवाह किया तथा स्थानीय लोगों के उत्थान के लिए कार्य किया। उसने बेगार प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई। बेगार प्रथा के तहत स्थानीय राजाओं द्वारा लोगों से बिना किसी वेतन में जबरी कार्य करवाया जाता था। उसके प्रयास सफल हुए और अंग्रेजों को इस प्रथा को बंद करने के लिए कानून बनाना पड़ा।

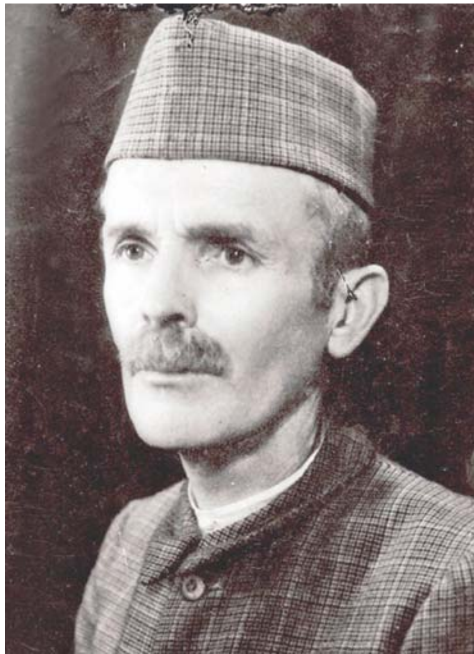
स्टोक्स के इन प्रयासों की गूंज देशभर में सुनाई दी। महात्मा गांधी भी स्टोक्स के इन प्रयासों से अभिभूत हुए।

गांधी जी ने अपने पत्र यंग इंडिया में लिखा, "कोई भी भारतीय तत्कालीन अंग्रेज सरकार को ऐसा संघर्ष न दे सका जैसा स्टोक्स ने दिया।" वह पहाड़ी लोगों का मार्गदर्शक, दार्शनिक तथा पक्का मित्र बना।

वर्ष 1919 में दमनकारी रौलेट एक्ट के पारित होने पर, स्टोक्स गांधीजी का सक्रिय साथी बना तथा स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भूमिका के लिए जेल यात्राएं भी कीं।

में भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड चैम्सफोर्ड शिमला हिल्स के बाघी (नारकंडा के समीप) दौरे पर आए। इस दौरे के लिए अंग्रेजी सरकार ने क्षेत्र के हजारों किसानों को लाट साहब के दौरे के लिए सामान तथा अन्य इंतजामों के लिए आदेश दिए। उस वक्त किसानों को सर्द ऋतु से पहले अपने खेतों में गेहूं तथा जौ की बिजाई करनी थी। स्टोक्स को जब इसकी सूचना मिली तो उसने किसानों को बेगार में न जाने की अपील की।

13 अक्तूबर, 1920 को गांधीजी की अखबार 'यंग इंडिया' में 'वायसराय का दौरा' शीर्षक से एक लेख स्टोक्स के नाम से प्रकाशित हुआ। यह बेगार प्रथा के विरुद्ध तथा इसके स्पष्ट तौर पर गरीब लोगों पर आ रही कठिनाइयों का जिक्र था। यह लेख बेगार प्रथा के उन्मूलन का पहला हथियार बना। इसी विषय पर एक अन्य लेख 'पहाड़ों में बेगार' 'इस्ट्रन मेल' में प्रकाशित हुआ। उन्होंने लिखा कि प्रशासनिक अधिकारी इस प्रथा के लिए सीधे तौर पर जिम्मेदार हैं। गांधीजी के एक अन्य सहयोगी सी.एफ. एन्ड्रयूज ने स्टोक्स के इन लेखों की प्रशंसा की। नवंबर, 1920 में सी.एफ. एन्ड्रयूज शिमला आए और कोटगढ़ गए। उन्होंने स्वयं हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग पर बेगार प्रथा की व्यथा को देखा। एन्ड्रयूज ने कोटगढ़ से रवींद्रनाथ टैगोर को इस बारे पत्र लिखा और कोटगढ़ से लौट कर अनेक पत्रों में बेगार प्रथा पर आलेख लिखा। स्टोक्स व एन्ड्रयूज के प्रयासों से सरकार जागी। 29 दिसंबर, 1920 को गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में संपादकीय 'एक कदम मेरे लिए काफी' लिखा। इसमें उन्होंने लिखा कि 'स्टोक्स ने भारत को अपना घर बना लिया है। वे कोटगढ़ में मैदानों से दूर अकेलेपन में रहकर सविनय अवज्ञा आंदोलन को निहार व कार्यान्वित कर रहे हैं।'



ज्ञात रहे कि गांधी जी ने देश में प्रथम अगस्त 1920 से प्रथम सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया था। स्टोक्स ने इस आंदोलन पर बांबे क्रॉनिकल में तीन किस्तों में 'सविनय अवज्ञा का अध्ययन' पर लेख प्रकाशित किए।

इन प्रयासों के बाद स्टोक्स राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़ गए थे तथा दिसंबर 1920 में उन्होंने कोटगढ़ से प्रतिनिधि के रूप में नागपुर में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस सम्मेलन में भाग लिया। वे गांधीजी के असहयोग आंदोलन की तर्ज पर पहाड़ों से बेगार प्रथा को समाप्त करने के हिमायती बने। मई 1920 में जब लॉर्ड रीडिंग वायसराय बने तो वे पंडित मदन मोहन मालवीय, सी.एफ. एन्ड्रयूज, एस.ई. स्टोक्स तथा महात्मा गांधी से भेंट करते थे तो उनकी इस मुलाकात को राष्ट्रीय स्तर पर देखा व परखा जाता था। स्टोक्स के राष्ट्रीय मुद्दों तथा बेगार पर आंदोलन व संघर्ष को हिंदी समाचार पत्रों में भी स्थान मिला। इस पर स्टोक्स ने अपनी माता को अमेरिका में पत्र लिख कर सूचित किया 'मुझे गर्व है कि हिंदी समाचार पत्र भी मेरे बारे में लिख रहे हैं। मैंने अपने कार्यो से भारतीयों का दिल जीता है जो पश्चिम के लोगों के विरोधी हैं, मुझे इस बात पर अत्यंत गर्व है कि मैं लोगों का विश्वास जीतने में कामयाब हुआ हूं।' महात्मा गांधी 12 मई 1921 को शिमला, लॉर्ड रीडिंग से भेंट करने आए। वे प्रातः रेलगाड़ी से शिमला पहुंचे। इसी दिन शाम को स्टोक्स ने गांधी जी से भेंट कर उन्हें पहाड़ी लोगों की व्यथा विशेषकर बेगार प्रथा बारे अवगत करवाया।

गांधीजी के चार दिन के शिमला दौरे के दौरान पहाड़ी जनमानस को उनसे, लाला लाजपतराय, मदन मोहन मालवीय के विचारों को सुनने का मौका मिला है। यह पहला अवसर था जब लोगों को राष्ट्रीय चेतना का आभास हुआ।

31 जुलाई, 1921 में स्टोक्स ने मुंबई के पारले मैदान में आयोजित एक बड़ी रैली में शिरकत की। इस रैली का आयोजन राष्ट्र के महान नेता लोकमान्य तिलक की प्रथम बरसी पर उन्हें श्रद्धांजलि देने के लिए किया गया था। यह सविनय अवज्ञा आंदोलन की भी पहली वर्षगांठ थी। महात्मा गांधी ने इस जयंती को मनाने के लिए विदेशी कपड़ों की सबसे बड़ी होली मनाने का निर्णय लिया था। इसके लिए स्वयंसेवियों ने हजारों की संख्या में विदेशी कपड़े इकट्ठे किए थे। लाखों लोगों की उपस्थिति में महात्मा गांधी ने इस ज्वाला को प्रज्वलित किया और स्वराज प्राप्ति के लिए यात्रा को अंतिम चरण की संज्ञा दी।

इस आयोजन से विदेशियों को दूर रखा था लेकिन स्टोक्स ने भी इस आग में अपने विदेशी कपड़ों को होम किया। स्टोक्स व एक अंग्रेज नर्स ही इस आयोजन में शामिल हुए थे। स्टोक्स ने इस दौरान खादी से बने वस्त्र धारण किए थे, जिसका उल्लेख गांधी जी ने एन्ड्रज को पत्र लिख कर किया था।

विदेशी वस्त्रों की होली के दो दिन उपरांत महात्मा गांधी के

पूर्व प्रधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के शब्दों में स्टोक्स

सत्याग्रह आंदोलन के सच्चे सैनिक

सोलह सितंबर, 2000 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अमेरिका के वाशिंगटन डीसी में भारतीय दूतावास के प्रांगण में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रतिमा का अनावरण करने के उपरांत अपने संबोधन में गांधी के आम अमेरिकी नागरिक पर आदर्शों का असर का उल्लेख करते हुए सैम्यूल इवांस स्टोक्स का जिक्र करते हुए कहा, "वे भारत में महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन में एक सच्चे सैनिक थे तथा यह अमेरिका के एक मात्र नागरिक थे जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य बने। उनकी जीवनी 'अमेरिकन इन खादी' में भारत तथा अमेरिका के रिश्तों का उल्लेख मिलता है।"

नेतृत्व में चार लोगों का एक दल जिसमें मौलाना आजाद सूबानी, मौलाना मोहम्मद अली तथा सम्यूल ई. स्टोक्स ने संयुक्त प्रांत में स्वदेशी वस्त्रों को अपनाने तथा विदेशी कपड़ों को तिलांजलि देने के लिए रवाना हुए। दस दिन के इस दौरे के दौरान दल अलीगढ़, बरेली, मुरादाबाद, लखनऊ, कानपुर तथा इलाहाबाद गया। यह यात्रा स्टोक्स के लिए यादगार बनी और वे महात्मा गांधी तथा भारतीयों के और नजदीक आए। इलाहाबाद में गांधी जी की यात्रा समाप्त हुई और स्टोक्स, लाला लाजपत राय के साथ 10 दिन के पंजाब दौरे के लिए रवाना हुए। दोनों ने लाहौर, अमृतसर तथा अंबाला में रैलियों को संबोधित किया और 16 अगस्त, 1921 को अमृतसर का दौरा किया। उसी दिन हरमंदिर साहिब में माथा टेका और जलियांवाला बाग में 12 हजार के समूह को संबोधित किया।

19 अगस्त, 1921 को स्टोक्स कसौली पहुंचे। उसी दौरान उन्होंने पहाड़ों की गरीबी हटाने के लिए स्वराज व खादी को अपनाने की बात पर विचार किया। गांधी के सच्चे अनुयायी अब देश में एक तारे की तरह चमक रहे थे। उन्होंने भारत की गुलामी पर लेख ट्रिब्यून तथा बॉम्बे क्रॉनिकल में प्रकाशित किए। दि ट्रिब्यून ने स्टोक्स पर संपादकीय लिखा, "A Gentleman of unimpeachable veracity" लिखा। इसके अलावा स्टोक्स पर यंग इंडिया, द माडर्न रिव्यू, द इंडियन नैशनल रिफारमर, द बांबे क्रॉनिकल, द सर्वेंट, करंट थॉट तथा ट्रिब्यून में भी लेख प्रकाशित हुए।

असहयोग आंदोलन और स्टोक्स

गांधी का पत्र : एस. ई. स्टोक्स को

पोस्ट अंधेरी
19 मार्च, 1924

प्रिय मित्र,

रजिस्ट्री से भेजा बंडल रविवार को मिल गया था और चूंकि कल अस्पताल में भरती होने के बाद मेरे मौन का पहला सोमवार था, मैं दोनों ही चीजें पढ़ गया। स्मरण-पत्र आपकी इच्छानुसार मैं ऊपर भेजे दे रहा हूं। दोनों उपयोगी हैं और जानकारी देते हुए हैं। उन्होंने मेरे सामने एक ऐसे व्यक्ति की मनोभावना रखी जिसकी निष्पक्षता के बारे में मुझे कोई संदेह नहीं और जिसके विचारों की मैं कद्र करता हूं। यदि कहीं मैं आपके दिए हुए तथ्यों और असहयोग संबंधी विचारों को स्वीकार कर सकता तो फिर मुझे आपसे सहमत होने में कोई बाधा नहीं रहती। मैं आपकी इस राय का पूरी तरह अनुमोदन करता हूं कि यदि परिषद् में कोई प्रवेश करता है तो उसका प्रवेश वहां के काम में केवल रुकावट डालने के लिए नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत हमें सरकार द्वारा दी गई प्रत्येक अच्छी वस्तु से लाभ उठाना चाहिए और उनमें जो बुराई हो उसे सुधारने की अपनी तरफ से पूरी कोशिश करनी चाहिए। आपका तर्क स्वीकार करूं तो फिर मुझे आपके इस विचार का भी अनुमोदन करना चाहिए कि वकीलों और अदालतों-पर से भी निषेधाज्ञा हटा ली जानी चाहिए। परंतु मेरा खयाल है कि शायद हम दोनों में अहिंसात्मक असहयोग की व्याख्या और उसके निहितार्थ के बारे में मौलिक मतभेद हैं और इसीलिए आपने महसूस किया और देखा कि कांग्रेस की सब गतिविधियां कुंठित हो गई हैं। किंतु मैं ऐसी हालत में इस कुंठा को दूर करने के अन्य उपाय न सोचता। मैं इसे देश के सार्वजनिक जीवन के विकास में एक जरूरी अवस्था मानता। मैं इसे एक दुर्लभ अवसर मानता और अपने प्रयत्नों को द्विगुणित करता तथा इससे मुझे कार्यक्रम में अपने विश्वास की परीक्षा करने की और भी अधिक दुर्लभ, विशेष सुविधा उपलब्ध होती। आपने अपने व्यक्तिगत अनुभव बताए हैं और स्वभावतः निष्कर्ष निकाला है कि कार्यक्रम के संबंध में कुछ गलती हुई जिससे कि यह कार्य जिसका कि आपने और आपके सहयोगियों ने धैर्यपूर्वक निर्माण किया था एक क्षण में प्रायः विनष्ट हो गया। लेकिन वकीलों में एक कहावत है कि विशेष परिस्थितियों में जो किया गया हो उसे कानून की प्रतिष्ठा देना अनुचित है। यदि इसका ठीक अर्थ लें तो यह एक ठोस सत्य है। धार्मिक दृष्टिकोण से इसकी व्याख्या की जाए तो इसका अर्थ होगा कि कुछ विशेष परिस्थितियों में धार्मिक सत्य से अलग हटना भले ही लाभप्रद

मालूम पड़े, किंतु उन्हें सत्य पर से विश्वास खो देने का कोई आधार नहीं माना जा सकता। यदि मेरे मन में आप जैसी बात उठती तो मैं सोचता, "इस प्रकार किये धरे पर पानी फेर कर लोगों ने सच्ची वस्तु प्राप्त करने के लिए बलिदान ही किया है।" यह सच्ची वस्तु क्या है? साधारण जनता के लिए सच्ची वस्तु प्राप्त करने का अर्थ शक्ति के प्रति अंधविश्वास से अपने को मुक्त करना है। युगों से उसे अपने हर काम तथा अपनी रक्षा के लिए सरकार का मुंह ताकना सिखाया गया है। सरकार उसके लाभ का साधन बनने की बजाय उनसे अलग और ऊंची एक ऐसी चीज न गई है जो चाहे दुष्ट हो चाहे सदय, जनता को उसे देवता की तरह मानना होता है। मेरी कल्पना के अनुसार असहयोग का मतलब उस सरकार के साथ सहयोग न करना है, जिसके विषय में उक्त विचार रूढ़ हो गए हैं। उसका मतलब लोगों को यह महसूस करने की तालीम देना है कि सरकार उनकी बनाई हुई है; वे सरकार के बनाए हुए नहीं हैं। इसलिए सरकार के माध्यम से हम अब तक जो तथाकथित लाभ पाते रहे हैं यदि हमें (असहयोग के कारण) उनमें से अनेक का परित्याग करना पड़े तो यह आश्चर्य की बात नहीं होगी। यदि हमारा असहयोग अहिंसात्मक न होता तो हम सरकार को उसी के साधनों अर्थात् शस्त्रों की शक्ति से उसी प्रकार परास्त करने की कोशिश करते, जिस प्रकार इतिहास में सभी राष्ट्रों ने की है। ऐसे संघर्ष में सरकार रूपी मशीन के एक-एक पुर्जे का उपयोग न करना एक भूल होगी। हिंसापूर्ण संघर्ष में लोग आत्म-बलिदान की आशा भले न करें किंतु वे उसके लिए तैयार होते हैं। अगर उनके पास सरकार से अच्छे शस्त्र हैं, तो वे बिना किसी आत्म-बलिदान के उसे परास्त कर देते हैं। किंतु अहिंसात्मक संघर्ष में शस्त्रों का सहारा नहीं लिया जाता और उसमें तात्कालिक आत्म-बलिदान अनिवार्य होता है। अपने इस संघर्ष में भी हम अमली तौर पर सितंबर, 1920 से आत्म-बलिदान करते रहे हैं। वकील, अध्यापक, विद्यार्थी, व्यापारी हर वर्ग के लोग, जिन्होंने अहिंसात्मक असहयोग आशय समझा है, सभी ने अपनी योग्यता और कल्पना के अनुसार कुर्बानियां की हैं। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं जिन्होंने आर्थिक हानि को इसलिए स्वीकार कर लिया कि उन्हें अदालत में जाना स्वीकार नहीं था। सरकारी अधिकारियों को गर्व और आनंद से यह कहते भी सुना गया है कि जो लोग उनके साथ सहयोग करने के कारण पहले लाभ उठाते थे अब असहयोग करके नुकसान उठा रहे हैं। परंतु जिन्होंने संघर्ष को पूरी तरह समझकर नुकसान उठाया, उन्हें उसे लाभ ही माना है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान शासन- प्रणाली और प्रशासकों की वर्तमान मनोवृत्ति के रहते, तब तक परिषदों में जाना संभव नहीं है जब तक कि आप उस अत्यंत निकृष्ट प्रकार की हिंसा में भाग नहीं लेते, जिस पर भारत सरकार डटी है। फिर संसार की अन्य सरकारों के इतिहास को लीजिए। उदाहरण के तौर पर मैं मिस्र की सरकार को लेता हूं। वहां के लोग जो-कुछ चाहते हैं, वे उसे लगभग हासिल कर चुके हैं। उन्होंने अब तक संसार में अपनाए गए सामान्य उपायों का सहारा लिया। मिस्र के लोगों को शस्त्रों का उपयोग करने का अभ्यास था और इसलिए उनके लिए परिषदों तथा संपूर्ण प्रशासनिक ढांचे का उपयोग कर देखने का मार्ग खुला था। क्योंकि उसमें असफल होने पर व्यक्त करने के लिए आजाद रहूंगा और यदि आपको अपने लेखन से समय मिलेगा तब आप उस रूपरेखा के विकास को देखेंगे जो मैंने ऊपर खींची है।

सप्रेम,

हृदय से आपका,

श्री एस. ई. स्टोक्स
कोटगढ़
शिमला हिल्स

1. इसमें ऐसे 'स्मरण पत्र' थे जो परिषद् में प्रवेश के मामले को अधिक पूर्ण रूप से प्रस्तुत करते थे।
2. देखिए खंड 18
3. इसका उत्तर स्टोक्स ने 25 मार्च को दिया था; देखिए (एस.एन. 8581)

गोद लेने का पुरस्कार

तीन दिसंबर, 1921 को लाहौर रेलवे स्टेशन के समीप बाधा रेलवे स्टेशन पर दो पुलिस कर्मी पंजाब मेल के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में दाखिल हुए और उसमें यात्रा कर रहे अमेरिकी नागरिक जो खादी वस्त्र धारण किए थे से कहा कि उन्हें देशद्रोह के आरोप में गिरफ्तार किया जाता है। वे अमेरिकिन नागरिक सैम्यूल इवांस स्टोक्स थे जो शिमला के कोटगढ़ से लाहौर में आयोजित होने वाले कांग्रेस सम्मेलन में भाग लेने जा रहे थे। उन्हें लाहौर के पुलिस स्टेशन ले जाया गया। छह घंटे उपरांत जिला मैजिस्ट्रेट एम.एल. फैरार के समक्ष पेश किया गया। मैजिस्ट्रेट ने उन्हें अच्छे व्यवहार के लिए 10 हजार रुपये के मुचलके पर छोड़ने का निर्णय लिया। लेकिन स्टोक्स को कतई मंजूर न था। वे एक राष्ट्रीय नेता थे जो महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा जैसे आदर्शों को अपनाकर स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बने थे और वे अंग्रेज सरकार के साथ कोई भी सहयोग करने के हिमायती न थे।

स्टोक्स का जुर्म बस इतना था कि उन्होंने दैनिक समाचार पत्र दि ट्रिब्यून में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लेख लिखा था तथा इसे अंग्रेज सरकार ने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध देशद्रोह माना।

हालांकि अंग्रेज सरकार ने इस गिरफ्तारी का ज्यादा प्रचार करने को गुरेज किया लेकिन महात्मा गांधी ने यंग इंडिया पत्र के प्रथम पृष्ठ पर 'Reward of Adoption' नाम से लेख लिखा।

महात्मा गांधी, सैम्यूल और भारतीय राष्ट्रीयता

अक्तूबर, 1921 में महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय नेताओं को अंग्रेजों द्वारा बंदी बनाने के दृष्टिगत रणनीति तैयार करने के लिए हिंदुस्तान के प्रमुख राष्ट्रीय नेतृत्व जिसमें मोती लाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, डी.वी. गोखले, वल्लभ भाई पटेल, एम.ए. अंसारी तथा सी. राजगोपालाचारी को बंबई बुलाया। उन्होंने इस बैठक में भारतीयों को सरकारी सेवाएं छोड़ने, जिसमें सैन्य सेवाएं भी शामिल थीं, बारे घोषणा पत्र जारी करने का निर्णय लिया।

इस बैठक में बुलाए भारतीय राष्ट्रीय नेताओं के अलावा एक ही विदेशी आमंत्रित था वह था सैम्यूल इवांस स्टोक्स। अमेरिकन स्टोक्स भी उस घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले एकमात्र विदेशी नागरिक थे।

A Manifesto Oct 4 (1921), Page 235-236 (Volume-21)

वर्ष 1919 से 1921 का वक्त भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस वक्त गांधी स्वतंत्रता आंदोलन के अगुवा बन गए थे तथा पंजाब आजादी की आग में सुलग रहा था। स्टोक्स के राष्ट्रीय नेताओं के संपर्क में आने से वे भी इस लड़ाई में कूद पड़े थे। महात्मा गांधी ने प्रथम अगस्त 1920 को प्रथम असहयोग आंदोलन, अंग्रेजों के खिलाफ खिलाफत आंदोलन तथा पंजाब में की गई गलतियों बारे दिए गए आश्वासन को निभाने के लिए आरंभ किया।

स्टोक्स ने इस वक्त पहाड़ों में बेगार प्रथा को समाप्त करने के लिए आंदोलन चलाया था। बेगार प्रथा के विरुद्ध चलाए आंदोलन को उस वक्त धक्का लगा जब शिमला के उपायुक्त ए.लैंगले जो इसकी समाप्ति के हिमायती थे, का तबादला हो गया तथा उनके स्थान पर एम.एस. विलियमसन आए। वे इसे समाप्त करने के हिमायती नहीं थे। इससे लोगों में एकता बढ़ी और वे और अधिक एकजुट हुए।

इससे बेगार में लगे समुदाय इकट्ठे हुए और 7 मार्च 1921 को इस विषय पर अधिकारियों से पत्राचार करने के लिए कमेटी गठित की गई। सात सदस्यीय कोटगढ़ पंचायत समिति गठित हुई। इसमें भुट्टी तथा केपू क्षेत्र के लोगों ने भी सहयोग करने का आश्वासन दिया। इस मामले में स्टोक्स को अनेक पहाड़ी क्षेत्रों के नुमाइंदों के पत्र प्राप्त हुए कि वे इस संघर्ष को आगे बढ़ाएं।

इस बैठक में एक ज्ञापन का मसविदा तैयार कर उस पर हस्ताक्षर किए गए।

"हमारा यह भी मत है कि प्रत्येक भारतीय सैनिक और असैनिक कर्मचारी का कर्तव्य है कि वे अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दें और अपनी आजीविका का कोई दूसरा सम्मानजनक साधन ढूंढ ले।

हम समस्त देश से अनुरोध करते हैं कि वह विदेशी

स्वदेशी का अर्थशास्त्र

'टू अवेकिंग इंडिया' की प्रस्तावना
सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
8 अक्तूबर, 1921

इस पुस्तिका में श्री स्टोक्स ने विदेशी कपड़े की होली जलाने के समर्थन में केवल अपना तर्क ही नहीं दिया है, बल्कि स्वदेशी का अर्थशास्त्र भी दिया है। यदि हम इतनी बात भी याद रखें कि किसी भी सुगठित विकास के लिए जितना उपयोगी और आवश्यक सृजन है उतना ही विनाश भी, तो हमें यह समझने में कोई कठिनाई न होगी कि देश के सम्मुख जो फौरी कार्यक्रम रखा गया है उसकी पूर्ति के लिए विदेशी कपड़े की होली जलाना भी आवश्यक है। किंतु ऐसे समय में जब विदेशी कपड़े की होली पर घोर आक्षेप किया जा रहा है, श्री स्टोक्स का प्रयत्न अवश्य ही सहायक सिद्ध होगा।

मेरी दृष्टि में तो यह विरोधी विदेशी महीन कपड़े के प्रति हमने जो मोह अपने अंदर पैदा कर लिया है, उसकी तीव्रता का और विदेशी कपड़े के उपयोग के फलस्वरूप भारत के करोड़ों घरों में जो गरीबी पैदा हो गई है उसके अपर्याप्त ज्ञान का ही सूचक है। किंतु मुझे बहस में नहीं पड़ना चाहिए; मैं ये पंक्तियां केवल श्री स्टोक्स के योग्यतापूर्ण निबंधों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए ही लिख रहा हूं।

मो.क. गांधी (अंग्रेजी से) टू अवेकिंग इंडिया

महात्मा गांधी ने चखा कोटगढ़ का सेब
व
पहाड़ी शहद

महात्मा गांधी के अस्वस्थ होने पर वे आराम करने के लिए मार्च 1924 में पोस्ट अंधेरी में समुद्र तट पर स्थित एक विश्राम गृह में चले गए। एम. ई. स्टोक्स ने गांधी जी से आग्रह किया था कि देशहित का खयाल रखते हुए उन्हें विश्राम करना चाहिए। महात्मा गांधी ने स्टोक्स को पत्र लिखकर उनका पहाड़ी शहद भेजने के लिए आभार व्यक्त किया। उन्होंने 15 मार्च, 1924 को स्टोक्स को उनके पते हारमनी हॉल, कोटगढ़, शिमला हिल्स पर पत्र भेजा। यह पत्र गांधीजी द्वारा अंग्रेजी में लिखा था, जिसका हिंदी अनुवाद निम्नलिखित है :

पत्र : एस. ई. स्टोक्स को

पोस्ट अंधेरी
15 मार्च, 1924

प्रिय मित्र,
आपका 7 तारीख का पत्र मिला।

जैसा कि आपने समाचार पत्रों में पढ़ा होगा, मैं अब समुद्र-तट पर एक विश्राम-गृह में चला आया हूं। यह स्थान, जहां हम सब रह रहे हैं, बहुत ही सुंदर है। यह समुद्र के ठीक सामने है और हमें निरंतर लहरों का संगीत सुनाई देता रहता है। जाने क्यों, मैं यह महसूस करता हूं कि मुझे कौंसिल-प्रवेश आदि प्रश्नों पर अपने विचार यथाशीघ्र व्यक्त कर देने चाहिए। मैं समझता हूं कि इसके लिए आवश्यक मानसिक श्रम करने लायक पर्याप्त शक्ति मुझमें है। हकीम जी और अन्य मित्रों से मिलना तो मैं पहले ही तय कर चुका हूं। मैं शारीरिक श्रम से बचने का यथासंभव प्रयास कर रहा हूं, और मैं नहीं समझता कि मैं इस समय जितना मानसिक श्रम कर रहा हूं, उससे मुझे कोई नुकसान होगा।

एक अपरिचित मित्र ने मुझे लिखा है कि आपने उनसे मुझे कुछ पहाड़ी शहद भेजने के लिए कहा था। उन्होंने कृपा करके मुझे 5 पौंड शहद भेज भी दिया। शहद सचमुच बहुत अच्छा था। बाद में मुझे पता चला कि मोहन लाल पंडया ने (खेड़ा जिले का एक कार्यकर्ता) आपको मेरे लिए शहद भेजने को लिखा था। मैं जानता हूं कि आप मुझ पर बहुत मेहरबान रहे हैं। फिर भी मोहनलाल पंडया को आपको कष्ट नहीं देना चाहिए था। मुझे उस समय महाबलेश्वर से अच्छा शहद मिल रहा था। बीमारी के दौरान मुझे उन लोगों से, जिन्हें मैं जानता हूं और उन लोगों से भी जिनसे मुझे मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, इतना अधिक स्नेह प्राप्त हुआ है कि मुझे लगता है मेरा बीमार पड़ना लगभग ठीक ही हुआ।

हम दोनों ओर से आप दोनों को स्नेह।

सदैव आपका,
मो. क. गांधी

श्री एस. ई. स्टोक्स
हारमनी हॉल
कोटगढ़, शिमला हिल्स
अंग्रेजी प्रति (एस.एन. 8497) की फोटो-नकल से।

गांधी की कोटगढ़ आने की इच्छा

आश्रम साबरमती
1 सितंबर, 1929

प्रिय मित्र

आपका पत्र मिला। कुमारी हॉसडिंग को अपने यहां रखने में आपकी दिक्कत मैं ठीक-ठाक समझता हूं। अब वह मसूरी चली गई है। वहां देवदास के साथ कुछ दिन रहेंगी।

निस्संदेह आपके साथ रहने की मेरी उत्कट इच्छा है, फिर वह कुछ दिनों के लिए ही क्यों न हो। यह अवसर कब आएगा, सो मैं नहीं जानता। पहाड़ी लोगों के बीच आप जो प्रयोग कर रहे हैं, उसे मैं बड़ी दिलचस्पी से देख रहा हूं।

आप सबको प्यार।
हृदय से आपका

श्री एच.ई. स्टोक्स
कोटगढ़, शिमला हिल्स

(एक सितंबर, 1929 को महात्मा गांधी ने स्टोक्स को पत्र लिखा)

जब गांधी ने खाया कोटगढ़ का सेब

पत्र : आर.बी. ग्रेग को

आश्रम साबरमती
2 अक्तूबर, 1929

प्रिय गोबिंद,

मुझे गोल्डन डिलीशियस सेबों की पेटी यथासमय मिल गई। सेबों के पार्सल के लिए कृपया स्टोक्स को मेरी ओर से धन्यवाद देना। वे खाने में सचमुच बहुत स्वादिष्ट थे। देखने में वे 'गोल्डन' नहीं लगते थे। मैं उन्हें दांतों से चबा नहीं सका, इसलिए मुझे उन्हें पका कर खाने पड़े। मैंने दो सेब खाए। बाकी सेब रोगियों और ऐसे व्यक्तियों को बांट दिए गए जिन्हें आप और स्टोक्स भी उनके योग्य समझते।

मैं जानता हूं कि अभी मैंने तुम्हारे पिछले पत्रों का उत्तर नहीं दिया है। मैं तुम्हें काफी लंबा पूरा उत्तर भेजना चाहता हूं। इसलिए मैं देर कर रहा हूं। ऍन्ड्रयूज चले गए हैं। यात्रा की दृष्टि से उनकी तबीयत कोई खास अच्छी न थी, लेकिन वे आसानी से मानने वाले व्यक्ति नहीं हैं। इसलिए मैंने उनसे न जाने का विशेष आग्रह नहीं किया।

हृदय से आपका

श्री आर.बी. ग्रेग
मार्फत एस. ई-स्टोक्स
कोटगढ़, शिमला हिल्स

महात्मा को भेंट की थी कोटगढ़ के छात्रों की बुनी शॉल

सैम्यूल स्टोक्स ने महात्मा गांधी को कोटगढ़ स्थित तारा स्कूल में विद्यार्थियों द्वारा कताई तथा बुनाई गई विशेष ऊन की शॉल भेजी। स्टोक्स जब वर्ष 1928 में अपने स्कूल के विद्यार्थियों को मैदानी क्षेत्रों के भ्रमण के लिए ले गए तो वे उन्हें गांधी जी से भेंट करवाने भी लेकर गए। इस भेंट के दौरान जब गांधी जी ने स्टोक्स के सुपुत्र लालचंद जो उस वक्त चार वर्ष का था, से पूछा वे बड़े होने पर क्या बनोगे तो बालक ने गांधी जी को सहज भाव से बोला, 'गडरिया'। स्टोक्स गांधी जी को पहाड़ों की सुंदरता से रूबरू करवाने के लिए सदैव आग्रह करते थे। उन्हें विश्वास था कि यह स्थान उन्हें आराम दिलवाएगा जैसाकि अन्य स्थानों पर नहीं मिल सकता। वे कहते थे कि गर्मियों में आपको मेरे घर पर आराम मिलेगा ऐसा मेरा विश्वास है। गांधी जी ने इसके प्रत्युत्तर में कहा कि अगर वे उत्तर में कभी आराम करने गए तो मैं आपसे आपके घर को अपना समझ कर आपका तथा आपकी पत्नी का अतिथि बन सौभाग्य समझूंगा। एक अन्य पत्र में गांधी जी ने लिखा कि मैं आपके साथ रहना चाहता हूं चाहें वे कुछ ही दिनों का प्रवास हो। यह वक्त कब आएगा, यह मैं नहीं जानता।

(An American in Gandhi's India by Asha Sharma पुस्तक से साभार)

भारत-प्रेम का पुरस्कार

जहां तक मेरी जानकारी है लाहौर में श्री स्टोक्स की गिरफ्तारी के संबंध में बंबई के समाचार पत्रों को कोई भी तार नहीं मिला है। यह ताज्जुब की बात है। मैंने 'ट्रिब्यून' में इस घटना के बारे में एक पैरा देखा है। मैं सोच ही नहीं पाता कि एक इतनी सनसनीखेज गिरफ्तारी के बारे में किसी ने कोई तार न भेजा हो। इससे मैं यह नतीजा निकालता हूं कि गिरफ्तारी की सूचना के तारों को अली-भाइयों की गिरफ्तारी के बारे में भेजे गए तारों की तरह ही या तो दबा दिया गया है या उनको कुछ समय के लिए रोक लिया गया है। श्री स्टोक्स को 'ट्रिब्यून' में छपे उनके लेखों के सिलसिले में 3 तारीख को लाहौर छावनी में गिरफ्तार किया गया था। उन लेखों के बारे में यह आपत्ति थी कि वे 'राजद्रोह की भावना और सम्राट की प्रजा के विभिन्न वर्गों में घृणा का प्रचार करते' हैं। जिला मजिस्ट्रेट ने श्री स्टोक्स को जमानत पर छोड़ने की बात कही थी, पर श्री स्टोक्स ने उसे स्वीकार नहीं किया। सरकार ने यह एक विचित्र-सा कदम उठाया है। श्री स्टोक्स मूलतः एक अमेरिकी हैं, जिन्होंने अपने आपको स्वेच्छा ब्रिटिश प्रजा बना लिया है। उन्होंने भारत को अपना घर बना लिया है। शायद ही किसी अमेरिकी या अंग्रेज ने आज तक ऐसा किया हो। पिछले महायुद्ध के दौरान उन्होंने सरकार की बड़ी सेवाएं की थीं और उच्चाधिकारी लोगों में वह सरकार के शुभचिंतक के रूप में जाने जाते हैं। उनमें किसी भी दुर्भावना का कोई संदेह तक नहीं कर सकता। पर सरकार यह सहन नहीं कर सकी कि वह अपने आपको भारतीयों के साथ एकात्म महसूस करे और भारतीयों के दुःख में दुःख माने और उनकी ओर से संघर्ष में हाथ बंटाए। आलोचना की खुली छूट उनको नहीं दी जा सकी और इस प्रकार सरकार ने उनकी गोरी चमड़ी का जरा भी कोई लिहाज नहीं किया। सरकार आंदोलन को हर कीमत पर कुचलने के लिए तुली हुई है। लेकिन यह उसके बस की बात नहीं। श्री स्टोक्स की गिरफ्तारी सरकार की कमजोरी की जितनी बड़ी निशानी है, लाला जी की गिरफ्तारी भी शायद इतनी नहीं थी। लाला जी को युद्ध के दौरान सरकार की सेवा का श्रेय प्राप्त नहीं था। लाला जी को एक आंदोलनकारी माना जाता था। वह गोरी जाति के नहीं हैं। इसलिए जब श्री स्टोक्स जैसे व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है तब तो बाहर के लोग भी सरकार की सदाशयता को संदेह की दृष्टि से देखने लगते हैं।

जब माल रोड पर आई महात्मा की कार...



शिमला प्रवास के दौरान महात्मा गांधी स्थानीय लोगों के साथ। सौजन्य : गांधी हेरिटेज पोर्टल

स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन चला। 12 मार्च, 1930 को गांधी जी की नमक यात्रा से सविनय अवज्ञा आन्दोलन की शुरूआत हुई। गांधी जी ने साबरमती से यात्रा शुरू की। 240 मील लम्बा सफर तय कर दांडी के तट पर 6 अप्रैल को पहुंच कर अवैध नमक बनाया। गांधी जी के गिरफ्तारी के बाद राष्ट्र में एक हलचल मच गई। जगह-जगह हड़ताल हुई। जुलूस निकाले गये। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, अंग्रेजी नियमों को तोड़ा गया। अंग्रेजों ने दमनकारी नीतियां जारी रखी। ब्रिटिश सरकार ने डर कर गांधी-इरविन समझौता किया। मार्च, 1931 में यह समझौता हुआ और सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त हो गया। और दूसरे गोलमेज कान्फ्रेंस में जाना कांग्रेस ने मान लिया। गोलमेज कांग्रेस में जाने तथा आन्दोलन पर बात करने गांधी शिमला आए।

इस यात्रा के दौरान महात्मा गांधी राय बहादुर मोहन लाल के घर फरग्रोव में रहे। महात्मा गांधी ने इस दौरान रिक्शा की सवारी करने से इनकार कर दिया। इससे अंग्रेजी हुकूमत घबरा गई क्योंकि उन्हें अंदेशा था कि गांधी के पैदल चलने पर शिमला में अधिकांश भारतीय उनके साथ पैदल चलेंगे। इसके लिए अंग्रेज सरकार ने गांधी तथा उनके साथ आए व्यक्तियों के लिए चार कारों को रेलवे स्टेशन से माल रोड से होकर गुजरने की अनुमति प्रदान की। महात्मा गांधी का काफिला रेलवे स्टेशन से कार्ट रोड, फरीदकोट हाउस (वर्तमान में हिमाचल उच्च न्यायालय भवन) के मार्ग से होता हुआ फरग्रोव जाने की अनुमति दी। गौरतलब है कि माल रोड के इस छोटे से मार्ग पर भी वायसराय, पंजाब के गर्वनर तथा कमाण्डर इन चीफ के वाहन को चलाने की अनुमति थी।

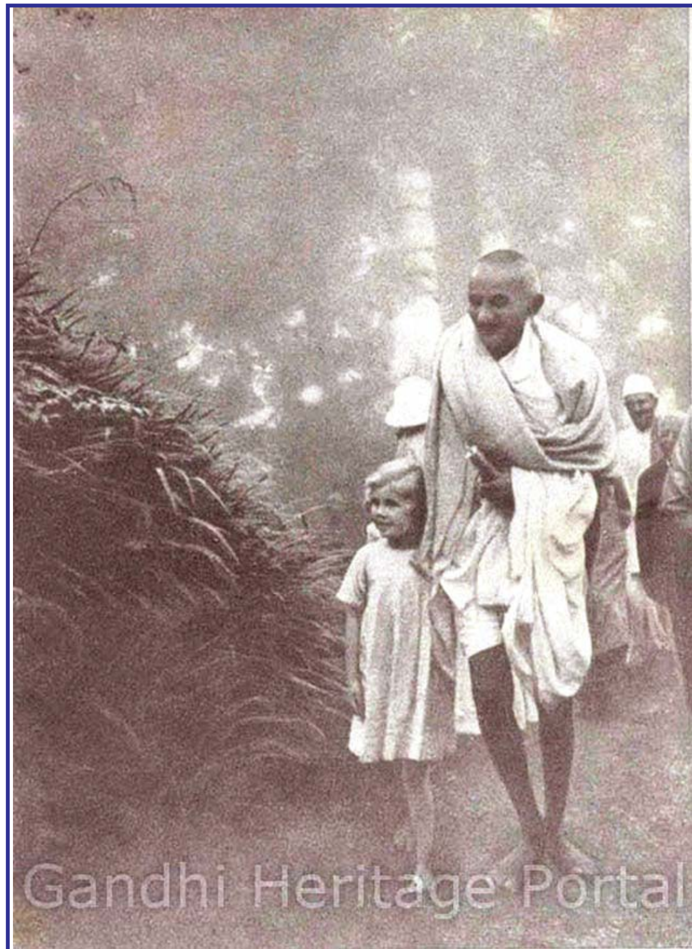
शिमला म्यूनिसिपल के कानून (By-Law XXI) (2) में पहिये वाले वाहन चाहे वे जानवर द्वारा खींचे जाए (बाद में कार) पर माल रोड़ की परिधि में वाहन चलने/ले जाने पर पूर्ण प्रतिबन्ध लागू था। शिमला के इन प्रतिबन्धित मार्गों पर चार पहिया वाहन चलाने के लिए वायसराय की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। वायसराय का सचिवालय कुछ मामलों में म्युनिसिपल कानूनों के बावजूद शिमला आने वाले प्रांतीय गवर्नरों को माल रोड़ पर वाहन ले जाने की अनुमति प्रदान करता था।

वर्ष 1893 में भोपाल की बेगम को माल रोड़ होते हुए उनके निवास स्थान यरो (YARROWS) तक वाहन में जाने की अनुमति प्रदान की गई थी। उसे मंजूरी देने का एक ही मकसद था कि यह

एक महिला शासन का एक मात्र अकेला मामला है। वायसराय के सचिव ने अपनी टिप्पणी में लिखा था कि 'वायसराय सोचते हैं कि भविष्य में अन्य मुख्यों द्वारा इस मंजूरी को आधार बनाया जाएगा।' वर्ष 1903-1904 में महाराजा नाभा को उसकी उम्र तथा बीमारी को देखते हुए वायसराय कमाण्डर इन चीफ तथा पंजाब के लैफ्टिनेंट गवर्नर से भेंट के लिए माल रोड से वाहन द्वारा गुजरने की अनुमति प्रदान की गई थी। म्युनिसिपल के रिकार्ड में और अन्य कोई वाकया दर्ज नहीं है जब किसी भारतीय को ऐसा विशेषाधिकार प्रदान किया गया हो। उस वक्त महात्मा गांधी को माल रोड पर वाहन से जाने की अनुमति देना स्थानीय नेताओं व शिमलावासियों के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

15 मई, 1931 को महिलाएं, पुरुष हजारों की संख्या में महात्मा गांधी जिस मार्ग से जाने वाले थे उनके दर्शनों के लिए हाथ में रंग-बिरंगे झण्डे लिए खड़े थे। बैंड की धुनों से महात्मा गांधी का स्वागत हुआ। 'सम्पूर्ण विश्व के महात्मा' के बैनरों से उनका स्वागत स्थान-स्थान पर हुआ।

शिमला का सरकारी अमला इस अवसर के लिए पूर्ण रूप से तैयार था। महात्मा गांधी को माल रोड पर वाहन से जाने की छूट देने के निर्णय को कुछ कम आंकने के लिए महात्मा गांधी के कारों के काफिले से पहले बिलासपुर के राजा के सुपुत्र की बारात जो जुब्बल को जा रही थी, को अनुमति दी गई। इस बारात में सैन्य टुकड़ी, घोड़े, खच्चर, डोली, रिक्शा, बैंड तथा बरछे वाले सैनिक भी थे।



महात्मा गांधी
वर्ष 1931 में एक विदेशी बाला के साथ
शिमला में

गांधी के मोटरकार काफिले के साथ अधिकारी, सहायक कर्मी तथा क्लर्क जो अपने कार्यालयों से आकर उन्हें देखने के लिए उमड़े थे। काफिले के बाद इण्डियन रेडक्रास का खच्चर काफिला चल रहा था। पायनियर अखबार ने अगले दिन सुर्खियों में प्रकाशित किया। 'राजा के लड़के की बारात के पीछे मिस्टर गांधी शिमला के माल रोड पर बढ़ते हुए।'

गांधी के शिमला आगमन की एक और बड़ी उपलब्धि थी कि उन्हें ऐतिहासिक रिज मैदान पर जलसा करने की अनुमति मिली थी। रिज पर 10 हजार की भीड़ एकत्रित हुई थी। शिमला व्यापार मण्डल की ओर से दुर्गादास, मुस्लिम समुदाय की ओर से गुलाम मोहम्मद ने, आढ़ती संघ की ओर से वार्मा ने महात्मा गांधी का स्वागत किया। इस शाम महात्मा गांधी की जनसभा में वर्षा ने भी खलल डाला।

अंग्रेजों की सरकारी प्रतिक्रिया के बावजूद अंग्रेजों ने इसे अन्यथा लिया। पायनियर में प्रकाशित हुआ कि शिमला के अंग्रेज परिवार गौरव को आघात पहुंचा। गांधी को कार में जाने की अनुमति दी गई जबकि कार्यकारी काउंसलरों तथा वरिष्ठ जनरल माल पर पैदल चलते हैं।

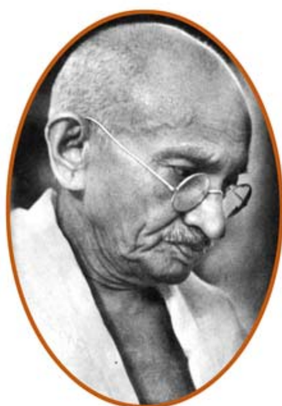
वर्ष 1931 में अनाडेल जिमखाना जहां ब्रिटिश खेल प्रतियोगिता होती थी में भी अंग्रजों द्वारा इस अनुमति की आलोचना की गई। इसके विरोध में वायसराय को टेलिग्राफ भेज कर विरोध दर्ज किया गया।

लंदन में हाऊस ऑफ कॉमन्स में इस बात के बारे में प्रश्न पूछा कि गांधी को अभूतपूर्व विशेषाधिकार क्यों दिया गया। भारत में सचिव ऑफ स्टेट ने जवाब में सच्चाई पूर्ण लिखा- 'यह अभूतपूर्व था लेकिन राजधानी में मोटरगाड़ी ले जाने की अनुमति के साथ विवाह जलसे को भी दी गई थी।'

0 0 0

शिमला ने मनाया महात्मा गांधी को गोलमेज सम्मेलन में लंदन जाने के लिए

◆ दयाशंकर शुक्ल सागर



13 मई 1931
से
17 मई 1931

शिमला प्रवास

महात्मा गोलमेज सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए तैयार हो गए थे। गांधी-इरविन समझौते की शर्तें बहुत कमजोर डोर से बंधी थी। कांग्रेस ने जिस पूर्ण स्वराज का दावा लाहौर में किया था वह पूर्ण स्वराज दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रहा था। बातचीत अगर सफल भी हो जाती तब भी एक अधूरा और टूटा-फूटा स्वराज भारत के हाथ आता। जैसा कि खुद महात्मा के अपने खास अंग्रेज दोस्त रेजीनाल्ड्स रेनॉल्ड्स ने गांधीजी द्वारा गोलमेज परिषद् में भाग लिए जाने की मंजूरी को असंगत बताते हुए महात्मा से पूछा था कि 'तब फिर पूर्ण स्वतंत्रता संबंधी लाहौर के प्रस्ताव का अर्थ ही क्या बच रहता है।' उन्होंने कहा 'शासनारूढ़ दल भारत के साथ कभी न्याय नहीं करेगा; करेगा तो उसे अपनी सत्ता से हाथ धोना पड़ेगा। ऐसा नहीं मानना चाहिए कि सत्ता का 'हृदय - परिवर्तन' हो गया है।' इसलिए गांधीजी का परिषद् में भाग लेना अपने 'जन्मसिद्ध अधिकार से समझौता' करना है। नौजवान नेता जवाहरलाल नेहरू के भी कुछ ऐसे ही विचार थे। लेकिन महात्मा के अंतरात्मा की आवाज सबसे ज्यादा शक्तिशाली थी। यह वह आवाज थी जो सिर्फ और सिर्फ महात्मा को सुनाई देती थी।

लेकिन इस पूरे ड्रामे का असल 'एंटी - क्लाइमेक्स' अभी बाकी था। वायसराय बदल गए थे। 17 अप्रैल, 1931 को लॉर्ड विलिंगडन ने नए वायसराय का पद संभाला। अगले दिन लॉर्ड इरविन की विदाई हो गई। जिस वायसराय ने क्रांतिकारी नौजवानों को फांसी पर लटकाया था उसे विदाई देने खुद महात्मा बंबई तक आए थे। नए वायसराय के आते ही गांधी-इरविन के महान समझौते की चिंदियां उड़ने लगीं। ले-देकर इस समझौते में कांग्रेस को इतनी छूट मिली थी कि 'वह शराब की दुकानों के सामने धरना देकर मद्यपान विरोधी भाषण' दे सकते थे। या 'विदेशी माल की दुकानों के सामने शांतिपूर्ण ढंग से प्रदर्शन' कर सकते थे। अब यह करना भी मुश्किल हो गया था। धरने पर बैठे कांग्रेसियों की गांधी टोपी देखकर पुलिस वाले लाठी भांजना शुरू कर देते। पूर्वी गोदावरी के वादपल्ली कस्बे में पुलिस वालों ने सिर्फ इसलिए गोली चला दी क्योंकि आम जनता मना करने के बावजूद 'एक मोटर की छत पर महात्मा की तसवीर रखकर उसकी पूजा कर रही थी।' गोली कांड में चार मरे कई घायल हुए।

लेकिन सवाल प्रतिष्ठा का था। इस समझौते को लेकर महात्मा बहुत आगे जा चुके थे। अस्थायी समझौते के टूटने का मतलब था एक बेकार की कवायद जिसकी देश को भारी कीमत चुकानी पड़ी थी। समझौता बनाए रखने की कोशिश जारी रखते हुए महात्मा ने 27 अप्रैल को भारत सरकार के गृह सचिव एच. डब्ल्यू. एमर्सन को पत्र लिखा -

'...समझौते के भंग न होने देने में मुझे आपकी सहायता की जरूरत है। मैं लॉर्ड इरविन को

वचन दे चुका हूं कि समझौता भंग न होने देने की दृष्टि से मैं ऐसा कोई भी काम, जिसे न करना मेरे लिए अशोभनीय न हो, नहीं करूंगा। लेकिन ताली दोनों हाथों से ही बजती है। मैं यह मानते हुए आश्वस्त हूं कि आप भी यदि आपसे बन पड़ा तो अपनी ओर से इस समझौते को, जिसे आपने बिलकुल ही उचित संज्ञा देते हुए, सज्जनों का करार, कहा है, भंग नहीं होने देंगे।' लेकिन हालात सुधरने का नाम नहीं ले रहे थे। समझौते के बावजूद प्रांतीय सरकारों का दमन जारी था। बारडोली में जबरन लगान वसूली की जा रही थी। महात्मा ने अचानक दूसरे गोलमेज सम्मेलन में जाने से इनकार कर दिया।

लंदन जाने को लेकर और भी कई सारे मतभेद थे। एक बड़ा मतभेद डॉ. अंसारी को लंदन ले जाने को लेकर था। डॉ. अंसारी महात्मा के प्रिय मुस्लिम नेताओं में एक थे। वह मुसलमानों के सबसे बड़े दल राष्ट्रीय मुस्लिम दल के नुमाइंदे भी थे। महात्मा ने गोलमेज सम्मेलन के प्रतिनिधि के तौर पर तीन नाम दिए थे। मदन मोहन मालवीय, सरोजनी नायडू और डॉ. अंसारी। पूर्व वायसराय लॉर्ड इरविन का वादा था कि यह तीनों लंदन जाएंगे। लेकिन नए वायसराय ने इस फेहरिस्त में से डॉ. अंसारी का नाम हटा दिया। जैसा कि पहले बताया गया कि वायसराय लॉर्ड विलिंगडन शातिर किस्म के आदमी थे। वह नहीं चाहते थे कि गोलमेज सम्मेलन में गांधीजी की पसंद का कोई मुस्लिम नेता भारत के मुसलमानों की नुमाइंदगी करे। वह यह संदेश देना चाहता था कि भारत के मुसलमान पूर्ण स्वराज के खिलाफ हैं। महात्मा इस चाल को समझते थे इसलिए उन्होंने ऐन मौके पर वायसराय को लिख दिया 'वह लंदन नहीं जाएंगे। बेहतर होगा इसकी सूचना प्रधानमंत्री को दे दी जाए।'

महात्मा के इस फैसले

गांधी का वायसराय को तार

तार कल रात मिला। अत्यन्त आभारी हूं। विपरीत सूचना न मिलने पर मेरा विचार फ्रंटियर मेल से सोमवार को शिमला रवाना होने का है। सोमवार को सुबह सूरत पहुंचूंगा। 11 जुलाई, 1931, बंबई

भेंट पत्र-पत्रिकाओं से : 12 जुलाई 1931

प्रश्न : क्या आप वायसराय से मिलने जा रहे हैं, और यदि हां, तो कब?

उत्तर : मैं आशा करता हूं, लेकिन कह नहीं सकता कि कब।

प्रश्न : वायसराय के साथ विचारार्थ महत्त्वपूर्ण प्रश्न क्या है?

उत्तर : मुझे कोई अनुमान नहीं है।

प्रश्न : दिल्ली समझौते के भंग की घटनाओं के सिलसिले में आप क्या कदम उठाने का विचार करते हैं?

उत्तर : अनुनय।

प्रश्न : क्या आपकी लन्दन यात्रा अभी भी सुलह की शर्तों के भंग की घटनाओं के सन्तोषजनक हल पर निर्भर करती है?

उत्तर : मेरी लन्दन यात्रा बहुत-सी चीजों पर निर्भर करती है।

यह पूछे जाने पर कि क्या साम्प्रदायिक प्रश्न के निपटारे के लिए कार्यसमिति द्वारा सुझाया गया तरीका मौलाना शौकत अली को पार्टी को अस्वीकार्य है, और सभी पार्टियों को स्वीकार्य कोई वैकल्पिक उपाय सामने न आने पर क्या कांग्रेस गोलमेज सम्मेलन में अपने आपको स्वीकार कराने के लिए जोर डालेगी या पंच फैसले के लिए राजी हो जायेगी, श्री गांधी ने कहा :

मैं इस समय इस बात का जवाब नहीं दे सकता।

हिंदू अंग्रेजी समाचार पत्र 13-7-1931 को प्रकाशित



वर्ष 1931 में महात्मा गांधी वायसराय से भेंट करने के उपरांत वायसरीगल लॉज के मुख्य द्वार के समीप। साथ हैं गांधी जी के सचिव महादेव देसाई व शिमला के स्थानीय नेता मेला राम सूद



गांधी और शिमला की रिक्शा

अंग्रजों के जमाने में शिमला में सम्पन्न लोगों के आवागमन के लिए हाथ से खिंचने वाले रिक्श का प्रचलन था। यह सिलसिला आजादी के बाद भी जारी रहा। अंग्रेजों द्वारा शिमला के मालरोड की परिधि में वायसराय, कमाण्डर इन चीफ तथा पंजाब के लैफ्टीनेंट गर्वनर को ही वाहन ले जाने की अनुमति थी। शिमला म्यूनिसिपल के कानून (by-law xx121 में पहिये वाले वाहन चाहे वे जानवर द्वारा खींचे जाए (बाद में कार) को चलाने पर पूर्ण प्रतिबन्ध था। शिमला के इतिहास में मिलता है कि शिमला में पहली रिक्शा सेंट मार्कस चर्च के माननीय जे.फार्डयान की थी। जबकि लूईस डेन ये दावा करते थे कि उन्होंने 1880 में जापान से लाकर शहर में रिक्शा सेवा आरम्भ की थी। आजादी के बाद भी शहर में बुढ़े तथा बीमारों को ले जाने के लिए उपयोग में लाई जाती थी। अस्सी के दशक में न्यायालय के आदेश के इसे बन्द कर दिया। मालरोड स्थित रिक्शा स्टैण्ड को गिरा दिया गया और शेष स्टैण्ड भी इतिहास बन गये। महात्मा गांधी पहली बार शिमला 1921 में आए। उस वक्त उन्होंने वायसराय से भेंट करने तथा जनसमस्याओं को सम्बोधित करने के लिए रिक्शा का प्रयोग किया। लेकिन इसके उपरान्त गांधी जी ने अपने दौरों के दौरान रिक्शा का उपयोग करना बंद कर दिया। वे कार या पैदल चल कर वायसराय, गृह सचिव तथा प्रार्थना सभाओं में पहुंचते थे। वे आदमी द्वारा आदमी को खेंचने के विरुद्ध थे तथा वे इसे अमानवीय कृत्य मानते थे। गांधीजी के शब्दों में -रिक्शे में बैठना खासतौर से जो आदमी शरीर से ठीक है उसका ऐसा करना मैं अपराध मानता हूं। वैसे तो मोटरकार भी मुझे न काफी है। मैं हमेशा अपने पैरों का घूमने-फिरने का जो साधन ईश्वर ने दिया है उसका उपयोग करना चाहता हूं। गांधी अपने प्रवास के दौरान जाखू 1931 में स्थित रायबहादुर मोहनलाल के घर फरग्रोव में ठहरे तो वे वहां से वे छः किलोमीटर पैदल चलकर माल रोड, चौड़ा मैदान होते हुए वायसरीगल लॉज में वायसराय से भेंट करने जाते थे।

से अंग्रेजी हुकूमत और कांग्रेस दोनों को झटका लगा था। गोलमेज सम्मेलन में देश के भविष्य के संविधान पर चर्चा होनी थी। पहली बार देश की जनता का प्रतिनिधित्व का दावा करने वाली कांग्रेस लंदन की हुकूमत से सीधी रू-ब-रू होती। लेकिन सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया था। पर ऐसे मामलों में महात्मा बातचीत का एक चोर दरवाजा हमेशा खुला रखते थे। हिंदुस्तानी नेताओं का गुस्सा ठंडा करने के लिए अंग्रेजों के पास खूबसूरत और ठंडी जगह थी - शिमला। महात्मा समेत बड़े कांग्रेसी नेताओं को शिमला बुलाया गया। सरकारी प्रतिनिधियों ने समझौते पर नए सिरे से बातचीत शुरू की। तीन बातें तय हुईं। एक, गोलमेज सम्मेलन में गांधीजी कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से हिस्सा लेंगे। दो, गांधी - इरविन समझौते का पालन दोनों पक्ष करेंगे। सरकार कोशिश करेगी कि प्रांतीय सरकारें समझौते का गंभीरता से पालन करें। तीन, बारडोली लगान वसूली के प्रकरण पर उच्च स्तरीय जांच चलेगी।

इस बातचीत में डॉ. अंसारी के लंदन जाने वाला सवाल हवा हो गया था। लंदन जाने वाली टीम से डॉ. अंसारी पहले ही बाहर थे। गर्मी के इन दिनों में शिमला की हवा ने अपना काम कर दिखाया था। लंदन जाने का रास्ता साफ हो गया था। हिंदुस्तानी

नेता खुश थे।

अब लंदन जाने के लिए सिर्फ जहाज पकड़ने की देरी थी। महात्मा की निजी टीम में महादेव देसाई, प्यारेलाल, देवदास गांधी का नाम था। मीरा का नाम अलग से जोड़ा गया था। महात्मा की निजी सेवा के लिए प्यारेलाल काफी थे। फिर भी महात्मा मीरा को साथ ले आए थे। सरोजनी नायडू और मदन मोहन मालवीय के नाम पर तो सरकार ने अलग से मंजूरी दी थी। महात्मा की तमाम और अंतिम समय तक की कोशिशों के बावजूद सरकार की ओर से डॉ. अंसारी के लंदन आने का न्योता नहीं मिला था।

आखिर में 29 अगस्त, 1931 को एसएस राजपूताना के उस आखिरी जहाज पर गांधीजी के साथ चढ़ने वालों में महादेव, प्यारेलाल और देवदास के साथ मीरा भी शामिल थी। यह यात्रा शनिवार को शुरू हुई थी। शनिवार के दिन को हिंदुस्तानी बहुत शुभ नहीं मानते खासतौर से समुद्री यात्राओं के लिए। बंबई के इस बंदरगाह पर उन्हें विदा करने हजारों की भीड़ एकत्र थी। एक मकान के छज्जे पर खड़े होकर महात्मा ने हिंदुस्तान की जनता को यकीन दिलाया- 'मैं कांग्रेस द्वारा दिए गए आदेश का पालन करूंगा। मैं किसी को धोखा नहीं दूंगा, न अंग्रेजों को और न अन्य किसी को, और भारत के करोड़ों लोगों को धोखा देने का तो सवाल ही नहीं उठता। यदि मैं आपको धोखा दूं तो मुझे मार डालना भी हिंसा नहीं होगी। मेरी अंग्रेजों से या मुसलमानों से या किसी से भी कोई शत्रुता नहीं है।'

महात्मा इंग्लैंड में 12 सितंबर, 1931 की सुबह दाखिल हुए तो फोकस्टोन नामक जगह पर ब्रिटिश हुक्मरान के नुमाइंदे वहां पहले से उनका इंतजार कर रहे थे। प्रधानमंत्री के दफ्तर से संदेशा आया था कि आगे लंदन तक की यात्रा महात्मा मोटर से करेंगे लेकिन अकेले। बाकी लोग ट्रेन से ही लंदन पहुंचेंगे। संदेश महात्मा को पसंद नहीं आया था लेकिन वह उनका अपना देश नहीं था जहां वह हर तरह की जिद करने के लिए आजाद हों। वे इस देश के मेहमान थे। मामला कूटनीतिक था। प्रधानमंत्री नहीं चाहते थे कि महात्मा सार्वजनिक स्वागतों की मालाएं पहने लंदन में दाखिल हों और सम्मेलन शुरू होने से पहले ही गांधीजी दबाव बनाने की स्थिति में आ जाएं। मौके की नजाकत को देखते हुए महात्मा मोटर पर बैठने को तैयार हो गए। वह ब्रिटिश सरकार के आतिथ्य का दुरुपयोग नहीं करना चाहते थे।

गोलमेज सम्मेलन का यह अधिवेशन 7 सितंबर से 1 दिसंबर, 1931 तक चलना था। इसमें कुल 112 प्रतिनिधि शामिल हुए थे। 20 ब्रिटिश सरकार के, 23 देशी राज्यों के और 69 ब्रिटिश भारत के। गांधीजी दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए थे। प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडॉनल्ड राउंड टेबिल काउंसिल के अध्यक्ष थे। 7 सितंबर से गर्म बातचीत का ऐसा दौर शुरू हुआ कि लगा कभी खत्म नहीं होगा।

लंदन यात्रा

महात्मा गांधी ने कहा कि बातचीत लाभदायक और अच्छी रही, वे शिमला में वाइसराय से अब और नहीं मिलेंगे, तथा गृह-सचिव श्री एमर्सन से कल एक बार फिर भेंट करके रविवार, 17 तारीख को निश्चित तौर पर शिमला से नैनीताल के लिए चल देंगे।

महात्मा गांधी ने इस प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार कर दिया कि क्या अब उनके लन्दन जाने की आशा और बढ़ गई है। उन्होंने यह भी कहा कि इसके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए आपको वाइसराय भवन जाना चाहिए।

सर फजल हुसैन के निवास की ओर पैदल जाते समय उनसे पूछा गया कि वे क्या स्वराज्य सरकार का मुख्य कार्यालय शिमला में रखना पसन्द करेंगे? उन्होंने उत्तर दिया : इतनी ऊंचाई से बहुत काफी नीचे उतरकर हमें मैदानी भाग में जाना होगा, क्योंकि सरकार तो जनता के बीच में और जनता के लिए ही होनी चाहिए।

अल्पसंख्यकों, देसी रजवाड़ों और अंग्रेज अफसरों में परस्पर इतनी गलतफहमियां थी कि पहले दिन से ही लगने लगा कि भारत में सिर्फ समस्याएं ही समस्याएं हैं। कोई एक-दूसरे से संतुष्ट नहीं।

सम्मेलन में भारत के भविष्य की नई रूपरेखा तय होनी थी बशर्ते सभी लोग उसके प्रारूप पर राजी हों। यह संभव नहीं था। अंग्रेज गलतफहमियां फैलाने का अपना काम कर रहे थे। वह चाहे लंदन के अंग्रेजी अखबार हों या अफसर। महात्मा के परम मित्र पूर्व वायसराय लॉर्ड इरविन ने सेंट्रल हॉल में एक भाषण में कह दिया कि वे यह जानते थे कि 'महात्मा पूर्ण स्वाधीनता पर जोर नहीं देंगे।' महात्मा से पूछा गया कि 'क्या यह सच है?' महात्मा को इसका खंडन करना पड़ा। उन्होंने कहा - 'इसके विपरीत, यदि मेरी स्मृति मुझे धोखा नहीं दे रही है तो मैंने उन्हें बता दिया था कि मैं पूर्ण स्वाधीनता पर जोर दूंगा।' उन्होंने कहा- 'पूर्ण स्वाधीनता का अर्थ मेरे लिए राष्ट्रीय सरकार है।'

सम्मेलन में कांग्रेस पूर्ण स्वराज हासिल करने आई थी। अंग्रेज बस यही चीज थी जो देना नहीं चाहते थे। सम्मेलन की बहसों में महात्मा गांधी ने साफ कहा कि 'कांग्रेस पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता चाहती है। इसके लिए जरूरी है कि देश की अपनी सेना हो और स्वदेशी सरकार का विदेशी और आर्थिक मामलों में पूरा नियंत्रण हो। ब्रिटिश हुकूमत भागीदार होकर साथ रह सकती है हुक्मरान बनकर नहीं। अंग्रेज हिंदुस्तान छोड़कर चले जाएं ऐसा कोई आग्रह नहीं। लेकिन मालिक-गुलाम का रिश्ता नहीं चलेगा।' इस पर अंग्रेज प्रतिनिधियों का कहना था कि 'आप लोग हुकूमत चलाने के काबिल नहीं हैं। आपके हाथों में 30 करोड़ की जनता

स्वच्छता व ग्रीष्म राजधानी

एक कहावत है कि पहाड़ों में बस्तियां आदमी की पीठ पर बनी हैं। इसका अभिप्राय है कि यहां के भवनों, सड़कों तथा अन्य सुविधाओं का निर्माण श्रमिकों की मेहनत तथा मशक्कत का ही प्रतिफल है। शिमला शहर का निर्माण भी पीठ पर हुआ है। शहर के पहले भवन कनेडी हाऊस (जो अब जल चुका है) से आज दिन तक बन रहे भवनों का निर्माण मेहनतकश मजदूरों द्वारा किया जा रहा है। उत्तर भारत के श्रमिकों सहित उत्तर पश्चिम फ्रंटियर प्रोविंग के पठानों, कश्मीरी कुलियों तथा पहाड़ के निवासियों ने बेगार प्रथा के तहत अपने खून पसीने से शिमला शहर को खड़ा किया। इन भव्य इमारतों को देखकर उस वक्त इन श्रमिकों की मेहनत को भुलाया नहीं जा सकता। अंग्रेजों के वक्त में अधिकांश श्रमिक कार्ट रोज (पुराना बस स्टेण्ड- छोटा शिमला मार्ग) पर लिफ्ट के नीचे रहते थे। ये अधिकांश कश्मीर व लद्दाख क्षेत्र के थे तो इस बस्ती का नाम लद्दाखी मोहल्ला पड़ा। यह उपनगर आज भी लद्दाखी मोहल्ले के नाम से जाना जाता है। इसका उल्लेख वायसराय लार्ड लैन्सडाउन ने भी किया है। उनके शब्दों में -'ये लोग भारी से भारी बोझ उठाने में दक्ष है तथा इन्हें अपनी पीठ पर भारी बोझ उठाते देखा जा सकता है, जिसे ब्रिटिश नौसैनिक भी उठा नहीं सकता।'

शिमला के आरम्भिक दिनों में अंग्रेजों के घरेलू कर्मियों में भिश्ती भी होते थे। जो शिमला शहर में स्थित झरनों, बावड़ियों से मश्क में पानी भर कर लाते थे। जिसका प्रयोग शौचालयों की सफाई के लिए किया जाता था। मैला को सिर पर उठाने की प्रथा थी।

महात्मा गांधी इन लोगों की व्यथा देखकर, सुनकर द्रवित हो गये थे। इसका उल्लेख उन्होंने 12 मई, 1946 को शिमला के समरहिल में मेनरविला में आयोजित प्रार्थना सभा में भी किया। अपने भविष्य की चिंता हम कहीं उन लोगों के प्रति अपना कर्त्तव्य न भूल जाएं जिन्हें हमने निम्नतम स्थिति में पहुंचा दिया है। इसलिए मैंने बादशाह खान (अब्दुल गफार खान) को इस स्थिति का आंकलन करने को भेजा था। उन्होंने जो रिपोर्ट पेश की उसे देखकर मेरा मन क्रोध और क्षोम से भर गया। मैं खुद प्रसन्नतापूर्वक वहां जाता। दुर्भाग्यवश अब मैं पहाड़ियों पर नहीं चढ़ सकता और इसलिए उन्हें खुद देखने के लिए उतनी दूर नहीं जा सकता।

महात्मा गांधी ने 13 मई 1946 की प्रार्थना सभा में कहा कि इन लोगों के रहने के स्थान की दरुस्ती की जाए तो बाकि सुधार हो जाएगा। शिमला में लोगों और म्युनिसिपेलटी का धर्म है कि इस गंदगी के बारे में जो हो सकता है सो जल्दी से करें। हम उतने ही शुद्ध हो सकते हैं जितने कि हमें से छोटे से छोटे शुद्ध हो।

का भविष्य सुरक्षित नहीं रह सकता।' राज चलाना अंग्रेजों को आता है। महात्मा अंग्रेजों को समझाते कि उनकी सोच का तरीका कितना गलत है। 20 अक्तूबर, 1931 को चौथम हाउस की सभा में उन्होंने ब्रिटिश प्रतिनिधियों से कहा - 'आप अपने को भारतीयों की स्थिति में रखकर सोंचे। कल्पना कीजिए कि आप सब भारत में रह रहे हैं और भारतीय लोग ग्रेट ब्रिटेन में। अब मान लीजिए ब्रिटिश द्वीप समूह में रहने वाले भारतीय आप से कहें कि 'आप लोग अपना शासन आप चलाने लायक नहीं हैं; हमें देखना होगा कि आप अपनी सेना की व्यवस्था खुद कर सकते हैं अथवा नहीं या आपके यहां से हमारे हट जाने पर चीन, तिब्बत, अफगानिस्तान या रूस से जो आक्रमणकारी आप पर टूट पड़ेंगे उनसे आप अपनी रक्षा कर सकते हैं अथवा नहीं।' इस पर आपका उत्तर यही तो होगा कि 'हम अपना फायदा-नुकसान खुद देख लेंगे या कम-से-कम वैसी कोशिश तो करेंगे।' ज्यादा-से-ज्यादा यही तो होगा कि भारतीय लोग एक राष्ट्र के रूप में दुनिया से मिट जाएंगे। महात्मा आगे बोले- 'लॉर्ड सैलिसबरी ने कहा भी था कि अंग्रेज लोग गलतियां करते हुए और उनसे सबक लेते हुए सफलता की मंजिल तक पहुंचने की कला जानते हैं। फिर अंग्रेज भारतीयों को ही गलती करने के अधिकार से वंचित क्यों रख रहे हैं?' ब्रिटिशों के सामने महात्मा अपनी बात बेहद तर्कपूर्ण ढंग से रखते। वे यहां की जनता को बताते कि ब्रिटिश राज भारत को कितना महंगा पड़ रहा है।

लंबी और थकाऊ बहसों के बावजूद गोलमेज सम्मेलन नाकाम रहा। एक दिसंबर को सम्मेलन के पूर्ण अधिवेशन में प्रधानमंत्री और सम्मेलन के अध्यक्ष मैग्मे मैकडोनाल्ड ने इस बात की घोषणा, कि वह 'इतनी लंबी और थकाऊ' बातचीत के बाद भारत को क्या देने जा रहे हैं। सम्मेलन में ब्रिटिश हुकूमत ने जो कुछ भारत को देना चाहा था उसमें कुछ नया नहीं था। पिछले साल के गोलमेज सम्मेलन के अंत में ब्रिटिश सरकार भारत को जो नया संविधान देने का विचार कर रही थी, उसकी मोटी-मोटी बातें भी यही थी। यह बात भी इस नए घोषणा पत्र में पढ़ी गई हुकूमत ने कांग्रेस को फिलहाल 'पूर्ण स्वराज' देने से साफ मना कर दिया था। ब्रिटेन के राजा की सरकार भारत के शासन का दायित्व केंद्रीय और प्रांतीय विधान-सभाओं को देने के लिए तैयार थी लेकिन साथ में इस सरकार ने संक्रांति-काल और विशेष परिस्थितियों के बहाने सत्ता पर काबिज रहने का इंतजाम भी कर लिया था। पूर्ण स्वराज को टालने के लिए वह पहले ऐसे उपाय खोजना चाहती थी जो अल्पसंख्यक समुदायों की राजनीतिक स्वतंत्रता तथा अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए जरूरी हों।'

प्रधानमंत्री मैकडोनाल्ड ने अपनी घोषणा में कहा- 'संक्रांति

- काल की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जिन वैधानिक उपायों की व्यवस्था की जाएगी, उनके संबंध में इस बात का खयाल रखना महामहिम की सरकार का बुनियादी कर्तव्य होगा कि सुरक्षित अधिकारों की रचना इस प्रकार की जाए और उनका प्रयोग इस तरह से किया जाए जिससे नए संविधान के माध्यम से अपना शासन स्वयं चलाने के लिए पूर्ण दायित्व प्राप्त करने की दिशा में भारत की प्रगति के मार्ग में कोई बाधा उपस्थित न हो।'

प्रधानमंत्री की संक्षिप्त और औपचारिक घोषणा के बाद महात्मा गांधी को धन्यवाद प्रस्ताव पेश करना था। महात्मा का धन्यवाद प्रस्ताव दिलचस्प था। उन्होंने कहा - '...इस समय उस महत्त्वपूर्ण घोषणा के संबंध में, जिसे हमने अभी सुना है, कुछ कहने की आशा हममें से किसी से नहीं की जाती - मुझसे तो और भी नहीं। अपनी सभा की कार्यवाही का शोभनीय तथा शिष्ट ढंग से संचालन करने वाला अध्यक्ष सदा धन्यवाद का पात्र होता है - चाहे उस सभा के सदस्य सभा द्वारा किए निर्णयों या खुद अध्यक्ष के निर्णयों से सहमत हों या नहीं।'

अंत में अध्यक्ष के धन्यवाद भाषण में एक चेतावनी थी। उन्होंने कहा - 'और यह याद रखिए कि हम सब एक ही मकसद को पूरा करने के लिए चुने गए लोग हैं, हम वफादारी के एक ही धागे से बंधे हुए हैं - भारत के प्रति वफादारी के धागे से आप हमारे साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर खड़े रहना और विचारों का आदान-प्रदान करते रहना न भूलें।'

अब साफ हो गया था कि हिंदुस्तानियों के लिए वफादारी का धागा तोड़ना इतना आसान नहीं है। यह धागा जो अब 35 करोड़ की जनता के लिए एक बंधन बन गया था। पूर्ण स्वराज अभी कोसों दूर था। महात्मा यह बात समझ गए थे। अब वापस लौटने की तैयारी थी - खाली हाथ।

स्थानीय संपादक, अमर उजाला पब्लिकेशन लिमिटेड,
तवी काम्पलैक्स, विक्रम चौक, जम्मू-180 001

एवालॉज व गांधी



गांधी जी ने शिमला में जुलाई, 1931 में गृह सचिव श्री एमर्सन से भेंट की। यह भेंट नमक कानून पर थी। इस भेंट के बारे में एसोसिएट प्रेस के प्रतिनिधि उन्होंने बताया कि सर जेम्स करेर के साथ मेरी बातचीत पूर्णतः सद्भावपूर्ण थी। यह बातचीत गृह-सचिव श्री एमर्सन के साथ मेरी बातचीत के प्रसंग में थी। दोनों ही बातचीतों में दिल्ली समझौते की ही चर्चा हुई। शिमला में मेरी वार्ता के तीसरे और अन्तिम दौर में कल यानि 18 जुलाई को वायसराय के साथ बातचीत होगी जिसके बाद मैं शायद आपको कुछ बता सकने की स्थिति में होऊंगा। श्री एमर्सन के घर पर हुई बातचीत की तुलना में एवालॉज में हुई बातचीत के माहौल के बारे में पूछे जाने पर महात्मा गांधी ने जवाब दिया। मौसम के परिवर्तन के साथ-साथ उसमें भी थोड़े परिवर्तन हुए। क्या आपके लन्दन जाने की स्थिति में समझौते के कार्यान्वयन की देखरेख रखने के लिए कोई समिति नियुक्त करने का प्रस्ताव है? उसकी कोई आवश्यता नहीं है। कांग्रेस की दृष्टि से कार्यसमिति तो है ही। वस्तुतः इस समझौते के बारे में मैने कार्यसमिति से हमेशा सलाह ली है। एसोसिएटेड प्रेस के प्रतिनिधि ने गांधी जी को इलाहाबाद से प्राप्त इस आशय का एक सन्देश दिखलाया जिसमें कहा गया था कि पंडित मदनमोहन मानवीय गांधी जी के साथ 'एस.एस. मुल्तान' नामक जहाज से इंग्लैण्ड जायेंगे जो कि बम्बई से 15 अगस्त को रवाना होगा और पूछा कि अभी तक श्री एमर्सन और श्री केरर के साथ हुई बातचीत के आधार पर क्या आप यह कह सकते हैं कि यह समाचार सत्य साबित होगा। महात्मा गांधी ने उत्तर दियाः

यह हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। सेना की भाषा में इसे कहूं तो शायद यों कहूंगा : स्थिति यथावत है।

14 मई 1931

ऐतिहासिक रिज मैदान पर गांधी का सार्वजनिक सभा में उद्‌बोधन

आप जानना चाहेंगे कि मैं शिमला क्यों आया हूं और सरकार के साथ मेरी क्या बात चल रही है। मैं आपको सभी बातें तो नहीं बतला सकता, पर इतना जरूर बतला सकता हूं कि मैं हार्ड इरविन और कांग्रेस के बीच हुए समझौते से सम्बन्धित अपनी और सरकार की भी शिकायतों के बारे में बातचीत करने आया हूं। बातचीत अभी चल ही रही है। मैं जोर इस बात पर देना चाहता हूं कि यदि आप कांग्रेस के स्वयंसेवक हैं और हिन्दुस्तान की सेवा करना चाहते हैं तो आपका यह कर्त्तव्य है कि भले ही सरकार पालन न करें, आप समझौते का पालन अवश्य करें।

अपना दायित्व निभा चुकने के बाद यदि यह देखा जाये कि सरकार ने अपना दायित्व नहीं निभाया तो उस स्थिति में हम अपना मन चाहा कदम उठा सकते हैं। हम जानते हैं कि जो भी समझौता हुआ है, उसके साथ कुछ शर्तें जुड़ी हुई हैं और यदि हम समझौते का उपयोग कुछ काम करने के लिए कर सकें, तो हमें अवश्य वैसा करना चाहिए।

यदि किसी समझौते के फलस्वरूप हमें सेवा करने का अवसर मिलता हो तो एक सत्याग्रह के नाते हमें उसका स्वागत करना चाहिए। इस समझौते ने आपको ऐसा ही एक अवसर दिया है।



कराची कांग्रेस ने लगभग सर्वसम्मति से उसे स्वीकार किया था। अब हमारा क्या कर्त्तव्य है, यह मैं आपको बतला ही चुका हूं। ऐसा मत सोचिए कि इस समझौते के बाद हम लड़ाई में कूदना चाहते हैं। बल्कि इसके विपरीत हमारी वो पूरी कोशिश इसी दिशा में होनी चाहिए कि हमें लड़ाई में न पड़ना पड़े और यह समझौता स्थायी बन जाये जिससे कि हम पूर्ण स्वराज्य हासिल कर सकें।

गोलमेज परिषद् में शामिल होने के लिए लन्दन जाने वाले आपके प्रतिनिधियों पर कांग्रेस ने जो शर्तें लगाई हैं, वे आपको मालूम ही हैं। लेकिन यदि इस समझौते के फलस्वरूप हम पूर्ण स्वराज्य हासिल न कर सकें तो यह हमारा दुर्भाग्य ही होगा और यदि हम गोलमेज परिषद् में अपना अभीष्ट प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपने अस्त्र से भली-भांति लैस होना चाहिए। हमारा अस्त्र यही है कि हिन्दुस्तान की सारी जनता, इस देश में जन्म लेने और इसे अपना घर

बना लेने वाले सभी लोग-हिन्दू, मुसलमान, सिख, इसाई, पारसी और अन्य सभी लोग एक होकर, एक स्वर से स्वराज्य की मांग करें। हम जब तक अपने बीच ऐसी पारस्परिक समझदारी पैदा नहीं कर लेते तब तक मेरे लन्दन जाने से कोई लाभ नहीं। इसलिए हम सभी को इस देश की सभी जातियों में एकता पैदा करने के यथा सम्भव सभी प्रयत्न करने चाहिए।

परन्तु मैं कागज़ पर लिखे समझौते की शाब्दिक एकता भर नहीं चाहता। कागज पर समझौते का मसौदा लिखकर दस्तखत-भर कर देने से एकता पैदा नहीं हो जाती। मैं जो एकता चाहता हूं वह हार्दिक एकता, दिलों की एकता है और ऐसी ही एकता के लिए मैं ईश्वर से सदा प्रार्थना करता हूं। और ऐसी एकता पैदा होने पर आपके अन्दर इतनी शक्ति पैदा हो जायेगी कि हमें सफलता मिल जायेगी।

मुझे लग रहा है कि शायद मेरी आवाज़ आप तक नहीं पहुंच रही है और आप लोग बारिश से परेशान हैं। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि वह हमें दूसरी लड़ाई में कूदने की जरूरत से बचायें और यह समझौता ही हमें अन्तिम सफलता तक पहुंचा दे।

जहां तक काम का सवाल है, कांग्रेस का प्रस्ताव आपके सामने है और खद्दर के प्रचार तथा शराब के बहिष्कार के सम्बन्ध में आपके सामने एक व्यापक कार्यक्षेत्र पड़ा हुआ है। मैं आप सबका आभारी हूं।

महात्मा गांधी 12 से 15 मई 1931 को शिमला में वायसराय से भेंट करने के उपरांत 15 मई को से रेलमार्ग से वापिस लौट गए। वे यहां से नैनीताल गए।

महात्मा गांधी की शिमला में प्रेस प्रतिनिधियों से मुलाकात

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के प्रतिनिधि से बातचीत

शिमला 18 जुलाई, 1931

वायसराय से 3 घंटे की मुलाकात के उपरान्त वायसरीगल लॉज के बाहर निकलते हुए द्वार पर महात्मा गांधी ने कहा :

तापमान जब तक नीचे नहीं आता या ऊपर नहीं जाता तब तक वह ज्यों का त्यों रहता है। मैं क्या कह सकता हूं? स्थिति बिल्कुल वैसी ही है जैसी पहले थी।?

आगे उन्होंने कहा कि अभी हमारी बातचीत समाप्त नहीं हुई है। इसलिए शायद मैं वायसराय से फिर मिलूंगा। फलस्वरूप शायद बुधवार तक मैं यहां रहूंगा। सम्भव है और आगे विचार विमर्श के लिए सरदार पटेल को शिमला बुलाया जाये।

यह पूछे जाने पर कि वायसराय से उनको किस विषय पर बातचीत हुई, गांधी जी ने कहा:

स्वाभाविक है कि समझौते पर।

अगली मुलाकात के बारे में पूछे जाने पर महात्मा जी ने कहा कि मंगलवार के पहले मुलाकात नहीं हो सकेगी, क्योंकि वायसराय बाहर रहेंगे और सोमवार को मेरा मौन दिवस होगा।

महात्मा जी से पूछा गया कि तापमान की बात करते समय जिसका विचार उनके मन में था वह रोगी कौन है?

उन्होंने कहा :

वह रोगी मैं हूं।

एसोसिएटेड प्रेस के प्रतिनिधि से

शिमला, 18 जुलाई, 1931

वायसराय के निवास स्थान से लौटने पर एसोसिएटेड प्रेस के प्रतिनिधि ने गांधी जी से स्थिति अब कैसी है? महात्मा गांधी ने उत्तर दिया :

15 तारीख को शिमला पहुंचने पर जो स्थिति थी वही स्थिति अब भी है।

प्र. : वायसराय के निवास पर हुई बातचीत में जिस भावना को आपने देखा और क्रमशः जो इमर्सन और सन जेम्स केरर के निवास स्थानों पर हुई बातचीत में जो भावना आपने देखो, उनकी तुलना आप किन शब्दों में करेंगे?

उ. : किसी प्रकार की तुलना करना उचित नहीं होगा। मैं यह कह सकता हूं कि मुझे हर जगह अधिक से अधिक सौहार्द प्राप्त हुआ। लॉर्ड विलिंगडन ने सदा की भांति बड़ी मिलनसारी और उदारता दिखाई।

प्र. : आज दिल्ली समझौते पर ही बात हुई या और भी किसी विषय पर?

उ. : आज सारी बातें समझौते पर ही हुई।

प्र. : क्या लॉर्ड विलिंगडन से दोबारा मुलाकात के अवसर पर गोलमेज सम्मेलन से सम्बन्धित प्रश्न उठाये जाने वाले हैं? कुछ हिचकिचाहट के साथ महात्मा गांधी ने जवाब दिया :

मैं समझता हूं कि उठाये जायेंगे।

प्र. : क्या सरदार वल्लभभाई पटेल के शिमला आने की कोई सम्भावना है?

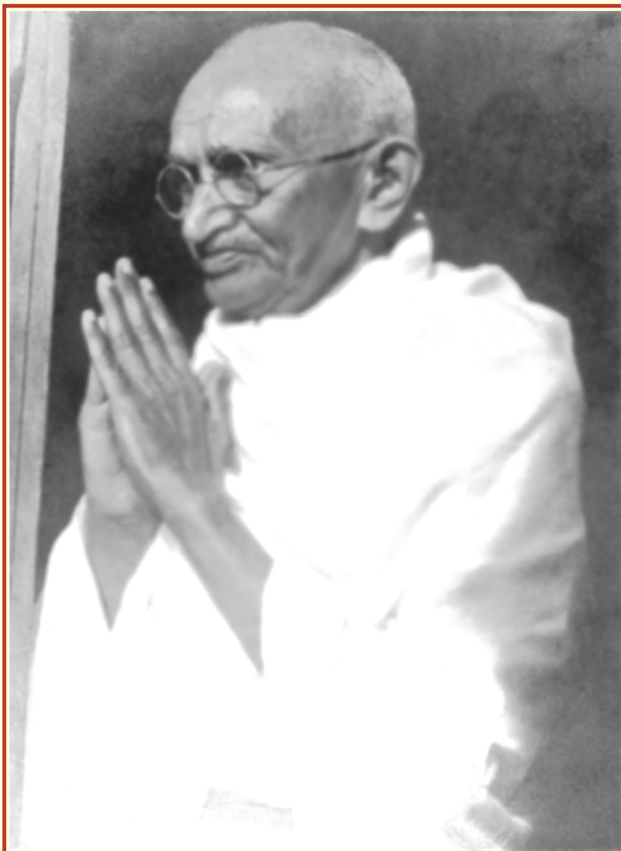
उ. : मैं आशा यही करता हूं।

गांधीजी का शिमला प्रवास

फोटोग्राफरों की तानाशाही

महात्मा गांधी वायसराय से लंदन में होने वाली गोल मेज कांफ्रेंस के बारे में बातचीत करने शिमला आए थे, 26 अगस्त, 1931 को गांधी जी ने एसोसिएटिड प्रेस को दिए अपने साक्षात्कार में कहा कि

'वायसराय के साथ उनकी वार्ता संतोषजनक रही। वार्ता के अंत में उन्होंने संवाददाता को बताया कि वे 29 अगस्त, 1931 को बम्बई से लंदन के लिए जहाज से रवाना होंगे। उन्होंने वार्ता की विस्तृत जानकारी देने से मना किया क्योंकि समझौते के टूटने की जांच की जा रही है। लेकिन यह नहीं कहा कि उनकी बातचीत संतोषजनक थी। फरग्रोव जहां गांधीजी राय बहादुर मोहन लाल के घर पर ठहरे थे, की ओर जाते वक्त सिसिल होटल के पास उन्होंने फोटोग्राफरों के समूह के सामने एक मिनट से ज्यादा रुकने को मना कर दिया और कहा कि मैं कुछ नहीं कहना चाहता तथा तुम्हारी तानाशाही ज्यादा वक्त झेल नहीं सकता।



मेरा परामर्शदाता ईश्वर

गांधी जी श्री एमर्सन के घर पर तीन घंटे की बातचीत के बाद आज तीसरे पहर जब लौटै तब मैंने उनका अभिवादन किया। गांधी जी ने कहा :

मेरा ख्याल है मैं शुक्रवार को वायसराय से भेंट करूंगा।

उन्होंने आगे कहा:

मुझे भय है कि यहां शायद मुझे रविवार तक रहना होगा।

उन्होंने कहा, मैं नहीं जानता कि पंडित जवाहरलाल और श्री पटेल शिमला आयेंगे या नहीं। मैं यह भी नहीं कह सकता कि इंग्लैंड के लिए रवाना होने से पहले कोई साम्प्रदायिक समझौता हो जायेगा या नहीं। लेकिन उन्होंने कहा:

हम कोशिश कर रहे हैं।

यह पूछे जाने पर कि क्या आप अपने साथ कोई सलाहकार लन्दन ले जा रहे हैं, उन्होंने कहा:

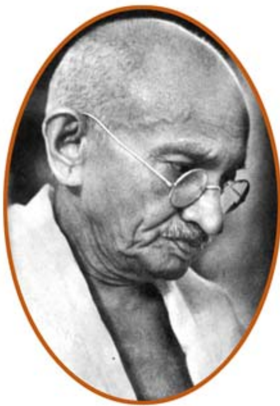
मेरा महा-परामर्शदाता ईश्वर है।

श्री एमर्सन के साथ आज तीसरे पहर उनकी बातचीत विभिन्न प्रान्तों में, विशेष रूप से गुजरात, संयुक्त प्रान्त, पंजाब और केरल में अधिकारियों द्वारा दिल्ली समझौते के कथित उल्लंघनों के ही सिलसिले में हुई।

गांधीजी ने कुछ अखबारों में प्रकाशित इस समाचार का भी जोरदार शब्दों में खण्डन किया कि वायसराय से वह जिन विषयों पर चर्चा करेंगे उनमें से एक सवाल गोलमेज सम्मेलन में और अधिक प्रतिनिधित्व का भी होगा।

महात्मा गांधी की शिमला में 15 जुलाई 1931 को अमृत बाजार पत्रिका के प्रतिनिधि से भेंट

विभीषिका से बचाने का प्रयास
'द शिमला विजिट'



2-5 सितंबर 1939
व
24-27 सितंबर 1939

शिमला प्रवास

यह वक्तव्य गांधी जी ने शिमला से प्रस्थान करने के पूर्व तीसरे पहर जारी किया था। यह 'द शिमला विजिट' में प्रकाशित हुआ। इस वक्तव्य की रिपोर्ट एसोसियेट प्रेस में 5 सितम्बर, 1939 तथा 6 सितम्बर, 1939 को हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित हुई थी।

गांधी जी ने अपने वक्तव्य में कहा कि 'जिस समय मैं दिल्ली से कालका के लिए गाड़ी पर सवार हो रहा था उस समय एक भारी भीड़ मुद्रित भाव से 'महात्मा गांधी जय' की जीर्ण शीर्ण नारे के साथ-साथ यह भी नारा लगा रही थी कि 'हम समझौता नहीं चाहते'। उस समय मेरा साप्ताहिक मौन था, इस लिए मैं केवल मुस्कुरा रहा था और जो लोग गाड़ी के पायदान पर मेरे पास खड़े हुए थे वे भी उत्तर में मुस्कुरा रहे थे, यद्यपि मुझे यह आग्रह पूर्ण सलाह भी देते जा रहे थे कि मैं वायसराय महोदय से समझौता न करूं। दिल्ली के प्रदर्शन और कांग्रेस की



शिमला जाते हुए रेलगाड़ी में

आनंद तो हमेशा पैदल चलने में

महात्मा गांधी ने 30 सितंबर 1938 को हरिजन में पृष्ठ एक पर एक लेख प्रकाशित किया जिसे उन्होंने शिमला जाते हुए रेलगाड़ी में लिखा। इस लेख पर गांधी जी से एक सज्जन ने कुछ प्रश्न किए जिसमें उसने गांधी जी से पूछा कि शिमला जाते हुए रेलगाड़ी में, 'ये शब्द 'मनुष्य यदि अपने काम पर पैदल चलकर जाए, तो उसे चीजों को देखने समझने का ज्यादा अवसर मिलता है और वह अधिक सच्चा जीवन व्यतीत करता है।' इसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं जो उन पंक्तियों को लिख सका, उसका कारण यह है कि मुझे मोटर में या रेल में अथवा बैलगाड़ी में भी बैठकर मुसाफिरी करने में कोई आनंद नहीं आता। आनंद तो हमेशा पैदल चलने में ही आता है। रेल की एक-एक पटरी उखाड़ ली जाए, और मरीजों और अपंगों के सिवा सबको अपने-अपने काम पर पैदल चलकर जाना पड़े, तो मुझे इसका जरा भी दुख नहीं होगा। मैं ऐसी सभ्यता की कल्पना कर सकता हूं, जिसमें मोटर का मालिक होना कोई श्रेय की बात नहीं मानी जाएगी, और जिसमें रेल के लिए कोई स्थान नहीं होगा। आज लोगों में नित नई वस्तु प्रापत करने की जो ललक दिखाई देती है, आकाश में विचरण करने और अपनी आवश्यकताओं को निरंतर बढ़ाते जाने की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है, उसके प्रति मेरे मन में कोई मोह नहीं है। ये सब बातें हमारी अंतरात्मा का हनन करती हैं। मनुष्य की बुद्धि आज जिन चकरा देने वाली ऊंचाइयों को छूने का प्रयास कर रही है, उससे हम अपने सिरजनहार से दूर होते जा रहे हैं, उस सिरजनहार से जो हमारे उतना ही करीब है जितना कि नख उंगली के करीब होता है। इसलिए, जब मैं घंटे में चालीस मील की रफ्तार से सफर करता हूं, तब भी मुझे निरंतर यह भान रहता है कि यह एक ऐसी बुराई है जो आवश्यक हो गई और मेरा सर्वोत्तम काम तो 700 आदमियों की बस्ती वाले छोटे-से गांव में और उसके आस-पास के गांवों में है, जहां मैं वहां से पैदल चलकर जा सकता हूं। लेकिन अत्यंत व्यावहारिक व्यक्ति होने के नाते केवल यह बताने के लिए कि मेरे आचरण में मूर्खता की हद तक संगति है, मैं रेल या मोटर की मुसाफिरी से नहीं बच सकता। पाठक जान लें कि 1933-34 में ठक्कर बापा द्वारा आयोजित तूफानी हरिजन-यात्रा (7 नवंबर, 1933 से 2 अगस्त, 1934) के दौरान मैंने उनसे धीरे से कहा था कि मैं तो यह सारी यात्रा पैदल ही करना चाहूंगा, पर उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी। कई जगह हमारे विरोध में हिंसात्मक प्रदर्शन हुए। दो या कई बार हम गंभीर रूप से घायल होते-होते बचे। यहां तक कि उनमें से किसी अवसर पर हमारी मृत्यु भी हो सकती थी। जब हम लोग पुरी (7 मई, 1934 को; देखें खंड 57) पहुंचे, तो वहां हमें खून-खराबी होने की आशंका दिखाई दी। इस पर मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया और बाकी की यात्रा पैदल ही करने का आग्रह रखा। ठक्कर बापा तुरंत मान गए(गांधी जी ने अपनी पद-यात्रा 9 मई, 1934 से शुरू की थी)। प्रदर्शनकारी, जो रेल और मोटर की मुसाफिरी करके प्रदर्शन करने के लिए तैयार थे, पैदल चलने वाले यात्रियों का पीछा न कर सके। वे पैदल यात्री रोज सुबह-शाह दो पड़ावों में सिर्फ आठ-दस मील का रास्ता ही तय कर पाते थे। हमारी यात्रा का यह सबसे अधिक प्रभावकारी भाग था। इसके परिणामस्वरूप जो जागृति हुई, वह ठोस थी। गांधी ने जीवन काल में मोटर गाड़ी, रेल, समुद्री जहाज की यात्रा की लेकिन उन्होंने कभी हवाई यात्रा नहीं की।

चेतावनी के अतिरिक्त वायसराय महोदय से भेंट के दौरान क्या बातचीत हुई, यह बताना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

मैं यह बात भली भांति जानता था कि मुझे अपने सिवा किसी और व्यक्ति की ओर से बोलने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त, मैं यह बात अच्छी तरह से जानता था कि अदम्य और पूर्णरूपेण अहिंसा का समर्थन होने के नाते राष्ट्रीय मानस का प्रतिनिधित्व करने का मुझे अधिकार नहीं है। और यदि मैंने ऐसा करने की कोशिश की तो मेरी दुर्गती ही होती। वायसराय महोदय से भी मैंने यही कहा। ऐसी स्थिति में मुझ से समझौते या समझौते की बातचीत का कोई सवाल ही नहीं उठता और मैंने देखा कि उन्होंने भी मुझे समझौता-वार्ता करने के विचार से नहीं बुलाया है। मैं वायसराय महोदय के स्थान से खाली हाथ लौटा हूं। मुझ से स्पष्ट या गुप्त कोई समझौता नहीं हुआ।

गांधी जी ने विश्व युद्ध को रोकने के लिए एवटावाद से 23 जुलाई, 1939 को हिटलर को भी पत्र लिखा था।

गौरतलब है कि महात्मा गांधी को तत्कालीन वायसराय लिनलिथगो ने पत्र लिखकर शिमला आने का प्रस्ताव दिया था जिसपर महात्मा गांधी ने 2 सितंबर, 1939 को वायसराय को पत्र लिखकर सूचित किया कि जो भी पहली गाड़ी मिलेगी, मैं उससे रवाना हूंगा और 4 सितंबर से पूर्व शिमला पहुंच जाऊंगा।

इससे पूर्व, 29 अगस्त, 1939 को गांधी जी ने निमंत्रण के लिए पत्र लिखने का आभार व्यक्त किया था ताकि वे उनसे भेंट कर द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से भारत को बचाने का प्रयास कर सकें।

शिमला में समाचार पत्रों को पांच सितम्बर, 1939 को दिया गया महात्मा का वक्तव्य

धामी गोली कांड

साम्राज्यवाद व सामंतशाही के खिलाफ जन आंदोलन

◆ एस. आर. हरनोट

हिमाचल प्रदेश का एक क्रान्तिकारी इतिहास भी रहा है यहां के भोले-भाले लोग समय-समय पर इस पहाड़ी प्रदेश में पनपते रहे साम्राज्यवाद और सामंतशाही के खिलाफ एक जुट होकर लड़ते रहे हैं। वह चाहे इस प्रदेश पर गोरखों का आधिपत्य हो, या रजवाड़ाशाही और अंग्रेजों का क्रूर एवं अन्यायप्रिय शासन रहा हो, लोगों ने विभिन्न संगठनों और आंदोलनों के माध्यम् से उनका डट कर मुकाबला किया था। यही कारण था कि हिमाचल की एक छोटी सी रियासत 'धामी' के शासकों की निरंकुशता और अत्याचारों के खिलाफ जब आमजन ने आवाज उठाई तो उन्हें अपने सीने पर गोलियां और लाठियां तक खानी पड़ी, बावजूद इसके उनका आंदोलन अत्यधिक मुखर और सुगठित होकर उभरा जिसकी ताकत के आगे न केवल धामी रियासत को बल्कि हिमाचल क्षेत्र की समस्त रियासतों को अपने लम्बे समय से चले आ रहे शासन की कुर्बानी हिमाचल प्रदेश के राज्य-गठन के रूप में देनी पड़ी थी।

हलोग-धामी

हलोग-धामी एक प्राचीन गांव, जो धामी रियासत की लगभग 750 वर्षों तक राजधानी रहा, आज उप तहसील धामी और जिला शिमला का सुन्दर और विकसित गांव है। समुद्र तल से 1520 मीटर की ऊंचाई पर बसा यह गांव शिमला से 26 किलोमीटर दूर ऐसा गांव है जहां ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत पलती रही धामी के राजा की सामंतशाही सोच, ग़ैर-इनसाफी, क्रूरता और आमजन के साथ किए गए अत्याचारों की लम्बी फेहरिस्त आज भी राजा के जीण-शीर्ण महलों के बाहर-भीतर टहला करती हैं। हालांकि महल परिसर में लोक देवता कुरगण और नृसिंह के मंदिरों के अवस्थित होने के कारण इस स्थान से अभी भी लोगों का जुड़ाव बना हुआ है।

हलोग को ज्यादातर लोग धामी के नाम से ही जानते रहे हैं। पहले धामी रियासत थी, बाद में एक विशाल परगना और अब उप तहसील बन गई है। हलोग के साथ दक्षिण की ओर कनोड़ी और उसके बाद खेल का चौंरा(गैंचड़ी)- ये तीनों गांव मिलकर हलोग-धामी जनपद का निर्माण करते हैं जो एक लम्बी पहाड़ी की पीठ पर बसते हुए पूर्व-दक्षिण की ढलानों में सीढ़ीनुमा खेतों और घासणियों के मध्य काफी नीचे घाटियों तक चले गए हैं। जहां रियासती काल में कभी लोगों को पीने का पानी और स्वास्थ्य सुविधा के साथ अपनी मांग रखने तक की आज़ादी नसीब न थी, आज इसने एक उन्नत और समृद्ध पहाड़ी कस्बे का रूप ले लिया है जहां दिन भर अनगिनत बसें यहां आती-जाती हैं। बेहतर स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य जन साधारण की सुविधाएं उपलब्ध हैं।

खेल का चौंरा स्थान पर 'राजकीय धामी शहीद स्मारक वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला' है जिसका नाम उन शहीदों की स्मृति में रखा गया है जो धामी रियासत के राजा की सामंती सोच और नृशंसता की वजह से 'धामी गोली कांड' में 16 जुलाई, 1939 को मारे गए थे। इस जन आंदोलन और गोलीकांड की गूंज न केवल शिमला तक सीमित रही थी बल्कि उसने हिमाचल की समस्त पहाड़ी रियासतों सहित दिल्ली की ब्रिटिश सरकार, महात्मा गांधी और पंडित जवाहर लाल नेहरू तक को स्तब्ध कर दिया था। इस जन आंदोलन और गोलीकांड ने पहाड़ी रियासतों के ध्वस्त होने का एक ऐसा मजबूत आधार बनाया कि भारत के आज़ाद होते ही हिमाचल की सभी रियासतों का हिमाचल प्रदेश में विलय हो गया और लोगों ने रियासती राजाओं और अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा पाकर चैन की सांस ली।

हलोग-धामी गांव तीन प्रमुख ऐतिहासिक कारणों से महत्वपूर्ण माना जाता है। पहला-यह गांव प्राचीन रियासत 'धामी' की वर्षों तक राजधानी रहा है, दूसरा-स्वतन्त्रता संग्राम में अंग्रेजों और राजाओं के अत्याचारों के विरूद्ध हिमाचल में जो विद्रोह और जन आंदोलन हुए, उनमें यह पहली रियासत थी जहां प्रजामण्डल आंदोलन के समय आमजन पर राजा की ओर से गोलियां चलाई गई जिसमें कई लोग हताहत और घायल हुए और जिसकी आवाज जब महात्मा गांधी और पंडित जवाहर लाल नेहरू तक पहुंची तो उन्होंने न केवल इस घटना की कड़े शब्दों में भर्त्सना की बल्कि जांच कमीशन भी बिठाया। इस गांव की तीसरी विशेषता और लोकप्रियता यहां प्रति वर्ष कार्तिक महीने में दीपावली के दूसरे दिन ढाई सौ सालों से भी अधिक वर्षों से मनाया जाने वाला 'पत्थर का खेल' उत्सव है जिसमें दो टोलियां एक दूसरे पर पत्थर बरसाती है।

इस रियासत के इतिहास पर यदि नजर डालें तो हिमाचल

प्रदेश में रियासतों के विलय तक इस पर 64 राजाओं ने शासन किया है। यह माना जाता है कि इसके शासक पृथ्वीराज चौहान के वंशज थे जिनका शासन समय 1168-1192 ई. रहा है। उन्हीं के समकालीन शाहबुद्दीन मोहम्मद गौरी(1173-1200 ई.) का उस दौरान भारत के पश्चिम उत्तर के सीमांत क्षेत्र पर राज था। मोहम्मद गौरी ने तराईन के दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज चौहान को जब 1192 ई. में पराजित किया और वे इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए तो उनके कुछ पूर्वजों ने दिल्ली से भाग कर पहले अम्बाला के रायपुर में शरण ली और उसके बाद धामी जनपद के हलोग क्षेत्र में चले आए। उस दौरान शिमला की पहाड़ियों पर छोटे-छोटे ठाकुरों के राज्य और मावी शासकों का आधिपत्य था। उन्होंने धामी क्षेत्र के इन मावियों और ठाकुरों को परास्त कर हलोग में अपना पहला निवास स्थापित किया और धीरे-धीरे सम्पूर्ण धामी जनपद के गावों पर शासन कर लिया।

क्योंकि हलोग गांव सुरक्षा और सामरिक दृष्टि की वजह से अति उपयुक्त ऊंचाई पर था, इसलिए उन्होंने इसे अपनी राजधानी घोषित किया और महलात बनाए। सन् 1805 के दौरान धामी, कहलूर-बिलासपुर जैसी विशाल राज्य की करद-ठकुराई थी लेकिन गोरखों ने जब 1810-1811ई. में शिमला की कई रियासतों पर अपना अधिकार जमाया तो धामी रियासत को भी अपने अधीन कर लिया। उन्होंने हलोग गांव की एक पहाड़ी पर अपना किला भी निर्मित कर लिया था और वे धामी के राजा से कर वसूलते और लोगों के घरों में लूटपात करते थे।

लेकिन अंग्रेजों ने पहले से ही गोरखों को निशाना बनाना शुरू कर दिया था और 1815 ई. के दौरान उन्होंने पहाड़ी रियासतों के राजाओं और लोगों के साथ मिलकर गोरखों को बुरी तरह पराजित ही नहीं किया बल्कि उन्हें हिमाचल की धरती छोड़ने पर भी मजबूर कर दिया। गोरखों के बाद अब अंग्रेजों का इन पहाड़ी रियासतों पर एक तरह से अधिकार हो गया और वे राजाओं से अपने पक्ष में जो चाहते मनवा लिया करते। कोई बेगारी अर्थात बिना मजदूरी के दिहाड़ीदार उपलब्ध करवाता तो कोई अंग्रेजों को भारी कर चुकाया करता। दोनों तरफ से आमजन ही पिसता चला जा रहा था। एक तरफ राजाओं की गुलामी थी तो दूसरी तरफ अंग्रेजों का शासन और तरह-तरह की बेरुखियां थीं।

धामी रियासत का 62वां राजा गोवर्धन सिंह था जिसका शासन हलोग-धामी पर 1813-1867 तक रहा। वह जब गद्दी पर बैठा तो उसकी उम्र 12 वर्ष की थी परन्तु अंग्रेजों का उसे सम्पूर्ण समर्थन उपलब्ध था। राजा अपना शासन अंग्रेजों की सुविधा और रुचि के मुताबिक चलाता रहा जिसके एवज में अंग्रेजों ने धामी रियासत का राजकर आधा कर दिया।

इस राजा के उपरान्त राणा हीरा सिंह ने 1894 ई. से 1920 ई. तक राज किया और यह पहली बार था जब धामी का भूमि बन्दोबस्त हुआ। यह एक कुशल प्रशासक था और अंग्रेजों

'जाओ! पहाड़ों में शिक्षा का प्रकाश फैलाओ और बेगार प्रथा मिटाओ'

धामी गोली कांड की खबर जंगल की आग की तरह प्रदेश की अन्य रियासतों में फैल गई। दूसरी ओर धामी प्रजामंडल के सदस्य सर्वश्री सीता राम शर्मा, काहन सिंह सौहटा और पं. भास्करानंद राजकुमारी अमृत कौर की अध्यक्षता में 26 जुलाई, 1939 को महात्मा गांधी से मिलने दिल्ली रवाना हुए ताकि देश के नेताओं को इसकी जानकारी दी जा सके। 29 जुलाई को डेढ़ बजे दिल्ली की हरिजन बस्ती जहां महात्मा गांधी ठहरे हुए थे, मिलने का समय तय हुआ। प्रतिनिधिमंडल नियत समय से 15 मिनट पूर्व गांधी जी के पास पहुंच गया। उस समय गांधी जी पत्र लिखवा रहे थे। गांधी जी के सहायक प्यारे लाल ने प्रतिनिधियों से गांधी जी से मिलने का समय पूछा तथा वहां बरामदे में रुकने को कहा। गांधी जी डेढ़ बजे से पांच मिनट पूर्व अपने स्थान से उठे और कमरे के बाहर पड़ी बाल्टी व झाड़ू लेकर कुटिया के दूसरी ओर पाखाना साफ करने चले गए। ठीक डेढ़ घंटे बापू ने आकर सभी से धामी गोली कांड का ब्योरा ध्यान से सुना और फिर उन्हें एक पत्र जवाहर लाल नेहरू के लिए लिख कर दिया जो उस समय इलाहबाद में थे। यह पत्र भागमल सौहटा व पं. भास्करानंद इलाहबाद लेकर गए तथा बाकी लोग शिमला वापिस आ गए। गांधी जी ने इस पत्र के अलावा अखबारों में भी वक्तव्य प्रकाशित करवाए तथा हरिजन पत्र में भी विस्तार से इस पहाड़ी क्षेत्र में भड़के आंदोलन की जानकारी प्रकाशित की। गांधी जी इस गोली कांड से इतने आहत थे कि उन्होंने बंबई जा कर भी समाचार पत्रों में लेख लिखे तथा नेहरू जी को स्मरण पत्र लिखे। महात्मा गांधी ने प्रतिनिधिमंडल के सदस्यों को पूर्ण सहयोग का आश्वासन ही नहीं दिया बल्कि उन्हें आदेश भी दिया कि वे पहाड़ों में वापिस जाकर शिक्षा का प्रकाश फैलाएं तथा बेगार प्रथा को समाप्त करने के संघर्ष को आगे बढ़ाएं। गांधी जी को तब भी अपने सूत्रों से मालूम था कि पहाड़ों की भोली-भाली जनता अशिक्षा के अंधकार में तथा बेगार प्रथा के नीचे दबी पड़ी है। गांधी जी का वर्ष 1939 का यह कथन आज भी प्रासंगिक है कि बिना शिक्षा के समाज तरक्की नहीं कर सकता। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन को तो आगे बढ़ाने की बात कही परंतु सबसे महत्त्वपूर्ण उन्होंने शिक्षा को बढ़ाने व बेगार प्रथा को समाप्त करने के संकल्प को दोहराया। यह सच्चे अर्थों में महात्मा गांधी की वाणी थी।

स्व. श्री सीता राम, स्वतंत्रता सेनानी एवं पूर्व विधायक द्वारा हिमप्रस्थ, अक्तूबर 2000 में प्रकाशित लेख से साभार)

का एक विश्वसनीय राजा जिसके लिए उसे अंग्रेजों ने 1913 ई. में सी.आई.ई. की उपाधि से अलंकृत किया था। 1920 ई. में राणा दलीप सिंह रियासत के राजा बने जिसने पूर्ण रूप से अपनी रियासत में नशाबन्दी लागू कर दी जिसका उदाहरण अन्यत्र किसी रियासत या ठकुराई में नहीं मिलता।

हलोग-धामी क्योंकि शिमला से नजदीक थी इसलिए लोग शिमला स्थित सरकारी कार्यालयों में नौकरी करते थे और गुपचुप तरीके से अंग्रेजों के खिलाफ चलाई जाने वाली राजनैतिक गतिविधियों में बढ़चढ़ कर भाग भी लिया करते। राजा दिलीप वास्तव में अंग्रेजों का पूर्णरूप से समर्थक था इसलिए उसमें आमजन के शोषण के वे सारे गुण मौजूद थे जो अंग्रेजी शासकों में थे। उस दौरान लोगों से बेगार ली जाती, मालगुजारी की ज्यादतियां होती, लोगों की समस्याओं को अनसुना किया जाता और जो मुखर होता उसे तरह-तरह की यातनाएं दी जातीं।

गांवों से जो लोग शिमला या अन्य स्थानों पर नौकरी करते या दिहाड़ी कमाते उनमें राजाओं के अत्याचारों के खिलाफ मन ही मन विद्रोह की चिंगारियां उत्पन्न होने लगी थीं।

लोगों का विद्रोह और
हलोग-धामी गोलीकांड

पहाड़ी रियासतों के राजाओं के अत्याचार और ब्रिटिश सरकार के शोषण ने 1857 के विद्रोह को कुचलने के पश्चात् हालांकि आमजन हताश तो था लेकिन उन्होंने अपनी उम्मीद नहीं खोई थीं। कई रियासतों में वहां के स्वतन्त्रता सैनानियों ने अपने बूते देश-प्रेम की सोच के लोगों को साथ लेकर कड़ी आपत्तियां दर्ज करवाईं और खुलेआम विद्रोह किया लेकिन ब्रिटिश सरकार के अधिकारी उनकी आवाजों को कुचलने और बंद करने में पहाड़ के कई अंग्रेज-भक्त राजाओं के साथ कामयाब होते चले गए। बावजूद इसके भीतर ही भीतर जहां ब्रिटिश हुकूमत चिंतित थी वहीं विद्रोह की चिंगारियां और भी आम लोगों के मन में भड़कती रही। उनके लीडर गुपचुप इस काम को अंजाम देते चले गए।

हलोग-धामी रियासत के राणा हीरा सिंह की मृत्यु के बाद दलीप सिंह बाल्य अवस्था में थे इसलिए सन् 1920 ई. में धामी रियासत के प्रशासन के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए अंग्रेजों ने एक कांउसिल स्थापित की और जब सन् 1927 में दलीप सिंह बालिग हुए तो उसे इस काउंसिल का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया। अंग्रेजों के प्रति पूर्ण समर्पित होने के कारण दिलीप सिंह को सन् 1930 में राणा की जगह राजा की उपाधि से नवाजा गया जिससे रियासत के पूर्ण अधिकार उसे प्राप्त हो गए जिसके बाद उसकी जनता के प्रति क्रूरता और निरंकुशता असमान को छूने लगी।

धामी रियासत और इसके घने जंगल शिमला में रह रहे ब्रिटिश शासकों और अधिकारियों के लिए ऐशपसंदी के बेहतरीन केन्द्र थे। शिमला से नजदीक होने के कारण वे अक्सर शिकार करने यहां जाया करते थे। धामी के राजा ने अपनी रियासत के इन जंगलों में शिकारगाहें बनाई हुई थी जहां शिमला से वायसराय, गवर्नर, डिप्टी कमीशनर, पोलिटिकल एजैण्ट और दूसरे उच्चाधिकारियों का प्रायः आना जाना रहता था। दलीप सिंह को ब्रिटिश प्रशासन का पूरा समर्थन हासिल था इसलिए उसने अपनी रियासत के लोगों पर करों का भारी बोझ डाल दिया था। वर्ष में प्रत्येक घर से छः महीने तक की बेगार ली जाती थी। सुविधाओं के नाम पर न कोई स्कूल था, न अस्पताल और न ही कोई सुनवाई होती थी। किसी की भी राजा के खिलाफ या अपनी मांगों को कहने की हिम्मत नहीं होती थी, जो कोई करता उसकी आवाज़ कुचल दी जाती थी।

इसी दौरान राजा दिलीप सिंह ने रियासत की जनता को धामी से घणाहट्टी तक की 10 मील अर्थात 16 किलोमीटर सड़क निर्माण के आदेश दिए और जबरन बेगार लेनी आरम्भ कर दी। लोगों के पास राजा के आदेश मानने के सिवा कोई विकल्प शेष नहीं था। इसमें शिमला ब्रिटिश प्रशासन भी शामिल था क्योंकि उनके शिकार करने के लिए आने-जाने में आसानी हो जाती। लोग इस बेगार व बिना वेतन काम करने से तंग तो थे लेकिन यही सड़क उनके लिए वरदान भी सिद्ध हुई क्योंकि उन्हें आपस में राजा की ज्यादतियों के खिलाफ विचार-विमर्श का अवसर मिलता गया।

भारत के लोगों के लिए सुखद यह था कि भारतीय राजनीतिक रंगमंच पर महात्मा गांधी का उदय हो चुका था जिससे आमजन की नजरें उन पर टिक गई थी। हिमाचल की रियासतें भी इससे अछूती नहीं रही क्योंकि कुछ ऐसे राजा भी थे जो स्वयं ब्रिटिश प्रशासन से तंग थे जो गुपचुप रूप से जनता के लीडरों से सम्पर्क साध कर अंग्रेजों को बाहर खदेड़ने के लिए अभियान चला रहे थे। परन्तु इनकी संख्या बहुत कम थी।

अब एक सुनियोजित और निर्धारित नीति को लेकर अखिल भारतीय कांग्रेस ने स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व स्वयं संभाल लिया और एक प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्र के निर्माण हेतु पूरे भारत में अखिल भारतीय जन सभाओं का आयोजन करके आजादी के लिए एक अहिंसात्मक युद्ध छेड़ दिया गया था जिससे हिमाचल की पहाड़ी रियासतें भी अछूती न रही। स्वतन्त्रता और विशेषकर पहाड़ी रियासतों में हो रहे शोषण के विरुद्ध पूर्व से सक्रिय लोगों ने हिमाचल में प्रजामंडल नाम की एक संस्था का गठन किया और सन् 1935 और 1936 के मध्य में बिलासपुर, मण्डी, सिरमौर, सुकेत, चम्बा, रामपुर तथा कई दूसरी रियासतों में ज़ोरदार अभियान शुरू कर दिए।

हलोग-धामी के राजा का व्यवहार आमजन के प्रति अत्यन्त अन्यायप्रिय और कठोर होता जा रहा था। जनता बहुत परेशान थी। उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। इसलिए अपनी समस्याओं

को हल करने और अपने अधिकारों को प्राप्त करने की दृष्टि से वर्ष 1937 के मध्य हलोग गांव के लोगों ने पंडित सीताराम और बाबू नारायण दास के नेतृत्व में 'धामी प्रेम प्रचारिणी सभा' का गठन किया। इस सभा की बैठकें प्रायः सड़क मार्ग के निर्माण के वक्त खुले स्थानों पर हुआ करती थी। इनमें कुछ लोग राजा के भक्त थे जिन्होंने इस सभा की बैठकों की सूचना राजा को दे दी। राजा के कर्मचारी चौकस हो गए और उन्होंने इस सभा को तोड़ने का भरसक प्रयास भी किया। कुछ सदस्यों पर झूठे केस दर्ज हुए और कुछेक को डराया धमकाया जाने लगा। इस तरह 'धामी प्रेम प्रचारिणी सभा' के प्रतिनिधियों को राजा के घोर विरोध और अत्याचारों का सामना करना पड़ा।

फरवरी 1938 ई. में कांग्रेस ने अपने वार्षिक सम्मेलन में पहाड़ी रियासतों में औपचारिक रूप से प्रजामंडल स्थापित करने और उसके माध्यम् से जन आंदोलन चलाने का प्रस्ताव पारित किया। इसे जून 1938 में अखिल भारतीय रियासती प्रजा परिषद के लुधियाना अधिवेशन में पेश किया जिसे पंडित जवाहर लाल नेहरू ने स्वीकार कर लिया और समस्त रियासतों में प्रजामंडल गठित करने के सुझाव के साथ संयुक्त संगठन निर्माण पर जोर दिया। इसी से पहाड़ी रियासतों में प्रजामंडल की स्थापना शुरू हो गई। जहां पहले से प्रजामंडल स्थापित थे उन्हें सुगठित कर लिया गया। लोगों ने धामी प्रेम प्रचारिणी सभा का नाम बदल कर 'धामी रियासत प्रजामण्डल' रख दिया। उसके बाद सभी प्रजामंडलों ने मिलकर एक नई संस्था को जन्म दिया जिसका नाम था 'शिमला पर्वतीय राज्य हिमालय रियासती प्रजामण्डल'। इस तरह धामी की सभा को 13 जुलाई, 1939 को इसमें मिला दिया गया। प्रजामंडल की इस अभूतपूर्व सफलता ने जहां एक ओर ब्रिटिश प्रशासन को विचलित कर दिया वहीं अपने घोर समर्थक रियासतों के राजाओं को इस संस्था और जनआंदोलनों को सख्ती से कुचलने के आदेश दे दिए।

जिस दिन यह विलय हुआ उस दिन धामी रियासत के लगभग साढ़े छः सौ स्वयंसेवकों ने अपने नेता ठाकुर भागमल सौटा की अध्यक्षता में शिमला में बैठक का आयोजन किया जिसमें सर्वसम्मति से एक मांग पत्र तैयार किया गया जिसकी प्रति धामी के राजा को एक विश्वसनीय स्वयंसेवक के माध्यम से दे दी गई। इसमें जो मांगे प्रमुखता से उठाई गई थी उनमें मुख्य थीं।

इन मांगों में धामी रियासत के प्रजामण्डल को मान्यता, बेगार प्रथा को समाप्त करना, समस्त नागरिक अधिकारों की बहाली, भूमि लगान में पच्चास प्रतिशत की कमी करना, आमजन पर लगे अनावश्यक प्रतिबन्धों की समाप्ति, प्रेम प्रचारिणी सभा हलोग-धामी के स्वयंसेवकों की जब्त सम्पत्ति की वापसी, धामी में एक प्रतिनिधि जिम्मेदार सरकार का बनाया जाना और उसमें जनता के प्रतिनिधियों की प्रशासकीय कार्यों में नियुक्ति।

धामी गोली कांड व महात्मा गांधी

वर्ष 1939 में हिमाचल में रियासतों के खिलाफ जन आन्दोलन उग्र हो गये थे। प्रजामण्डल ने जन अधिकारों की बहाली के लिए आन्दोलन छेड़े हुए थे। परिणामस्वरूप 16 जुलाई, 1939 को हिमालय रियासतों प्रजामण्डल, शिमला तथा धामी प्रजामण्डल के सदसयों का एक शिष्टमण्डल भागमल सौहटा के नेतृत्व में राणा से मिलने राजधानी हलोग गया। जब शिष्टमण्डल घणाहट्टी पहुंचा तो रियासत की पुलिस ने भागमल सौहटा को हिरासत में ले लिया। लेकिन शिष्टमण्डल के साथ लोगों का हुजूम जुड़ता गया और वे आगे बढ़ते गये। रियासत धामी की राजधानी हलोग पहुंचने तक लगभग 1000-1500 लोग जुलूस में शामिल होगा। जब उत्तेजित जुलूस आगे बढ़ने लगा तो राणा के वफादार सेवकों व पुलिस ने शांति पूर्ण जुलूस पर पत्थर बरसाए तथा गोलियां चलानी शुरू कर दी। निहत्थे लोगों के शांतिपूर्ण जुलूस पर इस आक्रमण में गांव मन्देआ के दुर्गादास और गांव टंगीश के उमादत्त घटनास्थल पर गोली लगने से शहीद हो गए। इस गोली काण्ड में 80-90 लोग घायल हुए।

लाहौर, दिल्ली, इलाहाबाद और बम्बई से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों में धामी गोली काण्ड की चर्चा छपी तथा ब्रिटिश सरकार व रियासती प्रशासन की घोर निंदा हुई। धामी गोलीकाण्ड के बारे में महात्मा गांधी तथा जवाहर लाल नेहरू के वक्तव्य समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए। इस प्रकार धामी गोलीकाण्ड का राष्ट्रव्यापी प्रचार हुआ और सभी देशी रियासतों में इस काण्ड से लोगों में रियासतों के खिलाफ एक जन आन्दोलन खड़ा होने का प्रयास हुआ।

इसके साथ धामी के राजा से निवेदन किया गया कि वह धामी प्रजामण्डल के प्रतिनिधियों से मिलकर बातचीत करने के लिए कोई तिथि निर्धारित करें जिसमें उपर्युक्त मांगों पर विचार-विमर्श हो सके। साथ ही राजा को यह चेतावनी भी दे दी गई कि यदि रियासत इन मांगो की अनदेखी करती है तो प्रजामण्डल एक तरफा कार्यवाही करने के लिए विवश होगा और 16 जुलाई को सात सदस्यों का एक प्रतिनिधि मंडल धामी के लिए प्रस्थान करेगा ताकि वह सीधे राजा के समक्ष अपनी इन मांगों को रख सकें। इस मांगपत्र में जिन सात सदस्यों के नाम दिए गए थे वे थे- भागमल सौहटा, हीरा सिंह पाल, जीत सिंह, भगत राम, सीताराम शर्मा, नारायण दास और गौरी सिंह।

धामी के राजा ने जब इस पत्र को पढ़ा तो वह आगबबूला हो

गया। उसने इसे अपना तथा अपनी रियासत का अपमान समझा। उसने अपने दरबारियों की तत्काल सभा बुलाई और इस विद्रोह को कुचलने की ठोस नीति पर विचार-विमर्श किया। राजा के चापलूस अफसरों ने आमजन के इन प्रतिनिधियों को सख्ती से कुचलने का सुझाव राजा को दिया जिसे उसने मान लिया और उसी दिशा में तैयारियां शुरू कर दीं।

पूर्वनिर्धारित तिथि यानि 16 जुलाई, 1939 को तकरीबन 11 बजे भागमल सौहटा शिमला से अपने कुछ प्रतिनिधियों को साथ लेकर धामी के लिए रवाना हो गया। इस मंडल के दो स्वयंसेवकों भगतराम और देवीसरण ने राष्ट्रीय गीत गाते हुए वे लोग शिमला से 13 किलोमीटर दूर घनाहट्टी गांव पहुंच गए। यह स्थान धामी रियासत की सीमा पर स्थित था। वहां पहले ही राजा की ओर से धामी के सब इन्स्पैक्टर के साथ पुलिस की एक टुकड़ी मौजूद थी जिन्होंने उस प्रतिनिधि मंडल को बलपूर्वक रोक दिया। लेकिन लोग नहीं माने। सबसे पहले भागमल सौहटा आगे निकला तो पुलिस ने उन्हें पकड़ कर हथकड़ी पहना दी और बाकि लोगों को हिरासत में लेकर धामी की तरफ कूच करने लगे। लोगों की बगावत इस कृत्य को देख कर बढ़ना स्वाभाविक थी। इसलिए आसपास गांव के लोगों को जब इस बात की भनक लगी तो वे भी इस जुलूस में शामिल होने लगे।

अब लोगों की भीड़ बढ़ने लगी थी। भागमल सौहटा और दूसरे स्वयंसेवकों को पुलिस वाले रियासत की जेल तक ले जा रहे थे। ज्यों ही वे लोग आगे बढ़ते रहे लोगों की संख्या भी बढ़ती चली गई। 'खेल के चौरां' के पास और प्रतिनिधि भी उपस्थित थे जो उस जनसमूह में शामिल हो गए और नारे लगाते राजा के महल की तरफ बढ़ने लगे। राजा ने जब देखा कि भारी संख्या में लोग राजधानी की ओर आ रहे हैं तो वह घबरा गया। उसने तत्काल उन पर गोलियां चलाने के आदेश दे दिए। निहत्थों पर गोलियां और लाठियां चलीं तो भीड़ में खलबली मच गई। लोगों ने कभी सोचा भी न था कि अपनी मांगों को राजा के समक्ष रखने की इतनी बड़ी सजा मिलेगी। गोली लगने से दो लोग वहीं ढेर हो गए और बहुत से घायल हो गए। भागमल सौहटा के साथ दुर्व्यवहार करके उसे जेल में ठूंस दिया गया। मरने वालों में दुर्गादास और उमा दत्त शामिल थे। लगभग 80 से 90 व्यक्तियों तक घायल हो गए जिन में से 41 लोगों को शिमला रिपन अस्पताल में उपचार के लिए ले जाना पड़ा। इनमें 10 व्यक्तियों को उनकी गंभीर हालत देखकर दाखिल कर दिया गया। लगभग 200 व्यक्ति धामी से अपनी जान बचाकर शिमला पहुंचे जिन्होंने यहां के गंज बाजार में तीन महीने भारी कठिनाइयों में शरणार्थी बन कर व्यतीत किए। शिमला में इस घटना की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। लोग आक्रोश से आग बबूले हो गए जिस कारण ब्रिटिश प्रशासन ने घबराकर धारा 144 लगाई।

धीरे-धीरे इस घटना की खबर शिमला के साथ अन्य रियासतों और गांवों में फैलने लगी। शिमला में इसके विरोध में पूर्ण हड़ताल हो गई। इस घटना का व्यापक प्रभाव हर जगह हुआ। इसकी सूचना जब महात्मा गांधी और पंडित जवाहर लाल नेहरू को पहुंची तो वे स्तब्ध रह गए। यह उनकी कल्पना से दूर था कि एक छोटी सी पहाड़ी रियासत का राजा अपनी प्रजा के प्रति इतना क्रूर और निर्दयी भी हो सकता है। महात्मा गांधी जी ने पंडित नेहरू जी को इसकी जांच के लिए कहा तो उन्होंने अम्बाला के प्रसिद्ध वकील व कांग्रेस के विधायक तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य एवं प्रधान लाला दुनीचन्द को इसकी जांच के लिए नियुक्त किया। लाला दुनीचन्द ने गहराई से इसकी जांच की। वे प्रजामण्डल के सदस्यों के साथ मिले और बहुत से लोगों से इस घटना के सम्बन्ध में बातचीत की। धामी के राजा से भी उन्होंने लम्बी बातचीत की लेकिन उनका व्यवहार निरंकुश बना रहा। लाला दुनीचंद ने अपनी विस्तृत रिपोर्ट पंडित जवाहर लाल नेहरू को 30 जुलाई, 1939 को प्रस्तुत कर दी और साथ ही महात्मा गांधी जी को भी इसकी प्रति भेंट की। उन्होंने इस रिपोर्ट में

पत्र अमृत कौर को

एबटाबाद, 20 जुलाई 1931

प्रिय पगली,

तुम्हारी हिन्दी अच्छी होती जा रही है।

धामी के बारे में मुझे तुम्हारे अगले पत्र का इन्तजार है। कितना अच्छा होता यदि तुम इस मामले की सचाई का पता लगा सकती। यह हर तरह से बुरा है।

मुझे तुम्हें दुःख के साथ बताना पड़ रहा है कि कश्मीर में राज्य के आतिथ्य की स्वीकृति मुझे वापिस लेनी पड़ी।

मौसम अब भी गर्म है, हालांकि एक अच्छी बारिश हुई है।

स्नेह।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी.डब्ल्यू. 3931) से : सौजन्यः अमृतकौर। जी.एन. 7240 से भी

1. शिमला से 22 किलोमीटर दूर एक पहाड़ी रियासत, जहां 17 जुलाई को पुलिस ने लोगों को एक भीड़ पर गोली चलाई थी। ये लोग अपनी कुछ शिकायतें दूर करवाने के लिए राणा साहब को अपनी याचिका देले के उद्देश्य से राजमहल में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे थे।

सुझाया कि -

यह एक बेहद संगीन मामला है इसलिए किसी उच्च न्यायालय के न्यायधीश से इस घटना की जांच करवाई जाए।

इस घटना में भाग लेने वाले पुलिस कर्मियों के साथ अन्य कर्मचारियों के कृत्य का कठोर दण्ड दिया जाए।

आमजन के साथ रियासतों के राजा दुर्व्यवहार न करें उनके साथ सौहार्द स्थापित करके उनकी जायज मांगों को मानने के प्रयास किए जाएं।

इस रिपोर्ट को ब्रिटिश अधिकारियों को दे दिया गया लेकिन धामी के राजा के विरुद्ध हर तरफ न केवल मौन बना रहा बल्कि यही समय था जब धामी के राजा को कई तरह के पारितोषिक से अंग्रेजों द्वारा नवाज़ा गया। उसे पंजाब पुलिस के दो सौ सिपाही दे दिए गए जिन्होंने रियासत के गांव-गांव में न केवल आतंक फैलाया। गोलीकांड की घटना के समय लगभग दो सौ से ज्यादा आंदोलनकारी गिरफ्तार कर लिए गए थे जिन्हें बाद में रिहा कर दिया गया परन्तु 20-22 लोगों को कड़ी कैद की सजा सुनाई गई। साथ ही कई सौ रुपये के जुर्माने भी लगाए गए। इस गोलीकांड का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आंदोलकारियों पर डाल दिया गया। पोलिटिकल एजैण्ट तथा धामी रियासत ने भागमल सौहटा को दंडित कर उसे पहले अम्बाला जेल भेजा और बाद में मुलतान जेल भेज दिया।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने महात्मा द्वारा दिए आदेश के बाद सलाह दी कि, ''पहाड़ी रियासतों के लोग और उनके नेतागणों को मैं यह चेतावनी देना चाहूंगा कि वे आवेश में आकर ऐसा कुछ न करें जिससे हमारी लड़ाई का मंतव्य ही प्रदूषित हो जाए। वे सोच समझकर ऐसे कदम उठाएं। उनके विद्रोह में सामायिक मुद्दों को हल करने के लिए नारेबाजी कम और उन्हें शांतिपूर्ण ढंग से कार्यकरने की प्रतिबद्धता और एकाग्रता से हल करने की सोच होनी जरूरी है। उन्हें सबसे पहले बंधुआ मजदूरी, बेगार प्रथा और दूसरी अन्यायपूर्ण चीजों को समाप्त करने पर अपना अधिक ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। ये चीजें जितनी जल्दी समाप्त हो आमजन के हित में हैं।''



वर्ष 1945 में शिमला सम्मेलन के दौरान महात्मा गांधी स्थानीय लोगों के बीच

महात्मा गांधी जी और पंडित जवाहर लाल नेहरू की कड़ी और तीखी प्रतिक्रियाओं से न तो धामी के निरंकुश राजा पर कोई असर हुआ और न ही इस घटना की ब्रिटिश प्रशासन ने कोई न्यायिक जांच करवाई। परन्तु इससे एक बात यह हुई कि राजाओं और अंग्रेज शासकों के विरुद्ध भीतर ही भीतर आमजन में आक्रोश और तीव्र होता चला गया। एक बात यह अच्छी हुई कि कुछ रियासतों के राजाओं ने आमजन का साथ दिया और एकमत बना कि भारत की आजादी के साथ पहाड़ी रियासतों का विलय हिमाचल प्रदेश में हो जाए। यह सोच रंग लाई और 15 अप्रैल, 1948 को जब हिमाचल प्रदेश अस्तित्व में आया तो धामी का निरंकुश शासन ध्वस्त हो गया और इस रियासत को महासू जिला की कुसुम्पटी तहसील में मिला दिया गया।

साहित्य कुंज, धरातल मंजिल, समीप हिमाचल सचिवालय, मारलब्रो हाउस, छोटा शिमला, शिमला, हिमाचल प्रदेश-171002
मो. : 098165 66611, 094180 00224

संदर्भ

मियां गोवर्धन सिंह : हिमाचल प्रदेश का इतिहास : रिलायन्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली-8, वर्ष 1996, पृष्ठ-304-307.
डॉ. चमन लाल मल्होत्राः हिमाचल का क्रांतिकारी इतिहासः जयश्री प्रिंटर्ज पब्लिशर्ज, 109/2, लोअर बाजार, शिमला-1, वर्ष 1990, पृष्ठ 110-113.
नेमचंद अजनबीः हिमाचल प्रदेश : इतिहास संस्कृति व प्रशासनः एच जी पब्लिकेशन, नई दिल्ली-62 : वर्ष-1999 पृष्ठ-64.
स्वाधीनता की ओरः भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेशः जोशी मुद्रणालय शिमला-1ः पृष्ठ 10-16ः आलेखः एल.आर.ठाकुर।
स्मृतियां : निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला-171003 : जोशी मुद्राणलय, शिमला-1ः प्रथम संस्करण-1988 पृष्ठ-1-3 आलेख : सीताराम।
सचिव, ग्राम पंचायत हलोग धामी, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश।
एस.आर.हरनोटः बयाः अंतिका प्रकाशनः अंक-अप्रैल-जून-2014 पृष्ठ-102
रोहिणी अग्रवालः हिन्दी कहानी-वक़्त की शिनाख़्त और सृजन का रागः वाणी प्रकाशनः2015ः पृष्ठ-85



धामी गोली कांड पर महात्मा गांधी का जवाहर लाल नेहरू को पत्र

29 जुलाई, 1939

प्रिय जवाहरलाल,

धामी के लोगों का पथ-प्रदर्शन करने के बजाय मैंने उन्हें तुम्हें सौंप दिया है। मेरे ख्याल से, मेरी तरफ से किसी हस्तक्षेप के बिना तुम्हीं को इस दायित्व से निबट लेना चाहिए। देशी राज्यों का यह विचार दिखाई देता है कि कांग्रेस को और इस तरह प्रजा परिषद् को अलग-थलक कर दिया जाये और उनकी उपेक्षा की जाये। मैं 'हरिजन' में पहले ही सुझाव दे चुका हूं कि तुम्हारी समिति से पूछे बिना किसी रियासती संघ या मण्डल को अपने आप कार्रवाई नहीं करनी चाहिए। मुझे कुछ करना ही हो तो तुम्हारी मारफत करना चाहिए, अर्थात् जब तुम मुझसे पूछो तो जैसे मैं कार्य समिति को अपनी राय दे देता हूं वैसे ही तुम्हें दे दूं। कल ग्वालियर वालों से भी मैंने ऐसा ही कहा है। तुम्हारी समिति को ठीक ढंग से काम करना है तो तुम्हें उसको थोड़ा सा पुनर्गठित करना होगा।

धामी प्रजामण्डल के प्रधान पं. सीताराम जुब्बल के भागमल सौहटा के भाई काहन सिंह सौहटा और भज्जी के पं. भास्करानन्द, राजकुमारी अमृतकौर के नेतृत्व में 26 जुलाई, 1939 को ने महात्मा गांधी से नई दिल्ली में भेंट की। गांधी जी ने सारी घटना का ब्योरा सुनने के उपरान्त एक पत्र पं. जवाहर लाल नेहरू के नाम लिख कर दिया। ये पत्र लेकर प्रतिनिधिमण्डल के साथ इलाहाबाद पं. नेहरू के पास गये। 25 जुलाई 1939 को गांधी जी ने तार भेज कर राजकुमारी अमृतकौर को सूचित किया था कि वे नई दिल्ली में हरिजन बस्ती के पास जोहरा अन्सारी के यहां ठहरने वाले हैं। प्रजामण्डल के लोग दो बजे मिल सकते हैं।

प्यार,

बापू

Segaon
Wardha
29 7 39

My dear Jawaharlal,

Instead of guiding the Dhami people, I have passed them on to you. I feel that you should discharge this burden without any interference from me. The idea in the States seems to be to isolate & ignore the Cong. & hence the States conference. I have already suggested in Harijan that no State association or mandal should act on its own without reference to your committee.

Love
Bapu

'धामी गोली कांड' के विषय में कार्यवाही हेतु महात्मा गांधीजी द्वारा पं. जवाहर लाल नेहरू को लिखे पत्र की प्रति।

गांधी की लेखनी से

धामी कांड से सबक

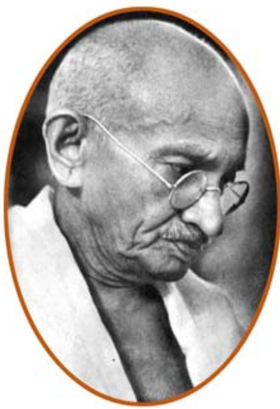
धामी प्रकरण अभी समाप्त नहीं हुआ है। सच्ची बात अभी तक प्रकट नहीं हुई है। हिमालयी राज्य प्रजामण्डल ने राजनीतिक एजेंट के स्वभावतः एकतरफा बयान की सचाई पर आपत्ति उठाई है। मण्डल के वक्तव्य से जाहिर होता है कि उन घटनाओं की खुली अदालती जांच किस प्रकार नितान्त आवश्यक है जिनके कारण धामी के राणा को गोली चलानी पड़ी।

दिल्ली में मेरे कुछ देर के प्रवास के दौरान हिमालयी प्रजामण्डल के कुछ सदस्य मुझसे मिलने आये। धामी-काण्ड ने मुझे विचार-निमग्न कर दिया था। क्या ऐसे दुष्काण्ड को रोकने का कोई उपाय सम्भव नहीं? इस बारे में मुझे शिष्ट-मण्डल से बहुत-कुछ कहना था, लेकिन मैंने यह महसूस किया कि हिमालयी राज्य प्रजामण्डल को मार्गदर्शन करने का भार अपने कन्धों पर लेना मेरी गलती होगी। यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी। इसी तरह इससे पैदा होने वाले प्रश्न भी बहुत बड़े थे। इसीलिए मुझे यह लगा कि यह समस्या मुझे नहीं, बल्कि अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद् की स्थायी समिति को निपटानी चाहिए। रियासतों की समस्या दिनों दिन विकराल होती जा रही है। राजा लोग अब बन्दूक का इस्तेमाल करने में बेझिझक होते जा रहे हैं। वे यह महसूस करते हैं कि जहां तक अधीश्वरी सत्ता का सम्बन्ध है, से सुरक्षित हैं। कांग्रेस का उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं है। अब तो बहुत से राजा अपनी प्रजा के बढ़ते हुए उत्साह को कुचलने का प्रयास कर रहे हैं। और कांग्रेस के लिए भी रियासती प्रजा की समस्याओं से हस्तक्षेप करना तो दूर, उनका प्रभावकारी पथ-प्रदर्शन करना भी असम्भव बना देने की कोशिश ये राजा कर रहे हैं। मगर कांग्रेस को तो इस मामले में अपना फर्ज अदा करना ही है। मुझे प्रजा परिषद् के संविधान का ठीक ज्ञान नहीं है, मगर मेरा ख्याल है कि वह किसी न किसी रूप में कांग्रेस से सम्बद्ध है। कुछ भी हो, कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी संस्था है जिसकी रचना रियासती प्रजा का पथ-प्रदर्शन करने की दृष्टि से विशेष उपयुक्त है। इस प्रकार के पथ-प्रदर्शन पर रियासतों का नाराज होना गलत होगा। उन्हें भी यह समझ लेना चाहिए कि इस तरह की नाराजगी बेकार होगी। कांग्रेस रियासतों की प्रजा की जरूरत के समय उसके पथ-प्रदर्शन के अपने कर्त्तव्य का परित्याग नहीं कर सकती। एक समय वह भी था जब कांग्रेस अधीश्वरी सत्ता के खिलाफ रियासतों का पथ-प्रदर्शन करती थी और उनके अधिकारों की रक्षा भी करती थी। यदि आवश्यकता के समय रियासतें कांग्रेस की मैत्री की इच्छा और उसका स्वागत करती थी, तो अपनी प्रजा को कांग्रेस से सलाह, मार्गदर्शन और रक्षा की प्रार्थना करते देखकर बिदकना उन्हें शोभा नहीं देता। दुर्भाग्य से यह बात बिलकुल सच है कि कांग्रेस उन्हें हर समय प्रभावकारी मदद नहीं दे सकती। कांग्रेस को अपने संगठन के आधार को मजबूत बनाकर तथा विवेकपूर्ण संयम द्वारा निष्पक्षता और कठोर न्यायपरायणता की अपनी साख जमाकर आवश्यक शक्ति अर्जित करनी है। यदि कांग्रेस को सही तौर पर अपना कर्त्तव्य निभाना है, तो अपने कार्यकर्ताओं से उसे इस बात का आग्रह रखना होगा कि वे अपने पक्ष तैयार करने में आज की अपेक्षा अधिक यथार्थता से काम लेना सीखें। स्थायी समिति के समाने जो भी चीज आये उसकी कड़ी जांच होनी चाहिए, ताकि उसके सामने केवल खरी चीजें ही आयें। अगर रियासतों का ऐसी कारगुजारियों का सही-सही विवरण प्रकाशित किया जाये जिनमें प्रजा को साधारण न्यास से भी वंचित कर दिया गया हो, तो उनसे कार्रवाई करने का समुचित आधार प्राप्त होगा।

यह तो मैंने कार्य-दिशा का संकेत भर किया है। स्थायी समिति अपनी नीति और समय-समय पर उठने वाली समस्याओं को सुलझाने के लिए अपने तरीके तो बेशक आप ही निर्वाचित करेंगी। मेरा यह लिखने का उद्देश्य रियासतों के कार्यकर्ताओं को यह चेतावनी देना है कि वे मेरे पास न आया करें और न मुझसे किसी सलाह की आशा करें। उन्हें स्थायी समिति के पास ही जाना चाहिए। मैं तो कांग्रेसजनों को भी ऐसे आम मामलों में सलाह नहीं देता जिन्हें निपटाने का काम कांग्रेस की कार्य-समिति का है। हां, मैंने अपनी सेवाएं कार्य-समिति के हवाले कर रखी हैं। इसी तरह भविष्य में नई रियासती समस्याओं के बारे में भी कहूंगा। जिन लोगों से पहले से ही मेरा सीधा सम्बन्ध है, उनका पथ-प्रदर्शन मैं नहीं छोड़ूंगा। कहने की जरूरत नहीं कि मैं रियासतों के जन-आन्दोलन का सीधा मार्ग-दर्शन करने की झंझट में न पड़कर, रियासतों को प्रभावित करने वाले मामलों में अपने खास ढंग से जो कुछ कर सकता हूं वह करता रहूंगा। रियासती कार्यकर्ताओं से मैं यह कहना चाहता हूं कि वे स्थायी समिति को सूचना दिये और उसकी मंजूरी लिये बिना कोई आन्दोलन खड़ा न करें। कांग्रेस का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि राज्य प्रजा परिषद् के जरिये काम करते हुए, बन पड़े तो, रियासतों के साथ झगड़े को टालें।

सेवाग्राम, 30 जुलाई, 1939, हरिजन पत्रिका में 5-8-1939 को प्रकाशित

विश्व शांति व आजादी



29 जून 1940
व
27-30 सितंबर 1940

शिमला प्रवास

वर्ष 1940 में द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था। भारत में स्वतन्त्रता आंदोलन जोरों पर था। देश में विभाजन का बीज, मुस्लिम लीग ने डाल दिया था। अंग्रेज सरकार भी बांटो तथा राज करो की नीति पर आगे बढ़ रही थी। इसी समय ब्रिटिश सरकार ने महात्मा गांधी को शिमला आने का निमंत्रण दिया।

तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो को 24 जून, 1940 को महात्मा गांधी ने तार द्वारा सूचित किया:

'तार के लिये धन्यवाद। बुधवार तक व्यस्त हूं। गुरुवार को रवाना हो सकता हूं। शनिवार को पहुंचूंगा। लेकिन आप चाहें तो कल भी निकल सकता हूं।

गांधी ने शिमला में राजकुमारी अमृतकौर को 25 जून, 1940 को पत्र लिखकर सूचित किया कि अगर उन्हें असुविधा न हो तो वे उनके निवास मेनरविला में ठहरेंगे और शनिवार को पहुंचने बारे भी सूचित किया।

26 जून, 1940 को पुनः राजकुमारी अमृतकौर को तार भेज कर सूचित किया कि:

'हम चार होंगे। एक कार से काम चल जायेगा। स्नेह

-बापू

26 जून, 1940 को वायसराय को तार भेजा तथा शुक्रवार को पहुंचने की उम्मीद जताई। उनके निजी सचिव ने 'ऑन द रोड टु शिमला' (शिमला की ओर) लिखित संक्षिप्त विवरण में लिखा है कि गांधी 29 जून, 1940 शिमला पहुंचे।

महात्मा गांधी ने शिमला आगमन पर 'हिन्दू' समाचार पत्र के सम्वाददाता से भेंट कर बताया कि :

'मुझे आमंत्रित किया है, इसलिये मैं आ गया हूं और यदि यहां रुके रहने की जरूरत न हुई तो आज शाम वर्धा लौट जाऊंगा।

मेरी आशा का बैरोमीटर ऊपर ही चढ़ता जा रहा है, यद्यपि आकाश मेघाच्छादित है। इसी दिन बाद में गांधी जी वायसराय से मिलने गये।

30 जून, 1940 को महात्मा गांधी ने वायसराय को पत्र लिख वायसराय को सुझाव दिया था कि वह सम्राट की सरकार को यह सलाह दे कि वे आपको यह घोषणा करने की इजाजत दे कि युद्ध की समाप्ति के एक साल के अंदर भारत को इस शर्त के साथ उपनिवेशों की बराबरी का दर्जा प्रदान किया जायेगा। गांधी जी ने इस पत्र में विश्व शांति तथा आजादी के लिये अनेक सुझाव दिये।

नई दिल्ली पहुंचकर गांधी जी ने हिन्दुस्तान टाइम्स के संवाददाता ने गांधी जी के लौटने पर रेलवे स्टेशन पर उनसे भेंट की थी।

आज भी परिस्थिति वैसी ही है जैसी कल थी।

आए और उसी दिन लौट भी गए

आज यह पढ़-सुनकर भले ही ताज्जुब हो, लेकिन यह सच है कि महात्मा गांधी वर्ष 1940 में 29 जून को प्रातः शिमला पहुंचे तथा उसी दिन वायसराय से मुलाकात कर सायं दिल्ली लौट गए। 71 वर्षीय महात्मा के लिए समय की इतनी अहमियत थी, इस पर अंदाजा उनके वक्तव्य से लगाया जा सकता है, "मुझे आमंत्रित किया है, इसलिए मैं आ रहा हूं और यदि रुके रहने की जरूरत न हुई तो शाम को लौट जाऊंगा।"

यह पूछे जाने पर भी वायसराय से मुलाकात करने के बाद शिमला के उनके एकाएक चल पड़ने का क्या यह अर्थ लगाया जाये कि वायसराय के साथ उनकी वार्ता अब आगे नहीं चलेगी। महात्मा ने कहा कि यह तो स्पष्ट ही है कि यदि चर्चा के लिये कुछ और रोज रहा तो वो शिमला में ही रुके रहते।

सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हुआ। ब्रिटिश सरकार ने वही किया जो 25 वर्ष पूर्व प्रथम विश्व युद्ध के समय उसने किया था। यानी भारतीयों से न कोई विचार विमर्श किया न सलाह ली गई और भारत को भी युद्धकारी देश घोषित कर दिया गया। उस समय देश में एक केन्द्रीय विधान परिषद थी। प्रांतों में लोकप्रिय सरकारें थीं।

युद्ध में भारत को शामिल करने का विरोध कांग्रेस ने किया। 14 सितम्बर 1939 को कांग्रेस ने अपना वक्तव्य जारी कर दृष्टिकोण स्पष्ट किया। लेकिन 17 अक्तूबर को वायसराय ने स्वाधीनता की मांग के उत्तर में जो कुछ कहा उसका तात्पर्य सिर्फ इतना था कि ब्रिटिशकाल का अंतिम लक्ष्य भारत में औपनिवेशीय स्वराज स्थापित करना है। परन्तु यह कब स्थापित होगा, इसके बारे में कोई आश्वासन नहीं दिया गया था। इस पर महात्मा गांधी ने कहा-कांग्रेस ने रोटी मांगी थी परन्तु इसको पत्थर मिले। जिन प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमण्डल थे उन सभी ने अक्तूबर 1939 में त्याग पत्र दे दिया। महात्मा गांधी वायसराय लिनलिथगो से भेंट करने सितम्बर 1940 में शिमला पधारे थे। 17 सितम्बर को गांधी जी ने वायसराय को पत्र लिखकर मुलाकात का वक्त मांगा था। इस बारे में गांधी ने वायसराय को 22 सितम्बर, 1940 को दिये तार में कहाः

'तार के लिये अनेक धन्यवाद। आशा है कि शुक्रवार को पहुंच जाऊंगा।'

महात्मा गांधी ने शिमला जाते वक्त ट्रेन में 25 सितम्बर, 1940 को सिख व तलवार शीर्षक से लेख लिखा। इसमें उन्होंने मास्टर तारा चन्द द्वारा लिखे पत्र का उत्तर तथा सिखों द्वारा शांति बनाये रखने की अपील सहित लाहौर अधिवेशन में पारित प्रस्ताव का उल्लेख लिया।

28 सितम्बर, 1940 को महात्मा गांधी ने वायसराय को पत्र लिखाः

मेनरविला शिमला वेस्ट

28 सितम्बर, 1940

प्रिय लार्ड लिनलिथगो,

आपका कल की तारीख का पत्र मुझे अभी-अभी प्राप्त हुआ है।

कल मैंने आपका जो काफी समय लिया, उसके लिये आपने अपनी आदत के मुताबिक मुझे धन्यवाद दिया है। मुझे तो लगता है कि मुझको आपका धन्यवाद स्वीकार नहीं करना चाहिये। क्योंकि उस धन्यवाद के पात्र तो आप हैं जिन्होंने अधीरता या खीज प्रदर्शित किये बगैर मुझे अपनी लम्बी-चौड़ी बात कहने का अवसर मिला। कृपया उसे आप स्वीकार करें। इतनी तत्परता से मुझे मंगलवार को भेंट का समय देने के लिये में आपका धन्यवाद देता हूं। यदि आपको कोई फर्क नहीं पड़ता है तो मैं चाहूंगा कि यह समय सोमवार दिन 2.45 बजे लिये मुकर्रर किया जाये। मैं कल अपना मौन जल्दी आरम्भ कर सकता हूं जिससे कि उसे सोमवार को निर्धारित भेंट के लिये समय पर समाप्त कर सकूं।

समाचार पत्रों को वक्तव्य

30 सितम्बर, 1940

मैं जानता हूं कि शिमला में खद्दर का बहुत प्रचलन नहीं है। मैं आशा करता हूं कि लोग गरीबों के प्रति अपना कर्तव्य समझेंगे और फलतः खादी को अपना लेंगे। मुझे यह जानकर दुःख हुआ है कि शिमला में ऐसे खादी की बिक्री व खरीददारी चल रही है, जो अखिल भारतीय चरखा संघ द्वारा विधिवत प्रमाणित की हुई नहीं है। मैं आशा करता हूं कि जो कोई अप्रमाणित खादी की बिक्री या खरीददारी कर रहा है, वह वैसा करना बंद कर दे।

गांधी जी ने 30 सितम्बर को शिमला से प्रस्थान कर दिया था। उन्होंने यात्रा के दौरान वायसराय को पत्र लिखकर वार्ता के दौरान मुद्दों को उठाया जिसमें अंग्रेजों द्वारा जबरदस्ती भारत को विश्व युद्ध में अंग्रेजों की ओर से शामिल करना था।

वर्धा लौटने पर जब उनसे वायसराय से उनकी हाल ही की बैठक बारे पूछ गया तो गांधी जी ने कहाः

चूंकि वायसराय ने मेरी वाणी की स्वतन्त्रता की बात ठुकरा दी। इसलिये अब और कोई रास्ता नहीं रह गया है।

30 सितम्बर, 1940

वायसराय ने गांधी को पत्र लिखकर बताया कि :

इन वार्ताओं में स्थिति पर विस्तार से विचार किया गया और युद्ध काल के दौरान वाक् स्वातंत्र्य से चर्चा हुई। इस वार्ता में वायसराय के साथ सहमति नहीं बनी।

पहाड़ी रास्तों का उल्लेख

एक सितम्बर, 1940 को गांधी जी ने ग्रामीणों को सम्बोधित करते हुये कहा कि प्राचीन भारत में समृद्धि का सूचक सोना व चांदी नहीं होता था बल्कि व्यक्ति के पास गायों से आंका जाता था। गायों से दूध तथा बैल खेती-बाड़ी में काम आते थे। बैल हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन के कार्य में लाये जाते हैं। मैंने इन्हें शिमला जैसे स्थानों पर भी देखा है। यहां रेल तथा मोटर कार भी जाती है लेकिन पहाड़ी सड़क पर पहाड़ी रास्तों पर बैलगाड़ी को खींचते ऊपर-नीचे जाते देखा है। इससे प्रतीत होता है कि परिवहन हमारे जीवन तथा सभ्यता का हिस्सा है।

हरिजन, 15 सितम्बर, 1940 को प्रकाशित

सोलन में गांधी का आगमन व स्मृतियां

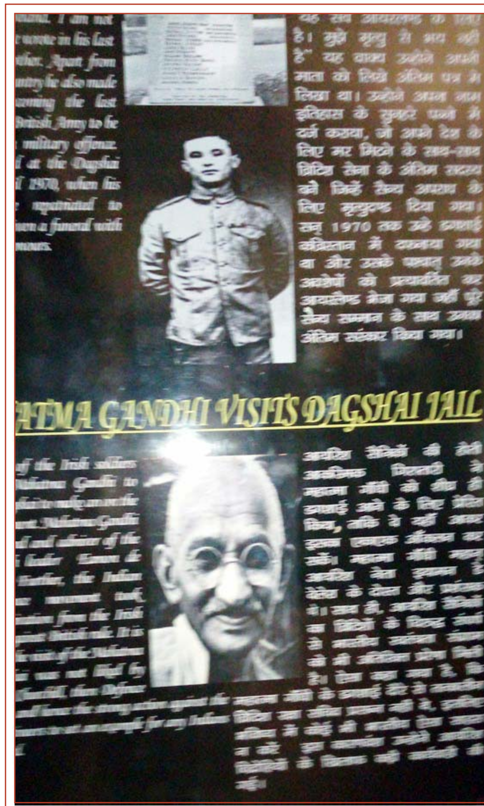
डगशाई के ऐतिहासिक कारागार में पड़े थे महात्मा गांधी के चरण

◆ रत्न चंद निर्झर

महात्मा गांधी शिमला आगमन के दौरान सदैव ही कालका-शिमला रेल मार्ग से होकर आए थे। इस मार्ग पर महात्मा गांधी की की स्मृतियों को आज भी अनेक व्यक्तियों ने संजो कर रखा है। महात्मा गांधी की गाड़ी जब भी इस मार्ग से होकर गुजरती थी, तो मार्ग के सभी स्टेशनों पर लोगों का हुजूम उनके दर्शनों के लिए उमड़ता था। वर्ष 1939-40 के दौरान वे शिमला से कालका जाते वक्त सोलन में कुछ समय के लिए रुके थे। इसका स्मरण आज भी 92 वर्षीय सोलन के समीप स्थित बेरटी गांव के पण्डित लक्ष्मी दत्त शर्मा को है जब वे अपने चाचा के साथ सोलन के पुराने बस अड्डे में हुई महात्मा की सभा में उपस्थित हुए थे तथा उन्होंने गांधी जी को रुपये की थैली भेंट की थी।

जहां एक ओर पूरा देश राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 150वीं जंयन्ती पर उन्हें श्रद्धापूर्वक याद कर रहा हैं वहां दूसरी ओर सोलन जिला में भी उनकी स्मृतियों के फूलों की खुशबू वातावरण में इतरा रही है। सोलन शहर में कुछ ऐसे वयोवद्ध नागरिकों की स्मृतियों में प्यारे बापू की छवि यादों के झरोखे से छन कर बाहर आ रही है। डगशाई ऐतिहासिक कारागार की अन्धेरी कोठरी की दीवारों में आज भी बापू के प्रिय भजन रघुपति राघव राजा राम पतित ते पावन सीता राम की धुन मौन रूप से गूंज रही है।

डगशाई की इस पुरानी जेल की हवा में अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी के यादों की खुशबू महसूस की जा सकती है। वर्ष 1849 में निर्मित डगशाई जेल में आयरिश सैनिकों की वर्ष 1920 में आकस्मिक गिरफ्तारी उन पर ब्रिटिश सरकार के बढ़ते अत्याचारों का आकलन करने हेतु महात्मा गांधी एक दिन के लिए यहां आए थे व इस जेल की एक कोठरी में रात बिताई थी, उनके इस आगमन की गवाह है उस ऐतिहासिक कोठरी सग्रंहालय में स्थापित की गई सूचना पटिटका महात्मा गांधी महान् आयरिश नेता डयामन डे वेलस के मित्र और प्रशंसक थे और उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के कुछ गुर आयरिश आन्दोलन से भी ग्रहण किए थे। बिट्रिश सरकार के रक्षा सचिव महात्मा गांधी के इस अप्रत्याशित डगशाई दौरे से अप्रसन्न हो उठे और अंग्रेज सरकार ने विद्रोही आयरिश सैनिकों के प्रति दमनचक्र और तेज कर दिया। आयरिश सैनिकों के खिलाफ कार्यवाही देश की आजादी में संलग्न भारतीयों को भयभीत करने का एक असफल प्रयास था। महात्मा गांधी संभवतः 1920 के आस-पास में



डगशाई जेल की दीवार पर लगा गांधीजी का चित्र व उनके यहां आने का वृतांत

इस ऐतिहासिक कारागार में आए थे, आयरिश क्रांति के नेता जैम्स डाली को नवम्बर 1920 में स्कारड़ ने फायरिंग कर मार दिया था। महात्मा गांधी ने 10 बार शिमला का दौरा किया। वे सदैव ही शिमला-कालका रेल मार्ग से शिमला पधारे थे। वे सदैव ही शिमला और वे आती जाती बार सोलन से गुजरे। कालका शिमला रेलवे लाईन के रेलवे स्टेशन उनकी इस यात्रा के प्रत्यक्ष प्रमाण रहे। उस समय हजारों पहाड़ी समाज के लोग उनके आने का समाचार पाते ही उनके दर्शनार्थ दूरदराज गांवों से आकर पहुचते थे। ऐसे ही हैं।

92 वर्षीय बेरटी गांव के पण्डित लक्ष्मी दत्त शर्मा। उन्होंने बताया कि उस समय उनकी आयु 10 वर्ष की रही होगी, उनके चाचा स्व. राम शरण महात्मा गांधी के अनुयायी व अनन्य भक्त थे और उन दिनों वे मौन व्रत पर चल रहे थे। महात्मा गांधी के शिमला से वापिस आने की खबर उनके कानों में पड़ी। मुझे अपने पास बुलाया तथा स्लेट पर लिखा कि सुना है महात्मा गांधी सोलन आ रहे हैं और पुराने बस अड्डे पर जलसा हो रहा है। यह वाकया 1939-40 का होगा। हमने वहां जाना है तथा रुपयों की थैली गांधी जी को भेंट करनी है। आनन फानन में तैयारी की गई निश्चित दिन पर तय समय के मुताबिक पैदल रास्ता तय कर सोलन के पुराने बस अड्डे पर पहुंच गए।

उस समय महात्मा गांधी जी का उद्बोधन चल रहा था लोगों का भारी हुजूम वहां पर मौजूद था। जब लोगों को पता चला कि हमने रुपयों की थैली भेंट करनी है व हमें आगे जाने का रास्ता दे दिया गया। मंच पर आये नेताओं के साथ बापू भी विराजमान थे। चाचा राम शरण के साथ मंच पर जाकर मैंने बापू महात्मा गांधी के चरण स्पर्श किए व 1100 मलका रुपये की थैली उनके चरणों पर भेंट कर दी। महात्मा गांधी ने मेरी पीठ थपथपाते हुए सिर पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया और कहा 'बेटा राष्ट्र का सदा वफादार रहना।' पंडित दौलत राम के सुपुत्र लक्ष्मी दत्त शर्मा आज भी महात्मा गांधी के उस स्पर्श का स्मरण कर भाव विहल हो उठते हैं। सोलन के एक अन्य वयोवृद्ध प्रेम जी रेस्तरां के मालिक 85 वर्षीय प्रेमचन्द जी ने बताया कि उन्होंने 4-5 वर्ष की आयु में महात्मा गांधी के दर्शन किए थे उस समय मैं दूसरी या तीसरी कक्षा में पढ़ता था। स्कूल से शाम को जब मैं अपने घर में आया जो कि सोलन की मौजूदा मस्जिद के पास हुआ करता था तो पता चला कि आज गंज बाजार में महात्मा गांधी का जलसा है। तो मैं भी अपनी बाल मण्डली के साथ वहां जा पहुंचा मुझे भलीभांति याद है कि जलसा आयोजित करने वालों ने रोशनी के लिए लालटेनों की व्यवस्था की थी और अन्धेरा होते ही गंज बाजार का वह ऐतिहासिक मंच लालटेनों की रोशनी से जगमगा उठा। यह वाकया 1945 का है। बस उनकी यह धुंधली सी याद मेरे जेहन में आज भी मौजूद है।

पंडित लक्ष्मी दत्त शर्मा जो आज 92 वसंत देख चुके हैं, ने एक भेंट में बताया कि वे जब गांधीजी से भेंट करने मंच पर गए, तो उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया तथा आज भी उन्हें महात्मा का स्पर्श महसूस होता है और गांधी जी के शब्द कि बेटा राष्ट्र का सदैव वफादार रहना, का अनुसरण करते हुए उन्होंने अपने जीवन को जिया है।

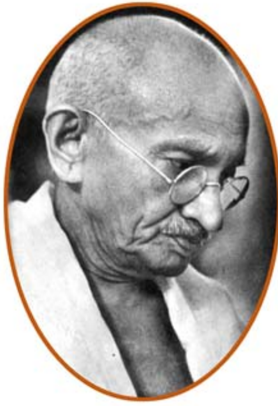
सलोगड़ा में स्थित पर्वतीय आदिम जाति सेवक संघ के संचालक सामाजिक सेवक रत्न चन्द रोझे ने बताया कि हालांकि उन्होंने कभी भी महात्मा गांधी के सोलन शिमला प्रवास के दौरान दर्शन करने का सौभाग्य नहीं मिला परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वे महात्मा गांधी के परम अनुयायी भक्त रहें।

महात्मा गांधी के निकटवर्ती नेताओं व स्व. ठक्कर वप्पा, यू.एन ढेवर, धर्म देव शास्त्री से प्रेरित होकर अपना पूरा जीवन समाज के निम्न वर्गों व आदिम जाति के उत्थान में लगा दिया व महात्मा गांधी के स्वराज आन्दोलन एवं सुधार कार्यो को आगे तक पहुंचाने में सक्रिय होकर भाग लिया। 1948 के पश्चात् ही वे हिमाचल में आये थे पर इस बीच महात्मा गांधी के पुत्र राज मोहन गांधी को करीब से देखा सुना व मिलने का मौका मिला है वे सलोगड़ा में कई महीनों तक यहां पर प्रवास किया। वियोगी हरि, डा. राजेन्द्र प्रसाद, यू.एन.ढेबर इत्यादि जाने माने नेताओं का यहां बराबर आना जाना बना रहा है।

सोलन व इसके आस पास महात्मा गांधी की स्मृतियों प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में आज भी विद्यमान है जो गांधीजी के दर्शन को आज भी जीवंत बनाए हुए है।

वृत मुख्य प्रारूपकार, अधीक्षण अभियन्ता,
तृतीय वृत हि.प्र.लो.नि.वि.
सोलन हिमाचल प्रदेश-173212

शिमला की प्रार्थना सभाओं में महात्मा के उद्‌गार



24 जून–16 जुलाई 1945

शिमला प्रवास

महात्मा गांधी वर्ष 1945 में जून माह में वायसराय लॉर्ड वेवल के निमंत्रण पर शिमला आये थे। वायसराय ने गांधी को 14 जून, 1945 को तार द्वारा पंचगणी में सूचित किया था। तार के प्रति उत्तर में गांधी जी ने 15 जून, 1945 को पंचगणी से तार द्वारा वायसराय को लिखा :

'निमंत्रण का तार मिला। कल रात भेजे अपने तार में जो कारण बताये गये हैं उनको देखते हुये आपके सम्मेलन में मेरे लिये कोई जगह नहीं है। उन्होंने वायसराय द्वारा प्रसारण भाषण पर भी प्रश्न उठाया।'

वायसराय ने गांधी जी के ठहरने के लिये 'एम्सवेल' नामक बंगला उपलब्ध होने की व्यवस्था बारे भी लिखा।

महात्मा गांधी ने 18 जून, 1945 को लॉर्ड वेवल को पत्र में लिखा कि वे 24 तारीख को शिमला में उपस्थित होने की कोशिश करेंगे।

22 जून, 1945 को महात्मा गांधी ने वायसराय को सूचित किया कि वे उसी दिन फ्रंटियर मेल से शिमला के लिये रवाना हो रहे हैं। गांधी जी ने वायसराय को जगह आरक्षित करने के लिये धन्यवाद व्यक्त किया और कहा कि मेरा विचार राजकुमारी अमृत कौर के यहां ठहरने का है।

23 जून, 1940 को दिल्ली में समाचार पत्रों को दिये वक्तव्य में गांधी जी ने कहा कि बम्बई से दिल्ली व फिर शिमला की यात्रा में मुझे जरा भी आराम नहीं मिला।

महात्मा गांधी शिमला 24 जून, 1946 को पहुंचे। वे समरहिल स्थित अमृतकौर की कोठी मेनरविला में ठहरे।

महात्मा गांधी ने शिमला पहुंचकर वायसराय लॉर्ड वेवल को पत्र द्वारा सूचित किया कि

'मैं इतना थक गया हूं कि आपके नोट की तुरंत पावती न दे सका और कोई जल्दी भी न थी। सम्मेलन के दिनों में मैं शिमला में रहूंगा।'

वे इस दौरान एक सलाहकार की हैसियत से आए थे तथा अंग्रेजों के साथ हो रही बातचीत में नजर रखने के साथ-साथ नेताओं से मंत्रणा व प्रतिदिन पत्र लेखन व प्रार्थना सभाएं किया करते थे। इन सभाओं में से कुछ के अंश यहां पाठकों से साझा किए जा रहे हैं।

महात्मा का 23 दिन का प्रवास

महात्मा गांधी की शिमला की गई दस यात्राओं में से वर्ष 1945 में 24 जून से 16 जुलाई तक की गई यात्रा सबसे लंबी 23 दिनों की थी। इस दौरान वे शिमला सम्मेलन में बतौर सलाहकार शामिल हुए थे।

प्रार्थना सभा में भाषण, 27 जून, 1945

आज शाम प्रार्थना सभा में भाषण देते हुये महात्मा गांधी ने कहा कि प्रार्थना में सम्मिलित होने में आपका उद्देश्य ईश्वर से लौ लगाना और आत्म निरीक्षण करना होना चाहिये, ताकि ईश्वर की सहायता से आप अपनी कमजोरियों पर विजय पा सकें। मुझे विश्वास है कि शुद्ध विचारवालों के संसर्ग से मनुष्य शुद्ध विचारों को ग्रहण करता है। इस सभा में अगर एक भी शुद्ध विचार वाला व्यक्ति हो तो बाकि लोगों पर उसकी शुद्धता का प्रभाव पड़ेगा। मगर शर्त यह है कि आप लोग इसी इरादें से आये वरना आपका प्रार्थना सभा में आना बेमानी होगा।

महात्मा गांधी ने 29 जून, 1946 को शिमला में प्रेस्टन ग्रोवर से की भेंट में बताया कि :

'मैं ठीक-ठाक हूं और शिमला की सात हजार फुट की ऊंचाई पर मुझ पर अभी तक कोई बुरा असर नहीं पड़ा। मगर मैं इस बात की जरूर सावधानी रख रहा हूं कि मेरे दिल पर ज्यादा बोझ न पड़े।


महात्मा गांधी वर्ष 1945 में शिमला के निवासियों को प्रार्थना सभा में संबोधित करते हुए। सौजन्य पीआईबी, नई दिल्ली

गांधी जी ने कहा कि वे सलाहकार की हैसियत से शिमला आये हैं। मुझे केवल वही जानकारी उपलब्ध है जो मेरे सहयोगी मुझसे मिलने पर मुझे देते हैं।

शिमला सम्मेलन 15 जुलाई तक स्थगित कर दिया गया था। इस पर गांधी जी ने वायसराय को पत्र लिखकर बताया कि मैं तब तक शिमला से नहीं जाऊंगा जब तक यह न जान लूं कि अब आपको मेरी जरूरत नहीं है। जब भी आपको मेरी जरूरत हो, आप बस मुझे संदेश ही भिजवा दीजिये।'

एसोसिएट प्रेस ऑफ इंडिया के विशेष संवाददाता ए.एस. भारतन् ने शिमला के मेनरविला में गांधी से भेंट बारे लिखा है कि 'महात्मा गांधी एक कमरें में जहां से बर्फ से आच्छादित हिमालय की पर्वतमालाओं का नजारा दिखाई दे रहा था एक ऊंचे स्थान पर मामूली से गद्दे पर बैठे थे। वास्तव में वे भव्य दृश्यावली का आनन्द उठा रहे थे।

2 जुलाई, 1945 की प्रार्थना सभा

महात्मा गांधी ने लोगों का ध्यान अखिल भारतीय चरखा संघ के उस नये नियम की ओर दिलाया जिसके अनुसार खादी की कीमत का कुछ अंश सूत के रूप में देना पड़ता था। उन्होंने शिमला खादी भण्डार जो यहां के निवासियों को खादी उपलब्ध करवाता है का भी जिक्र किया।

गांधी जी ने कहा कि अगर सब लोग उस तरह कताई करने लग जाते जिस तरह कि मैं चाहता था तब कोई और कोशिश किये बिना आपको स्वराज मिल गया होता। तब मुझे शिमला न आना पड़ता। लेकिन समाज में सब तरह के लोग होते हैं। इसलिये औरों की तरह मुझे भी यह देखने के लिये कि क्या सम्मेलन के द्वारा स्वतन्त्रता की दिशा में गति तेज की जा सकती है, सम्मेलन के लिये आना पड़ा।'

12 जुलाई 1945 की प्रार्थना सभा

महात्मा गांधी ने इस बात का जिक्र किया कि भीड़ की अनुशासनहीनता के कारण उनकी मेजबानी को भारी कष्ट हुआ। कई लोग मेनरविला के सामने वाले मकान में जोकि राजकुमारी अमृत कौर के भाई का था में घूस गये। उन्होंने वहां रखे गमलों को

श्यामा प्रसाद मुखर्जी को निमंत्रित करने का बापू का आग्रह

महात्मा गांधी शिमला में प्रातः तीन बजे उठ जाते थे। इसका उल्लेख उन्होंने अमृत लाल वि. ठक्कर को तीन जुलाई, 1945 को लिखे पत्र में किया। सुबह तीन बजे उठकर आपके पत्रों का जवाब दे रहा हूं। 8 जुलाई, 1945 को महात्मा गांधी ने वायसराय लार्ड वेवल को पत्र लिखकर अवगत करवाया कि

'प्रस्तावित कार्यकारिणी परिषद के लिये कांग्रेस की सूची कल आपके पास भेज दी गई है। आप देखेंगे कि सूची में हिन्दू महासभा के प्रधान का नाम है। मेरे विचार में उन्हें लेना जरूरी और सौजन्य की दृष्टि से उचित था। अगर आप कांग्रेस की सूची को स्वीकार करें तो मैं आपसे कहूंगा कि आप चालू माह की 14 तारीख को होने वाली बैठक में पहले डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी को निमंत्रित करें।



महात्मा गांधी वर्ष 1945 में शिमला आगमन के दौरान समरहिल स्थित राजकुमारी अमृत कौर के आवास मेनरविला में कार से उतरते हुए। सौजन्य पीआईआई, नई दिल्ली

तोड़-फोड़ डाला और बरामदे के जंगले को नुकसान पहुंचाया। गांधी जी ने कहा कि इन बातों से मुझे बड़ा आघात पहुंचा है। मेरा जी चाहता है कि कहीं भाग जाऊं। लेकिन आखिर मैं जहां भी जाऊंगा भीड़ भी मेरे साथ जायेगी। मैं लोगों से भागकर कहीं जा नहीं सकता। मैं उनका नौकर हूं और उनकी सेवा करने के लिये जीता हूं। उन्होंने कहा कि कई लोग प्रार्थना सभा में केवल मेरे दर्शन करने आते हैं। मैंने बहुत बार कहा है कि मैं महात्मा नहीं हूं। मैं तो आपकी तरह एक साधारण मनुष्य हूं। लेकिन मैं यह मानता हूं कि प्रत्येक श्वास के साथ मैं ईश्वर का नाम जपता हूं। और जो भी काम करता हूं ईश्वर की आज्ञा मानकर करता हूं। लेकिन ऐसा करने से मैं महात्मा तो नहीं बन गया। हर मनुष्य को वैसा ही आचरण करना

मेरा आईना आमजन

महात्मा गांधी शिमला प्रवास के दौरान जहां वायसराय तथा उस वक्त के राष्ट्रीय नेताओं के साथ भारत की आजादी के विषय में होने वाली वार्ताओं में व्यस्त रहते थे। लेकिन वे नियमित तौर पर प्रार्थना सभा में उपस्थित होते। सुबह व शाम जो भी पत्राचार उन्हें प्राप्त होता उसका उत्तर देते। यही नहीं विभिन्न समाचार पत्रों व एजेसियों के प्रतिनिधियों से भेंट करते थे। यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया के प्रतिनिधि शैलेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय के साथ गांधी जी की भेंटवाता जो शिमला, शीर्षक से प्रसारित हुई थी, मे गांधी जी से जब पूछा गया कि 'आप कभी शीशे में अपना मुंह क्यों नहीं देखते?' गांधी जी ने कहा कि जब मुझसे मिलने वाला हर आदमी मेरा मुंह देखता है तब मुझे शीशा देखने की क्या जरूरत है।

चाहिये जैसा कि मेरा दावा है कि मैं करता हूं। जो लोग प्रार्थना सभा में आते हैं उनका व्यवहार अपेक्षाकृत अच्छा ही होना चाहिये न कि बुरा। अगर आप मन को वश में नहीं रख सकते तो आपको ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह आपको वश में रखने के योग्य हो जायेंगे।

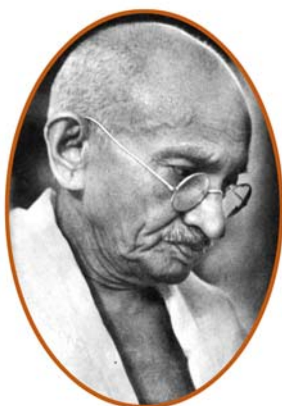
शिमला से गांधी का प्रस्थान

15 जुलाई, 1945 को गांधी जी ने बलवन्त सिंह समरपुर, खुर्जा को पत्र लिखकर सूचित किया कि निजामुद्दीन (स्टेशन) पर मिलो। हमारी स्पेशल गाड़ी सत्रह तारीख को दोपरह बारह बजे रवाना होगी। शिमला से रवाना होने से पहले गांधी जी ने 15 जुलाई को वायसराय लार्ड वेवल को उन्हें 14 जुलाई को प्राप्त पत्र के बारे में कहा कि 'मुझे यह जानकर खुशी होती है कि आपने समान उद्देश्य के लिये मेरे प्रयत्न की सराहना की है। जैसा कि आप जानते होंगे, मैंने कल यहां से चले जाने का प्रबन्ध कर लिया है। कालका से एक स्पेशल गाड़ी मुझे वर्धा पहुंचा देगी। सम्बन्धित अधिकारियों के सौजन्य से उसका प्रबन्ध हुआ है।

मुझे यह सोचकर दुःख होता है कि जो सम्मेलन इतने अच्छे और आशाजनक ढंग से शुरू हुआ था, पह प्रकटतः असफल रहा है और जैसा कि लगता है उसकी असफलता का बिल्कुल वही कारण है जो पहले था। इस बारे आपने असफलता की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। लेकिन दुनिया कुछ और ही सोचेगी। भारत निश्चय ही कुछ और ही सोचता था।'

15 जुलाई को महात्मा गांधी ने शिमला में अपने निवास मैरनविला में प्रार्थना सभा की। इसमें उन्होंने शांति बनाये रखने तथा गरीबों के लिये दान देने के लिये कुछ देने को कहा।

महात्मा गांधी का आखिरी शिमला दौरा



2-14 मई, 1946

शिमला प्रवास

महात्मा गांधी आखिरी बार शिमला के दौरे का उल्लेख 29 अप्रैल, 1946 को सर स्टैफर्ड क्रिप्स को लिखे पत्र से प्रमाणित होता है। गांधीजी से सर स्टैफर्ड क्रिप्स और पेथिक लॉरेंस 28 अप्रैल को दिल्ली में मिले थे तथा उनसे शिमला आने का अनुरोध किया था।

नई दिल्ली
29 अप्रैल, 1946
प्रिय सर स्टैफर्ड,

मैं कितना बेचैन हूं। आप नहीं समझते। कुछ तो गड़बड़ है ही। लेकिन मैं शिमला आऊंगा। मैं अपने परिवार को जो जरूरतन बड़ा है, राजकुमारी के घर ठहर नहीं सकता। लगभग 15 लोगों को ठहरने के लिये मुझे सरकारी आवासों पर निर्भर होना होगा। उन्हें किसी आतिथ्य की जरूरत नहीं होगी। लेकिन बर्तन और खाद्य सामग्री की आवश्यकता होगी। साथ ही बकरी का दूध, रेलगाड़ी में जगह और कालका से सवारी का इंतजाम भी। मुझे यह बड़ा विचित्र लग रहा है, लेकिन है तो यह वास्तविकता ही।

हृदय से आपका,
मो.क. गाधी।

इस पत्र से स्पष्ट है कि गांधी जी उस वक्त समरहिल में राजकुमारी अमृतकौर के घर पर नहीं ठहरे थे।

शिमला आने से पूर्व महात्मा गांधी 29 अप्रैल, 1946 को नई दिल्ली में मदन मोहन मालवीय से मिले। उन्होंने मालवीय जी से पूछा कि कैबिनेट मिशन का वार्ता स्थल बदल दिया गया है और वह शिमला ले जाया जा रहा है। तब उनका क्या इरादा है तो उत्तर में मालवीय जी ने कहा कि वे अब बनारस लौट जायेंगे। इस उत्तर से गांधी जी को बड़ी राहत मिली, क्योंकि उन्हें कुछ-कुछ डर था कि ये वृद्ध युवक कहीं शिमला की ऊंचाइयों पर पहुंचने का साहस न कर बैठे।

मालवीय जी ने मुस्कुराकर विदाई दी और आशीर्वाद देते हुये नमस्कार किया और निम्न पंक्तियां गुनगुनाई :

स्वयं को मत भूलो
वरन जहां-जहां रहो अपना
सौरभ बिखेरते रहो
गुलाई के फूल की भांति।

गांधी जी नई दिल्ली से अपने साथियों के साथ शिमला आये लेकिन शिमला पहुंचने पर उनके साथियों को पुनः दिल्ली भेज दिया गया।

सरकार ने शिमला में गांधी जी को रहने के लिये एक बड़े बंगले और उनके साथियों के लिये सवारी की व्यवस्था भी की थी।

शिमला आने के एक दिन पूर्व गांधी जी ने नई दिल्ली में प्रार्थना सभा में कहा ब्रिटिश कैबिनेट मिशन अच्छे इरादों के साथ यहां आया है, लेकिन मिशन किस हद तक सफल होगा, यह बात जनता की ताकत और पवित्रता पर निर्भर करेगी।

महात्मा गांधी ने कहा कि मुझे दुःख है कि मुझे शिमला जाना पड़ रहा है। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि उसे अपने परिवेश से लगाव हो जाता है।

2 मई, 1946 को शिमला में आयोजित प्रार्थना सभा में गांधी जी ने कहा, 'मैं नहीं जानता था कि मुझे शिमला आना होगा। मगर जो ईश्वर पर भरोसा रखते हैं उन्हें इस बात की तैयारी रखनी चाहिये कि जहां वे भेजेगा चले जायेंगे। आप में से कोई कह नहीं सकता कि कल क्या होगा। हमारे मन की मन में ही रह जाती है। इसलिये सबकुछ ईश्वर पर ही छोड़ दें जो होना होगा, होता रहेगा।

गांधी जी ने इस सभा में सत्य पर प्रकाश डाला वहीं टॉलस्टाय की कहानी का उल्लेख कर जीवन की जरूरतों का उल्लेख किया।

गांधी जी इस दौरे के दौरान चेडविक हाउस, शिमला वेस्ट में रहे। उनकी तीन मई, 1946 को सायं वायसराय से भेंट हुई।

तीन मई, 1946 को गांधी जी की प्रार्थना सभा

'शिमला तथा शिमला की पहाड़ियों के लोगों में अनैतिकता की बात सुनकर मुझे दुःख हुआ है। शिमला ब्रिटिश सरकार की गर्मियों की राजधानी है और आमतौर पर हर राजधानी में अनैतिकता पाई जाती है। परन्तु इससे हम बच नहीं पाते। जो अनैतिकता बरतते हैं, वे परमात्मा के निकट नहीं हो सकते। अन्य स्थानों की भांति शिमला में भी आदमी-आदमी के बीच एक चौड़ी खाई बनी हुई है। वायसराय भवन के साथ-साथ हरिजनों की झोंपड़ियां बनी हुई हैं। उन्होंने इन लोगों के निवास की उचित व्यवस्था बारे कहा।

गांधी जी ने 'चडविक' में ठहरने के बारे स्पष्टीकरण देते हुये कहा कि कैबिनेट मिशन के कहने पर शिमला आया हूं और उसी ने मेरे ठहरने का प्रबन्ध किया है, लेकिन मैं विश्वास दिलाता हूं कि इस बड़ी इमारत में मैं ज्यादा जगह नहीं घेरे हुये है। यही कारण है कि मैंने सरदार वल्लभ भाई पटेल और दूसरों को अपने साथ ठहरने को कहा है।

चार मई 1946 को गांधी जी ने प्रार्थना सभा

वस्तुतः ईश्वर सर्वव्यापी है, लेकिन उसके निराकार और अदृश्य होने के कारण मनुष्य हमेशा उसकी उपस्थित अनुभव नहीं कर सकता। लेकिन अगर हमारे पास उसकी बातें सुनने वाले कान हैं तो वह हमारी अपनी भाषा में चाहे वह कोई भी भाषा हो-हमसे अपनी बात भी कहेगा।

पांच मई, 1946 को भी शिमलावासी रविवार का दिन होने की वजह से हजारों की संख्या में एकत्रित हुये। महात्मा गांधी ने राजनीतिक चर्चाओं के कारण सायंकालीन प्रार्थना सभा कार्यक्रम बहुत ही संक्षिप्त रखा।

6 मई, 1948 को महात्मा गांधी ने सांयकालीन प्रार्थना सभा को सम्बोधित करते हुये कहा कि, शोर बंद करने का तरीका ओर ज्यादा शोर करना नहीं है। धक्का दिये बिना चुपचाप संकेत से अपनी बात कहने से ही शोर बंद किया जा सकता है। शांति और व्यवस्था सभी तरह की सभाओं में आवश्यक होती है। लेकिन



महात्मा गांधी का शिमला आगमन के दौरान एक दुर्लभ चित्र (सौजन्य पीआईबी, नई दिल्ली)

प्रार्थना सभा में इसकी विशेष आवश्यकता होती है। लोग शांति प्राप्त करने भगवान का नाम सुनने और लेने के लिये प्रार्थना सभा में एकत्र होते हैं। इसलिये यहां आने वालों को तो घर से चलते समय ही अपने मन को प्रार्थना के अनुरूप बना लेना चाहिये।'

सात मई, 1946 प्रार्थना सभा

गांधी जी ने पूर्व की सभाओं में श्रोताओं से शांति बनाये रखने का अनुरोध किया था। फलतः आज की प्रार्थना सभा में बड़ी शांति छाई रही। गांधी जी ने इसके लिये लोगों की प्रशंसा की। गांधी जी ने प्रार्थना सभा में स्थायी सदस्यों के यहां यहां से चले जाने के बारे में फैली अफवाहों का उत्तर देते हुये कहा कि इसका मतलब यह नहीं कि वार्ता भंग हो गई है।

अपने भाषण में उन्होंने शिमला में अटकलबाजी का बाजार जिस तरह गर्म हो गया है उसकी निंदा की। उन्होंने इसे कायरता का लक्ष्य बताया और लोगों को यह समझाने की कोशिश की कि ऐसी बातें भय ही पैदा करती हैं। पत्रकारों से भी अनुरोध किया कि वे ऐसी अफवाहें न फैलायें। उनका कर्तव्य लोगों को बहादुर बनना सिखाना है, उनमें भय भरना नहीं।'

महात्मा गांधी ने 8 मई, 1946 को चैडविक शिमला वेस्ट से सर स्टैफर्ड क्रिप्स को पत्र लिखा।

पत्र में शिमला में चल रही वार्ता का हवाला तथा कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग में सहमति बनाने को कहा। अंत में लिखा कि, आपके पास भागे आने की बजाय मैंने यह पत्र लिखना ज्यादा अच्छा समझा। अब यह तय करना आप पर है कि हमें कांफ्रेंस (पांच मई से 12 मई तक चली) से पहले मिलना चाहिये या पत्रों का आदान-प्रदान ही पर्याप्त होगा। आप जैसा चाहे करने को तैयार हैं।'

8 मई, 1946 को प्रार्थना सभा

इस प्रार्थना सभा में गांधी जी ने प्रारम्भ में कहा कि आज गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म दिवस है। इसलिये मैं इसके अलावा और किसी विषय पर नहीं बोलूंगा।

गांधी जी ने मंच पर रखी गुरुदेव की तस्वीर की ओर इशारा करते हुये कहा कि 'यह ज्योति जो कभी बूझी नहीं।' गुरुदेव का शरीर मिट्टी में मिल गया है, लेकिन गुरुदेव के व्यक्तित्व में छिपी क्रांति सूर्य के प्रकाश की तरह है जो तब तक प्रकाश बिखेरती रहेगी जब तक इस पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व है। लेकिन जैसे सूर्य का प्रकाश शरीर के लिये है उसी तरह गुरुदेव द्वारा दिया गया प्रकाश आत्मा के लिये है।

गांधी जी ने अपना भाषण समाप्त करते हुये लोगों से अनुरोध किया कि गुरुदेव जो उदाहरण छोड़ गये हैं उसमें वे देश-प्रेम, विश्व प्रेम और निस्वार्थ सेवा का पाठ सीखें।'

यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया के प्रतिनिधि से भेंट

सर स्टैफर्ड क्रिप्स से डेढ़ घंटे की मुलाकात के बाद जब महात्मा गांधी अपने कैम्प वापिस आये तो तब यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया का प्रतिनिधि उनके पास पहुंचा और उसने नवीनतम राजनीतिक परिस्थितियां बारे जानने का अनुरोध किया। गांधी जी ने मुस्कराते हुये बाहर के मौसम की ओर इशारा करते हुये कहाः

'क्या आप देख रहे हैं अब पानी गिरना बंद हो गया है? आकाश में बादल छंट गये हैं और जो तूफान चल रहा था वह रुक गया है।

यह रिपोर्ट 11 मई, 1946 को बाम्बे क्रॉनिकल में प्रकाशित हुई।

10 मई, 1946 की प्रार्थना सभा

गांधी जी ने आज फिर श्रोताओं को प्रार्थना सभा के समय पूर्ण शांति रखने के लिये बधाई देते हुये कहा कि मुझे उम्मीद है कि आप जहां कहीं भी जायेंगे चाहे प्रार्थना के लिये या किसी और सभा में, ऐसा ही अनुशासन कायम रखेंगे। यहां से बाहर जाने के बाद आप लोग उपद्रव करने लगे, हल्ला मचाने लगे, एक-दूसरे से झगड़ने लगे तो आपकी यहां की शांति हास्यास्पद ही सिद्ध होगी।

शिमला और कैबिनेट मिशन

फरवरी 1946 में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री एटली ने भारत में तीन सदस्यीय एक उच्च स्तरीय शिष्टमंडल भेजने की घोषणा की। इस शिष्ट मंडल में ब्रिटिश कैबिनेट के तीन सदस्य लॉर्ड पैथिक लारेंस (भारत सचिव), सर स्टेफर्ड क्रिप्स (व्यापार बोर्ड के अध्यक्ष) तथा ए.वी. अलेक्जेंडर (एडमिरैलिटी के प्रथम लॉर्ड या नौसेना मंत्री) थे। इस मिशन का विशिष्ट अधिकार प्रदान किए गए थे। इसका कार्य भारत के शांतिपूर्ण सत्ता हस्तांतरण के लिए उपायों एवं संभावनाओं को तलाशना था।

24 मार्च 1946 को कैबिनेट मिशन दिल्ली पहुंचा। मिशन ने विभिन्न दलों एवं समूहों से अंतरिम सरकार व भारत को स्वतंत्रता देने एवं नए संविधान के निर्माण हेतु आवश्यक सिद्धांत एवं उपायों पर बातचीत की।

कांग्रेस की ओर से बातचीत अबुल कलाम आजाद ने की। इस काम में पं. जवाहर लाल नेहरू और पटेल ने उनकी सहायता की। गांधी जी ने इन्हें सलाह देने का कार्य किया। लेकिन इस मूल प्रश्न पर बातचीत में गतिरोध पैदा हो गया कि भारत की एकता बनी रहेगी या मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग को पूरा करने के लिए देश का विभाजन होगा। कांग्रेस ने विभाजन का विरोध किया और विभिन्न प्रांतों को जितनी भी अधिक-से-अधिक आर्थिक, सांस्कृतिक और क्षेत्रीय स्वायत्तता दे सकना संभव था, देने को तैयार था। शिमला में आयोजित एक सम्मेलन में कांग्रेस और लीग के मतभेद दूर नहीं हो सके। तदोपरांत 16 मई, 1946 को कैबिनेट मिशन ने अपनी समझौता योजना पर वक्तव्य जारी किया।



उन्होंने प्रार्थना सभा में अधिक से अधिक संख्या में शामिल होने को कहा। बशर्ते कि वे सही भावना के साथ और अपने काम खुले रखकर आयें ताकि वे इस अराधना से जो कुछ भी ग्रहण करें उस पर अमल भी कर सकें।'

11 मई, 1946 को गांधी जी ने वायसराय लॉड वेवल को पत्र लिखा। इसके उत्तर में वायसराय ने इसी दिन सायं 7 बजे बातचीत के लिये आमंत्रित किया।

11 मई, 1946 की प्रार्थना सभा

महात्मा गांधी ने सायंकालीन प्रार्थना सभा में श्रीमती सुचेता कृपलानी द्वारा गाये गये भजन का उल्लेख किया।

'यह सत्य है कि इस विश्व में विभिन्न जातियों, विभिन्न रंगों तथा विभिन्न भाषा बोलने वाले व्यक्ति हैं। ऐसे संसार में किस प्रकार रहा जाये यही तो इस भजन के रचियता को नहीं जानता लेकिन इस भजन के सिद्धांतों को अपने जीवन में कार्यान्वित करना चाहिये। अंत में गांधी जी ने कहा कि मेरे ठहरने के स्थान मत जाइये। इससे मेरे इस कार्य मे बाधा पड़ती है जिसके लिये हम यहां आये हैं। इन स्थानों को क्या देखना? ये सब नाशवान हैं।'

12 मई, 1946 की प्रार्थना सभा

महात्मा गांधी ने इस दौरान कहा कि 'वातावरण में तरह- तरह की झूठी अफवाहें फैली हुई हैं जैसे कि वार्ता भंग हो गई है, कैबिनेट मिशन कुछ किये बिना वापिस जा रही है। और भारतीय नेता जिस तरह पिछली बार शिमला सम्मेलन से लौटे थे उसी तरह इस बार भी खाली हाथ लौटेंगे। पर गांधी जी ने कहा कि यह सम्मेलन वैसा नहीं है जैसे पिछले वर्ष हुआ था। अगर मैं अंग्रेजी भाषा ठीक-ठीक समझता हूं तो यही कहूंगा कि कैबिनेट मिशन यहां इसलिये है कि वह भारत छोड़ने, अर्थात भारत से अपनी सत्ता हटा लेने के अपने निर्णय को कार्यान्वित करने का अच्छे से अच्छा उपाय ढूंढ निकाले।'

अपने भविष्य की चिंता हम कहीं उन लोगों के प्रति अपना कर्तव्य न भूल जायें जिन्हें हमने निम्नतम स्थिति में पहुंचा दिया है, इसलिये मैंने बादशाह खान को मलीन बस्ती देखकर उनके बारे में अपनी रिपोर्ट देने को भेजा था। उन्होंने जो रिपोर्ट पेश की उसे देखकर मेरा मन क्रोध और क्षोभ से भर गया। मैं खुद प्रसन्नतापूर्वक वहां जाता। दुर्भाग्यवश अब मैं पहाड़ियों पर नहीं चढ़ सकता और इसलिये उन्हें खुद देखने के लिये उतनी दूर नहीं जा सकता। रिक्शे में बैठना खासतौर से जो आदमी शरीर से ठीक है उसका ऐसा करना मैं अपराध मानता हूं। वैसे तो मोटरकार भी मुझे नापसंद है। मैं हमेशा अपने पैरों का घूमने- फिरने का जो साधन मुझे ईश्वर ने दिया है उसका उपयोग करना चाहता हूं। पिछली रात मैं चला जरूर, लेकिन पहाड़ी तो लगता था, कभी खत्म ही नहीं होगी। उन्होंने शिमला में भी गरीब की बस्ती में रहने की इच्छा जाहिर की। उन्होंने कहा कि बादशाह खान की रिपोर्ट से इस बात की पुष्टि हुई है कि यहां जिन घरों में गरीबों को रहना पड़ता है वे मनुष्य तो क्या पशुओं के रहने लायक भी नहीं है। शिमला के निवासियों का परम कर्तव्य है कि वे उनकी शिकायतों की जांच करें और उन्हें दूर करवायें।

मैंने यह भी सुना है कि शिमला का खादी भण्डार बंद करना पड़ रहा है। क्योंकि यहां के लोग इतने आलसी व नामसझ है कि वे अपेक्षित परिणाम में सूत कातते ही नहीं। मैं अब भी मानता हूं कि स्वराज, हाथ कते धागे से झूल रहा है। भण्डार चलता रहे यह बात यहां के जनता के हाथों में है और मैं आशा करता हूं कि वह ऐसा अवश्य करेगी।



महात्मा गांधी शिमला प्रवास के दौरान स्थानीय निवासियों का अभिवादन स्वीकार करते हुए
(सौजन्य पीआईबी, नई दिल्ली)

शिमला :13 मई, 1946

सफाई कर्मियों के घर बहुत ही खराब जगह पर हैं। उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता है। राजकुमारी अमृतकौर ने मेहनत की है,



शिमला में कैबिनेट मिशन के दौरान वर्ष 1946 में महात्मा गांधी, क्रिप्स के साथ। सौजन्य : पीआईबी

लेकिन अकेली वह क्या कर सकती है? मैं तो वहां तक जा नहीं सका हूं। बादशाह खान जो मेरे साथ रहते हैं उनको जाने की विनती की थी। उनका अहलाव (विवरण) बताता है कि इन भाई-बहनों को बुरी तरह रखा जाता है। उन भाइयों में से कई मेरे पास गये थे। अपने दूसरे दुःखों की कथा भी उन्होंने सुनाई। मेरा ख्याल है कि अगर उनकी रहने की हालत में दुरुस्ती की जाये तो बाकि सुधार हो जायेगा। शिमला के लोगों और म्युनिसिपैलिटी का धर्म है कि इस गंदगी के बारे में जो हो सकता है सो जल्दी ही करे। हम उतने ही शुद्ध हो सकते हैं जितने हम में से छोटे से छोटे शुद्ध हों।

13 मई, 1946 प्रार्थना सभा

महात्मा गांधी का मौन दिवस होने के कारण उनका भाषण पढ़कर सुनाया गया।

'सोमवार को शिमला में मेरी प्रार्थना सभा का आखिरी दिन होगा। क्योंकि कल मैं दिल्ली के लिये रवाना हो जाऊंगा। कल मैंने कहा था कि अगर कांग्रेस और मुस्लिम लीग किसी समझौते पर नहीं पहुंचती है तो इसका मतलब यह नहीं है कि सब कुछ समाप्त हो गया है। कुछ भी हो, आखिर हिन्दू और मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं। एक न एक दिन वे अवश्य एक होंगे। कैबिनेट मिशन भारत के ब्रिटिश शासन को हटाने के अपने इरादे की घोषणा कर चुका है। मेरा विश्वास है कि वह अवश्य हटना चाहिये और हटेगा। किसी भी हालत में हमें हतोत्साह होने की आवश्यकता नहीं है। स्वतन्त्रता हमारे जीवन की श्वास है और दूसरी कोई शक्ति हमारी ओर से उस स्वतन्त्रता की श्वास नहीं हो सकती। इसलिये हमें स्वतन्त्रता के लिये तैयार रहना चाहिये। हम अपने को उसके लिये किस तरह तैयार करें यह मैं आपको अपनी यहां की बातचीत में बताता रहा हूं। हम अभी तक ईश्वर को अपना समर्थक और सहायक मानकर स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करते रहे हैं। उसी की सहायता से हम अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं और उसकी रक्षा कर सकते हैं।

महात्मा गांधी ने आगे कहा कि मैं इसके सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं जानता। इतना ही नहीं, मैं तो और किसी रास्ते को जानना भी नहीं चाहता। इन प्रार्थना सभाओं के दौरान आप लोग जिस तरह शांत और स्थिर रहे हैं, वैसे ही भविष्य में भी रहेंगे, ऐसा मैं आशा करता हूं।

गांधी जी 14 मई, 1946 को नई दिल्ली रवाना हुये। इसका उल्लेख उस दिन उन्होंने शिमला से नरहरि को लिखे पत्र में किया है।

यह महात्मा गांधी का शिमला का आखिरी दौरा था। इस दौरान गांधी जी ने शिमला में रहकर जहां कैबिनेट मिशन के साथ बातचीत की वहीं शिमलावासियों के दुःख-दर्द को जाना। कैबिनेट मिशनों को सफलता नहीं मिली लेकिन गांधी के विचारों से यहां की जनता को गांधी दर्शन से रूबरू होने का मौका मिला।

शिमला के भवन जहां पड़े महात्मा के चरण

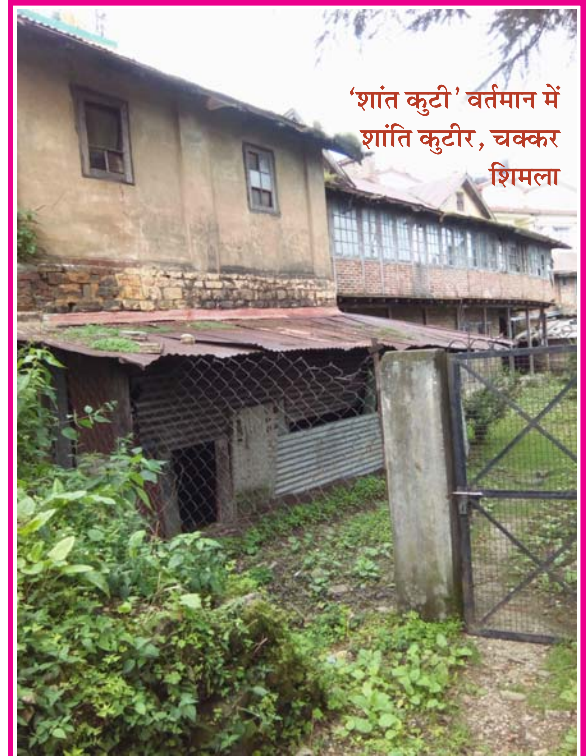
◆ योगराज शर्मा

महात्मा गांधी के जब शिमला में कदम पड़े तो उस वक्त यह शहर एक शांत शीतल जंगल था। न लोगों की भीड़, न गाड़ियों का शोर। अंग्रेजों द्वारा निर्मित इस शहर में घोड़ों की टाप, हाथ से खेंचने वाली रिक्शा की घंटियां ही सुनाई देती थीं। शहर की तंद्रा कालका से शिमला आने वाली रेल की कूक से ही टूटती थी। देश की गुलामी के वक्त ही महात्मा गांधी यहां आए। अंग्रेज सरकार यहां वर्ष के आठ माह रह कर देश पर हुकूमत चलाती थी। उन्होंने अपने लिए शहर में सभी सुख-सुविधाएं जोड़ी थीं। वायसराय का निवास, थियेटर, माल, रिज मैदान, गिरजाघर, स्केटिंग रिंक, गोल्फ, टैनिस इत्यादि का प्रबंध था। आलीशान होटल भी शिमला की शान थे। लेकिन यह बात सच है कि गांधी जी ने शिमला आगमन के दौरान अंग्रेजों की मेहमाननवाजी को स्वीकार नहीं किया। हालांकि जब भी वे आए तब अंग्रेजों ने उनके ठहरने की व्यवस्था की लेकिन उन्होंने अपने परिचितों के यहां ठहरना पसंद किया। गांधी जी की शिमला यात्राएं वर्ष 1921 से लेकर 1946 के मध्य रही। 11 मई 1921 को प्रथम यात्रा के दौरान गांधी बालूगंज के समीप वर्तमान चक्कर में स्थित शांत कुटी में रहे थे।

शांत कुटी शिमला 1921

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी अपने प्रथम शिमला प्रवास के दौरान बालूगंज के समीप चक्कर में शांत कुटी में रहे थे जिसे अब शांति कुटीर के नाम से जाना जाता है, पुरातन शोध इतिहास में एक विशेष स्थान रखती है। इस कुटी में वर्ष 1903 में दो संन्यासियों स्वामी विश्वेश्वरानंद तथा स्वामी नित्यानंद ने संस्कृत में ग्रंथों तथा वेदों के अध्ययन तथा वैदिक-शब्दार्थ शब्दकोश के तैयार करने का कार्य शिमला से आरंभ किया। वर्ष 1914 में स्वामी नित्यानंद का निधन होने पर इस परियोजना को धक्का पहुंचा। लेकिन स्वामी विश्वेशरानंद जी ने इस कार्य को शिमला में वर्ष 1918 तक आगे बढ़ाया। 1910 तक यहां रह कर उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामदेव तथा अथर्ववेद के शब्दों को सूचीबद्ध कर शब्दकोश का निर्माण किया। इसके बाद वे यहां से इंदौर चले गए जहां इस कार्य को 1923 तक किया। 1923 में इंदौर से लाहौर चले गए। उस वक्त लाहौर संस्कृत की शिक्षा का प्रमुख केंद्र माना जाता था। उन्होंने अपने इस कार्य को आचार्य विश्वबंधु को सौंप दिया तथा आचार्य जी ने लाहौर में विश्वेश्वरानंद वैदिक अनुसंधान केंद्र की स्थापना की। 1933 में डी.ए.वी. प्रबंधन समिति ने लाल चंद पुस्तकालय तथा अनुसंधान विभाग को संस्थान के अधीन कर दिया। देश के विभाजन पर इस संस्थान को लाहौर से होशियारपुर लाया गया तथा आज यह संस्थान साधु आश्रम, होशियारपुर के नाम से जाना जाता है। इस संस्थान की स्थापना के लिए श्री धनी राम भल्ला ने भूमि तथा मकान दान में दिया।

आज यह विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर संस्कृत भाषा पर अनुसंधान एवं पुरातन भाषा के संरक्षण में देशभर में अग्रणी संस्थानों में शुमार है। शिमला में जब गांधी जी इस कुटीर में रहे तो उस वक्त इसका संचालन कौन कर रहा था, इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।



'शांत कुटी' वर्तमान में शांति कुटीर, चक्कर शिमला

आज यह भवन जर्जर हालत में है। यहां रहने वालों ने बताया कि महात्मा गांधी चार दरवाजों वाले कमरे में ठहरे थे। भवन के बीच में यह कमरा स्थित है। आज इस भवन के इर्दगिर्द बड़े-बड़े भवन निर्मित हो गए हैं। लेकिन यह स्थान आज भी गांधीजी की यादों को ताजा करवाता है।

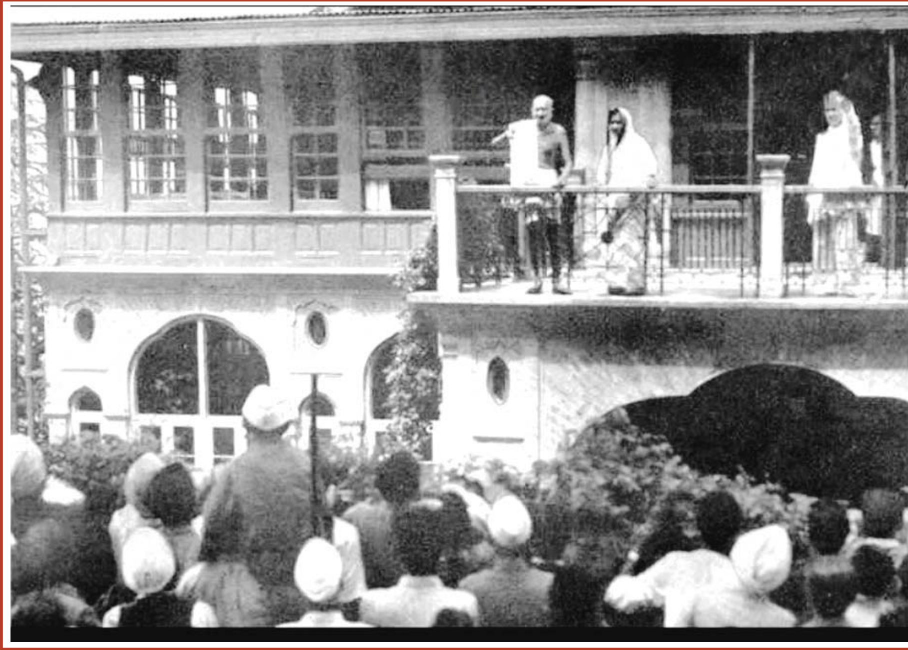
शिमला में गांधी का निवास फरग्रोव

महात्मा गांधी जब पहली बार देश की ग्रीष्म राजधानी शिमला पधारे तो वे बालूगंज के समीप चक्कर में शांत कुटी में रहे। वर्ष 1931में वे जाखू स्थित फरग्रोव में रहे। यह आवास कांगड़ा जिले के गरली के राय बहादुर मोहन लाल (1890-1932) का था। वे शिमला में धनी लोगों में से एक थे। उनकी व्यापारिक तथा व्यावसायिक दक्षता सर्वोपरि मानी जाती थी। मोहनलाल ने शिमला में एक अधिवक्ता के रूप में अपना कॅरियर आरम्भ किया तथा दिल्ली की वन ठेकेदारों की फर्म के मालिक सुलतान सिंह के सहयोगी बने। बाद में इस फर्म से अलग होकर वे एक लकड़ी के बड़े ठेकेदार बने। तदोपरान्त कश्मीर, चम्बा तथा जुब्बल के जंगलात पट्टे पर लिए और शिमला में अपना कार्यालय खोला। कुछ ही वर्षों में वे उत्तर-पश्चिम रेलवे को लकड़ी की आपूर्ति करने वाले बड़े ठेकेदारों में शुमार हो गये। उनका कारोबार इतना बढ़ा कि उन्होंने होशियारपुर इलैक्ट्रिक कम्पनी में निवेश किया। 1930 में वे कम्पनी के अध्यक्ष बन गये। वे सामाजिक गतिविधियों से भी जुड़े। आर्य समाज के गुरुकुल प्रकोष्ठ के अध्यक्ष भी बने तथा उन्होंने शिमला तथा अपने पैतृक गांव गरली में बालिकाओं के लिए स्कूल भी खोला। उनकी लोकप्रियता को देखते हुए वे पंजाब प्रांतीय एसैम्बली के निर्वाचित सदस्य भी रहे।

शिमला में वे आरम्भिक दिनों में लोअर बाजार स्थित गुलशन विला में रहे। कारोबार में बढ़ोतरी तथा सम्पन्नता आने पर मोहनलाल ने शिमला के मालरोड पर अनेक दुकानें खरीदी। वर्ष 1919 में शिमला के उपनगर कैथू में नया आवास 'मनोरमा' का निर्माण करवाया। जब तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने इस भवन का अधिग्रहण कर लिया तो उन्होंने जाखू में मच्छीवाली कोठी के समीप नया घर 'फरग्रोव' खरीदा। वर्ष 1920 में वे अपने लोअर बाजार आवास से स्थानान्तरित होकर फरग्रोव में रहने लगे। यह स्थान स्टेशन वार्ड के तहत आता था तथा वे वहां रहते हुए शिमला म्युनिसिपल कमेटी के सदस्य बने तथा 1932 तक कमेटी के सदस्य रहे। मोहनलाल ने शिमलावासियों की समस्याओं को निपटाने में बहुत बड़ा योगदान दिया। वे कांग्रेस पार्टी के सदस्य नहीं रहे लेकिन 1931 में जब गांधी शिमला आए तो उनके पास रहे। गांधीजी का फरग्रोव में राय साहिब मोहन लाल के आवास पर रुकने का विरोध कांग्रेस सचिव नन्दलाल वर्मा ने इस बात के लिए किया कि उन्हें अंग्रेजों द्वारा राय बहादुर का खिताब दिया गया है। गांधी जी ने इस विरोध के उत्तर में कहा- राष्ट्रीय प्रयासों में हर वर्ग के लोगों को शामिल किया जाना चाहिए। तदोपरान्त आपसी सहमति से गांधी फरग्रोव में मोहन लाल के साथ रहे


राय बहादुर मोहन लाल का गृह फरग्रोव जहां महात्मा गांधी वर्ष 1931 के दौरान ठहरे थे। जाखू हिल, शिमला





शिमला के समरहिल स्थित मेनरविला की बॉलकोनी में महात्मा गांधी, राजकुमारी अमृत कौर के साथ लोगों का अभिवादन स्वीकार करते हुए।

स्थित है। यहां मुख्यमंत्री आवास ओक ओवर के पास से एक रास्ता जाता है। वर्तमान में इसका स्वामित्व दिल्ली के निवासी के पास है। भवन दो मंजिला है। इसके धरातल मंजिल में एक सुंदर ड्योढ़ी है। साथ लगता एक बड़ा मैदान है, जो अब जर्जर हालत में है। इसे देख कर लगता है कि यह कभी बैडमिंटन कोर्ट रहा होगा। माल रोड तक मिलने वाला रास्ता टूटा फूटा तथा रेलिंग गायब है। यहां रहने वालों को मालूम भी नहीं कि यहां कभी राष्ट्रपिता भी रहे होंगे। उनके अनुसार मालिक को पता होगा हम तो यहां भवन की रखवाली के लिए हैं। धज्जी दीवार तथा लकड़ी का बना यह भवन आज भी अपनी वैभवता का बयान करता है। आसपास बने भवनों के अधिकांश निवासियों को भी गांधी जी के इस भवन से रिश्ते का ध्यान नहीं है। यहां आजादी से पहले रह रहे श्री प्रदीप भनोट, जो यूको बैंक से मंडलीय महाप्रबंधक के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं, को स्मरण है कि इस भवन में गांधी जी ठहरे थे।

लेकिन वे कांग्रेस के बतौर अतिथि रहे। इसका उल्लेख 10 मई, 1931 को लाहौर से प्रकाशित अंग्रेजी अखबार दी ट्रिब्यून में हुआ है।

1931 में गांधी जी वायसराय से भेंट करने तीन बार आए। वे उस वक्त राय बहादुर मोहन लाल के निवास स्थान जो जाखू हिल्स में 'फरग्रोव' के नाम से जाना जाता था, वहां रहे। वे वहां से छह किलोमीटर दूर स्थित वायसराय निवास (वर्तमान में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान) में वायसराय से मिलने माल रोड, चौड़ा मैदान होते हुए पैदल आते थे। इस मार्ग पर गांधी जी का वायसराय भवन आने का विडियो आज भी यू-ट्यूब पर उपलब्ध है। इसमें गांधी जी वायसराय से मिलने के बाद, एडवांस स्टडी के गेट से तेजी से निकलते तथा फिर इस मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ते दिखाई देते हैं।

फरग्रोव भवन आज भी घने देवदार के वृक्षों के बीच




मेनरविला हाउस के बाहर गांधी की शिष्या मीराबेन व महात्मा गांधी अमृत कौर के साथ।

वर्ष 1939 से 1945 के मध्य गांधी जी समरहिल वर्तमान में हिमाचल विश्वविद्यालय के परिसर में स्थित राजकुमारी अमृत कौर के निवास स्थान 'मेनरविला' व अनाडेल मार्ग पर स्थित कार्टन ग्रोव भवन में ठहरे थे।

महात्मा गांधी व मेनरविला

शिमला के उपनगर समरहिल जहां आज हिमाचल विश्वविद्यालय का परिसर है, में स्थित 'मेनरविला' के साथ महात्मा गांधी का गहरा नाता रिश्ता रहा है। यह भवन कपूरथला रियासत के राजा की बेटी राजकुमारी अमृत कौर का भवन था। इन भवन को जार्जियन मैंसन के नाम से भी जाना जाता था क्योंकि इसका वास्तुशिल्प विशुद्ध अंग्रेजी वास्तुशिल्प जार्जियन मैंसन पर आधारित है। राजकुमारी अमृत


अपनी यात्रा के दौरान वर्ष 1946 में महात्मा गांधी चैडविक हाउस में ठहरे थे। यह राजकुमारी अमृत कौर के भाई राजा रघुवीर सिंह का घर था, जहां वर्तमान में रेडियो स्टेशन शिमला की कॉलोनी स्थित है।





महात्मा गांधी वर्ष 1931 में शिमला प्रवास के दौरान विधानसभा के समीप कार्टन ग्रोव भवन में रहे थे। बाद में यह भवन जल गया था जिसे पुन: निर्मित किया गया। आज यह विश्वविद्यालय के प्राचार्य डॉ. दीपक सूद के स्वामित्व में है।

कौर एक प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी रही है। तथा उनका गांधी जी से खासा नाता रिश्ता था। उन्होंने राजशाही वैभव को छोड़ा और महात्मा गांधी की सच्ची अनुयायी बनी। वे महात्मा गांधी की 16 वर्षों तक सचिव भी रही। महात्मा गांधी 1931 के उपरान्त अधिकांश दौरों के दौरान इसी भवन में रहे। वे शाम को नियमित तौर पर इस भवन में टैनिस क्रोर्ट में प्रार्थना सभाएं करते थे। इसे आज राजकुमारी अमृत कौर भवन के रूप में जाना जाता है। आजादी के उपरान्त से देश में पहली महिला केबिनेट मंत्री बनी और स्वास्थ्य विभाग मिला। अमृतकौर को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान को बनाने का श्रेय भी जाता है। उन्होंने इस भवन को राष्ट्र को समर्पित कर इसे एम्स को दान स्वरूप भेंट किया। आज यहां संस्थान का विश्रामगृह है। हिमाचल विश्वविद्यालय के प्रांगण में चहलकदमी तथा संघर्ष करते युवाओं को इस बात का भान भी नहीं है कि यहां से चंद मिनट के फासले पर सत्य का पुजारी कभी रहा था। उनके आने से इस शांत स्थल का परिदृश्य की बदल जाता था। उस वक्त स्थानीय लोग घंटों अपने प्रिय नेता के दर्शन के लिए घंटों धूप, बारिश में खड़े रहते थे। गांधी जी के इस भवन की बालकोनी से लोगों को आशीर्वाद देने वाले यादगार चित्र तथा इस भवन के साथ राजकुमारी अमृत कौर के भाई के घर चैडविक हाउस में प्रार्थना में होने वाली प्रार्थना सभाओं के चित्र भी उपलब्ध हैं।

महात्मा गांधी चैडविक भवन में कैबिनेट मिशन के दौरान वर्ष 1946 में 2 मई से 14 मई के दौरान रहे थे। चैडविक भवन का निर्माण वर्ष 1880 में पंजाब के मुख्य अभियंता जी.एफ.एल. मार्शल ने करवाया था जिन्होंने भारत, बर्मा तथा श्रीलंका में तितलियों, पक्षियों पर पुस्तकें लिखी थीं। लेडी डैफरिन ने वर्ष 1885 में अपनी डायरी में लिखा कि उन्होंने इस भवन में जाकर तितलियों की विभिन्न प्रजातियों को निहारा था।

राजकुमार अमृत कौर की यह कोठी हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के प्रशानिक खंड से सटी हुई है। दुमंजिला इस भवन में कमरा नं.-6 में महात्मा गांधी वर्ष 1931 से 1946 के दौरान की गई अपनी शिमला यात्राओं के दौरान ठहरते थे। इस बाबत भवन के इस कमरे में गांधी स्मारक निधि की ओर से बाकायदा एक तख्ती चस्पां दी गई है जिसमें गांधी जी के इस भवन में ठहरने बारे जानकारी दी गई है।

इस भवन में गांधी जी द्वारा उस दौर में प्रयोग में लाए गए बर्तन व मेज व कुर्सियां यादगार के रूप में सहेज कर रखे गए हैं। साथ ही यह तथ्य भी सामने आया है कि अपनी शिमला यात्राओं के दौरान महात्मा गांधी अंग्रेज सरकार के अधिकारियों से वार्ता करने के साथ-साथ यहां पर अपना अधिकांश समय भजन गाने में भी व्यतीत करते थे। भवन के प्रभारी श्री कुंवर सिंह का कहना है कि भवन का कमरा नं.-6 गांधीजी का कमरा कहलाता है। ध रोहर के रूप में इस कमरे में गांधी जी से जुड़ी अमूल्य वस्तुओं को ही सहेजा गया है जिसमें उस दौर का फर्नीचर, बर्तन व चित्रों का एक अनूठा संगम अब भी उपलब्ध है।

उप संपादक, हिमप्रस्थ, मो. 94181 72686



स्वामी कृष्णानंद और गांधी

◆ अश्वनी कुमार

सौ साल पहले चंपारण के किसानों पर अंग्रेजों के अत्याचारों को लेकर गांधीजी ने सत्याग्रह शुरू किया था। उसके साथ ही चंपारण को गरीबी, बदहाली और नशाबंदी के खिलाफ भी मुहिम छेड़ी थी।

गांधी जी के शब्दों में 'शराब आत्मा और शरीर दोनों का नाश करती है।'

गांधी जी के प्रयासों से चंपारण के किसानों की समस्या तो सुलझ गई। उसके उपरांत गांधीजी ने चंपारन में अपना पहला आश्रम मोतिहारी शहर से 35 किलोमीटर दूर बड़हड़वा लखनसेन में बनाया जिसका मुख्य उद्देश्य था लोगों को साफ-सफाई, शिक्षा और नशामुक्ति को लेकर जागरूक करना। गांधी जी ने बड़हड़वा लखनसेन गांव में एक बांस का खंभा गड़वाया और लोगों से नशीले पदार्थ उस पर लटकवाने की अपील करते हुए नशा छोड़ने का आग्रह किया था। कई लोगों ने उस खंभे पर नशीले पदार्थों और शराब की बोतलों को टांग कर नशे से तौबा कर ली।

चंपारन के इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गांधी जी के लिए स्वतंत्रता, आजादी के सीमित अर्थ कतई न थे। वे इसे बड़े ही व्यापक अर्थों में इसे देखा-परखा करते थे। अतः गांधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जन चेतना जगाने के लिए अनेक मोर्चों पर संघर्ष किया। नमक सत्याग्रह, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, विदेशी कपड़ों की होली, विदेशी प्रशासन से पदों एवं नौकरियों का परित्याग, नशाबंदी, खादी एवं हस्तशिल्प उनके संघर्षों का हिस्सा बना था। इससे वे ग्राम स्वराज के सपने को साकार करना चाहते थे। गांधी जी के इन सामाजिक अभियानों में युवा, पुरुष, महिलाएं जुड़ीं। ब्रिटिश सरकार की लाठियां, गोलियां खाईं लेकिन पीछे नहीं हटे।

इस स्वतंत्रता संग्राम में हिमाचल के अनेक सेनानियों ने भाग लिया। इन्हीं में से एक महान स्वतंत्रता सेनानी थे - स्वामी कृष्णा नंद, जो मंडी जिले के निवासी थे। स्वामी कृष्णा नंद सुपुत्र चुड़ू राम का जन्म 5 मार्च, 1891 को हुआ। वे मकान नंबर 30/10, खनक गली, भगवाहन मुहल्ला, मंडी के निवासी थे। सन् 1921-22 में उन्हें पिकेटिंग (नशाबंदी के लिए शराब की दुकानों का घेराव) के लिए धारा 132 के अधीन एक वर्ष या कठोर कारावास मिला। खुलेआम भाषण देने के लिए अक्तूबर 1922 से सितंबर 1923 तक एक वर्ष का कारावास। अप्रैल 1930 से मार्च 1931 तक पुनः कारावास की सजा। डिफेंस ऑफ इंडिया अधिनियम के अधीन सन् 1932 से 1934 तक दो वर्ष का कारावास, भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के लिए 1942 से 1945 तक 3 वर्ष का कारावास। सन् 1952 से 1957 तक हिमाचल प्रदेश विधान सभा के सदस्य रहकर प्रदेश के गठन में आरंभिक दिनों में सामाजिक कार्यों में योगदान दिया। 16 सितंबर, 1974 को देश का यह महान सपूत हमें छोड़ कर चला गया। उनका संपूर्ण जीवन संघर्ष तथा देश सेवा के प्रति समर्पित रहा। वे पहाड़ के सच्चे गांधी वादी थे जिन्होंने गांधी जी के आदर्शों को जीवन का हिस्सा बनाया।

गांधी जी ने उनके कार्यों का स्वयं अपनी कलम से उल्लेख एवं विवेचना की है। उन्होंने गांधी जी द्वारा शुरू किए गए अनेक आंदोलनों में बढ़-चढ़कर भाग लिया और दस वर्ष तक कारावास में रहे। आज के स्वतंत्र भारत में युवा पीढ़ी मादक पदार्थों के सेवन की ओर तेजी से आकर्षित हो रही है। नशे के इस दलदल से युवाओं को बाहर निकालने के लिए गांधी तथा स्वामी कृष्णानंद के दर्शन, विचारों से अवगत करवाना अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है। उस वक्त आज की भांति अत्यधिक नशे का प्रचलन न था। गांधी जी नशे के दुष्प्रभावों के बारे बेखूबी समझते थे और यही कारण था कि नशाबंदी को गांधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम के कार्यक्रमों में एक जनव्यापी आंदोलन का रूप दिया। शराब की दुकानों के समक्ष धरना देना, स्वतंत्रता सेनानियों का एक संगठित कार्य होता था।

स्वामी कृष्णानंद जी भी गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर इस आंदोलन का हिस्सा बने।

'यंग इंडिया' दिनांक 4 अगस्त 1921 के अंक में गांधी जी

मद्य निषेध

गांधी जी भारत को मद्यपान तथा नशीली दवाओं के सेवन जैसी कुरीति से मुक्ति दिलाने चाहते थे।

उनका मानना था कि गरीब लोग अपनी कमाई को मद्यपान में गंवा देते हैं। जबकि मेहनत की उस कमाई का उपयोग परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने व बच्चों की भलाई में लगाना चाहिए। वे भारत में मद्य निषेध के हकदार थे।

'कराची के लिए अशोभनीय' शीर्ष से लिखा'

"यद्यपि मैं उन समाचार पत्रों को नहीं देख पाया हूं जिनमें स्वामी कृष्णानंद के कारावास दंड के विरोध में एक जनसमूह ने कराची में यूरोपीय जनों पर पथराव की खबर छपी थी, लेकिन सिंध के मित्रों से जो मुझे सुनने को मिला, उसको लेकर मैं मानता हूं कि जिन्होंने यह पथराव किया, उन्होंने अहिंसा की वचनबद्धता को तोड़कर उस पुण्य कार्य को ठेस पहुंचाई है जो उन्हें हृदय से प्रिय था। स्वामी निस्संदेह एक लोकप्रिय एवं निर्भीक कार्यकर्ता हैं। वे संगठित धरनों से शराब-विक्रेताओं की आमद पर उल्लेखनीय प्रभाव छोड़ रहे हैं। मैंने यह भी सुना है कि उन पर किसी के ऊपर प्रहार करने का मिथ्या आरोप लगाया गया है। इस सबको स्वीकार करते हुए भी, लोगों का यह स्पष्ट कर्तव्य था कि वे पूर्ण आत्म-संयम बरतते। निर्दोष यूरोपीय जनों पर प्रहार करना एक अत्यंत बेलिहाज़ बात है। क्योंकि पुलिस ने स्वामी पर गलत अभियोग किया है। और दंडाधिकारी ने (उन्हें) गलत दोषी ठहराया है। इस तरह की घटनाएं असहयोग आंदोलन (सविनय अवज्ञा) के कार्य को यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य बना देती हैं। जिस जन समूह ने कराची में ऐसा दुर्व्यवहार किया है, उसे चाहिए कि वह विदेशी कपड़ों के बहिष्कार तथा स्वयं कताई-बुनाई (खादी) जैसे कार्यक्रमों द्वारा स्वामी जी का सम्मान करें।"

स्वामी जी पर अंग्रेजों ने अभियोग चलाया और निर्णय के खिलाफ भीड़ उग्र हो गई। इस पर गांधी जी ने गुजराती पत्र 'नवजीवन' दिनांक 7 अगस्त 1921 में लिखा :

"स्वामी कृष्णानंद को कराची में गिरफ्तार किया गया और कारावास में डाल दिया। वह एक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली व्यक्ति हैं। उन्होंने नशा विरोधी आंदोलन में उत्कृष्ट कार्य किया है। मुझे सूचना मिली है कि उनके विरुद्ध दोषरोपण निराधार था। इस बात से मना नहीं किया जा सकता कि यह सब कुछ लागों को चोट पहुंचाने और क्रोधित करने के लिए पर्याप्त था। लेकिन असहयोग ने हमें अपने क्रोध को लाभप्रद उपाय से व्यक्त करना सिखाया है। यदि लोगों का स्वामी कृष्णानंद के प्रति स्नेह वास्तविक है, तो उन्हें मद्यपान त्यागना होगा, शराब की दुकानों पर शांतिपूर्वक धरने देने होंगे, विदेशी कपड़ों की होली जलानी होगी, चरखा चलाना होगा, हथकरघों में काम करना होगा और खादी का उत्पादन करना होगा। इस पद्धति से कार्य करते हुए वे स्वराज प्राप्त करेंगे और स्वामी जी को कारागार से मुक्त करवा पाएंगे।"

गांधी जी ने इस महान सपूत के कार्यों की सराहना की। इस पर हर हिमाचली को नाज है।

यंग इंडिया ने 25 अगस्त 1921 के अंक में भी गांधीजी ने स्वामी जी पर चलाए गए अभियोग को 'एक दिखावटी मुकदमा' कहा। इस शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने एक लंबी प्रतिक्रिया व्यक्त की :

"मैं एक पूर्व अंक में 25 जुलाई में प्रचारक, सुधारक एवं कराची में धरना आंदोलन की आत्मा स्वामी कृष्णानंद की गिरफ्तारी और तीन घंटे के भीतर उनके मुकदमें की कार्रवाई और उन्हें एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा के समाचार से भड़की कराची की एक भीड़ के अभद्र व्यवहार पर पहले ही लिख चुका हूं। न्यायालय सेना से घिरा हुआ था और वास्तव में बंद दरवाजों में ही मुकदमें की कार्रवाई हुई।" गांधी जी ने भीड़ द्वारा किए हमले तथा अहिंसा को अपनाने का उल्लेख किया।

उन्होंने स्वामी जी के विदाई संदेश पर प्रकाश डाला।

"शराब विरोधी आंदोलन को चलाए रखो गरीबों की मदद करो। इससे अच्छा वे कोई और संदेश दे नहीं सकते थे। यदि हम मद्य निषेध करते हैं और सफाई कर्मियों के प्रति कार्य करते हैं तो हम स्वराज के बहुत निकट हैं।"

स्वामी कृष्णानंद पर अंग्रेजों ने जबरदस्ती अभियोग चलाया। उनका एक ही मकसद था कि वे स्वामी जी के माध्यम से मद्य निषेध के आंदोलन को कुचलना चाहते थे। उन्हें इस अनैतिक व्यापार में राजस्व में कमी होती नज़र आ रही थी और डरी हुई सरकार ने प्रभाव जमाने के लिए बल प्रयोग की नीति से उन्हें बारह मास की कठोर सजा दी।

आज हिमाचल में भी नशा अपने पैर पसार रहा है। हमें भी स्वामी कृष्णानंद जैसा व्यक्तित्व महानायक चाहिए जो युवा पीढ़ी को नशे से मुक्ति दिला सके। वहीं गांधी जैसे मार्गदर्शक की जरूरत है। गांधी के आदर्शों को अपना कर स्वामी कृष्णानंद ने सामाजिक उत्थान पर एक अटल कार्य किया जिसपर हर हिमाचली को नाज है।

द्वारा भारद्वाज भवन, रामनगर, शिमला,
हिमाचल प्रदेश-171 004, मो. 098162 85095

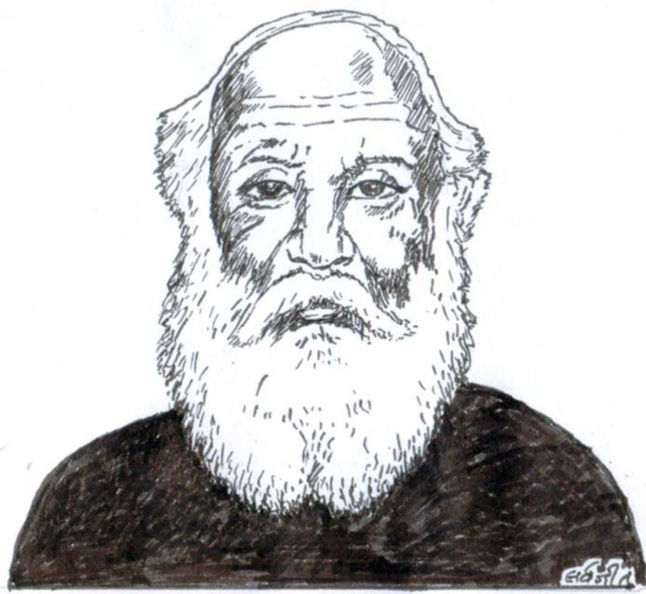
संदर्भ :

गिरिराज साप्ताहिक, स्वाधीनता स्वर्ण जयंती विशेषांक, 13 अगस्त, 1997

Famous Faces among Speeches Dipavali DebroyVikas Publicity House Pvt. Ltd. 1999

पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम

◆ आचार्य भगवान देव 'चैतन्य'



हिमाचल प्रदेश की देवभूमि ने अनेक महापुरुषों को जन्म दिया है जिन्होंने भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में अद्‌भुत कार्य करके अपना योगदान दिया है। पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम जी ऐसी ही विभूतियों में से एक थे। उन्होंने न केवल साहित्य और समाज सेवा को अपना कर्म क्षेत्र बनाया बल्कि स्वतन्त्रता संग्राम में अपना अमूल्य योगदान दिया है। उनके इसी बहु-आयामी व्यक्तित्व ने उन्हें इतिहास में अमर कर दिया है। वे न केवल हिमाचल प्रदेश में बल्कि भारत के मानचित्र पर अपना नाम अंकित कराने में सक्षम रहे है। उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में बहुत बड़ी-बड़ी विभूतियों के साथ काम किया है। आज भी हिमाचल प्रदेश में वे अपनी काव्य रचनाओं और स्वतन्त्रता आन्दोलन में काम करने के कारण जनमानस के मानसपटल पर अमिट छाप छोड़े हुए है। उन्हें बड़े ही आदर के साथ 'पहाड़ी गांधी' के नाम से स्मरण किया जाता है। उनका जन्म जिला कांगड़ा के डाडा सिब्बा नामक गांव में 11 जुलाई, 1882 में हुआ। साहित्य सृजन और देशप्रेम की भावना मानों वे जन्मजात ही लेकर आए थे। वे बचपन में ही महापुरुषों के जीवनचरित तथा गीता और महाभारत जैसी पुस्तकों का अध्ययन किया करते थे जिसके कारण उनके भीतर देशभक्ति के भाव और अधिक प्रबल हुए। वे वीर रस की कविताएं बनाकर उन्हें गांव-गांव जाकर सुनाया करते थे। इस प्रकार उन्होंने युवकों में देशप्रेम की भावना स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। तत्कालीन प्रचलित बाल विवाह प्रथा के कारण मात्र नौ वर्ष की अल्पायु में ही उनका विवाह सरस्वती देवी जी के साथ हो गया।

कांशीराम जी को अपने अध्ययन के सिलसिले में एक मित्र के साथ लाहौर जाने का अवसर मिला। उन दिनों लाहौर क्रान्तिकारियों का गढ़ था। अतः यहीं पर इनका सम्पर्क लाला हरदयाल तथा सरदार अजीत सिंह आदि के साथ हुआ। यहीं पर उन्हें साहित्य और संगीत की प्रतिभा को विकसित करने का अवसर भी मिला। सन् 1905 में जब कांगड़ा में भीषण भूकम्प आया तो ये लाहौर से कांगड़ा वापस आ गए और लाला लाजपतराय जी के साथ मिलकर भूकम्प पीड़ितों की सहायता की। समाज सेवा के साथ-साथ इनकी देशप्रेम की भावनाएं भी बलवती होती गई। सन् 1906 के आसपास अजीत सिंह के नेतृत्व में 'पगड़ी संभाल ओ जट्टा' की लहर जोरों पर थी जिसका प्रभाव बाबा गांधी पर भी पड़ा। अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों के कारण उन्हें 1920 में प्रथम बार जेल जाना पड़ा। इसके बाद तो वे अनेक बार जेल गए जिसके कारण उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएं सहनी पड़ी। इन्हें लगातार कई-कई रातों तक सोने नहीं दिया जाता था। सर्दियों में इन्हें कई घण्टों तक ठण्डे पानी में डूबोकर रखा जाता, बर्फ की शीलाओं पर लिटाया जाता। अब उनका अधिकतर जीवन जेलों में ही बीतने लगा। वे होशियारपुर, फिरोजपुर, लाहौर, मुल्तान, लायलपुर तथा कटक आदि जेलों में रहे। लालाजी के सम्पर्क से उनके भीतर देशप्रेम की भावना और अधिक प्रबल हो गई। कहते हैं कि उनके ऊपर किए गए अत्याचारों को सुनकर लाला लाजपतराय जी की आंखों में भी आंसू आ गए थे।

सन् 1931 में सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को जब अंग्रेज सरकार ने फांसी दी तो उस घटना से बाबा कांशीराम जी के मानस पटल पर गहरा प्रभाव पड़ा तथा 23 अप्रैल 1931 को उन्होंने यह दृढ़ संकल्प लिया कि जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं हो जाता, मैं काले वस्त्र ही पहनूंगा। उनके इस संकल्प के कारण ही हिमाचल के निचले क्षेत्रों में भी स्वतन्त्रता की आग तीव्र गति से फैली तथा 1931 से 1934 तक ऊना स्थित जुगलेहड़ तथा दौलतपुर चौक और जनाड़ी में कान्फ्रेंसों का आयोजन हुआ। सन् 1935 में उनके गांव डाडा सीबा में भी एक कान्फ्रेंस हुई। इसी प्रकार 1937 में गड़दीवाला होशियारपुर में भी कान्फ्रेंस हुई। इनमें अनेक प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों ने भाग लिया तथा कांशीराम जी की अहम भूमिका के लिए पं. जवाहर लाल नेहरू ने इन्हें 'पहाड़ी गांधी' के उपनाम से पुरस्कृत किया। श्रीमती सरोजिनी नायडू जी ने इन्हें 'बुलबुले पहाड़' की उपाधि से सम्मानित किया। अब हिमाचल प्रदेश में स्वतन्त्रता की आग जोर पकड़ चुकी थी तथा 1937 और 1940 के बीच नादौन, सुजानपुर टीहरा हमीरपुर, मंगवाल, धमेटा, ज्वालामुखी तथा कालेसर महादेव आदि स्थानों में सफलतम जनसभाएं हुई। बाबा कांशीराम जी अंग्रेजी दरिन्दों के अत्याचारों और अमानवीय जेल यातनाओं को सहते-सहते अन्ततः 15 अक्तूबर,1943 को भारतवर्ष की स्वतन्त्रता का सपना अपनी आंखों में संजोए- संजोए स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर आहुत हो गए।

पहाड़ी गांधी बाबा जी आने वाली पीढ़ियों के लिए सदा प्रकाश स्तंभ का कार्य करते रहेंगे। स्वतन्त्रता संग्राम के कर्मठ सिपाही होने के साथ-साथ वे एक उत्कृष्ट साहित्यकार भी थे। उनकी प्रमुख कालजयी कृतियां हैं :-

खण्ड काव्य कुणाले दी कहाणी तथा नाने दी कहाणी। उपन्यास : बाबा बालक नाथ कनै फरियाद तथा चतरो कनै रेशो। कविताएं : कोंजू के साथ चंचलो, जुलकी कनै शीदा, मेरा वीर चौराया, पहाड़ेयां कनै चुगाहालय। इसके अतिरिक्त लगभग चार-पांच सौ पहाड़ी कविताओं का भी फुटकर सृजन इन्होंने किया है। जिस प्रकार उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था उसी प्रकार उनका रचना संसार भी बहुआयामी है। जहां इन्होंने सामाजिक चेतना के स्वर अपने काव्य के माध्यम से प्रसारित किए हैं वहीं दूसरी ओर उन्होंने सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लेकर भी रचनाएं लिखी हैं। यही नहीं इनकी रोमांटिक रचनाएं भी बहुत ही सटीक है। इस सबके बावजूद मुख्य रूप से वे देशप्रेम से ओतप्रोत थे अतः उनकी रचनाओं का मुख्य विषय भी देशप्रेम ही रहा है। उनके काव्य के विभिन्न पहलुओं पर कुछ विचार करना अपेक्षित है।

सामाजिक चेतना

साहित्य और समाज का सम्बन्ध चोली दामन का है। जहां साहित्यकार समाज की परिस्थियों से प्रेरणा ग्रहण करता है वहीं दूसरी ओर वह अपनी कालजयी रचनाओं से समाज को बदलने की प्रक्रिया को भी फलीभूत करता है। बाबा गांधी ने तत्कालीन कुरीतियों को देखकर उन्हें दूर करने प्रयास किया। गरीबी का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं - 'ये गरीब भूखा मरदा है/कष्टा सिर पर धरदा है/गरीब भूखा मरदा है/ खेत दे विच खड़दा/रात नूँ घर बड़दा/गरीब भूखा मरदा है/ लम्बा बुना कपड़ा पैदा करदा/ फिर भी विन कपड़े टर-टर मरदा।' इन पंक्तियों में गरीब की स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है।

कवि किसान और गरीब की इस स्थिति का केवल आंकलन भर नहीं करता है बल्कि वह उसे वर्तमान स्थिति से ऊपर उठने की प्रेरणा देते हुए कहता है, 'जाग उठ, जाग उठ, हिन्दिया किसाना जाग वे/ खून डोल के तूं करना कमाई वे/ रल मिल गैर जान्दे तैनूं खाई वे/ लभदा नी तैनूं अलूणा साग वे/ जाग उठ, जाग उठ हिन्दिया किसाना जाग वे/ भूखां वाले बदल, नित रैहन्दे बरसदे/ भुजे दाणया नूं तेरे बाल तरसदे/ जाग उठ, जाग उठ हिन्दिया किसाना जाग वे...'

उन दिनों आर्य समाज को क्रांतिकारियों का पर्याय ही माना जाता था। बाबा जी पर भी लाल लाजपत राय, अजीत सिंह, भाई परमानंद तथा लाला हरदयाल जैसे आर्य समाजी नेताओं का प्रभाव गहराई से पड़ा होगा, तभी वे उन दिनों जात-पात पर इतनी सटीक नजर रख सके। यही प्रेरणा उनकी बाल विवाह तथा विधवा विवाह आदि कविताओं पर भी परिलक्षित होती है। बाल विवाह के बारे में वे लिखते हैं, "छोटी कुड़ियां बेवा हुन्दियां/ छिड़कां ताने सुण-सुण रोन्दियां/ हां बदनाम उमरा खोन्दिया/ बेवा करे विचार, अंखियां खोल जरा...' विधवा विवाह के बारे में उनके विचार विचारणीय हैं- 'रण्डुए दी करो बेवा नाल शादी/ हो कम खर्च न हो बरबादी/ करो तुसां घर-घर मुनादी/ हो जाए प्रचार/ भाइयो करना देश सुधार...।'

सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना

धर्म और संस्कृति किसी भी समाज की रीढ़ की हड्डी हुआ करती है। जिस समाज में धार्मिक और सांस्कृतिक विरासत को सहेज कर रखने की हिम्मत है, वह समाज कभी पतन की ओर नहीं जा सकता है। इन मानव मूल्यों को हम जितना-जितना छोड़ते चले जाते हैं, उतना ही हम पतन की ओर बढ़ते चले जाते हैं। स्वर्ग-नरक तथा कलियुग-सतयुग वास्तव में हमारे कर्मों के आधार पर ही बनता है। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए कवि कहता है, 'कर्म अच्छे या बुरे/भलाई बंदी ता नेकी/नेकियां करदे कम बुराई/भला करन्दया बुरा हुन्दा/ कलजुग-सतजुगे कुत्थु आउन्दा/न सतजुग न कलजुग...।' बाबा जी स्वयं सादगी पसन्द थे इसलिये वे औरों को भी जीवन और उच्च विचार रखने की प्रेरणा देते हुये कहते हैं-'सादा पहनों कपड़ा/सादा रोटी खाओ तुम/सादगी में कांशी रहना/तब कहीं होश आयेगा/रस्मों रिवाजों में आपके/खर्च गो है बहुत ही/खर्च कम गर हो सके/तो दुनियां बच जायेगी...।'

गौ भक्ति के बारे में वे अपनी एक रचना में लिखते हैं-'जरा हिन्दू कर ख्याल देखो/हिन्दू गऊओं की सेवा कर भाई... ।' कवि पर महात्मा गांधी जी के जीवन का विशेष प्रभाव रहा है इसलिये उनके मन में सत्य के प्रति गहरी आस्था है। सत्य ही व्यक्ति और समाज की उन्नति का आधार है-'सच्च कदी नी मुकदा ए/ झूठ कदि नी पचदा ए/जिन्दड़ी कदि नी रैहणी ए/ पापा कदि नी फलणा ए... ।' वास्तव में पाप और पुण्य की कसौटी व्यक्ति के कर्म ही हैं। अंततः व्यक्ति को परमात्मा की प्राप्ति के बाद ही चिर शांति मिल पाती है। इसके लिये व्यक्ति को ध्यान योग आदि की प्रक्रियाओं से गुजरना होता है। ये प्रक्रियायें हमें कोई पहुंचा हुआ गुरु ही बता सकता है। हमारे शास्त्रों में मां को ही व्यक्ति का प्रथम गुरु कहा है। बाबा कांशी राम जी मानो लाली मेरे लाला की जित देखुं तित लाल। लाली देखन मै। गई मैं भी हो गई लाल। कबीर की सी स्थिति की अनुभूति को इस प्रकार व्यक्त करते हैं- 'इक अन्दरों लौ महान हुई/ध्यान दी जोत जल पई/ दुःख-सुख सब बराबर होया/अपना पराया रिहा न कोई/कुणाल ऋषि महान बणी गया... ।'

रोमांटिक कवितायें

बाबा कांशी राम जी के रचना संसार में हमें रोमांटिक रचनायें भी उतनी ही सटीक और सजीव लगती हैं जितनी अन्य रसों की। किसी सुन्दरी के सौंदर्य का सजीव चित्रण देखिए - 'घणे काले बालां दे गइयो/उजली सीधि मांग/जिंहा कालियां घटां च/उड़दया चिट्टयां बगुलया दी कतार... । एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं-'दिल साडा बुझा-बुझा है/दिल साडा डूबा डूबा है/आज और भी रूसा-रूसा है/मेरा हाल सुणी सारे गलान्दे/आज उन्हां दी अंखा/कोई झक्खड़ रूका-रूका है... ।'

देश प्रेम

बाबा कांशीराम जी मुख्य रूप से देश प्रेम के ही कवि है। यह देशप्रेम उनके काव्य में अनेक रूपों में प्रकट हुआ है। अंग्रेज सरकार के अत्याचार और शोषण का चित्रण देखिए- 'फिरंगियां ने सारा पिण्ड/फाह ते लाया/सतियां दा सत गवांया/मां दी कोख भी खाली हुयी। 'देशद्रोहियों ने इस बेले/साड़े ते जुल्म ढाए थे/तोंपा दे मुहें फिरंगिया ने बने/सिर धड़ दी बाजी लाई/भारत मां जो आजाद कराण तायी/मांवा दे पुत्र चढ़े फांसियां, केयी दिन केयी रातांःबणे विच फिरदा रहेया/जड़ी बूटियां, फल पौदे खाई-खाई/गुजारा किता। अधी कच्ची अधी पक्की रोटी/नाल मिलदी सबजी भी फिक्की/एओ घान्दे जेला दे लोकी/भेड़ी दन्दा नालों जेहड़ी घटदी वी नहीं। रोटियां मंगदया मार पौन्दी/बोलों न तुस्सा नौकरशाही कैहन्दी/मरो तुसी ते चाहे जीओ, सानु न कहो/पापिया पाप कमाया डाँगा मार मुकाया... ।'

देशप्रेम यह नहीं देखता है कि मैं किस जात या बिरादरी का हूँ। क्रान्तिकारियों के लिए समूचा भारत ही अपना था। इस प्रकार के भाव इस कविता में परिलक्षित है- 'एह मत पुछ मेरिए बैहणे/मैं कुण, कुण घराना ए मेरा/सारा हिन्दुस्तान है मेरा/भारत मां है माता मेरी/ओ जंजीरा जकड़ी है/ओ अंग्रेजा पकड़ी है/उस जो आजाद कराणा ए।' कवि ने युवकों को प्रेरणा देने के लिए पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप, झांसी की रानी तथा शिवाजी आदि की वीरता का स्मरण अपनी कविताओं में कराया है। इतिहास के और भी बहुत से उजले पन्नों का वर्णन उनकी रचनाओं में मुखर हुआ है। सुखदेव, राजगरु, भगतसिंह आदि कितने ही क्रान्तिकारी अपनी भारत मां के लिए कुर्बान हो गए। कवि इसी में इस जीवन की सार्थकता देखता है- 'कांशीराम जिन्द गवाणी/जिन्द लाज नी लाणी/इक्खो बार जमणा/अम्मा बाबे दी लाज रखणी/देश बड़ा है कौम बड़ी है/जिन्द अमानत उस देश दी/कुलजा मत्था टेकी कने/इन्कलाब बुलाणा/आ कांशी आसा फिरी जेलां जाणा... ।' वे इन्ही भावों का संचार युवकों में करना चाहते थे जो उन्होंने अपनी एक कविता में इस प्रकार व्यक्त किए है- 'उठ जवान मुल्ख है तो गुलाम/कोई बेला सी दुनियां उते रोशन तेरा भारत/आज देख ले गैरा किता इस नूँ मारत 'कुस कम तेरा रंग-रूप/कुसकम तेरी जवानी/कुसकम तेरा इल्म हुनर/कुसकम ते बलवानी/मरी न देश दी खातिर तें/लेवे न आजादी।' कवि का कहना है कि जवानी वास्तव में वही महान है जो देश और अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए बलिदान होने का मादा रखती हो। बाबा कांशीराम जी का जीवन और रचना संसार हमें इसी प्रकार की प्रेरणा देता है। वास्तव में कोई भी व्यक्ति यदि इतिहास में जीवित रहना चाहता है तो उसे अपने देश के लिए मर मिटने के लिए सर्वदा तैयार रहना चाहिए। अपने लिए जीने वाला व्यक्ति न तो अपना और न ही अपने देश या समाज का भला कर सकता है। ऐसे लोगों को ही स्वार्थी कहा गया है। परार्थ के लिए जीने वाला व्यक्ति ही इतिहास में नक्षत्र बनकर सदा-सदा चमकता रहता है और अपनी रोशनी से आने वाली पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त करता रहता है।

अक्तूबर 15, 1943 को बाबा जी का देहान्त हो गया मगर अपने महान कार्यों के कारण वे आज भी हमारे हृदय में वास कर रहे है। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने जंहा उन्हें 'बुलबुले पहाड़/कहा, नेहरू ने उन्हें 'पहाड़ी गांधी' कहा। वहीं श्रीमती इंदिरा गांधी ने 23 अप्रैल, 1984 को ज्वालामुखी में इनका डाक टिकट जारी किया। पहाड़ में इस महापुरुष को सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके पद चिन्हों पर चलते हुए अपने जीवन को ठीक उसी प्रकार सार्थकता प्रदान करें, जिस प्रकार उन्होंने अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया हो। वे एक सच्चे गांधीवादी थे जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन सत्य, सादगी, देशसेवा, गरीबों के उत्थान के लिए समर्पित किया।

गांव व डाकघर महादेव, सुंदरनगर, जिला मंडी,
हिमाचल प्रदेश-175 018, मो. 0 94180 53092

पहाड़ में महात्मा का सच्चा अनुयायी गोपाल दत्त शर्मा

◆ कुलदीप चंदेल



हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर जिले के गांव कनौण डाकखाना धौन कोठी के कोई सवा सौ साल पहले की घटना है। यहां का एक व्यक्ति परिवार से किसी बात पर नाराज होकर अपनी पत्नी संग कुल्लू के सरवरी चला गया। वहां उस व्यक्ति के घर 20 अप्रैल, 1900 को एक पुत्र का जन्म हुआ जो बाद में महात्मा गांधी के विश्वास पात्र स्वतंत्रता सेनानी पंडित गोपाल दत्त शर्मा के नाम से मशहूर हुए।

स्वतंत्रता सेनानी पंडित गोपाल दत्त शर्मा के पिता का नाम श्री मिश्रु राम और माता का श्रीमती नानकी देवी था। तेरह वर्ष तक गोपाल दत्त कुल्लू में ही रहे। वहां संस्कृत व ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान अर्जित किया। बचपन में ही वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान बन गए थे। लेकिन होनी को कुछ और मंजूर था। इसी बीच उनके माता-पिता का अचानक निधन हो गया। बालक गोपाल दत्त अनाथ हो गया। ग्रामवासी उसे वापिस उसके पैतृक गांव बिलासपुर के कनौण गांव ले आए।

माता-पिता का साया तो सिर से उठ चुका था। गोपाल दत्त के बाल-मन को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? जो कोई प्यार से बुलाता, उसका अहसानमंद हो जाता। उन दिनों इलाके के लोग रामपुर बुशहर रियासत क्षेत्र में इमारती लकड़ी काटने का काम करने जाया करते थे। यह लकड़ी ठेकेदार सतलुज नदी के पानी में बहा कर पंजाब के रोपड़ की तरफ बेचने के लिए ले जाया करते थे।

बालक गोपाल दत्त को भी उसके गांव के लोग अपने साथ मेहनत मजदूरी करने ले गए। उन्होंने सोचा कि चार पैसे कमाएगा तो इसी के काम आएंगे। उसने कुछ वर्षों तक इस कार्य को किया। ठेकेदार का विश्वास पात्र बना। उसने उसे मजदूरी के बदले पूजा पाठ का कार्य सौंपा।

जब गोपाल दत्त सत्रह वर्ष का हुआ तो उसे ज्ञात हुआ कि बिलासपुर के महल के बाहर स्थित सांढू मैदान में फौज की भर्ती होने वाली है। उस भर्ती में पांच फुट आठ इंच लंबे पतले छरहरे तरुण गोपाल को फौज में भर्ती तो कर लिया लेकिन आदेश हुआ कि जब वह अठारह वर्ष का होगा तो उसे सेना में भर्ती किया जाएगा।

बाद में गोपालदास ने 13 डोगरा रेजिमेंट में 1369 नंबर के साथ ग्यारह साल तक अंग्रेजी सेना की नौकरी की। वह सिपाही से नायक बना। उस वक्त देश में स्वतंत्रता संग्राम अपनी चरम सीमा पर था। गांधी जी के आह्वान पर हजारों युवा इस संघर्ष में कूदे थे। गोपाल दत्त ने भी गांधी के आह्वान पर सेना की नौकरी छोड़ कर स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल होने का प्रण किया। अंग्रेज अफसरों ने उसे समझाया लेकिन वह नहीं माना। गांधी जी के विचारों का उसके मन-मस्तिष्क पर इतना प्रभाव पड़ा कि यह युवक भारत माता की परतंत्रता की बेड़ियां काटने आगे हो लिया। सेना की नौकरी छोड़ कर अपने गांव वापिस आ गया।

उस वक्त गोपाल दत्त की आयु 28 वर्ष थी। वर्ष 1928 में उन्होंने अपने गांव में एक दस फुट चौड़ा व तीस फुट लंबा मिट्टी के गारे व पत्थरों का कमरा बनाया। इसे ऊपर से घास-फूस से छाया गया था। इस कमरे में हिंदी संस्कृत की पाठशाला खोली।

> **वर्ष 1934 में जब गोपाल दत्त जेल से छूट कर बिलासपुर आए तो राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने उन्हें कहा, "अब इंकलाब जिंदाबाद नहीं कहना'। लेकिन पंडित जी कहां मानने वाले थे। उन्होंने वहीं खड़े-खड़े 'इंकलाब जिंदाबाद' का नारा लगाया। सभी स्तब्ध रह गए। राजा ने इस बार उनकी सिपाहियों से पिटाई करवाई और छोड़ दिया। 1930 के गांधी जी के नमक सत्याग्रह में भी गोपाल दत्त शर्मा ने भाग लिया था। उम्र बढ़ रही थी। सगे- संबंधियों ने उन पर शादी करने का दबाव डालना शुरू कर दिया था। आखिर 1936 में वह सरस्वती नाम की कन्या से विवाह बंधन में बंध गए। उनके पांच पुत्र सर्वश्री सुखदेव, प्रेमनाथ, विजयराम, कर्मचंद व पुरुषोत्तम तथा चार पुत्रियां सावित्री देवी, कीर्ति देवी, शीला देवी व मीरा देवी हुईं।**

गोपाल दत्त अब यहां गांव के बच्चों के साथ-साथ अनपढ़ लोगों को भी पढ़ाने लगे। धीरे-धीरे इस पाठशाला के द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन की गतिविधियों को भी बढ़ाया जाने लगा। वे पाठशाला में आने वालों के बीच गाया करते, "आज का मनुष्य कर्मवीर चाहिए शक्तिमान सिंधु सा गंभीर चाहिए।" फिर अपने छात्रों को अपने पीछे गाने गुनगुनाने को कहते थे। कविता की यह पंक्ति जीवन भर उनके द्वारा युवाओं के बीच राष्ट्रभक्ति की ऊर्जा का संचार करती रही। जहां भी उन्हें युवा मिल जाते तो गुनगुनाने लग जाते थे।

दो वर्ष तक गांव में रह कर अपनी पाठशाला में हिंदी संस्कृत पढ़ाने का कार्य किया। लोगों में स्वतंत्रता आंदोलन की लौ प्रज्वलित करने का भरपूर प्रयास किया।

वर्ष 1930 में कहलूर रियासत का प्रबंध करने के लिए अंग्रेज सरकार ने यहां एक काउंसिल गठित कर रखी थी। पंजाब सिविल सर्विस का एक अधिकारी चंदुलाल उसका प्रधान बना। लेकिन प्रबंध के नाम पर रियासत में कुप्रबंध था। जिसका नतीजा यह निकला कि खजाना खाली हो गया था। लोगों पर कई तरह के टैक्स लगा दिए थे। अंग्रेज सरकार का एजेंट बिलासपुर में रह कर सब इंतजाम देख रहा था। जैसे ही लोगों से कर उगाही होने लगी तो वह भड़क उठे।

इधर गोपाल दत्त ने अपने साथियों के साथ विद्रोह का बिगुल बजा दिया। लोग उन्हें अब सम्मान के साथ पंडित जी कहने लगे थे। वे धोती कुर्ता पहनते थे। उन्होंने साफ एलान कर दिया, "कोई भी किसी प्रकार का टैक्स न दे। बेगार न करे। नजराना आदि कुछ भी नहीं दिया जाए।"

उनकी बात का लोगों पर असर हुआ। जन आंदोलन भड़क गया। पंडित गोपाल दत्त शर्मा सहित उनके उन्नीस साथी देशद्रोही घोषित कर दिए गए। अब वे सभी भूमिगत होकर अपने गांव के सांगन जंगल में जा छुपे। वहां ये सभी मलोखर की एक बड़ी गुफा में रहते थे। जहां से वे अंग्रेज सरकार व उसके पिट्ठू राजा के खिलाफ छुप कर गतिविधियां चलाते थे।

इस गुफा में इनमें से एक व्यक्ति की अचानक बीमार हो जाने से मृत्यु हो गई। उधर अंग्रेज सरकार की पुलिस के सिपाही इन घोषित देशद्रोहियों को पकड़ने के लिए आ धमके थे। वे सीधे पंडित जी के घर में घुसे। वहां तलाशी ली। लेकिन वहां कुछ कागजात देखकर एक अंग्रेज पुलिस अधिकारी बोला, "ओह, यह तो हमारी सेना का जवान है।"

लेकिन उसी दौरान इनका एक साथी घुंघर नमहोल में अंग्रेज पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। मजबूर होकर इन्हें भी आत्मसमर्पण करना पड़ा।

उस समय रियासत के प्रथम श्रेणी मैजिस्ट्रेट राम सिंह के आदेशों से स्वतंत्रता सेनानियों के दल के मुखिया गोपाल दत्त को सात साल की कैद व दो सौ रुपये जुर्माने की सजा सुनाई गई। सजा काटने उन्हें पंजाब के फरीदकोट जेल भेजा गया। वे गुनगुनाते हुए चल पड़े, "आज का मनुष्य कर्मवीर चाहिए शक्तिमान सिंधु सा गंभीर चाहिए।"

जेल तो जेल थी। वह भी अंग्रेज सरकार के समय की। जहां हर तरह की यातनाएं दी जाती थीं। एक फटे पुराने कंबल के सहारे कड़ाके की ठंड में रात-रात भर जाग कर समय काटना पड़ता। जालिम अंग्रेज भोजन में रेत कंकड़ डाल कर आगे कर देते थे। पंडित गोपाल दत्त शर्मा ने जेल अधिकारियों के इस व्यवहार पर भूख हड़ताल कर दी।

इधर कहलूर रियासत का युवा नरेश आनंद चंद राजस्थान के मयो कॉलेज से पढ़ाई करके वापिस बिलासपुर आ गया था। नौ जनवरी 1933 को उसे राजकाज के पूरे अधिकार मिल चुके थे। उसने राज संभालते ही प्रजा की सहानुभूति प्राप्त करने हेतु जेल में बंद सभी कैदियों के रिहाई के आदेश दे दिए थे। अंग्रेज सरकार को भी लिख कर दे दिया कि फरीदकोट से भी कैदी रिहा कर दिए जाएं।

वर्ष 1934 में जब गोपाल दत्त जेल से छूट कर बिलासपुर आए तो राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने उन्हें कहा, "अब इंकलाब जिंदाबाद नहीं कहना'। लेकिन पंडित जी कहां मानने वाले थे। उन्होंने वहीं खड़े-खड़े 'इंकलाब जिंदाबाद' का नारा लगाया। सभी स्तब्ध रह गए। राजा ने इस बार उनकी सिपाहियों

से पिटाई करवाई और छोड़ दिया।

1930 के गांधी जी के नमक सत्याग्रह में भी गोपाल दत्त शर्मा ने भाग लिया था। उम्र बढ़ रही थी। सगे- संबंधियों ने उन पर शादी करने का दबाव डालना शुरू कर दिया था। आखिर 1936 में वह सरस्वती नाम की कन्या से विवाह बंधन में बंध गए। उनके पांच पुत्र सर्वश्री सुखदेव, प्रेमनाथ, विजयराम, कर्मचंद व पुरुषोत्तम तथा चार पुत्रियां सावित्री देवी, कीर्ति देवी, शीला देवी व मीरा देवी हुईं।

इतने बड़े परिवार को रहने के लिए मिट्टी पत्थर व घास फूस की छत वाला वही पैतृक कमरा व रसोई तथा एक मवेशीखाना था। पंडित जी महीने में बीस दिन तो देश के काम में स्वतंत्रता आंदोलन को तेज करने में लगे रहते। वे अंग्रेजों के खिलाफ लड़ते। घर में पसरी गरीबी को उलीचने में उनके पास समय ही नहीं था। हालांकि वे कर्मकांडी ज्योतिष पढ़े हुए ब्राह्मण थे। परिवार का पेट तो पाल ही सकते थे। लेकिन उनका देश सेवा का जुनून परिवार की भूख मिटाने पर भारी पड़ता था। पत्नी 'सी' तक नहीं करती। पति भूखा सोया है तो वह भी बच्चों संग वैसे ही सो गई। उन्होंने कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया।

महात्मा गांधी जब भी शिमला आते तो पंडित गोपाल दत्त शर्मा को विचार-विमर्श हेतु जरूर बुला लेते। दिल्ली से एक संदेश वाहक गांधी जी का संदेश लेकर उनके घर आता और वह चुपचाप उठ कर चल देते थे। बैठक में गांधी जी पंडित जी को अपने दायीं ओर बिठा कर सलाह मशवरा करते। यही नहीं, गांधी जी कहा करते कि पहाड़ में हमारे पास गोपाल दत्त जैसा दृढ़ निश्चय वाला आदमी है।

1946-47 की बात है। पंडित जी घर से बाहर थे। उनकी पत्नी श्रीमती सरस्वती देवी पंजगाईं में रग्गा राम दुकानदार के पास लैंप जलाने के लिए मिट्टी का तेल लेने गई। दुकानदार ने तेल देने से यह कह कर मना कर दिया कि यह इंकलाबिए की घरवाली है। इसे तेल नहीं मिलेगा। स्वतंत्रता सेनानी पंडित गोपाल दत्त शर्मा की पत्नी रुआंसी सी होकर वापिस आ गई। घर में अंधेरा ही रहा।

कुछ दिनों बाद जब पंडित जी घर आए तो उन्हें दुकानदार के व्यवहार बारे में बताया गया। वे एक लंबा सांस खींच कर बोले, "यदि ऐसे स्वार्थी लोग नहीं होते तो यह देश कब का आजाद हो गया होता।"

आखिर 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद होने की घोषणा हो गई थी। पंडित जी ने भी इस अवसर पर अपने घर पर तिरंगा झंडा लहराने की घोषणा कर दी। राजा के मुखबिरों को इस बात का पता चल गया। उन्होंने राजा तक खबर पहुंचा दी। उधर केशवानंद नाम का एक व्यक्ति पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार शिमला से तिरंगा झंडा लेकर आया और चुपचाप पंडित जी को दे दिया। इधर राजा के सिपाही घर के आसपास पहरा देते हुए पंडित जी की हर गतिविधि पर नजर रखे हुए थे।

15 अगस्त की सुबह ठीक पांच बजे पंडित गोपाल दत्त शर्मा ने अपने घर की छत पर तिरंगा झंडा लहराया और इंकलाब जिंदाबाद की गगनचुंबी नारा लगा दिया। सब तरफ हलचल मच गई। राजा के सिपाहियों के पसीने छूट गए। यह सब कैसे हो गया? वे सोच रहे थे। लेकिन बिजली की फुर्ती से वे पंडित जी को दबोच कर उन्हें हथकड़ियां और पांव में बेड़ियां डाल चुके थे।

जब सिपाही पंडित जी को गिरफ्तार करके ले जाने लगे तो उन्होंने गांव के एक व्यक्ति से कहा, "सरस्वती बीमार है। उसे वैद्य से दवाई लाकर दिलवा देना।" और फिर इंकलाब जिंदाबाद के नारे लगाते हुए चले गए। उन्हें राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने उन्हें तीन महीने की कैद की सजा सुनाई।

अब देश आजाद हो चुका था। राजाओं के राज समाप्त थे। अंग्रेज देश छोड़ कर भाग गए थे। 1954 में देशभर में पंचायतों के गठन की प्रक्रिया शुरू करवाई थी। पंडित गोपाल दत्त शर्मा को लोगों ने धार टटोह पंचायत का निर्विरोध प्रधान चुना। अंतिम समय तक वे पंचायत के निर्विरोध प्रधान बनते रहे।

वर्ष 1962 में चीन ने भारत पर हमला कर दिया। पंडित गोपाल दत्त शर्मा जी को पता चला कि देश का खजाना खाली है। हथियार खरीदने के लिए देश को धन की जरूरत है। सोना देकर ही देश को हथियार मिलेंगे। उन्होंने विनम्रता से अपनी धर्मपत्नी को आभूषण देने का आग्रह किया।

उनकी पत्नी सरस्वती बोली, "मेरे आभूषण तो आप हैं। ले लो इन्हें। दे दो जहां देने हैं।"

पंडित जी बोले, "ले. गवर्नर बजरंग बहादुर भद्री बिलासपुर आएंगे। उनके पास आभूषण तुमने मेरे साथ चल कर खुद देने हैं।"

इस तरह घोर गरीबी में जीवन यापन करने वाले महान स्वतंत्रता सेनानी पंडित गोपाल दत्त शर्मा ने एक सार्वजनिक समारोह में देश के लिए अपनी पत्नी के आभूषण उसी के हाथों अर्पित करवा दिए।

स्वतंत्रता सेनानी पंडित गोपाल दत्त शर्मा के पुत्र भूतपूर्व सैनिक प्रेमनाथ के अनुसार, "पिता जी की यादों को साझा करते हुए बताया कि वे बुढ़ापे में घर से थोड़ी दूर बाग में एक कुटिया बना कर रहते थे।"

महात्मा गांधी के विश्वास पात्र स्वतंत्रता सेनानी पंडित गोपाल दत्त शर्मा का जीवन एक आदर्शमय जीवन रहा। घोर गरीबी उन्हें तोड़ नहीं सकी तथा कोई भी प्रलोभन उन्हें झुका नहीं पाया। खरीद नहीं सका।

212/2, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश-174 001,
मो. 0 93185 08700

गांधीवादी महाशय तीर्थ राम

◆ विवेक शर्मा



महात्मा गांधी के शब्दों में इतनी शक्ति थी कि उनके आह्वान पर भारतवासी मर मिटने को तैयार हो जाते थे। मैदानों से लेकर पहाड़ों तक एक सा असर होता था। गांधी जी के स्वतंत्रता आंदोलन की कमान संभालने के उपरांत उन द्वारा आरंभ किए गए सभी आंदोलनों जैसे चंपारन, अहमदाबाद खेड़ा, रॉलेट सत्याग्रह, खिलाफत और असहयोग आंदोलन, (1919-1920), साइमन कमिशन का बहिष्कार, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन तथा खादी की उपयोग जैसे कार्यक्रमों में लाखों भारतीयों ने भाग लिया। ऊना जिला जो पहले पंजाब प्रांत का हिस्सा था, के गांव व डाकखाना ओयल तहसील अंब के महाशय तीर्थ राम सच्चे गांधीवादी थे। उन्होंने आजीवन खादी वस्त्र पहने तथा गांधी जी के दर्शन को आत्मसात किया। महाशय तीर्थ राम ने गांधीजी की विचारधारा को बढ़ाने के लिए गांधी सेवा आश्रम ओयल की स्थापना की। महात्मा गांधी ने ओयल आश्रम के लिए अपने संदेश में लिखा, "मेरी आशा है कि यह प्रयत्न सफल होगा।" म. क. गांधी (देखें चित्र)

गांधी जी की मनोकामना ओयल आश्रम ऊना के लिए

वर्ष 1940 में महात्मा गांधी ने इस आश्रम के कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण एवं मार्गदर्शन हेतु अपनी शिष्या मीरा बेन, जो ब्रिटिश एडमिरल की सुपुत्री थीं और जिसका वास्तविक नाम मिस स्लेड था, को आश्रम में भेजा। मीरा बेन ने आश्रम परिसर में ही एक अलग कुटिया में रहते हुए ऊना, देहरा, अंब और गगरेट आदि में ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर गांधी जी का संदेश जन साधारण तक पहुंचाया। सन् 1942 में महात्मा गांधी के भारत छोड़ो आंदोलन के संदेश 'करो मरो' को ओयल आश्रम के कार्यकर्ताओं ने छाप कर लोगों में प्रचारित करना आरंभ किया।

इस आंदोलन को पहाड़ों में गति देने के लिए चिंतपूर्णी में 18 अगस्त, 1942 को एक राजनैतिक सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन की भनक अंग्रेजों को लग गई और पुलिस ने श्री लक्ष्मण दास चौधरी, बलदेव सिंह, श्री भागमल कुठेड़ा, श्री अमर दास कुठेड़ा कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया।

महाशय तीर्थ राम, पंडित हंसराज ओयल, श्री जगदीश राम सम्मेलन में पहुंच गए। पुलिस ने इन सभी कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर 27 दिन थाना अंब की हवालात में रखा। तहकीकात के उपरांत महाशय तीर्थ राम ओयल को दो वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया तथा मुलतान जेल भेज दिया गया। जब वे जेल से छूट के आए तो ओयल आश्रम पुलिस के कब्जे में था। उन्होंने संघर्ष कर आश्रम को पुलिस के कब्जे से मुक्त करवाया। उसी दौरान लाहौर से पंडित ओम प्रकाश को आश्रम में बुलाया गया और वहां पर हरिजन सेवक संघ चरखा संघ और ग्राम उद्योग संघ आदि का गठन किया गया।

उप संपादक, गिरिराज, मो. 0 98171 14806

संदर्भ : ऊना जनपद एक परिचय, जिला प्रशासन ऊना, 2011, समाज धर्म प्रकाशन द्वारा प्रकाशित

चरखे से स्वराज की लौ जगाते सुखदयाल

◆ सुरेंद्र कुमार सेन



"**मुझे** याद नहीं पड़ता कि सन् 1908 तक मैंने चरखा या करघा कहीं देखा था। फिर भी मैंने 'हिंद स्वराज' में यह माना था कि चरखे के जरिए हिंदुस्तान की कंगालियत (गरीबी) मिट सकती है। और यह तो सबके समझ सकने जैसी बात है कि जिस रास्ते भुखमरी मिटेगी उसी रास्ते स्वराज मिलेगा।

गांधी जी ने चरखे का प्रयोग अपने आश्रम साबरमती (अहमदाबाद) से आरंभ किया और व धीरे-धीरे स्वराज प्राप्ति का प्रतीक बन गया। उनका स्वदेशी में पूर्ण विश्वास था क्योंकि उसके द्वारा हिंदुस्तान की आधी आबादी को काम दिया जा सकता था। उनके समय का सदुपयोग किया जा सके तथा उनका काता हुआ सूत बुनवाना और उसकी खादी लोगों को पहनाना, यही मेरा विचार है और यही मेरा आंदोलन है।"

गांधी जी ने चरखा आंदोलन को अपने जीवन का हिस्सा बनाया। उनके प्रयासों से घर-घर में सूत कताई तथा खादी का उत्पादन आरंभ हुआ। गांधी स्वयं भी खादी के कपड़े पहनने लगे और खादी आंदोलन का हिस्सा बनी।

सूत का धागा, स्वराज्य तथा स्वावलंबन का प्रतीक बना। गांधी जी के अवसान के उपरांत भी अनेक लोगों ने सूत के धागे से स्वावलंबन की इबारत लिखी। ऐसे ही गांधी जी के सच्चे अनुयायी श्री सुखदयाल हैं जिन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी से प्रेरित होकर 1964 में मात्र पांच रुपये में चरखा खरीद कर बुनकर बनने का सफर शुरू किया था। जो आज छः दशकों से जारी है। उनके चरखे से आज भी स्वावलंबन का संदेश पहाड़ों की वादियों में गूंज रहा है।

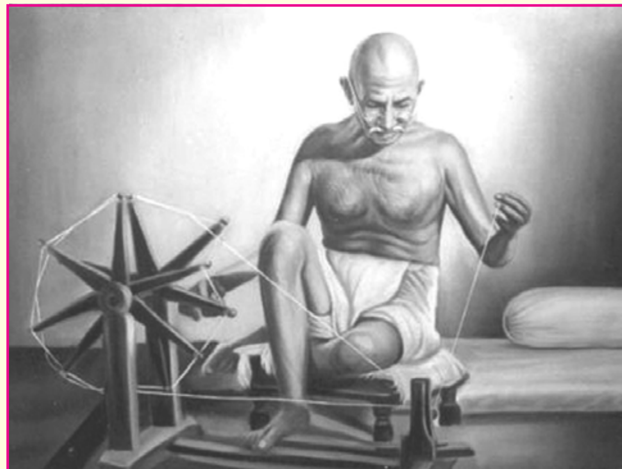
सुखदास का जन्म जनजातीय जिले लाहौल स्पीति के मशहूर गांव ठोलंग, जो चंद्रभागा नदी के दाएं किनारे बसा है, में वर्ष 1954 में अत्यंत गरीब परिवार में हुआ। तीन भाइयों में सबसे छोटे सुखदयाल के पिता का निधन जब वे मात्र डेढ़ वर्ष के हुए तो हो गया। गरीबी के साथ-साथ बेसहारा हो गया। मां छोड़ कर चली गई। दादी ने पाला-पोसा। परिवार ने सहारा दिया। गरीबी तथा जीने का संघर्ष बाल्यकाल से आरंभ हुआ। पढ़ाई तो कोसों दूर रही। 10-11 वर्ष में भेड़-बकरी चराने का कार्य किया। शीत मरुस्थल में रहकर तो जीवन में कुछ करने की उम्मीद न थी। रोहतांग पार कर कुल्लू घाटी आए। और 12 वर्ष की आयु में खड्डी का कार्य सीखना आरंभ किया। स्वण्णनी को गुरु बनाया। गरीबी ने यहां भी साथ न छोड़ा। कई दिन तो बस गुड़ और पानी पीकर गुजारा किया। जब ज्यादा भूख लगती तो पेट पर गाची (कपड़ा) बांध कर भूख मिटाई।

लगन तथा मेहनत से खड्डी के धागों के ताने-बानों से जूझना सीखा और धागों को कपड़े पर बदल कर, गुरुजी व ग्राहकों का दिल जीतना शुरू किया तो लगा अब कुछ मुकाम पा लिया है।

घर का गुजारा चलाने के लिए खड्डी के साथ मजदूरी का कार्य भी किया। आलू के मौसम में आलू की ढुलाई कर पैसे कमाएं।

वर्ष 1980 में बतौर चतुर्थ श्रेणी की नौकरी मिली। बस मन में तो कुछ नया करने तथा खड्डी से नाम कमाने का था। सुबह-शाम, छुट्टी के दिन खड्डी पर पट्टी, दोटड़, मफलर बनाने का

चरखे की उपयोगिता



चरखे के बारे में गांधीजी ने कहा कि चरखा स्वराज का प्रतीक है। आर्थिक दृष्टि से वही सर्वोत्तम साधन है। कताई-बुनाई के जरिए हर आदमी ईमानदारी के साथ काम करके दो रुपये रोज कमा सकता है। इसीलिए चरखे का चलन हर परिवार को अपने यहां शुरू करना चाहिए।

बॉम्बे क्रॉनिकल

23-4-1921

सिलसिला जारी रखा। इस चरखे व खड्डी से गांव ढोलंग में मकान, जमीन तथा कुल्लू में जमीन खरीदी। मकान बनाया। जीवन में आगे बढ़ने में पत्नी देवदासी का सहयोग रहा। सुखदयाल का खड्डी का संघर्ष, घर की परेशानियों के साथ भी चलता रहा।

ढोलंग गांव के मास्टर किशन दास ने सुखदयाल को खड्डी का काम ताउम्र न छोड़ने की सलाह दी थी। उनकी इस सलाह से वे आज भी 50 वर्षों से अधिक समय से सूत कातना, चरखा चलाने का कार्य कर रहे हैं।

उन्होंने लाहौल स्पीति सहित कुल्लू में भी सहकारिता की लौ को आगे बढ़ाया है।

सुखदास को अपने इस कार्य के लिए ठाकुर वेदराम जयंती पर राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा जा चुका है। 15 फरवरी 2015 को हिमाचल केसरी पुरस्कार प्रदान किया गया। लता मेमे फाउंडेशन द्वारा भी उत्कृष्ट कार्य के लिए सम्मानित किया गया।

चौंसठ वर्षीय श्री सुखदयाल के कक्ष में चरखे के समक्ष गांधी जी का तथा उनके गुरु का चित्र लगा है। जो उन्हें इस कार्य को आगे बढ़ाने की सदैव प्रेरणा देता रहता है। गांधी जी ने चरखे की अहमियत को जाना-पहचाना था। उन्होंने भारत को आत्मनिर्भर बनाने में चरखे की उपयोगिता पर लिखा तथा उसका अनुसरण भी किया।

सहकारिता के क्षेत्र में सुखदयाल का संपूर्ण जीवन गरीबी-संघर्ष तथा मुकाम हासिल करने की एक जीती जागती दास्तां है। उनकी जीवन यात्रा को देखकर मालूम पड़ता है कि उन्होंने हिमाचल के शीत मरुस्थल के एक छोटे से गांव में महात्मा गांधी के श्रम, लगन, मेहनत, न हारने की प्रवृत्ति, आदर्शों को अपनाकर खड्डी के मधुर स्वर तथा चरखे की मधुर धुन से सहकारिता का संदेश दे रहे हैं।

सुपुत्र शाम चंद आजाद,
गांव ठोलंग, डा. मालंग,
तह. लाहुल जिला
लाहौल-स्पीति, हि. प्र.,
मो. 85804 99303

चरखा : आर्थिक स्वतंत्रता का पहला अध्याय

गांधी जी का खादी को बढ़ावा देना स्वराज को बढ़ावा देना था। गांधी के शब्दों में चरखा का मूल मंत्र इसके माध्यम से उन व्यक्तियों को रोजगार देना है जो बेरोजगार हैं। इसे सीखना आसान है। इसके लिए धन की उपलब्धता भी नहीं चाहिए। इससे राष्ट्र की धनराशि भी बचेगी जो विदेशी कपड़ों के खरीदने में जाया होता व इसके माध्यम से लोगों में सहयोग की भावना भी जागृत होगी। गांधी जी ने देशभर में खादी के उत्पादन के लिए अखिल भारतीय हथकरघा संघ (ए.आई.एस.ए.) का गठन किया। इस संघ ने 15110 गांवों में 354257 दस्तकारों को रोजगार दिया। 18 माह में 30 जून, 1942 तथा 12002430 मूल्य की खादी का उत्पादन हुआ तथा इसे 14984513 रुपये में विक्रय कर 80 लाख रुपये दिहाड़ी के रूप में दस्तकारों को वितरित किए गए। 18 वर्ष की अवधि में ए.आई.एस.ए. ने 68357862 रुपये की खादी उत्पादित की जो 901301 में बिकी।

सी.एफ. एंड्रयूज के शब्दों में, "खद्दर सबसे व्यावहारिक वस्तु है। कच्चा माल तथा उपकरण स्थानीय तौर पर उपलब्ध है। इसको चलाने के लिए किसी प्रशिक्षण की दक्षता की जरूरत नहीं होती। इसे घर के हर व्यक्ति, बच्चे से बड़ा चला सकता है और परिवार की आमदनी में अपना योगदान दे सकता है।"

गांधी जी इसे आर्थिक स्वतंत्रता की शुरुआत तथा देश में एकरूपता का पर्याय मानते थे।

महात्मा गांधी और मैं

◆ श्रीनिवास जोशी

गांधीजी समय के पाबन्द थे अतः नियत समय पर मैदान में पहुंचे। मैदान में और आस पास जितने लोग थे, उन्होंने स्वागत नारे लगाए जिन्हें गांधीजी ने शायद बहुत पसन्द नहीं किया था। महात्मा गांधी को देख कर मेरा भीतर जलमग्न हो गया था मानो मेरे अन्दर ही अन्दर कोई चश्मा फूट पड़ा हो। उन्होंने क्या कहा था, यह तो मेरे समझ में नहीं आया था पर इतना ज़रूर है कि उन्हें देख कर ही मेरे बाल मन को लग रहा था कि मैंने एक अवतार के दर्शन कर लिए हैं।

बात 1945 की है। नौ साल का था मैं, जब मैंने पहली बार महात्मा गांधी के दर्शन किए थे। अपने पिताजी के साथ पैदल चल कर भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के आगे समरहिल की ओर जाने वाली सड़क में आई.टी. आई. के मैदान पहुंचा था, जो तब मुझे बहुत बड़ा लगा था। महात्मा गांधी विश्वविद्यालय परिसर में स्थित मेनरविला में ठहरे थे और वहीं से वह आने वाले थे। यह कोठी राजकुमारी अमृत कौर की होती थी। गांधीजी समय के पाबन्द थे अतः नियत समय पर मैदान में पहुंचे। मैदान में और आस पास जितने लोग थे, उन्होंने स्वागत नारे लगाए जिन्हें गांधीजी ने शायद बहुत पसन्द नहीं किया था। महात्मा गांधी को देख कर मेरा भीतर जलमग्न हो गया था मानो मेरे अन्दर ही अन्दर कोई चश्मा फूट पड़ा हो। उन्होंने क्या कहा था, यह तो मेरे समझ में नहीं आया था पर इतना ज़रूर है कि उन्हें देख कर ही मेरे बाल मन को लग रहा था कि मैंने एक अवतार के दर्शन कर लिए हैं।

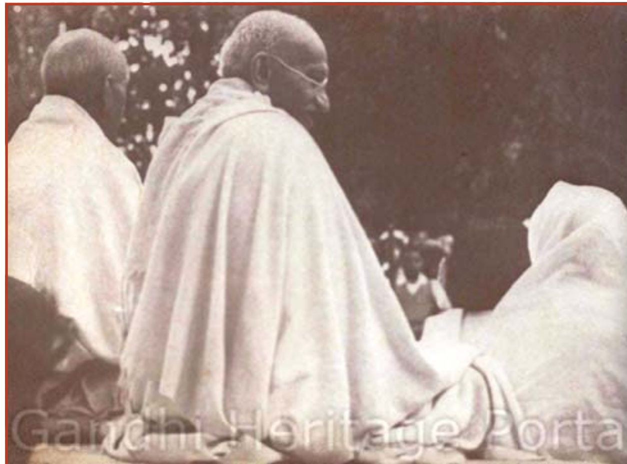
इसके बाद मैं पढ़ने के लिए दिल्ली चला गया और तब गांधीजी के निवास से हम बहुत दूर नहीं रहते थे। मैं अक्सर उनके दर्शन हेतु और प्रवचन सुनने वहां जाता था। अपनी दो महिला लाठियों के सहारे, जिनमें से एक मनु बहिन के नाम से जानी जाती है, वह सवेरे बिरला मन्दिर के पिछवाड़े घूमने आते थे। कई बार सवेरे-सवेरे मैं भी वहां पहुंच जाया करता था और उनके दर्शन करता था।

जिस शाम उनकी मृत्यु हुई थी, उस शाम मैं शिमला में एक किलटे में जंगल से चुन कर जलाने की लकड़ी ला रहा था। थोड़ा आराम करने के लिए मैंने अपना किलटा पीठ से उतारा और एक जगह टिकाया। ठीक उसी समय जब उन्हें दिल्ली के बिरला भवन में गोली लगी, मेरा किलटा बिना किसी वजह के गिर गया और सारी चुनी हुई लकड़ियां बिखर गईं। यह संयोग हो सकता है पर मेरे दिल में यह बात घर कर गई है और आज मैं इसे आप लोगों के साथ बांट रहा हूं। हमारे घर में बिजली नहीं थी और समाचार तभी पता चलते थे जब मेरे पिताजी, ताउजी, चाचाजी दिनचर्या समाप्त कर शिमला शहर से घर लौटते थे। उन्होंने बताया कि आज गांधीजी की हत्या कर दी गई है। उस रात हमारे संयुक्त परिवार के किसी सदस्य ने ही शायद रोटी खाई हो। मैं तब 12 वर्ष का था और घर में एक अजीब से माहौल को देख रहा था। अब क्या होगा?'' जैसा प्रश्न सबके दिमाग में कौंध रहा था। घर को एक मौन ने अपने में समेट लिया था। यह हालात अगले कुछ दिनों तक बने रहे।

इसके बाद मैं स्वयं ही गांधी बन गया। आश्चर्य में हैं न आप? श्री मनोहर सिंह राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में अपनी धाक जमा चुके थे। वह शिमला आए और उन्होंने एक नाटक खेलने की पेशकश की। हमने हामी भर दी। ललित सहगल का पुरस्कृत नाटक 'हत्या एक आकार की' चुना गया। उसकी कहानी कुछ ऐसी है: "कुछ व्यक्ति यह निर्णय लेते हैं कि आज शाम महात्मा गांधी को गोली मार देंगे। उनमें से एक कहता है कि सोच लो कि उसे मारना उचित होगा। उन व्यक्तियों ने तभी एक कचहरी बना डाली जिसमें यह निर्णय लिया जाना था कि गांधी को मारा जाए या नहीं। जिस व्यक्ति ने शंका उठाई थी, उसे शंकित युवक का नाम देकर महात्मा गांधी बना दिया, एक जज बन गया, एक इतिहासकार बन गया और मनोहर स्वयं अभियोजक बन गए। मुझे शंकित युवक अर्थात गांधी का रोल मिला। पूरे नाटक में गांधी ही गांधी छाया रहा और हर मोड़ पर इस्तगासा हारता नज़र आया पर जज ने फैसला सुनाया कि आज शाम 5.00 बजे महात्मा गांधी

को मार दिया जाए।'' इस नाटक को बेहद सराहा गया था और डा. वाई. एस. परमार, तत्कालीन मुख्यमंत्री, केवल 10 मिनट बैठने का वचन दे कर भी नाटक की पूरी अवधि बैठे रहे।

महात्मा गांधी के पौत्र गोपाल कृष्ण देवदास गांधी 2006 से 2009 तक पश्चिम बंगाल के राज्यपाल रहे। उन दिनों न्यायमूर्ति वी.एस. कोकजे हिमाचल के राज्यपाल थे। गोपाल कृष्ण गांधी ने श्री कोकजे के माध्यम से इच्छा व्यक्त की कि शिमला में जहां जहां महात्मा गांधी ठहरे थे उनकी सूची उन्हें भेजी जाए। हालांकि मैं सेवानिवृत्त को चुका था, पर इस कार्य का दायित्व मुझे मिला। मैंने लिखा था कि महात्मा गांधी शिमला 10 बार आए थे जबकि रिज में महात्मा गांधी के बुत के पीछे संगमरमर की पट्टिकाओं में गोदे गए वर्षों में से सन् 1939 में उनकी शिमला यात्राओं का वर्णन ही नहीं है। गांधीजी इस वर्ष 4 और 26 सितम्बर को तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो से मिलने आए थे और दोनों बार राजकुमारी अमृत कौर के निवास मेनरविला में ठहरे थे। इसके बाद वह 1940 में दो बार शिमला आए और हर बार मेनरविला में ही ठहरे। 1945 में शिमला में उनके ठहरने की सबसे लम्बी अवधि है - 26 जून से 17 जुलाई तक। तब भी वह मेनरविला में ठहरे थे। उस समय उन्होंने शिमला तब छोड़ा था जब तत्कालीन वायसराय लॉर्ड वेवल ने घोषणा कर दी कि शिमला सम्मेलन फेल हो गया है। जिन्ना ने तब चुटकी ली थी कि यह सम्मेलन था ही नहीं बल्कि एक जाल था हमें फंसाने के लिए।



महात्मा गांधी शिमला में प्रार्थना सभा के दौरान

बापू की शिमला यात्राएं सन् 1921 से आरम्भ हुई थी जब वह चक्कर में 'शांत कुटी' में ठहरे थे। 1903 में इस भवन में संस्कृत भाषा तथा प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन के लिए स्वामी विश्वेश्वरानंद तथा स्वामी नित्यानंद ने संस्थान खोला था। जो वर्ष 1918 तक यहां कार्य करता रहा। अब यह भवन जर्जर हालत में है। उनकी दूसरी और तीसरी यात्राएं दस साल बाद 1931 में हुई थी जब वह पहली यात्रा में जाखू में मछली वाली कोठी के समीप फ़रग्रोव में ठहरे थे। फ़रग्रोव तब रायबहादुर मोहनलाल के स्वामित्व में थी। अब यह कोठी किराए में चढ़ा दी गई है। दूसरी बार वह विधान सभा- अनाडेल रोड में स्थित कार्टन ग्रोव में ठहरे थे जो अब विश्वविद्यालय के प्राचार्य डा. दीपक सूद के स्वामित्व में हैं। उनकी शिमला की अन्तिम यात्रा सन् 1946 में हुई जो 15 मई को समाप्त हुई थी। तब वह समरहिल में चैडविक हाउस नामक भवन में ठहरे थे। यह कोठी कपूरथला के राजा रघुवीर सिंह की होती थी। महात्मा गांधी शिमला दस बार आए पर उनके लिए शिमला 'सरकारी एंग्लो-इंडियन ऊंचे में बना खेल का मैदान था जो सरकार को भारत की दुर्दशा से पलायन का अवसर देता था।' इस सारी सूचना को एकत्र करने तथा श्री गोपाल कृष्ण गांधी तक पहुंचाने के लिए मुझे तब के राज्यपाल श्री कोकजे की ओर से प्रशंसा पत्र प्राप्त हुआ है। यहां एक बात और बता दें कि शिमला के रिज में बना महात्मा गांधी का बुत किस मूर्तिकार ने बनाया और इसे कब वहां स्थापित किया गया, इसके बारे में शिमला नगर निगम (तब कमेटी होती थी) के पास कोई सूचना नहीं है। मैंने जब निगम की भंडार सूची की जांच की तब पता चला कि 12 सितम्बर, 1956 को यह बुत निगम को प्राप्त हुआ था और इसे बनवाने की लागत 11,250 रुपये आई थी। इससे हम अन्दाज़ा लगाते हैं कि यह बुत 2 अक्तूबर, 1956 को लगाया गया है। पहले यह बुत एक भद्दी सी, कम ऊंची पीठिका में स्थापित कर दिया गया था। हर कोई महात्मा को चिपट कर अपनी फोटो खिंचवा लेता था। यहां से भाग्यशाली लोग यादगार के रुप में महात्मा गांधी की ऐनक ले जाते थे। पहले पहल तो निगम इनकी ऐनक बदलता रहा पर जब निगम को इसका वित्तीय बोझ नज़र आया तो ऐनक बदलने का कार्य 2 अक्तूबर तक ही सीमित कर दिया गया। उन दिनों का प्रचलित मज़ाक यह था कि अब राजनेता खुल कर स्कैम कर सकते हैं क्योंकि बापू तो अब ऐनक के बिना कुछ दूर तक ही देख सकते हैं। लगभग तीस वर्ष पूर्व गांधीजी के बुत को सही ढंग की पीठिका दे दी गई। इस बुत की कहानी के साथ जुड़े हैं प्रोफेसर अब्दुल मजीद खान जो शिक्षाविद थे तथा मशद में देश के कांस्लैट रह चुके थे। वर्षा हो या धूप, संजौली से वह हर सुबह पैदल चल कर गांधीजी के इसी बुत तक पहुंचते थे और गांधी की प्रतिमा के समक्ष नतमस्तक होते थे। आज का युवा भूल चुका है सहस्राब्दि के इस महामानव को जिसके लिए हम बचपन में गाते थे : "साबरमती के सन्त तूने कर दिया कमाल/ दे दी हमें आज़ादी बिना खड्ग बिना ढाल।''

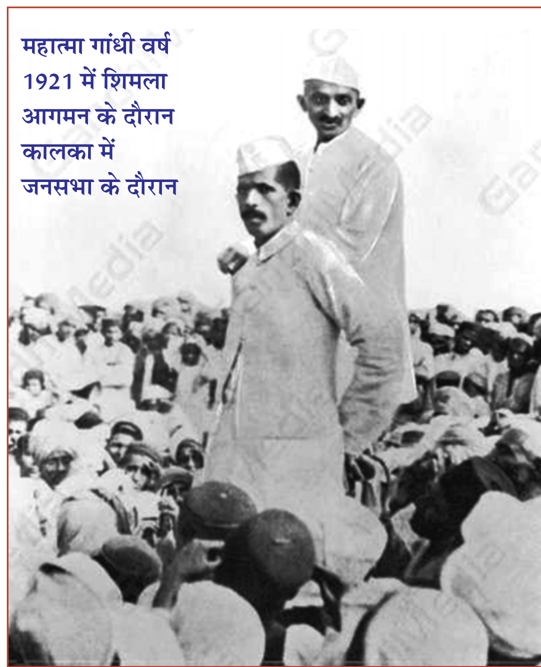
पंचवटी, डाकघर भराड़ी,
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171 001

स्मृतियों में बापू

स्कूल से भाग कर किए गांधी के दर्शन

◆ रमेश चंद्र शर्मा

महात्मा गांधी सदैव ही कालका से छोटी रेलगाड़ी से शिमला आते थे। वे अंग्रेजों की तरह घूमने, गर्मी से बचने कभी नहीं आए; बल्कि देश की आजादी के लिए अंग्रेज सरकार से बातचीत के लिए ही आए। उनकी पहली यात्रा वर्ष 1921 में थी जबकि 1946 में वे आखिरी बार शिमला आए थे। गांधीजी के आने व जाने की खबर मैदानों से लेकर पहाड़ों तक आग की तरह फैल जाती थी। उन्हें देखने के लिए स्टेशनों पर हुजूम सा लग जाता था। उस वक्त युवाओं में गांधीजी के दर्शन करने की उत्सुकता रहती थी। लेकिन अंग्रेजों की हुकूमत थी। मन में डर भी रहता था। स्कूल में अध्यापकों से तथा घर पर परिवार जनों से सीख मिलती थी कि ऐसी कोई गतिविधि में न पड़ना जिससे बेवजह जेल की हवा खानी पड़े। इस सबके बावजूद गांधीजी के दर्शन करने का जुनून हर उम्र के बाशिंदों के मन में बना रहता था। गांधीजी के दर्शन करने का एक ऐसा ही वाकया आज मुझे स्पष्ट तौर पर स्मरण है। तारीख तो याद नहीं लेकिन जब मैं कालका में 1945-46 में एन.डी. हाई स्कूल में पढ़ता था, उस वक्त का वाकया है। पिता जी की कालका में ही आयुर्वेदिक चिकित्सक का दवाखाना था। हमारा गांव कालका से समीप परवाणू के पास कालका-शिमला रेल लाइन पर टकसाल में था। मैं माता-पिता के साथ पढ़ाई के लिए कालका रहता था।



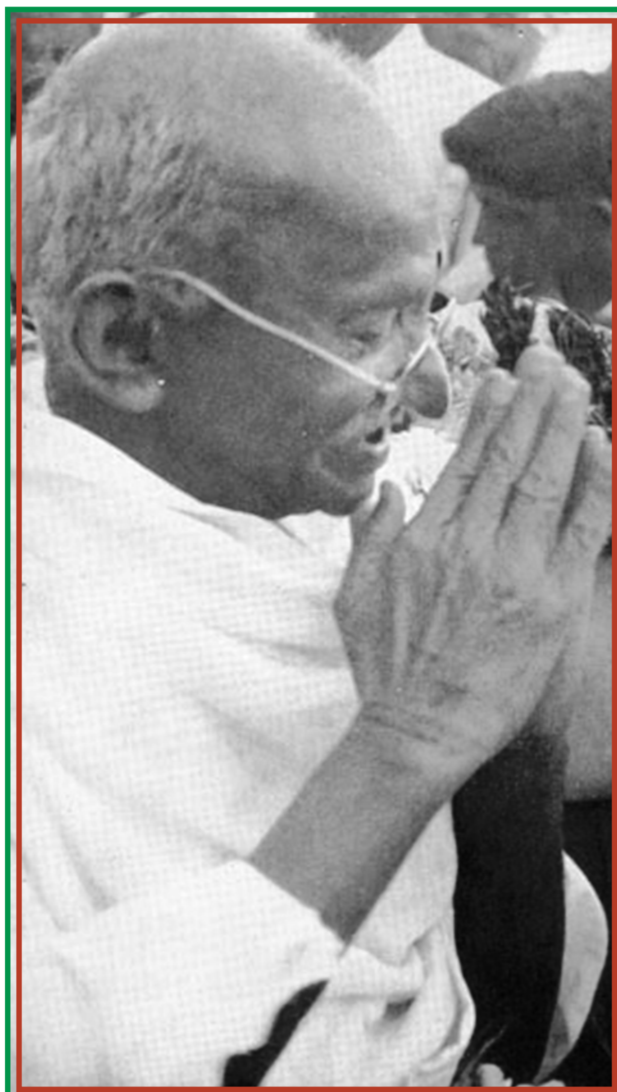
महात्मा गांधी वर्ष 1921 में शिमला आगमन के दौरान कालका में जनसभा के दौरान

छात्रों को स्कूल में ज्ञात हुआ कि गांधीजी आज शिमला से अंग्रेजों के साथ बातचीत कर लौट रहे हैं। हम तीन दोस्तों ने गांधीजी के दर्शन करने की गुप्त योजना बनाई। घर से व स्कूल से तो इजाजत मिलने वाली नहीं थी। मुझे याद है कि हम तीनों ने मलेशिया का कमीज पायजामा पहना था। हम स्कूल से भाग कर रेलवे स्टेशन पहुंचे। स्टेशन पर जाने के लिए प्लेटफार्म टिकट खरीदने के पैसे तो जेब में नहीं थे। स्टेशन से बाहर एक योजना बनाई कि हम अपनी-अपनी कमीज खोलते हैं और प्लेटफार्म की सफाई करने लग जाते हैं। जब ट्रेन आएगी तो गांधीजी के दर्शन कर लेंगे। हम रेलवे के सिपाहियों से डरे तो हुए थे। चेहरे पर चाहे गांधी जी के दर्शन करने की खुशी थी पर मन में तो पकड़े जाने का डर था।

फिर किसी तरह हिम्मत कर स्टेशन पर दाखिल हो गए। टीटी के डर से सफाई की योजना को मुल्तबी कर दिया। इसी उधेड़बुन में शिमला से गाड़ी स्टेशन पर आ गई। गांधीजी खिड़की वाली सीट पर बैठे थे। उनके चेहरे पर चमक थी। गाड़ी रुकी। हम भी उस मोड़ में कुछ आगे बढ़े। गांधीजी अपनी सहायिकाओं के साथ, नाम तो मालूम नहीं, लेकिन शायद मीराबेन, के साथ ट्रेन से उतरे। सफेद धोती कुर्ते तथा हाथ में सोठी लिए गांधीजी तेजी से आगे बढ़े। हालांकि उन्होंने किसी से कोई बात नहीं की न हाथ हिलाया बस उपस्थित लोगों को हाथ जोड़ आगे निकल गए। और दिल्ली जाने वाली ट्रेन में सवार हो गए। वे एक साधारण भारतीय की तरह लंबे कदमों से कालका प्लेटफार्म से गुजरे। बचपन में गांधीजी के दर्शन से जीवन भर मुझे प्रशासनिक सेवा काल के दौरान विभिन्न पदों पर रहते हुए आम जन की समस्याओं को निपटाने का भरपूर मौका मिला। देश की गुलामी के दौरान में गांधी जी के दर्शन से मैं धन्य हुआ। आज 90 वर्ष के करीब जब भी वह वाकया याद आता है, तो गांधी जी की पूरी तस्वीर मानस पटल पर स्पष्ट दिखाई देती है। लगता है कल की ही बात हो....।

पूर्व भारतीय प्रशासनिक अधिकारी, टकसाल हाउस,
छोटा शिमला, शिमला-171 002, दूरभाष : 0177 2621199

महात्मा की मुस्कान



महात्मा गांधी के शिमला के साथ गहरा नाता-रिश्ता जुड़ा था क्योंकि शिमला उनकी सहयोगी राजकुमारी अमृत कौर का निवास था। वे गांधी जी की 16 वर्ष तक सचिव रही थीं। वे अमृत कौर के समरहिल स्थित निवास स्थान मेनरविला में अपनी शिमला की 10 यात्राओं के दौरान अधिकांश बार यहां ठहरे थे। गांधी जी से उस वक्त मिलने तथा उनके दर्शन करने वालों का तांता लगा रहता था। अमृत कौर की नाती राजकुमारी ललिता जो वर्ष 1945 में 13 वर्ष की थी, तथा आज 80 वसंत देख चुकी हैं, को आज भी गांधी जी से हुई एक यादगार मुलाकात का स्मरण है।

उसे स्मरण है कि उसने तथा उनके स्वर्गीय चचेरे भाई सत्यजीत सिंह ने सरोजिनी नायडू जो उनके घर पर चायपान के लिए आई थी, से आग्रह किया कि वे हमें गांधी जी के दर्शन करवा दे। उस वक्त हर युवा गांधी जी से मिलना तथा उनसे बात करने का मौका तलाशता रहता था। शिमला प्रवास के दौरान प्रत्येक शाम को गांधी जी चैडविक भवन के प्रांगण में प्रार्थना सभा करते थे। सभा के उपरांत कुछ खुशकिस्मत लोगों को ही उनसे बात करने तथा उनके पैर छूकर आशीर्वाद लेने का मौका मिलता था। यहां भारी संख्या में शहरवासी उनके प्रवचन सुनने आते थे।

राजकुमारी ललिता को स्मरण है कि वे महान नेता के समक्ष गई, वे सभा स्थल से प्रस्थान करने वाले थे और धोती तथा कंधे पर एक साधारण सा शॉल ओढ़े थे। उनके पीछे उनके सहयोगी जिनमें वल्लभभाई पटेल, राजकुमारी अमृत कौर तथा मौलाना आजाद थे। मौलाना आजाद का उन्हें याद है कि वे सुशील तथा बेहतर वेशभूषा धारण किए थे। सरोजनी नायडू ने वायदे अनुसार उनका महात्मा से तारुफ करवाया। गांधी जी ने दोनों को आशीर्वाद दिया और उनसे उनके दादा के बारे में पूछा, जिन्हें वे जानते थे।

गांधी जी की न भूलने वाली, एक बड़ी सी मुसकान तथा उनकी मद्धम आवाज की गूंज आज भी बालपन से लेकर जहन में आज भी तरोताजा है। उनके शब्दों में उस वक्त ऐसा महसूस हुआ जैसे वे एक महान व्यक्ति की छत्रछाया में हैं।

Gandhi and His History Simla Connecting by Shaillaja Khanna (The Tribune 30 June 2018) में प्रकाशित लेख का अनुवाद

जब गांधी ने आम जन से माफी मांगी

◆ आर. एन. शर्मा

एक प्रबुद्ध, ज्ञान संपन्न, दार्शनिक व्यक्तित्व के धनी महात्मा गांधी के जीवन की असंख्य किस्से, वृतांत तथा घटनाएं आज समाज के समक्ष हैं जिसने समाज को एक नई दिशा दी है। इनमें से अनेक पुस्तकों में समाहित हैं तथा कुछ एक उनके संपर्क में आए व्यक्तियों के जहन में आज भी तरोताजा हैं। महात्मा गांधी की आम जन से अद्वितीय विनम्रता की एक मार्मिक घटना मेरे जहर में भी पिछले सात दशकों से है।

मेरे लाहौर में छात्र जीवन के दौरान पंजाब विश्वविद्यालय में रहते हुए उस वक्त के असंख्य भारतीय युवाओं की तरह गांधी जी के दर्शन तथा उनकी प्रार्थना सभा में उनके विचार सुनने की इच्छा होती थी। मेरा स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्ति तथा भारत के विभाजन का एक ही वक्त है। विभाजन के बाद मुझे लाहौर से दिल्ली आना पड़ा। दिल्ली में आकर अध्यापक कार्य मिल गया लेकिन गांधी जी से मुलाकात करने की इच्छा को मैंने अपनी प्राथमिकता में रखा। जनवरी 1948 के प्रथम शनिवार यानि 3 तारीख को मैंने निर्णय लिया कि अगले दिन (4 जनवरी को) गांधी जी की प्रार्थना सभा में भाग लेंगे। मेरे चार दोस्तों ने भी रविवार की सांध्यकालीन प्रार्थना सभा में भाग लेने की सहमति व्यक्त की। लेकिन हमारा दुर्भाग्य ही कहें कि रविवार प्रातःकाल से ही जोरदार वर्षा आरंभ हुई दो दोपहर तक लगातार जारी रही। लेकिन इस बारिश ने भी हमारा उत्साह कम नहीं किया। चार बजते-बजते वर्षा की बोछारें बूंदाबांदी में बदल गईं। तो हम पांच साथियों ने चलने का निर्णय लिया। और बिरला हाउस की ओर दो साइकिलों पर रवाना हो गए। गांधी जी से मिलने तथा दर्शन करने का उत्साह था। इसी उत्साह में हम 4.55 बजे बिरला हाउस के गेट पर भीगे हुए पहुंच गए। सर्दियों के दिन थे। ऊपर से बारिश में भीगे थे। ठंड तो फिर भी लग नहीं रही थी। इसी दौरान पांच-छः व्यक्ति और आकर हमारे साथ गेट पर उत्सुकतावश खड़े हो गए।

पांच बजते ही गेट के पास गांधी जी के अनन्य सहायक श्री प्यारे लाल जी आए। दस व्यक्तियों का एक छोटा सा समूह उत्सुकतावश गेट की ओर बढ़ा। लेकिन हमारी इच्छा के विपरीत प्यारे लाल जी ने कहा, "महानुभावों, मुझे क्षमा करें आज खराब मौसम, वर्षा के कारण गांधी जी की प्रार्थना सभा नहीं होगी।" इस वाक्य को सुनकर सभी के चेहरों पर मायूसी छा गई। बिजली की फूर्ति से मैंने तुरंत निर्णय लिया और मैं तेजी से गेट की ओर बढ़ा। मैंने प्यारे लाल जी रुकने का आग्रह तथा बस मेरी बात सुनने का आग्रह किया। वे मेरे आग्रह को मान गए और मेरी बात को ध्यान से सुना, "मान्यवर, हम भोले भाले लोग हैं, हम इस बारिश में भीगते हुए गांधी के दर्शनों के लिए आए हैं तथा हमें गांधी जी के दर्शन न करने का अत्यधिक दुख होगा। क्या आप हमारी यह याचना गांधी जी तक पहुंचा सकते हैं, कि वे मात्र एक मिनट का वक्त ही अपने दर्शनों के लिए हमें देकर कृतार्थ करें।" प्यारे लाल कुछ पलों तक मौन रहे तथा हमसे रुकने को कहा। वे बिरला भवन के भीतर गए और मात्र एक मिनट से कम समय में ही लौट कर बाहर आ गए। भवन के गेट को खोलते हुए उन्होंने कहा कि गांधी जी ने अपना विचारा बदल दिया है और अब उनकी प्रार्थना सभा रोज की तरह होगी।

उन्होंने हमें बाग से होकर, चारदीवारों के साथ बरामदे में रुकने को कहा। हमने उनके निर्देशों का पालन किया और आगे बढ़े। कुछ ही पलों उपरांत गांधी जी हमारे बीच थे। हम लोग गाधीजी को घेर कर बैठ गए। उनका पहला संवाद हम सभी दस व्यक्तियों को एक-एक कर आंखों में आंखें डालकर देखना मात्र था। और उस वक्त उनके चेहरे पर मंद सी मुसकान थी। जब गांधी जी की निगाह मेरे ऊपर पड़ी तो ऐसा लगा जैसे लेजर किरणों का संचार मेरे शरीर में हुआ और शक्ति प्रवाह हुआ। उस दिन से जो ऊर्जा का प्रवाह मेरे शरीर में हुआ है उसका आभास आज दिन तक मैं महसूस कर रहा हूं।

तदोपरांत गांधी जी ने अपनी प्रार्थना शुरू करते हुए कहा, "प्यारे भाइयो, आज मैं अपने आपको अपनी मनोवृत्ति से शर्मिंदा महससू कर रहा हूं। क्योंकि एक मामूली बारिश के डर से मैंने आज अपनी प्रार्थना सभा को ही रद्द करने का निर्णय ले लिया।'

जब प्यारे लाल जी ने मुझे आकर बताया कि कुछ लोग बारिश में पूरी तरह भीगे भक्त लोग वर्षा की परवाह किए बगैर आपके दर्शनों के लिए आए हैं। मुझे अपने इस गलत निर्णय पर अत्यधिक पश्चाताप हुआ है। भाइयों! मैं आपसे इसके लिए मुझे माफ करने की प्रार्थना करता हूं..."

सेवानिवृत्त उपनिदेशक, वैज्ञानिक एवं अनुसंधान परिषद,
नई दिल्ली

गांधी व राजकुमारी अमृत कौर



स्वतंत्रता सेनानी व कपूरथला रियासत की राजकुमारी अमृत कौर जो आजाद भारत की पहली स्वास्थ्य मंत्री थीं, ने गांधी जी के साथ रहकर गरीबों तथा कमजोर वर्गों की सेवा में अपना जीवन व्यतीत किया। वे विश्व स्वास्थ्य संगठन की एशिया कार्यकारी परिषद की पहली अध्यक्षा तथा अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली को स्थापित करने वाली थीं।

दो फरवरी, 1889 को कपूरथला के राजा के छोटे भाई राजा हरनाम सिंह के घर पैदा हुई। बचपन लखनऊ में बीता। उसके पिता वहां रहकर राजपरिवार की अवध एस्टेट को संचालित करते थे।

आरंभिक पढ़ाई लंदन में हुई। वे बचपन से ही पढ़ाई तथा खेलों में अव्वल रहीं। स्कूली शिक्षा पूर्ण होने पर उच्च शिक्षा के लिए ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। पढ़ाई पूर्ण करने के बाद 1918 में भारत लौट आईं। कौर ने भारत आने पर ही राष्ट्रीय आंदोलन का युग आरंभ हुआ जिसने उसके जीवन पर इसका प्रभाव डाला।

इसी वर्ष अमृत कौर गोपाल कृष्ण गोखले के संपर्क में आईं जो उनमें

शिमला से 'हरिजन' पत्रिका का संपादन

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान गांधी जी को अंग्रेजों द्वारा आगा खां जेल में नज़रबंद किया गया। इस कारण बंबई से प्रकाशित होने वाली 'हरिजन' पत्रिका का संपादन कार्य राजकुमारी अमृत कौर ने संभाला और उसने अपने निवास स्थान समरहिल, शिमला से सफलतापूर्वक 'हरिजन' का प्रकाशन जारी रखा। शांगरी रियासत के चिरंजीलाल वर्मा इस काल में राजकुमारी के राष्ट्रीय आंदोलन संबंधी गुप्त पत्र टाईप करते थे।

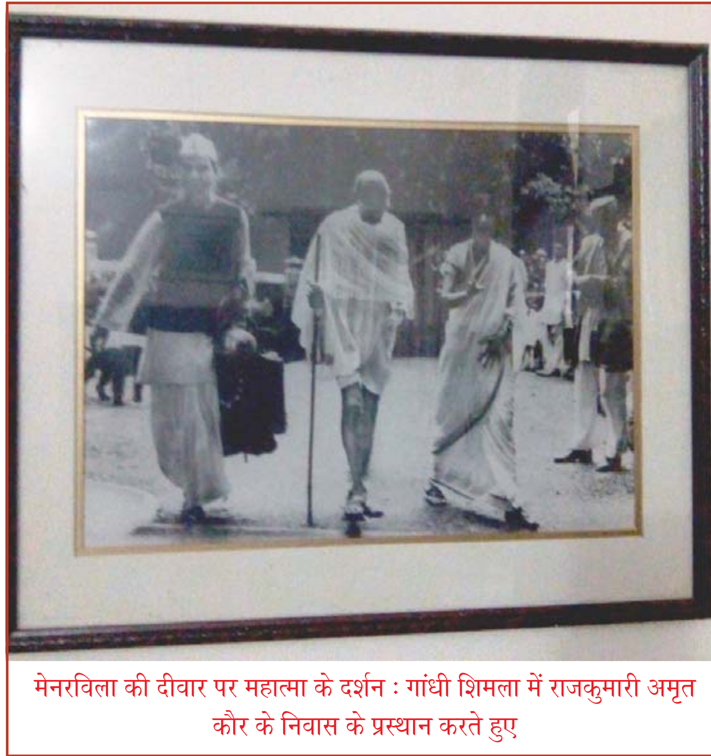
संदर्भ : हिमाचल प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम का संक्षिप्त इतिहास, भाषा एवं संस्कृति विभाग द्वारा प्रकाशित, वर्ष 1992

पिता के मित्र एवं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य थे। गोखले के कार्यों से प्रभावित हुई और देश सेवा में कार्य करने का ध्येय जागा। अपने कार्यों से वे एक निष्ठावान समाज सेविका व स्वतंत्रता सेनानी बनीं।

गोखले जी के संपर्क में आने पर गांधी जी के बारे में ज्ञात हुआ। गांधी के आदर्शों से प्रभावित होकर अमृत कौर ने गांधी जी को पत्र लिख कर उनके आश्रम से जुड़ कर कार्य करने की इच्छा व्यक्त की। हालांकि उनके माता-पिता के अस्वस्थ होने के कारण घर पर ही रहकर समाज सेवा के कार्यों से जुटी रहीं। वर्ष 1926 में महिलाओं के उत्थान के लिए अखिल भारतीय महिला संस्था का गठन किया। इस संस्था ने पर्दा प्रथा, बाल विवाह सहित देवदासी प्रथा के उन्मूलन की दिशा में कार्य किया। उन्हीं के प्रयासों से अंग्रेज सरकार को विवाह की आयु 14 से बढ़ाकर 18 वर्ष करनी पड़ी।

वर्ष 1930 में अमृत कौर के माता-पिता के निधन के उपरांत वे सक्रिय तौर पर स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़ीं। असहयोग आंदोलन से लेकर गांधी जी के साथ दांडी यात्रा में भी शामिल हुईं। अमृत कौर की देश के प्रति निष्ठा को देखते हुए महात्मा गांधी ने अक्तूबर 1936 में लिखा, "मैं एक ऐसी महिला को ढूंढ रहा था जो उनके मिशन को पूरा करे। आप ऐसी ही एक महिला हैं जो इस कार्य को पूर्ण कर सकती हैं।" तदोपरांत वे गांधी जी की निजी सचिव बन गईं। देश के आजादी के उपरांत पं. नेहरू के मंत्रिमंडल में पहली स्वास्थ्य मंत्री बनीं।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान वे धरनों तथा आंदोलन में भाग लेने के पीछे नहीं हटती थी, चाहे इस दौरान वे अनेक बार अंग्रेजों की लाठियों से घायल भी हुईं। अंग्रेजों ने अनेक बार उन्हें जेल में डाला।



मेनरविला की दीवार पर महात्मा के दर्शन : गांधी शिमला में राजकुमारी अमृत कौर के निवास के प्रस्थान करते हुए

वे महिला शिक्षा तथा महिला उत्थान के अलावा महिलाओं के खेलों में भागीदारी की भी हिमायती थीं। वे गांधी जी से चरखा कातने के बदले टैनिस खेलने की अनुमति ले लेती थीं। वे अखिल भारतीय महिला शिक्षा कोष संघ की अध्यक्षता भी रहीं। वर्ष 1945 में उन्होंने यूनेस्को में भारत की प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया।

वर्ष 1947 में देश के आजाद होने पर वह केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री बनीं। प्रथम स्वास्थ्य मंत्री बनने के उपरांत अमृत कौर ने भारतीय क्षय रोग संघ, भारतीय बाल कल्याण परिषद, भारतीय बाल कल्याण परिषद, केंद्रीय कुष्ठ रोग अनुसंधान केंद्र तथा राजकुमारी अमृत कौर नर्सिंग कॉलेज की स्थापना की। लेकिन उनकी बड़ी उपलब्धि अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान खोलना है। उन्होंने शिमला स्थित अपने निवास मेनरविला, जहां गांधी जी शिमला प्रवास के दौरान ठहरते थे, को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान को दान में दे दिया। जिसे आज संस्थान के विश्राम गृह के रूप में उपयोग में लाया जा रहा है। इस भवन में जिस कमरे में महात्मा गांधी रहते थे, को यथावत रखा गया है।

इसके अलावा उन्होंने मलेरिया उन्मूलन की दिशा में भी कार्य किया।

पटियाला में राष्ट्रीय खेल संस्थान की स्थापना में भी उनका सर्वोच्च योगदान रहा है।

6 फरवरी, 1964 को राजकुमारी अमृत कौर का 75 वर्ष की आयु में निधन हो गया।

पहाड़ी रास्तों का उल्लेख

एक सितंबर, 1940 को गांधी जी ने ग्रामीणों को संबोधित करते हुए कहा कि प्राचीन भारत में समृद्धि का सूचक सोना व चांदी नहीं होता था बल्कि व्यक्ति के पास गायों से जांचा जाता था। गाय से दूध तथा बैल खेतीबाड़ी के काम आते थे। बैल हमारी ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन के कार्य में लाए जाते हैं। मैंने इन्हें शिमला जैसे स्थानों पर भी देखा है। यहां रेत तथा मोटर कार भी जाती है लेकिन पहाड़ी सड़क पर पहाड़ी रास्तों पर बैलगाड़ी को खेंचते ऊपर नीचे जाते देखा है। इससे प्रतीत होता है कि परिवहन हमारे जीवन तथा सभ्यता का हिस्सा है।

हरिजन, 15 सितंबर, 1940 को प्रकाशित

वट वृक्ष की शाखाएं जो पेड़ बनीं



आज मानव आधुनिक युग में जी रहा है। व्यक्ति का आधुनिक होने का तात्पर्य तभी है जब तक उसके जीवन का उद्देश्य तथा सार्थकता मानवता की भलाई के लिए निहित हो। गांधी जी के प्रभु, धर्म, विज्ञान तथा समाज के प्रति विचार सभी आधुनिक थे। गांधी जी का अहिंसा का आविष्कार, दुनिया के इतिहास में एक अनोखा आविष्कार था। यह 20वीं सदी का महानतम आविष्कार है जो उस सदी में एटम बम से भी अधिक शक्तिशाली बना। एटम बमों पर बैठी दुनिया में गांधीजी का अहिंसा का हथियार आज भी प्रमाणिक है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण गांधीजी के 150वें जयंती वर्ष में दुनिया की दो बड़ी ताकतें अमेरिका तथा उत्तर कोरिया जो दुनिया को परमाणू बम से डरा रही थीं, को बेठ कर बातचीत करनी पड़ी।

गांधी मानवता की सेवा के लिए जिए और मरे भी। गांधी जी ने अपनी मृत्यु उपरांत बाद कोई भी पंथ नहीं छोड़ा। उनका हर एक शब्द मानवता की भलाई के लिए ही रहा।

महात्मा गांधी के जीवन को जहां कुछ लेखकों ने प्रभावित किया, वहीं उनके आदर्शों के कारण कुछ शख्सीयतें उनके साथ उनकी जीवन यात्रा से जुड़ती चली गई। गांधी के बापू, महात्मा बनने की यात्रा में हम पाठकों को उनके साथ रहे प्रबुद्ध व्यक्तियों तथा प्रेरणास्रोतों से रू-ब-रू करवाने का प्रयास कर रहे हैं।

महात्मा गांधी की छाया : बा

वर्ष 1918 में चंपारन आंदोलन की सफलता के उपरांत, गांधी ने चंपारन समस्या के दीर्घकालीन समाधान के लिए यहां के गरीब किसानों व युवाओं को शिक्षित करने का निर्णय लिया। उन्होंने शिक्षा के प्रकाश को फैलाने के लिए स्वयंसेवियों का गठन किया। इन स्वयंसेवियों में गांधी जी की धर्मपत्नी कस्तूरबा गांधी भी थीं, जो ग्रामवासियों को शिक्षित करने के अतिरिक्त स्वच्छता का पाठ भी पढ़ाती थीं।

कस्तूरबा ने इस जन कार्य में अग्रणी भूमिका निभाई व गांधी जी की शिक्षाओं को सही परिप्रेक्ष्य में लागू किया। गांधी जी ने कस्तूरबा के एक शांत, एक निष्ठावान स्वयंसेवक के रूप में कार्य करने बारे लिखा, "कस्तूरबा तथा अन्य स्वयंसेवकों के कार्य से महिलाओं में आत्मविश्वास पैदा हुआ।"

कस्तूरबा एक प्रमुख व्यापारी गोकुलदास माखनजी की पुत्री थीं। वर्ष 1882 में 13 वर्ष की आयु में गांधी जी से विवाह हुआ। वे अशिक्षित थीं। उन्हें गुजरात की क्षेत्रीय भाषा काठयावाड़ी का ही ज्ञान था। लेकिन वे निडर तथा आत्मविश्वासी महिला थीं। गांधी जी ने कस्तूरबा को पढ़ाने का प्रयत्न किया लेकिन उनके पास वक्त ही न होता था। कस्तूरबा का निरक्षर होने पर कथन था कि "मेरी निरक्षरता गृह कार्य में बाधक नहीं है और मैं अपना यह कार्य दक्षता से करती हूं।"

गांधी जी जब वकालत की पढ़ाई करने लंदन गए तो वे

भारत में रहीं तथा 1893 में दक्षिण अफ्रीका जाते वक्त भी शुरू में गांधी जी अकेले ही गए थे। 1896 में वे अपने दो सुपुत्रों तथा कस्तूरबा को दक्षिण अफ्रीका साथ लेकर गए।

वे दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी द्वारा किए गए सत्याग्रह की साथी बनीं। वे वहां भी जेल गईं। दक्षिण अफ्रीका में अपने संघर्ष की सफलता के बाद वे 1915 में गांधी जी के साथ भारत लौट आईं।

गांधी जब दक्षिण अफ्रीका की समस्या के समाधान के लिए लंदन आए थे तो वहां उन्होंने श्रीमती पोलम को कहा कि, "मैंने सत्याग्रह का पाठ कस्तूरबा से सीखा है जो कि भारतीय महिलाओं का शक्तिशाली हथियार है। कस्तूरबा ने मुझे सिखाया है कि मैं किसी भी कार्य के लिए उसे विवश नहीं कर सकता।"

गांधी जी ने सत्य की खोज की जबकि कस्तूरबा ने सत्य को आत्मसात किया। जब गांधी सत्य की खोज कर रहे थे तो कस्तूरबा सत्य के साथ जीवनयापन कर रही थीं। गांधी जी के शब्दों में कस्तूरबा के जीवन में अहिंसा परिलक्षित होती है जबकि सत्याग्रह कस्तूरबा के व्यवहार का विस्तार मात्र है।

कस्तूरबा खुले विचारों वाली महिला थीं। उन्होंने एक दलित लड़की लक्ष्मी को अपनी बेटी बनाया तथा उसके बड़ा होने पर उसका विवाह माता-पिता की भांति करवाया। वे आश्रम के व्यय का पूर्ण ब्योरा रखती थीं। मुंबई के तत्कालीन गवर्नर लार्ड विलिंगडन ने कस्तूरबा को दक्षिण अफ्रीका की नायिका तथा गांधी को नायक की संज्ञा दी थी।

कस्तूरबा रोज कताई करती थी तथा यह कार्य उन्होंने जीवन के अंतिम समय तक किया। गांधी जी के वर्ष 1943 में 21 दिनों के उपवास के दौरान कस्तूरबा एक वक्त ही खाना खाती थीं। जो मात्र फल तथा दूध ही होता था। यह भोजन गांधी जी के उपवास के दौरान उनके जीवन का हिस्सा बन गया था।

कस्तूरबा गांधी, गांधी जी के सभी आंदोलनों तथा संघर्ष में एक छाया बनकर उनके साथ रहीं। कस्तूरबा ने मोहनदास से महात्मा गांधी बनने में गांधी जी की कदम-कदम पर अहम भूमिका निभाई।

22 फरवरी, 1944 को कस्तूरबा का आगा खां महल में निधन हुआ, जब गांधी नजरबंद थे। मीराबेन के अनुसार, उन्होंने पहली बार गांधी जी की आंखों में आंसू देखे थे।

कस्तूरबा से बा बनी इस मूर्ति ने जीवन पर्यंत मौन रूप में गांधी जी के आदर्शों को आगे बढ़ाया। उनकी मृत्यु उपरांत उनके नाम पर न्यास बनाने के लिए गांधी जी को लोगों से 1.31 करोड़ रुपये का अंशदान प्राप्त हुआ था। गांधी जी ने कस्तूरबा धर्मार्थ न्यास का गठन किया जो संपूर्ण धनराशि महिलाओं के कल्याण के लिए दान दे दी। यह संस्थान कस्तूरबा ग्राम इंदौर में स्थापित किया गया।

सरोजनी नायडू : भारत की बुलबुल

सरोजनी नायडू से गांधी जी की पहली मुलाकात लंदन में वर्ष 1914 में हुई थी, वे उस वक्त तीस वर्ष की थीं। नायडू, गोखले के कार्यों से प्रभावित थीं तथा गोखले के शब्दों में, "गांधी वे व्यक्तित्व थे जो मिट्टी से भी नायक बनाने की प्रतिभा रखते थे।" सरोजनी नायडू का जन्म 13 फरवरी, 1879 को हैदराबाद में एक बंगाली परिवार में हुआ था। गांधी जी सरोजनी नायडू को 'भारत की बुलबुल' के नाम से पुकारते थे।

गोखले की मृत्यु के उपरांत सरोजनी नायडू गांधी जी के साथ स्वतंत्रता आंदोलन में आगे आईं।

रॉलेट एक्ट के पास होने पर गांधी जी भारत भ्रमण पर निकले तथा सरोजनी नायडू उनके साथ रहीं। उन्होंने उस वक्त महिलाओं को अंग्रेजों द्वारा रोलेट एक्ट के बारे में अवगत करवाने का कार्य किया।

जलियांवाला कांड के बाद नायडू इंग्लैड गईं तथा किंगस्ले हॉल में जनसभा को संबोधित किया। वे नियमित तौर पर ब्रिटिश संसद जाती तथा वहां भारत के खिलाफ क्या बोला जाता है, उसे सुनतीं तथा उसका विवरण गांधी जी को प्रेषित करतीं।

सरोजनी नायडू ने गांधी जी के साथ दांडी मार्च में भाग लिया। लंदन में हुई गोलमेज कांफ्रेंस में नायडू ने भारतीय महिलाओं की ओर से प्रतिनिधित्व किया।

इससे पहले वे 1924 में केनिया इंडिया कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में अफ्रीका गईं।

कस्तूरबा गांधी की मृत्यु उपरांत सरोजनी नायडू ने 'बा' का स्मारक बनाने का निर्णय लिया। 2 अक्तूबर, 1944 को गांधी जी के 75वें जन्मदिवस पर बंबई के चौपाटी में एक भारी जलसा हुआ जिसमें 1.31 करोड़ रुपये का अंशदान संपूर्ण भारत से एकत्रित किया गया, इस पैसे से कस्तूरबा गांधी मेमोरियल न्यास की स्थापना हुई।

1932 में असहयोग आंदोलन, 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में नायडू ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

भारत की इस महान सुपुत्री का निधन 2 मार्च, 1949 को लखनऊ में हुआ।

सुशीला नैयर : समाज सेविका

महात्मा गांधी के निजी सचिव प्यारे लाल नैयर की बहन सुशीला नैयर, जिन्होंने मेडिकल की पढ़ाई पूर्ण की थी, 1930 में सेवाग्राम में रहने लगीं।

इसी दौरान गांवों में आंत्रशोथ फैल गया। गांधी जी ने उसे इस बीमारी पर काबू पाने के लिए उसे आश्रम से कुछ स्वयंसेवी दिए। गांधी जी ने नैयर से कहा कि वे गांव को एक अस्पताल समझें तथा हर घर को अस्पताल वार्ड।

सुशीला नैयर ने गांधी तथा कस्तूरबा की सेवा करने में समय

व्यतीत किया। साबरमती में रहते हुए नैयर महात्मा गांधी के साथ शीर्ष नेताओं के साक्षात्कार लिखतीं, जिसे संशोधित कर गांधी जी हरिजन पत्र में प्रकाशित करने को भेजतीं।

सुशीला नैयर ने गांधीजी की सेवा अंत समय तक की। विभाजन के समय विस्थापितों के पुनर्वास व उनके शिविरों की सेवा में संलग्न रहीं।

मीराबेन : विदेशी का भारत प्रेम

ब्रिटिश एडमिरल की बेटी सुश्री मेडेलिन स्लेड ने पहली बार गांधी जी के बारे में रोमेन रोलां द्वारा लिखी जीवनी को पढ़ा। इसे पढ़ कर उसने अपना जीवन गांधी जी के साथ व्यतीत करने का प्रण लिया। उसने एक वर्ष तक गांधी जी के आश्रम में प्रवेश के लिए तैयारी की। एक वर्ष तक चरखा चलाना, कताई सीखी व आश्रम के नियमों से आत्मसात किया। 7 नवंबर, 1925 को वे अहमदाबाद के साबरमती आश्रम पहुंची और आश्रम में रहने की इच्छा व्यक्त की। उसने अपनी आत्मकथा में लिखा, "गांधी जी ने अपने हाथों से उठाया और कहा आज से आप मेरी बेटी हैं।" गांधी जी ने उसे मीरा नाम दिया। वे गांधी जी के साथ 23 वर्षों तक रहीं।

गांधीजी ने मीरा को आश्रमवासियों को हिंदी भाषा सीखने, चरखा चलाने तथा पढ़ाने का कार्य सौंपा। वर्ष 1928 में मीरा ने खादी को लोकप्रिय बनाने के लिए बिहार का दौरा किया। दांडी यात्रा में भी वे गांधी जी के साथ रहीं।

गोलमेज कांफ्रेंस के वक्त वे लंदन गईं। गांधी जी ने उसके नाम के साथ उपनाम बेन जोड़ा जो मीरा बहन बना।

मीराबेन ने गांधीजी की प्रेस विज्ञप्तियों को इंग्लैंड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, स्विटरजरलैंड भेजने के कार्य को संभाला।

1934 में मीराबेन ने लंदन जाकर गांधी जी के कार्यों का उल्लेख किया। ब्रिटेन में रहते हुए पत्रकारों ने उनके अनेकों साक्षात्कार प्रकाशित किए। वे सदैव कहती थीं कि मैं गांधी जी के सेवा के धर्म को अपनाती हूं। दुनिया में ईसा मसीह, बुद्ध हैं तथा अब गांधी हैं।

अक्तूबर 1934 में अमेरिका प्रवास के दौरान उसने भारत की व्यथा को वहां की जनता के समक्ष रखा। 1975 में मीराबेन की वर्धा में आश्रम के लिए स्थान चिन्हित करने का जिम्मा दिया गया। मीराबेन ने वर्धा के सेवाग्राम जगह को ढूंढा और वहां आश्रम का निर्माण करवाया।

1938 में वे गांधी जी के साथ उड़ीसा के दौरे पर रहीं। तदोपरांत मीरा इंग्लैंड तथा अमेरिका के दौरे पर गईं और वहां दुनिया में बड़े नेताओं चर्चिल, हैलीफैक्स, स्मरस् को गांधी जी के विचारों से अवगत करवाया।

मीराबेन ने उत्तर पश्चिम प्रांतीय प्रोविंस में बादशाह खान के साथ रहकर 1938 व 1939 में सामाजिक कार्यों को आगे बढ़ाया।

1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के लिए मीरा बेन को अंग्रेजों द्वारा गिरफ्तार किया गया।

अप्रैल 1946 में मीरा बेन को प्रांतीय सरकार का मानद सलाहकार नियुक्त किया गया। इसका कार्य अधिक अन्न उगाने के अभियान को आगे बढ़ाना था।

30 जनवरी, 1948 को मीरा बेन ऋषिकेश आश्रम में थीं, जिसकी स्थापना गांधी जी के मार्गदर्शन में की गई थी। 1952 में मीरा बेन ने टिहरी गढ़वाल के भीलंगगाना में गोपाल आश्रम की स्थापना की। वे वर्ष 1959 में भारत छोड़ कर चली गईं। कुछ देर इंग्लैंड रहने के बाद वे आस्ट्रिया से 50 मील दूर एक गांव में रहने लगीं। वे वहां एक भारतीय नारी के रूप में विख्यात हुईं। भारत सरकार ने स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी सेवाओं के लिए उन्हें पदम विभूषण से सम्मानित किया और डाक टिकट जारी किया। मीराबेन ने अपनी जीवनी भी प्रकाशित की।

20 जुलाई, 1982 को मीरा बेन का निधन हुआ।

हैनरी डेविड थोरो : सादगी व सच्चाई का जीवन

महात्मा गांधी अमेरिका के विख्यात कवि, निबंध लेखक तथा अराजकतावादी लेखन तथा आदर्शों के अत्यधिक प्रभावित हुए। 12 जुलाई, 1817 को जन्में हैनरी ने अमेरिका में गुलामी की प्रथा होने के कारण टैक्स देना बंद कर दिया था। वर्ष 1849 में उसने अपने भाषणों में पहली बार सविनय अवज्ञा शब्द का प्रयोग किया था। लेकिन गांधी जी ने अफ्रीका में रहते हुए अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ इसका प्रयोग किया था।

गांधी जी थोरो के निबंधों से अत्यधिक प्रभावित हुए तथा उन्होंने कहा था कि उनके लेखन में उन पर गहरा असर छोड़ा। थोरो ने गीता सहित उपनिषदों का गहन अध्ययन किया था।

गांधी जी थोरो की अहिंसा तथा मानवता के प्रति समानता से विचारों से अत्यधिक प्रभावित हुए। दोनों महान शख्सीयतों में एक सी समानता थी। दोनों टैक्स देने के विरोधी थे। दोनों सादा जीवन यापन करने को आदर्श मानते थे। गांधी आश्रमों में रहना पसंद करते थे तो वे शहर के बारा वालडन पोड में रहते थे। दोनों हत्या के विरोधी तथा व्यक्ति की प्रगति को प्राथमिकता देने की बातें करते थे। दोनों मानव के शोषण के विरुद्ध थे वहीं थोरो गुलामी के विरुद्ध थे तो गांधी अस्पृश्यता के विरुद्ध थे।

गांधी तथा थोरो का जीवन सादगी तथा सच्चाई की नींव पर खड़ा था।

रस्किन : जिससे मिला जीवन का यथार्थ

महात्मा गांधी ने 24 घंटे की रेल यात्रा जो अफ्रीका के जोहानिस्बर्ग से डरबन के मध्य थी, के दौरान रस्किन की पुस्तक 'अणटू दि लास्ट' को पढ़कर जीवन के यथार्थ को समझा तथा उसे अपने जीवन का हिस्सा बनाया। गांधी जी के शब्दों में, 'रेल वहां शाम को पहुंची। उस रात मैं सो नहीं सका। मैंने उस रात पुस्तक

के आदर्शों के अनुसार अपने जीवन में बदलाव लाने की प्रतिज्ञा की।'

गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा - रस्किन की इस पुस्तक को हाथ में लेने के बाद मैं छोड़ ही न सका। इसने मुझे पकड़ लिया। जोहानिसबर्ग से नेटाल का रास्ता लगभग चौबीस घंटे का था। ट्रेन शाम को डरबन पहुंचती थी। पहुंचने के बाद मुझे सारी रात नींद न आई। मैंने पुस्तक में सूचित विचारों को अमल में लाने का इरादा किया। मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मेरे अंदर गहराई में छिपी पड़ी थी, रस्किन के ग्रंथ रत्न में मैंने उसका स्पष्ट प्रतिबिंब देखा। और इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य जमाया और मुझसे उसमें दिए गए विचारों पर अमल करवाया। बाद में मैंने उसका गुजराती भाषा में अनुवाद किया और वह सर्वोदय के नाम से छपा। मैं सर्वोदय के सिद्धांतों को इस प्रकार समझा हूं :-

सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है

वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक सी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है।

सदा मेहनत-मजदूरी का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

यह पुस्तक रस्किन का विशुद्ध मूल कार्य था। इसमें राजनीतिक अर्थशास्त्र पर चार शोध पत्र सम्मानित किए गए थे। इसका प्रकाशन पहले वर्ष 1860 में कार्नहिल पत्रिका में हुआ था। इस पुस्तक में विज्ञान तथा राजनैतिक अर्थशास्त्र की आम जन को ध्यान में रखकर व्याख्या की गई थी। इसको मालिक तथा श्रमिक के मध्य प्रेम का वातावरण, आत्मा की आवाज तथा कानून की व्याख्या की गई थी। गरीबी तथा अमीरी के अंतर को दर्शाया गया था। रस्किन के सुझावों में सरकार द्वारा तकनीकी तथा प्राथमिक स्कूलों को खोलना, कार्यशालाओं का आयोजन, बेरोजगारों को काम दिलाना, निर्धारित वेतन देना, सेवाकाल को सुनिश्चित करना तथा वृद्धावस्था पेंशन प्रदान कर एक समाजवादी के विचार को प्रस्तावित करना था।

रस्किन युवाओं के स्वास्थ्य, चरित्र निर्माण तथा स्वावलंबन के हिमायती थे। वे सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के हक में थे लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र को बढ़ावा देने के प्रति भी कटिबद्ध थे। उनके शब्दों में एक सच्चा अर्थशास्त्र न्याय आधारित होना चाहिए। उनके शब्दों में, 'हमें सदैव जहन में रखना चाहिए कि धन एक साधन होना चाहिए जो सुख तथा दुख के कारण हैं।

गांधी जी का स्वराज की विचारधारा रस्किन के आदर्शों पर आधारित है। उन्होंने इस पुस्तक की व्याख्या स्पष्ट तौर पर दी है।

सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है।

सभी का कार्य बराबर तथा एक ही मूल्य का होता है।

श्रम के बारे में उन्होंने लिखा कि खेतिहर तथा हस्तशिल्प का जीवन जीने योग्य होता है।

रस्किन की एक अन्य पुस्तक 'Crown of Wild Olives' भी गांधी जी की प्रिय पुस्तकों में से थी।

गांधीजी ने रस्किन के साधना के अनेक आदर्शों को मानवता की भलाई के लिए उपयोग किया।

लिओ टॉलस्टाय : प्रेरणादायक जीवन

गांधी जी पर लिओ टॉलस्टाय की पुस्तक 'The Kingdom of God is within you' का गहरा प्रभाव पड़ा। गांधी जी के विचारों को टॉलस्टाय के लेखन ने अत्यधिक प्रभावित किया। टॉलस्टाय के व्यापक मानवीय दृष्टिकोण, सौहार्द, व्यक्ति की आत्मीय शक्ति तथा साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा जातिभेद से उनके वक्तव्यों ने गांधी जी के विचारों को बदला।

गांधी जी को टॉलस्टाय के जीवन से प्रेरणा मिली।

उस काल वे सबसे विश्वसनीय व्यक्तियों की श्रेणी में आते थे। उनका संपूर्ण जीवन सच्चाई की कहानी बयां करता था। वे सच्चाई के हितैषी थे।

वे अहिंसा के पुजारी की श्रेणी में गिने जाते थे। पश्चिम के किसी भी लेखक या दार्शनिक ने अहिंसा के प्रति न लिखा तथा न बोला था। सच्ची अहिंसा, दुर्भावना, क्रोध, घृणा से संपूर्ण मुक्ति है।

टॉलस्टाय का तीसरा सिद्धांत आजीविका श्रम के लिए सभी को शारीरिक श्रम कर भोजन कमाना चाहिए। टॉलस्टाय ने गरीबी हटाने के मंत्र भी दिए। वर्ष 1921 में जब गांधी जी से टॉलस्टाय के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि, 'वे टॉलस्टाय के सच्चे भक्त हैं जिन्होंने उन्हें जीवन में बहुत कुछ प्रदान किया है।' मानवता तथा सादगी के विचार गांधी जी ने टॉलस्टाय से सीखे। दोनों धर्म-प्रधान थे लेकिन दोनों के विचार एक समान थे। टॉलस्टाय के अनुसार भगवान के दर्शन अपनी आत्मा में किए जा सकते हैं जिसका अनुसरण गांधीजी ने अपनी जीवन यात्रा में किया।

सी.एफ. एंड्रयूज : गरीबों का दीनबंधू

सी.एफ. एंड्रयूज का जन्म 12 फरवरी, 1871 को इंग्लैंड में हुआ था। वे 20 मार्च, 1904 को भारत आए। वे अपने भारत आगमन को अपना दूसरा जन्म मानते थे।

एंड्रयूज की गांधी जी से पहली मुलाकात प्रथम जनवरी, 1914 को अफ्रीका के डरबन में हुई थी। वे वहां जा कर गांधी जी के श्रम, गरीबों की सेवा भावना से प्रभावित हुए थे। वे वहां एक तमिल श्रमिक जिसे अंग्रेजों की क्रूरता का सामना करना पड़ा था, को गांधी जी द्वारा की जा रही मरहम पट्टी व सेवा से इतने प्रभावित हुए थे कि उनकी आंखों से अश्रुधारा बह निकली।

गांधी जी के भारत वापिस आने पर दोनों की मित्रता प्रगाढ़ हुई। वर्ष 1915 तथा वर्ष 1917 में एंड्रयूज फिजी गए और वहां

अनुबंध भारतीय श्रमिकों के हितों के लिए आवाज उठाई तथा प्रथम जनवरी, 1920 को सभी भारतीयों को इस श्रेणी से मुक्ति दिलवाई। वहां रहते तथा श्रमिकों के हित में कार्य करने के लिए उन्हें 'दीनबंधु' गरीबों का मित्र के नाम से जाना गया।

वर्ष 1924 में गांधी जी के जेल से छूटने के बाद दोनों में मित्रता और प्रगाढ़ हुई। उन्होंने यंग इंडिया समाचार पत्र के लिए कार्य भी किया। गांधी जी के वर्ष 1931 में इंग्लैंड में गोलमेज सम्मेलन के दौरान सी.एफ. एंड्रयूज ने गांधी जी के ठहरने के सभी प्रबंध किए। उन्होंने गांधी जी के साथ अनेक संगठनों, नागरिकों की बैठकें भी करवाई। सी.एफ. एंड्रयूज पहले पश्चिमी व्यक्ति थे जिन्होंने गांधी जी के दर्शन को समझा तथा उसकी व्याख्या की। उन्होंने गांधी दर्शन के तीन खंडों का संपादन किया। एंड्रयूज, सैम्यूल स्टोक्स के भी मित्र थे जिन्होंने गांधी को पहाड़ों में बेगार प्रथा बारे सूचित किया और गांधी व स्टोक्स के प्रयासों से पहाड़ी जनमानस को बेगार प्रथा से मुक्ति मिली।

गांधीजी ने अपने मित्र सी.एफ. एंड्रयूज की जीवनी की प्रस्तावना 8 दिसंबर, 1947 को लिखी जिसमें उन्होंने लिखा कि 'चार्ली एंड्रयूज एक बालक की तरह सरल, ईमानदार तथा अत्यधिक शर्मिला था।"

5 अप्रैल, 1939 को उनका निधन हुआ।

महादेव देसाई : गांधी के अनन्य भक्त

गांधीजी ने भारत आकर गुजरात के अहमदाबाद में साबरमती आश्रम की स्थापना की। उनके विचारों तथा दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह आंदोलन की सफलता से महादेव देसाई जो एक वकील थे, बहुत ही प्रभावित हुए। दिसंबर 1917 में उन्होंने अपनी पत्नी दुर्गा के साथ गांधी जी के आश्रम में शामिल रहने का निर्णय लिया। वे चंपारन आंदोलन के दौरान गांधी जी के साथ रहे। चंपारन में रह कर वहां के गांवों में शिक्षण कार्य किया। वे 24 वर्ष तक गांधीजी के निजी सचिव रहे तथा गांधीजी के सभी दौरों में उनके साथ रहे।। महादेव देसाई ने गांधीजी पर अनेक पुस्तकें लिखीं तथा महान लोगों के साथ गांधीजी के साक्षात्कार तथा बातचीत के वृतांत भी लिखे।

15 अगस्त, 1942 को आगा खां पैलेस में बंदी के दौरान महादेव देसाई का निधन हो गया।

राजगोपालाचारी महादेव देसाई को बापू को फेफड़े कहते थे। जबकि महादेव देसाई अपने आपको एक कुली तथा समान उठाने वाला कहते थे।"

महादेव देसाई प्रतिदिन डायरी लिखते थे। ये सभी 19 डायरियां गांधी जी के विचारों को संग्रहित करने का मुख्य स्रोत बना।

विनोबा भावे : सच्चे गांधीवादी

विनोबा भावे का जन्म 11 सितंबर, 1895 को महाराष्ट्र के गांव गगोदा में हुआ था। वर्ष 1916 में उन्होंने स्कूल तथा कॉलेज के प्रमाण पत्रों को आग के हवाले किया और आत्मिक शांति के लिए बनारस आ गए। जहां उन्होंने प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। वहां रहते हुए विनोबा ने समाचार पत्र में गांधी जी के भाषण तथा विचारों को पढ़ा। प्रभावित होकर वे 7 जून, 1916 को गांधी जी से भेंट करने सत्याग्रह आश्रम अहमदाबाद पहुंचे। वे गांधी जी के आश्रम में शिक्षण, अध्ययन, कताई तथा समाज की भलाई के कार्यो से प्रभावित हुए।

23 दिसंबर, 1932 को वर्धा से दो मील दूर नालवाड़ी गांव आकर सामाजिक कार्यो को आगे बढ़ाने का प्रण लिया। 1938 में वे पबनार में परमधाम आश्रम में रहने लगे। वे स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी जी के साथ रहे तथा अनेक बार जेल गए। गांधी जी ने उन्हें प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही के रूप में चिन्हित किया। जब गांधी जी ने विनोबा भावे को व्यक्तिगत सत्याग्रही चिन्हित किया तो उन्हें देश नहीं जानता था। 5 अक्तूबर 1940 को गांधी जी ने विनोबा भावे पर वक्तव्य जारी कर उनके कार्यों को उजागर किया।

विनोबा जी के लिए जेल का प्रवास अध्ययन तथा लेखन कार्यों में व्यतीत हुआ।

30 जनवरी, 1948 को गांधी जी की हत्या होने पर गांधी जी के अनेक अनुयायी विनोबा भावे की ओर मार्गदर्शन के लिए देखने लगे। विनोबा भावे ने उन्हें सलाह दी कि भारत ने स्वराज स्वतंत्रता (स्व शासन) के लक्ष्य को हासिल कर लिया है तथा अब गांधी जी का नया तथ्य सर्वोदय (सभी का कल्याण) होना चाहिए। तदोपरांत गांधी जी का नया आंदोलन सर्वोदय आरंभ हुआ। समाज सेवा के लिए सर्वसेवा संघ का गठन हुआ। 15 अप्रैल, 1951 को विनोबा भावे ने तेलंगाना का दौरा किया और वहां गरीबों की व्यथा को जाना और समझा। गरीबों से बात कर उनके मन में विचार आया कि अगर गरीबों को भूमि मिल जाए तो उनका जीवन सुधर सकता है। इस विचार को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने देशभर में भू-दान यज्ञ आंदोलन चलाया। इस प्रयास से 41,94,270 एकड़ भूमि एकत्रित कर गरीबों को बांटी गई।

15 नवंबर, 1982 को विनोबा भावे का निधन हुआ। वे गांधी जी के सच्चे अनुयायी थे, जिन्होंने गांधी जी के अवसान उपरांत गांधी के गरीबी उन्मूलन के आदर्श को आगे बढ़ाया।

खान अब्दुल गफार खान : हिंदू-मुसलमान एकता के प्रणेता

खान अब्दुल गफार खान जिन्हें बादशाह खान के नाम से जाना जाता था, महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी तथा हमारे स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख प्रेरणा पुंज थे।

उनका जन्म 1890 में हुआ। वे उत्तर पश्चिमी प्रांतीय प्रांत में गांव उतमांजाई के रहने वाले थे।

बादशाह खान का परिवार खुले विचारों वाला था। उन्होंने



मौलाना अब्दुल कलाम आजाद के समाचार पत्र 'अल-हिलाल' को पढ़ना आरंभ किया। यह पत्र लोगों में स्वतंत्रता, लोकतंत्र तथा न्याय के विचार फैलाने का कार्य कर रहा था। इसमें अंग्रेजों द्वारा की जा रही ज्यादतियों का भी उल्लेख होता था। बादशाह खान ने अंग्रेजों के खिलाफ बगावत की और उन्हें जेल जाना पड़ा।

जेल में रहते हुए बादशाह खान ने चरखा चलाना सीखा। 1924 में तीन साल की सजा खत्म हुई। जेल से छूटने पर गांव में उनका भव्य स्वागत हुआ तथा एक बड़े जलसे में उन्हें फक्र-ए-अफगान का खिताब दिया गया। उन्होंने यहां एक यादगार भाषण दिया जिसका प्रभाव लोगों पर पड़ा।


शिमला प्रवास के दौरान महात्मा गांधी पं. जवाहर लाल तथा सरदार पटेल, अब्दुल गफ्फार खान के साथ

मई 1928 में बादशाह खान ने पश्तू भाषा में 'पख्तून' समाचार पत्र आरंभ किया। इससे पहले 1920 में वे दिल्ली आए और खिलाफत आंदोलन में भाग लिया।

1928 में वे गांधी जी सहित देश के शीर्ष नेताओं के संपर्क में आए। 1929 में बादशाह खान ने खुदाई खिदमतगार संगठन का गठन किया। इस संगठन का कार्य पख्तून के निवासियों में स्वावलंबन की भावना जागृत करना था।

बादशाह खान ने स्वतंत्रता आंदोलन के सभी बड़े आंदोलनों में भाग लिया और हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए जी जान से कार्य किया। वे सभी धर्मों का आदर करते थे। वे महिलाओं की स्वतंत्रता तथा स्वावलंबन के परम हितैषी थे। 98 वर्ष की आयु में 21 जनवरी, 1988 को उनका निर्धन हुआ।

डॉ. सुशीला नायर : सेवा ही जिसका धर्म रहा

26 दिसंबर, 1914 को जिला गुजरात के गांव कुंजन (जो अब पाकिस्तान में है) में जन्मी सुशीला नायर स्कूली शिक्षा के दौरान से ही गांधी जी के आश्रम नियमित तौर पर जाती थीं। उनके भाई प्यारेलाल गांधी जी के सहायक के रूप में कार्य करते रहे तथा महादेव देसाई के निधन पर वे गांधी जी के प्रमुख सचिव बने। सुशीला नायर ने पंजाब विश्वविद्यालय से एम.बी.बी.एस. की डिग्री हासिल की और वर्ष 1937 से वे गांधी जी चिकित्सक के रूप में उनके निधन तक उनकी सेवा में सदैव रहीं।

वर्ष 1939 में नायर ने मेडिकल कॉलेज में पुनः दाखिला लिया और स्नातकोत्तर डिग्री हासिल की। गांधी जी के निधन उपरांत उन्होंने हायकिन विश्वविद्यालय, अमेरिका से पब्लिक हैल्थ में स्नातकोत्तर की डिग्री ग्रहण की।

स्वतंत्रता आंदोलन में डॉ. सुशीला नायर ने सक्रियता से भाग लिया और अनेक बार जेल भी गए।

गांधी जी की सलाह पर वे सेवा ग्राम आश्रम वर्धा के आसपास के गांवों में नियमित तौर पर चिकित्सा जांच शिविर आयोजित करती थीं। वर्ष 1947 में डॉ. नायर ने भारत छोड़ो आंदोलन में भी भाग लिया। उन्हें गांधी, कस्तूरबा के साथ आगा खां महल में नज़रबंद रखा गया।

वे दिल्ली विधान सभा के लिए निर्वाचित हुईं और 1950 से 1955 के मध्य स्वास्थ्य मंत्री रहीं। वर्ष 1955-56 में दिल्ली विधान सभा की अध्यक्ष रहीं। वर्ष 1962 से 1967 तक जवाहर लाल मंत्रिमंडल में बतौर स्वास्थ्य मंत्री रहीं।

सेवाग्राम में रहते हुए डॉ. नायर ने वर्धा के आसपास के गांवों में कस्तूरबा स्वास्थ्य समिति के माध्यम से स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान कीं। उन्होंने स्वास्थ्य कर्मियों को प्रशिक्षित कर घर-घर स्वास्थ्य कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने की पहल की। वर्ष 1964 में सेवाग्राम में नर्सों को प्रशिक्षण देने के लिए स्कूल खोला। 1969 में गांधी जी के जन्मशती पर सेवाग्राम में मेडिकल कॉलेज खोला गया। डॉ. सुशीला नायर ने तीन पुस्तकें - गांधी का जीवन, हमारी बा-कस्तूरबा तथा बापू की कारावास कहानी लिखी। ग्रामीण क्षेत्र में उत्कृष्ट सेवाएं प्रदान करने के लिए उन्हें विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वर्ष 1988 में सम्मानित किया। 3 जनवरी, 2001 को 87 वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ।

प्यारे लाल : गांधी के आदर्शों को जन जन तक पहुंचाया

प्यारे लाल का जन्म वर्ष 1899 में दिल्ली में हुआ। बचपन से ही प्यारे लाल के मन में स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल होने की इच्छा थी। प्यारे लाल ने पहली बार लाहौर में गांधी का भाषण सुना। वे दौर जलियांवाला कांड तथा रॉलैट एक्ट के विरोध का था। वे गांधी जी के विचारों से प्रभावित हुए और वर्ष 1920 में

पढ़ाई छोड़ सविनय अवज्ञा आंदोलन में शामिल हो गए और गांधी जी के साथ कार्य में लग गए।

गांधी जी के साथ रह कर वे ग्राम उत्थान के कार्यों तथा महादेव देसाई जो गांधी जी के सचिव थे, के साथ कार्य करने लगे। वे गांधी जी के साथ हर दौरे में साथ होते थे। 1932 में वे गांधी जी के साथ द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए इंग्लैंड गए। गांधीजी ने प्यारे लाल को यंग इंडिया तथा हरिजन पत्र का संपादक बनाया और उन्होंने इन पत्रों में अनेक लेख भी लिखे।

भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रियता से भाग लिया। गांधी के साथ जेल गए। वर्ष 1942 में महादेव देसाई के निधन उपरांत गांधी जी के प्रधान सचिव बने।

गांधी जी की मृत्यु के उपरांत वे विनोबा भावे के साथ रहे तथा गांधी जी के आदर्शों को जन-जन तक पहुंचाने का कार्य किया। वर्ष 1965 में वे बादशाह खान को मिलने गए। उस वक्त बादशाह खान बीमार थे तथा उन्होंने खान साहिब को श्रेष्ठ स्वास्थ्य सेवा प्रदान करवाने में मदद की।

महादेव देसाई गांधी जी के विचारों को संग्रहित करने के लिए रोज डायरी लिखते थे। महादेव देसाई के निधन के उपरांत प्यारे लाल ने इस कार्य को आगे बढ़ाया।

प्यारे लाल ने गांधी जी पर 16 पुस्तकें लिखीं।

उनकी पहली पुस्तक गांधी जी का अंतिम दौर, तदोपरांत आरंभिक दौर तथा सत्याग्रह की खोज पुस्तकें लिखीं।

गांधी जी के दस्तावेजों को संरक्षित करने में प्यारे लाल का बहुत बड़ा योगदान रहा है। वर्ष 1982 में 83 वर्ष की आयु में प्यारे लाल का निधन हुआ।

जय प्रकाश नारायण : देश का प्रकाश

जय प्रकाश नारायण एक ऐसे राजनेता थे जिन्होंने गांधीजी के आदर्शों को अपनाते हुए स्वयं राजनीति के केंद्र में न रहकर जनशक्ति को सुदृढ़ करने का कार्य किया। जे.पी. के नाम से विख्यात इस महान व्यक्तित्व को लोकशक्ति के नाम से पुकारा जाता था।

जे.पी. सच्चाई के अनुयायी थे। इसी कारण वे गांधी जी के संपर्क में आए। उनका जन्म 11 अक्तूबर, 1902 को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में पिता हरसू दयाल व माता फूल रानी के घर हुआ। स्कूली शिक्षा पटना में हुई। आई.एस.सी. की डिग्री हासिल करने के उपरांत वे उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए अमेरिका गए। वे अपने साथ गीता तथा रामचरितमानस लेकर गए। वे मौलाना आजाद तथा बनार्ड शॉ के भाषणों से प्रभावित हुए। अमेरिका में पढ़ाई करते वक्त पढ़ाई के लिए पैसे जुटाते वक्त उन्हें श्रम तथा समानता का बोध हुआ।

जब जे.पी. अध्ययन के लिए अमेरिका गए, उस वक्त उनकी पत्नी प्रभावती साबरमती आश्रम में गांधी तथा कस्तूरबा के पास रहीं। तथा बा ने उसे अपनी बेटी के रूप में अपनाया।

वे गांधी के आदर्शों को मानने वाले तथा उनके शब्दों में, "गांधीजी ने सविनय अवज्ञा प्रणाली को देकर राष्ट्र की महान सेवा की है।" गांधीजी की मृत्यु के उपरांत उन्होंने समाजवादी विचारधारा को अपनाया। वे समाजवाद तथा गरीबों के उत्थान के प्रणेता बने और विनोवा भावे के संपर्क में भी आए। उन्होंने अपनी पत्नी प्रभावती के साथ 'अखंड सूत योजना' आरंभ की। उनका विचार था कि इससे वे राष्ट्र निर्माण में भागीदार बन सकते हैं।

जे.पी. के विचार में आदमी का प्राकृतिक निवास स्थान गांव है तथा समाज के निर्माण के लिए गांवों का विकास जरूरी है। उन्होंने इस विचारधारा को अपनाते हुए समाजवाद को अपनाया। उन्होंने विनोवा भावे के भूदान आंदोलन को भी बढ़ावा दिया। उन्होंने ग्राम निर्माण मंडल, सर्वोदय आश्रम की स्थापना सोखोदयोरा में की। आश्रम 70 एकड़ में स्थापित हुआ। भू-दान आंदोलन के सक्रिय सौ कार्यकर्ताओं को इसमें शामिल किया गया। जापान से विशेषज्ञ बुलाए गए। कार्यकर्ताओं को खेती की प्रौद्योगिकी बारे प्रशिक्षण दिया गया। जे.पी. भी प्रतिदिन तीन से चार घंटे कृषि कार्य करते थे।

बीस वर्षों तक जे.पी. ने भू-दान, ग्राम दान, ग्राम स्वराज जैसे कार्यों में सक्रियता से कार्य किया। 1974 में उन्होंने 'पूर्ण क्रांति का आह्वान' किया। उन्होंने इस क्रांति के लिए सात संकल्प लिए। इस क्रांति को दबाने के लिए देश में आपातकाल की घोषणा की गई। आपातकाल की समाप्ति पर देश में हुए चुनावों में जनता पार्टी की सरकार बनी। एक सच्चे गांधीवादी ने देश में एक महान परिवर्तन लाया। लेकिन वे इस परिवर्तन को ज्यादा देख न सके और 8 अक्तूबर, 1979 को जे.पी. का निधन हो गया। लोग उन्हें लोकनायक कहते थे लेकिन वे अपने आपको सदैव लोकसेवक ही कहते थे। उन्होंने सारी उम्र गरीबों की सेवा में व्यतीत किए। वे देश का प्रकाश-जय प्रकाश थे।

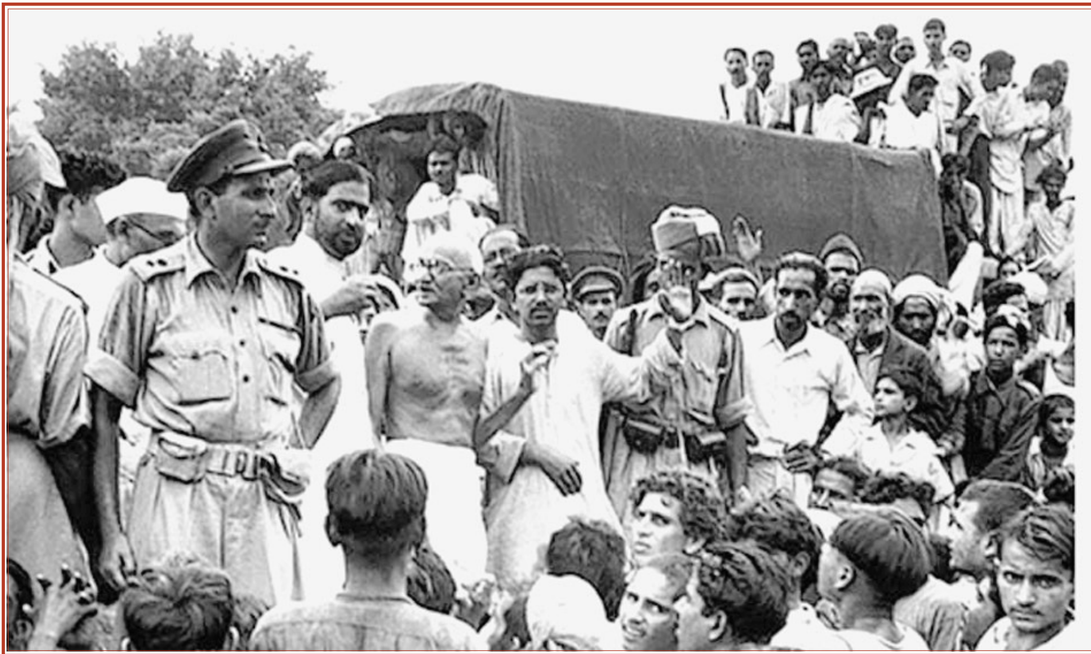
यह कहना सच है कि गांधी जी ने इतिहास बनाया जबकि इस इतिहास को दुनिया के समक्ष प्यारे लाल ने लाया।

इन महान शख्सीयतों के बिना गांधी जी का जीवन दर्शन अधूरा है। इन महान आत्माओं ने गांधी को महात्मा बनाने तथा सत्य और अहिंसा की राह पर चल कर आजादी प्राप्त करने में कदम-दर-कदम सहयोग दिया। सभी ने अपने अपने क्षेत्रों में समाज के उत्थान के लिए कार्य कर एक-से-बढ़कर-एक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

गांधी जी की 150वीं जयंती पर इन सभी को स्मरण करना आज की नितांत आवश्यकता है ताकि आज की पीढ़ी भी इनके योगदान का स्मरण कर सके। गांधी जी एक वटवृक्ष की तरह थे। लेकिन उन्होंने वट वृक्ष की शाखाओं को भी पेड़ बनने की पूर्ण स्वतंत्रता तथा सहयोग दिया। इसीलिए तो गांधी महान थे, महान हैं और महान रहेंगे।

गांधी की चंपारन पाठशाला

◆ गिरिराज किशोर



महात्मा गांधी चंपारन में जनसमूह के साथ

लंदन में पढ़ा एक बैरिस्टर दक्षिण अफ़्रीका गया था। जब उसे फ़र्स्ट क्लास से उतरने के लिए कहा गया तो उसने दो बातों का सहारा लिया एक फ़र्स्ट क्लास के टिकट का, दूसरा बैरिस्टर होने का। दोनों बातें गोरों के सामने नहीं चली। गाड़ी से नीचे मय साज़ो-सामान फेंक दिया गया। दोनों ही बातें कागज़ी थी। टिकट भी डिग्री भी। तब उसके अंदर उसका गांधी जागना शुरू हुआ। पहले वह हलकान होकर सोचने लगा कि लौट चलूँ। उनका वह सामान्य गाँधी, जो कुट-पिटकर या हारकर, रोज़गार के लिए भारत से दादा अब्दुल्ला के पास एक साल के गिरमिट पर गया था, तनकर खड़ा हो गया कि तुझे नहीं जाना है। उसने सबको तार खटखटा दिए। उसके बाद उसे अगली गाड़ी से फ़र्स्ट क्लास में ही प्रिटोरिया भेजा गया। पहला पाठ शायद समझ में आ गया था कि बिना आवाज़ उठाए कुछ नहीं होता। तुम्हारा अपना कोई सम्मान नहीं। कमाना पड़ेगा। जब चार्ल्स टाउन उतरा जहां उसे स्टेट कोच(आठ घोड़ों की गाड़ी) का टिकट लेना था, वहाँ भी गोरे ने उसके उस टिकट को मानने से इनकार कर दिया जिसे पहले दिन फ़र्स्ट क्लास के टिकट के साथ ख़रीदा गया था। वहाँ उसे कहना पड़ा कि आप मुझे संतुष्ट करें कि यह टिकट वाजिब नहीं। दादा अब्दुल्ला का नाम आने पर वह नरम पड़ा। पास बैठे दूसरे गोरे से कहा कि ये कुली बहुत तंग करते हैं। मोहनदास ने प्रतिवाद किया 'मैं कुली नहीं, बैरिस्टर हूँ।'

'कुछ भी हो, नस्ल से तो कुली ही हो।' बैरिस्टर होने की बात यहाँ भी नहीं चली। वे रंग की क़दर करते थे।

वह बोला ' तुम दादा अब्दुल्ला के आदमी हो, पर तुम्हें वहीं बैठना होगा जहाँ बैठने के लिए कहा जाएगा।'

'ठीक है मेरा जाना ज़रूरी है।' वह आदमी जो एजेंट के पास बैठा था, कोच का मुखिया था।

मोहन दास कोच में जाकर बैठ गया। मुखिया आया तो कहा 'तुम ऊपर जाकर साईस के पास बैठो जहाँ मैं बैठता हूँ। तुम्हें पहले ही बता दिया गया था कोच के अंदर गोरे बैठते हैं।' मोहनदास नहीं

चाहता था उसे इस बार भी कोच से बाहर फेंका जाए। वह कोच बॉक्स पर साईस के पास जाकर बैठ गया। सामान पीछे कोच में भर दिया गया था।

सवेरे तीन बजे के क़रीब कोच का मुखिया नमूद हुआ और एक मैला सा कपड़ा पायदान पर डालकर बोला 'ए कुली तुम यहाँ बैठो, मैं यहाँ बैठकर सिगरेट पीऊँगा।' मोहनदास ने मना कर दिया। उसने उसे मारना शुरू कर दिया। वह मारता जा रहा था और नीचे घसीटता जा रहा था। मोहनदास ने पीतल की छड़ कसकर पकड़ ली थी। जब अंदर बैठे गोरों ने पिटते देखा तो उनसे रहा नहीं गया। गर्दन कोच से बाहर निकालकर कहा 'छोड़ो उसे, अगर तुम बाहर बैठना चाहते हो तो इस बेचारे को अंदर हमारे पास भेज दो।' मुखिया बुरी तरह सकपका गया और मारना छोड़ दिया। मोहन दास मार खाए बच्चे की तरह चुपचाप अंदर जाकर बैठ गया। उसके मन में एक बात आ रही थी 'क्या कोच के अंदर बैठे गोरों का मन इसलिए नहीं बदला कि वह बिना विरोध के गोरे की मार खा रहा है, कुछ बोल भी नहीं रहा, जगह भी नहीं छोड़ रहा है?' उसकी पहली पाठशाला में उसकी शिक्षा इसी तरह आरंभ हुई थी। वह कई बार पीटा गया। लेकिन पहले वाला पाठ सदा याद रहा कि सहोगे तो रहोगे। कभी उसके मन बदले की भाव नहीं आई। उसने यह भी जान लिया कि कागज़ की डिग्री उसकी सहिष्णुता से बड़ी नहीं है। यह पाठ जीवन भर याद रहा।

मोहनदास ने अंतिम रूप से स्वदेश लौटते हुए अपने संबंधी और सहयोगी रहे छगनलाल को डेक से लिखे पत्र की अंतिम पंक्ति थी'...अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेल बोयी'(पहला गिरमिटिया, पृ 904)। शायद यह दक्षिण अफ्रीका में जन और आत्म संघर्ष की 20 साल की संक्षिप्त कहानी थी।

तुम सब भी महात्मा हो

गिरिराज किशोर आठ जुलाई, 1936 को मुजफ्फरनगर में जन्मे। आई.आई. टी. कानपुर के रचनात्मक लेखन एवं प्रकाशन केंद्र में अध्यक्ष। पहली कहानी संभवतः 1958 में छपी। सातवें दशक के सर्वाधिक नियमित और व्यवस्थित लेखक। पहला कहानी संग्रह 1966-67 में प्रकाशित। गांधी जी के जीवन पर 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास लिखा। गिरिराज किशोर के शब्दों में :

"गांधी जी के बारे में शुरू से ही भारी रुचि रही है। तब छठी में था मैं। गांधी जी दिल्ली से हरिद्वार रिफ्यूजी आश्रम को देखने जा रहे थे। मुझे मुजफ्फरनगर में गांधी जी की दो मिनट की झलक मिली थी। वह झलक आज भी मेरे मन में ज्यों की त्यों मौजूद है। वे बस की खिड़की से गर्दन निकाल कर बोले, "तुम लोग अपना समय क्यों बर्बाद कर रहे हो, इतने भाई मुसीबत में है। देश आजाद हो गया, देश बनाओ। एक दूसरे के दुःख-सुख बांटो। महात्मा में क्या रखा है? वह तो बूढ़ा हो गया। तुम सब भी महात्मा ही हो।" ये वाक्य वाले गांधी की गाड़ी आगे बढ़ गई।

दक्षिण अफ्रीका में गिरमिटिया समस्या के लगभग संपूर्ण समाधान के बाद 1915 के लगभग भारत लौटने तक गांधी भारत में काफ़ी प्रसिद्ध हो गए थे। लगभग वैसी ही समस्या चंपारन के किसानों के सामने थी। मोहनदास दक्षिण अफ्रीका व्यापी बहुकोणीय समस्या का समाधान निकालने के कारण जन समस्याओं की ऐसी स्थितियों से मुक्ति के जनक माने जाने लगे थे। चंपारन के किसान अपनी ज़मीन के 3/20 हिस्से में नील की खेती करने के लिए कानूनन बाध्य थे। उसे तीन कठिया कहा जाता था। एक एकड़ के 20 हिस्से में से तीन हिस्से में नील उगाते थे। राजकुमार शुक्ला के मन में, जिसे मैं गाँधीजी की माँ, गोखले जी के बाद तीसरा गुरु का मान देता हूँ, सुनसना कर यह बात घर कर गई थी कि जब वकील साहब बाहरी देश के भारतीय मज़दूरों का संकट दूर कर सकते हैं तो चंपारन के किसानों का कष्ट दूर क्यों नहीं कर सकते। तब न कोई देश में चंपारन के बारे में जानता था और न नील की खेती के बारे में। जब गाँधी जी लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित होने गए तो राजकुमार चंपारन का एक गरीब किसान पता लगाकर वहाँ उनसे मिलने आया। गाँधी जी ने अपनी आत्मराजकुमार शुक्ला 'वकील साहब आपको हर हाल बताँएंगे' कहते जाते थे और चंपारन चलने का निमंत्रण देते जाते थे। बिहार के सेवा-जीवन के प्राण और बाद में गाँधी के मित्र, ब्रजकिशोर राजकुमार शुक्ला को उनके तंबू में लेकर आए। ब्रजकिशोर बाबू ने आलपा की अचकन, पतलून वगैरह पहनी हुई थी। गाँधी जी को लगा कि भोले भाले किसानों को लूटने वाले कोई वकील होंगे। गाँधी जी ने चंपारन का कुछ हाल सुना, ब्रजकिशोर से बोले 'बिना देखे कुछ नहीं कह सकता। आप कांग्रेस में बोलिए, मुझे फ़िलहाल छोड़ दीजिए।' राजकुमार शुक्ला उनके इस प्रस्ताव से प्रसन्न हुए। वे चाहते थे कि चंपारन का सवाल कांग्रेस में उठे। ब्रजकिशोर बाबू सहानुभूति के साथ बोले और प्रस्ताव पास हो गया।

राजकुमार स्वयं गाँधी को हालात बताना चाहते थे पर उन्होंने कहा कि अपने भ्रमण के कार्यक्रम में चंपारन को जोड़ लूँगा। एक दो दिन रहकर देखूंगा। वे लखनऊ से कानपुर गए तो राजकुमार वहाँ भी हाज़िर थे। वे बोले 'यहाँ से चंपारन बहुत नज़दीक है। एक दिन दे दीजिए।'

'अभी मुझे माफ़ कीजिए। मैं आपको चंपारन आने का वचन देता हूँ।'

राजकुमार शुक्ला ने कहा 'तो फिर दिन मुकर्रर कर दीजिए।' गाँधी जी ने सोचा वादा करके फंस गया हूँ। उन्हें कांग्रेस अधिवेशन में कलकत्ता जाना था। वे बोले 'मैं अमुक तारीख़ को कलकत्ता पहुंचूंगा, तुम वहाँ आकर मुझे पटना ले चलना।' राज

कुमार बहुत खुश हो गए। पता नहीं कितनी बड़ी सफलता मिल गई।

गाँधी जी को कलकत्ता पहुँचकर भूपेन बाबू के यहाँ ठहरना था। जब वहाँ पहुँचे तो उस अनपढ़ किसान ने उनके यहाँ पहले ही डेरा डाल लिया था। वह चूकना नहीं चाहता था। उनकी इस सरलता और समर्पण ने गाँधी जी का दिल जीत लिया था। जब तक वे अधिवेशन में व्यस्त रहे राजकुमार छोटे बच्चे की तरह उनके साथ लगे रहे। किसी कैंप में मिलने जाते थे तो बाहर प्रतीक्षा करते थे। अधिवेशन के बाद दोनों व्यक्ति पटना के लिए रवाना हो गए। एक ही डिब्बे में गए। तब तक गाँधी बैरिस्टर होने की बात और फ़र्स्ट क्लास की यात्रा भूल चुके थे। दरअसल गाँधी जी और राजकुमार शुक्ला शक्ल से किसान ही लगते थे। सवेरे पटना जा उतरे।

ट्रेन में वे राजकुमार के बारे में काफ़ी कुछ जान चुके थे। उनकी बुद्धि सरल और निर्दोष थी। लगन और धैर्य दोनों थे। बस एक ही उद्देश्य था चंपारन के किसानों को बंधुआगिरी से मुक्त कराना। दक्षिण अफ़्रीका में वे स्वयं भी उस मानसिकता के शिकार रह चुके थे। जिन वकीलों को वे अपना मित्र बताते थे वे उनके मित्र नहीं थे उनमें और राजकुमार के बीच चौमासे में गंगा के पाट जितना अंतर था। पर कर्म की समानता थी। दोनों किसानों की मुक्ति के लिए लड़ रहे थे। वे उन्हें राजेन्द्र बाबू के घर ले गए। राजेन्द्र बाबू कहीं गए हुए थे। दो-एक नौकर थे। गाँधी जी के पास खाने की सामग्री थी, उन्हें खजूरे चाहिए थे। राजकुमार बाज़ार जाकर तुरंत ले आए। गाँधी जी को एक मनोरंजक अनुभव हुआ। राजकुमार शुक्ला ने उन्हें अंदर का पाखाना इस्तेमाल करने के लिए कहा नौकर ने बाहर के पाख़ाने में जाने को कहा। वह मेरी जाति नहीं जानता था। वहाँ छुआछूत का आलम था। नौकर अपना धर्म निबाह रहा था और राजकुमार राजेन्द्र बाबू के प्रति भूमिका निभा रहे थे। उस अनुभव ने राजकुमार के प्रति उनका सम्मान बढ़ा दिया। लेकिन उसके बाद पटना की कमान गाँधी ने अपने हाथ में ले ली।

लंदन में मौलाना मज़हरुल हक़ साथ पढ़े थे। उस साल वे मुस्लिम लीग के अध्यक्ष थे। उन्होंने उनके नाम पत्र लिखा और अपना काम बताया। वे तत्काल अपनी मोटर लेकर आ गए। वे लंदन में गाँधी जी द्वारा दिए आश्वासन के अनुसार उन्हें अपने घर ले जाना चाहते थे। पर गांधी जी ने धन्यवाद करते हुए कहा कि जिस जगह उन्हें जाना है वहाँ जाने के लिए पहली ट्रेन से रवाना कर दें। उन्होंने राजकुमार से बात की, सुझाया कि मुज़फ़्फ़रपुर जाना ठीक होगा। उस रोज़ मुज़फ़्फ़रपुर ट्रेन जाती थी। उन्होंने उससे रवाना कर दिया। मुज़फ़्फ़रपुर में आचार्य कृपालानी रहते थे। उनके बारे में वे सुन चुके थे, परिचित थे। हालाँकि वे वहाँ के कालेज में प्रोफ़ेसर थे, अब छोड़ चुके थे। उनको तार दे दिया। आधी रात जब गाड़ी मुज़फ़्फ़रपुर पहुँची तो कृपलानी जी अपने शिष्यों के साथ मौजूद थे। वे उन्हें अपने मित्र मलकानी का यहाँ ले गए, वहीं रहते भी थे। उन दिनों एक सरकारी कालिज के प्रोफ़ेसर के लिए गाँधी जैसे व्यक्ति को अपने घर टिका लेना साधारण बात नहीं थी। कृपलानी जी ने पहले अपने मित्रों से बता दिया था। सवेरे ही कुछ वकील आ धमके। उनमें से एक वकील ने कहा आप जो काम करने आए हैं वह यहाँ से नहीं होगा। आपको हम जैसे लोगों के घर ठहरना होगा। सरकार से हम लोग भी डरते हैं पर जो संभव होगा करेंगे। उन सज्जन ने बाबू गया प्रसाद प्रसिद्ध वकील के घर ठहरने का आग्रह किया। वे झिझकते हुए उनके यहाँ गए। वकील साहब ने अपने परिवार वालों के साथ मिलकर उनका भव्य स्वागत किया। ब्रजकिशोर और राजेन्द्र बाबू को तार दे दिए गए थे। वे क्रमशः दरभंगा और पुरी से आ गए।

ब्रजकिशोर बाबू और राजेन्द्र बाबू किसानों के मुकदमें लड़ते थे। पूरा मेहनताना लेते थे। गाँधी जी ने कहा 'आप लोगों का मेहनताना सुनकर तो मेरा दम घुटने लगा, दस हज़ार केवल सम्मति देने के...' वकीलों ने बुरा नहीं माना। गाँधी जी की राय थी कि मुक़दमेबाज़ी से किसानों का कोई फ़ायदा नहीं होगा। सबसे पहले इन डरे हुए लोगों के दिलों से डर निकालना होगा। वही इनकी दवा है। वे समझ गए कि यहाँ किसानों की हालत

गांधी का बापू नामकरण

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का पूरा नाम मोहन दास कर्मचंद गांधी था। उन्हें आज भी अनेक नामों से जाना जाता था। उन्हें आज दुनिया बापू या महात्मा गांधी के नाम से पुकारती है। मोहनदास का घर का नाम मोनिया था। पिता को कबा गांधी के नाम से जाना जाता था।

महात्मा गांधी को बापू नाम क्यों पड़ा। इसका उल्लेख मिलता है चंपारन आंदोलन के समय गांधीजी ने अपने छोटे पुत्र देवदास को चंपारन बुलाया। वे वहां आया बच्चों को पढ़ाने लगे। गांव में सफाई के प्रति जागृति ही नहीं आई बल्कि लोगों का जीवन के प्रति नज़रिया बदल गया। देवदास अपने पिता जी को बापू कहकर पुकारते थे। उनकी देखादेखी तथा उनके साथ युवा तथा अन्य लोग भी गांधी जीको बापू कहकर पुकारने लगे। गांधीजी को चंपारन बुलाने में सबसे बड़ा योगदान इलाके के राजकुमार शुक्ला का रहा। वे उन्हें बापू कह कर पुकारते थे।

गिरमिटियों से भी बदतर है। जब तक तीन कटिया की प्रथा बंद नहीं होगी तब तक चैन से नहीं बैठना होगा। यह काम दो चार दिन का नहीं दो ढाई साल का है। 'मैं अपना समय देने के लिए तैयार हूँ। आप लोगों को मेरी मदद करनी होगी।' राजकुमार खुशी से भर गया। उसकी साधना फलीभूत हो रही थी।

ब्रजकिशोर बाबू ने शांत भाव से पूछा हम क्या मदद कर सकते हैं। मैं आप जैसे लोगों से लेखक और दुभाषिए का काम लेना चाहूँगा। मैं भाषा नहीं समझता, दुसरे सब रिकॉर्ड कैथी या उर्दू में हैं, अनुवाद करना होगा। मैं भी दक्षिण अफ़्रीका में दस्तावेज़ गुजराती से अंग्रेज़ी में अनुदित करके अपने सीनियर मि. बेकर को देता था। मोहनदास को गिरमिटियों पर लगे तीन पौंडिया टैक्स का स्मरण हो आया, वे कितने गहमा गहमी के दिन थे। गाँधी जी ने उन्हें सब संभावित ख़तरों से सावधान कर दिया। ब्रजकिशोर बाबू और अन्य वकीलों ने गाँधी जी से जिरह की, संभावित फलितार्थ पूछे। जब संतुष्ट हो गए तो उन्होंने अपनी रज़ामंदी दे दी और कहा हम सब काम करेंगे, जेल जाने की बात नई है। उसके लिए अपने मन और घर वालों को तैयार करेंगे। अगर आप जेल जा सकते हैं, हमारे लोगों का काम है, हम क्यों नहीं जा सकते। हम भी आपके साथ खड़े रहेंगे।

गाँधीजी के सामने समस्या थी कि महिलाओं को कैसे तैयार किया जाएगा। उन्होंने कस्तूरबा को बुला लिया। वे समझ रहे थे भाषा की समस्या उनके सामने और जटिल होगी। कस्तूरबा को चुनौतियों से डर नहीं लगता था। वे महिलाओं से इशारों में बात करती थीं, ग्रामीण महिलाओं को भी उस तरह बात करने में आनन्द आता था। कुछ दिन में वे उनसे घुल मिल गईं। उनके साथ गाँव की सड़कों की सफाई करती थीं। मर्द जब काम पर चले जाते थे नदी पर जाकर बच्चों को नहलवाती थी, कपड़े धुलवाती थी। उसका विस्तृत विवरण मैंने अपने बा उपन्यास में दिया है। बाद में अपने छोटे पुत्र देवदास को भी बुला लिया। वह बच्चों को पढ़ाने लगा। गाँव में सफ़ाई के प्रति जागृति ही नहीं आई बल्कि लोगों का जीवन के प्रति नज़रिया बदल गया। आज सरकार भी स्वच्छता पर ज़ोर देती है, पर उसमें लोगों की व्यक्तिगत हिस्सेदारी नहीं। प्रचार और पैसा इसके सिवा कुछ नहीं। स्वच्छता का यह कथित आन्दोलन भले ही गाँधी के नाम से जुड़ा हो पर न गाँधी सा त्याग है न प्रतिबद्धता।

गाँधी जी को देवदास की देखा-देखी सब लोग बापू कहने लगे थे।

बापू ने अपना संघर्ष चालू कर दिया था। सबसे पहले तो नील कोठी के मालिकों से बात की। उन्होंने कहा बाहरी आदमी का यहाँ क्या काम। बापू बोले मैं भारतीय हूँ बाहर का आदमी नहीं। कमिश्नर से मिले तो डाट लगा दी कि वे अविलंब तिरहुत छोड़ दें। वे समझ गए कि गिरफ्तारी हो सकती है। वे तत्काल मोतीहारी चले गए। वे गिरफ्तारी मोतीहारी या बेतिया में देना चाहते थे। बेतिया में राजकुमार का घर था। वहाँ के किसान बहुत गरीब थे। वे वहाँ जाना चाहते थे। लेकिन उन्हें पता चला मोतिहारी से पाँच मील दूर पर एक किसान पर अत्याचार किया गया है। वे सवेरे ही हाथी पर सवार होकर वकील धरणीधर प्रसाद के साथ चल दिए। रास्ते मे पुलिस सुपरिन्टेडेन्ट का आदमी ने आकर कहा कप्तान साहब ने आपको सलाम दिया है। अंग्रेज़ अफ़सर पहले सलाम भेजते थे फिर आगे कार्यवाही करते थे। उस आदमी ने उन्हें हाथी से उतारकर अपनी किराए की गाड़ी में बैठाया और चंपारन छोड़कर जाने का नोटिस पकड़ा दिया। दक्षिण अफ़्रीका में वे गोरों की चालबाज़ियाँ देख चुके थे। उन्होंने कह दिया मैं चंपारन छोड़कर नहीं जाउँगा। निर्वासन-आदेश का अनादर करने के कारण उन्हें अगले दिन अदालत में हाज़िर रहने का समन मिला। सारी रात जागकर गाँधी ने पत्र तैयार किए और ब्रजकिशोर बाबू को अवगत किया। समन की ख़बर सारे क्षेत्र में आग की तरह फैल गई। सवेरे से किसान और आम जन इकट्ठे होने शुरू हो गए। कहा जाता है कि उस दिन मोतीहारी में जो दृष्य देखा गया था वह कभी नहीं देखा गया था। गोरखबाबू के घर पर, जहाँ वे ठहरे थे, खलकत उमड़ पड़ी थी। गाँधी जी ने सारा काम रात में निबटा लिया था इसलिए वे इतनी बड़ी भीड़ को संयत करने में जुट गए। जहाँ वे जाते जनता पीछे जाती। राजकुमार शुक्ला ने जनता जुटाने में बड़ी भूमिका निभाई थी। पर गाँधी जानते थे कि वे हज़ारों लोगों के बीच न जाने का साहस कर सकते थे और न भीड़ को संभाल सकते थे। गाँधी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है 'यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं, बल्कि अक्षरशः सत्य है कि इस कारण (मैं कहूँगा राजकुमार शुक्ला के कारण) मैंने वहाँ ईश्वर, अहिंसा और सत्य का साक्षात्कार किया। जब मैं इस साक्षात्कार के अपने अधिकार की जांच करता हूँ तो मुझे लोगों के प्रति अपने प्रेम के सिवा और कुछ भी नहीं मिलता। इस प्रेम का अर्थ है प्रेम अथवा अहिंसा के प्रति अविचल श्रद्धा।'

बापू के इस आध्यात्मिक और जीवनानुभव ने, मैं समझता हूँ, नीलहों के विरुद्ध देश के किसानों की पहली लड़ाई लड़ने की शक्ति दी थी। लेकिन आज किसान बेबस हैं। राजकुमार शुक्ला उसके बाद सक्रिय रूप से कहीं नज़र आते हैं, नहीं।। गुरु का काम यही होता है पथ दिखा कर वह वह मुक्त हो जाता है। वे अनपढ़ थे, गरीब थे पर उनमें आदमी की परख और आत्म विश्वास था। वे पहचान गए थे कि वही किसानों की समस्याओं का निदान कर सकते हैं। चंपारन के किसानों का यह अहिंसक रन संसार का सबसे सफल रन है। जिसके पीछे राजकुमार शुक्ल का एकल योगदान है। वह न होते तो गाँधी भी आज के नेताओं की तरह किसानों के संकट और संघर्षमय जीवनानुभव से अनभिज्ञ रह जाते।

बापू होने की यात्रा

मोहनदास गांधी की तीन पीढ़ियां नौकरीपेशा थीं। उत्तमचंद उर्फ ओती गांधी ने अपने बौद्धिक पराक्रम से पोरबंदर के राणा खीमो जी के राज्य में दीवानी का ओहदा हासिल किया था। 1831 में जब खीमो जी का स्वर्गवास हुआ तो उनका बेटा विकमात जी आठ वर्ष का था। विकमात जी की मां रानी रूपाली बा राज-काज देखती थी। एक मुंह-लगी दासी के भड़काने पर रानी ने अपने राज्य के खजांची को मार डालने का हुक्म दे दिया। ओता गांधी जानते थे कि खजांची ईमानदार और राज्य का भला चाहने वाले व्यक्ति हैं। उन्होंने पहले रानी रूपाली बा को समझाने की कोशिश की जब रानी नहीं मानी तो उन्होंने खजांनी को चुपचाप राज्य से बाहर भेज दिया। रानी ने अपने सुरक्षाकर्मियों से ओता गांधी का घर गिरवा लिया और पोरबंदर राज्य की सबसे बड़ी तोप से गोले दगवाए। ओता गांधी का जांबाज अंगरक्षक मकरानी उसमें काम आ गया। बमुश्किल तमाम गोरे एजेंट के हस्तक्षेप करने पर ओता गांधी किसी तरह जान बचाकर वहां से निकल पाए। रानी ने उनका पुश्तैनी मकान सील करा दिया। लेकिन ओता गांधी ने सच का साथ देना अपनी जान गंवाने से ज्यादा जरूरी समझा। मोहनदास के जीवन में भी ऐसे कई अवसर आए जब उन्होंने जान के मुकाबले अपनी मान्यता को महत्त्व दिया। ओता गांधी के जीवन की एक दूसरी घटना है जिसकी छाया मोहनदास गांधी में नज़र आती है। जूनागढ़ के नवाब ने इस गुस्ताखी का कारण पूछा तो ओता गांधी ने कहा, मेरा दाया हाथ पोरबंदर राज्य के नाम मौरूसी है। यह ओता गांधी के जातीय अभिमान या रियासत के प्रति प्रेम का प्रतीक है। दक्षिण अफ्रीका का पूरा संघर्ष भारत को सामने रखकर लड़ा गया था। कर्मचंद उर्फ कबा गांधी मोहनदास के पिता थे। लेकिन पिता पुत्र के बीच विचित्र रिश्ता था। उन्होंने आत्मकथा में लिखा है, “मेरे पिता कुटुंब प्रेमी, सत्यप्रिय, शूर और उदार, परंतु साथ ही क्रोधी भी थे।...वे सदा रिश्वत से दूर रहते थे और इसी कारण अच्छा न्याय करते थे... वे राज्य के बड़े वफादार थे।” एक सामंत की वफादारी आज के जमाने में प्रतिक्रियावादी व्यवहार है। परंतु तब रियासतें छोटा-मोटा देश समझी जाती थीं और उनके प्रति निष्ठा अपने आपमें एक मूल्य थी। मोहनदास गांधी ने कबा गांधी के संदर्भ में एक और घटना का उल्लेख किया है जो कबा गांधी को अपने पिता ओता गांधी से भी जोड़ती है और मोहनदास गांधी को उन दोनों से भी जोड़ती है और असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट ने राजकोट के ठाकुर से अपमानजनक शब्द कहे। कबा गांधी राजकोट के दीवान थे। उन्होंने विरोध किया। साहब बिगड़े और कबा गांधी ने कहा, “माफी मांगो।” उन्होंने इनकार कर दिया। कबा गांधी को अपने पिता की तरह तोप के गोले तो नहीं झेलने पड़े पर हवालात में रहना पड़ा। पर वे टस से मस नहीं हुए। साहब को मजबूर होकर कबा गांधी को छोड़ देने का हुक्म देना पड़ा। इस तरह की घटनाएं तो गांधी के जीवन में अनगिनत हैं। दक्षिण अफ्रीका तो इसका सबसे बड़ा उदाहरण और प्रमाण है। तीसरा और सबसे अधिक प्रभाव पुतली बाई का था। पुतली बाई का पीहर प्रणामी संप्रदाय को मानने वाला था। लेकिन उनकी शादी वैष्णव परिवार में हुई थी। मोहनदास अपनी बा को बहुत प्यार करते थे। एक, मां के साथ मंदिर जाकर भी मंदिर के अंदर नहीं जाते थे। वहां गंदगी होती थी। दूसरे अपने मित्र उका के साथ बा के मना करने के बावजूद खेलते थे। उका दलित था। बा उन्हें बैठाकर पानी की बाल्टी उड़ेल देती थी। वे फिर उसके साथ खेलने चले जाते थे। पुतली बाई बहू और बेटे को विवाह के बाद यानी मोहनदास और कस्तूरबा को प्रणामी मंदिर ले गई थीं। वहां मूर्तियों की जगह दीवारों पर जो कुछ लिखा था वह कुरान की आयतों की तरह था। प्रणामी संप्रदाय हिंदू, मुसलमान आदि धर्मों का समन्वय है। पुतली बाई का नियम और धर्म परायणता का भी एक उदाहरण गांधी ने अपनी जीवनी में दिया है। एक बार उन्होंने चतुर्मास-व्रत रखा था। बिना सूर्य दर्शन के वे भोजन नहीं करती थीं। बच्चे आसमान की तरफ देखते रहते थे। कब सूर्य निकले और कब मां खाना खाए। जब सूर्य की झलक मिलती थी और बच्चे मां को बुलाकर लाते थे, तब तक सूर्य बादलों में छिप जाता था। बा यह कहकर फिर अपने काम में लग जाती थीं। ‘कोई बात नहीं... जब निकलेगा तब सही। ईश्वर की जैसी इच्छा।’ पोरबंदर में चतुर्मास में चार दिन सूर्य के दर्शन नहीं होते थे। ऐसे संदर्भों ने गांधी की जीवन यात्रा में अमिट छाप छोड़ी। वे मोहनदास कर्मचंद गांधी से महात्मा बने।





महात्मा गांधी की अहिंसा नीति : एक पुनरावलोकन

◆ डॉ. मनीष शर्मा

अहिंसा गांधी जी के लिए कोई एक साधारण विचार नहीं था, अपितु मानवता की आवश्यकता रूपी था तथा उन का मानना था कि पेड़-पौधों, जानवरों तथा कीट-पतंगों के प्रति भी सद्व्यवहार रखना चाहिए। गांधी जी के लिए 'अहिंसा' कायरों का नहीं बल्कि साहसी बहादुर लोगों का यन्त्र है। अहिंसा निष्क्रियता नहीं बल्कि क्रियाशील और गतिक है। यह हिंसा और तलवार से भी श्रेष्ठ है।

आज का समाज निसन्देह 21वीं सदी को पार करके अनेकों उपलब्धियों को हासिल कर चुका है परन्तु साथ ही साथ मानवता का पाठ भी भूलता जा रहा है। आज के समाज के पास क्या नहीं है? दौलत, जमीन, बेशकिमती हीरे-जवाहरात और ना जाने कितनी अमूल्य चीजें हैं इसके पास, परन्तु फिर भी इसकी और पाने की हवस और लालसा इस समाज को कमजोर करने के लिए गलत से गलत कार्य करवाने से भी नहीं रोकती। आज हर छोटे से लेकर बड़े देश के पास विकसित तकनीक और मशीने हैं परन्तु वे सभी इनका इस्तेमाल केवल दूसरे को गिराने के लिए ही क्यों करते हैं शायद इसका जवाब वे स्वयं भी नहीं जानते। आज मानवता के पास सब कुछ होते हुए भी कुछ भी नहीं है। पैसे की कमी किसी भी देश के पास नहीं है, कमी है तो वो है एक दूसरे के लिए समय की, किसी से अच्छे तरीके से, प्यार से बात करने की कमी ने सभी को एक दूसरे का दुश्मन बना दिया है।

आज के इस हिंसक समाज में जहाँ मानवता ने सभी हदें पार कर ली हैं वहीं दूसरी ओर गांधी एक रोशनी के रूप में इस अन्धेरे रूपी अराजकता फैले समाज में प्रकाश का काम कर रहे हैं, जहाँ पर वे ना केवल सभी लोगों को एक साथ लेकर चलने के लिए कह रहे हैं तथा साथ ही साथ सभी के कल्याण की भी बात कर रहे हैं।

गांधी कोई व्यक्ति विशेष नहीं थे, वे भी इसी समाज का हिस्सा थे, यहीं पर जन्में, पढ़े-लिखे, कई तरीके के नये कार्य किए तथा प्राण भी त्यागे यहीं पर- परन्तु फिर भी क्यों मानवता उन्हें इतना ज्यादा मानती है और पूजती है, क्योंकि वे कभी भी स्वार्थ या अपने लिए नहीं जीए या मरे, वे हमेशा दूसरों के लिए ही जीए और मरे भी। कभी भी अपने आपको किसी तरह के गलत कार्य में लिप्त नहीं किया और हमेशा दूसरों की भलाई, जिसमें गरीब किसान, मजदूरों, हाथ के साथ काम करने वालों को आगे रखा ताकि भूला हुआ समाज उन्हें भी याद कर सके, उन्हें अपनाकर उनका हक उन्हें वापिस कर सके तथा समाज में समानता का माहौल और भाईचारा बन सके। हमेशा मानवता के कार्य को महत्त्व देकर समाज की बुराइयाँ को खत्म करने की निष्काम भावना ने ही उन्हें एक आम व्यक्तित्व से एक 'महात्मा' तथा 'राष्ट्रपिता' का सम्मान दिलवाया था तथा अनेका-अनेक व्यक्तियों की सूची में सर्वश्रेष्ठ ठहराया था।

गांधी का जादू ना केवल स्वतन्त्रता संग्राम के लिए ही था अपितु आने वाली तमाम सभ्यताओं के लिए भी उतना ही हितकारी और आवश्यक होगा जितना अभी भी है। गांधी ने अपने जीवन संदेश में भी यही कहा था यदि आपको मेरी किसी भी कही हुई बात से कोई प्रेरणा मिलती है तो आप उसे अपने जीवन में इस्तेमाल कर सकते हैं पर अगर कोई आपत्ति या संदेह है तो जब मैं मृत्यु को पा जाऊँ तो मेरे साथ उन सब बातों को भी जला देना।

गांधी ने मानवता को कुछ नया नहीं बताने की कोशिश की, उनका मानना था कि इस समाज में ऐसी बहुत से बातें हैं जो हमें हमारे बुजुर्गों ने बहुत पहले ही बताई हुई हैं, मैं सिर्फ उन बातों को केवल नए तरीके से बताने और समझाने की कोशिश ही कर रहा हूँ।

वैचारिक संघर्ष की मान्यता और उत्कृष्टता की दृष्टि से वर्तमान युग की तुलना किसी अन्य युग के साथ नहीं की जा सकती।[1] जैसे कि पहले उल्लेख किया है कि वैज्ञानिक अनुसंधानों, तकनीकी प्रगति आणविक अस्त्र तथा शस्त्रों के कारण इस युग



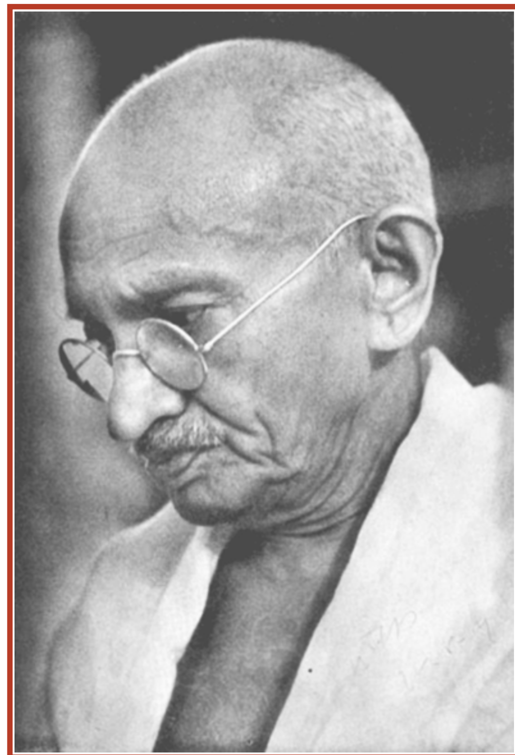
में न केवल युद्ध की विभीषिका बढ़ी अपितु मानव समाज, सभ्यता और संस्कृति की समाप्ति का भय भी उत्पन्न हो गया।[2] चिन्तन की दृष्टि से मानवता का विकास हुआ है किन्तु मानवता और मानवीय मूल्य अणुबम के खतरे से विनाश की कगार पर पहुँच गए हैं। अणुशक्ति के उदय ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के संचालन और व्यक्ति के अस्तित्व दोनों के लिए खतरा पैदा कर दिया है।[3] अणुशक्ति के प्रयोग को राष्ट्रों ने अपनी शक्ति की वृद्धि व अपनी स्थिति महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए किया। अणुशक्ति इन लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकी व इसने विश्व के सामने एक खतरा पैदा कर दिया और निःशस्त्रीकरण की माँग को बढ़ा दिया। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में युद्ध को पूर्ववत् मान्यता प्राप्त है।

गांधी ने युद्ध व शांति की समस्या को एक नवीन अन्तर्दृष्टि प्रदान की। उन्होंने युद्ध को निरपेक्ष अहिंसा के आधार पर अस्वीकार किया। गांधी का मानना है कि 'युद्ध विजेता की सहायता नहीं करता' युद्ध यदि हारने वाले की सहायता नहीं करता तो युद्ध का व्यावहारिक मूल्य क्या है।[4] गांधी ने विश्वास व्यक्त किया कि अगर हम किसी समस्या का समाधान एक क्रूर बल द्वारा करें तो उसी तरह के बल की प्रतिक्रिया होती है। यह बदले की भावना बदले के लिए शक्ति प्रयोग की शृंखला बना देती है। गाँधी की शान्तिपूर्ण संघर्ष निवारण की प्रविधि आशा की किरण के समान है और यह प्रविधि सत्याग्रह की है क्योंकि यह विरोधी पक्ष के भौतिक बल और आत्मबल को पृथक्-पृथक् करती है।[5] गांधी ने अपने दर्शन में इस बात को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया कि व्यक्ति किस प्रकार अपने को बुराइयों से मुक्त रखे।[6] उनका विश्वास था कि वास्तव में सत्य ही हमें विनाश से बचा सकता है। यह सत्य एक विश्व आन्दोलन करेगा व स्थायी शान्ति के साथ विश्व सरकार के आदर्श का मार्ग प्रशस्त करेगा। अगर कोई राष्ट्र छोटा या बड़ा शक्तिशाली या कमजोर सत्य के साथ सहयोग करने से इनकार कर दे तो गांधी एवं अहिंसा के बल पर सत्याग्रह का प्रयोग करते हैं।[7]

धर्म और नैतिकता के माध्यम से गांधी ने व्यक्ति के जीवन को नियमित व शुद्ध करने का प्रयास किया। गांधी जी ने धार्मिक अवधारणाओं को नैतिक कर्म में परिवर्तित कर आज के औद्योगिक समाज में अनोखा काम किया है। गांधी सभी धर्मों का एक ही नैतिक आधार मानते हैं जिसे विश्वधर्म कहा जा सकता है। उन्होंने महसूस किया कि आधारभूत एकता की अनुभूति एवं एक सामान्य निरपेक्ष सत्य का दर्शन करने के पश्चात् साम्प्रदायिकता धर्मों की उलझन से ऊपर उठाया जा सकता है। गांधी के धर्म को विश्वव्यापी नैतिकता के रूप में समझा जा सकता है। गांधी ने यह महसूस करा दिया कि विश्व के मामलों को हम न्याय या कानून पर आधारित करें अपनी शक्ति पर नहीं।[8]

गांधीजी का मानना था कि जब भी मनुष्य के मन में घृणा के भाव पैदा होते हैं, तब वह हित-अहित को भूलकर क्रूरता पर उतारू हो जाता है। भाव बदलने के लिए प्रेक्षा व अनुप्रेक्षा ऐसा मार्ग है

आज के इस हिंसक समाज में जहाँ मानवता ने सभी हदें पार कर ली हैं वहीं दूसरी ओर गाँधी एक रोशनी के रूप में इस अन्धेरे रूपी अराजकता फैले समाज में प्रकाश का काम कर रहे हैं, जहाँ पर वे ना केवल सभी लोगों को एक साथ लेकर चलने के लिए कह रहे हैं तथा साथ ही साथ सभी के कल्याण की भी बात कर रहे हैं।



जिससे घृणा और विद्वेष को मैत्री में बदला जा सकता है। भगवान महावीर ने जो मार्ग हमें सिखाया है वह अनुपम है, अलौकिक है।[9]

आज बहुत से विचारकों ने इस आधार पर गांधी के महत्त्व को अस्वीकार किया है कि अहिंसा का मूल तत्त्व जिसके प्रचार व प्रयोग में वे अपने सम्पूर्ण जीवन में लगे रहे वह व्यक्तित्व स्तर पर कितना ही अतुलनीय हो पर विश्व स्तर पर उसकी संभावना बहुत कम है। अगर आज भी यह स्वीकार किया जाने लगे कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बनाए रखने के लिए निःशस्त्रीकरण का योगदान संघर्ष निवारण में समर्थ नहीं तो अहिंसात्मक संघर्ष निवारण प्रविधि ही आज की प्रासंगिकता है। बीसवीं शताब्दी में मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने अमेरिका में अश्वेतों के लिए नागरिक अधिकार आन्दोलन गांधीवादी विचारधारा के आधार पर चलाया। किंग ने ऐसा महसूस किया कि गांधी वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यीशु के प्रेम को व्यक्तियों के मध्य अन्तक्रिया से एक सामाजिक बल के रूप में कुशलता से ऊपर उठाया और मार्टिन लूथर ने स्पष्ट लिखा है कि किस प्रकार सामाजिक रूपान्तरण के अंहिसक क्रिया का प्रयोग अमेरिकी अश्वेतों के लिए किया।[10] विश्व की कुछ ऐसी समस्यायें हैं जिनका उत्तर गांधी के प्रतिमान से मिलता है। गांधी ने जिन बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष किया उसमें प्रजातिवाद, साम्राज्यवाद तथा अस्पृश्यता मुख्य थी, उन्होंने श्वेतांगों की जातीय भेदभाव की नीति के विरुद्ध संघर्ष चलाया। गांधी जी द्वारा बताये मार्ग पर चलकर शोषणरहित, जातिरहित, सुखी समाज का निर्माण किया जा सकता है। गांधी ने 'हिन्द स्वराज' में विशाल उद्योगों, मशीनीकरण तथ पाश्चात्य वाणिज्यवाद साम्राज्यवाद तथा धर्मनिरपेक्षता को रोग बताया तथा विशाल उद्योगों और लघु उद्योगों का सामंजस्य किया तथा यह विचार रखा कि मूल उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो। गांधी जी राज्य को हिंसा तथा शक्ति का संगठित रूप मानते थे। सर्वोदय का व्यापक आदर्शवाद, लॉक के बहुसंख्यावाद, मार्क्स गुप्पलोवित्स के वर्ग और जातीय संघर्ष के सिद्धान्तों तथा बेंथन के अधिकतम संख्या के अधिकतम सुख के आदर्श के विरुद्ध है।

उदारीकरण निजीकरण और भूमण्डलीकरण से उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए न पूंजीवाद सक्षम है न मार्क्सवाद। संपूर्ण विश्व एक विकल्प की खोज में है। यदि गाँधीवाद को समग्रता से लागू कर दिया जाए तो वर्तमान समय की ज्वलंत समस्याओं, बेरोजगारी संसाधनों का असमान बंटवारा, मानवाधिकारों का उल्लंघन, आतंकवाद और गरीबी का समाधान तलाशा जा सकता है। एक तरफ मानव जीवन विज्ञान और आर्थिक क्षेत्र में नयी ऊँचाइयों को छू रहा है तो दूसरी तरफ उसकी सुख और शान्ति कहीं खो सी गयी है और उसमें भटकन, तनाव दबाव और निराशा घिरती जा रही है। मानव अपने नैतिक मूल्यों को भूला चुका है। आर्थिक मूल्यों की भूमिका हावी हो रही है। भौतिकवाद चरम पर है। मानव उच्च मूल्यों, नैतिकता, सभ्यता और अपनी संस्कृति एवं विरासत को भूलता जा रहा है। गांधीवाद एक आशा जगाता है जो 'स्वराज' को महत्त्वपूर्ण मानता है और उपभोग में 'स्व' के स्थान पर 'पर' को स्थान देता है। गांधीवाद का मानवीय पक्ष सभी पर भारी पड़ता है।

आज सभी के सामने यह प्रश्न है कि आज के इस वैज्ञानिक युग में अहिंसा की चेतना का विकास कैसे होगा ? इसके जवाब में हम यह कह सकते हैं कि हर दृष्टि से सबसे बड़ा विज्ञान अहिंसा का सिद्धान्त है। अहिंसा से बढ़कर कोई विज्ञान न आज तक आया है और न ही आयेगा। जिसमें अहिंसा नहीं वह विज्ञान नहीं। जो जीवन को सही दिशा दे, जीवन को पवित्र और ऊँचा उठाए, अहिंसक जीवन जीना सिखाए वही विज्ञान है। विशेष ज्ञान है।

यदि मानव अपने भीतर झांके और यह देखे कि मैंने कहीं ऐसा कार्य तो नहीं किया, जिससे किसी दूसरे प्राणी को पीड़ा हुई हो। इसी का नाम तो अहिंसा है। वह जीवन, जीवन नहीं जो केवल अपने ही बारे में चिन्तन करता है। आज मानव केवल भौतिकता की चकाचौंध में रम रहा है। आंतरिक जीवन का चिंतन कम होता जा रहा है। एक तरफ भारतीय संस्कृति को धूमिल किया जा रहा है। आज बेहिसाब हिंसा बढ़ रही है। लोक-जीवन बुराइयों से ओत-प्रोत होता जा रहा है। इसके कारण की करणीय, अकरणीय, न्याय, अन्याय की भेद रेखाएं स्वयं खींच नहीं पाता।

सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि मानव अपने मानस का सुधार करे। अहिंसा, अपरिग्रह और संयम के संस्कार जो हमें विरासत में प्राप्त हुए हैं उन्हें संजोकर रखें, ताकि हिंसा की भयंकर ज्वाला को संयम के जल से ठंडा कर सके।

इसी संदर्भ में मार्शल फोक कहते हैं कि यदि शस्त्रयुद्ध में शत्रु का मानसिक और आध्यात्मिक बल डिगाना है तो शत्रु की नीतिमत्ता का नाश करने का मार्ग यह है कि उसे यह जताना होगा कि उसका प्रयोजन मारा गया है यानी शब्द के सम्पूर्ण अर्थ में दिग्मूढ़ता, जबरदस्त असर पैदा करे ऐसा कोई 'अकल्पित और भयंकर' कदम लड़ाई की तरफ उठाने वाला मार्ग है। उससे शत्रु की तर्कशक्ति नष्ट हो जाती है और नतीजतन विचारशक्ति भी नहीं रहती।" किसी प्रकार के नए शस्त्र का प्रयोग करके या नए प्रकार का छापा मान कर या ऐसे अन्य तरिकों से शत्रु को आश्चर्यचकित कर दिया जाता है। सत्याग्रह शक्ति भी सच्चे ढंग से व्यक्त की जाय, तो वह विपक्ष को जरूर दिग्मूढ़ करती है। लेकिन उसका मार्ग 'भयंकर' कदम उठाने का नहीं, किन्तु उससे बिलकुल उलटा 'अभयकारी' कदम उठाने का है। अहिंसा 'अनसोची' तो है ही, किन्तु भय से शत्रु को विचार करवाने के बदले उसे अवैर से शत्रुत्व के विषय में विचार करवाता है और उसके हृदय में ही निःशस्त्रीकरण का क्रीड़ा उत्पन्न कर देती है। जर्मनी का महान फेडरिक कहता था, ''अगर मेरे सिपाही विचार

करने वाले हो जायें तो उनमें से एक भी फिर सेना में नहीं रहेगा।'' यह बात एकदम सही है। इसीलिए तो लड़ाई का जोश सेना और प्रजा में जारी रखने के लिए असत्य और उसके परिवार का खुल कर उपयोग करना पड़ता है। सत्य के आग्रह के सामने असत्य का शस्त्र भी भौथरा हो जाता है। रूस के साम्यवादियों ने यूरोपीय शत्रुदल के सिपाहियों में सच्ची हकीकत फैला कर उनमें फूट पैदा की थी वह उदाहरण हमारे सामने ताजा ही है।

आज के समाज के लिए आवश्यकता

अहिंसा को जीने के लिए शिशु-सी निश्छलता का विकास आवश्यक है। शिशु अपने और पराए के द्वैत को नहीं समझता। अपना हित, अपना सुख, अपनी समृद्धि, अपने लोग- इस प्रकार का बौनापन शिशु में नहीं होता। वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, वयस्कों के व्यवहार से इस बौनेपन की संस्कृति को स्वीकारता है। हिंसा के बीज इसी संस्कृति में अंकुरित होते हैं। अहिंसा को पल्लवित करने के लिए आत्मतुला की जर्बर धरती ही उपयुक्त हो सकती है। अहिंसा आलोक की संवाहिका है। अहिंसक परिवेश में बहने वाला अपने विवेक-चक्षु को खुला रखता है। वह जो कुछ देखता है, उसका गहरा संवेदन करता है। दूसरे प्राणी की व्यथा कथा अपने अनुभवों की आंख से पढ़ता है। किसी का अनिष्ट करना तो बहुत दूर, वह अनिष्ट की बात सोच भी नहीं सकता।

अंहिसा में शक्ति है, आलोक है, जिससे वह जोड़ती है और प्रकाश देती है। विश्व की नई व्यवस्था के बारे में जिन लोगों की सोच प्रखर है, वे अहिंसा के मूल्य को ओझल नहीं कर सकते।

अहिंसा गांधी जी के लिए कोई एक साधारण विचार नहीं था, अपितु मानवता की आवश्यकता रूपी था तथा उन का मानना था कि पेड़-पौधों, जानवरों तथा कीट-पतंगों के प्रति भी सद्व्यवहार रखना चाहिए। गांधी जी के लिए 'अहिंसा' कायरों का नहीं बल्कि साहसी बहादुर लोगों का यन्त्र है। अहिंसा निष्क्रियता नहीं बल्कि क्रियाशील और गतिक है। यह हिंसा और तलवार से भी श्रेष्ठ है।

वर्तमान सदी के लिए हिंसा एक चुनौती है जिस कारण गांधी और उनकी अहिंसा की प्रासंगिकता यथावत् है। गांधी जी प्रत्येक उस जगह प्रासंगिक है जहाँ न्याय के लिए संघर्ष है, जहाँ मानवता का दमन है तथा जहाँ समानता के लिए संघर्ष है।

उनकी प्रासंगिकता इसी से समझी जा सकती है कि युनेस्को ने अपनी प्रस्तावना में उनके इन विचारों को स्थान दिया कि लड़ाई-झगड़ा लोगों के दिलो-दिमाग में शुरू होता है, अतः यह लोगों के दिलो-दिमाग पर निर्भर है कि वे शान्ति का निर्माण करें। गांधी जी ऐसे पहले वैश्विक नेता थे जिन्होंने हिरोशिमा, नागासाकी की तबाही की नैतिकता के आधार पर आलोचना की। उनके अनुसार अगर तीसरा विश्व युद्ध कभी हुआ तो यह सम्पूर्ण संसार का विना ा कर देगा। उन्होंने युद्ध द्वारा युद्ध समाप्ति के उपाय की खिल्ली उड़ाई। अतः अगर मानवता को बचाए रखना है तो हमें गांधी जी के विचारों का फिर से अध्ययन करना होगा।

आज विश्व के सबसे बड़े शान्ति संगठन 'संयुक्त राष्ट्र संघ' द्वारा गांधी जी के विचारों और गांधी मूल्यों का पुरजोर समर्थन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी गांधी जी की प्रासंगिकता को ही इंगित करते हैं। दरअसल आज 'गांधीवाद' से ज्यादा जरूरत गांधी-भाव की है जहाँ गांधीजी की जीवन शैली के छोटे-बड़े नियम, उनकी कार्य पद्धतियां, आचरण मानवता के प्रति उनके दृष्टिकोण की सामान्य जन के दिनचर्या में एक प्रयोग के रूप में शामिल किया जा सके साथ ही यदि हम वर्ष 2020 तक खुद को विकसित राष्ट्रों के साथ खड़ा देखना चाहते हैं तो हमें जीवन के हर क्षेत्र में गांधी जी के विचारों की व्यावहारिकता को रूप देना होगा और शायद यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रंद्धाजलि होगी।

अहिंसा की आवश्यकता का यथार्थ

अहिंसा की आवश्यकता तो सदैव ही रही है, पर जब हिंसा का वातावरण हो तो वह और अधिक आवश्यक हो जाती है। हिंसा जितनी अधिक होगी, अहिंसा की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होगी। जब मानव जाति हिंसा की चरम सीमा तक पहुँच चुकी है तो ऐसे समय में अहिंसा ही उस की सुरक्षा का एकमात्र उपाय तथा विकल्प है। यदि मानव महाविनाश में विलीन नहीं होना चाहता है तो अहिंसा के चिन्तन और व्यवहार का उसे पुनः आविष्कार एवं प्रयोग करना होगा। जिस बुद्धि ने अणु की सूक्ष्म शक्ति का विघटन किया है, वही बुद्धि अहिंसा की जीवनी शक्ति का मार्ग भी समझने की शक्ति रखती है।[11] आज अत्यन्त आवश्यकता है मानव के कल्याण में आस्था और अहिंसा के प्रयत्नों के विकास की। हिंसा में सर्वत्र मृत्यु ही बसी है अहिंसा में दुर्धर्ष जीवन का वेग जन्म लेता है। हिंसा भय का मूल है। अहिंसा अभय का महाद्वार उद्घाटित करती है। हिंसा निर्बल का क्षोभ है और अहिंसा बली की धीर वृत्ति है, जिसके आदि, अन्त और मध्य में शान्ति, प्रेम और करुणा का अमृत भरा है।[12] बिना अहिंसा के समाज (तथा प्राणीमात्र) रह ही नहीं सकता। गांधीजी ने कहा था कि - 'सारा समाज अहिंसा पर उसी प्रकार कायम है जिस प्रकार कि गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी अपनी स्थिति में बनी हुई है। समाज में हमें पग-पग पर अहिंसा की आवश्यकता है।'

यहां तक कि सेना आदि हिंसक संगठनों को भी अहिंसा का आसरा लेना पड़ता है। अस्तु, समाज को जीवित रहने, विकास करने और विनाश से बचने के लिए अहिंसा की आवश्यकता है और यही इसका यथार्थ भी है।

अहिंसा का महत्त्व

अहिंसा मानवता का मूल एवं जीवन धर्म माना गया है। अहिंसा द्वारा ही हृदय परिवर्तन संभव होता है। यह मारने का सिद्धान्त नहीं, सुधारने का सिद्धान्त है। यह संसार के विनाश का नहीं, कल्याण का साधन है एवं इससे मनोवैज्ञानिक रीति से

परिवर्तन किया जा सकता है और अपराध की भावनाओं को भी मिटाया जा सकता है। अहिंसा द्वारा सबके कल्याण और उन्नति की भावना उत्पन्न होती है। इसके आचरण से निर्भीकता, स्पष्टता, स्वतन्त्रता और सत्यता बढ़ती है। अहिंसा से ही विश्वास, आत्मीयता, पारस्परिक प्रेम, निष्ठा आदि गुण उत्पन्न तथा व्यक्त होते हैं। अहंकार, दम्भ, अविश्वास, असहयोग आदि का अन्त भी अहिंसा द्वारा ही संभव है। यह एक ऐसा साधन है जो बड़े से बड़े साध्य को भी सिद्ध कर सकता है। एकता की भावना अहिंसा का ही रूप है। अहिंसा ही एक ऐसा शस्त्र है जिसके द्वारा बिना एक बूंद रक्त बहाये वर्गविहीन समाज का आद र्श प्रस्तुत किया जा सकता है। क्योंकि अहिंसा का लक्ष्य यही है कि वर्गभेद या जाति भेद से ऊपर उठकर समाज का प्रत्येक सदस्य अन्य के साथ ि शष्टता और मानवता का व्यवहार करे। छल, कपट या इनसे होने वाली छीना-झपटी को अहिंसा द्वारा ही दूर किया जा सकता है। वस्तुतः अहिंसा में ऐसी अद्‌भुत शक्ति है जिसके द्वारा आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को सरलतापूर्वक समाहित किया जा सकता है। अहिंसा मानव को हिंसा से मुक्त करती है। वैर, वैमनस्य, द्वेष, कलह, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार, लोभ, लालच, शोषण, दमन आदि जितनी भी व्यक्ति और समाज की ध्वंसात्मक प्रवृत्तियां हैं, विकृतियां हैं, वे सब हिंसा के रूप ही तो हैं।[13] मानव-मन हिंसा के विविध प्रहारों से निरन्तर घायल होता रहता है। इन प्रहारों का शमन करने के लिए अहिंसा की दृष्टि और अहिंसक जीवन ही आवश्यक है। जिस प्रकार कुएं में की जाने वाली ध्वनि प्रतिध्वनि के रूप में वापिस लोट आती है, उसी प्रकार हिंसात्मक क्रियाओं का प्रतिक्रियात्मक प्रभाव हिंसक व्यक्ति पर ही पड़ता है। कर्त्तव्य का निर्धारण अहिंसात्मक व्यवहार द्वारा ही संभव है। माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन, पति-पत्नी आदि के पारस्परिक कर्त्तव्य का अवधारण भावात्मक विकास की प्रक्रिया द्वारा होता है और यह अहिंसा का ही सामाजिक रूप है। मानव-हृदय की आन्तरिक संवेदना की व्यापक प्रगति ही तो अहिंसा है और यही परिवार, समाज और राष्ट्र के उद्‌भव एवं विकास का मूल भी है।[14] यह सत्य है कि उक्त प्रक्रिया में रागात्मक भावना का भी एक बहुत बड़ा अंश है पर यह अंश सामाजिक प्रगति में बाधक नहीं है। अतः अहिंसा के द्वारा ही मनुष्य की प्रतिष्ठा संभव है। अत्याचारी की इच्छा के विरुद्ध अपने समस्त आत्मबल को जगा देना ही संघर्ष का अन्त करना है, और यही अहिंसा है। यह अन्याय और अत्याचार से दीन-दुखियों की रक्षा कर सकता है। यही विश्व के लिए सुखदायक है। अहिंसा के आधार पर सहयोग और सहकारिता की भावना स्थापित करने से समाज को बलशक्ति मिलती है। हिंसा के त्याग द्वारा व्यक्ति अपनी कायिक, वाचिक और मानसिक प्रवृत्तियों को शुद्ध करता है और अहिंसक आचार को अपनाकर समाज के उत्थान में अपना सकारात्मक योगदान देता है।

अहिंसा का मानसिक पक्ष

वास्तव में अहिंसा मानव व्यक्तित्व का ही एक गुण है। मानव व्यक्तित्व में आत्मिक और शारीरिक दो पक्ष होते हैं। अहिंसा का सीधा सम्बन्ध आत्मिक पक्ष से है जो अन्त तक परम सत्य से जुड़ा रहता है। वस्तुतः आत्मिक गुणों का प्रकटीकरण ही अहिंसा के रूप में होता है। इसलिए गीता में दैवीय और आसुरी प्रवृत्तियों में अन्तर किया गया है। अहिंसा दैवीय प्रवृत्तियों के रूप में मनुष्य को प्राप्त होती है और हिंसा आसुरी प्रवृत्ति निषेधात्मक दृष्टि से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, असत्य, कृतघ्नता इत्यादि हिंसात्मक रूपों में अभिव्यक्त होती है। अहिंसा, अक्रोध, अस्तेय, अपरिग्रह, असंग, अभय, अस्वाद, अपीड़न और अहत्या इत्यादि प्रवृत्तियों का मूल है। इसी प्रकार भावात्मक दृष्टि से अहिंसा, करुणा, मानवता, पौरुष, भद्रता, सरलता, शान्ति, हृदय की विशालता, भूतदया, मैत्री, सेवा, त्याग, आत्मपीड़न, साहस का पर्याय है। ये सब अहिंसा के मानसिक पक्ष हैं। गांधीजी अहिंसा के मानसिक पक्ष को सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। इसलिए स्थूल रूप से जहां हिंसा अहिंसा का विवाद उपस्थित होता0 है, वहां मानसिक अहिंसा ही निर्णालय सिद्ध होती है। गांधी अहिंसा के पालन में शुभ संकल्प और अभिप्राय पर विशेष बल देते हैं, परिणाम पर नहीं। इसलिए वे न्यूमैन के कथन 'एक कदम ही मेरे लिए पर्याय है' या 'पूर्ण प्रयत्न ही पूर्ण विजय है'- में विश्वास करते है।[15] जैन दार्शनिक भी अहिंसा के आन्तरिक और मानसिक पक्ष को ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं।[16]

अहिंसा की शक्ति

गांधीजी का कथन था कि मनुष्य की बुद्धि ने संसार में जो प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्र बनाये हैं, उनसे भी प्रचंड यह अहिंसा की शक्ति है।[17] संहार कोई मानव धर्म नहीं है, मनुष्य अपने भाई को मारकर नहीं बल्कि आवश्यक हो तो उसके हाथ से मर जाने को तैयार रहकर स्वतन्त्रता के साथ जीवित रहता है। हत्या या अन्य प्रकार की हिंसा, फिर चाहे वह किसी भी कारण की गयी हो, मानव जाति के विरुद्ध एक अक्षम्य अपराध है। मैं यह नहीं जानता है कि मनुष्य जाति प्रेम के नियम या कानून का अनुसरण करेगी या नहीं। लेकिन इसमें मुझे परेशान होने की आव यकता नहीं है। नियम अथवा कानून अपने आप काम करेगा, जिस प्रकार एक वैज्ञानिक प्राकृतिक शक्तियों के प्रयोग द्वारा आश्चर्यजनक बातों की खोज करता है, उसी तरह यदि कोई व्यक्ति प्रेम का वैज्ञानिक रीति के साथ प्रयोग करे, तो वह इससे अधिक आश्चर्यजनक, परिणाम भी पैदा कर सकता है, क्योंकि अहिंसा की शक्ति प्राकृतिक शक्तियों से कहीं अधिक आश्चर्यजनक सूक्ष्म और शक्तिशाली है।

अहिंसा का स्थायी प्रभाव

शिमला में 8 मई, 1946 को प्रार्थना सभा में गुरुदेव को नमन

आठ मई, 1946 को महात्मा गांधी ने शिमला में आयोजित प्रार्थना सभा के प्रारंभ में कहा कि आज गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म दिवस है। इसलिये मैं उनके इलावा और किसी विषय पर नहीं बोलूंगा।

गांधी जी ने मंच पर रखी गुरुदेव की तस्वीर की ओर इशारा करते हुये कहा कि 'यह ज्योति जो कभी बूझी नहीं।' गुरुदेव का शरीर मिट्टी में मिल गया है, लेकिन गुरुदेव के व्यक्तित्व में छिपी क्रांति सूर्य के प्रकाश की तरह है जो तब तक प्रकाश बिखेरती रहेगी जब तक इस पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व है। लेकिन जैसे सूर्य का प्रकाश शरीर के लिये है उसी तरह गुरुदेव द्वारा दिया गया प्रकाश आत्मा के लिये है।

गांधी जी ने अपना भाषण समाप्त करते हुये लोगों से अनुरोध किया कि गुरुदेव जो उदाहरण छोड़ गये हैं उसमें वे देश-प्रेम, विश्व प्रेम और निस्वार्थ सेवा का पाठ सीखें।'

अक्सर आदमी हिंसा की ओर आकर्षित इसलिए हो जाता है कि उसका प्रभाव तत्काल दिखायी देता है, परन्तु वह क्षणिक ही होता है, और अनेक बार उसकी प्रतिक्रिया बहुत बुरी होती है। स्थायी लाभ के लिये आदमी को दूर दृष्टि का ही विकास करना होगा और ऐसा करने के लिये उसे अहिंसा को ही अपनाना होगा। गांधीजी ने कहा था, ''हिंसा-प्रिय व्यक्ति जब किसी कार्य को करता है तो उसके प्रभाव का तुरन्त पता लगता है, परन्तु वह अस्थायी होता है''[18] एक ओर हिटलर मुसोलिनी और स्टालिन के हिंसात्मक कार्यो का तत्काल प्रभाव पड़ा, परन्तु इसका प्रभाव अल्पकाल तक ही सीमित रहा। दूसरी ओर महावीर एवं बुद्ध के अहिंसात्मक कार्यों का प्रभाव अब भी है और समय के साथ-साथ उसके बढ़ने की ही सम्भावना है। जितना अहिंसा का पालन किया जाता है, उतना ही प्रभाव गम्भीर और स्थायी होता जाता है और अन्त में एक समय आता है, जब संसार विस्फारित नेत्रों से कहता है- यह एक चमत्कार है। यह एक अचम्भा है।

गांधीजी के समय भारत ने जिस अहिंसा की शक्ति का अनुभव किया वह पूर्ण अहिंसा नहीं थी। गांधीजी ने कहा था- ''मैंने भारत के सामने अहिंसा का आत्यन्तिक रूप नहीं रखा है, और न ही मैं इसके लिये स्वयं को योग्य पाता हूँ। यद्यपि मेरी बुद्धि ने इसे पूरी समझ और ग्रहण कर लिया है किन्तु अभी तक वह मेरे समस्त जीवन एवं सम्पूर्ण अस्तित्व का अंग नहीं बन गयी है। पूर्ण अहिंसक मनुष्य गुफा में बैठा हुआ भी सकल विश्व को हिला सकता है। पर उस विचार के पीछे पूर्ण एकाग्रता और पूर्ण शुद्धि होनी चाहिए। इन तथ्यों से सहज ही अहिंसा की शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है।''[19]

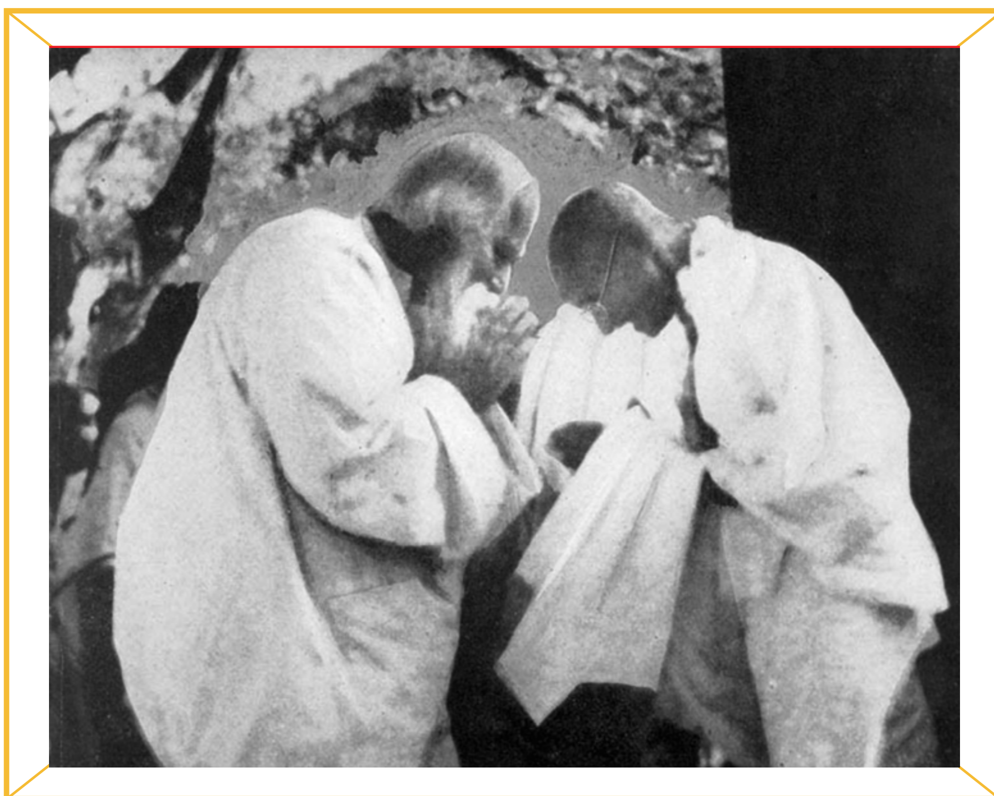
गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़-160014

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वी. कोर्तुनाव, आधुनिक विश्व में वैचारिक संघ, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस जयपुर, 1984, 9.
2. आर.एच. शरण व टी.एन.पंत, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन (मैकमिलन : दिल्ली), 1977, 3
3. जॉन हर्ज, इंटरनेशनल पालिटिक्स इन एटोमिक रोज, 1959.
4. फ्रेडरिक बोहन फिशर, ए स्टेटमेंट ऑफ पीस, प्रोफाइल्स ऑफ महात्मा गाँधी (पुस्तक) नार्मन फजिन (इण्डियन बुक कंपनी : दिल्ली) 1969, 25.
5. प्यारेलाल, गांधीयन टेक्निक इन दी मार्डन वर्ल्ड (नवजीवन) अहमदाबाद, 1953, 3-5.
6. आर.आर. दिवाकर, दी रेलिवेल्स ऑव गांधी (लेख) गाँधी हिज रेलिवेन्स फॉर आवर टाइम्स, जी रामचन्द्रन, टी.के. महादेवन (भारतीय विद्या भवन : बम्बई) 1957,1-1.
7. मोहम्मद हुसैन हक्ल, दी गांधीयन टेक्नीक्स एण्ड हाऊ हट इज टेंशन इंटरनली एण्ड इंटरनेशनली (लेख) गांधीयन आऊटलुक एण्ड टेक्निक (पुस्तक) भारत सरकार-1953, 379.
8. एलबर्ट आइन्सटाइन, ऑन पीस एण्ड वार (लेख) प्रोफाइल ऑफ गाँधी (पुस्तक) नार्मन कजिन (Indian book Company, Delhi) 1969, 100.
9. अमिया चक्रवर्ती, सत्याग्रह एण्ड दी रेस प्रोब्लम इन अमेरिका (लेख) गाँधी इण्डिया एण्ड दी वर्ल्ड (पुस्तक) शिव नारायण रे (नचिकेतन पब्लिकेशन : बम्बई), 1970, 303.
10. विश्वनाथ टंडन रिमेम्बरिंग मार्टिन लूथर किंग- (लेख) पेट्राट मैगजीन, 5 जून 1988. 2.
11. भगवानदास केला, जीवन धर्म अहिंसा, सर्वोदय ग्रन्थमाला, इलाहाबाद, 1957, पृ. 23.
12. वही, पृ. 23, 24.
13. वशिष्ठनारायण सिन्हा, जैन धर्म में अहिंसा, पृ. 251-252.
14. रूद्रांगशु मुखर्जी (सम्पादक) गान्धी रीडर, द पेन्गुइन बुक्स (इंग्लिश), 1992, पृ. 96-97.
15. कमलापति त्रिपाठी (सम्पादक), अहिंसा (प्रथम भाग), काशी विद्यापीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1948, खण्ड 10, पृ. 17.
16. वशिष्ठनारायण सिन्हा, जैन धर्म में अहिंसा, पृ. 186.
17. भगवानदास केला, जीवन धर्म अहिंसा, पृ. 26.
18. एम.के.गान्धी, हरिजन सेवक, 26-7-1935.
19. वही, 27-07-1940.

गांधी और टैगोर
असहमति की निष्पाप दृढ़ता

◆ सूरज पालीवाल



महात्मा गांधी और रवींद्रनाथ टैगोर अपने समय की दो महान आत्माएं थी। एक ही समय में इस प्रकार के व्यक्तित्व अपनी-अपनी तरह से अलग क्षेत्रों में काम करते हुये एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े होंगे, यह कल्पनातीत विश्वास उनके पत्रों को पढ़कर दृढ़ होता है। साहित्य और कला क्षेत्रों के प्रकार की चिंताएं नहीं करते बल्कि एक दूसरे के प्रति रागद्वेष से लबरेज ही रहते हैं। दक्षिण अफ्रीका में रहते गांधीजी यह जानते थे कि रवींद्रनाथ टैगोर शांतिनिकेतन के माध्यम से बड़ा काम कर रहे हैं और टैगोर इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों के खिलाफ गांधीजी जिस प्रकार का आंदोलन चला रहे हैं वह दुनिया में अपनी तरह का एक अलग आंदोलन है, जिसकी ताप भारत में भी महसूस की जाने लगी थी। जनवरी, 1915 में भारत आते समय गांधीजी ने फीनिक्स आश्रम में रहकर पढ़ने वाले छात्रों को शांतिनिकेतन भेजना ही उचित समझा था। गांधीजी का चयन बताता है कि टैगोर के प्रति उनके मन में कितनी श्रद्धा थी और उनके काम के प्रति कितना विश्वास था। इसीलिये टैगोर ने उन्हें पत्र लिखकर धन्यवाद दिया कि 'अपने छात्रों को साथ ही साथ हमारे छात्र बनाने की अनुमति के लिये।' यह संक्षिप्त-सा पत्र एक दूसरे की भावनाओं को प्रकट करता है। गांधीजी लगभग 22 वर्ष दक्षिण अफ्रीका में रहे, उन्होंने वहां दो आश्रमों की स्थापना की-फीनिक्स और टालस्टाय आश्रम। इधर अपने पिता की साधना स्थली को अलग प्रकार के विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित करने का बीड़ा रवींद्रनाथ टैगोर ने उठाया। एक दार्शनिक और प्रकृति प्रेमी कवि तथा दूसरा शांति और अहिंसा का पुजारी लेकिन चिंताएं समान। उन चिंताओं को दूर करने के साधन और मार्ग अलग-अलग थे लेकिन दोनों को यह विश्वास था कि

एक जगह जाकर दोनों मिल जायेंगे। गांधी अपनी तरह से आजादी की लड़ाई लड़ने दक्षिण अफ्रीका से भारत आये थे। वहां रहकर उन्होंने जो प्रयोग किये थे, उन प्रयोगों को वे भारतीय राजनीति में इस्तेमाल करना चाहते थे। इतिहास में यह पहला अवसर था जब अहिंसा और सत्याग्रह के माध्यम से शासक वर्ग को परास्त करना था। गांधी के सत्याग्रह और अहिंसा की नीतियों से हममें से बहुतों की सहमति नहीं है, हम यह भी नहीं मानते कि केवल गांधी के कारण देश को स्वाधीनता मिली थी लेकिन यह तो मानते ही हैं कि उन्होंने बिना किसी डर, प्रलोभन और निजी महत्त्वाकांक्षा के स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी। विरोधी आरोप लगाते रहे लेकिन वे अकेले पड़कर भी अपने सिद्धांतों पर अडिग रहे। उनके इस अनोखे सिद्धांत ने उस समय भी कई लोगों का मन मोहा था और आज भी वह अविश्वसनीय लगता है। रवींद्रनाथ टैगोर भी उनमें से एक थे, जो गांधीजी की कई नीतियों से असहमत होते हुये भी उन्हें महात्मा मानते थे और विश्वास भी करते थे। गांधी और टैगोर के पत्र और हंगरी लेखिका रोजा हजनोशी गेरमानूस की संस्मरणात्मक पुस्तक 'अग्निपर्व शांतिनिकेतन' से यह बात स्पष्ट होती है। रोजा 1929 से 1931 तक अपने पति इस्लामी इतिहास के प्राध्यापक ज्यूला गेरमानूस के साथ शांतिनिकेतन में रही थी। तीस के दशक के बनते हुये शांतिनिकेतन को रोजा की आंखों से देखना एक अकल्पनीय लेकिन अद्भुत ज्ञान के तीर्थ से परिचय कराता है। रवींद्रनाथ टैगोर के भव्य व्यक्तित्व के कारण देश-विदेश से आने वाले विद्वानों का जमावड़ा शांतिनिकेतन में रहता था। यह पुस्तक केवल निजी अनुभव ही नहीं हैं बल्कि शांतिनिकेतन की पूरी रीति-नीति तथा कविगुरु की आभा का जीता जागता प्रमाण चाक्षुष करती है। कविगुरु ने इसे अपने सपनों के विश्वविद्यालय के रूप में बनाने की ठानी थी। इसीलिये पूरा शांतिनिकेतन कवि के सपनों, उनकी महत्त्वाकांक्षाओं और उनकी कल्पनाओं पर संचालित होता था। रोजा ने बहुत ही कौशल के साथ शब्द चित्र बनाये हैं। गांधीजी ने भारत आते समय फीनिक्स के छात्रों को इसीलिये शांतिनिकेतन भेजा था और इसीलिये आर्थिक संकट के दौर में टैगोर अकेले गांधीजी पर ही भरोसा करते थे। शांतिनिकेतन के विकास के साथ आर्थिक संकट भी उसी तेजी से बढ़ रहा था जिसका कोई समाधान टैगोर के पास नहीं था। देश विदेश के भ्रमण इत्यादि से उन्हें जो भी आय होती थी वह सब शांतिनिकेतन के लिये पर्याप्त नहीं थी। दुखी मन गुरुदेव ने गांधीजी को पत्र लिखकर अपनी चिंता से अवगत कराया 'अपने जीवन के इस प्रयोजन के लिये तीस वर्षों से वास्तव में मैंने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है और जब तक मैं अपेक्षाकृत जवान और सक्रिय था मैं बिना किसी की सहायता के अपनी सारी मुसीबतें झेलता रहा और मेरे संघर्षों के दौरान यह संस्था अनेक रूपों में कई गुना संबंधित हुई। और अब, चाहे जैसे भी हो, जब मैं 75 साल का हो चला हूं तो इस जिम्मेदारी का भार मेरे लिये काफी बोझ बन गया है, मेरी किसी कमी के कारण मेरे लोगों के हृदयों पर मेरी अपील की समुचित प्रतिक्रिया नहीं हो पाती हालांकि जिस उद्देश्य को पूरा करने की मैंने भरसक कोशिश की है वह निश्चय ही महत्वपूर्ण है। लगातार धन एकत्र करने के लिये भ्रमण करना जिसका परिणाम निरर्थक रूप से अत्यंत अल्प होने से मेरी रोजाना की परेशानियों से तनाव बढ़ने लगा है और मेरे शरीर को थकान की अंतिम परिणति तक ले आया है। अब मैं आपके अतिरिक्त और किसी को नहीं जानता जिसकी वाणी मेरे देशवासियों को यह अहसास दिला सके कि इस संस्था को इसके कार्यकलापों की समग्रता में बनाये रखना उनके हित में है और मेरे जीवन और स्वास्थ्य के दुर्बल होते अंतिम समय में मुझे निरंतर होने वाली चिंता से छुटकारा दिलायें।'

यह मार्मिक पत्र है। ऐसे पत्र केवल अपनों को ही लिखे जा सकते हैं। टैगोर गांधीजी पर अपार विश्वास करते थे, यह पत्र उसी विश्वास का जीवंत रूप है। वे जानते थे कि गांधीजी के अलावा आत्मा की पीड़ा को समझने वाला और कोई नहीं है। कहना न होगा कि टैगोर केवल बंगाल के ही नहीं अपितु विश्व के महानतम कवि थे। 75 वर्ष की आयु में एक बड़े और कल्पनातीत संस्थान को चलाने के लिये वे लगातार भ्रमण करते, नाटक आदि का आयोजन करते लेकिन जो मिलता वह बहुत कम होता। रोजा ने अपनी पुस्तक में कई बार इस तथ्य का उल्लेख किया है कि कवि जब विदेश से लौटते तो लोगों को लगता कि अब शांतिनिकेतन में रुके हुये कई काम फिर से आरंभ हो जायेंगे। गांधीजी इस तथ्य से अनजान नहीं थे इसलिये उन्होंने तुरंत टैगोर के पत्र के उत्तर में लिखा 'यह अविचारणीय है कि आप अपनी इस आयु में धन एकत्र करने के एक और अभियान का भार उठायें। शांतिनिकेतन से बिना बाहर निकले आपके पास आवश्यक धनराशि पहुंचनी ही चाहिये।' और 27 मार्च, 1936 के पत्र द्वारा सूचित किया कि 'मेरे अकिंचन प्रयास को ईश्वर का आशीर्वाद मिला है। और यह रहा धन। अब आप अपने शेष कार्यक्रम को रद्द करने की घोषणा से लोगों के मन को शांत करें। ईश्वर आपको आगामी बहुत वर्षों तक जीवित रखे।' इसी दिन 60,000 रुपये का ड्राफ्ट भेजते हुये लिखा कि 'कृपया, इस पत्र के साथ 60,000 रुपये के ड्राफ्ट को प्राप्त करें जिसे हम मानते हैं कि शांतिनिकेतन के खर्चों के घाटे के लिये है जिसको पूरा करने के लिये आप जगह-जगह अपनी कला का प्रदर्शन करते आ रहे हैं। जब हमने यह सुना तो हमें बड़ी शर्मिंदगी महसूस हुई। हमारा विश्वास है कि अपनी ढलती हुई आयु और नाजुक सेहत के होते हुये आपको इतने श्रमसाध्य दौरों का भार नहीं उठाना चाहिये। इस युग के कवि के रूप में आपकी जो ख्याति है उससे हम अनभिज्ञ नहीं है। आप न केवल भारत के महानतम कवि हैं बल्कि आप संपूर्ण मानव जाति के कवि हैं। आपकी कविताएं प्राचीन ऋषियों के स्तोत्रों की याद दिलाती हैं।

आपने अपनी अनुपम प्रतिभा से देश का मान बढ़ाया है। और हम महसूस करते हैं कि ईश्वर ने जिन लोगों को साधन सम्पन्न किया है उन लोगों को इस संस्था को चलाने के लिये धन जुटाने की जिम्मेदारी के भार से आपको मुक्त रखना चाहिये। हम आशा करते हैं कि अब आप उन सभी कार्यक्रमों को निरस्त कर देंगे जो आपने ऊपर लिखी धनराशि एकत्र करने के लिये तय किये थे।' इस पत्र पर गांधीजी के हस्ताक्षर नहीं हैं लेकिन यह पत्र और यह धनराशि किसके इशारे पर दी गई थी, इसे बताने की आवश्यकता नहीं है। कहना न होगा कि यह पत्र तब का है जब पूरे विश्व में महामंदी का दौर था और द्वितीय विश्वयुद्ध के बादल मंडरा रहे थे। उस समय 60,000 रुपये की कीमत कितनी थी, यह तो कोई अर्थशास्त्री ही बता सकता है लेकिन उन रुपयों को देने और लेने के बीच में दो पवित्र आत्माएं थी जिनके लिये धन लालच और व्यक्तिगत संग्रह की वस्तु न होकर सामाजिक कार्यों की पूर्ति का साधन मात्र था। गांधीजी की चिंता यह थी कि शांतिनिकेतन के लिये टैगोर को कोई ऐसा काम न करना पड़े, जिससे उनका स्वास्थ्य और रचनात्मकता प्रभावित हो। टैगोर न केवल कविताओं के कारण अपितु अपने चिंतन के कारण जिस ऊंचाई पर पहुंच चुके थे, उससे उनकी ख्याति देश विदेश में समान रूप से फैल गई थी। गांधीजी चाहते थे कि शांतिनिकेतन के आर्थिक झमेले टैगोर की चिंता का कारण न बनें। वे यह भी नहीं चाहते थे कि कविगुरु के सपनों का शांतिनिकेतन आर्थिक संकट के कारण अपनी आभा खोने लगे तथा यह भी कि इस उम्र में कवि का इस प्रकार नाचना तथा अपनी कला के प्रदर्शन से शांतिनिकेतन के लिये धनोपार्जन करना गांधीजी को अच्छा नहीं लगता था। गांधीजी अपने पत्र दि. 13.10.1935 तथा 27 मार्च, 1936 के द्वारा यह अनुरोध कर ही चुके थे। लेकिन कविगुरु जानते थे कि आर्थिक संकट लगातार बढ़ रहा है, जिसके लिये उन्हें अपने तय कार्यक्रमों में जाना ही पड़ेगा। गांधीजी ने यह सुना तो उन्हें ठेस लगी और फिर 19.2.1937 को वर्धा से पत्र लिखा 'मुझे पता चला है कि दिल्ली में मेरे साथ आपने जो वादा किया था उसके बावजूद आप अहमदाबाद को भिक्षा अभियान पर जाने वाले हैं। मुझे दुख हुआ और मैं घुटने टेक कर आपसे अनुरोध करता हूं कि यदि आपने सचमुच ऐसा कार्यक्रम बनाया है तो कृपया उसे रद्द कर दीजिये।' कविगुरु को 'भिक्षा अभियान' शब्द बुरा लगा तो गांधीजी ने 2 मार्च,1937 को वर्धा से फिर पत्र लिखा 'जहां तक वादाखिलाफी की बात है मैं अपने आपको आपके इतना निकट मानता हूं कि मजाक में आप पर वादाखिलाफी के इरादे का आरोप लगा सका। मेरा अभिप्राय एकदम सीधा-सादा था। मैं किसी न किसी तरह आपको किसी और भिक्षा अभियान पर जाने से रोकना चाहता था- इस वाक्यांश का प्रयोग मैं और आप दिल्ली में अक्सर बहुत बार किया करते थे। निस्संदेह में आपके धर्म से परिचित हूं और सारा भारत इस पर गर्व करता है। जितना आप दे सके उतने से हमें लाभान्वित होना चाहिये लेकिन जनता के सामने आपके प्रदर्शन का उद्देश्य विश्वभारती के लिये धन इकट्ठा करने का भार आपके सिर पर कभी नहीं होना चाहिये।'

गांधी और टैगोर का पत्र व्यवहार दो साफ दिलों की अभिव्यक्ति का अद्भुत नमूना है। दोनों के पत्रों से एक दूसरे के काम की महत्ता और स्वास्थ्य के प्रति चिंता झलकती है। दोनों मानते हैं कि अपनी-अपनी तरह से वे बड़ा और नायाब काम कर रहे हैं। आज ऐसे पत्र किस रचनाकार के पास हैं, जिनमें राजनीति से जुड़ा कोई बड़ा व्यक्ति अपना विश्वास और उदात्त भावनाएं प्रकट कर रहा हो। वह यह मानता हो कि रचनाकार के रूप में वह अपना सर्वोत्तम संसार को दे रहा है। इसलिये गांधीजी आज के दौर में याद आते हैं जो दायां हाथ काम न करने की स्थिति में कविगुरु को बायें हाथ से पत्र लिखते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि टैगोर किस चिंता के साथ उनके पत्र की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। 'मेरे दायें हाथ को आराम की जरूरत है। मैं किसी से लिखवाना नहीं चाहता था। बायां हाथ जरा धीरे चलता है। यह केवल आपको यह दिखाने के लिये नहीं कि हम कुछ लोग आपसे कितना स्नेह करते हैं। मैं वास्तव में विश्वास करता हूं कि आपके प्रशंसकों के हृदयों की मौन प्रार्थनाएं सुनी गई हैं और अब तक आप हमारे साथ हैं। आप विश्व के मात्र एक गायक ही नहीं हैं। आपके जीवंत शब्द हजारों लोगों के लिये पथ-प्रदर्शक और प्रेरणाप्रद हैं।' गांधी और टैगोर के आत्मीय रिश्तों को बार-बार देखना और अनुभव करना चाहिये। मानवीय रिश्तों की यह डोर लगातार और मजबूत होती गई। जैसे-जैसे दोनों की कीर्ति पताका ऊंची होती गई, वैसे-वैसे दोनों और निकट आते गये। गांधीजी ने कविगुरु की अंतिम बीमारी के समय टैगोर को अपने अंतिम पत्र दि. 1 अक्तूबर, 1940 में लिखा 'प्रिय गुरुदेव, अभी आपको कुछ समय और ठहरना चाहिये। मानवीयता को आपकी आवश्यकता है। मुझे यह जानकर अपार खुशी हुई थी कि आपकी हालत बेहतर है।' और टैगोर ने अपने अंतिम पत्र में गांधीजी को लिखा 'सेवा में, महात्मा गांधी, वर्धा। आपकी निरंतर शुभकामनाएं मुझे अंधकारमय जगत से प्रकाश और प्राणमय जगत में ले आई हैं और मैं अपने धन्यवाद का प्रथम समर्पण आपको भेजता हूं।' ध्यान रहे ये दोनों के एक दूसरे को अंतिम पत्र हैं। यह एक दूसरे के प्रति सम्मान और प्यार की ऊंचाइयां हैं, जिन्हें पाने के लिये वैसा ही हृदय और मानस चाहिये। इन स्थितियों तक पहुंचना तो दूर इन पर सोचना भी सामान्य मनुष्य के बस की बात नहीं है। कहा जाता है कि असामान्य स्थितियां मनुष्य के स्वभाव का निर्धारण करती हैं तो क्या इन्हीं असामान्य स्थितियां में ऐसे रिश्ते भी बलवती होते हैं। महात्मा गांधी और कविगुरु के ये रिश्ते सामान्य तो कदापि नहीं कहें जा सकते। इन रिश्तों में अब भी मानवीय हृदय की धड़कन सुनी जा



सकती हैं। हृदय की आवाज को साकार करने वाले ये रिश्ते परस्पर असहमति की स्थिति में भी मजबूत और सुघड़ बने रहे, इसलिये प्रेरणास्पद हैं।

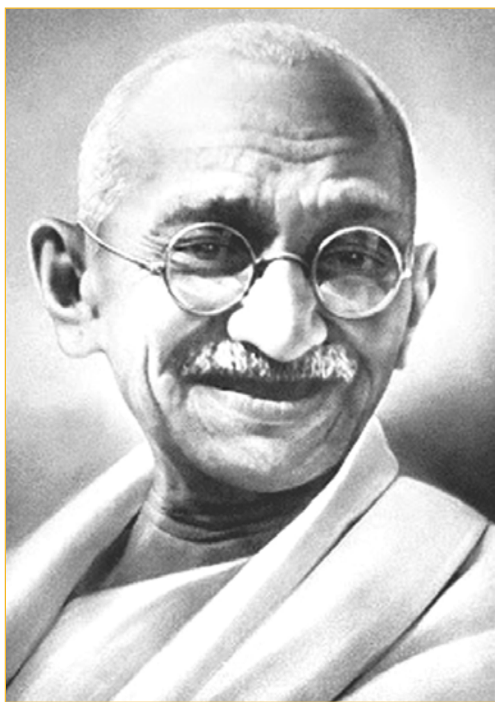
रवींद्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी के इन सहज आत्मीय संबंधों से एक बात विशेषतौर पर उभरकर आती है कि दस और देश का काम करने वाली छोटी-छोटी बातों पर मन और मनःस्थिति खराब नहीं करते। जब लक्ष्य निर्धारित हो तो आंख और मन स्वतः ही नहीं भटकता। भटकने की स्थिति या तो अतिमहत्वाकांक्षा पालने पर होती है या फिर सब कुछ हमें ही मिले की मानसिकता में होती है। राजनेता अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये अपने प्रतिद्वंद्वी पर आक्रमण करता है, उसकी कमियों को दिखाता है और अच्छे को भी बुरे में परिवर्तित कर अपनी पीठ थपथपाता है लेकिन हमारे साहित्यकार तो बिना किसी कारण के ही तरल-गरल में एक दूसरे की ऐसी-तैसी करते रहते हैं। साहित्यिक जगत में जो कटुता है, उसी का परिणाम है कि अब कोई बड़ी रचना नहीं लिखी जा रही है। साहित्यकार के रूप में हमारे सामने टैगोर हैं, जो रचना के स्तर पर बहुआयामी संसार की रचना करते है। संस्कृति का ऐसा कौन-सा पक्ष है जिसका विस्तार टैगोर ने न किया हो। और कर्मक्षेत्र की बात आती है तो वे शांतिनिकेतन जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्था का निर्माण करते हैं और कहते हैं 'मैंने शांतिनिकेतन की स्थापना शिक्षा और शांति के लिये की थी। प्रेम और सौहार्द के मंदिर के रूप में। इस विश्वविद्यालय का उद्देश्य वही था। यहां हम सत्य की खोज करते हैं जो सारे विश्व में चमके-सूरज की तरह। इस आश्रम से शांति की धारा प्रवाहित हो, जो उन लोगों तक पहुंचे, जिन्हें हृदय से इसकी तलाश हो।' (रोजा हजनोशी गेरमानूस-अग्निपर्व शांतिनिकेतन, पृ. 464) यह विविधलक्षी जीवन का घोषणा पत्र है, जिसकी भाषा स्वतः बोल रही है। दूसरी ओर महात्मा गांधी हैं, जो जीते-जी मिथ बन गये, जिनकी दृढ़ता और त्याग के स्मरण मात्र से आज भी रौंगटे खड़े होते हैं। दुनिया में ऐसा राजनेता और महात्मा ढूंढे न मिलेगा, जो अपनी रोजाना की कमाई से अपना पेट भरता हो। हम सब कहते जरूर हैं कि रोज कुआं खोदो और फिर पानी पीओ। हम सबके लिये यह केवल मुहावरा-भर रह गया है। सबको संग्रह की चिंता है, अनंत चिंता और अनंत संग्रह, केवल महात्मा गांधी हैं जिनके पास संग्रह करने को कुछ था ही नहीं। कवि अपने जीवन की सारी कमाई को शिक्षा के विस्तार के लिये लगा रहे हैं और महात्मा सब कुछ त्यागकर स्वाधीनता की अमरज्योति को घर-घर पहुंचा रहे हैं। ऐसे विरले लोगों की दुनिया विचार की असहमति होते हुये भी आत्मीय है। उसमें किसी प्रकार का रागद्वेष नहीं है। रागद्वेष वे पालें जो केवल अपने लिये जीते हैं, जिन्हें अपने और अपने परिवार की चिंता है-गांधी और टैगोर दोनों ही समाज के लिये अपना सर्वोत्तम दे रहे थे इसलिये रागद्वेष दूर-दूर तक नहीं था।

कहना न होगा कि रवींद्रनाथ टैगोर और महात्मा गांधी के बीच जिन आत्मीय संबंधों का निरूपण किया गया है, उसके बाहर विभिन्न मुद्दों पर असहमतियां भी उतनी ही खरी थी। इन असहमतियों के रहते संबंधों में किसी प्रकार का कड़ुवापन नहीं था। इसका एक कारण तो यह कि दोनों अपनी असहमतियों को छुपाते नहीं थे, अपनी भाषा में उन्हें जो कहना होता था, कहते थे और यह भी चाहते थे कि दूसरे पर इसका असर हो। ऐसा ही एक मुद्दा चरखे की भूमिका को लेकर था। गुरुदेव ने अपनी असहमति को तार्किक ढंग से गांधीजी को बताना उचित समझा इसलिये सितंबर,1925 के 'माडर्न रिव्यू' में एक लंबा लेख लिखा। यह बहुत ही सुचिंतित लेख था, जिसमें वे लिखते हैं 'बहुत से लोग हैं जो दृढ़तापूर्वक कहते हैं और कुछ लोग हैं जो विश्वास करते हैं कि चरखा से स्वराज्य मिल सकता है, लेकिन मुझे अभी तक एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जिसकी इस प्रक्रिया के बारे में स्पष्ट धारणा हो। इसीलिये कोई विचार-विमर्श नहीं, बल्कि इस प्रश्न पर केवल झगड़ा है।'

इस लेख को गांधीजी ने ध्यान से पढ़ा। जाहिर है कि टैगोर की असहमति गांधीजी के लिये महत्त्वपूर्ण थी। हो सकता है कि गांधीजी ने कभी यह सोचा भी न हो कि टैगोर उनके चरखा संबंधी विचारों से असहमत भी हो सकते हैं। जब अपने आत्मीय-जन प्रश्न उठाते हैं तो उस पर पुनर्विचार जरूरी हो जाता है। इसी बीच लोगों को अवसर मिला और यह प्रवाद फैला दिया कि टैगोर ने ईर्ष्यावश यह लेख लिखा है। ऐसी स्थिति में गांधीजी को अपना पक्ष रखना जरूरी लगा। उन्होंने अपनी सारी व्यस्तताओं के बावजूद 5 नवंबर, 1925 के 'यंग इंडिया' में लिखा 'मैंने अफवाह सुनी कि इस आलोचना का मूल कारण ईर्ष्या ही है। ऐसी निराधार शंकाएं दुर्बलता और असहिष्णुता के वातावरण की द्योतक हैं। जरा ध्यान से सोचने पर स्पष्ट हो जायेगा कि हृदयहीन आरोप बिलकुल निराधार है। मुझमें ऐसा क्या है, जिससे कवि मुझसे ईर्ष्या करेंगे। ईर्ष्या के लिये पहले प्रतिद्वंद्विता की संभावना होनी चाहिये। सो मैं तो अपने जीवन में कभी एक तुकबंदी भी नहीं कर पाया हूं। कवि में जो कुछ है, उसका अंश भी मुझमें नहीं है। उनकी महत्ता को प्राप्त करने की आकांक्षा मेरे मन में कभी नहीं आ सकती। वे अपनी महत्ता के निर्विवाद अधिकारी हैं। आज संसार में कोई दूसरा कवि उनकी बराबरी नहीं कर सकता। वे अपने क्षेत्र में जिस निर्विवाद स्थिति के अधिकारी हैं, उससे मेरे महात्मापन का कोई संबंध नहीं है। यह बात समझ लेनी चाहिये कि हमारे कार्य क्षेत्र अलग-अलग हैं और वे कहीं भी एक-दूसरे से नहीं टकराते।' यह उत्तर केवल टैगोर को ही नहीं था बल्कि उन लोगों को भी था जो इस असहमति से आनंदित थे, जिन्हें लगता था कि अब दोनों एक दूसरे के विरुद्ध लिखेंगे। गांधीजी ने बहुत ही विनम्रता से अपनी और टैगोर की सीमाएं भी बताई और यह भी कि वे एक दूसरे को

मन से कितना आदर देते हैं। दो वैचारिक और बड़े लोगों में किसी मुद्दे पर असहमति होना एक फ़िार से जरूरी भी है, सम्मान का मतलब हर निर्णय में सहमति नहीं होता। बौद्धिक समाज में ऐसी सहमतियों के कोई अर्थ नहीं होते। गुरुदेव ने अपने लेख के आरंभ में इसे और स्पष्ट करते हुये लिखा 'जब ईश्वर ने मनुष्य की बुद्धि उत्पन्न की तो उसके सामने मकड़ी की मानसिकता आदर्श नहीं थी जिसकी नियति निरंतर एक जैसा जाला बनाने की होती है और यह मानव के प्रति के प्रति अत्याचार है कि किसी झुंड के माध्यम से उस पर दबाव डाला जाए और उसे एक जैसे रूप और आकार तथा प्रयोजन के लिये एक मानकीकृत उपयोगी वस्तु में परिवर्तित कर दिया जाए।' दोनों महापुरुष अपने इस तर्क पर दृढ़ हैं कि आत्मीय संबंधों के बावजूद विचारों की असहमतियां हो सकती हैं। आदर और सम्मान का मतलब अपनी बुद्धि और अपने विचारों को गिरवी रखना नहीं होता। इसलिये गुरुदेव की चरखा, बिहार का भूकंप जिसे गांधी जी ने दैवी कठोर दंड कहा था, सत्याग्रह तथा यरवदा समझौते पर असहमतियों के वे अर्थ नहीं लगाने चाहिये जो सामान्य जन लगाने के आदी हैं। विचारों की असहमति मन और बुध्दि की स्वतंत्रता का द्योतक है न कि व्यक्ति विरोध का।

कई बार यह अविश्वसनीय-सा लगता है कि जो दो व्यक्ति अपनी धुन में लगातार काम करते जा रहे हैं, वे एक दूसरे के प्रति संवेदना की अंतिम सीमा तक आत्मीय होते हुये भी विचारों में एकदम भिन्न और विरोधी नजर आते हैं। फरवरी,1931 में बंगाल के गवर्नर सर स्टैनले जैकसन के विदाई समारोह में जिस पार्वती ने उनपर गोली चलाई, उसने शांतिनिकेतन में इस काम को करने की शपथ ली थी। जाहिर है कि गुरुदेव को यह सुनकर बहुत बुरा लगा। वे गांधीजी की कई बातों से असहमति पहले ही व्यक्त कर चुके थे, अब एक मौका और था, जो पार्वती और उनके युवा सहयोगियों ने प्रदान किया था। टैगोर आगबबूला थे, उन्हें लगने लगा था कि राजनीतिक आंदोलन के साथ शांतिनिकेतन भी कलह और अशांति का केंद्र बनता जा रहा है। इस घटना का चित्र निर्मित करते हुये रोजा लिखती हैं 'टैगोर पूरी तरह टूटे हुये से अपनी बेंच पर बैठे थे। हिंदुस्तानी अध्यापकों के विनीत नमस्कार शंकालु निगाहों से स्वीकार कर रहे थे।' उन्हें इस बात का दुख था कि जिस शांतिनिकेतन की स्थापना उन्होंने शिक्षा और शांति के लिये की थी, वहां इस प्रकार की हिंसक राजनीति को स्थान मिलने लगा है। टैगोर ने कहा 'महात्मा एक शांतिपूर्ण क्रांति चाहते हैं। वे हिंदुस्तान की मुक्ति के लिये रक्तहीन संघर्ष की योजना बना रहे हैं। मैंने उनको सावधान किया था। मैंने इन नतीजों के बारे में उनसे प्रार्थना की थी। लेकिन उन्होंने मेरी सलाह ठुकरा दी। वे समझते हैं, मैं कवि हूं और मेरा दिमाग सातवें आसमान पर रहता है। गांधीजी को अपने व्यावहारिक आदर्शवादी होने का गर्व है-जो आत्म बलिदान में विश्वास रखते हैं, जो रक्तहीन विजय का विश्वास दिलाते हैं। अब भी वे इस प्रश्न का उत्तर नहीं देंगे कि अनुशासनहीनता हमें कहां ले जायेगी और शांतिपूर्ण प्रतिरोध का क्या होगा ? इस रक्तहीन क्रांति के न जाने कितने खूनी शिकार होंगे ? अगर एक छोटा-सा रोड़ा पहाड़ की चोटी से लुढ़कना आरंभ करता है तो जब तक नीचे तलहटी पर पहुंचता है तब तक वह एक बड़ी लुढ़कती हुई चट्टान का रूप ले लेता है- वह लोगों और घरों पर



गांधीजी लगभग 22 वर्ष दक्षिण अफ्रीका में रहे, उन्होंने वहां दो आश्रमों की स्थापना की-फीनिक्स और टालस्टाय आश्रम। इधर अपने पिता की साधना स्थली को अलग प्रकार के विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित करने का बीड़ा रवींद्रनाथ टैगोर ने उठाया। एक दार्शनिक और प्रकृति प्रेमी कवि तथा दूसरा शांति और अहिंसा का पुजारी लेकिन चिंताएं समान।

तबाही का तूफान बनकर गिरता है। इस शांतिपूर्ण आंदोलन के नाम पर सारे हिंदुस्तान में खून बह रहा है। भूख हड़ताल, आत्म बलिदान या प्रार्थना सभाओं में इस खून का प्रायश्चित नहीं हो सकता। प्रत्येक मृत्यु के लिये, प्रत्येक शांतिपूर्ण क्रांतिकारी, जो आज जेल में सड़ रहा है, महात्मा ही उत्तरदायी हैं। वे ही इन कच्चे फलों को पेड़ों से तोड़ रहे हैं। कच्चे फल कोई खुशी नहीं लाते और जिन पेड़ों से इन्हें तोड़ा जाता है वे पेड़ इनकी वजह से कष्ट पाते हैं।' शांतिनिकेतन के अपने पूरे परिवार के बीच टैगोर दुखी होकर बोल रहे थे। उनका दुख भविष्य की आशंका से उत्पन्न हुआ था। वे बिलकुल भी नहीं चाहते थे कि शांतिनिकेतन में इस प्रकार हिंसक योजनाओं को कार्यरूप दिया जाये। वे किसी भी प्रकार की राजनीति के विरोधी थे। इसका अर्थ यह कदापि नहीं था कि वे अंग्रेजी राज का विरोध नहीं कर रहे थे। इस देश से उन्हें उतना ही प्यार था जितना और किसी देशभक्त या स्वाधीनता सेनानी को हो सकता है। पर वे हमेशा यह भी चाहते रहे कि शांतिनिकेतन अपने लक्ष्य से न भटके। वे उसे ज्ञान और शांति का पवित्र संस्थान बनाना चाहते थे। इसलिये गांधीजी के प्रति अपने इस वक्तव्य में वे अत्यंत क्रोधित हैं। बहुत ही शांत और दार्शनिक आदमी जब आगबबूला होता है तब उसकी मनोदशा इस प्रकार की ही होती है। शांतिनिकेतन में हिंसा की राजनीति का संकल्प लिया जाये, यह टैगोर के लिये दुखद था, वे इस प्रकार की स्थिति के लिये कभी भी तैयार नहीं थे इसलिये वे राजनीति को भी शांतिनिकेतन के लिये वर्जित मानते थे। उनका अनुभव यह बताता था कि यदि राजनीति आयेगी तो उसके दुष्परिणामों को लंबे समय तक रोक पाना उनके बस में नहीं होगा। राजनीति अपने पूरे दाव-पेंचों के साथ आती है और उसमें सफलता के लिये नैतिक-अनैतिक कुछ भी किया जा सकता है। यहां यह प्रश्न जरूर उठता है कि जब पूरे संसार में निर्णायक स्थिति में राजनीति है तो शांतिनिकेतन को उससे बचाकर कैसे रखा जा सकता है ? यह एक प्रकार का भोलापन है, जो कवि और दार्शनिकों की अपनी धरोहर होता है। कवि टैगोर जिस दार्शनिक मुद्रा में रहते थे, उसमें इस प्रकार की राजनीति विहीन दुनिया की कल्पना कवि के सपनों की दुनिया है।

महात्मा गांधी और रवींद्रनाथ टैगोर के पत्रों तथा रोजा की महत्वपूर्ण पुस्तक 'अग्निपुंज शांतिनिकेतन' को पढ़ने के बाद शांतिनिकेतन का अप्रतिम रूप सामने आता है। उसमें कवि टैगोर द्वारा अपना सर्वोत्तम देने का विचार साकार होता है। दुनिया के लिये अनूठे और टैगोर के सपनों के शांतिनिकेतन को बनते हुये देखना नयी ऊष्मा प्रदान करता है। लगभग उसी समय 'अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और हिंदू विश्वविद्यालय अपना आकार ग्रहण कर रहे थे। ये तीनों विश्वविद्यालय आज भी अपनी तरह से अपनी पहचान बनाये हुये हैं। मैंने एक बार शांतिनिकेतन के एक प्रध्यापक से पूछा कि क्या शांतिनिकेतन अब भी कविगुरु के सपनों का शांतिनिकेतन है तो उन्होंने मुस्कुराते हुये उत्तर दिया विद्यालय तो लगभग वैसा ही है लेकिन विश्वविद्यालय तो यूजीसी के अन्य विश्वविद्यालयों की तरह ही है। मुझे सुनकर धक्का लगा, मुझे कविगुरु के वे शब्द याद आये जो उन्होंने गांधीजी से कहे थे- ये मेरी महत्वाकांक्षाओं का जलयान है।' मुझे लगता है यूजीसी की सहायता ने प्राध्यापकों के वेतन बढ़ा दिये, बहुत अच्छी इमारतें तैयार हो गई लेकिन उसकी आत्मा जिसमें कविगुरु की महत्त्वाकांक्षाओं का जलयान छुपा था, वह अब वहां नहीं है। महात्मा गांधी और टैगोर के पत्रों तथा रोजा की पुस्तक को पढ़ते हुये मेरे मन में यह प्रश्न भी बार-बार उठता रहा है कि एक कवि अपने समय के अद्वितीय राजनेता से कैसे आत्मीय संबंध बनाये हुये है, दोनों की चिंताएं समान हैं, दोनों एक दूसरे को अंदर तक जानते हैं, कवि महात्माजी के अनूठे योगदान से परिचित हैं तो महात्माजी कवि के महत्त्वपूर्ण लेखन से। दोनों सार्वजनिक जीवन की बहुत-सी बातों में एक-दूसरे से असहमत हैं लेकिन यह असहमति व्यक्ति संबंधों में किसी प्रकार की फांक नहीं आने देती। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में जब मैं और आप ऐसे लोगों के बारे में पढ़ते हैं तो लगता है अब राजनेता अपने शहर तो दूर अपने मुहल्ले के साहित्यकार के बारे में न कुछ जानता है और न जानना चाहता है। उसके लिये साहित्यकार का मतलब केवल अपना वोटर ही है। आजादी के बाद कहा जाता है कि इलाहाबाद के साहित्यकार पंडित नेहरू को अपना मानते थे और नेहरूजी साहित्यकारों को उतना ही सम्मान देते थे जितना अन्य कलाकारों को। यही संबंध आचार्य शिवपूजन सहाय और डा. राजेंद्र प्रसाद के बीच थे, दोनों एक दूसरे के कार्यकलापों और चिंताओं से पूरी तरह परिचित थे। परस्पर संबंधों की यह दुनिया अब समाप्तप्राय हो गई है। राजनेता और साहित्यकारों की अलग दुनिया ने राजनेताओं को खुला छोड़ दिया है, साहित्य पढ़कर या साहित्यकारों की संगत में बैठकर उनकी संवेदना के बचे रहने की संभावना थी, जो अब प्रायः नहीं बची। यहां एक प्रश्न यह भी उठता है कि जब समाज को साहित्य की आवश्यकता ही नहीं है तो साहित्यकार क्यों अपना खून जला रहा है ? लेकिन इसका उत्तर अपने प्रश्न में ही छुपा है कि साहित्यकार इस व्यवस्था से संतुष्ट नहीं है इसलिये वह इसे बदलना चाहता है। वह अपने साहित्य में एक ऐसी व्यवस्था का सपना भी देता है जो समानता, समरसता और संवेदनशीलता पर आधारित है। राजनेता ऐसे सपने का न विरोध करता है और न उसे स्वीकार करता है बल्कि उसे पुरस्कृत कर देता है। गांधी और टैगोर न तो एक दूसरे को पुरस्कृत कर रहे थे और न स्वीकार अस्वीकार की मनःस्थिति में थे अपितु पूरे मन से एक दूसरे के साथ थे।

वी 3, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा-442001, मो. 0 94211 01128

पटेल बिन गांधी अधूरे

◆ डॉ. आभा चौहान खिमटा

यरबदा जेल में जब पटेल व गांधी इकट्ठा रहे तो गुरु तथा चेले को पहली बार अपने विचारों के आदान प्रदान का मौका मिला। महात्मा गांधी पटेल की अपराजेय साहस तथा देश के प्रति असीम प्रेम से अत्यधिक प्रभावित हुए तथा उन्होंने सरदार के साथ जेल में बिताए 16 महीनों की सदैव प्रशंसा की। सरदार गांधी की तरह परिष्कृत व खुले विचारों के न थे लेकिन वे एक तुरंत कार्य को अंजाम देने में विश्वास रखते थे तथा वे अपने अभिभाषणों में बिना किसी हिचक के बात रखने वाले व्यक्तित्व थे। किसी वक्त वे अपने गुरु की आलोचना करने में भी कतराते न थे। सरदार पटेल को अपने ऊपर ठोस विश्वास था तथा वे अपने विचारों को स्पष्टता से बिना किसी अन्य के दृष्टिकोण के वगैर रखते थे।

बीसवीं शताब्दी में भारत की दो विभूतियां राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तथा सरदार पटेल के देश के प्रति समर्पण एवं महान योगदान की विवेचना शब्दों में नहीं की जा सकती। महात्मा गांधी धार्मिक प्रवृत्ति तथा आदर्शवादी थे, वहीं पटेल व्यावहारिक व यथार्थवादी थे। हालांकि पटेल, गांधी को अपना गुरु मानते थे और तिलक की व्यावहारिक दर्शन के अनुयायी थे। इसी तरह गांधी गोखले जो उदारवादी तथा संविधान के प्रति झुकाव रखने वाले थे, को गुरु मानते थे, जबकि उनका स्वराज का संघर्ष लोकमान्य तिलक की विचारधारा के समकक्ष था।

एक बार जब गांधी जी ने पटेल को कुछ विशेष कार्य करने को कहा तो, पटेल ने कहा, "मैं उस कार्य को कर तो दूंगा, लेकिन मुझसे आप यह प्रश्न न करना कि यह कार्य कैसे हुआ है।"[1]

जब गांधी जी ने पटेल को प्रत्येक व्यक्ति में अच्छाई की आस्था बारे अपने उद्गार व्यक्त बारे पूछा तो पटेल ने कहा, "यह सच है कि प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर वास करता है, लेकिन गीता यह नहीं कहती कि व्यक्ति को अपने भीतर समाहित घोर शत्रु से लड़ना पड़ता है? अगर हर व्यक्ति में ईश्वर है, तो उसके भीतर दैत्य भी वास करता है। गांधी तथा टैगोर में प्रगाढ़ स्नेह, विश्वास तथा स्वतंत्रता का रिश्ता था। निस्संदेह पटेल तथा गांधी में विचारों का तर्क वितर्क होता था लेकिन पटेल गांधी से सहज ज्ञान (वृत्ति) तथा नेतृत्व का आदर करते थे। पटेल जननेता नहीं थे, लेकिन वे एक महान राजनेता के साथ-साथ श्रेष्ठ प्रशासक व कूटनीतिज्ञ के सहज ज्ञाता थे। वे एक पक्के राष्ट्रभक्त थे, जिन्होंने अपना पूर्ण जीवन राष्ट्र की सेवा में समर्पित किया। उनमें अपने गुरु महात्मा गांधी की तरह न तो धर्मात्मा वाली बात थी और न ही अपने सहयोगी पंडित नेहरू जैसा आदर्शवाद। हालांकि उनमें वे योग्यता व निपुणता थी जिससे वे गांधी जी के आदर्शों, भावों तथा विचारों को आगे बढ़ाने में महारत हासिल किए थे, जिनका समाज पर गहरा प्रभाव होता था।

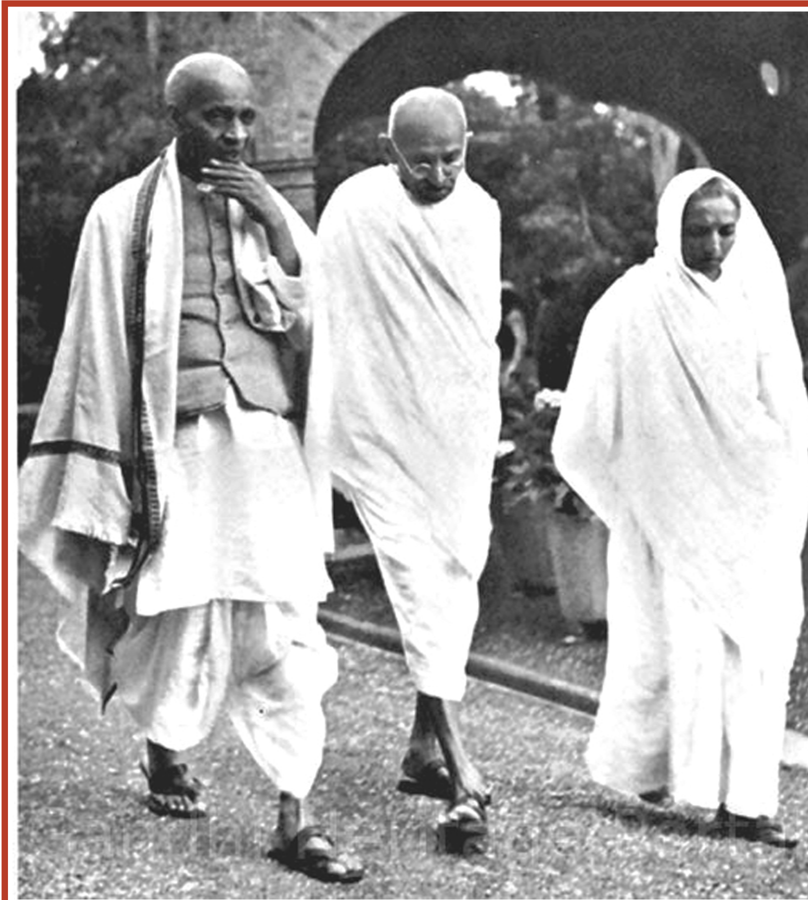
जब गांधी जी का भारतीय राजनीति के परिदृश्य में पदार्पण हुआ, तब पटेल राष्ट्रीय नायक की श्रेणी में नहीं आए थे। आज असंख्य लोग इस बात को देखकर चकित रह जाते हैं कि वे कौन सी ऐसी तकनीक थी जिसे विकसित कर गांधी जी ने भारत की धरा में ऐसे बीज रोपित किए जो भारत को गुलामी से छुटकारा दिलाने में कामयाब हुए। वर्ष 1916 में जब गांधी गुजरात क्लब में अभिभाषण देने गए तो उस वक्त पटेल ब्रिज खेल रहे थे और उन्होंने गांधी के विचारों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। एक अन्य मौके के दौरान वे गांधी के विचारों को जिज्ञासावश सुनने गए, लेकिन अप्रत्याशित उन्हें गांधी जी के अभिभाषण ने अत्यधिक प्रभावित किया। पटेल, गांधी जी से मुलाकात से पहले ही

राजनीति में आने के इच्छुक थे। लेकिन वे उस समय किसी भी राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित न थे। वे कुर्सीधारी राजनीतिज्ञों या बंगाल व महाराष्ट्र में सक्रिय क्रांतिकारियों से भी प्रभावित न थे।

वर्ष 1917 में पटेल ने चुनाव जीता व वे अहमदाबाद के सैनीटेशन कमीश्नर बन गए। वे अंग्रेज अधिकारियों के साथ नागरिक मुद्दों पर तो उलझ जाते थे लेकिन वे राजनीति में कोई भी रुचि नहीं रखते थे। महात्मा गांधी के विचारों को सुनने के बाद उन्होंने हंसी मजाक में मानलांकर से कहा गांधी, गेहूं से कंकर हटाकर वाले विचार से स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन जब गांधी जी ने चंपारन में अंग्रेजों द्वारा किसानों के प्रति दमनकारी नीतियों का विरोध किया तो पटेल इससे अत्यधिक प्रभावित हुए। गांधी जी ने भारतीय वेशभूषा, मातृभाषा का उपयोग व अन्य किसी भारतीय भाषा के प्रयोग के उपायों से वे प्रभावित हुए। पटेल का गांधी जी की रणनीति से उनकी ओर झुकाव बढ़ा। गांधी जी के राजनीतिक नेता ऐनी बेसेंट की गिरफ्तारी पर प्रस्ताव द्वारा आलोचना तथा गांधी जी का ऐनी बेसेंट से मिलने के लिए स्वयंसेवियों से शांतिपूर्ण मांग करने का प्रस्ताव ने भी उन्हें प्रभावित किया। वर्ष 1917 में पटेल ने ब्रिटिश हुकूमत में भारत को स्वराज या स्वतंत्रता की याचिका पर हस्ताक्षर करने के लिए लोगों को प्रेरित किया। बाद में गांधी जी के प्रोत्साहन से पटेल गुजरात सभा के सचिव बने (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की गुजरात इकाई)[2] तब पटेल ने गांधी में एक सशक्त नेतृत्व की छवि देखी और उनके पदचिन्हों पर चलना वाजिब समझा। गांधी जी के सच्चे अनुयायी बनने पर, पटेल ने अंग्रेजी कपड़ों की होली जलाई, मूंछें कटवाई। पश्चिमी लिबास छोड़ कर भारतीय लिबास को धारण किया।

गांधी तथा पटेल में आपसी संबंधों की प्रगाढ़ता गांधी के गुजरात सभा के अध्यक्ष तथा पटेल के सचिव निर्वाचित होने से आई। गांधी से संबंध होने के उपरांत, पटेल के व्यक्तित्व में बदलाव आया और वे एक नई शख्सीयत बने। चंपारन की घटना से पटेल पर गहरा प्रभाव पड़ा। पटेल की विधि क्षेत्र में उच्च पद पर पहचान की लालसा उस समय धराशाही हो गई जब वे गांधी जी के साथ निस्वार्थ सेवा के लिए चल पड़े।

वर्ष 1917 में गांधी के आदर्शों से आगे बढ़ते हुए पटेल ने गुजरात के खेड़ा जिला में किसानों पर भू-राजस्व में बढ़ोतरी के लिए एक सफलतापूर्ण सत्याग्रह चलाया। खेड़ा जिले में किसानों द्वारा भू-राजस्व की बढ़ोतरी बारे की गई याचना को अंग्रेजी सरकार ने ठुकरा दिया था। गांधी इस आंदोलन की अगुवाई, उनके चंपारन में व्यस्त होने के कारण नहीं कर पाए थे। पटेल ने स्वेच्छा से इस आंदोलन की अगुवाई करने की पेशकश की। हालांकि इस निर्णय को तत्काल लिया गया, लेकिन पटेल ने बाद में कहा उनकी इच्छा तथा निष्ठा सघन व्यक्तिगत चिंतन के उपरांत आई जब उनहें अपने करियर तथा भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं को छोड़ने का स्मरण हुआ। पटेल की इस आंदोलन में जीत हुई जब अंग्रेज सरकार ने भू-राजस्व एकत्रीकरण को भारी वर्षा के कारण फसलों को हुए नुकसान के दृष्टिगत लंबित करने का निर्णय लिया। इस आंदोलन को गांधी जी द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुरूप कार्यान्वित किया गया। वर्ष 1919 में पटेल ने रौलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह शपथ हस्ताक्षरित किए। वर्ष 1920 में नागपुर


महात्मा गांधी शिमला प्रवास के दौरान सरदार वल्लभ भाई पटेल के साथ।

कांग्रेस के अधिवेशन के उपरांत पटेल को गुजरात तथा काठियावाडा से तीन लाख स्वयंसेवी बनाने तथा 10 लाख रुपये एकत्रित करने का जिम्मा दिया गया। उन्होंने यह कार्य तीन माह से भी कम अवधि में पूर्ण कर दिया। हालांकि पटेल ने सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रियता से भाग लिया लेकिन गांधी जी के खिलाफत आंदोलन के प्रति कोई रुचि न दिखाई। उन्होंने निजी तौर पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि जब भारतीय अपने आप ही गुलाम हैं तो उन्हें तर्की के खलीफा या अरब या फिलीस्तीन में स्वतंत्रता के लिए आंदोलन नहीं करना चाहिए।

वर्ष 1928 में अंग्रेजी सरकार द्वारा निरंकुश रूप में किसानों के विरुद्ध टैक्स लगाने के लिए पटेल ने गुजरात राज्य के बरदोली में किसान आंदोलन चलाया। पटेल ने सभी जातियों, समुदायों के महिला तथा पुरुषों को एकजुट किया। वे गांव-गांव के दौरे पर गए और किसानों के साथ रहे। पटेल, के साथ किसानों का एक पारिवारिक रिश्ता बन गया था तथा गांधी इस बात को कहा करते थे कि पटेल मेरे से अधिक किसानों की समस्याओं व दुश्वारियों को समझते हैं। बरदोली सत्याग्रह सफल हुआ तथा यह आंदोलन किसानों के लिए आशा, शक्ति तथा विरोध का प्रतीक बना। गांधी ने कहा कि बरदोली का सरदार, भारत का सरदार बन कर उभरा है।

मार्च, 1931, गांधी-इरविन समझौता कांग्रेस तथा अंग्रेज सरकार के मध्य हस्ताक्षरित हुआ तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन को समाप्त कर दिया गया। वल्लभ भाई पटेल उस वक्त जेल की द्वितीय अवधि काट रहे थे लेकिन उन्हें समझौते के तहत रिहा कर दिया गया तथा उसी माह पटेल ने कराची में कांग्रेस के 46वें सत्र की अध्यक्षता की।

उस वक्त देश के युवाओं में गांधी जी तथा कांग्रेस के प्रति निराशा तथा आक्रोश था कि वे भगत सिंह, राजगुरु तथा सुखदेव के जीवन को बचाने में असफल हैं। कार्य समिति को इस मुद्दे को सर्वोच्च प्राथमिकता तत्काल देनी पड़ी और भगत सिंह तथा उसके साथियों के प्रस्ताव पारित किया। यह प्रस्ताव, विगत 12 माह में कांग्रेस नेताओं के देहावसान पर श्रद्धांजलि प्रकट करने के तुरंत उपरांत प्रस्तुत किया गया। इस प्रस्ताव में कहा गया कि वे इन तीन बहादुर नौजवानों की बहादुरी तथा शहादत को नमन करते है लेकिन कांग्रेस किसी भी तरह की राजनीतिक हिंसा से अपने आपको पार्थक्य तथा अनुमोदन करती है। कांग्रेस अपनी अहिंसा के सिद्धांत के कारण इस प्रस्ताव में ऐसी भावना रख सकी लेकिन युवा नेतृत्व में ऐसी भावना न थी। उन्होंने इस प्रस्ताव के विरुद्ध संशोधन लाया कि इस प्रस्ताव से उस वाक्यांश को हटा लिया जाए। गांधी तथा अन्य नेताओं ने इस मुद्दे पर कांग्रेस की स्थिति को स्पष्ट करने की कोशिश की लेकिन उन्होंने इस बात की अनदेखी की। इस हो-हल्ला तथा शोरगुल के मध्य अध्यक्ष ने खड़े होकर हस्तक्षेप करते हुए नाराज युवाओं से उनकी बात सुनने की प्रार्थना की। जैसे ही पटेल ने खड़े होकर अपने दाएं हाथ के इशारे से शांति बनाए रखने का इशारा किया, नारेबाजी बंद हो गई तथा सभा में शांति छा गई। उन्होंने धीरे से बोलना आरंभ किया। इन युवाओं की बहादुरी की प्रशंसा की। उन्होंने कहा, "मैं यहां एकत्रित युवाओं की भावनाओं से भलीभांति अवगत हूं। उन्होंने भगत सिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को निर्दय रूप में फांसी देने की वजह से अपनी भावनाओं को प्रस्तुत करने का पूर्ण अधिकार है, जिसने देशभर में एक गहरी नाराजगी हुई है। मैं, अपने आपको उनके उपायों से पहचान दिला नहीं सकता, न ही उनकी देशभक्ति शहादत तथा उनकी निर्भीकता तथा प्रभुता के प्रति मेरी असीम प्रशंसा है।"

यरबदा जेल में जब पटेल व गांधी इकट्ठा रहे तो गुरु तथा चेले को पहली बार अपने विचारों के आदान प्रदान का मौका मिला। महात्मा गांधी पटेल की अपराजेय साहस तथा देश के प्रति असीम प्रेम से अत्यधिक प्रभावित हुए तथा उन्होंने सरदार के साथ जेल में बिताए 16 महीनों की सदैव प्रशंसा की। सरदार गांधी की तरह परिष्कृत व खुले विचारों बारे न थे लेकिन वे एक तुरंत कार्य को अंजाम देने में विश्वास रखते थे तथा वे अपने अभिभाषणों में बिना किसी हिचक के बात रखने वाले व्यक्तित्व थे। किसी वक्त वे अपने गुरु की आलोचना करने में भी कतराते न थे। सरदार पटेल को अपने ऊपर ठोस विश्वास था तथा वे अपने विचारों को स्पष्टता से बिना किसी अन्य के दृष्टिकोण के वगैर रखते थे। वे गांधी के अभिभाषणों तथा पत्रों में शिष्टता के आलोचक थे।

वर्ष 1934 में कांग्रेस के अधिवेशन में गांधी द्वारा कांग्रेस से त्यागपत्र देने के निर्णय की घोषणा की। जब सभी गांधी जी से कांग्रेस को न छोड़ने की अपील कर रहे थे तो यह आश्चर्यजनक था कि पटेल एक ऐसे अकेले व्यक्ति थे जिन्होंने गांधी के निर्णय का समर्थन किया। उनका कांग्रेस के नेताओं ने गांधी के निर्णय का बिना सोचे-समझे समर्थन करने के लिए उनकी आलोचना की।[8]

वर्ष 1946 में कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव के लिए पटेल ने गांधी जी के आग्रह पर नेहरू के विरुद्ध चुनाव नहीं लड़ा। इस चुनाव की महत्ता इस बात से थी कि निर्वाचित अध्यक्ष, आजाद भारत की प्रथम सरकार का मुखिया होना था। गांधी जी ने 16 राज्यों के प्रतिनिधियों तथा कांग्रेस से एक सही व्यक्ति चुनने को कहा। 16 में से 13 राज्यों के प्रतिनिधियों ने सरदार पटेल के नाम का प्रस्ताव किया। लेकिन पटेल ने गांधी जी के आग्रह पर देश का प्रथम प्रधान मंत्री न बनने का निर्णय लिया। देश के प्रथम गृहमंत्री रहते हुए पटेल ने भारत की सभी रियासतों, जम्मू कश्मीर को छोड़कर का विलय गणतंत्र भारत में करवाया। नेहरू के पार्टी अध्यक्ष चुने जाने के उपरांत, पटेल ने भारत की संविधान सभा के आम चुनावों



महात्मा गांधी वर्ष 1945 में शिमला प्रवास के दौरान

की ओर अपना ध्यान केंद्रित किया।[9]

गांधी तथा पटेल के मध्य मतभेद उस समय उजागर हुए जब 16 मई, 1946 को कैबिनेट मिशन ने नए संविधान के निर्माण का प्रस्ताव रखा। इस योजना के दो बिंदु थे, पहला प्रमुख राजनीतिक पार्टियों के सहयोग से अंतरिम सरकार का गठन तथा दूसरा विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठित व्यक्तियों का एक संगठन बनाकर नए संविधान का निर्माण करना। इस मामले पर गांधी तथा पटेल में इस बात का मतभेद था कि गांधी कुछ सुधारों से अंतरिम सरकार गठन के हक में थे जबकि पटेल इस बात के लिए इच्छुक न थे। 25 जून 1946 को कांग्रेस कार्य समिति ने एक प्रस्ताव पारित कर, अंतरिम सरकार के गठन के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया लेकिन संविधान निर्माण समिति की योजना को स्वीकृति प्रदान की।

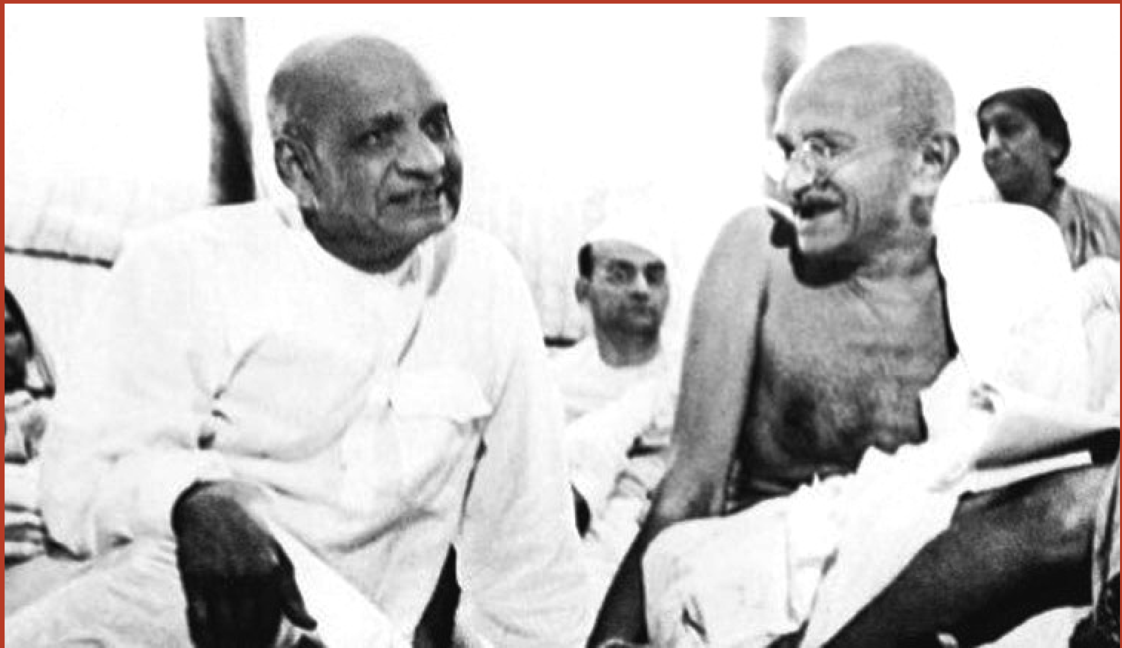
हालांकि अंतरिम सरकार का गठन हुआ और पटेल ने अंतरिम सरकार में गृह मंत्रालय का कार्यभार संभाला। सरदार पटेल ने इस बात को मानने से स्वतः इनकार कर दिया कि इस वजह से मुस्लिम लीग के दृष्टिकोण में कोई बदलाव आया होगा। उनका मानना था कि एक अलग मुस्लिम देश बनाने के उद्देश्य से ही लीग आगे बढ़ी होगी। जब बिहार प्रांत में सांप्रदायिक अशांति हुई तो गांधी जी ने पटेल को सलाह दी कि वे इस अशांति के कारणों की जांच के लिए आयोग का गठन करें। सरदार ने इस मसले पर कहा, "आपसे किसने कहा है कि बिहार में जांच आयोग गठित न करने के पीछे मेरा हाथ है।" मेरी राय है कि अगर कमीशन का गठन किया जाता है तो कोई फायदा न होगा बल्कि इसका नुकसान ही होगा। ...कलकत्ता जांच कमीशन (जिसका गठन कलकत्ता में हुई हिंसक घटनाओं) के लिए तत्कालीन वायसराय द्वारा नियुक्त किया गया था। यह जांच प्रगति पर है। इसकी रिपोर्ट 12 माह उपरांत आएगी। इतनी देर बाद इस रिपोर्ट का क्या औचित्य होगा? यह कार्य मात्र धन की बरबादी है। यह मेरी समझ से परे है कि मैं इस परिदृश्य में कैसे आया।"[10]

गांधी जी सांप्रदायिक क्रोध को शांत करना चाहते थे और मुस्लिम समुदाय को यह विश्वास दिलवाना चाहते थे कि उनके हितों को राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा देखा जाएगा। सरदार जो एक कठोर यथार्थवादी थे, वे कलकत्ता कमीशन की कार्यप्रणाली जिस प्रकार चल रही थी, उसे निहार रहे थे। उनका मत था कि ऐसे कमीशन स्वगुणार्थक (Connotatious) तो होते हैं लेकिन उनकी यथार्थ उपयोगिता नहीं होती।

महात्मा गांधी ने सरदार पर उग्र भाषा के प्रयोग का आरोप लगाया, "मैंने आपके विरुद्ध अनेक शिकायतें सुनी हैं... आपके अभिभाषण उत्तेजना भरे तथा जनसमूह को रिझाने वाले होते हैं। आपने हिंसा तथा अहिंसा के मध्य सभी भेदों को पीछे छोड़ दिया है... वे कहते हैं कि आप पद पर बना रहना चाहते हैं... यह बहुत ही नाजुक वक्त है। अगर हम सीधी राह से अंशभर भी विचलित होते हैं तो हम पथभ्रष्ट हो जाएंगे।"[11]

महात्मा गांधी के सहयोगी व लंबे वक्त तक उनके निजी सचिव प्यारे लाल ने महात्मा गांधी तथा पटेल का वैचारिक विश्लेषण कर टिप्पणी की :

"गांधी जी की चिंता गहरी थी। सच है कि सरदार अपने लिए किसी भी पद की इच्छा नहीं रखते थे। लेकिन ये स्पष्ट है कि वे अपनी शक्ति को कांग्रेस की शक्ति मानते थे। अगर सरदार ने



गांधी और पटेल मंत्रणा करते हुए

इस भावना को माना होता कि अहिंसा इस धरा पर सबसे शक्तिशाली, शक्ति है तो उन्होंने इसे बरदौली के सरदार के रूप में स्वीकार किया होता न कि अंतरिम मंत्रिमंडल में एक गृह मंत्री के रूप में।"[12] देश के विभाजन के उपरांत देश में उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए दोनों में मतभेद थे। जनवरी, 1948 में पटेल ने बंबई में आयोजित एक बैठक में कहा, "जबकि दिल्ली में शांति है, गांधी जी कहते हैं कि यहां शांति को पुलिस ने कायम किया और दिलों की एकता का कोई स्थान नहीं है। गांधी जी श्रेष्ठता से बोलते, सोचते तथा कार्य करते हैं जो कि हमारे लिए संभव नहीं है... हम उनकी तरह शासन नहीं कर सकते जैसा कि वे हमें करने को कहते हैं। इसके बदले हमें पुलिस तथा सशस्त्र सेना को बनाए रखना है। दोषियों को सजा देनी है तथा गलत करने वालों पर प्रतिबंध लगाना है।"

सरदार पटेल मुस्लिम समुदाय के खिलाफ प्रतिकार के विरोधी थे, वे इसे कायरता का कृत्य मानते थे। हालांकि वे प्रतिकार के विरुद्ध थे, लेकिन वे राष्ट्रीय सेवक संघ (आर.एस.एस.) पर प्रतिबंध लगाने के भी विरोधी थे। वे उन्हें एक भ्रमित देशभक्त मानते थे, जिन्हें बलपूर्वक दबाया नहीं जा सकता, जैसाकि कुछ कांग्रेस के लोगों का सुझाव था। लेकिन उन्होंने आर.एस.एस. तथा हिंदू महासभा को कहा था कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है न कि एक हिंदू राष्ट्र। पटेल ने कहा था कि वे हिंदुओं के परिरक्षक नहीं है।

जनवरी, 1948 में भारत सरकार ने बंटवारा अनुबंधों के अनुसार पाकिस्तान द्वारा अल्पसंख्यकों के विरुद्ध उत्पीड़न तथा भारत के विरुद्ध बैर के मद्देनज़र पाकिस्तान को राजकोष से दी जाने वाली 55 करोड़ रुपये की राशि पर रोक लगाने का फैसला लिया। नेहरू तथा पटेल ने इस मामले पर गांधी जी को सरकार के फैसले पर गांधी जी को सरकार के फैसले से राजी करने की कोशिश की लेकिन गांधी जी इस बात पर राजी न हुए और उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से पटेल से कहा, "आप सरदार नहीं है जैसा मैं, एक बार जानता था।"[13] गांधी जी के उपवास के कारण पटेल ने पाकिस्तान को भुगतान करने के मसले पर इसके पक्ष में मंत्रिमंडल में अपना मत दिया। पंडित नेहरू तथा सरदार पटेल में मतभेद से गांधी आहत थे। उन्हें इस बात का भान था कि नेहरू की उच्च आदर्शवादिता तथा सरदार की कड़ी यथार्थवादिता, उनके राष्ट्र के लक्ष्य को हासिल करने में सहायक सिद्ध होगी।

सरदार पटेल को गांधी जी की हत्या से गहरा आघात पहुंचा। उनकी हत्या से 10 दिन पूर्व गांधी जी के आवास के समीप बम फेंकने की साजिश की गई लेकिन इससे गांधी जी को कोई क्षति न पहुंची। इस घटना के समय पटेल जी गृह मंत्री थे, ने दिल्ली के बिरला हाउस जहां गांधी जी निवास करते थे, की सुरक्षा को पुख्ता करने के लिए महात्मा गांधी की अनुमति चाही। महात्मा गांधी ने उनके इस सुझाव को ठुकरा दिया।

जब 30 जनवरी, 1948 को यह दुखांत घटना हुई तो अधिकांश लोगों ने सरकार के सुरक्षा उपायों में कोताही पर सरदार को दोषी ठहराया कि वे महात्मा की सुरक्षा करवाने में नाकाम रहे। महात्मा गांधी इस बात को स्वीकार करते थे कि सरदार के बिना

(शेष पृष्ठ 134 पर)

पाठक से लेखक बनने का सफर

असत्य से सत्य की ओर
अंधेरे से उजाले की ओर
मृत्यु से अमरत्व की ओर

उपनिषद् की इन उक्तियों में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के संपूर्ण जीवन के साक्षात दर्शन होते हैं और वे भारत की ही नहीं, बल्कि दुनिया की महानतम शख्सीयत बने। उन्होंने जीवनपर्यंत सत्य, अहिंसा, सादगी, प्रेम, करुणा को अपना आदर्श बनाया तथा सभी धर्मों के ग्रंथों, महान लेखकों, दार्शनिकों के विचारों का अध्ययन किया। आम जन से लेकर देश-दुनिया की महान शख्सीयतों से अपने विचार साझा किए। बचपन के मोहनदास कर्मचंद गांधी से सत्य व हिंसा के पुजारी तथा महात्मा बन दुनिया को एक नई विचारधारा दी। मानव सभ्यता की सुरक्षा के लिए गांधी जी के आदर्श आज भी प्रासंगिक हैं।

गांधी के महात्मा बनने की यात्रा के पीछे उनके आदर्श छिपे हैं। उन्होंने अपनी कलम से दुनिया को एक ऐसा ज्ञान दिया जो उन्हें महान लेखकों, दार्शनिकों की श्रेणी में ला खड़ा करता है।

उनके लेखक बनने के पीछे उनका श्रम, लगन तथा कुछ नया करने की प्रवृत्ति नज़र आती है। गांधी जी के बाल्यकाल पर नज़र दौड़ाएं तो घर में धार्मिक पुस्तकों का भंडार था लेकिन उन्हें पुस्तकों के प्रति अधिक रुचि न थी। मां की धार्मिक प्रवृत्ति, भोजन ग्रहण करने से पूर्व प्रभु की भक्ति, नियमित रूप से मंदिर जाना तथा चातुर्मास के दौरान एक वक्त भोजन करना, नियमित तौर पर उपवास रखना जैसे संस्कारों का असर गांधी पर पड़ा। पिता के कुटुंबप्रेमी, सत्यप्रिय, शूर, उदार तथा धन के प्रति आसक्ति, ईमानदारी के गुणों को आत्मसात कर बाल्यकाल में इन गुणों को अपनाया।

स्कूली शिक्षा पूर्ण कर 4 सितंबर, 1888 को लंदन वकालत करने गए। लंदन पहुंच कर वे पुस्तकों के पठन-पाठन से जुड़े। आरंभ में फ्रेंच, लेटिन तथा भौतिक विषय की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने बैंथम की Theory of Utility को पढ़ा। गांधी अपनी मां को दिए शाकाहारी बने रहने के वचन को निभाया। अंत में उन्हें शाकाहारी भोजनालय मिला। वहां उन्होंने Sats's Plea for vegetariannism पढ़ी। तदोपरांत हरवर्ड विलियम की Ethics of Diet, डॉ. अन्ना किंगफोड की The Perfect Way in Diet तथा डॉ. टी.आर. एलिनसन के लेखों को पढ़ा।

गांधी ने इस दौरान इंग्लैंड में रहते हुए शाकाहारी सोसायटी की सदस्यता ली व इसके सचिव बन गए। इस सोसायटी में रहते हुए वे अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों के संपर्क में आए। सर एडवर्ड आरनोल्ड की महात्मा बुद्ध की पुस्तक ने सर्वाधिक प्रभावित किया। वे मेडम बलावास्की तथा ऐनीबेसेंट के संपर्क में भी आए। उन्होंने मैडम बलावास्की की पुस्तक The Key to The Osoply को पढ़ा। इस पुस्तक को पढ़ने के उपरांत अपनी संस्कृति तथा धर्म की पुस्तकों को पढ़ने का जज्बा जागा। इसे पढ़ने के उपरांत नई सोच जागृत हुई। गांधी ने इंग्लैंड में पहली बार गीता को पढ़ा। गीता पढ़ने की प्रेरणा उन्हें दो ब्रह्विधावादी भाइयों ने दी। तदोपरांत गांधी ने गीता पर अंग्रेजी में लिखी पुस्तक The Song Celestial पढ़ी। पुस्तकों के अध्ययन, अन्य धर्मों की पुस्तकों को पढ़ने तथा उन्हें आत्मसात करने का सुअवसर मिला। मोहम्मद की महानता, बहादुरी तथा मिताहारी जीवन से भी वे प्रभावित हुए।

अपने आरंभिक दिनों में गहन अध्ययन के उपरांत गांधी जी की कलम चल पड़ी। आरंभ में उन्होंने London Diary के रूप में लिखना आरंभ किया और लगभग डायरी के 120 पन्ने लिखे। इस डायरी में उन्होंने 28 अक्तूबर, 1888 से 23 नवंबर, 1888 के मध्य लिखे विवरणों व घटनाक्रमों का उल्लेख मिलता है। यह डायरी महात्मा गांधी के सहयोगी प्यारे लाल को वर्ष 1920 में साबरमती में सत्य ग्रह आश्रम में मिली। इस डायरी में गांधी जी ने इंग्लैंड, अफ्रीका तथा भारत लौटने के बाद भी लिखा। गांधी जब 19 वर्ष के थे तो उन्होंने डायरी लिखना आरंभ कर दिया था।

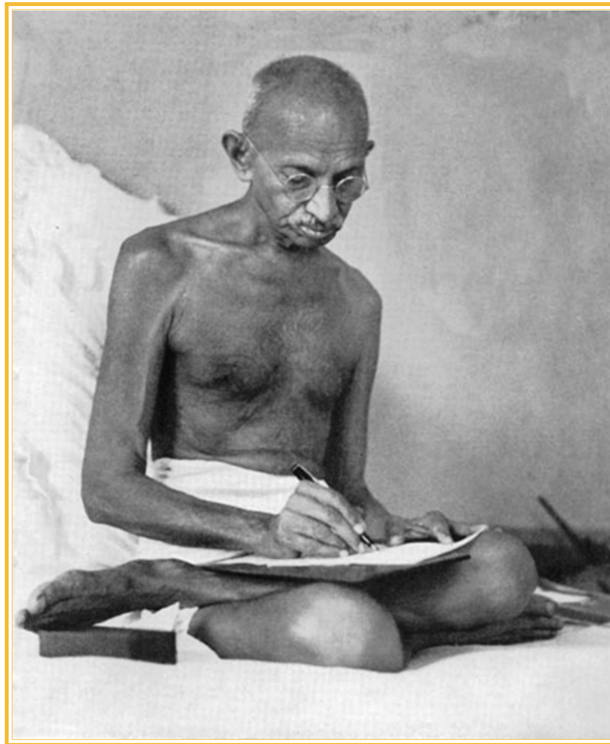
गांधी ने लंदन में रहते हुए डॉ. जोयश ओल्डफील्ड द्वारा प्रकाशित पत्रिका Vegetarian के लिए लेख लिखा। फरवरी 21, 1891 को उनका पहला लेख प्रकाशित हुआ। उन्होंने नौ लेख लिखे तथा इन लेखों के प्रकाशन के साथ-साथ उनकी लेखनी में भी सुधार आता गया। उन्होंने vegetarian Messenger era The Foods of India लेख लिखा। अफ्रीका प्रवास के दौरान Natal Mercury में शिकारी भोजन की उपयोगिता के बारे में लिखा।

बचपन में मां के दिए वचन को निभाते हुए अपने जीवन को

आगे बढ़ाया। शिक्षा के दौरान पुस्तकों के अध्ययन को जारी रखा। नए विचारों के लिए अपने मन, मस्तिष्क को खुला रखा। कागज़ तथा कलम से दोस्ती कर जीवन पथ पर आगे बढ़े।

महात्मा गांधी ने अपने जीवन काल में तीन पुस्तकें लिखीं। ये उनके आलेखों पर आधारित नहीं हैं।

प्रथम पुस्तक, हिंद स्वराज या इंडियन होम रूल (1909)। यह गांधी जी का उनके राजनैतिक जीवन के वर्षों का प्रथम प्रमुख कार्य था। गांधी जी ने इस पुस्तक में भारतीय स्वतंत्रता के नेतृत्व तथा पश्चिमी सभ्यता के विरोध बारे उल्लेख किया। इस पुस्तक के प्रकाशन उपरांत अंग्रेजों ने इस पर भारत में प्रतिबंध लगा दिया था। महात्मा गांधी ने वर्ष 1924 में दूसरी पुस्तक 'दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह' लिखी। जिसका अंग्रेजी अनुवाद वर्ष 1928 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान रंगभेद तथा प्रवासी भारतीयों के अधिकारों की रक्षा के लिए अहिंसा के संघर्ष को बयां किया है। यहीं रहते हुए उन्होंने सत्याग्रह के हथियार का आविष्कार किया। जिसे उन्होंने आत्मा की शक्ति, प्रेम की शक्ति तथा सत्य पर अडिग रहने की संज्ञा दी। तीन सौ पृष्ठों की इस पुस्तक में 50 लघु अध्याय हैं। वर्ष 1927 में गांधी जी ने अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा' लिखी। इसमें 181 अध्याय हैं तथा पांच भागों में विभक्त हैं। इस पुस्तक में गांधी जी ने वर्ष 1920 तक अपने जीवन के व्यक्तिगत अनुभवों, दर्शन को पाठकों के साथ साझा किया है। इसमें उनके जीवन से जुड़े अनेक ऐतिहासिक पलों का भी उल्लेख है। सत्य की खोज तथा सत्य पर अनुसरण इस का मूलमंत्र है।



इस पुस्तक की प्रस्तावना में गांधी जी ने लिखा :

"सत्य के शोधक को रजकण से भी नीचे रहना पड़ता है। सारा संसार रजकणों को कुचलता है, पर सत्य का पुजारी तो जब तक इतना अल्प नहीं बनता कि रजकण भी उसे कुचल सकें, तब तक उसके लिए स्वतंत्र सत्य की झांकी भी दुर्लभ है।"

गांधी जी का संपूर्ण लेखन स्पष्ट, सरल, लघु तथा बिना किसी लाग लपेट के रहा है। अंग्रेज वायसराय मानते थे कि गांधी जी का पत्राचार सदैव स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष होता है तथा वे अंग्रेजी भाषा में अपनी बात को सटीकता एवं स्पष्टता से रखते हैं।

गांधी जी के जहन में जब भी कोई नया विचार आता तो वे झट से उसे लिख देते और इस बात की जरा भी परवाह नहीं करते थे कि उसका कोई उपहास उड़ाएगा। लेखन के प्रति उनके जुनून का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि वे समुद्री यात्रा के दौरान डोलते जहाज तथा रेलगाड़ी की यात्रा के दौरान डोलते डिब्बों में भी अपने लेखन कार्य को बंद नहीं करते थे। गांधी जी ने वर्ष 1896 में भारत की यात्रा के दौरान Green Pamplet को लिखा वहीं हिंद स्वराज को 1909 में इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के दौरान कलमबद्ध किया। रेलगाड़ी में यात्रा के दौरान 'राष्ट्र निर्माण कार्य' पुस्तिका लिखी। उन्होंने जेल यात्रा के दौरान आश्रम भजनावली का अंग्रेजी में अनुवाद किया। उन्होंने बच्चों के लिए 'बोल पाया' तथा नीति धर्म पुस्तिकाएं लिखीं। वे पत्र लेखन के आदी थे। वे एक दिन में लगभग 50 पत्र लिखने तथा पत्रों का उत्तर देते थे। उनके इन पत्रों का संग्रह उनके लेखन का एक बहुत बड़ा हिस्सा है, जिसमें उनके जीवन, आदर्शों तथा दर्शन की झलक मिलती है।

गांधी जी की कलम हर दिन चलती थी। गांधी जी की एक खूबी थी कि जो कम ही पाठकों व लेखकों को मिलती है कि वे दोनों हाथों से बेखूबी लिख सकते थे। महात्मा गांधी लेखक के साथ-साथ एक महान संपादक के रूप में भी जाने जाते हैं। उन्होंने पत्रकारिता की शक्ति को जाना तथा पहचाना। अपनी बात को आम जन तक पहुंचाने के लिए पत्रकारिता को एक माध्यम बनाया। किसी पर निर्भर न रहकर स्वयं पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया।

अफ्रीका प्रवास के दौरान उन्होंने संपादन के क्षेत्र का ज्ञान अर्जित किया। वहां रहते हुए उन्होंने वर्ष 1904 में 'इंडियन ओपिनियन' पत्र का संपादन कार्य अपने हाथ में लिया। ये पत्र अंग्रेजी, तमिल तथा गुजराती में प्रकाशित होता था। अनेक बार प्रेस पर छपाई भी स्वयं की। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की नीति, प्रवासी भारतीयों की व्यथा के बारे में लिखा। उस वक्त

विदेशों में भी गांधी जी के पाठक थे। इनमें भारत में गोखले, इंग्लैंड में दादाभाई नोरोजी तथा रूस में टॉलस्टाय थे। उन्होंने दस वर्षों तक इस पत्र के लिए निष्ठा व समर्पण से कार्य किया। उन्हें इंडियन ओपिनियन के एवज़ में प्रति सप्ताह 200 रसाले प्राप्त होते थे। वे इनमें से पाठकों के लिए उपयोगी सामग्री इंडियन ओपिनयन में प्रकाशित करते थे।

महात्मा गांधी ने 1919 में साप्ताहिक जर्नल यंग इंडिया का प्रकाशन आरंभ करवाया। तदोपरांत गुजरती साप्ताहिक नवजीवन व 1933 में हरिजन का प्रकाशन आरंभ किया। गांधी जी के अधिकांश विचार, दर्शन इन पत्रों में प्रकाशित हुए।

यंग इंडिया व हरिजन उनके विचारों को जन-जन तक पहुंचाने में एक शक्तिशाली मंच बना। उन्होंने इसके माध्यम से सभी विषयों पर अपने विचार आम जन से लेकर प्रबुद्ध समाज तक साझा किए। गांधी जी द्वारा प्रकाशित पत्रों की खास बात थी कि इनमें कोई भी विज्ञापन प्रकाशित नहीं होता था। उनकी पत्रकारिता के प्रति निष्ठा व समर्पण स्वयं की उद्देश्य की पूर्ति के लिए कतई न थी

गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है :

"इन पत्रों के द्वारा मैंने जनता को यथाशक्ति सत्याग्रह की शिक्षा देना आरंभ किया। पहले दोनों पत्रों की थोड़ी-थोड़ी ही प्रतियां छपती थीं। लेकिन बढ़ते-बढ़ते वे चालीस हजार के करीब पहुंच गईं। नवजीवन के ग्राहक एकदम बढ़े जबकि 'यंग इंडिया' के धीरे-धीरे बढ़े। इन पत्रों में विज्ञापन न लेने का मेरा आग्रह शुरू से ही न था। मैं मानता हूं कि इससे कोई हानि नहीं हुई। और इस प्रथा के कारण पत्रों के विचार स्वतांत्र्य की रक्षा करने में बहुत मदद मिली।

1933 में आरंभ हुए हरिजन पत्र, हरिजन बंधु, हरिजन जन सेवक क्रमशः इंग्लिश, गुजराती तथा हिंदी भाषा में आरंभ होने से ये आमजन विशेषकर गरीबों, दलितों की आवाज उठाने में मददगार बने। इसमें भी विज्ञापन प्रकाशित किए जाते थे।

गांधी जी के विचारों में पत्रकारिता का एकमात्र उद्देश्य सेवा, देश की सेवा होना चाहिए। वे समाचार पत्रों को लोगों को शिक्षित करना मात्र मानते थे।

महात्मा गांधी एक लेखक, संपादक, पत्रकार, प्रकाशक की भूमिका में रहे। वर्ष 1915 में भारत आगमन पर गांधी जी की कलम से विचारों का निरंतर प्रवाह बना रहा। गांधी जी के लेखन आज की पीढ़ी सहित आने वाली पीढ़ियों के लिए एक आदर्श से कम नहीं हैं।

उनका संपूर्ण लेखन कर्म का प्रतिफल है। संपूर्ण गांधी वाङ्मय में गांधी जी की जीवन यात्रा को लगभग 97 पुस्तकों में तथा अंग्रेजी भाषा (100 खंडों) में एकत्रित किया गया है। दुनियाभर की लगभग सभी भाषाओं में गांधी जी की पुस्तकों तथा कार्यों पर सामग्री उपलब्ध है। आज भी वे अपने विचारों, दर्शन से समाज को प्रकाशमान कर रहे हैं।

गांधी व रेडियो

गांधी की छवि एक लेखक, पत्रकार के रूप में है। वे शब्दों की शक्ति से वाकिफ थे। वे पत्रों को मुख्य संचार का माध्यम मानते थे। भारत में ऑल इंडिया रेडिया की स्थापना अंग्रेजों के समय में 8 जून, 1936 को हुई थी। वे इस माध्यम की उपयोगिता तथा पहुंच से भी वाकिफ थे। अंग्रेजों के अधीन होने के कारण अंग्रेजी प्रचार, वायसराय के वक्तव्य रेडियो के माध्यम से प्रसारित होते थे। इनका उल्लेख गांधी जी ने वायसराय के साथ किए गए पत्राचार में अनेक बार किया था।

महात्मा गांधी पहली तथा अंतिम बार नई दिल्ली के ब्राडकास्टिंग हाउस 12 नवंबर, 1947 को दीपावली वाले दिन गए थे। उनके साथ राजकुमारी अमृत कौर भी गई थीं। गांधी जी के रेडियो स्टेशन आने की संपूर्ण जानकारी 22 फरवरी, 1948 को 'इंडियन लिस्नर' पत्रिका में प्रकाशित हुई। इसमें लिखा गया :

"रेडियो स्टेशन में विशेष स्टूडियो में गांधी जी के बैठने के लिए 'तख्तपोश' की व्यवस्था की गई थी। ऐसे ही तख्तपोश पर रोज़ बिरला भवन में होने वाली प्रार्थना सभा में उपयोग करते थे। स्टूडियो में प्रार्थना सभा जैसा वातावरण बनाया गया था।

13 नवंबर, 1947 को हिंदुस्तान टाइम्स में प्रकाशित हुआ कि महात्मा गांधी ने 20 मिनट तक जनता को रेडियो से अपना संदेश दिया। उनके संदेश के उपरांत वंदेमातरम की धुन प्रसारित की गई। महात्मा गांधी ने इस संदेश में हरियाणा में कैंपों में ठहरे शरणार्थियों को संबोधित किया था।

भारत में प्रत्येक वर्ष 23 जुलाई को प्रसारण दिवस मनाया जाता है। इस दिन वर्ष 1927 में इंडियन प्रसारण कंपनी ने बंबई स्टेशन से रेडियो प्रसारण आरंभ किया था।

महात्मा गांधी के ऑल इंडिया रेडियो में आगमन की स्मृति को यादगार बनाए रखने के लिए 12 नवंबर को जन सेवा प्रसारण दिवस के रूप में मनाया जाता है।

महात्मा गांधी दुनिया में चलचित्र के आविष्कार से भी वाकिफ थे। उन्होंने 30 अप्रैल, 1931 को प्रथम फिल्म साक्षात्कार Fox Motietone news को दिया था।

(लेखक हिमप्रस्थ के वरिष्ठ संपादक हैं)

संदर्भ सूची

BHABANIBHATTACHARYA : Gandhi The writer, Natinal Book Trust 1969

wja- क. गांधी : सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबार-14, 1957

यशपाल जैन, गांधी शिक्षा : सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1981

राष्ट्रभाषा हिंदी व बापू

भाइयो और बहनो,

मैं दिलगीर हूँ कि जो व्याख्यान सम्मेलन में देने का मेरा इरादा था वह आपके सामने नहीं रख सका हूँ। मैं बड़ी झंझटों में पड़ता हूँ। मेरी इस समय बड़ी दुर्दशा है। इससे मैं काम नहीं कर सका। पर मैंने वादा किया था कि मैं आऊँगा और आ गया, किन्तु जो चीज सामने रखने का इरादा था, नहीं रख सका।

महात्मा गांधी ने यह भाषण 29 मार्च सन् 1918 को इंदौर में हिंदी में दिया था। इसी दिन बापू ने समिति के शिवाजी भवन का शिलान्यास भी किया था। गांधी जी ने इस अवसर पर हिंदी भाषा की उपयोगिता, इसे राष्ट्रभाषा बनाए जाने के लिए जो उद्‌गार व्यक्त किए थे, वे आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक हैं।

यह भाषा का विषय बड़ा भारी और बड़ा ही महत्वपूर्ण है। यदि सच्चा नेता सब काम छोड़कर केवल इसी विषय पर लगे रहें तो बस है। यदि हम लोग भाषा के प्रश्न को गौण समझे या इधर से मन हटा लेंगे, तो इस समय लोगों में जो प्रवृत्ति चल रही है, लोगों के हृदयों में जो भाव उत्पन्न हो रहा है, वह निष्फल हो जाएगा।

भाषा माता के समान है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिये, वह हम लोगों में नहीं है। वास्तव में मुझे तो ऐसे सम्मेलनों से प्रेम नहीं है। तीन दिन का जलसा होगा। तीन दिन कह सुनकर हमें (आगे) जो करना चाहिये। उसे हम भूल जाएंगे। सभापति के भाषण में तेज नहीं है, जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह वस्तु उसमें नहीं है। इससे बड़ी कंगाली की मैं कल्पना नहीं कर सकता। हम पर और हमारी प्रजा के ऊपर एक बड़ा आक्षेप यह है कि हमारी भाषा में तेज नहीं है। जिसमें विज्ञान नहीं है, उसमें तेज नहीं है। जब हममें तेज आएगा, तभी हमारी प्रजा में और हमारी भाषा में तेज आएगा। विदेशी भाषा द्वारा आज जो स्वातंत्र्य चाहते हैं, वह नहीं मिल सकता, क्योंकि उसमें हम योग्य नहीं है। प्रसन्नता की बात है कि इंदौर में सब कार्य हिन्दी में होता है। पर क्षमा कीजियेगा, प्रधानमंत्री साहब का जो पत्र आया है, वह अंग्रेजी में है। इंदौर की प्रजा यह बात नहीं जानती होगी, पर मैं उसे बतलाता हूँ कि यहाँ अदालतों में प्रजा की अर्जियाँ हिन्दी में ली जाती है, पर न्यायाधीशों के फैसले और वकील बैरिस्टरों की बहस अंग्रेजी में होती है। मैं पूछता हूँ कि इंदौर में ऐसा क्यों होता है? हाँ, मैं यह मानता हूँ कि अंग्रेजी राज्य में यह आंदोलन सफल नहीं हो सकता, यह ठीक है, पर देशी राज्यों में तो सफल होना ही चाहिए। शिक्षित वर्ग, जैसा कि माननीय पंडितजी ने अपने पत्र में दिखाया है, अंग्रेजी के मोह में फंस गया और अपनी राष्ट्रीय मातृभाषा से उसे असंतोष हो गया। पहली माता (अंग्रेजी) से हमें जो दूध मिल रहा है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है और दूसरी माता (मातृभाषा) से शुद्ध दूध मिल सकता है। बिना इस शुद्ध दूध के मिले हमारी उन्नति होना असंभव है। पर जो अंधा है, वह देख नहीं सकता, गुलाम यह नहीं जानता कि अपनी बेड़ियाँ किस तरह तोड़े। पचास वर्षों से हम अंग्रेजी के मोह में फँसे हैं। हमारी प्रजा अज्ञान में डूबी रही है। सम्मेलन को इस ओर विशेष रूप से खयाल रखना चाहिए। हमें ऐसे उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, कांग्रेस में प्रांतीय भाषाओं में और अन्य सभा समाज और सम्मेलनों में अंग्रेजी का एक भेद शब्द सुनाई न पड़े। हम अंग्रेजी का व्यवहार बिलकुल त्याग दें। अंग्रेजी सर्वव्यापक भाषा है, पर यदि अंग्रेज सर्वव्यापक न रहेंगे, तो अंग्रेजी। सर्वव्यापक न रहेगी। हमें अब अपनी मातृभाषा की ओर उपेक्षा कर उसकी हत्या नहीं करनी चाहिए। जैसे अंग्रेज अपनी मादरी जवाब अंग्रेजी में ही बोलते और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। अब मैं अपना लिखा हुआ भाषण पढ़ता हूँ।

श्रीमान सभापति महाशय,
प्यारे प्रतिनिधिगण, बहनो और भाइयो,

आपने मुझे इस सम्मेलन का सभापतित्व देकर कृतार्थ किया है। हिन्दी साहित्य की दृष्टि से मेरी योग्यता इस स्थान के लिए कुछ भी नहीं है, यह खूब जानता हूँ। मेरा हिन्दी भाषा का असीम प्रेम ही मुझे यह स्थान दिलाने का कारण हो सकता है। मैं उम्मीद करता हूँ कि प्रेम की परीक्षा में हमेशा उत्तीर्ण होऊँगा।

साहित्य का प्रदेश भाषा की भूमि जानने पर ही निश्चित हो सकता है। यदि हिन्दी भाषा भूमि सिर्फ उत्तर प्रांत की होगी, तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक वैसी भाषा।

भाषा सागर में स्नान करने के लिए पूर्व पश्चिम, दक्षिण-उत्तर से पुनीत महात्मा आएँगे, तो सागर का महत्व स्नान करने वालों के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए साहित्य की दृष्टि से भी हिन्दी भाषा का स्थान विचारणीय है।

हिन्दी भाषा की व्याख्या का थोड़ा सा खयाल करना आवश्यक है। मैं कई बार व्याख्या कर चुका हूँ कि हिन्दी भाषा वह भाषा है, जिसके उत्तर में हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। देहाती बोली में जो माधुर्य मै देखता हूँ, वह न लखनऊ के मुसलमान भाइयों की बोली में और न प्रयाग के पंडितों की बोली में पाया जाता है। भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहज में समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। हिमालय में से निकली हुई गंगाजी अनन्त काल तक बहती रहेगी। ऐसा ही देहाती हिन्दी का गौरव रहेगा और जैसे छोटी-सी पहाड़ी से निकला हुआ झरना सूख जाता है, वैसे ही संस्कृति मयी तथा फारसीमयी हिन्दी की दशा होगी। हिन्दू-मुसलमान के बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिन्दी व उर्दू भाषा के भेद में है। हिन्दुओं की बोली से फारसी शब्दों का सर्वथा त्याग और मुसलमानों की बोली से संस्कृत का सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनों का स्वभाविक संगम गंगा-जमुना के संगम सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिन्दी-उर्दू के झगड़े में पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे। लिपि को कुछ तकलीफ जरूर है। मुसलमान भाई अरबी लिपि में ही लिखेंगे, हिन्दू बहुत करके नागरी लिपि में लिखेंगे। राष्ट्र में दोनों को स्थान मिलना चाहिए। अमलदारों को दोनों लिपियों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इसमें कुछ कठिनाई नहीं है। अंत में जिन लिपि में ज्यादा सरलता होगी, उसकी विजय होगी। भारत वर्ष में परस्पर व्यवहार के लिए एक भाषा होनी चाहिए, इसमें कुछ संदेह नहीं है। यदि हम हिन्दी-उर्दू का झगड़ा भूल जाएं, तो हम जानते हैं कि मुसलमान भाइयों की तो उर्दू ही राष्ट्रीय भाषा है। इस बात से यह सहज में ही सिद्ध हो जाता है कि हिन्दी या उर्दू मुगलों के जमाने से राष्ट्रीय भाषा बनती जाती थी।

आज भी हिन्दी से स्पर्धा करने वाली दूसरी कोई भाषा नहीं है। हिन्दी उर्दू का झगड़ा छोड़ने से राष्ट्रीय भाषा का सवाल सरल हो जाता है। हिन्दुओं को फारसी शब्द थोड़े बहुत जानने पड़ेंगे। इस्लामी भाइयों को संस्कृत शब्दों का ज्ञान संपादन करना पड़ेगा। ऐसे लेन-देन में इस्लामी भाषा का बल बढ़ जाएगा और हिंदू-मुसलमान की एकता का बड़ा एक साधन हमारे हाथ में आ जाएगा। अंग्रेजी भाषा का मोह दूर करने के लिए इतना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा कि हमें लाजिम है कि हम हिंदी-उर्दू का झगड़ा न उठावें। लिपि की तकरार भी हमको नहीं करनी चाहिए।

अंग्रेजी भाषा राष्ट्रीय भाषा क्यों नहीं हो सकती, अंग्रेजी बोझ प्रजा के ऊपर रखने से क्या हानि होती है, हमारी शिक्षा आज तक अंग्रेजी होने से प्रजा कैसे कुचल दी गई है, हमारी जातीय भाषा क्यों कंगाल हो रही है, इन सब बातों पर मैं अपनी राय भाग भडौच के व्याख्यानों से दे चुका हूँ, इसीलिए यहाँ मैं फिर नहीं देना चाहता। इन दोनों व्याख्यानों से भाषा संबंधी भाग में इस व्याख्यान के परिशिष्ट में रख दूंगा। हकीकत में इस बात में संदेह नहीं हो सकता कि हमारे सर रवींद्रनाथ टैगोर, विदुषी एनी बेसेंट, लोकमान्य तिलक और अन्यान्य प्रतिष्ठि और आप्त व्यक्तियों का मंतव्य इस विषय में ऐसा ही है। कार्य सिद्धि में कठिनाइयाँ तो होंगी ही, किन्तु उसका उपाय करना इस सभा पर निर्भर है। लोकमान्य तिलक महाराज ने अपना अभिप्राय कार्य करके दिया है। उन्होंने 'केसरी' और 'मराठा' में हिन्दी विभाग शुरू कर दिया है। भारतरत्न पं. मदनमोहन मालवीयजी का अभिप्राय भी हिन्दुस्तान में अज्ञात नहीं है। तो भी हमें मालूम है कि हमारे कई विद्वान नेताओं का अभिप्राय है कि कुछ वर्षों तक तो एक अंग्रेजी ही राष्ट्रीय भाषा रहेगी। इन नेताओं से हम विनयपूर्वक कहेंगे कि अंग्रेजी के इस मोह से प्रजा पीड़ित हो रही हैं। अंग्रेजी शिक्षित वर्ग और आम लोगों के बीच बड़ा दरियाव आ पड़ा है।

कहना आवश्यक नहीं कि मैं अंग्रेजी के द्वेष नहीं करता हूँ।

हिन्दी भाषा की व्याख्या का थोड़ा सा खयाल करना आवश्यक है। मैं कई बार व्याख्या कर चुका हूँ कि हिन्दी भाषा वह भाषा है, जिसे उत्तर में हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। देहाती बोली में जो माधुर्य मै देखता हूँ, वह न लखनऊ के मुसलमान भाइयों की बोली में और न प्रयाग के पंडितों की बोली में पाया जाता है। भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहज में समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। हिमालय में से निकली हुई गंगाजी अनन्त काल तक बहती रहेगी। ऐसा ही देहाती हिन्दी का गौरव रहेगा और जैसे छोटी-सी पहाड़ी से निकला हुआ झरना सूख जाता है, वैसे ही संस्कृति मयी तथा फारसीमयी हिन्दी की दशा होगी। हिन्दू-मुसलमान के बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिन्दी व उर्दू भाषा के भेद में है। हिन्दुओं की बोली से फारसी शब्दों का सर्वथा त्याग और मुसलमानों की बोली से संस्कृत का सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनों का स्वभाविक संगम गंगा-जमुना के संगम सा शोभित और अचल रहेगा।

अंग्रेजी साहित्य भंडार से मैंने भी बहुत रत्नों का उपयोग किया है। अंग्रेजी भाषा की मारफत हमें विज्ञान आदि का खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेजी का ज्ञान भारतवासियों के लिए बहुत आवश्यक है, लेकिन इस भाषा को उसका उचित स्थान देना एक बात है उसकी जड़ पूजा करनी दूसरी बात है।

हिन्दी-उर्दू राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए, इस बात को सिर्फ स्वीकार करने से हमारा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता। तो फिर किस प्रकार हम सिद्धि पा सकेंगे? जिन विद्वानों ने इस मंडप को सुशोभित किया है, वे भी अपनी वक्तृता से हमकों इस विषय में जरूर कुछ सुनाएंगे। मैं सिर्फ भाषा प्रचार के बारे में कुछ कहूँगा। भाषा प्रचार के लिए 'हिन्दू शिक्षक' होना चाहिए। हिन्दी-बंगाली सीखने वालों के लिए एक छोटी-सी पुस्तक में देखी है। वैसी मराठी में भी है। अन्य भाषा भाषियों के लिए ऐसा कि देखने में नहीं आई। यह काम करना जैसा सरल है, वैसा ही आवश्यक मुझे उम्मीद है कि यह सम्मेलन इस कार्य को शीघ्रता से अपना लेगा। ऐसी पुस्तकें विद्वान और अनुभवी लेखकों के द्वारा लिखवानी चाहिए।

सबसे कष्टदायी मामला द्राविड़ भाषाओं के लिए है। कहा तो नहीं हुआ। हिन्दी भाषा सिखाने वाले शिक्षकों को तैयार करना ऐसे शिक्षकों की बड़ी ही कमी है। ऐसे एक शिक्षक प्रयाग से आपके लोकप्रिय मंत्री भाई पुरुषोत्तमदासजी टंडन के द्वारा मुझे मिले हैं।

हिन्दी भाषा का एक भी सम्पूर्ण व्याकरण मेरे देखने में नहीं आया। जो है सो अंग्रेजी में विलायती पादरियों के बनाए हुए हैं। ऐसा एक व्याकरण डॉ. केलाग का रचा हुआ है। हिन्दुस्तान की अन्यान्य भाषाओं का मुकाबला व व्याकरण हमारी भाषा में होना चाहिए। हिन्दी-प्रेमी विद्वानों से विनती है कि वे इस त्रुटि को दूर करें। हमारी राष्ट्रीय सभाओं में हिंदी भाषा का इस्तेमाल होना आवश्यक है। हमारी कानून सभाओं में भी राष्ट्रीय भाषा द्वारा कार्य चलना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक प्रजा को राजनीति कार्यों में ठीक तालीम नहीं मिलती है। हमारे हिन्दी अखबार इस कार्य को थोड़ा-सा करते तो हैं, लेकिन प्रजा को तालीम अनुवाद से नहीं मिल सकती। हमारी अदालतों में जरूर राष्ट्रीय भाषा और प्रांतीय भाषा का प्रचार होना चाहिए। न्यायाधीश मारफत जो तालीम हम को सहज मिल सकती है, उस तालीम में प्रजा वंचित रहती है। भाषा की जैसी सेवा हमारे राजा-महाराजा कर सकते हैं, वैसी अंग्रेजी सरकार नहीं कर सकती। महाराजा होलकर की कौंसिल में, कचहरी में और हर एक काम में हिन्दी का और प्रांतीय बोली का ही प्रयोग होना चाहिए। उनके उत्तेजन से भाषा और बहुत ही बढ़ सकती है। इस राज्य की पाठशालाओं में शुरू से आखिर तक सब तालीम मादरी जबान में देने का प्रयोग होना चाहिए। हमारे राजा-महाराजाओं से भाषा की बड़ी भारी सेवा हो सकती है। मैं उम्मीद रखता हूँ कि होलकर है महाराज और उनके अधिकारी वर्ग इस महान कार्य को उत्साह से उठा लेंगे। ऐसे सम्मेलन से हमारा सब कार्य सफल होगा, ऐसी समझ भ्रम ही है। जब हम प्रतिदिन इसी कार्य की धुन में लगे रहेंगे, तभी इस कार्य की सिद्धि हो सकेगी। सैकड़ों स्वार्थ त्यागी विद्वान जब इस कार्य को अपनाएंगे तभी सिद्धि संभव है। मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रांतों की मातृभाषा हिन्दी है, वहाँ भी उस भाषा की उन्नति करने का उत्साह नहीं दिखाई देता। उन प्रांतों में हमारे शिक्षित वर्ग आपस में पत्र व्यवहार और बातचीत अंग्रेजी में करते है। एक भाई लिखते हैं कि हमारे अखबार चलाने वाले अपना व्यवहार अंग्रेजी की मारफत करते हैं। अपने हिसाब-किताब वे अंग्रेजी में ही रखते हैं। फ्रांस में रहने वाले अंग्रेज अपना सब व्यवहार अंग्रेजी में रखते हैं। हम अपने देश में अपने महत्वपूर्ण कार्य विदेशी भाषा में करते हैं। मेरा नम्र लेकिन दृष्ट अभिप्राय है कि जब तक हम हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रातीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देते, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक है। हम सम्मेलन द्वारा भारतवर्ष के इस बड़े प्रश्न का निकारण हो जाए, ऐसी मेरी आशा है और प्रभु के प्रति प्रार्थना है।

प्राचीन सभ्यता इंदौर, मार्च 30, 1918

30 मार्च, 1918 को इंदौर में व्याख्यानमाला की ओर से दत्त मंदिर के विशाल मैदान में महात्मा गाँधी का एक महत्वपूर्ण भाषण हुआ था। संसार में जो परिवर्तन हो रहा है उसकी ओर लक्ष्य करके आपने कहा -

हमारे मन में ये विचार आते हैं कि यूरोप में जैसा परिवर्तन होगा, हिंदुस्तान में भी वैसा ही होगा। जब कोई बड़ा परिवर्तन होता है उस समय जो लोग यह समझ लेते हैं कि किस प्रकार उस परिवर्तन के लिए तैयारी करनी चाहिए, वे जीतते हैं, जो लोग यह विचार नहीं करते वे नष्ट हो जाते हैं। गति ही प्रगति है और उसी में हमारी उन्नति है। हम यों समझते हैं कि हमारे लिए यूरोप-खण्ड से जो बड़े-बड़े शोध हुए हैं उन से हम उन्नति कर लेंगे, पर यह केवल भ्रम है। हम ऐसे मुल्क के रहने वाले हैं, जो अभी तक अपनी सभ्यता पर निर्भर रह सका है। यूरोप की कई सभ्यताएँ नष्ट हो गई, पर हमारा यह भारतवर्ष अब तक अपनी सभ्यता का साक्षी होकर बना है। सब विद्वान साक्षी देते हैं कि भारतवर्ष की जो सभ्यता हजारों वर्ष के पहले भी वहीं अब भी है। पर अब हमें संदेह होने लगा है कि हमारा विश्वास हमारी सभ्यता पर नहीं है। हम रोज उठकर संध्या-वंदन आदि करते हैं, अपने पूर्वजों के बनाए हुए श्लोकों का पाठ करते हैं, पर हम उनका रहस्य नहीं जानते। हमारी श्रद्धा दूसरी ओर झुकती चली जा रही है।

जब तक संसार चलता रहेगा तब तक पांडवों और कौरवों का युद्ध भी चलता रहेगा। प्रायः सब धर्म ग्रंथों में लिखा है शैतान और देवताओं का युद्ध हमेशा चलता रहेगा। प्रश्न यह है कि हम

अपनी तैयारी किस तरह करें। मैं आप लोगों से यह कहने आया हूँ कि आप अपनी सभ्यता पर विश्वास करें और उस पर दृढ़ रहें। ऐसा करने से हिन्दुस्तान सारे संसार पर विजय पा लेगा। हमारे नेता कहते हैं कि पश्चिम के साथ युद्ध करने के लिए पश्चिम की रीति ग्रहण करनी होगी। पर स्पष्ट समझिए, इससे हिन्दुस्तान की सभ्यता नष्ट हो जाएगी। जिस हिन्दुस्तान को आप नहीं पहचानते हैं वह हिन्दुस्तान आपकी आधुनिक प्रवृत्ति से विरत है। मैंने सफर करके हिन्दुस्तान की प्रवृत्ति को जाना है और मुझे मालूम हुआ है कि अपनी प्राचीन सभ्यता पर अब भी उसका विश्वास बना हुआ है। जिस स्वराज्य की ध्वनि हम सुन रहे हैं और उसके लिए जिस ढंग से काम किया जा रहा है उससे स्वराज्य नहीं मिलेगा। कांग्रेस-लीग की स्कीम तथा इससे भी बढ़िया कोई स्कीम हमें स्वराज्य नहीं दिला सकती। स्वराज्य तो हमें अपने जीवन से मिलेगा। वह माँगने से नहीं मिल सकता। हम यूरोप की नकल करके किसी तरह का लाभ नहीं उठा सकते। यूरोप की सभ्यता आसुरी है, यह हम देख रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आधुनिक दारुण युद्ध है। यह इतना भीषण है कि महाभारत का युद्ध इसके सामने कोई चीज नहीं है। हमें इससे सावधान होना चाहिए और याद रखना चाहिए कि हमारे ऋषियों ने हमें अचल और अखण्डित तत्व दे रखे हैं कि हमारी सारी प्रवृत्ति दैवी होनी चाहिए और उसका मूल धर्म में होना चाहिए। हमें उसी का पालन करना चाहिए। जब तक हम धर्म का पालन नहीं करेंगे, कितनी भी बड़ी स्कीमें हम बना डाले मॉण्टेग्यु साहब हमें यह कह दें कि हम तुम्हें आज ही पूर्ण स्वराज्य देते हैं तो भी हम कभी सफल मनोरथ नहीं हो सकते, हम ऐसे स्वराज्य को बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमें तो चाहिए कि हमारे ऋषि-मुनियों ने हमारे लिए जो वारसा (वसीयत) रख छोड़ा है उसकी हम सिद्धि करें। हम सब कोई संसार में देख सकते हैं कि जैसी तपश्चर्या भारत में हुई थी, वैसी संसार में कहीं नहीं हुई है। अगर हम हिन्दुस्तान के लिए साम्राज्य भी चाहते हैं तो उसे अन्य उपायों से नहीं, पर संयम से ले सकते हैं। निश्चिय समझ रखिए कि अगर हमारा जीवन संयममय हो जाएगा तो हम जो चाहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

सत्य और अहिंसा ही हमारे ध्येय हैं। 'अहिंसा परमो धर्म' से भारी शोध दुनिया में दूसरा नहीं है। जब तक हम संसार के व्यवहारों में रहते हैं, जब तक हमारी आत्मा का व्यवहार शरीर के साथ रहता है, तब तक कुछ न कुछ हिंसा हमसे होती ही रहती है, पर जिस हिंसा को हम छोड़ सकते हैं। हमें उसे छोड़ देना चाहिए। जिस धर्म में जितनी ही कम हिस्सा है, समझना चाहिए कि उस धर्म में उतना ही ज्यादा सत्य है। हम अगर भारत का उद्धार कर सकते हैं तो सत्य और अहिंसा से कर सकते हैं। बम्बई के गवर्नर लॉर्ड विलिंग्डन ने एक समय कहा था कि जब मैं हिन्दुस्तानी लोगों से मिलता हूं तब मुझे बड़ी निराशा होती है, वे अपने दिल की बात नहीं करते, पर मेरे दिल की बात करते हैं। इससे मैं असली हालत नहीं जान सकता। बहुत से लोगों की यह आदत होती है कि वे हृदय के भावों को छिपाकर बड़े आदमी के रुख पर बात करते हैं, पर वे इससे अपनी आत्मा को कितना धोखा देते हैं, सत्य का भारी घात करते हैं, यह समझते नहीं। जैसी तुम्हारे दिल में हो वैसी ही बात करो। विवेक के विरुद्ध जाना धृष्टता है। चाहे राज्य का मिनिस्टर हो, चाहे उससे भी बड़ा आदमी हो, सत्य और अपने दिल की बात कहने में रत्तीभर संकोच मत करो। हर एक के साथ सत्य और अहिंसा का बर्ताव करो।

प्रेम एक ऐसी जड़ी-बूटी है कि कट्टर दुश्मन को भी मित्र बना देती है। और यह बूटी अहिंसा में प्रकट होती है। सषुप्त अवस्था में जिस चीज का नाम अहिंसा है, जाग्रतावस्था में उसी का नाम प्रेम है। प्रेम से द्वेष नष्ट हो जाता है। क्या मुसलमान, क्या अंग्रेज, सभी के साथ हमें प्रेम करना चाहिए। जब तक हमारी अचल श्रद्धा सत्य, प्रेम और अहिंसा में नहीं रहेगी तब तक हम उन्नति नहीं कर सकते। इन बातों को छोड़कर अगर हम यूरोप की सभ्यता का अनुसरण करेंगे तो हमारा नाश हो जाएगा। मैं सूर्यनारायण से प्रार्थना करता हूँ कि भारत अपनी सभ्यता न छोड़ें। आप निर्भय हो जाइए। जब तक आपको तरह-तरह के भय लगे रहेंगे, तब तक आप कभी उन्नति नहीं कर सकते, कभी आप विजय नहीं पा सकते। कृपा कर प्राचीन सभ्यता को मत भूल जाइये। सत्य और प्रेम को हरगिज न छोड़िए। शत्रु और मित्र के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार कीजिए। अगर हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाना है तो सत्य और अहिंसा के तत्वों से आप उसे शीघ्र वैसा बना सकते हैं।

महात्मा गाँधी।

वीणा, श्रीमध्यभारत भारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर मासिक मुख पत्रिका, अक्तूबर-2017 से साभार

बहुत से लोगों की यह आदत होती है कि वे हृदय के भावों को छिपाकर बड़े आदमी के रुख पर बात करते हैं, पर वे इससे अपनी आत्मा को कितना धोखा देते हैं, सत्य का भारी घात करते हैं, यह समझते नहीं। जैसी तुम्हारे दिल में हो वैसी ही बात करो। विवेक के विरुद्ध जाना धृष्टता है। चाहे राज्य का मिनिस्टर हो, चाहे उससे भी बड़ा आदमी हो, सत्य और अपने दिल की बात कहने में रत्तीभर संकोच मत करो। हर एक के साथ सत्य और अहिंसा का बर्ताव करो।

भारतीय अंग्रेजी साहित्य और महात्मा गांधी

◆ डॉ. उषा बंदे

अपनी पुस्तक द डिस्कवरी ऑफ इंडिया (The Discovery of India) में पंडित नेहरू लिखते हैं कि "वर्तमान युग में भारत के दिलो-दिमाग पर गांधी का गहरा प्रभाव रहा है। यह कितने समय तक और किस रूप में रहेगा, केवल भविष्य ही बता सकता है। परंतु कहना गलत न होगा कि यह प्रभाव उन लोगों तक सीमित नहीं है जो उनके साथ सहमत हैं या उन्हें राष्ट्र-नेता के रूप में स्वीकार करते हैं; यह उन लोगों को भी छू गया है जो उनसे असहमत हैं और उनकी आलोचना करते हैं।"

गांधीजी के विचारों से लोग चाहे सहमत रहे हों या नहीं, परंतु वह उन्हें अनदेखा न कर सके। यही कारण है कि भारत की सभी भाषाओं के साहित्य पर गांधी के दर्शन का प्रभाव किसी न किसी रूप में मिलता है; और अँग्रेजी में लिखा साहित्य इससे अपवाद नहीं है। गांधीवादी विचार व्यापक है तथा आधुनिक भारत के जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों को छूते हैं : राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, संस्कृति, मानवतावाद, शिक्षा, आध्यात्मिकता और धर्म, और यहां तक कि साहित्य भी।

भारतीय साहित्य में महात्मा गांधी का प्रतिनिधित्व विविध, व्यापक और विरोधाभासी रहा है। हाल के वर्षों में उनके विचारों पर सवाल उठाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है; आज की उपभोक्ता संस्कृति ने हमारे आदर्शों पर कैसे प्रहार किया है और किस प्रकार गांधीजी के विचारों का हनन हुआ है, यह कई साहित्यिक कृतियों में सामने आता है। अरविंद अडिगा का बुकर विजेता उपन्यास द व्हाइट टाइगर (The White Tiger) ही ले लीजिये जिसमें गांधी को एक चरित्र के रूप में चित्रित करने के बजाय लेखक ऐसे संदर्भ सामने रखता है कि पाठक भाँप जाता है कि हमारी नैतिकता कहाँ जा रही है। उपन्यास के नायक बलराम हलवाई उर्फ मुन्ना को स्कूल में गांधी के आदर्शों पर एक पुस्तक पुरस्कार में मिलती है पर विडंबना यह है कि वह इसे कभी नहीं पढ़ता; समय के साथ बलराम अपराध पत्रिकाओं से हत्या के तरीकों को सीखता है और एक क्रूर हत्यारा बन जाता है, कानून की चंगुल से बचता भी है क्योंकि अब वह एक बड़ा व्यवसायी है। जीवन मूल्यों की गठरी बनाकर कचरे में फेंक, बलराम एक स्कूल खोलने की योजना बना रहा है। उसके स्कूल में गांधीवादी विचारों को कोई स्थान नहीं होगा। अडिगा के इस चित्रण पर बहुत आलोचना हुई, पाठक बहुत नाराज़ हुए लेकिन करीब से पढ़ने पर लगता है कि लेखक का व्यंग्य तीखा है। गांधी के नाम को लेकर हम जो कुछ कर रहे हैं उस पर लेखक टिप्पणी नहीं करता पर जो सर्वविदित है उसे सामने लाकर खड़ा करता है।

2004 में कमला मार्कन्डेय का द बॉम्बे टाइगर (The Bombay Tiger) उपन्यास आया जो भौतिकतावाद और मूल्यों में आई गिरावट का ज्वलंत चित्रण करता है। नायक गोपाल गांगुली का 'गांधी क्लिनिक' गांधी के नाम पर सरकार से भारी अनुदान प्राप्त करने के उद्देश्य से खोला गया है; पैसा आता है किन्तु उसका उपयोग अन्य स्वार्थी कामों के लिए किया जाता है, मरीजों के लिए नहीं। 1950 और 60 के दशक में लिखे गए उपन्यासों में कमला मार्कन्डेय गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित थीं; उनके पात्र जीवन मूल्यों और रोजमर्रा की नैतिकता से जुड़े थे; परंतु 1980-90 के दशक में यह लेखिका भारत में सरेआम चल रहे भ्रष्टाचार, अनैतिक आचरण, लालच आदि को सामने रखने से नहीं कतराती। दफ्तरों में दीवार पर गांधी की तस्वीर तो होती है और उनके ठीक सामने घृणित कृत्य चल रहे होते हैं, यही आज का गांधीवाद है। बॉलीवुड मूवी 'गांधीगिरी' का यह एक साहित्यिक पहलू है।

द ग्रेट इंडियन नोवेल (The Great Indian Novel) में शशि थरूर एक चतुर महागुरु गंगाजी को चित्रित करता है; वह कौन है, स्पष्ट है; अनिता देसाई के Where Shall We Go This Summer? में एक पिता का चित्रण है जो कहने को गांधी-भक्त है पर अंदर से बिलकुल विपरीत।

आजादी के आंदोलन के 1930-40 के दशकों में लिखने वाले राजा राव, आर. के. नारायण और मुल्कराज आनंद जैसे अनुभवी लेखकों ने गांधीवादी विचारों और आदर्शों के सकारात्मक प्रभाव को प्रदर्शित किया। राजा राव का कांथपुरा कर्नाटक के एक दूरस्थ गांव में स्थित है। लोगों ने गांधी को नहीं देखा है, लेकिन पूरा माहौल गांधीवाद से प्रेरित है। सभी ग्रामीण सादगी, स्वतंत्रता और

अहिंसा के विचारों पर चलने में अपनी शान समझते हैं। इसी प्रकार, आर.के. नारायण का वेटिंग फॉर द महात्मा 1955 में (अर्थात गांधी-वध के सात वर्षों बाद) लिखा गया था। इसका नायक श्रीराम गांधी के विचारों से प्रेरित है तथा इनका केवल प्रचार ही नहीं करता बल्कि गांधीवादी दर्शन की वकालत भी करता है। नारायण के उपन्यास द वेंडर ऑफ स्वीट्स का कथानक सरल जीवन के आदर्शो को कायम रखता है। मुल्कराज आनंद के The Untouchable में छूआ-छूत तथा अन्य कृतियों में कई तत्कालीन सामाजिक विकृतियों पर प्रहार है। मनोहर मालगांवकर अपने उपन्यास बेंड इन द गेंजेस (The Bend in the Ganges) में अहिंसा पर सवाल उठाते हैं क्योंकि लेखक के विचार से देश के विभाजन के दौरान हुई हिंसा के चलते अहिंसा की बात करना बेकार है।

दरअसल, गांधीजी के विचार वास्तविक जीवन परिस्थितियों और और जीवन के बारे में उनकी जागरूकता से उत्पन्न हुए थे। उन्होंने किसी भी विचारधारा का प्रचार करने का प्रयत्न नहीं किया। अहिंसा और सत्य उस समय जितने प्रासंगिक थे, आज भी हैं। आज युग बदल गया है, विचार बदल गए हैं, आचरण बदल गया है परंतु जो शाश्वत मूल्य हैं वह नहीं बदलते। इसीलिए साहित्य बार-बार हमें उन मूल्यों की याद दिलाता है।

गांधी और साहित्य की चर्चा गिरीराज किशोर के हिंदी उपन्यास पहला गिरमिटिया के बिना अधूरी लगती है चाहे हमारा लेख अँग्रेजी साहित्य पर केन्द्रित है। यह पुरस्कृत कृति दक्षिण अफ्रीका में गांधी और कस्तूरबा के जीवन के डायस्पोरा (Diapor) की कहानी है। उपन्यास के शक्तिशाली चित्रणों में से एक वह दृश्य है जब कस्तूरबा अपने पति को आड़े हाथों लेती हैं और निजी जीवन के व्यवहार में गांधी के सनकी बर्ताव पर आपत्ति जताती हैं, "जब आप चाहें, तो आप मुझसे दूर रहें, जब यह आपके अनुरूप हो, तो आप मेरे पास आएँ, यह मुझे मान्य नहीं है।" स्वतंत्रता की लड़ाई के व्यापक कैनवास के साथ इस तरह के निजी संघर्ष उपन्यास में एक गहराई लाते हैं और गांधी को हम केवल आदर्शों पर चलने वाला मोहरा नहीं बल्कि इंसान के रूप देखने-समझने को मजबूर होते हैं।

ऐसा नहीं है कि गांधीवादी दर्शन हर किसी को भाता हो। दिलचस्प बात यह है कि रवींद्रनाथ टैगोर और गांधी अच्छे मित्र होते हुए भी कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर गहराई से मतभेद रखते थे। उनके पत्रों का आदान-प्रदान कुछ समय पहले बैंगलोर में आयोजित एक नाटक का विषय बना। नाटक में हिन्दू-मुस्लिम एकता, चरखा कातने की आर्थिक उपयोगिता और हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकारना आदि कथानक के केंद्र में थे। नाटक इन पत्रों के रीडिंग के साथ आगे बढ़ता है और गांधी और टैगोर के बीच व्यक्तित्व और दृष्टिकोण में अंतर स्पष्ट करता है।

फिल्म की दुनिया भी गांधी के विचारों से अछूती नहीं है। हम यहां जीवनी पर आधारित फिल्मों की बात नहीं कर रहे हैं, लेकिन हम उस फिल्म का उल्लेख करते हैं जिनमें गांधीवादी प्रभाव केंद्रीय भूमिका निभाता है। फिरोज अब्बास खान द्वारा निर्देशित और लिखित गांधी : मेरे पिता शुद्ध आदर्शवादी महात्मा गांधी और उनके विद्रोही बड़े बेटे हरिलाल गांधी के बीच के तनावपूर्ण संबंधों का एक आक्रामक चित्रण है। यह दक्षिण अफ्रीका में गांधी के राजनीतिक करियर की पृष्ठभूमि और बाद में भारत की आजादी के लिए संघर्ष को चित्रित करती है। यह एक ऐसे लड़के की कहानी है जो अपने प्रसिद्ध पिता की छाया में रहता है; विद्रोही हो जाता है और अपने पिता की मृत्यु के पांच महीने बाद एक असंतुष्ट व्यक्ति के रूप में दुनिया से चल बसता है।

साहित्य जीवन का दर्पण है। यह अपने काल की प्रवृत्तियों को दर्शाता है जब घटनाचक्र समाज में तेजी से बदलाव ला रहा होता है। जब गांधी जीवित थे, उनके विचारों और आदर्शों ने राष्ट्रीय विवेक को जागृत किया। भारत और भारतीय नेताओं ने एक सुंदर सपना देखा। समय के साथ साथ वह सपना टूट गया है और साहित्य इस बदलाव को दिखाने से डरता नहीं है; साहित्य मुद्दों को उठाता है; परिवर्तन को समझने का प्रयत्न करता है और मार्ग दिखाता है कभी व्यंग के द्वारा तो कभी गंभीरता से। अडिगा (Arvind Adiga), थरूर (Shashi Tharoor) तथा अन्य कई युवा लेखक पिछले साठ वर्षों के अंतराल को मुड़कर देख सकते हैं और परिष्कृत मूल्यों में लगातार हो रही गिरावट को समझ सकते हैं। यदि वे गुस्से में हैं, तो यह गांधी के साथ नहीं बल्कि परिस्थिति के साथ है जिसने उस व्यक्ति और उसके विचारों को हवा में फेंक दिया है।

गांधी ने साहित्य, कला और संस्कृति को प्रभावित किया, चाहे हम इस तथ्य को पसंद करें या ना करें। गांधी के विचारों ने परंपरा और आधुनिकता के बीच बहस निर्माण की जिसने सामाजिक बलों को जागृत किया, और स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान साहित्य को नया मोड़ दिया।

जब भारतीय अंग्रेजी साहित्य की बात आती है तो कई आलोचक इसे भारतीय लेखन मानने से इनकार करते हैं। परंतु तथ्य यह है कि इस लेखन को हम उखाड़ कर नहीं फेंक सकते क्योंकि यह भारत के स्वतन्त्रता आंदोलन के इतिहास का एक भाग है, उसकी ही उपज है। सी.डी. नरसिंहाइय्या तथा श्रीनिवास आय्यंगर जैसे जाने-माने विद्वान-आलोचक कहते हैं, "जब संवेदनाएं भारतीय हों और भावनाओं की अभिव्यक्ति भारतीय हो तो वह साहित्य उतना ही भारतीय साहित्य है जितना अन्य भारतीय भाषाओं में लिखा साहित्य ।"

वेक्सलो, लोअर कैथू, शिमला-171 003,
मो. 0 98161 14490

गांधी दर्शन और नारी

◆ डॉ. संगीताश्री

"स्त्री पुरुष की सहचरी है। उसकी मानसिक शक्तियां पुरुष से जरा भी कम नहीं हैं। उसे पुरुष के छोटे-से-छोटे कामों में हाथ बंटाने का अधिकार है और आजादी का उसे उतना ही अधिकार है जितना पुरुष को। अपने क्षेत्र में उसकी सर्वोच्चता उसी प्रकार स्वीकार की जानी चाहिए, जिस प्रकार पुरुष की उसके क्षेत्र में। यह तो स्वाभाविक स्थिति होनी चाहिए न कि पढ़ने-लिखने का परिणाम। केवल बुरे रिवाज के जोर पर ज़ाहिल-से-ज़ाहिल और निकम्मे-से-निकम्मे पुरुष को स्त्रियों पर सरदारी मिली हुई है जिसके वे अधिकारी नहीं है और जो उन्हें नहीं मिलनी चाहिए। हमारी स्त्रियों की दुर्दशा के कारण हमारे बहुत से आंदोलन अधूरे रह जाते हैं। हमारे बहुतेरे कामों का नतीजा ठीक नहीं निकलता। हमारी हालत 'अशर्फियां लुटे और कोयले पर मुहर' की नीति पर चलने वाले व्यापारी जैसी है जो अपने व्यापार में काफी पूंजी नहीं लगाता।"[1]

ये शब्द उस महात्मा के हैं जिन्हें समस्त विश्व ने युगद्रष्टा, महात्मा एवं राष्ट्रपिता माना। ये शब्द ही सिद्ध करते हैं कि वे वैचारिक स्तर पर कितने आधुनिक थे। उस समय जब बाल-विवाह, परदा प्रथा, सती प्रथा और विधवा तिरस्कार आदि कुप्रथाओं ने नारी की स्थिति को दयनीय बना दिया था और उस पर निरक्षरता के कारण वह बिलकुल ही असहाय एवं बलहीन थी उस घोर अंधकार में गांधी जी की विचार शक्ति ने मशाल का काम किया और रूढ़िग्रस्त समाज को सही मार्ग दिखाने का कार्य किया। नारी गुणों का बखान उन्होंने इन शब्दों में किया है, "स्त्री अहिंसा की जीती-जागती मूर्ति है। अहिंसा का अर्थ है असीम प्रेम और असीम प्रेम का अर्थ है कष्ट सहने की अपार शक्ति। पुरुष की जननी स्त्री के सिवा और किसमें यह शक्ति ज्यादा-से-ज्यादा प्रकट होती है। प्रसूति की पीड़ा से अधिक और अधिक क्या पीड़ा हो सकती है? किंतु नव सर्जन की खुशी में वह सब कुछ भूल जाती है। अपना यह प्रेम स्त्री सारी मानव जाति को दे दे और यह भूल जाए कि वह कभी भी पुरुष के भोग की चीज थी या भविष्य में हो सकती है, तो उसे पुरुष की माता, उसकी निर्मात्री और उसकी एक पथ-प्रदर्शिका का गौरवपूर्ण पद प्राप्त हो जाएगा। युद्ध में फंसी हुई दुनिया शांति के अमृत की प्यासी है। उसे शांति की कला सिखाने का काम स्त्री का है।"[2] ये शब्द कितने स्पष्ट रूप से नारी सशक्तीकरण की ओर संकेत करते हैं और उस युग में कहे गए जब नारी समाज में एक शोषित प्राणी एवं दासी के अतिरिक्त और कुछ नहीं थी और शिक्षा के अभाव में एवं आर्थिक रूप से पूर्णतया पुरुष पर निर्भर होने के कारण उसे अपने अधिकारों का तो ज्ञान तक नहीं था केवल त्याग, बलिदान और सहनशीलता को वह अपने अलंकार मानती थी। अगर उस समय कवि गुप्त ने अगर ये शब्द कहे तो इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं है अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी आंचल में है दूध आंखों में पानी।

किंतु उसी युग में गांधी जी यह कहते हैं, "इस मनुष्य जाति ने यूं तो संसार के अनेक पापों और बुराइयों के लिए अपने को जवाबदेह बनाया है, परंतु उन सबमें कोई भी पाप इतना नीचे गिराने वाला, और दिल को दहलाने वाला और हैवानियत से भरा हुआ नहीं है जितना कि उसके द्वारा किया हुआ स्त्री जाति का दुरुपयोग है। स्त्री को मैं देवी समझता हूं, अबला नहीं। स्त्री आज भी बलिदान, कष्ट, ममता, श्रद्धा और ज्ञान की प्रतिमा है और इसलिए स्त्री पुरुष दोनों में एकमात्र स्त्री ही अधिक उच्च और श्रेष्ठ है।"[3] गांधी जी को यह सब कहने की आवश्यकता क्यों पड़ी, यह भी विचारणीय है।

नारी के संबंध में इन विचारों को गांधी जी के समक्ष प्रस्तुत करके उनका मत पूछा गया तो उन्होंने कहा, "स्मृतियां परस्पर विरोधी वाक्यों से भरी पड़ी हैं। जिन स्मृतिकारों ने आत्मसंयम का उपदेश देने वाले प्रेरणादायक वाक्य लिखे वे मनुष्य में पाशविक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने वाले वाक्य लिख सकते थे।"[4]

उनका मत विचारणीय है क्योंकि मनु स्मृति में मनु ने लिखा है यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवताः। किंतु स्मृतिकारों के कटु वाक्यों की उपेक्षा कर, तत्कालीन समाज के अंधसंस्कारों एवं रूढ़ियों का विरोध करने का साहस गांधी जी ने उन कठिन परिस्थितियों में दिखाया जब लोग नारी को नए रूप में देखने के लिए या उसे किसी भी प्रकार के अधिकार या स्वतंत्रता देने के

लिए कदापि तैयार नहीं थे। गांधी जी ने धर्मग्रंथों के विषय में कहा, "जो कुछ धर्मग्रंथों में लिखा है उसे ईश्वर का वचन मानकर अनिवार्यतः स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए। नारी की प्रतिष्ठा को गिराने वाले वाक्य स्मृतियों से निकाल देने चाहिए। ईश्वर ने हमें तर्क बुद्धि दी है अतः स्मृतियों में लिखी सभी बातों को स्वीकार कर लेना हमारे लिए न तो आवश्यक है और न वांछनीय"[5] इससे स्पष्ट है कि वे धर्मग्रंथों का भी अंधानुकरण करने के पक्ष में नहीं हैं।

गांधीजी विवाह को वयस्क व्यक्तियों का बहुत महत्त्वपूर्ण सामाजिक उत्तरदायित्व मानते हैं, "जिससे वहन करने के लिए पर्याप्त धैर्य, परिपक्वता, सहनशीलता और आत्म-निर्भरता की आवश्यकता होती है। विवाह के उद्‌देश्यों के संबंध में उनका कहना है, "आध्यात्मिक विकास को विवाह में सर्वप्रथम स्थान दिया जाना चाहिए। मानवता की सेवा को दूसरा, पारिवारिक हितों तथा समाजिक व्यवस्था को तीसरा और पारस्परिक आकर्षण तथा प्रेम को अंतिम स्थान दिया जाना चाहिए।"[6] स्पष्ट है कि गांधी जी विवाह का बहुत व्यापक उद्‌देश्य स्वीकार करते हैं अपितु संगिनी तथा सहचरी है जो उसके सुख-दुःख में समान रूप से उसका साथ देती है, वह अपना मार्ग चुनने के लिए उतनी ही स्वतंत्र है जितना पति... मैं स्त्रियों को अधिकतम स्वतंत्रता देना चाहता हूं।"[7] वे इस बात के पक्षपाती थे कि स्त्री को स्वाधीनता मिले, अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार मिले। अंतर्जातीय विवाह को भी वे बुरा नहीं मानते थे किंतु वे तलाक के पक्षपाती नहीं थे। उनके अनुसार विवाह को एक धार्मिक संस्कार मानना चाहिए। गांधी युग के प्रसिद्ध साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद ने भी अपने उपन्यास 'गोदान' में एक पात्र प्रो. मेहता द्वारा कहलवाया, "विवाह को मैं एक सामाजिक समझौता मानता हूं और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है न स्त्री को, समझौता करने से पूर्व आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।" गांधी जी विवाहित जीवन को एक वरदान मानते थे और उसमें आत्मसंयम के कायल थे।

बापू के इस देश में सन् 1901 की जनगणना के अनुसार 80 प्रतिशत कन्याएं छोटी आयु में ही विवाह मंडप पर बैठा दी गई थीं। एक समाजशास्त्री ने लिखा, "भारत में 10 प्रतिशत कन्याएं 10 से 15 वर्ष की अवस्था में 10 प्रतिशत 5 से 10 वर्ष के बीच और हर 72 लड़की में एक लड़की का विवाह 1 से 3 वर्ष की उम्र में हो जाता था।"[8] इस घातक परंपरा के कारण नारी की स्थिति कितनी दयनीय रही होगी, इसकी सहज कल्पना करना कठिन है। सरकार ने इस कुरीति को मिटाने के लिए 1929 में शारदा एक्ट पास किया किंतु तत्कालीन समाज ने इस एक्ट को पूर्णतया नकार दिया।

गांधीजी ने बाल-विवाह-प्रथा का तीव्र विरोध करते हुए कहा है, "मैं बाल्यावस्था में होने वाले विवाहों से घृणा करता हूं... मैं उन माता-पिताओं की क्रूर उदासीनता की निंदा करता हूं जो अपनी बेटियों को पूर्णतः अनभिज्ञ तथा अशिक्षित रखते हैं और उनका पालन-पोषण केवल इसलिए करते हैं कि अल्पायु में ही किसी साधन संपन्न व्यक्ति से उनका विवाह कर दें ऐसे विवाहों को आरंभ से ही अवैध घोषित कर दिया जाना चाहिए। यदि मेरे हाथ में हो तो मैं इस आयु को कम-से-कम बीस वर्ष निर्धारित करना चाहूंगा।"[9]

उनके अनुसार बाल विवाह की यह प्रथा मनुष्य को शारीरिक तथा मानसिक दोनों दृष्टियों से अधःपतन की ओर ले जाती है। अतः धर्म के नाम पर इसका समर्थन करना बहुत निंदनीय हैं।"[10] इस हानिकारक प्रथा का निराकरण करने के लिए प्रभावशाली कानून बनाने के साथ-साथ गांधी जी इसके विरुद्ध सुदृढ़ जमत जागृत करना भी आवश्यक मानते थे। बाल-विवाह की दुष्परिणाम बाल-विधवाओं के रूप में सामने आ रहा था। गांधी जी के समय में बाल-विधवाओं की संख्या बहुत अधिक थी समाज में व्याप्त अंधविश्वास एवं जड़ मान्यताओं के कारण उनका पुनर्विवाह भी संभव नहीं था। किंतु एक महान समाज सुधारक होने के नाते गांधी जी बाल-विधवाओं के विवाह को वांछनीय ही नहीं बल्कि आवश्यक भी मानते थे। उनका मानना था कि जब इन कन्याओं का विवाह हुआ तब अल्पायु के कारण ये विवाह का अर्थ जानती ही नहीं थी। अतः इन्हें अविवाहित माना जाना चाहिए। इन लड़कियों के प्रति परिवार की उदासीनता और पुरुष वर्ग की क्रूरता की निंदा करते हुए वे कहते हैं, "किसी बाल विधवा को देखकर मेरा हृदय कांप उठता है और जब मैं किसी विधुर पुरुष को जिसकी पत्नी का देहांत अभी-अभी हुआ है अपने लिए बड़ी निर्लज्जता से दूसरे विवाह का प्रबंध करते देखता हूं तो मैं क्रोध से कांप उठता हूं... ऐसे पिता को जिसने अपनी बच्ची का विवाह किसी वृद्ध पुरुष अथवा किशोरावस्था के लड़के से करके उस बच्ची के साथ विश्वासघात किया है उसके विधवा हो जाने पर उसका पुनर्विवाह कराके कम-से-कम अपने इस पाप का प्रायश्चित अवश्य करना चाहिए।... हम धर्म के नाम पर गो-रक्षा के लिए चिल्लाते हैं, किंतु हम एक विधवा लड़की की रक्षा नहीं करना चाहते... अल्पायु की लड़कियों पर वैधव्य थोपना एक घृणित अपराध है जिसके लिए हम हिंदू लोग प्रतिदिन भारी मूल्य चुका रहे हैं। ...यदि हम अपनी पवित्रता चाहते हैं और हिंदू धर्म को बचाना चाहे हैं तो हमें अपने आपको इस थोपे हुए वैधव्य के विषय से मुक्त करना चाहिए।"[11] उन्हें इस बात का भारी क्षोभ था कि इस देश में बड़ी संख्या में विधवाएं बेची जा रही हैं और धर्म परिवर्तन कर रही हैं। उनके अनुसार, "यदि विधवाओं का पुनर्विवाह पाप है तो निश्चय ही विधुर पुरुषों का पुनर्विवाह भी पाप है।"[12] इस समस्या के पीछे छिपे अधःपतन को उन्होंने कितनी गहराई से समझा और समस्या का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया।

पर्दा प्रथा के विषय में गांधी जी के विचार थे कि वास्तविक शील और सतीत्व वही है जो सभी प्रकार के प्रलोभनों के होते हुए भी कभी नहीं टूटता। ऐसे सतीत्व को बनाए रखने के लिए पर्दे की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस स्त्री की इच्छा शक्ति बलवती है और जिसका चरित्र अच्छा है वह बिना किसी परदे के भी अपने सतीत्व की रक्षा कर सकती है वास्तविक पर्दा तो हृदय का पर्दा है। इसी संदर्भ में वे पुरुष वर्ग से भी प्रश्न करते हैं, "हम पुरुषों की पवित्रता के संबंध में स्त्रियों को चिंतित होते हुए नहीं देखते। फिर पुरुषों को क्या अधिकार है कि वे स्त्रियों की पवित्रता के विषय में नियम बनाएं। यह पवित्रता बाहर से नहीं थोपी जा सकती। यह व्यक्ति के अपने प्रयास के परिणामस्वरूप उसके मन से ही उत्पन्न होती है।"[13] इस प्रथा में भी गांधी जी ने नारी का पक्ष लिया और उसकी आंतरिक शक्ति को महत्त्व दिया है।

दहेज प्रथा ने हमारे समाज में विवाह जैसी पवित्र बंधन को भी लड़के एवं लड़कियों के क्रय-विक्रय का साधन मात्र बना दिया है। सामाजिक दुष्परिणामों के कारण गांधीजी ने इस प्रथा का घोर विरोध किया। उनके अनुसार, "माता-पिता को अपनी पुत्रियों को यह शिक्षा देनी चाहिए कि जो युवक विवाह के लिए कीमत वसूल करना चाहते हैं। उनसे वे कभी विवाह न करें। ऐसे लालची युवकों से विवाह करके अपनी प्रतिष्ठा गिराने की उपेक्षा इन लड़कियों के लिए अविवाहित रहना अधिक सम्मानजनक होगा। विवाह की एकमात्र शर्त पारस्परिक प्रेम के कारण स्वेच्छा से प्रदान की गई सहमति है।"[14] वे दहेज प्रथा के लिए जाति-प्रथा को उत्तरदायी मानते हैं। जब तक विशेष जाति तक ही चुनाव सीमित रहेगा तब तक दहेज प्रथा बनी रहेगी।

दक्षिणी भारत में प्रचलित देवदासी प्रथा की भी गांधी जी ने तीव्र निंदा की है। इस प्रथा के अनुसार कुछ परिवार अपनी पुत्रियों को बाल्यावस्था में ही मंदिर के पुजारियों को भगवान एवं धर्म के नाम पर समर्पित कर देते थे। पुजारी इनका शोषण करते थे और इन्हें विवाह करने की भी आज्ञा नहीं होती थी। धर्म के नाम पर होने वाले घोर अनाचार के विरोध में गांधीजी ने कहा, "जो हिंदू इससे किसी भी रूप में संबंधित हैं, उन्हें समाज को इस घृणित रोग से मुक्त करना चाहिए। देवदासी प्रथा उन सबके लिए कलंक है जो इसका समर्थन करते हैं। यदि जनता इसके संबंध में शिथिलता न दिखाती तो यह कब की समाप्त हो गई होती।"[15]

सन् 1854 में सर चार्ल्सवुड की शिक्षा योजना के अंतर्गत लड़कियों को लड़कों के स्कूलों में जाने की आज्ञा मिली किंतु बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा के कारण अधिकतर कन्याएं ज्ञान अर्जित करने से वंचित रह गईं। उन्हें शिक्षा मिले इसके लिए भारतेंदु हरिश्चंद्र, स्वामी दयानंद, ईश्चरचंद्र विद्यासागर, प्रो. कर्वे आदि विद्वानों ने अथक प्रयास किए। गांधी जी नारी शिक्षा के समर्थक थे किंतु ऐसी शिक्षा जो उसे कुशल गृहिणी, संस्कारवान मां एवं त्यागशील नारी बनाने में सहायक हो।

इस प्रकार गांधी जी नारी जाति को देवी कम सच्ची मानवी बनाने के अधिक पक्षधर थे, वह मानवी जो अपने कर्तव्य और अधिकारों को समान रूप से जाने और अपनी शक्ति को पहचाने। उन्होंने देखा कि हर प्रथा-कुप्रथा की नींव के पत्थरों में नारी के अस्तित्व को दबा दिया गया है। उसकी दुर्दशा ने उसके आत्मविश्वास, उसकी अस्मिता को हिलाकर रख दिया है। यह उनके संवेदनशील हृदय, दूरदर्शिता एवं स्पष्ट दृष्टिकोण का ही परिणाम था कि उन्होंने विरोधों की परवाह न करते हुए अपने विचारों को अत्यंत निर्भीकता से नारियों के पक्ष में रखा और उसे विश्वास दिलाया कि वह सचमुच एक शक्ति है जो निष्क्रिय हो रहे समाज में पुनः प्राण फूंक सकती है। गांधीजी ने बता दिया कि स्त्री की खोई हुई प्रतिष्ठा को दिलाने का समय आ गया है। संसार में आतंक की, अन्याय, भय, शोषण की दुहाई मची हुई है, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है, इसे समाप्त करने में वात्सल्य, सेवा, शील, संयम और त्याग की साक्षात् मूर्ति नारी ही आगे बढ़कर कार्य कर सकती है क्योंकि वे अबला नहीं चंडी हैं। गांधी जी कहते हैं, "अगर पुरुष ने अपने अंधे स्वार्थवश होकर स्त्री की आत्मा को कुचल न दिया होता या स्त्री शोषण के आगे झुक न जाती, तो वह दुनिया के सामने अपने भीतर की अपार शक्ति को बहुत पहले ही प्रकट कर सकती थी।"

किंतु आज नारी सशक्तीकरण का श्रेय ऐसे ही युगपुरुषों को जाता है जिन्होंने वर्षों पूर्व समाज में नारी को हर तरह से सशक्त बनाने का प्रयास किया था।

सेंट बीड्स कॉलेज, शिमला-171 006

पाद टिप्पणियां

1. गांधी दर्शन मीमांसा-प्रकाश नारायण नाटानी, पृ. 245
2. हरिजन, 24.2.1940
3. गांधी दर्शन मीमांसा- प्रकाश नारायण नाटानी, पृ. 246
4. हिंदू धर्म, पृ. 398
5. हिंदू धर्म, पृ. 430 (संपादक भरतन कुमारप्पा)
6. सलेक्शन्ज फ्रॉम गांधी, पृ. 271
7. सलेक्शन्ज फ्रॉम गांधी, पृ. 273, 274
8. द पोजीशन ऑफ विमेन इन इंडियन सोसायटी : कृष्ण प्रसाद कौल
9. सलेक्शन्ज फ्रॉम गांधी, पृ. 273, 278
10. हिंदू धर्म, पृ. 402
11. सलेक्शन्ज फ्रॉम गांधी, पृ. 274, 279
12. सलेक्शन्ज फ्रॉम गांधी, पृ. 280
13. सलेक्शन्ज फ्रॉम गांधी, पृ. 275
14. हिंदू धर्म, पृ. 425, 427

जलियांवाला बाग हत्याकांड की 100वीं जयंती

जलियांवाला स्मारक स्थापना में गांधी का योगदान



भारत के स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में पंजाब प्रांत के अमृतसर में 13 अप्रैल, 1919 को बैसाखी वाले दिन अंग्रेजों द्वारा निहत्थे भारतीयों पर जलियांवाला बाग में किया गया जघन्य गोली कांड एक ऐसा पन्ना है, जिसका स्मरण कर हर भारतीय रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बैसाखी का दिन जो संपूर्ण उत्तर भारत में एक प्रमुख त्योहार है। इस दिन किसान रबी की फसल कटाई के उपरांत नए साल की खुशियां मनाते हैं। सिखों में यह 13 अप्रैल, 1699 में दसवें एवं अंतिम गुरु गोविंद सिंह के खालसा पंथ की स्थापना के लिए खुशियों भरा दिन है। अमृतसर में उस दिन बैसाखी का मेला जो सदियों से लगता आ रहा है, उसे देखने हजारों की संख्या में बूढ़े, बच्चे, जवान, महिलाएं आई थीं। अंग्रेजों द्वारा रोलेट एक्ट के लागू करने के विरुद्ध इस बाग में सभा हो रही थी। जिसमें जनरल डायर नामक अंग्रेज अफसर ने अकारण उस सभा में उपस्थित भीड़ पर गोलियां चलवा दीं, जिसमें एक हजार से अधिक निर्दोष व्यक्तियों की जान चली गई और दो हजार से करीब व्यक्ति घायल हुए। उनका सिर्फ एक ही कसूर था कि वे शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे थे। जलियांवाला बाग की मिट्टी खून से लाल हो गई। यहां आने का एक संकरा रास्ता था और चारों ओर मकान थे। कुछ लोग जान बचाने के लिए मैदान में स्थित कुएं में कूद गए। देखते ही देखते कुआं भी लाशों से भर गया। आधिकारिक तौर पर मरने वालों की संख्या 349 बताई गई जबकि पंडित मोहन लाल मालवीय के अनुसार 1300, स्वामी श्रद्धानंद के अनुसार 1400 से अधिक जबकि अमृतसर के तत्कालीन सिविल सर्जन डॉक्टर स्मिथ के अनुसार 1800 से अधिक थी।

इस हत्याकांड की विश्वव्यापी निंदा हुई जिसके दबाव में भारत के लिए सेक्रेटरी ऑफ स्टेट एडविन मांटेगू ने 1919 के अंत में इसकी जांच के लिए हंटर कमीशन नियुक्त किया। हंटर कमीशन ने अंग्रेजों के पक्ष में ही रिपोर्ट दी। 1920 में ब्रिगेडियर जनरल रेजीनॉल्ड डायर को पदावनत कर कर्नल बनाया गया और ब्रिटेन भेज दिया गया। अंग्रेजों की इस दमनकारी नीति से स्वतंत्रता सेनानियों तथा क्रांतिकारियों में देश की आजादी के लिए एक नई चेतना का संचार हुआ।

महान लेखक, कवि, दार्शनिक रवींद्रनाथ टैगोर ने इस घटना से आहत होकर सर की उपाधि लौटा दी तथा गांधी जी को अंग्रेजों द्वारा 1915 में दक्षिण अफ्रीका में जूलू युद्ध के दौरान उन द्वारा प्रदत्त सेवाओं के लिए उनहें केसर-ए-हिंद गोल्ड मेडल से नवाजा गया। जिसे उन्होंने अगस्त 1920 में लौटा दिया। वे भारतीय एंबुलेंस कार्य से रॉयल सार्जेंट मेजर के रूप में कार्यरत थे।

देश 13 अप्रैल, 2019 को जलियांवाला गोली कांड की सौवीं जयंती मनाने जा रहा है। ये दिन उन सभी निर्दोष शहीदों के प्रति कृतज्ञता भरा है जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपने प्राण न्योछावर किए। उस वक्त दि ट्रिब्यून जो लाहौर से प्रकाशित होती थी, के महान संपादक काली नाथ रै ने अपनी लेखनी से ब्रिटिश हुकूमत को हिला दिया था। इसका उल्लेख ट्रिब्यून के इतिहास पर प्रकाश आनंद द्वारा लिखित पुस्तक में मिलता है।

कालीनाथ ने 11 मार्च, 1919 को रौलेट एक्ट के विरुद्ध लिखा। वहीं 17 अप्रैल को जलियांवाला गोली कांड के विरुद्ध ट्रिब्यून में संपादकीय 'Blazing Indiscrehen लिखा जिसमें ओ. डायर के जघन्य अपराध को उजागर किया गया था। उन्हें अंग्रेजों द्वारा कारावास में डाल दिया। गांधी जी ने रै को जेल से छुड़वाने के लिए देशभर में आंदोलन चलाने को कहा।

गांधी जी ने दि ट्रिब्यून एंड रौलेट एक्टस, जलियांवाला कांड तथा बाबू काली नाथ रै पर यंग इंडिया में लेख भी लिखा। गांधी

जी ने रै के प्रयासों की प्रशंसा की, वहीं युवाओं के प्रेरणा भगत सिंह ने बाबू काली नाथ को अंग्रेजों के अत्याचार बारे लिखने को कहा।

जलियांवाला गोली कांड में अंग्रेजों ने 10 मिनट में 1600 राउंड गोलियां चलाई थीं। इस दस मिनट ने देश को हिला कर रख दिया था। अंग्रेज अपनी दमनकारी नीतियों से भारत पर राज करना चाहते थे। लेकिन जलियांवाला कांड से भारतीयों ने मातृभूमि को मुक्त करवाने का एक नया जोश भरा। गांधी जी ने अहिंसा के दम पर आंदोलन को आगे बढ़ाया।

जलियांवाला कांड के उपरांत पंजाब सहित संपूर्ण देश में अंग्रेजों के खिलाफ गुस्सा था। लेकिन अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के समक्ष भारतीय सहमे हुए थे। पंजाब के अवाम ने इस स्थल पर शहीदों की याद में स्मारक बनाने की आवाज उठाई। उस वक्त के नेताओं ने लोगों से यहां स्मारक बनाने की अपील की लेकिन कोई भी अंग्रेजों के भय से अंशदान नहीं दे रहा था। इसका उल्लेख महात्मा गांधी के पौत्र राजमोहन गांधी ने अपनी पुस्तक महात्मा गांधी की आत्मकथा 'मोहनदास' व इतिहास के अनेक पुस्तकों जिसमें पंजाब : ए हिस्ट्री ऑफ ओरंगेजब टू माउंटबेटन' में हुआ है। इस स्मारक के लिए महात्मा गांधी के प्रस्ताव ने परिदृश्य ही बदल दिया। गांधी जी ने 24 अक्तूबर, 1919 से दो माह तक पंजाब का दौरा किया और इस हत्याकांड के तथ्यों को एकत्रित किया।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक Discovery of India में लिखा है कि महात्मा गांधी में सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने आम भारतीय नागरिकों के मन से भय को भगाया। जब अक्तूबर 1919 में पंजाब में गांधी जी के प्रवेश करने के निर्णय को अंग्रेजों ने हटा दिया तो वे लाहौर गए और पंजाब प्रांत के हालात पर गहन विचार विमर्श किया। गांधी जी ने अंग्रेजों द्वारा गठित 'हंटर कमेटी' के गठन पर सवाल उठाया तथा अपनी अलग से जांच कमेटी गठित करने का निर्णय लिया जिसमें गांधी जी भी सदस्य बने।

लाहौर पहुंचने पर गांधीजी का स्वागत अपार जनसमूह ने किया। अमृतसर में स्वर्ण मंदिर में गांधी जी को सम्मानित किया गया तथा उन्हें सभी समुदायों के लोग मस्जिद में भी ले गए। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा सत्य के प्रयोग में लिखा, "लाहौर पहुंचने पर जो दृश्य मैंने देखा, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। स्टेशन पर लोगों का समुदाय इस कदर इकट्ठा हुआ था, मानो बरसों के बिछोह के बाद कोई प्रियजन आ रहा हो और सगे संबंधी उससे मिलने आए हों। लोग हर्षोन्मत्त हो गए थे।"

पंजाब के दौरे के दौरान गांधी जी ने लोगों से जलियांवाला स्मारक के लिए अंशदान करने की अपील करते हुए कहा कि इसमें किसी को भी आहत व उससे दुर्भावना न रखी जाए। ये अंशदान लोगों की गमी का प्रतीक है तथा यह उन निर्दोष शहीदों के प्रति उनकी याद को दर्शाता है। आरंभ में इस स्मारक के लिए धनराशि का एकत्रीकरण कुछ धीमी गति से चला लेकिन जब गांधी जी ने यह घोषणा की कि अगर आवश्यक हुआ तो वे इस स्मारक के लिए अहमदाबाद के अपने आश्रम को बेच देंगे।

श्री राजमोहन गांधी के शब्दों में, "गांधी जी की इस घोषणा का संकलन गांधी जी के निजी सचिव श्री प्यारेलाल तथा निजी चिकित्सक सुशीला नायर ने अपनी पुस्तक 'In Gandhi Mirror' में किया है।

प्यारे लाल ने गांधी जी के साथ पंजाब का दौरा किया था। उसी वर्ष प्यारे लाल ने गांधी जी के विचारों, कार्यों, देश सेवा से प्रभावित होकर उनके साथ रहने का निर्णय लिया था।

गौरतलब है कि अमृतसर के जिस स्थल पर जलियांवाला गोलीकांड हुआ था व उस समय एक निर्जन स्थल तथा इसके चारों ओर बनी इमारतों का पिछवाड़ा था जहां प्रवेश के लिए एक संकरी गली थी जिस मार्ग से डायर के सैनिक प्रवेश हुए थे। मैदान के एक छोर पर कुआं था। इसके अलावा मैदान में मिट्टी के ढेर थे।

दी ट्रिब्यून में प्रकाशित लेख से ज्ञात होता है कि अंग्रेज इस स्थल पर कपड़े की मार्किट बनाना चाहते थे तथा अंग्रेजों ने व्यापारियों को सस्ती दरों पर इस जमीन को खरीदने का भी प्रलोभन दिया।

इस स्थल पर स्मारक बनाने व धनराशि एकत्रित करने का श्रेय अमृतसर के डॉ. एस.सी. मुखर्जी को जाता है। वर्ष 1920 में मदन मोहन मालवीय को जलियांवाला बाग स्मारक न्यास का अध्यक्ष तथा डॉ. मुखर्जी को सचिव बनाया गया।

वर्तमान में इस स्मारक का संचालन जलियांवाला राष्ट्रीय स्मारक न्यास कर रहा है जिसे जलियांवाला बाग राष्ट्रीय मेमोरियल अधिनियम-1951 के तहत गठित किया गया है।

आज यह स्थल एक प्रमुख स्थल की सूची में आया है जहां प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में देशी-विदेशी आकर शहीदों को अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं। स्थल के मध्य बनी ज्वाला स्वरूप प्रतीक में उन निर्दोष व्यक्तियों को सम्मान व्यक्त किया है जिनकी बदौलत आज हम स्वतंत्रता की हवा में विचरण कर रहे हैं।

सौ वर्ष पूर्व दीवारों में गोलियों के निशानों को भी सहेज कर रखा गया है। इस स्थल पर वह कुआं भी है, जहां सैकड़ों लोगों ने कूद कर जान बचाने की कोशिश की गई थी। संग्रहालय में संपूर्ण घटनाक्रम को दर्शाया गया है।

13 अप्रैल, 2019 को राष्ट्र जलियांवाला गोलीकांड की जयंती बनाने जा रहा है। कृतज्ञ राष्ट्र उन शहीदों को नमन करता है जिनकी शहादत पर हर भारतीय को नाज है।

संदर्भ :

The Sunday Tribune, Chandigarh, 5 August 2018

गांधी और स्वच्छता

◆ अपूर्व त्रिखा

गांधीजी के जीवन में स्वच्छता का पाठ उनके जीवन का अभिन्न अंग रहा। महात्मा गांधी के वर्ष 1915 में भारत आगमन के साथ उनका देश के कोने-कोने का सफर आरंभ हुआ। शुरू के वर्षों में उन्होंने देश की स्थिति को जाना-पहचाना। वर्ष 1918 से वे स्वतंत्रता आंदोलन के ध्वजवाहक बने। गांधी जी की इन यात्राओं के दौरान ऐसे अनगिनत अवसर आए जिनसे स्वच्छता तथा सेवा का स्पष्ट रूप सामने आ जाता है। तब गांधी जी अपने आपको 'हर एक को खुद का सफाईकर्मी होना चाहिए के आदर्श के जीते जागते उदाहरण के रूप में पेश करते हैं।' इस बात के बारे में आश्वस्त हो जाने पर कि वह 'किसी को भी गंदे पांव अपने मस्तिष्क से होकर गुजरने नहीं देंगे' गांधी जी ने झाड़ू को जीवन भर मजबूती से अपने हाथों में थामे रखा और 'सफाई सवेक की तरह' अपनी सेवाएं देने का कोई अवसर नहीं गंवाया। भारत आने से पहले दक्षिण अफ्रीका में फीनिक्स आश्रम से भारत में सेवाग्राम तक गांधी जी के आश्रम इस बात का जीता जागता उदाहरण रहा कि स्वच्छता के लिए सेवा करने का क्या मतलब है। साफ-सफाई उनके लिए दिखावे के लिए की जाने वाली कोई गतिविधि न होकर सेवा का एक महान कार्य था जिसमें सभी आश्रमवासी रोजाना हिस्सा लेते थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रपिता के लिए स्वच्छता का कार्य ऐसा सामाजिक हथियार था जिसका उपयोग वह साफ सफाई में लगे लोगों की समस्याओं को दूर करने में करते थे। इसी का उदाहरण है कि जब वे शिमला आए तो यहां पर भी उन्होंने सफाई कर्मियों की समस्याओं को देखा। इसके निपटारे के लिए सुझाव दिए। खान अब्दुल गफ्फार खां को इन बस्तियों की स्थिति का आकलन कर भेजा।

गांधी जी ने अहिंसा के संदेश के साथ-साथ स्वच्छता के संदेश को ताउम्र जीवंत बनाए रखा। नोआखाली दंगों के बाद अहिंसा के अपने विचार और व्यवहार की अग्नि परीक्षा की घड़ी में गांधी जी ने अपने संदेश को जन-जन तक पहुंचाने का कोई अवसर नहीं गंवाया कि स्वच्छता और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

स्वच्छ भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर

महात्मा गांधी ने एक दिन नोखवली के गड़बड़ी वाले इलाकों में अपने शांति अभियान के दौरान पाया कि कच्ची सड़क पर कूड़ा व गंदगी इसलिए फैला दी गई है कि ताकि वे हिंसाग्रस्त इलाके के लोगों तक शांति का संदेश न पहुंचा पाए। गांधी जी इससे जरा भी विचलित न हुए और उन्होंने इसे उस कार्य करने का एक सुनहरा अवसर माना जो सिर्फ वही कर सकते थे। आस पास की झाड़ियों की टहनियों से झाड़ू बनाकर शांति अहिंसा के दूत ने अपने विरोधियों की गली की सफाई की और हिंसा को और भड़कने से रोक दिया। कोई आश्चर्य नहीं कि स्वच्छता की कमी एक अदृश्य हत्यारे की तरह है। गांधी जी को गंदगी में हिंसा का सबसे घृणित रूप छिपा हुआ दिखता था। इसलिए वह सामाजिक-राजनीतिक, दोनों ही तरह की स्वतंत्रता के मार्ग में स्वच्छता और अहिंसा को सहयात्री की तरह मानते थे।

गांधी जी ने स्वच्छता के संदेश को जन-जन तक पहुंचाने के लिए देश में 2 अक्तूबर, 2019 तक खुले में शौच से मुक्ति दिलाने का महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य उसी दिशा में उठाया गया पहला कदम है।

भारत में कार्यान्वित स्वच्छ भारत अभियान से स्वच्छता की दिशा में कामयाबी मिली है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट में स्वच्छता से तीन लाख बच्चों की जान बचाने में कामयाबी मिली है। प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने इस वर्ष 15 अगस्त के लाल किले के अपने अभिभाषण में भी इसको उद्धृत किया था।

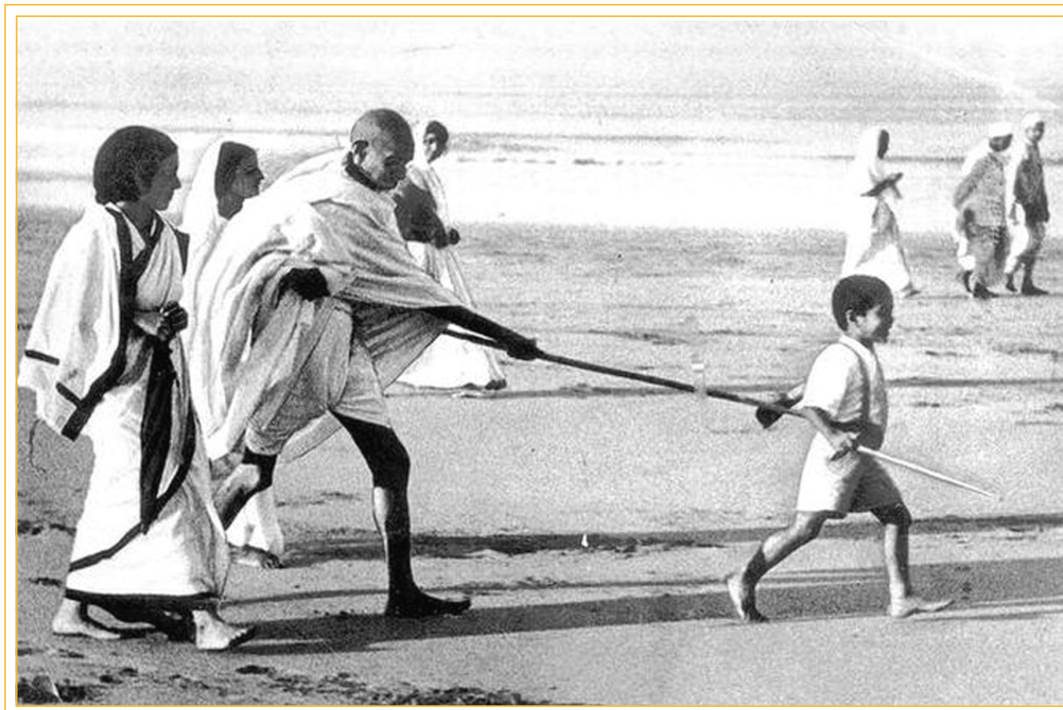
स्वच्छ भारत में महात्मा गांधी के सपने को साकार करने में हर भारतीय निष्ठा से प्रयासरत है। अहिंसा के पुजारी के प्रति स्वच्छ भारत बनाकर हम उन्हें उनकी 150वीं जयंती पर सच्ची श्रद्धांजलि दे सकते हैं।

एमबीबीएस छात्र, चतुर्थ वर्ष, एम.एम.यू. मेडिकल कॉलेज एंड अस्पताल, कुम्हारहट्टी, सोलन, हिमाचल प्रदेश

संदर्भ : 1. डॉ. सुधीरेंद्र शर्मा के लेख 'गांधी जी के लिए अहिंसा स्वच्छता के समान थी' अक्तूबर, 2017

2. सत्य की खोज, महात्मा गांधी की आत्मकथा

युवाओं के लिए गांधी शिक्षा



गांधी जी ने अपने दर्शन में सबसे अधिक जोर व्यक्ति सुधर जाए तो समाज और राष्ट्र अपने आप सुधर जाएगा, पर दिया है। महात्मा गांधी अपने पेशे से तो अध्यापक नहीं थे, परंतु उन्होंने संपूर्ण जीवन धर्म, जाति, वर्ग-वर्ण, स्त्री, पुरुष के वर्ग भेद से ऊपर उठकर एक बेहतर समाज निर्माण की शिक्षाएं दीं। वे हमेशा शिक्षा के क्षेत्र में तत्त्व ज्ञान को विशेष महत्त्व देते रहे। गांधी जी ने अन्य शिक्षाविदों की भांति 'रोजी रोटी' कमाओ के सूत्र को कभी स्वीकार नहीं किया। वे तो शिक्षा को विविध पहलुओं के संदर्भ में देखना चाहते थे।

गांधी जी की शिक्षाएं आज दुनियाभर में प्रासंगिक हैं। वे हर तबके के लिए ऐसा ज्ञान छोड़कर गए हैं जिस पर अनुसरण कर एक खुशहाल विश्व की कल्पना की जा सकती है।

उन्होंने शिक्षा के आदर्शों के बारे में पहली बार गुजराती में लिखा था, जिसका अनुवाद हरिजन में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने इसमें शिक्षा के 27 सूत्र दिए थे। इन सूत्रों में प्रमुख थे -

बालक को कभी भी जबरदस्ती नहीं पढ़ना चाहिए। उसे पढ़ाने से पहले उसकी रुचि विषय में बनानी सबसे आवश्यक है। शिक्षा को मातृभाषा में प्रदान करना चाहिए। शिक्षा के साथ बच्चों को श्रम का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए ताकि वे बड़े होकर आत्मनिर्भर बन सकें। नौ वर्ष से 16 वर्ष के मध्य बालक को पढ़ाई का खर्चा कोई भी रुचिकर कार्य कर अपने आप वहन करना चाहिए। उन्होंने महिला शिक्षा पर भी जोर दिया।

गांधी जी के विचारों में सच्ची शिक्षा तब आरंभ होती है जब बालक स्कूल छोड़ता है। उन्होंने बच्चों से सदैव सादगी, विद्याभ्यास, अच्छा नियम, नम्रता, सत्य और अहिंसा का पालन,प्रार्थना, सच्ची सभ्यता, नीतियुक्त काम, गीतामाता, रामनाम, शरीर श्रम, आरोग्य के नियम तथा खुराक की शिक्षा बच्चों को दी।

सादगी की ओर

गांधी जी ने विलायत में शिक्षा प्राप्ति के दौरान पाई-पाई का हिसाब रखते थे। उनके खर्च का अंदाजा निश्चित था कि महीने में 25 पौंड से अधिक व्यय न हो। वे रोज व्यय का खर्चा लिखते थे तथा उनकी यह आदत अंत तक कायम रही और उन्होंने कहा कि इसी कारण सार्वजनिक जीवन में वे किफायत का अपने आंदोलनों को आगे बढ़ाते रहे। उन्हें कभी कर्ज नहीं लेना पड़ा, बल्कि प्राप्त राशि से में कुछ-न-कुछ बचत होती रही।

सादगी के जीवन से गांधी जी में भीतरी और बाहरी स्थिति में एकता आई। जीवन अधिक सारयुक्त हुआ। आत्मिक आनंद की सीमा न रही।

विद्याभ्यास

सच्चा विद्याभ्यास वह है जिसके द्वारा हम आत्मा को, अपने आपको, ईश्वर को, सत्य को पहचानें। इस पहचान के लिए किसी

की साहित्य ज्ञान की आवश्यकता हो सकती है, किसी को भौतिक शास्त्र की, किसी को कला की, पर विद्या मात्र का उद्देश्य आत्म दर्शन (अपने आपको पहचानना) होना चाहिए।

शिक्षा के लिए कोई खास समय ही हो, सो बात नहीं है, बल्कि सारा समय शिक्षा काल है। हर आदमी जो आत्म-दर्शन- सत्य दर्शन- के भाव से आश्रम में बसता है, वह शिक्षक है और विद्यार्थी है। जिस चीज में वह निपुण है, उसके विषय में वह शिक्षक है, जो उसको सीखना है, उसके विषय में विद्यार्थी है।

सबसे बड़ी शिक्षा चरित्र्य शिक्षण है। ज्यों-ज्यों हम यम नियमों के पालन में बढ़ते जाएंगे, त्यों-त्यों हमारी विद्या-सत्य दर्शन की शक्ति बढ़ती ही जाएगी।

अच्छा नियम

हम यह भी देखते हैं कि नीति के नियम अचल हैं। मत बदला करते हैं, पर नीति नहीं बदलती। हमारी आंखें खुली हों तो हमें सूरज दिखाई देता है, बंद हों तो नहीं दिखाई देता। इसमें हमारी निगाह में हेर-फेर हुआ, न कि सूरज के होने में। जब हमारा ज्ञान-चक्षु खुल जाता है, तब हमें समझने में कठिनाई नहीं पड़ती।

नम्रता

नम्रता अभ्यास से प्राप्त नहीं होती। वह स्वभाव से ही आनी चाहिए। सत्य का अभ्यास किया जा सकता है, दया का अभ्यास किया जा सकता है, परंतु नम्रता के संबंध में कहना चाहिए कि उसका अभ्यास करना दंभ का अभ्यास करना है।

वास्तव में, नम्रता का अर्थ तीव्रतम पुरुषार्थ है; परंतु वह सब परमार्थ के लिए होना चाहिए।

सत्य और अहिंसा का पालन

अहिंसा प्रतिक्षण काम करने वाली प्रचंड शक्ति है। उसकी परीक्षा हमारे प्रतिक्षण के कार्य में, प्रतिक्षण के विचार में होती है। अहिंसा के पालन का जिसको उत्साह हो, वह अपने अंतर में अपने पड़ोसियों को देखें। अगर उसके मन में द्वेष भरा हो तो समझें कि वह अहिंसा की पहली सीढ़ी पर भी नहीं चढ़ा। अहिंसा का पालन न करने वाला अहिंसा से हजारों कोस दूर है।

प्रार्थना

ईश्वर तो सदा हमारे हर काम को देखता है, हर विचार को जानता है। इसलिए ऐसा एक भी क्षण नहीं है जब उससे छिपाकर कोई काव्य या विचार किया जा सके। इस प्रकार जो हृदयपूर्वक प्रार्थना करेगा, वह अंत में ईश्वरमय होगा, अर्थात् निष्पाप होगा।

सच्ची सभ्यता

सभ्यता तो आचार व्यवहार की वह रीति है जिससे मनुष्य अपने कर्तव्यों का पालन करे। कर्तव्य पालन और नीति पालन एक ही चीज है। नीति पालन का अर्थ है अपने मन और अपनी इंद्रियों को वश में रखना। यह करते हुए हम अपने आपको पहचानते हैं। यही 'सुधार' यानी सभ्यता है। जो कुछ इसके विरुद्ध है, वह असभ्यता है।

नीतियुक्त काम

हमारे बहुत कामों में खास तौर से नीति का समावेश नहीं होता। नीतियुक्त काम तो वह कहा जाना चाहिए जो हमारा अपना है यानी जो हमारी इच्छा से किया गया हो। जब तक हम मशीन के पुर्जे की तरह काम करते हैं, तब तक हमारे काम में नीति का प्रवेश नहीं होता।

गीता माता

गीता शास्त्रों का दोहन है। सारे उपनिषदों का निचोड़ उसमें लिखित श्लोकों में आ जाता है। आज गीता मेरे लिए केवल बाइबल नहीं है, केवल कुरान नहीं है, मेरे लिए माता हो गई है। मुझे जन्म देने वाली माता तो चली गई, पर संकट के समय गीता माता के पास जाना मैं सीख गया हूं। इसलिए विद्यार्थियों से मैं कहूंगा कि सबेरे तीस मिनट तुम गीता का अभ्यास करो, पर द्वेष भाव से नहीं भक्ति भाव से।

शरीर श्रम

शरीर श्रम का सब व्यक्तियों के लिए अनिवार्य की बात पहले पहले टॉलस्टाय के एक निबंध में गांधी जी ने पढ़ी। इतने स्पष्ट रूप से इस बात को जानने के पहले, रस्किन के अनटु दि लास्ट पढ़ने के उपरांत इस पर अमल आरंभ किया। जिसे अहिंसा का पालन करना है, सत्य की आराधना करनी है, उसके लिए तो शरीर श्रम रामबाण रूप हो जाता है।

आरोग्य के नियम

मनुष्य जाति के लिए साधारणतः स्वास्थ्य का पहला नियम यह है कि मन चंगा है तो शरीर भी चंगा है। निरोग शरीर में निर्विकार मन का वास होता है, यह एक स्वयंसिद्ध सच्चाई है। मन और शरीर के बीच अटूट संबंध है। शुद्ध खान-पान व विचारों से शरीर को निरोगी रखा जा सकता है। आरोग्य रहने के लिए सफाई पर विशेष ध्यान दें।

उन्होंने युवाओं से खान-पान के नियम अपनाने की भी शिक्षा दी। यह सही है कि हवा और पानी के बिना आदमी जी नहीं सकता। लेकिन मनुष्य का जीवन निर्वाह तो खुराक से ही हो सकता है। अन्न उसका प्राण है।

युवाओं के लिए गांधी जी की शिक्षा उनके व्यक्तित्व को निखारने की है। जीवन में गांधी जी के आदर्शों को अपना कर एक खुशहाल एवं सशक्त राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है।

संदर्भ :

गांधी शिक्षा, जीवन शिक्षा या बालकोपयोगी संग्रह, प्रकाशक यशपाल जैन, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

M. K. Gandhi, India of My Dream, Navajivan Publishing House, Ahmedabad-14, 1947

दो अक्तूबर और महात्मा गांधी

दो अक्तूबर, 1947 को गांधी जी का जन्म दिवस उनके जीवन काल में मनाया जाने वाला अंतिम तथा 78वां जन्मदिवस था। सुबह भोर होते ही उनके दल के कुछ लोग उन्हें अभिवादन करने आ गए। उन्होंने अपना जन्म दिवस हमेशा की तरह उपवास, प्रार्थना तथा विशेष कताई कर मनाया। उन्होंने बताया कि उपवास आत्म-शुद्धि के लिए है और कताई द्वारा मैं ईश्वरीय सृष्टि के सबसे दीन-हीन लोगों की सेवा में जीवन अर्पण करने के प्रण को दोहराता हूं। मैंने अपने जन्म दिवस समारोह को चरखे के पुनर्जन्म के समारोह के रूप में परिवर्तित कर दिया है। चरखा अहिंसा का द्योतक है। यह प्रतीक समाप्त हो गया मालूम पड़ता है। मगर इस आशा से कि शायद चरखे के संदेश के प्रति निष्ठावान कुछ थोड़े से लोग जहां-जहां हो सकते हैं, मैंने उन्हीं लोगों की खातिर चरखा जयंती का आयोजन आगे जारी रखने दिया।

साढ़े आठ बजे स्नान के उपरांत जब गांधी जी अपने कमरे में दाखिल हुए तो पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, गांधी जी के मेजवान घनश्याम दास बिड़ला और दिल्ली स्थित बिड़ला परिवार के सदस्य उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मीरा बहन ने गांधी जी के आसन के सामने रंग-बिरंगे फूलों से कलापूर्ण क्रॉस 'हे राम' और 'ऊँ' लिखकर खूबसूरती से सजाया था। एक संक्षिप्त प्रार्थना हुई, जिसमें सबने भाग लिया। भजन गायन हुआ।

सारे दिन राष्ट्रपिता को बधाई संदेश देने वाले आगंतुकों एवं मित्रों का तांता लगा रहा। इसी प्रकार राजदूतावासों के प्रतिनिधि भी गांधी जी के लिए शुभकामना संदेश लेकर आए। अंत में लेडी माउंटबेटन अपने साथ गांधी जी के लिए लिखे गए पत्रों तथा तारों को लेकर आई। गांधी जी ने सभी लोगों से प्रार्थना की कि वे इस बात की प्रार्थना करें कि ईश्वर या तो इस दावानल को शांत कर दे अथवा उन्हें उठा ले। मैं कतई नहीं चाहता कि भारत में मेरा एक और जन्मदिन होने पाए।

महात्मा गांधी ने सरदार पटेल से कहा - मैंने ऐसा कौन सा पाप किया था कि जो ईश्वर ने मुझे इस सारे संत्रास का साक्षी बनने के लिए जीवित छोड़ रखा है? वे अपने आसपास हो रहे अग्निकांड के बीच विवशता की भावना से जकड़े नज़र आते थे। सरदार पटेल की सुपुत्री मणि बहन ने उस दिन अपनी पत्रिका में दुःख प्रकट करते हुए लिखा : उनकी व्यथा असह्य थी। हम लोग उनके पास उत्साह के साथ गए थे, मगर बोझिल हृदय लेकर घर लौटे।

मुलाकातियों के चले जाने के बाद वे बड़बड़ाते हुए बोले, यदि प्रभुनाम की सर्वरोगहर प्रभावकारी शक्ति मुझमें व्याप्त नहीं हो जाती, तो मैं इस अस्थिपंजर को त्याग देना अधिक पसंद करूंगा।

दो अक्तूबर, 1933 को जब 'वर्ल्ड फेलोशिप आफ फेथ्स' के आयोजकों ने गांधी जी से उनकी जयंती पर कुछ संदेश देने का आग्रह किया तो गांधी जी ने कहा :

"जो जीवन मैं जी रहा हूं, यदि इससे कोई संदेश नहीं दे सका तो पैन से लिखकर कौन सा संदेश भेज सकूंगा।"

जब मालवीय ने गांधी की उम्र कम की

दो अक्तूबर, 1941 को गांधी जी ने अपना जन्मदिन एक सभा के माध्यम से मनाया। उन्होंने कहा था कि मैं अपनी जयंती को कोई महत्त्व नहीं देता। इसके बजाय इसे मैं चरखा जयंती कहता हूं। उस दिन सभा में उन्होंने कहा कि कोई काम चाहे, जितना छोटा और तुच्छ हो, यदि वह सेवा भाव से और लाभ की आशा न रखते हुए किया जाए, तो ईश्वर की दृष्टि में बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है।

2 अक्तूबर, 1944 को उन्होंने अपनी जयंती सेवाग्राम में मनाई। एक हिंदू प्रतिनिधि के अनुसार उस दिन सुबह जब उनसे मिलकर मैंने पूछा कि इस शुभ दिन देश के लिए क्या वे कोई संदेश देना चाहेंगे, तो उत्तर में उन्होंने कहा :

"मैं ऐसे अवसरों पर संदेश देने का आदी नहीं हूं। गांधी जी ने हंसी के बीच कहा, मैं 125 वर्ष जीना चाहता हूं। लेकिन पर्णकुटी पूना में मालवीय जी का जो तार आया, उसमें उन्होंने मेरे शतायु होने की कामना करते हुए मेरी आयु में 25 वर्ष कम कर दिए।



Many happy returns of this auspicious day to India's "guide and master"—Bapu—whose 79th birthday is to be celebrated to-day.

India Celebrates Gandhiji's Birthday

(From Our Special Representative)

SIMLA, Oct. 1.—Free but torn India, shorn of her proud privilege of being the land of great civilisation where humanity was respected, will celebrate the 79th birthday of her "guide and master" today. Gandhiji has completed 78 years of his life of service not only to India but to humanity also, the prayer will go forth from every heart in India today that God in His mercy may spare this greatest servant of humanity of our times for many more years and there may thus be many happy returns of this auspicious day, which is a day of rejoicing for the whole Indian nation.

This prophet of peace has seen the fulfilment of his dream of a free India—whose dawn has, however, been marred by the [illegible] tion of our dear and beloved Punjab and terrible sufferings of the Punjabees from the West Punjab who have neither food to eat nor shelter to hide their heads today. Gandhiji is perhaps the first political prophet who saw his cherished dream realised during his own life time. India is free today though not after the pattern of Gandhiji's promise. He has stood for peace—preached and practised it all these years—and his ideal has been to see that peace prevails. Where hymn of hatred has been sung, Bapuji has been preaching the gospel of love. But if peace has not prevailed and murder and loot—the law of the jungle—is the rule, not he, but we—his countrymen—have failed. He [illegible] things to tread his path [illegible] grudgingly and unhesitatingly. May be, that Gandhiji is the only weary traveller on that path of peace and righteousness which alone leads to prosperity and happiness! He has guided the destiny of our beloved country now for over a quarter of a century. Whatever India has—minus of course the beastly activity and the ghastly spirit of retaliation—we all owe it to Gandhiji's guidance and the light with which he has enlightened India's difficult path through struggles in which hundreds and thousands fell while fighting for the cause of their dear motherland.

If India could stand heads and shoulders above among the comity of nations it was because of Gandhiji and if today India's head is hung down with shame it is because Gandhiji's countrymen forgot his message and misunderstood his mission.

Let every Indian pray on this auspicious day that this greatest architect of India may have many happy returns of this day and may God do that peace prevails in this land of sorrow and pain caused by men having become blood thirsty hounds.

GANDHIJI'S BIRTHDAY

Simla Programme

In connection with Gandhiji's birthday celebrations the following programme will be observed at Simla to-day:—

Morning	Prayers
1 p.m. to 2 p.m.	Spinning competition.
4 p.m.	Public meeting at Ganj Maidan Mrs. Uma Nehru will preside.

GANDHI JAYANTI HOLIDAY IN MADRAS

MADRAS, Oct. 1.—The Madras Government have declared October 2, Mahatma Gandhi's birthday, as public holiday under the Negotiable Instruments Act.

They have instructed heads of Government departments and district collectors to hoist the Indian Union flag on that day ceremoniously.—U.P.I.

शिमला में गांधी जयंती पर कार्यक्रम का ब्योरा 2 अक्तूबर, 1947 के 'दी ट्रिब्यून' समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ।

एक भाई द्वारा दूसरे भाई की हत्या का सिलसिला जारी देखकर मेरी 125 वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा पूर्णतः जाती रही है। मैं इन हत्याओं का विवश साक्षी बन कर नहीं रहना चाहता।

उस दिन आकाशवाणी पर गांधी जी का जन्मदिन मनाने के लिए एक विशेष कार्यक्रम प्रसारित करने का आयोजन किया गया था। जब गांधी जी से यह पूछा गया कि क्या आप अपवाद-स्वरूप सिर्फ एक बार रेडियो पर विशेष कार्यक्रम नहीं सुनेंगे, तो उन्होंने उत्तर दिया, नहीं, मुझे रेडियो के बजाय रेंटियां (चरखा) पसंद है। चरखे की गुनगुनाहट अधिक मधुर है। उसमें मुझे मानवता का निस्तब्ध विषादपूर्ण संगीत सुनाई पड़ता है।

प्रार्थना सभा में भाषण

उस दिन प्रार्थना सभा में भाषण देते हुए गांधी जी ने कहा था कि आज तो मेरी जन्मतिथि है। मैं तो कोई अपनी जन्मतिथि इस तरह से मनाता नहीं हूं। मैं तो कहता हूं फाका रखो, चरखा चलाओ, ईश्वर का भजन करो, यही जन्म तिथि मनाने का मेरे खयाल में सच्चा तरीका है। मेरे लिए तो आज यह मातम मनाने का दिन है। मैं आज तक जिंदा पड़ा हूं। इसपर मुझे को खुद आश्चर्य होता है, शर्म लगती है। मैं वही शख्स हूं जिसकी जुबान से एक चीज निकलती थी कि ऐसा करो तो करोड़ों उसको मानते थे, पर आज तो मेरी कोई सुनता नहीं है। ...अगर आप सचमुच मेरी जन्म तिथि को मनाने वाले हैं तो आपका तो धर्म यह हो जाता है कि अब से हम किसी को दीवाना बनने नहीं देंगे, हमारे दिल में अगर कोई गुस्सा हो तो हम उसको निकाल देंगे। इतनी चीज आप याद रख सकें तो मैं समझूंगा कि आपने काम ठीक किया है। बस इतना ही मैं आपसे कहना चाहता हूं।

शिमला में 78वीं गांधी जयंती

महात्मा गांधी का 78वां जन्मदिवस शिमला में 2 अक्तूबर, 1947 को शहरवासियों ने उत्साह से मनाया। उनके जन्मदिवस पर 'दि ट्रिब्यून' समाचार पत्र जो उस वक्त शिमला से प्रकाशित होता था, ने अपने पहले पन्ने पर गांधी जी का हस्तांतरित चित्र प्रकाशित कर उस दिन होने वाले कार्यक्रमों की जानकारी प्रकाशित की।

शिमला में इस दिन के कार्यक्रम में प्रातःकालीन प्रार्थना सभा, दोपहर एक बजे से 2 बजे के मध्य चरखा कताई प्रतियोगिता तथा सायं चार बजे गंज मैदान में सार्वजनिक सभा जिसकी अध्यक्ष उमा नेहरू करेंगी, की जानकारी प्रकाशित की।

एक अन्य समाचार में ऑल इंडिया रेडियो द्वारा गांधी जयंती पर विशेष कार्यक्रम प्रस्तारित करने का भी उल्लेख हुआ है। दो अक्तूबर, 1947 को इसे सायं 8 बजे से 9 बजे प्रसारित करने का कार्यक्रम है। इसमें सर्वपल्ली राधाकृष्णन की विशेष भेंटवार्ता प्रसारित होगी।

29 जनवरी, 1948

सिर्फ एक दिन बापू से हुई अलग...

देश के महान नेता श्री जय प्रकाश नारायण (जे.पी.) जिन्होंने देश में संपूर्ण क्रांति का सूत्रपात किया। वे देश में आपातकाल के उपरांत जनता के दिलों में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हुए। जनता ने उन्हें 'लोक नायक' मानकर उनके नेतृत्व को स्वीकार किया।



जय प्रकाश का विवाह प्रभावती से हुआ। तब दोनों छोटी उम्र में थे। विवाह के दो वर्षों के बाद जय प्रकाश विज्ञान की शिक्षा हासिल करने अमरीका चले गए थे और जीवन में आदर्श की खोज में प्रभावती चली गई थीं, गांधी और बा के पास साबरमती आश्रम। आश्रम में रहते समय ही प्रभावती ने निश्चय करके ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया था। पति के लौटने के उपरांत जे.पी. और प्रभावती ने मर्यादा का जीवन ही बिताया।

जे.पी. विज्ञान प्रेमी, क्रांतिकारी और प्रभावती बनीं सच्चे अर्थों में गांधीवादी, आदर्शवादी। प्रभावती आदर्श नारी बनीं - उनकी मांग में बा का दिया सिंदूर चमकता था, सुहाग का सिंदूर। पति सेवा में सदा रत रहीं।

प्रभावती सदा गांधी के संग रहीं। गांधी की सेवा में रहीं। बा तो प्रभावती को अपनी बेटी ही मानती थीं। बा के कितने निकट थीं प्रभावती, यह तो इसी से जाना जा सकता है कि आगा खां महल में बा की मृत्यु भी प्रभावती की गोद में ही हुई थी।

बा की बेटी प्रभावती गांधी की भी बेटी समान थीं। बां के देहांत के बाद प्रभावती तो छाया की तरह गांधी के साथ रह कर उनकी सेवा करती थीं। लेकिन संयोग की बात...।

अपनी हत्या के एक दिन पूर्व यानी 29 जनवरी, 1948 को गांधी जी अचानक प्रभावती से भविष्य में उनके रहने की चर्चा ले बैठे। गांधी ने कहा, "अब तुम जाकर जय प्रकाश के साथ रहो।"

प्रभावती ने समझा कि इधर कांग्रेस और जे.पी. के बीच जो मतभेद चल रहा है, उस ओर गांधी का संकेत है। सो बोलीं, "मुझे लगता है कि जयप्रकाश के साथ कुछ दिन रहूंगी तो आपके विचार उन्हें समझा सकूंगी।"

गांधी जी ने हंसकर कहा, "विचार समझाने के लिए नहीं, सेवा के लिए उनके साथ रहो। उसे सेवा की जरूरत है। उसके स्वास्थ्य को संभालना।"

"तो कितने दिनों के लिए जाना है?" प्रभावती ने पूछा।

"जय प्रकाश जैसा चाहे, वैसा करो। तुम अपना निर्णय खुद करो।" गांधी बोले

प्रभावती बोलीं, "मैं निर्णय नहीं कर सकती। आप जो कहेंगे, वहीं करूंगी।"

तब गांधी जी ने निर्णय सुना दिया, "तुम्हें अब जय प्रकाश के साथ ही रहना है उसकी सेवा ही करनी है।"

और उसी रात अपने आशीर्वाद के साथ गांधी ने प्रभावती को पटना भेज दिया। और एक दिन बाद तीस जनवरी 1948 को गांधी जी सदा के लिए चले गए थे।

जाने से पहले गांधी अपनी बेटी को उसके घर भेज गए। यही तो पिता का कर्तव्य होता है।

गांधी की हत्या के बाद प्रभावती रोई थीं, "...एक दिन के लिए सिर्फ एक दिन के लिए मैं बापू से अलग हुई थी।"

गांधी का सहारा छूटने के बाद प्रभावती जे.पी. की छाया बन गईं। पटना में, विदेश में, यात्रा में, संघर्ष में, हर जगह जे.पी. के साथ शक्ति रूपा प्रभावती खड़ी रही।

संदर्भ : ओंकार शरद द्वारा लिखित पुस्तक 'देश का प्रकाश जय प्रकाश' से साभार।

जिसकी तपस्या से हिली ब्रिटिश हुकूमत



VOL. LXVIII. NO. 63

EAST PUNJAB ASS

Feeling References To Gandhiji's Martyrdom

New Members Sworn In

(FROM OUR SPECIAL REPRESENTATIVE)

SIMLA, March 6.—Grave solemnity marked the opening day proceedings of the Budget Session of the East Punjab Assembly which commenced today at 11 A.M. in the former Council of State Chamber in the Governor-General's Lodge. The main item for today's agenda was reference to Gandhiji's martyrdom and a number of speeches were made after the Hon'ble Speaker S. Kapur Singh had referred to his unique sacrifice.

The Governor Sir Chandu Lal and Lady Trivedi were present in the Governor's box and the official gallery was over-packed. Almost all heads of departments including Shri Sachdeva, Chief Secretary, Sardar Nawab Singh, Home Secretary and Shri Ram Chandra Chairman Public Service Commission, and other senior officials were present. As there was not sufficient accommodation, a large number of officials including the Inspector-General of Police, Sardar Sant Parkash Singh, were provided seats in the Visitors' Gallery. There were strict security arrangements and watch was kept by the police outside the House which was well guarded. The Assembly staff courteous, as usual, was attending to the old and new members who had come from the West Punjab. The House gave a full appearance by the coming of the new members. No Muslim member was present.

After the Speaker had occupied his chair, the new members were sworn in and they were cheered as they came to take the oath which some did in Punjabi and others in Hindustani. The first to take the oath was Shrimati Parkash Kaur who was followed by Shrimati Sita Devi and the third was Shri Bhim Sen Sachar.

When Shri Bhim Sen Sachar, Ch. Krishan Gopal Dutt Dr. Lehna Singh, and Mr. Chadda and Mr. Virendra took the oaths, they received very loud cheers from all sides of the House.

Giani Kartar Singh who could not be present in time to take the oath was sworn in by the Speaker in his own room.

The absence of the Muslim members was keenly felt and a desire was expressed that it would have been well if they had chosen to be present in the Assembly at least on such a solemn occasion as this.

As many as 20 speeches were made by different speakers who included the Speaker, the Premier, three Ministers, and three lady members of the House besides Shri Bhim Sen Sachar, Sardar Ujjal Singh, Giani Kartar Singh, Sardar Udham Singh Nagoke, Dr. Lehna Singh and Shri Bihari Lal Chanana. Even though the desire to participate in the proceedings on such an occasion as this, is very natural, but one wished the number of speeches was cut short and in certain cases the tone employed was not used. The large number of speeches resulted in marring the solemnity of the occasion.

The best speech was that of Sardar Swarn Singh and Dr. Prakash Kaur spoke very well in Punjabee.

The House stood in two minutes silence as did almost everybody in the galleries and outside in deep reverence to the memory of the Father of the Nation, each one praying. This silence ended as the Speaker resumed his seat and then adjourned the House "as a mark of respect to the memory of our Bapu" to Monday at 11 a.m.

The Governor Sir Chandu Lal and Lady Trivedi had left earlier.

(Continued on page 2, Col. 3)

"Gandhiji gave us freedom and we gave him bullets in return. The Mahatma shook the mighty British Empire not by brute force, but by his 'tapasya'. He raised us from dust and made us walk with our heads erect. To us he was like a father, mother and Acharya. Though dead, he was sure to guide us and serve as a beacon-light to us." Homage on these lines was paid to the Mahatma in the Punjab Legislative Assembly on Saturday.

शिमला में पूर्वी पंजाब असेंबली द्वारा महात्मा को श्रद्धा सुमन

शिमला के ऐतिहासिक विधान सभा जहां कौंसिल चैंबर में पंजाब विधान सभा का बजट सत्र 6 मार्च, 1948 को आरंभ हुआ।

विधान सभा के सत्र से प्रथम दिन महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि दी गई। गौरतलब है कि गांधी जी की हत्या 30 जनवरी, 1948 को नई दिल्ली में हुई थी।

विधान सभा में महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि प्रकट की गई तथा सदन में शोक प्रस्ताव पारित किया।

"गांधी जी ने हमें स्वतंत्रता प्रदान की और हमने बदले में उन्हें गोलियां दीं। महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सल्तनत को अपनी सेना नहीं बल्कि अपनी तपस्या से हिला कर रख दिया। उन्होंने हमें मिट्टी से ऊपर उठाया तथा हमें अपना शीश ऊंचा कर चलना सिखाया। वे हमारे लिए पितातुल्य, मां तथा आचार्य के रूप में थे। हालांकि वे अब हमारे बीच नहीं हैं लेकिन यह सच है कि वे हमें प्रकाश स्तंभ की तरह हमारा मार्गदर्शन करेंगे।

विधान सभा में 20 सदस्यों ने अपनी श्रद्धांजलि दी।

तत्कालीन राज्यपाल सर चंदू लाल उनकी धर्मपत्नी भी विधानसभा में उपस्थित थी।

इसका उल्लेख 7 मार्च, 1948 को शिमला से प्रकाशित 'दि ट्रिब्यून' समाचार पत्र में हुआ है।



शिमला की शान : महात्मा गांधी की प्रतिमा



शिमला दुनियाभर में पहाड़ों की रानी के नाम से विख्यात है। यहां की खूबसूरती का लुत्फ उठाने हर वर्ष लाखों की संख्या में देशी व विदेशी पर्यटक आते हैं। शिमला के ऐतिहासिक स्थल गांधी की स्मृतियों से जुड़े हैं। इनमें चक्कर स्थित शांत कुटी, समरहिल स्थित मेनरविला (वर्तमान में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान नई दिल्ली का गेस्ट हाउस), फरग्रोव, चैडविक हाऊस, कार्टन ग्रेम ईदगाह मैदान, आर्य समाज मंदिर का सभागार, वायसराय लॉज (वर्तमान में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान), रिज मैदान, ऐवालॉज (वर्तमान में विधि महाविद्यालय)। गांधी की यादों को संजोए रखने की लिए शिमला के ऐतिहासिक रिज मैदान पर महात्मा गांधी की आदमकद प्रतिमा स्थापित की गई हैं। इसे 12 सितंबर, 1956 को 11,250 रुपये की लागत से तैयार किया गया तथा 2 अक्तूबर, 1956 इसे लगाया गया। हाथ में पुस्तक तथा लाठी लिए यह प्रतिमा सभी को अपनी ओर आकर्षित करती है। इस प्रतिमा के आधार की ऊंचाई कम होने के कारण गांधी जी के चश्में चोरी हो जाते थे। बाद में इसे ऊंचा किया गया। इस प्रतिमा के समक्ष हजारों आगंतुक अपना चित्र खिंचवाना पसंद करते हैं। महान शिक्षाविद् तथा मशद में भारत के पूर्व काउंसल रहे अब्दुल मजीद खान जो उपनगर संजौली में रहते थे, वे रोज संजौली से रिज मैदान आकर महात्मा गांधी की प्रतिमा के समक्ष नमन करते थे। आज की पीढ़ी को तो इसका ज्ञान नहीं लेकिन सत्तर-अस्सी के दशक में हर शिमलावासी को इसकी जानकारी थी। मजीद शान ने बापू की शिक्षाओं पर गांधी-हिंदू मुस्लिम एकता पर एक पुस्तक का भी प्रकाशन किया गया था।

इसके अलावा ऐतिहासिक रिज की शान पूर्व प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की प्रतिमा जिसे वर्ष 1999 में लगाया गया। यहां हिमाचल निर्माता डॉ. यशवंत सिंह परमार की प्रतिमा भी स्थापित है। शिमला में पहली प्रतिमा पंजाब केसरी महान स्वतंत्रता सेनानी लाला लाजपत राय की माल रोड पर स्कैंडल प्वाइंट पर लगी थी। इस प्रतिमा को देश के विभाजन पर लाहौर से लाया गया था। इसे शिमला में 15 अगस्त, 1947 को पूर्वी पंजाब के प्रीमियर गोपी चंद भार्गव ने राष्ट्र को समर्पित किया था। पांचवीं प्रतिमा उपायुक्त कार्यालय के समीप जय जवान जय किसान के जन नायक एवं पूर्व प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री की है। छठी छोटा शिमला में पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की तथा सातवीं चौड़ा मैदान में संविधान निर्माता डॉ. भीम राव अंबेडकर की है।

राज्य संग्रहालय में राष्ट्रपिता

शिमला स्थित हिमाचल राज्य संग्रहालय के प्रांगण में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की ध्यान मुद्रा में स्थापित आवक्ष प्रतिमा यहां आने वाले प्रत्येक आगंतुक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। इस प्रतिमा का निर्माण पॉलिश मूल की महान मूर्तिकार फ्रेडा ब्लियॅन्ट ने किया था। वर्ष 1903 में जन्मी इस मूर्तिकार ने दुनियाभर के महान व्यक्तियों, चिंतकों को अपनी कला से जीवंत रूप दिया। उन्होंने महात्मा गांधी की संपूर्ण प्रतिमा (Cross Legged) का निर्माण भी किया, जिसे लंदन के टैविस्टोक स्क्वैयर गार्डन में वर्ष 1968 में लगाया गया। मूलतः दोनों प्रतिमाएं एक ही मुद्रा में हैं। इस प्रतिमा को पूर्व में ऐतिहासिक रिज मैदान पर स्थापित किया गया था। बाद में इसे संग्रहालय के प्रांगण में लगाया गया। यह जानकारी संग्रहालय के प्रमुख संग्रहालाध्यक्ष डॉ. हरि चौहान ने दी।



गांधी व पीटरहाफ

पहाड़ों की रानी शिमला में अंग्रेजों के वक्त में पहले वायसराय का निवास स्थान था। वर्ष 1988 में वायसरीगल लॉज, जो वर्तमान में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान है, में वायसराय का निवास स्थानांतरित हुआ। इससे पहले लॉर्ड कैनिंग का निवास स्थान बार्नस कोर्ट था, जो वर्तमान में महामहिम राज्यपाल का निवास स्थान है। पीटरहाफ में पहले वायसराय जैम्सब्रूस तथा बाद में किनचरडाइन रहे। यहां लकड़ी की एक खूबसूरत इमारत (चित्र देखें) थी। आजादी के उपरांत इसे लैफ्टिनेंट गवर्नर तथा राज्यपाल निवास स्थान बनाया गया। 12 दिसंबर, 1981 को एक भीषण अग्निकांड में यह इमारत स्वाह हो गई।

आजादी के ठीक उपरांत पीटरहाफ में पंजाब उच्च न्यायालय खुला। यहां पर महात्मा गांधी की हत्या के मामले की सुनवाई हुई थी तथा इसी भवन में गांधी के हत्यारे को फांसी की सजा सुनाई गई थी।

बाद में यहां पुनः राजभवन का निर्माण किया गया लेकिन इसे यहां से बार्नस कोर्ट में स्थानांतरित किया गया तथा आज यह भवन हिमाचल पर्यटन निगम का एक आलीशान होटल है जिसे पीटरहाफ के नाम से जाना जाता है। इस भवन ने भारत के इतिहास को बनते देखा है।

जब शांत वादियों में बही स्वराज की बयार

(पृष्ठ 9 से जारी) अवसर मिला। इससे यहां की भोली-भाली जनता का ध्यान राष्ट्रीयता की विचारधारा की ओर आकर्षित हुआ। ये शिमला में सरकारी सेवा में कार्यरत कर्मचारियों, व्यापारी वर्ग, यहां के निवासियों तथा गांवों के लोग जो उस वक्त शिमला में अंग्रेजों तथा हिंदुस्तानियों के पास कार्य करते थे, के मन में देश की आजादी की अलख जगाने में कामयाब हुआ।

शिमला को अंग्रेजों ने एक विशुद्ध अंग्रेजी शहर की पद्धति पर विकसित किया था। भारतीयों के रहने के लिए अलग जगहें थीं। राजनीतिक बैठकों का दौर उस वक्त शिमला में आरंभ हो गया था। अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के लिए बैठकों का आयोजन एडवर्ड गंज बाजार में किया जाता था। यहां आज अनाज मंडी स्थित है।

गांधीजी का पांच दिन का शिमला प्रवास दो मायनों में कामयाब रहा। पहला उनके स्वागत के लिए स्थानीय नेता सक्रिय हुए। उनके आगमन के समाचार को प्रचारित किया गया ताकि स्थानीय क्षेत्रों के लोग उनके दर्शन के लिए आ सकें। दूसरा शिमला के निवासियों को जन समस्याओं तथा अन्य कठिनाइयों से जूझना पड़ रहा था। उन्हें अंग्रेजी सरकार तक पहुंचाने के लिए मंच मिल गया। पहले वे सरकार के समक्ष दावों व आवेदनों के माध्यम से ही पहुंचती थी।

गांधी जी के प्रवास के दौरान तीन विभूतियां जो स्थानीय राजनीतिक परिदृश्य पर उभरी थीं, वे डॉ. केदार नाथ तथा लाला हरीश चंद्रा दोनों नगर निगम की राजनीति में सक्रिय थे तथा सेमुअल इवान्स स्टोक्स एक अमेरिकी नागरिक जो कोटगढ़ में आकर बसा था तथा उन्हें पहाड़ों में रसदार सेब के पौधे लाने का श्रेय जाता है, को बेगार प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाने का मौका मिला। उन्होंने गांधी जी के समक्ष पहाड़ों में व्याप्त बेगार प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्हें गांधीजी का भी समर्थन मिला। स्टोक्स के प्रयासों से पहाड़ों में बेगार प्रथा का अंत हुआ।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का प्रथम दौरा वायसराय के साथ वार्ता में कामयाब रहा या नहीं इसका उल्लेख तो इतिहास से गांधीजी के वक्तव्यों से स्पष्ट है लेकिन ये पहाड़ों में एक नई जागृति लेकर आया। भोले-भाले लोगों में राष्ट्रीयता, स्वराज की भावना जागृत हुई। पहाड़ों में बेगार प्रथा का अंत हुआ। शिमला नगर निगम में पार्षदों का चुनाव होने लगा तथा मनोनयन की प्रथा बंद हुई। सही मायनों में गांधी जी का दौरा एक नई क्रांति लेकर आया। शांत पहाड़ों में भी स्वराज की बयार बहने लगी।

(लेखक हिमप्रस्थ के वरिष्ठ संपादक हैं)

पटेल बिन गांधी अधूरे

(पृष्ठ 110 से जारी) उनके सत्याग्रह आंदोलनों की इतनी अधिक सफलता न मिलती। ये पटेल ही थे जिन्होंने पार्टी में कड़ा अनुशासन लागू कर पार्टी मशीनरी को संगठित किया और इसे एक सशक्त जनाधार दिया। 1937 के उपरांत हुए प्रांतीय चुनावों के दौरान पार्टी के शीर्ष संचालक के रूप में चुनावों का संचालन कार्य तथा कांग्रेस सरकारों के गठन का जिम्मा उठाया। वर्ष 1945 के उपरांत पटेल की भूमिका देश को आजादी दिलाने की रही। यह सच्चाई है कि गांधी युग का संपूर्ण इतिहास तब तक पूर्ण नहीं है जब तक सरदार पटेल के राष्ट्र के प्रति समर्पण, योगदान तथा हासिल लक्ष्यों को पढ़ा, समझा तथा सराहा नहीं जाता।

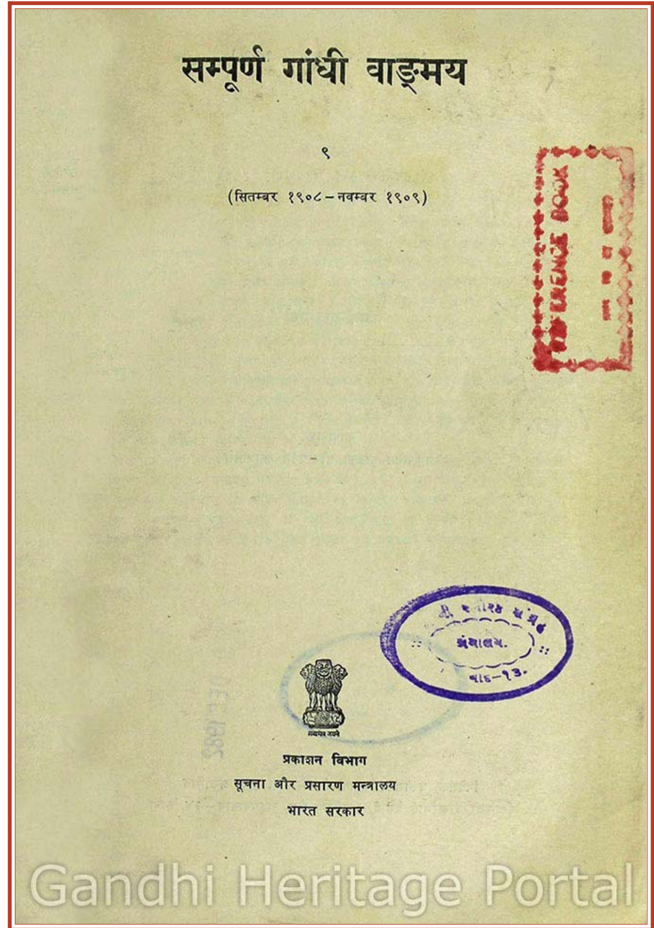
सह आचार्य, राजनीतिक विज्ञान, राजनीतिक विज्ञान विभाग, हि. प्र. विश्वविद्यालय, शिमला-171 005, मो. 0 88943 45044

संदर्भ

1. शंकर घोष, लीडर्ज ऑफ माडर्न इंडिया (नई दिल्ली : एलाइड पब्लिकेशन प्राईवेट लि. 1980), पृ. 298
2. यथा
3. रविराजन एंड एम.के. सिंह, सरदार वल्लभभाई पटेल (नई दिल्ली) के.के. पब्लिकेशन, 2009), पृ. 4
4. रविराजन एंड एम.के. सिंह, सरदार वल्लभभाई पटेल (नई दिल्ली) के.के. पब्लिकेशन, 2009), पृ. 4
5. आर. के. मूर्ति, सरदार पटेल : सरदार पटेल : द मैन एंड हिज कंटैम्परेरी (नई दिल्ली : स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्राईवेट लिमिटेड, 1976), पृ. 112
6. डी.वी. तहमनकार, सरदार पटेल (लंदन : जार्ज ऐलिन एंड अनविनलि 1970), पृ. 76
7. केवल एल पंजाबी, द इंडोमिटेबल सरदार (बंबई, भारतीय विद्या भवन, 1962), पृ. 76
8. बी.के. आहलुवालिया, "पोर्ट्रेट ए पैट्रियट" (दिल्ली : कल्याणी पब्लिशर्ज, 1974) पृ. 39
9. रवि राजन एंड एम.के. सिंह, सरदार वल्लभ भाई पटेल, पृ. 11)
10. आर.के. मूर्ति, सरदार पटेल, द मैन एंड हिज कंटैम्परेरी, पृ. 126
11. यथा, पृ. 122
12. यथा
13. शंकर घोष, लीडर्ज़ ऑफ माडर्न इंडिया, पृ. 310

आखिरी पन्ना

संपूर्ण गांधी वाङ्मय
एक क्लिक पर गांधी उपलब्ध



'द क्लेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी' के सभी सौ ग्रंथों का प्रकाशन सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने किया है। इस प्रकाशन की हिंदी शृंखला 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' है। यह आज दुनिया भर के पाठकों के लिए गांधी दर्शन जानने, समझने का एक वृहद ग्रंथ है। इंटरनेट पर इसकी उपलब्धता ने गांधी को हर व्यक्ति की हथेली में उपलब्ध करवा दिया है। महात्मा गांधी की 150वीं जयंती पर प्रकाशित हिमप्रस्थ के इस विशेषांक को प्रकाश में लाने में 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' का महान योगदान रहा है। उनके जीवन की सिलसिलेवार जानकारियां इसमें उपलब्ध हैं। इन ग्रंथों की उपयोगिता का इस बात से भी आभास होता है कि ब्रिटेन के एटिनबरो ने 'गांधी' फिल्म का निर्माण कर उन्हें विश्वभर में लोकप्रिय बना दिया। एटिनबरो 'क्लेक्टेड वर्क्स' के प्रधान संपादक प्रो. कृ. स्वामीनाथन से खुद सलाह लेने आते थे। फिल्म में इन ग्रंथों के प्रति आभार भी व्यक्त किया गया है।

'क्लेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी' का संपादन कार्य मुख्य रूप से डॉ. कृ. स्वामीनाथन की देखरेख में ही हुआ। सबसे पहले प्रधान संपादक भरतन कुमारप्पा की एक साल के बाद ही मृत्यु हो गई। दूसरे संपादक जैराम दास दौलत राम को दो वर्ष उपरांत बिहार का राज्यपाल बना दिया गया। प्रो. कृ. स्वामीनाथन तीसरे प्रधान संपादक के रूप में आए और अंतिम संपादक श्री राजेंद्र धस्माना ने संभाला। अंतिम संपादक इसलिए कि अंतिम सौवां खंड का संपादन उन्हीं की देखरेख में हुआ।

गांधी जी का संपूर्ण गांधी वाङ्मय Gandhi Heritage Portal (gandhiheritageportal.org) पर उपलब्ध है। इस शृंखला को तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री अरुण जेतली ने 8 सितंबर, 2015 को जारी किया था।

इस शृंखला में गांधी जी के भाषण, पत्रों, संपादकीय तथा अन्य आलेख जो उनकी जीवन यात्रा से जुड़ी है, का संकलन किया गया है। यह गांधी जी के जीवन पर एक प्रमाणिक एवं तथ्यपूर्ण सामग्री है।

दुनिया को सत्य, प्रेम और अहिंसा का संदेश देने वाली इस अद्वितीय विभूति को दुनिया महात्मा गांधी के नाम से पुकारती है। अभी भी हर वर्ष उन पर अनेक पुस्तकें लिखी जा रही हैं। दुनिया की हर भाषा में गांधी जी पर पुस्तकें उपलब्ध हैं। एक सरल व सादा जीवन व्यतीत करने वाली इस महान विभूति को दो विश्वयुद्ध देखने का मौका मिला लेकिन उनके बावजूद वे अहिंसा के हथियार को लेकर आगे चले। अहिंसा के पुजारी को 30 जनवरी, 1948 को हिंसा का सामना करना पड़ा। वे हमें छोड़ कर बेशक चले गए हैं, लेकिन उनके आदर्श, उनके विचारों से वे आज भी जिंदा हैं। आने वाले वर्षों में भी जिंदा रहेंगे। गांधी जी आज के परिप्रेक्ष्य में विश्वशांति के लिए सर्वमान्य आदर्श बने हैं।

हिमप्रस्थ का यह विशेषांक गांधीजी के आदर्शों को समर्पित।

संदर्भ पुस्तकें :

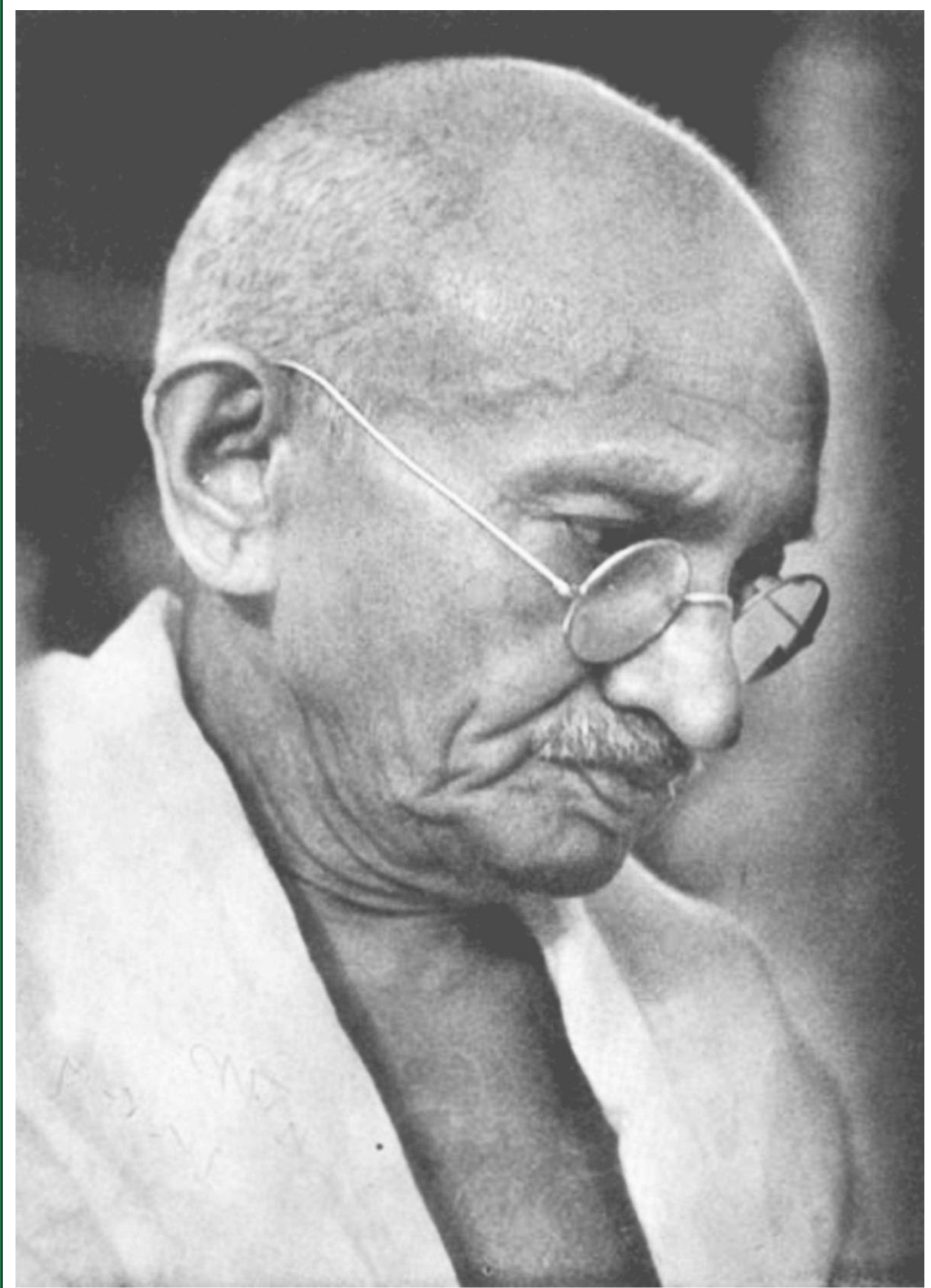
1. मो. क. गांधी, सत्य के प्रयोग, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर
2. M.K. Gandhi, Non-violence weapon of the Brave (New Delhi: Orient Paper Backs)
3. M. K. Gandhi, India of My Dreams (Ahmedabad-14 Navajivan Publishing House)
4. M.K. Gandhi, From Yeravda Mandir (Ahmedabad-14 Navjivan Publishing House)
5. M.K. Gandhi, Key To Health (Ahmedabad-14, Navjivan Publishing House)
6. गांधी शिक्षा, (दिल्ली, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन)
7. J.B. Kripalani, Gandhi His Life and Thoughts (Publication Division publishing of Information and Broadcasting Government of India)
8. BHABANI BHATTACHARYA, Gandhi The Writer (National Book Trust, India)
9. J.R. Kokandakar, Gandhian Thought (Hyderabad-44, Karshak Art Printers, 40, APHB, Vidyanagar)
10. जिला प्रशासन, ऊना, ऊना जनपद एक परिचय, (ऊना : समाज धर्म प्रकाशन)
11. Raaja Bhasin, Simla The Summer Capital of British India (New Delhi: Rupa Publication India Pvt. Ltd.)
12. Pamela Kanwar, Imperial Simla Second Edition (News Delhi: Oxford University Press)
13. ओंकार शरद, देश का प्रकाश जय प्रकाश, (इलाहाबाद, साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड)
14. Raj Kumari Shanker, The Story of Gandhi, (New Delhi: Children's Book Trust)
15. D.N. HIVARE, Gandhian Thoughts (Wardha, Sau, Durga Damodar Hivse 3-66, Dhanwantri Nagar)
16. संपूर्ण गांधी वाङ्मय (प्रकाश विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली), (सौ खंड)
17. हिमाचल प्रदेश के स्वतंत्रता सेनानी (भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश)
18. वीणा, अक्तूबर, 2017, श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर की मासिक मुख पत्रिका)
19. N.B. Sen, Wit and Wisdom of Mahatma Gandhi (New Delhi, The Book Society of India Publication)
20. Asha Sharma, An America in Gandhi's India (Penguin Books India, 1999)
21. Simla Past and Present by Edward J Buck, Minerva Books, Shimla
22. The Discovery of India by Jawahar Lal Nehru, Penguin Books






शिमला के मेनरविला भवन के कमरा नं. 6 में महात्मा गांधी से जुड़ी स्मृतियां

पंजीकरण संख्या : 845/1957 अक्तूबर, 2018 एच.पी./79 एस.एम.एल. 2018—20



अनुपम कश्यप, निदेशक, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित तथा संजीव पठानिया, नियंत्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग द्वारा हिमाचल प्रदेश सरकार के लिए राजकीय प्रेस, शिमला—171005 से मुद्रित करवाकर शिमला से प्रकाशित। सम्पादक वेद प्रकाश।